

सत्कार्योत्तेजक सभा—धुळे

hanan Jayarao Gadgil Library

श्री
GIPE-PUNE-194474

ज्ञानेश्वरी

द्वितीय खंड

(अध्याय १३—१८)

आतां हृदय हें आपुलें । चौफलैनि भलें ।
वरि बैसउं पाउलें । श्रीगुरुचीं ॥ १ ॥
ऐक्यभावांची आंजुलि । सर्वेन्द्रियकुड्मलि ।
भरौनि पुण्यांजलि । अर्घ्य देउं ॥ २ ॥

ज्ञानेश्वरी, अध्याय १३-

संपादक:-विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे

धुळे:-आत्माराम छापखान्यांत छापिला.

(सर्व हक्क राखून ठेविले आहेत.)

न्येष्ठ शुद्ध १३ शके १८३१

लोकमान्य केसरीकारांचा

अभिप्राय

हा अपूर्व व अमूल्य ग्रंथ घुळें येथील ' सत्कार्योत्तेजक सभे ' नें प्रसिद्ध केला आहे. या ग्रंथास ' अपूर्व व अमूल्य ' ह्मणण्याची कारणे अनेक आहेत. सांप्रत ज्ञानेश्वरीच्या ज्या ज्या आवृत्त्या छापून निघाल्या आहेत, त्या त्या सर्व एकनाथानीं शके १५०६ मध्ये शोधिलेल्या ज्ञानेश्वरीच्याच प्रती आहेत. प्रस्तुतची ज्ञानेश्वरी एकनाथी ज्ञानेश्वरीच्या पूर्वीची आहे. ज्ञानदेवाचा समकालीन मुकुंदराज कवी याची स्वतःची जी ज्ञानेश्वरीची प्रत होती, ती त्यानें आपला शिष्य ' विद्याधर ' यांस दिली; त्याजपासून ती ' विश्वनाथ कुंभर धोलरदेवनुरकर ' यास मिळाली; व या पुरुषापासून परंपरेनें ती जात जात बालेघाटी बीड शहरांत पाटांगण नांवाचे देवस्थानांत आली ! या संस्थानचे सांप्रतचे मठाधिपती मथुरानाथ गोसावी यांनीं ही प्रत प्रसिद्ध संशोधक रा. विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे यांस पांच वर्षांपूर्वी दिली; व सांप्रतचा ग्रंथही त्यांनींच संपादित केलेला आहे. प्रस्तुतची ज्ञानेश्वरी ह्मणजे खुद्द ज्ञानेश्वरांनीं नेवाशास भाषेच्या ज्या स्वरूपांत ती सांगितली, त्याच स्वरूपांत तंतोतंत छापलेला हा महाराष्ट्र वाङ्मयांतील बहुमोल ग्रंथ होय. आधींच एकनाथी ज्ञानेश्वरीनें ज्या महाराष्ट्रीय समाजास आज अनेक शतके आपल्या गुणांनीं मोहित करून सोडलें आहे, त्यांस खुद्द ज्ञानेश्वरांच्या तोंडची ज्ञानेश्वरी मिळणें ह्मणजे अपूर्व लाभ होय यांत शंका नाही. भगवद्गीतेवरील उत्कृष्ट मराठी टीका, चारकरी पंथाची जननी, मनोहर उपमादृष्टांतांनीं गजवजलेलें उत्तम काव्य, आणि

(२)

सहस्रें वर्षांपूर्वीच्या नागर मराठीचा नमुना व मराठीत कागदावर लिहिलेला सर्वांत जुना उपलब्ध लेख, या सर्व दृष्टींनी ज्ञानेश्वरांच्याच अस्सल भाषेत छापलेला हा ग्रंथ महाराष्ट्रीयानांच्या आदरास कौतुकास व आश्रयास पात्र होईल यांत संदेह नाही. ज्ञानेश्वरीच्या या प्रतीच्या एका पानाचें चित्रही या ग्रंथास जोडलें असून अखेर कठीण शब्दांचा कोश दिला आहे. अशा प्रकारच्या अपूर्व ग्रन्थाचा लाभ महाराष्ट्रीयानांस करून दिल्याबद्दल रा. राजवाडे व सत्कार्योत्तेजक सभा यांचे आभार मानावे तितके थोडेच आहेत.

(केसरी ता. २५/८/०८)



(३)

| | | | |
|----|-----|------------------|------------------|
| २ | १७ | ईभ | ईभ- |
| ३ | ३१ | सज्जानाचें | सज्जनाचें |
| ३. | ३३ | काव्या | काव्यां |
| ४ | ४० | आपुल्यापरी | आपुल्याः परी |
| ४ | ४० | सुरवाडले | सुखाडले |
| ४ | ४४ | घनीभूत | घनीभूत |
| ४ | ४६ | घरूनि | घरूनि |
| ५ | ५१ | शब्द ब्रह्माब्धी | शब्दब्रह्माब्धीः |
| ५ | ५८ | आर्धी | आर्दी |
| ६ | ६६ | तां | तो |
| १५ | १६० | हणौनि | हणौनि |
| २० | ४ | ता | तो |
| २० | ७ | आववे | आघवे |
| २२ | २७ | ऐम | ऐसैं |
| २७ | ६७ | गहिवर | गहिवरु |
| २७ | ६७ | खाला | खालां |
| २७ | ७१ | धनुष्यबाण | धनुषबाण |
| २७ | ७२ | वैकुंठनाथ | वैकुंठनाथु |
| २७ | ७२ | पार्थ | पार्थु |
| २७ | ७२ | परमार्थ | परमार्थु |
| २९ | ९ | आवो | आहो |
| २९ | १६ | आधिकां | आधिकां |
| ३० | २८ | ह | हैं |
| ३० | २९ | परी | परीं |
| ३१ | ३६ | येथ | जें येथे |
| ३१ | ३६ | जे याचा | जेया बां |
| ३२ | ४१ | ही | हैं |
| ३२ | ४८ | नवनव | नव |
| ३३ | ५६ | तिमिरावरुद्ध | तिमिराविरुद्ध |
| ३७ | ९६ | एक | एकु |

(४)

| | | | |
|----|-----|-------------|--------------|
| ३७ | ९६ | होति | होंति |
| ३७ | १०० | जात | जांत |
| ३७ | १०२ | विवेकिये | विवेकिये |
| ३७ | १०२ | होति | होंति |
| ३७ | १०४ | इये | इयें |
| ३७ | १०४ | वेगली | वेगलीं |
| ३८ | १०६ | कवणं | कवणें |
| ३८ | १११ | नेणावया | नेणावेया |
| ३८ | १११ | भ्रमें | भ्रमे |
| ३९ | १२२ | अव्हेरी | अव्हेरीं |
| ४३ | १६० | होति | होंति |
| ४४ | १६४ | अमूतें | अमूतें |
| ४४ | १६५ | नव्हति | नव्हति |
| ४४ | १७१ | आंचरिति | आचरति |
| ४५ | १८० | अड्डुइं | आड्डुइं |
| ४५ | १८१ | भलतें | भलेतें |
| ४५ | १८२ | त्याजु | त्याज्यु |
| ४५ | १८६ | कव्हणा | कव्हणीं |
| ४७ | २०१ | होसील | होंसील |
| ४७ | २०२ | जाणते न | जाणतेन |
| ४७ | २०२ | सांघपां | सांघ पां |
| ४८ | २१९ | ते व्हलि | तेव्हलि |
| ६२ | ३६२ | पावलें | पावलें |
| ६९ | ५६ | प्राणपानगती | प्राणापानगती |
| ७१ | ७८ | आचार | आचर |
| ७२ | ९५ | देति | देंति |
| ७५ | १२५ | आजे | आजें |
| ७६ | १३९ | स्वधर्मरूपु | स्वधर्मरूपु |
| ७६ | १४२ | गलां | गलां |

| | | | |
|-----|-----|----------------|-----------------|
| ७९ | १७० | जेवी | जेवी |
| ८१ | १८९ | श्रद्धासं | श्रद्धासिं |
| ८३ | २०९ | प्राणाते | प्राणाते |
| ८५ | २३२ | तेयाते | तेयाते |
| ८६ | २४९ | चिव्दारीं | जिव्दारीं |
| ९२ | ३३ | एकाधै | एकाधै |
| ९९ | १०७ | आशां साकु खंडी | आशांसीं कुरवंडी |
| १०४ | १६२ | आपणां पै | आपणापै |
| १०५ | १६८ | आपणपेन | आपणपेन |
| १०८ | २१२ | अनुभवांवी | अनुभवावी |
| १११ | १० | खेलावया | खेलावेया |
| १२६ | १७४ | परियसै | परियसै |
| १२७ | २ | चिथे | चिथे |
| १२९ | २६ | आधवी | आधवी |
| १३२ | ६४ | च | चि |
| १३४ | ८२ | किडालाचां | किडालाचा |
| १४० | १५५ | ते हीं | तेहीं |
| १४८ | २६१ | धैयांची | धैयांची |
| १४८ | २६५ | परवाली | परवाली |
| १५१ | ३०१ | नांव | नांव |
| १५२ | ३०५ | परत्मलिंगा | परमात्मलिंगा |
| १५२ | ३१३ | प्राखा | प्राणा |
| १५२ | ३१७ | चै | जै |
| १६१ | ४०५ | होधि | होंधि |
| १६३ | ४२७ | दीइया | दीइया |
| १६४ | ४३२ | तव | तवं |
| १६४ | ४३२ | एसा | ऐसा |
| १६४ | ४३९ | तसा | तैसा |
| १६६ | ४५१ | नैयतां | नैयतां |
| १६६ | ४६१ | चंदनाचै | चंदनाचै |

(६)

| | | | |
|-----|-----|-------------------|----------------|
| १७२ | २४ | नाणयांसि | नाणयांसि |
| १७४ | ४८ | माश्व | मोश्व |
| १७६ | ६८ | चडतकालकलांचेनिचडत | कालकलांचेनि |
| १८० | ११२ | तों | तो |
| १८० | ११५ | पलीकडिली | पैलीकडिली |
| १८४ | १५१ | उंचावते न | उंचावतेन |
| १८५ | १६७ | ससाणे | सणाणे |
| १८६ | १७० | २७० | १७० |
| १९१ | ९ | होयजे | होइजे |
| १९२ | १८ | जेतया | जे तेया |
| १९२ | २० | ब्रह्मांडाचे | ब्रह्मांडाचे |
| १९२ | २२ | ०जातेयां | ०जातेयां |
| १९३ | ३६ | ग्रामी | ग्रामी |
| १९५ | ५८ | सांधिलें | सांधितलें |
| १९५ | ५८ | तया | तेया |
| १९५ | ६५ | उत्रातेन | उत्रातेन |
| १९६ | ७६ | आतु | आंतु |
| २०० | ११९ | अनुधाडु | अनुधाडु |
| २०२ | १३८ | तापत्रयाग्रि चि | तापत्रयाग्रिचि |
| २०४ | १५४ | तै | तै |
| २०४ | १५७ | डोला | डोलां |
| २०५ | १७५ | नाशवंत | नाशवंतें |
| २०६ | १७७ | ऐमें | ऐमें |
| २०६ | १७७ | जे | जें |
| २०६ | १८० | जे | जें |
| २०६ | १८१ | वाहाति | वाहांति |
| २०६ | १८६ | तया | तिया |
| २०८ | २०६ | पातलेयां | पातलेयां |
| २०९ | २१८ | अग्रिज्यांतिचा | अग्रिज्यांतिचा |

शुद्धिपत्र.

प्रस्तावना.

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|-------|--------|------------------------------|--|
| ९ | २२ | Linguis be | Linguistic |
| १० | ५ | प्राकृतोद्भव | प्राकृतिकोद्भव |
| १० | ७ | प्राकृतोद्भव | प्राकृतिकोद्भव |
| १० | ११ | प्राकृतोद्भव | प्राकृतिकोद्भव |
| १० | १८ | प्राकृतोद्भव | प्राकृतिकोद्भव |
| १० | २२ | प्राकृतोद्भव | प्राकृतिकोद्भव |
| १० | २४ | संस्कृत | संस्कृत |
| १० | २५ | भाषांकडे | भाषांकडे |
| १५ | १३ | Md. | Ind. |
| १९ | ७ | संस्कृतापेक्षां | संस्कृतापेक्षां |
| १९ | १५ | संस्कृत | संस्कृत |
| २१ | ७ | पाळी | पाळी. |
| २१ | १२ | जन्म भाषा | जन्मभाषा. |
| २१ | १२ | भाषाबौद्धांचें | भाषा. बौद्धांचे |
| २१ | २२ | इतकेंच | इतकेंच. |
| २२ | १८।१९ | मराठीवगैरे प्राकृतिक भाषा | अपभ्रंश, मराठी वगैरे प्राकृतिक व प्राकृतिको- द्भव भाषा |
| २२ | २८ | संस्कृत | संस्कृत |
| २३ | २ | संस्कृत | संस्कृत |
| २४ | ९ | वेद भाषेर्शां | वेदभाषेर्शां |

(२)

| | | | |
|-----|-------|---------------------|---------------------|
| २५ | ९ | कृतिम | कृत्रिम |
| २९ | २३ | असंस्कृत | असंस्कृत |
| ३० | ५ | पोटभेद | पोटभेद. |
| ३१ | कंस ३ | मराठीचे | महाराष्ट्रीचे |
| ३८ | कंस | वार्णिककार | वार्तिककार |
| ३८ | १६ | राजधानी | राजधानी. |
| ३८ | २८ | क्षेप | क्षेपं |
| ३९ | १३ | ८०० | ८० |
| ३९ | १६ | व्ययाकरण | वैय्याकरण |
| ३९ | २७ | वाररुचे काव्ये | वाररुचे काव्ये |
| ४० | ३ | अपराना | अपरान्त |
| ४१ | ७ | ; | ; व |
| ४१ | १४ | अंत. | अंतः |
| ४२ | १९ | एकच | एकाच |
| ४३ | कंस | जिवंत व महाराष्ट्री | जिवंत महाराष्ट्री व |
| | | मेलेली संस्कृत | मेलेली संस्कृत भाषा |
| | | भाषा | |
| ४५ | ३ | भग्निमित्र | आग्निमित्र |
| ४८ | २४ | सक्तिअ | सक्तिअ |
| ५० | २१ | घोइत्रपैनि | घोइत्रपैति |
| ५४ | २२ | संस्कृत | संस्कृत |
| ५५ | २५ | Pischel's | Pischel's |
| ५७ | १० | ५०० | १५०० |
| ५७ | ११ | ५०० | १५०० |
| १०६ | ६ | ज्ञानेश्वरीतामु | ज्ञानेश्वरी तामु |

ज्ञानेश्वरी.

| | | | |
|-------|-----|--------|-------|
| पृष्ठ | ओवी | अशुद्ध | शुद्ध |
| १ | ५ | तिथे | तिथे |
| २ | १५ | दस-नु | दसनु |

(७)

| | | | |
|-----|-----|---------------|--------------|
| २१० | २२३ | अचिरमार्गु | अचिरामार्गु |
| २११ | २३७ | जे | जे |
| २१२ | २५१ | हां गा | हांगा |
| २१३ | २५७ | भागातें | भोगातें |
| २१५ | ३ | जे | जे |
| २१७ | २७ | अभप्रा ३० | अभिप्रा ३० |
| २२३ | ७५ | वेढि तेयाचिया | वेढितेयाचिया |
| २२३ | ८० | भवती | भवती |
| २२४ | ९० | सौरसें | सौरसें |
| २३१ | १५८ | सेजे | सेजे |
| २३३ | १८२ | जे | जे |
| २३३ | १८२ | अगास्तिगौवण | अंगास्तिगौवण |
| २३४ | १८६ | आइकें | आइकें |
| २३६ | २१४ | विकारांची | विकारांची |
| २३६ | २१४ | बोहिली | बोहिली |
| २४१ | २८० | उमेयां | उगेयां |
| २४८ | ३५७ | जि | चि |
| २६९ | ५३ | लांघिजैल | सांघिजैल |
| २७० | ६५ | नेदखे | नेदखे |
| २७१ | ७८ | सर्पी | सर्पी |
| २७४ | १०७ | चंद्रमेयांसि | चंद्रमेयांसि |
| २७४ | १०७ | पाडें | पाडें |
| २७४ | ११२ | कथितेन | कथितेन |
| २७४ | ११२ | कथू | कथू |
| २७५ | ११५ | टांइचि | टांइचि |
| २७५ | ११८ | आपुलेया | आपुलेया |
| २७५ | ११९ | पोरखीतु | पोरखीतु |
| २७५ | १२० | पोरवकें | पोरवकें |
| २६६ | १२४ | बोलिं या | बोलिया |
| २७८ | १५० | आघवेनि | आघवेनि |

(८)

| | | | |
|-----|-----|---------------|-------------------|
| २७८ | १५४ | जैव्हलि | जेव्हलि |
| २७९ | १६२ | हां गा | हांगा |
| २८० | १६८ | (तिसरा चरण) | हैं असो मज प्रति। |
| २८१ | १८१ | हारपोनि | हारपौनि |
| २८२ | १९३ | सांधितसों | सांधतसों |
| २८६ | २२७ | प्रह्लादु | प्रन्ह्लादु |
| २८६ | २३२ | त्रेंती | त्रेती |
| २८६ | २३३ | ह्णतयां | ह्णतेयां |
| २८७ | २४४ | पटी | पटीं |
| २८८ | २४५ | एसेया | ऐसेया |
| २८८ | २४९ | तैसैं पां | तैसेयां |
| २८८ | २५० | समासा | समासां |
| २८८ | २५२ | एसा | ऐसा |
| २८८ | २५२ | तो | तो |
| २८९ | २५७ | एसैं | ऐसैं |
| २८९ | २५९ | आया | आगा |
| २९१ | २८४ | तैसिं | तैसैं |
| २९३ | ३०१ | तव | तवं |
| २९३ | ३०४ | देवं | दैव |
| २९४ | ३०७ | देवांगला | दैवांगला |
| २९७ | २४ | मान्हवे | मा न्हवे |
| २९९ | ४२ | घातलें | घातलें |
| ३०१ | ७३ | माहात्म | माहात्म्य |
| ३०२ | ८५ | गाति | गांति |
| ३०३ | ११७ | आहेसैं | आहे सैं- |
| ३११ | १७१ | भोगावया | भोगावेया |
| ३१४ | २०७ | विश्वरूपाची | विश्वरूपाची |
| ३१४ | २०८ | मी | मीं |
| ३१४ | २१२ | जेयाचेयानि | जेयांचेया |

(९)

| | | | |
|-----|-----|-------------|--------------|
| ३१६ | २३५ | देशकु | देशकु |
| ३१९ | २६१ | चित्ररचना | चित्ररचना |
| ३२० | २७४ | वयासा | वयासा |
| ३२२ | २९८ | ० चक्षूसि | ० चक्षूसि |
| ३२३ | ३०८ | उभड्ड | उभड |
| ३२५ | ३३० | पाहांता | पाहांतां |
| ३२५ | ३३३ | उदैले | उदैलें |
| ३२५ | ३३५ | एसैं | ऐसैं |
| ३२९ | ३७१ | प्रसय० | प्रलय० |
| ३३१ | ३८७ | क्रौरव० | कौरव० |
| ३३१ | ३९० | पदतींचे | पदातींचे |
| ३३२ | ४०२ | फेडावया | फेडावेया |
| ३३३ | ४०६ | जैवि | जेवि |
| ३३५ | ४३४ | नेण | नेणें |
| ३३६ | ४३६ | अंतक | अंतकु |
| ३३८ | ४६२ | उलथौगि | उलथौनि |
| ३३८ | ४६३ | हाइ | होइं |
| ३४४ | ५२३ | नमम | नमन |
| ३४४ | ५२४ | पाठिमोरयासि | पाठिमोरेयासि |
| ३४७ | ५५२ | कैसें व | कैसेनि |
| ३४९ | ५७६ | घरड हुलि | घरडहुलि |
| ३५० | ५८२ | ८५ | ८२ |
| ३५० | ५८५ | ओलाडावें | आलाडावें |
| ३५१ | ५९६ | होताति | हंताति |
| ३५३ | ६०८ | सौरसु | सौरसु |
| ३६१ | ६९६ | आलो चुकरुनि | आलोचु करुनि |

(१०)

| | | | |
|-----|-----|--------------|---------------|
| ३६३ | १२ | होंदे | हों दे |
| ३६३ | १६ | होंदेइं | हों देइं |
| ३६७ | ६२ | जूझावें | जूझावें |
| ३६८ | ७५ | तयांची | तेयांची |
| ३६९ | ८७ | जन्मृत्युचां | जन्ममृत्युचां |
| ३७६ | १७१ | पूर्ण तेजाला | पूर्णते जाला |
| ३७७ | १८३ | निरंधनि | निरंधनि |
| ३८२ | २३९ | शरणगतां | शरणागतां |



श्री.

प्रस्तावना.

१ विवक्षित लोक विवक्षित भाषा विवक्षित स्थली व विवक्षित काली कोणत्या पद्धतीने बोलतात व (लिहिणे माहित असल्यास) लिहितात, हे ज्या नियमसरणीने ह्याजें शास्त्रानें स्पष्ट केलेले असतें त्यास त्या भाषेचें तत्स्थलीन, तत्कालीन व तत्लोकिय ह्या ह्या वाक्यांत व्याकरण ह्या शब्दाला स्थल, काल व लोक या उपाधींनीं मुद्दाम विशिष्ट केलें आहे. कां कीं, ह्या तीन उपाधींचा स्पर्श जिला नाहीं अशी भाषा मागें झाली नाहीं व पुढें होणार नाहीं.

प्रांतकृत
भाषाभेद.

प्रस्तुतकालची ह्याजें चक १८२९ तली मराठी भाषा घेतली, तर असें आढळून येईल कीं, प्रांतपरत्वे ही भाषा किंचित् किंचित् बदलत जात जात सरहद्दींवर इतर भाषांशीं मिसळून जात आहे. ह्याजें निव्वळ प्रांतपरत्वे मराठी भाषेचे पाचपंचवीस पोटभेद होत आहेत. तसेंच, प्रांतपरत्वाप्रमाणेंच जातिपरत्वानें हि भाषा बदलत असते, ह्याचा हि अनुभव सर्वत्र आहे. ब्राह्मणाची मराठी भाषा कुणव्याच्या मराठी भाषेहून किंचित् भिन्न असते, हे स्पष्ट आहे. त्याप्रमाणेंच, पारशाची गुजराथी अमदावादी वाण्याच्या गुजराथीहून निराळी आहे, हे एखादा सामान्य मनुष्य हि ओळखू शकेल.

जातिकृत
भाषाभेद.

कोकणातील कोळ्याची मराठी कोकणातील भंडार्याच्या किंवा साताण्या प्रभूच्या मराठीहून भिन्न असते इतकेंच नव्हे, तर वंदरी कोळ्याची मराठी भाषा डोंगरी कोळ्याच्या मराठी भाषेहून भिन्न असते. मराठींत हा भाषाभेद स्थल व जाति या दोन उपाधींनींच तेवढा अव्यक्त झाला आहे, असें समजू नये. स्त्रीपुरुषभेद हि मराठींत भाषाभेदाला कारण होतो.

कृत
भाषाभेद.

हा भेद स्थल किंवा जाती ह्यांनीं केलेल्या भेदांतून उत्कट नसतो. तत्रापि, असा भेद ईंग्रजी, कानडी वगैरे भाषांत नाहीं व मराठींत आहे, ही वाच केवळ क्षुल्लकच समजतां जात नाहीं. स्थल, जाती, लिंग ह्यांच्याप्रमाणेंच कालानें हि भाषेंत फेरफार

होतो. उदाहरणार्थ, १८२९ तील वर्तमान मराठी, १५२९ तील एकनाथ मराठी, १२१२ तील ज्ञानेश्वरी मराठी व ६५८ तील धनगरी मराठी, पर स्परांहून भिन्नावस्थ आहेत, हें जुनीं वाडें वाचणारा मनुष्य सहज सांगू शकतो. त्यांत पुन्हां हें ध्यानांत ठेविले पाहिजे कीं, शक १२१२ त ज्ञानेश्वराच्या वेळीं, देवगिरी, नागपूर मावळ, कोंकण व कारवार वा ठिकाणीं बोलली जाणारी मराठी भिन्न होती. शक १२१२ त चोखामेळ्याचें मराठी ज्ञानोवाच्या मराठीहून भिन्न होतें, हें हि विसरतां कामा नये. तात्पर्य, स्थल, काल व जाति मराठी भाषा अवष्टिन्न व भिन्नावस्थ झालेली आहे. लिंगभेद विनसल्यामुळें जमेश न धरणें सोयस्कर पडतें इतकेंच. नाहीं तर, तें धरणें जरूर होतें, कारण, मराठी भाषा बोलणाऱ्या कित्येक जातीत ख्रिष्ट पुळिंगी प्रयोग करतात; आणि ह्या जाती प्रायः कानडी मुळखाच्या जवळील मिरज, कोल्हापूर सोलापूर वगैरे प्रांतांत आढळतात. पुळिंगी प्रयोग करणाऱ्या महाराष्ट्रांतील ह्या जाती पूर्वी भाषावंशानें मराठ्या नसाव्या, अस सिद्धान्त विनहरकत वांधावा.

२ कोणत्या हि भाषेचे प्रांतपरत्वे जे भेद होतात त्यांना प्रांतिक पोट भाषा अथवा पोटभाषा म्हणतात. ह्या प्रांतिक पोटभाषा त्या त्या प्रांतांतील ब्राह्मणादि सर्व जाती बोलतात. शुद्धाशुद्ध किंवा अष्टाशुद्ध हीं विशेषणें ह्या प्रांतिक पोटभाषांना लावतां येनाहींत. कारण, नमुनेवजा जी मुख्य भाषा तिच्या इतकीच थोर परंपरा ह्या प्रांतिक भाषांची बहुतेक असते. इतकेंच कीं, ह्या प्रांतिक भाषांना नमुनेवजा मुख्य भाषेचे सर्वराष्ट्रमान्यत्व नसतें. उदाहरणार्थ, ज्ञानेश्वरानें खानदेशी मराठी कांहीं अंश रचलेले आहेत. ते तत्कालीन देवगिरी वैशाली मराठी भाषेहून भिन्न अद्भुत विनोदार्थ रचलेले आहेत. कोणत्या हि पोटभाषेचा विनोदाजेंयें उपयोग झाला, तेंयें त्या पोटभाषेचें गौणत्व प्रस्थापित झालें, हें उघड आहे. परंतु, ह्या गौणत्वावरून खानदेशी मराठी भाषेला अपभ्रंश किंवा अशुद्ध म्हणून चालावयाचें नाहीं. अपभ्रंश हा प्रकार निराळाच आहे; तो नमुनेवजा मुख्य भाषेतल्याप्रमाणें प्रांतिक पोटभाषांत हि सांपडतो. प्रायः जातिपरत्वे भाषेचे जे पोटभेद होतात त्यांना मुख्यभाषेचे अपभ्रंश म्हणतात

कोणत्या-हि समाजांत भाषेचा अपभ्रंश बालांच्या ठायीं सद्दज संभवतो. तद-
नंतर, अशिक्षित स्त्रिया, शूद्र वगैरे लोक अपभ्रष्ट उच्चार व
अपभ्रंश. प्रयोग करतांना फार आढळतात. सर्वांत अत्यंत अपभ्रंश

हिंदूसमाजांत येऊन राहिलेले दैत्य, असुर, शक, पल्हव, यवन, मुसलमान,
पट्टुदी, वगैरे जातिवाह्य लोक ह्यांच्या हातून पराकाष्ठेचा होतो उच्चार, प्रत्यय,
प्रयोग, लिंग, वचन, ह्या सर्वांचा हे म्लेच्छ लोक दुरुपयोग करतात. पारसी,
अपट्टुदी, अरब, इंग्रज, फ्रेंच, मोगल, जपानी, वगैरे म्लेच्छ लोक संस्कृत,
अवुंभराथी मराठी वगैरे भाषांचा उच्चार व प्रयोग किती अशुद्ध व अपभ्रष्ट
करतात, तें पाहिलें ह्मणजे अपभ्रंशोत्पत्तीचें खरें कारण ध्यानांत येऊं लागतें.
ह्या लोकांच्या उच्चार करण्याच्या नाड्या च तिरके उच्चार करण्याला लायक
अशा जन्मसिद्ध असतात. ' अ ' चा ' अँ ', ' ए ' चा ' ऐं ', ' त ' चा ' ट ' वगैरे उच्चार म्लेच्छ लोकांच्या बोलण्यांत फार येतात. असले तोंड
वाकडें वासून झालेले उच्चार शूद्रादि वर्गांच्या अपभ्रंशांत आढळत नाहींत.
जोडाक्षरांची द्वित व्यंजनें व कठोर व्यंजनांची मृदु व्यंजनें करण्याकडे बाल-
शूद्रादींची प्रवृत्ति विशेष असते. बालशूद्रादिकृत अपभ्रंश लोकमान्य नस-
ल्यामुळें भिन्नभाषावाला कारण समजला जाणें सर्वथा अयुक्त होय. हाच
नियम म्लेच्छादिकृत अपभ्रंशाला लागू करणें सशस्त्र आहे. अपभ्रंशोत्पत्ति
कशी होते, हें नीट ध्यानांत न आल्यामुळें, Linguistic survey of
India, Vol VII मध्ये, मराठी भाषेसंबंधानें लिहितांना, ग्रीय-
रसनने अपभ्रंशाची प्रांतिक पोटभाषांशीं भेसळ केलेली आहे. गोव्याच्या
किरिस्तावांची मराठी भाषा किंवा टाण्याच्या किरिस्तांव कोळ्यांची मराठी
भाषा निव्वळ कोकणांतील प्रांतिक मराठी पोटभाषेचे अपभ्रंश होत. ह्या

किरिस्तानी

अपभ्रंश.

अपभ्रष्ट भाषेत पोर्तुगीज मिशनऱ्यांनीं बायबलपुराण लिहिलें
आहे. तेवढ्यानें अपभ्रष्टत्व जाऊन, स्वतंत्र प्रांतिकभाषेच्या
प्राढ पदवीस ती येते, असें वाटत नाहीं. कोकणांतील किरि-

स्तावांच्या अपभ्रंशांत दहा पांच चोपडीं फार तर टापलेलीं आढळतील.
भरतु, महाराष्ट्रांत मानभाव ह्मणून जे लोक आहेत, त्यांनीं
अतिशूद्रांच्या मराठी अपभ्रंशांत पाचचारशे ग्रंथ लिहिलेले आहेत. त्यांचा
ग्रीयरसनला पत्ता सुद्धा नाहीं. केवळ ग्रंथवत्त्वामुळें मानभावी अपभ्रंश ज्याप्र-

माणें पोटभाषेच्या योग्यतेला येत नाही, त्याप्रमाणेंच गोमांतक किंवा साष्टी येथील किरिस्तावांचा धुद्र अपभ्रंशहि पोटभाषेच्या पदवीला पोहोचत नाही. यद्यपि अपभ्रंश स्वतंत्र भाषाभेद उत्पन्न करीत नाही, तत्रापि पोटभाषेंत निरनिराळें प्रकार उत्पन्न करतो, हें उघड आहे. पोटभाषेंतील ह्या उपभेदांत कोणत्याहि कारणानें जर ग्रंथसंपत्ति निर्माण झाली, तर तो उपभेद

**मानभावी
अपभ्रंश.**

स्वतंत्र पोटभाषेच्या मानाला पात्र होण्याची चिन्हें दाखविणें गोव्यांतील किरिस्तावी भाषेचा व देशावरील मानभावी भाषेचा असाच मासला उडालेला आहे. इतर जवरदस्त

णांच्यापुढें त्यांच्या ह्या महत्वाकांक्षेची डाळ शिजली नाही, ही बाब अलाहिदा. पोर्तुगीज भाषेच्या जुलमापुढें किरिस्तावी मराठी अपभ्रंश फिका पडला; आणि नागर मराठीखाली मानभावी अपभ्रंश चिरडून गेला. कालांतरानें हे दोन्ही अपभ्रंश नष्ट होऊन नागर मराठी त्या त्या प्रांतांत व जातींत प्रचलित होईल, हें सांगावयाला नकोच.

**कालकृत
भाषेची
अवस्था-
न्तरे.**

३ जातिपरत्वानें भाषेंत अपभ्रंश उत्पन्न होतो आणि प्रांतपरत्वानें प्रांतिक भाषाभेद झालेले असतात. परंतु कालाचा भाषेवर जो संस्कार किंवा विकार होतो त्यानें अपभ्रंश किंवा भाषाभेद यांतून एकहि कार्य होत नाही. कालपरत्वे भाषेला वृद्धत्व, तारुण्य, बाल्य अशा भिन्न अवस्था येतात; परंतु तिचें स्वत्व कांहीं नाहीसें होत नाही. भाषा तीच; अवस्थान्तरे, मात्र,

निरनिराळीं. शक ९०५ तील चामुंडरायाची मराठी भाषा, शक १०५१ तील सोमेश्वराची मराठी भाषा, शक ११२८ तील चंगदेवाची मराठी भाषा, शक १२१२ तील ज्ञानदेवाची मराठी भाषा, शक १५०० तील एकनाथाची मराठी भाषा किंवा शक १८०० तील विष्णुशास्त्राची भाषा पाहि असतां भाषा मराठीच आहे हें अशिक्षित मनुष्यहि ओळखू शकतो; इतकी, कांहीं रूपें बरीच जुनी आहेत, असें त्यांच्या दृष्ट्युत्पत्तीस येतें. व तीच; वरें तेवढीं निराळीं. पुरुष एकच, बाल्यतारुण्यवार्द्धक्यादि अवस्था मात्र, अनेक. मुख्य नागर भाषेप्रमाणेंच, ही अवस्थान्तरे प्रांतिकभाषा ठायीं दृश्यमान होतात; परंतु, अपभ्रंशाच्या ठायीं होत नाहीत. कारण, पभ्रंश हा अवस्थान्तरांच्या वरचा तात्पुरता मल उर्फ विकार होय. तो भाषे

कोणत्या हि अवस्थंत जातिधर्माप्रमाणं विशिष्टनियमानुसार भासमान होतो. मुख्य किंवा प्रांतिक भाषेच्या विशिष्ट अवस्थेचा कनिष्ठ जातींत अपभ्रंश होतो. त्या अपभ्रंशाची प्रगती शतकेच्या शतके प्रायः चालत नाहीं. चाललीच, तर, कालान्तरानें मूळभाषेहून अत्यंत विलक्षण असें रूप धारण करते. इंग्रजी, लातीन, जर्मन, रशियन, पोलिश वगैरे भाषा मूळ आर्यभाषेचे परंपरित अपभ्रंश होत. ह्या अपभ्रंशाशीं सध्यां आपल्याला कतव्य नाहीं. कालानें भाषेचीं अवस्थान्तरें होतात, हा मुख्य मुद्दा आहे. हीं अवस्थान्तरें व त्यांचें ज्ञान वर्तमान नागर मराठी भाषेच्या व्युत्पत्तीला वैशद्य आणण्यास अत्यंत उपयुक्त आहेत.

४ प्रांतिक पोटभाषा, अपभ्रंश, अवस्थान्तरें, वगैरे शब्द ज्या मुख्य मराठी भाषेच्या अपेक्षेनें योजिले तिला नागर अथवा शिष्ट मराठी अशी संज्ञा आहे. अपभ्रंश किंवा प्रांतिक जी नव्हे ती नागर किंवा शिष्ट मराठी समजावी. नागर अथवा शिष्ट मराठी वर्तमानकालीं पुणें प्रांतांतील ब्राह्मण व उच्च मराठे बोलतात. तीनशें वर्षांपूर्वीं नागर मराठी पैठणचे ब्राह्मण बोलत व लिहीत. आणि सातशें वर्षांपूर्वीं नागर मराठी देवगिरीच्या भोवतालील प्रांतांत ब्राह्मणादि उच्च वर्ण वापरीत. ह्मणजे प्रायः सर्वमान्य ग्रंथकर्ते व पुढारी राज्यकर्ते जी भाषा वापरतात ती भाषा नागर ह्मणजे शिष्ट मराठी भाषा होय. मग, स्वतः ग्रंथकर्ता प्रसंगवशें पुणें प्रांतांत राहो किंवा नागपूर प्रांतांत राहो. येथें एक मोठा चमत्कार लक्षांत घेण्यासारखा आहे. ग्रंथकर्ता गोव्यांतला असो, कोल्हापूरचा असो, पुण्यांतला असो, पैठणचा असो किंवा नागपूरचा असो, त्याची लिहिण्याची भाषा एकसारखी असते. गोव्यांतला ग्रंथकर्ता घरीं गेंगाणें बोलेल परंतु ग्रंथांत एकनाथी, रामदासी किंवा चिपळोणकरीच मराठी लिहील. हीच ग्रंथाची भाषा, नियमानें दरवारची भाषा असते. इंदूरस धनगराचें राज्य आहे व तंजावरास तामिल भाषा आहे; तत्रापि दरबारीं लिहिण्याची व बोलण्याची भाषा ग्रंथकारांची मराठीच असते. ह्मणजे अंतःसंमतीनें ज्ञानेश्वर चिपळोणकरादि प्रासादिक ग्रंथकारांची मराठी भाषा महाराष्ट्रानें नागर ठरविलेली आहे. ह्या नागर अथवा प्रांतिक मराठी भाषेचें ऐतिहासिक व्याकरण देण्याचें प्रस्तुत स्थलीं योजिलें आहे. कोंकणी,

प्रांतिक
भाषांत वा-
ङ्ग्याभाव

कोल्हापुरी, गंगेरी, खानदेशी, वऱ्हाडी वगैरे प्रांतिक पोटभा-
षांचेंहि ऐतिहासिक व्याकरण देतां येतें तर उत्तम होतें. परंतु,
त्या भाषांत ग्रंथरचना ह्यणण्यासारखी अथवा बहुतेक बिलकुल
न झाल्यामुळें व गोमांतकी अपभ्रंशांत जी थोडीशी झाली आहे
ती अलीकडील दोन अडीचशे वर्षांतील असल्यामुळें, त्या पोटभाषांचा पूर्व-
तिहास अज्ञात राहिला आहे. अर्थात् त्यांचें ऐतिहासिक व्याकरण रचण्याचीं
साधनें अस्तित्वांत नाहींत. असतीं तर, नागर मराठीच्या ऐतिहासिक व्या-
करणरचनेला कांहींसे साहाय्य होण्याचा संभव होता. मानभावी अपभ्रंशांत
जुना ग्रंथसंग्रह निदान पांचशें वर्षांचा तरी आहे. परंतु, त्या लोकांच्या हेकट-
पण-मुळें त्यांचे अत्यंत जुने मराठी गद्यपद्य ग्रंथ अद्याप अप्रसिद्ध राहिले आहेत.
तेव्हां त्यांचाहि नागर मराठीच्या ऐतिहासिक व्याकरणाला फारसा उपयोग
होण्याचा संभव नाहीं. मानभावांचे दहा वीस गद्यपद्य ग्रंथ यद्यपि छापलेले
आहेत, तत्रापि ते सर्व अलीकडील तीनशें वर्षांतील आहेत—अर्थात्, मान-
भावी अपभ्रंशाचें पूर्वचरित्र कांहीं काल अज्ञात राहणार, असा रंग दिसतो.

५ नागर ऊर्फ प्रांतिक ऊर्फ संस्कृत मराठी प्रांतिक ऊर्फ लौकिक

शिष्ट व
अशिष्ट
मराठी

ऊर्फ प्राकृत मराठीहून भिन्न असते. तर्खंडकर, गोडबोले व
जोशी यांनी जीं व्याकरणें रचिलीं आहेत ती नागर ऊर्फ
संस्कृत ऊर्फ शिष्ट मराठीचीं आहेत; प्रांतिक, लौकिक, प्राकृत,
किंवा अपभ्रष्ट मराठीचीं नाहींत. तसेंच हीं तिन्ही व्याकरणें
वर्तमान शिष्ट मराठीचीं आहेत; दोनशे, तीनशे, पांचशे, सातशे किंवा हजार
वर्षांपलीकडील शिष्ट मराठीचीं नाहींत. विद्यमानकालीं शिष्ट मराठीचें रूप काय
आहे, तें तर्खंडकरादि वैयाकरणांच्या ग्रंथांवरून कळतें; शिष्ट मराठीच्या
विद्यमान रूपाची आदिपामनू आतांपर्यंतची परंपरा कळत नाहीं. ती कळण्याचा
राजमार्ग झटला ह्यणजे शिष्ट मराठीचें ऐतिहासिक व्याकरण होय.

६ नागर अथवा प्रांतिक अथवा संस्कृत अथवा शिष्ट मराठी मुद्दाम

शिष्ट मरा-
ठी कृत्रिम
नाहीं, स-
हज आहे.

कोणी बनविली, अशांतला प्रकार नाहीं, हें सर्वांना माहीत-
च आहे. ती आपोआप बनत आली आहे व शिष्ट ग्रंथां-
रांच्या ग्रंथांत व उच्च ब्राह्मणादि जातींच्या मुखांत सांप्रतः
तिचें वास्तव्य आहे. प्रांतिक, प्राकृत किंवा अपभ्रष्ट मराठी
अशिक्षित, गांवढळ, व विद्याहीन लोक बोलत असतात, हें

आपण प्रहातों आणि शिष्टांचें प्रांथिक बोलणें त्यांना सहज अथवा विशेष श्रम न पडतां कळतें, ही हि रोजच्या अनुभवाची गोष्ट आहे. प्रांथिक मराठींत कोणत्याहि सकर्मक धातूचीं कर्मांत कर्मांत सुमारे १५०० रूपें होतात व तीं ग्रंथांत शुद्ध ह्मणून योजण्यास कोणतीच हरकत नाही. परंतु, ह्या १५०० रूपांपैकीं फारच थोडीं रूपें प्राकृत लोक योजतात. तेवढ्यावरून हीं १५०० रूपें व्याकरणकारांनीं कृत्रिम तऱ्हेनें बनविलीं, असें ह्मणणें वेढ-गळपणाचें होईल. हीं सर्व १५०० रूपें भाषेत शिष्टमान्य आहेत. व ग्रंथांत आढळण्याचा संभव असतो. हीं कशीं बनतात, त्याचे विशिष्ट नियम व्याकरणकार शोधून काढून बसवितात. त्यामुळे, शंकाखोर व अशास्त्रज्ञ तिऱ्हाइतांना तीं कृत्रिम असावीं, असें अज्ञलीलेनें ह्मणावेंसें वाटतें. वैयाकरणांच्या स्तुत्य व दीर्घ उद्योगाचें अवडंबर पाहून, हे शंकाखोर लोक गांगरून जातात व अवडंबराचें ठायीं कृत्रिमत्वाचा आरोप करण्याचें धाड्य करतात. हा प्रकार इतर शास्त्रांसंबंधानें असाच आढळण्यांत येतो. वनस्पतिशास्त्रांत तांदुळाच्या २००० जाति सांगितलेल्या पाहिल्या, ह्मणजे अतज्ञ इसम श्र्व्यानें मगंमरून जाऊन, त्या भयंकर आंकड्यावर विश्वास ठेवीत नाहीं.

श्री गांवढळ अतज्ञता कित्येक यूरोपियन विद्वानांच्या ठायीं आढळण्यांत आली आहे. यूरोपियन लोक वनस्पतिशास्त्र जितक्या बारकाईनें रचतात, तितक्याच बारकाईनें हिंदू लोकांनीं व्याकरणशास्त्राची रचना केलेली आहे. त्यामुळे पृथक्करणान्तीं त्यांना जे अक्षरान्तर सूक्ष्म भेद सहज दिसतात ते यूरोपियनांच्या अश्रद्धेचे विषय होतात. बाब अज्ञानोज्झित हेकाडपणाची असल्यामुळे, लक्ष्य देण्यासारखी नसून, नितांत तिरस्करणीय आहे.

७ शिष्ट मराठीचेंच तेवढें ऐतिहासिक व्याकरण शक्य आहे. कारण

शिष्ट मरा-
ठीची ऐ-
सासिक
प-

असें कीं, गेल्या सातशें वर्षांत प्रौढ व ललित ग्रंथरचना जेवढी ह्मणून झाली तेवढी सर्व शिष्ट मराठींत झाली आहे. गोमांतकी अवभ्रंशांत काहीं किरिस्तावी धर्मपुस्तके व पांच चार व्याकरणे झाली आहेत. परंतु त्यांत एक विचित्रपणा आहे. व्याकरणे ह्मणून जेवढीं झालीं आहेत तेवढीं सारीं पोर्तुगीज इंग्लिश भाषेत आहेत आणि इतर पुस्तकांची लिपि त्यामुळे संभावितपणा येण्याला जी बद्धमूलता लागते

ती या अपभ्रंशाला मिळाली नाही. शिवाय, ह्या अपभ्रंशांत झालेली बुद्ध ग्रंथरचना अगदी अलीकडली आहे. तशांत, हा अपभ्रंश बोलणारे बायें दहा हजारांहून जास्त नसून, त्यांनी आक्रमिलेला प्रांत अर्ध्या पाऊण तालुक्याएवढाहि नाही. क्याथोलिक मिशनऱ्यांच्या उपद्रवापानें हा अपभ्रंश लिपिनिविष्ट आणि तोहि रोमनलिपिनिविष्ट झाला इतकेंच. ह्याहून झाला जास्त किंमत नाही. कोंकणी पोटभाषेचा हा किरिस्तावी अपभ्रंश आहे. ह्यांतील धर्मपुस्तकें कोंकणांतील हिंदूंच्या वाचण्यांत येत नाहींत, हें सांगावयाला नकोच. त्यामुळें कोंकणांतील पोटभाषेवर किंवा शिष्ट मराठीवर ह्या अपभ्रंशाचा कांहींच परिणाम झालेला नाही. पोर्तुगीज राज्य हिंदुस्थानांतून नष्ट झालें तर ह्या अपभ्रंशाचा मागमूसहि रहाणार नाही.

८ शिष्ट मराठींत सातआठशें वर्षांपासूनची ग्रंथरचना असून, ती महाराष्ट्रांतील सर्व प्रांतांतल्या व बडोदे, इंदूर, ग्वालेर, बुंदेलखंड तंजावर, गुन्ती, बल्लारी वगैरे सर्व संस्थानांतल्या मराठी लोकांना आदरणीय झालेली आहे. ज्या भाषेंत मुकुंदराज, ज्ञानेश्वर सूर्यज्योतिषी, एकनाथ, रामदास, तुकाराम, मोरोपंत, चिपळोणकर वगैरे प्रासादिक ग्रंथकारांनी ग्रंथरचना केली ती शिष्ट १

षा महाराष्ट्रांतील सर्व प्रांतांतील व जातींतील लोकांस सारखीच मान्य व्हावी, ह्यांत कांहीं आश्चर्य नाही. प्रांतिक बोलणें प्रांतापुरतें व जातिक बोलणें जातीपुरतें; परंतु प्रांथिक बोलणें व जातिक बोलणें सर्व महाराष्ट्राकरतां आहे. प्रांतिक पोटभाषांच्या लहानसहान लकवा आणि जातिक भाषणांतले बालिश अपभ्रंश प्रांथिक राजभाषेच्या शिष्ट दरबारांत लुप्त होतात व एकच एक निर्भेळ अशी मराठ्यांची मायभाषा देशांतील सर्व लोकांच्या अभिमानाचा, कौतुकाचा व सहज प्रेमाचा विषय होते. मराठ्यांना स्वभाषेचा इतका अभिमान जो वाटतो तो उगाच फुकाचा नाही. मराठी भाषेंतल्या शब्दप्राप्तीची बरोबरी पृथ्वीवरील इतर कोणत्याहि भाषेला करतां यावयाची नाही. तसेंच, कोणताहि गूढ किंवा सूक्ष्म अर्थ नाना तऱ्हांनी यथेष्ट व्यक्त करण्याची तिची शक्ति अप्रतिम आहे. शिवाय अनेक थोर प्रासादिक ग्रंथांनी तिला आपल्या उदात्त, गंभीर, ललित व रम्य विचारांचें अस्तव्यस्तमुळें, तिच्यावरील महाराष्ट्रियांची भक्ति शुद्धदुवत् स्थिततां आहे.

९ शिष्ट मराठीच्या सद्यःकालीन रूपाचें वैशद्य करणारी जी नियमस-
 रणी तिला शिष्ट मराठीचें साधें व्याकरण हणतात. साध्या
 वर्तमान शिष्ट म-
 राठीचें
 साधें
 व्याकरण
 व्याकरणाचा शुद्ध मासला झटला हणजे दादोबा पांडुरंग त-
 खंडकर यांचें मराठी व्याकरण होय. गोडबोल्यांच्या मराठी
 व्याकरणांत क्वचित् मराठी भाषेचा महाराष्ट्री भाषेशीं व संस्कृत
 भाषेशीं संबंध दाखविण्याचा स्थूल प्रयत्न केला आहे. राम-
 चंद्र भिकाजी जोशी यांचें Higher Marathi Grammar
 इंग्रजींत असल्यामुळें व केवळ शालोपयोगी असल्यामुळें, त्याचा नामनिर्देश
 न केला तरी चालण्यासारखा आहे. जोशी यांच्या व्याकरणांत व्युत्पत्तीचा
 पूर्ण अभाव आहे. अनेक संस्कृतोत्पन्न व महाराष्ट्र्युत्पन्न शब्दांना ते देख सम-
 जतात, इतकेंच नव्हे तर, कित्येक अरबी व फारसी शब्दांना हि ते ह्याच
 मालिकेंत गोंवतात. इतकें अज्ञान ज्या ग्रथांत आढळतें त्या ग्रंथाला विशेष
 मान देण्याचें कारण दिसत नाहीं. जोश्यांच्या व्याकरणांत मराठी भाषेच्या
 इतिहासासंबंधानें प्रास्ताविक जो छोटा भाग आहे त्याचें सर्व श्रेय भांडारकरांच्या
 बुइल्सन लेखचरांना आहे. भांडारकरांच्या बुइल्सन लेखचरांत जीं व्यंगें आ-
 हेत तीं जोश्यांच्या प्रास्ताविक भागांत उतरलीं आहेत, हें सांगावयाला नकोच.

१० प्रांतिक पोटभाषा व अपभ्रंश (वर्तमान व भूत) ह्यांच्या व्या-
 पोट भा-
 षांचें अ-
 थवा बो-
 लीचें तौ-
 लनिक
 व्याकरण
 करणाऱ्यां शिष्ट मराठी भाषेच्या व्याकरणाची तुजना केली अ-
 सतां, मराठ्यांच्या पोटभाषांचें अथवा बोलींचें तौलनिक
 व्याकरण सिद्ध होतें. असलें औपभाषिक तौलनिक व्याक-
 रण मराठी भाषेंत नाहीं. इंग्रजींत १९०५ पर्यंत नव्हतें.
 Linguistic survey of India, नामक ग्रंथमालेच्या
 सातव्या खंडांत असलें व्याकरण रचण्याचीं साधनें मिस्टर
 ग्रीयरसन यांनीं नॉर्वेतील डाक्टर स्टेन् कोनौ यांच्या हस्ते
 १९०५ त Specimens of the Marathi Language ह्या नांवाखालीं
 सरकारच्या खर्चानें प्रसिद्ध केलीं आहेत. प्रांतिक पोटभाषा, जातिक पोटभाषा
 ऊर्फ बोली व अपभ्रंश, असें तीन भाग करून, मासले दिले असते, हणजे
 ह्या ग्रंथाला जास्त वैशद्य आलें असतें. हें च ह्या ग्रंथाचें मुख्य व्यंग आहे. दर
 वारा कोसांवर व प्रत्येक जातींत बोली बदलते. ह्या बोलींत कित्येक रूपे व

शब्द इतके पुरातन व चमत्कारिक असण्याचा संभव असतो की त्यांच्या साहाय्याने मुख्य मराठी भाषेतील कित्येक रूपांची व शब्दांची परंपरा ओळखता येते.

११ बंगाली, हिंदी, आवधी, पंजाबी, सिंधी, गुजराथी वगैरे आधुनिक सगोत्र प्राकृतोद्भव शिष्ट भाषांच्या व्याकरणांशी शिष्ट मराठी भाषेच्या व्याकरणाची तुलना केली असतां, आधुनिक प्राकृतोद्भव समकालीन भाषांचें तौलनिक व्याकरण सिद्ध होतें. प्रत्येक भाषेतील गूढें इतर सगोत्र भाषांच्या तुलनेनें सहज उकलतात, हा तौलनिक व्याकरणापासून पहिला फायदा आहे. शिवाय, आर्यभाषा कोणत्या, अनार्य कोणत्या, हें वर्गीकरण तौलनिक व्याकरणानें सुलभ होतें. आधुनिक प्राकृतोद्भव भाषांचें तौलनिक व्याकरण मराठी भाषेंत अद्याप रचलें गेलें नाहीं. इंग्रजींत असलीं दोन व्याकरणे आहेत:—(१) Beams' Comparative Grammar of the Modern Aryan Languages of India (1872-1879); आणि (२) Hoernle's Grammar of the Gaudian Languages (1880). दोन्ही व्याकरणे व्युत्पत्तीच्या कामांत ऐतिहासिक बाजूनें लंगडी आहेत. कां की, इ. स. १८८० पर्यंत आधुनिक प्राकृतोद्भव [मराठी वगैरे] भाषांतील जुना ग्रंथसंग्रह व्हावा तितका प्रसिद्ध झाला नव्हता व जो झाला होता तो यथास्थित समजण्याची ऐपत दोषांची हि नव्हती. ह्याप्रमाणेंच, १८८० पुढील पंचवीस वर्षांत प्राकृत भाषांची [महाराष्ट्री, मागधी वगैरे] जी वारीक छान व पृथक्कृति जर्मनींत झाली ती बीम्स व होर्नल यांच्या कार्ली झाली नसल्यामुळें आधुनिक प्राकृतोद्भव भाषांचें वर्गीकरण करण्यांत दोषे हि तोंडघर्शी पडलेले आहेत. शिवाय, बीम्सला संकृत व प्राकृत भाषांचें व्याकरण यथातथाच माहीत होतें, असें दिसतें. होर्नलचा बहुतेक सगळा भर पुरभई भाषेवर असून, इतर भाषांकडे तो ओझरतें लक्ष देतों. बीम्सच्या ग्रंथांत दूसरा एक अपूर्व व अक्षम्य अथवा गांवढळ दोष आहे. तो हा की, ठाई ठाई रागद्वेषादि विकारांचें अप्रस्तुत प्रदर्शन हा ग्राम्य ग्रंथकार करतो. मराठे लोक व मराठी भाषा यांच्यावर त्याचा कटाक्ष विशेष आहे. एक मासलेवाईक उतारा ह्या ग्रंथ-

काराचें मनोगत कळण्यास पुरें आहे. आपल्या व्याकरणाच्या पहिल्या खंडाच्या ११० व्या पृष्ठावर हा ग्रंथकार यें प्रमाणें लिहितो:—

“Even after seventy years of British rule, the country (Orissa) still bears the traces of the rapacity and oppression of the Marathas. the Oriyas had to learn the language of their conquerors and a few Marathi words have passed into their language. The Bhosla's tanks, roads, bridges, and dykes are still in existence and are constructed on a princely scale, as they were not hampered with any scruples about paying their workpeople. This *little* point should be remembered by those who reproach the English for the inferiority of their public works. Whatever we (English) do is *paid for*.”

भोसल्यांच्या वेळीं आंवड्यातले लोक पोटे बांधून कामें करित होते !!! ह्या दोन ग्रंथकारांखेरीज, भागवती बोलीवर वेवर, सिंधी भाषेवर ट्रंप, वगैरेनीं कांहीं निबंध लिहिलेले आहेत.

१२ शिष्ट मराठी भाषेतील स्वर, वर्ण, शब्द, प्रत्यय, व अव्ययें ह्यांचीं

शिष्ट मराठी
भाषेचें ऐति-
हासिक व्या-
करण.

आदिपासून ह्याणजे मराठी भाषेच्या उत्पत्तीपासून आतांपर्यंत रूपें कसकशीं होत आहेत, ह्याचें उद्घाटन शिष्ट मराठीच्या ऐतिहासिक व्याकरणांत केलेलें असतें. ह्या व्याकरणालाच मराठी भाषेची व्युत्पत्ति, शब्दसिद्धि, निरुक्ति वगैरे नामान्तरें आहेत. कोणत्या हि भाषेचें ऐतिहासिक व्याकरण तयार व्हावयाला, त्या भाषेतील आदिपासून आतांपर्यंत बराच, निदान कामापुरता तरी, ग्रंथसमूह किंवा लेखसोपान सांपडला पाहिजे. त्याच्या अभावीं व्युत्पत्तीचें काम केवळ कल्पनेवर चालेल. तसेंच, नुसती लेखपरंपरा सांपडून ह्याणव्यासारखें कार्य होत नाहीं; तर, ती लेखपरंपरा त्या त्या कालची असल पाहिजे. अशी लेखपरंपरा व ग्रंथसंपत्ति ज्या भाषेची उपलब्ध होते,

तिची निश्चिती, किंवा व्युत्पत्ति किंवा ऐतिहासिक व्याकृति सुकर व निश्चित होते. वीम्स व होर्नल ह्यांनी आधुनिक प्राकृतिकोद्भव भाषांचें तौलनिक व्याकरण लिहितांना ऐतिहासिक व्याकरणाच्या प्रांतांत हि अतिक्रम करण्याचा आव घातलेला आहे. हाणजे ह्या दोघां वैय्याकरणांनीं रचलेलीं व्याकरणें तौलनिक व ऐतिहासिक अशीं मिश्र आहेत. तौलनिक व्याकरण व ऐतिहासिक व्याकरण असा दिक्कालावच्छिन्न द्विधा भेद त्यांच्या ध्यानांत आलेला नाही, हें खरें आहे. परंतु त्यांच्या हातून असा मिश्र प्रकार झालेला आहे, हें सहज ओळखतां येतें. वीम्स व होर्नल ह्यांचा मुख्य गुरु जो वॉप्प त्यानें हि आपल्या व्याकरणाला तौलनिक ह्मटलें आहे. कालदृष्ट्या अर्वाचीन व प्राचीन आणि दिग्दृष्ट्या राष्ट्रीय, प्रांतिक व अपभ्रष्ट अशा सर्व भाषांचा परामर्श घेण्याचा वॉप्पचा मनोदय होता. हाणजे समकालीन व भिन्नकालीन भाषांची तुलना करण्याचा त्याचा विचार होता. मराठी, बंगाली, हिंदी, आंवडी, पंजाबी, सिंधी, गुजराथी वगैरे भाषांतील पुराण ग्रंथसंग्रह त्यांच्याकालीं अनुपलब्ध असल्यामुळे, वीम्स व होर्नल ह्यांचा व्युत्पत्तीचा भाग वराच अपुरा व काल्यनिक राहिलेला आहे. आधुनिक प्राकृतिकोद्भव भाषांचें मूळ ज्या प्राकृत भाषा त्यांची भेट मंडुक-पुतीनें घेण्याशिवाय दुसरें गत्यंतर ह्या दोन्ही वैय्याकरणांना राहिलें नाही. मराठीतील एखाद्या आधुनिक शब्दाची किंवा प्रत्ययाची पूर्वपरंपरा पहाण्याची इच्छा झाल्यास, त्यांना एकदम प्राकृताच्या घाटावर जावें लागतें, मध्यें विसृष्टा घेण्यास जागा सापडत नाही. हाणजे महाराष्ट्री, दौरसेनी, मागधी, अपभ्रंश वगैरे प्राकृत भाषा व मराठी, बंगाली वगैरे प्राकृतिकोद्भव भाषा ह्यांची वस्तुतः ते तुलना करित असतात. प्राकृत भाषांचा अंत व सध्यांचा विल ह्या दोहोमधील हजारवारासो वषांत रूपांची कशी घडामोड झाली, हें त्यांना माहीत नसतें. त्यामुळे, संशयस्थानीं अशी व्युत्पत्ति असेल किंवा असावी, असें संशयित समाधान करून घेण्याशिवाय त्यांना दुसरी तोड राहिली नाही.

कृष्णशास्त्री गोडबोले यांनी रचलेल्या मराठीच्या साध्या व्याकरणांत मराठीच्या रूपांचा महाराष्ट्रीच्या रूपांशीं संबंध दाखविण्याचा अल्पस्वल्प प्रयत्न केलेला आहे; आणि वीम्स व होर्नल यांच्या प्रमाणेंच त्यांचा प्रयत्न प्राचीन ग्रंथसंग्रहाच्या अभावीं लंगडा पडलेला आहे. डाक्टर भांडारकर यांनीं वृद्धत्सन लेखकरांत आधुनिक प्राकृतिकोद्भव भाषा व प्राकृत भाषा ह्यांच्या संबंधासंबंधानें कांहीं विवेचन केले आहे. त्यांत वीम्स वगैरे सारख्यांच्या कांहीं

हृदया नानी खोडल्या आहेत. ज्ञानदर्यांनी स्वतंत्र ऐतिहासिक व्याकरण रचण्याचा आव घातलेला नसल्यामुळे, त्यांची विद्वत्ताप्रचुर व्याख्याने प्रस्तुत स्थली टीकेचा विषय होऊ शकत नाहीत. तात्पर्य, सांगण्याचा मुद्दा एवढाच की, मराठी भाषेचे ऐतिहासिक व्याकरण अद्याप रचावयाचे आहे. कोणत्या हि युरोपियन भाषेत किंवा आधुनिक प्राकृतिकोद्भव भाषेत ते अद्याप रचलेले नाही. त्या रचनेच्या साहाय्यार्थे ज्ञानेश्वरीची प्रस्तुत आदृत्ति काढिली आहे.

१३ गेल्या पंचवीस वर्षांत आणि विशेषतः गेल्या दहा वर्षांत मराठी

**मराठी
भाषेचा
इतिहास**

भाषेतील पुरातन वाङ्मयाचा व सारस्वताचा संग्रह व प्रकाश इतका विलक्षण झाला, कीं शिष्ट मराठी भाषेचा इतिहास व शिष्ट मराठी सारस्वताचा इतिहास रचतां येणे सध्या बरेच सुगम झाले आहे. त्यांत विशेष महत्त्वाची बाब ही कीं शक ४०० पासून शक १८०० पर्यंतचे मराठी ताम्रपट व शिलालेख सांपडून प्रसिद्ध झालेले आहेत. ताम्रपट व शिलालेख प्रमाणेच जुन्या अस्सल हस्तलिखित पोथ्या हि शेंकडेंत सांपडल्या आहेत. त्यामुळे मराठी ग्रंथकारांची कालनिर्णयिता व पूर्वापरता ठरवण्याचे काम बरेच सुकर झाले असून, मराठी सारस्वताचे स्वरूप यथास्थित कळण्यास हि उत्तम मार्ग झाला आहे. मराठी भाषेचे व प्रयोगांचे गद्यपद्य रूप आदिपासून आतां पर्यंत कसकसे होतें त्याचा परंपरित प्रपंच मराठी भाषेच्या इतिहासांत केलेला असतो.

मराठी सारस्वताचा इतिहास.

आणि मराठी भाषेतील आद्य ग्रंथापासून आधुनिक ग्रंथापर्यंतच्या ग्रंथसंग्रहाच्या आंतर व बाह्य स्वरूपाचे कालानुक्रमिक व विषयानुक्रमिक जें विवेचन व वर्णन त्याला मराठी सारस्वताचा इतिहास म्हणतात. मराठी भाषेच्या इतिहासाला

मराठी वाङ्मयाचा इतिहास.

मराठी वाङ्मयाचा इतिहास हाटले असतां हि अंशतः शोभण्यासारखे आहे. कारण, भाषेत जें जें हणून बोलले जातें किंवा लिहिले जातें तें तें सर्व वाङ्मय होय. वाङ्मयांत सारस्वताचा समावेश होतो. बरी वाईट ही छान वाङ्मयांत

सारस्वत.

नसते. ती निवड सारस्वत करते. उदार, ललित, अभिजात व नागर गद्यपद्य बंध जो निर्माण होतो त्याला सारस्वत अशी अनन्यसामान्य संज्ञा आहे. गणित, ज्योतिष, रसायण, वानस्पत्य,

शास्त्रीय व कला-
त्मक ग्रंथ समूह.

साहित्य

भिधान आहे.

पद्धतिग्रंथ

प्रागिजात, तर्क, न्याय, वेदान्त, कृषि, शिल्प वगैरे शास्त्रांवर व कलांवर जो ग्रंथसमूह निर्माण होतो, त्याला सारस्वत ही संज्ञा नाही. त्याला त्या त्या विषया-वरील शास्त्रीय किंवा कलात्मक ग्रंथसमूह म्हणून साधेच नांव देतात. गद्य-पद्य सारस्वतग्रंथ ज्यांच्या साहाय्याने तयार होतात त्या छंद, अलंकार, व्याकरण, कोश वगैरे ग्रंथांना साहित्य असे नामा-भिधान आहे. साहित्य हे सारस्वत नव्हे; सारस्वताचे ते उपकरण आहे. द्वास्त्रग्रंथांशी तर्कादिपद्धतिग्रंथांचा जो संबंध तोच सारस्वताशी साहित्याचा आहे. साहित्य सारस्वताची पद्धति होय.

गोडबोले (१८६६), बॉम्स (१८७२), होर्नल (१८८०), ग्रियर्सन (१९०५) वगैरे मराठी भाषेचे मराठी व इंग्रजी वैयाकरण गेल्या दहा ब-र्षांत झालेल्या शोधामुळे इतके मागे पडले आहेत की मराठी भाषेच्या उत्प-त्तीसंबंधाने, ग्रंथसंग्रहासंबंधाने वृद्धिसंबंधाने व स्वभावासंबंधाने त्यांची मते तज्ञांना फारच मागसलेली वाटण्याची निश्चित आहे. ह्याचा तपशील पुढे त्या त्या स्थळी दिला आहे.

मराठी सारस्वताच्या शोधामुळे, मराठी सारस्वताचा इतिहास तर सुकर झालाच; परंतु त्याबरोबर मराठी भाषेचा इतिहास व मराठी भाषेचे ऐतिहासिक व्याकरण ही सहजासहजी सुकर झाली. तिन्ही प्रांत अन्वोन्यव्याप्त असल्यामुळे, एकाच्या शोधाबरोबर इतरांचाहि इतिहास व स्वरूप कळणे अपरिहार्य होते.

मराठी सारस्वताचा जसा जरीने शोध झाला तसा मराठी वाङ्म-याचा अद्याप मुळीच झाला नाही. प्रांतिक, जातिक, अपभ्रष्ट अशा लो-ककथा, दंतकथा, गाणी, पत्राडे, लावण्या, झणो, वगैरे वाङ्मय असलेल्या रूपांने शोधून काढावयाचे अद्याप राहिलेच आहे.

१४ मराठी भाषेचे सारस्वत व विशेषतः ताम्रपटीय व विलाखेखीय शिष्ट मराठी वाङ्मय अलीकडे जसजसे सांपडू लागले तसतशी मरा-ठ्या ऐतिहा-सिक व्याकर-णाच्या रचने-ची सामग्री

भाष्य होऊं लागली. आजपर्यंत ऐतिहासिक व्याकरणाचा उपयुक्त असे जेवढे जुने लेख उपलब्ध व प्रकाशित झाले आहेत त्या सर्वांची याद खाली देतोः—

- (१) शक ४१०. तील मंगळवेढें येथील मराठी ताम्रपट [प्रभास, घुलें.]
- (२) शक ६५८ तील शिकुर्डें येथील मराठी ताम्रपट [विश्ववृत्त, कोल्हापुर]
- (३) शक ६०२ पासून शक १२०० पर्यंतच्या महाराष्ट्रांतील व कों-
कणांतील ताम्रपट व शिलालेख यांतील मराठी शब्द [इंडियन,
आंटिकरी, एपिग्राफिया इंडिका, एपिग्राफिया कर्नाटिका, वगैरे]
- (४) शक ९०५ तील चामुंडरायाचा मराठी शिलालेख [विश्ववृत्त.]
- (५) शक १०५१ तील अभिलषितार्थचिंतामणींतील मराठी पदें
[अभिलषितार्थचिंतामणीच्या दोन पोथ्या डेक्कन कालेजांतील
संग्रहांत आहेत; व एक पोथी तंजावरातील सरस्वतीमहालांत
आहे. विश्ववृत्त.]
- (६) शक १०३७-१०४० तील लेख [Epi. Md. Vol I. pp
343 and f.]
- (७) शक ११०९ तील परळ येथील मराठी शिलालेख [इंग्रज सरकारी
बंगल्यांतील]
- (८) शक ११२८ तील पाटण येथील मराठी शिलालेख [प्रभास]
[८अ] शक ११३०-११५० चंदकृत पृथिराजरासउ [ब्रज, नागरी-
प्रचारणी सभेची छापील प्रत अविश्वसनीय]
- (९) शक ११९५-९८ तील पंढरपूर येथील चान्यायशीचा मराठी
शिलालेख [ग्रंथमाला]
- ११८२ तील कालिदासाच्या रघुवंशावरील हेमाद्रीच्या टी-
(१०) शके ११८२ तील शब्द [नंदगीकरांचा रघुवंश]
केत आलेलें मरोक्षरी [मजजवळील प्रस्तुत पोथी मुकुंद-
- (११) शक १२१२ तील श.
राजाची आहे.] शांतील मराठी उतारा [मरा-
- (१२) शक १२७८ तील परशुराम, प्रस्तावना].
त्यांच्या इतिहासाचीं साधनें

- (१३) शक १३१९ तील वेंगुड्यांजवळील मठ येथील मराठी शिलालेख (म. इ. सा. खं. ८. प्र.)
- (१४) शक १२३३ तील पंढरपूर येथील चोखामेळ्याचा शिलालेख (ग्रंथमाला)
- (१५) शक १२८९ तील नागावें येथील मराठी शिलालेख (ग्रंथमाला)
- (१६) शक [सुमारें] १३०० मधील पंचतंत्र [महाराष्ट्रकवि]
- (१७) शक १३०० मधील मराठी कोकशास्त्र [प्रभात]
- (१७ अ) शक १३१६ तील सुभावबोधमौक्तिक [गुजराथी] ध्रुवसंपादित.
- (१८) शक १४११ तील मिरजेच्या किल्याचा मराठी मोडी ताम्रपट [ग्रंथमाला]
- (१९) शक १४५३ व शक १४६३ तील वाइ येथील दोन मराठी मोडी ताम्रपट [विश्ववृत्त]
- (२०) शक १४९४ तील मंगळवेढें येथील मराठी शिलालेख (ग्रंथमाला)
- (२१) शक १५२५ तील [सुमारें] दासोपंतार्चा पदें व गीता (महाराष्ट्रसरस्वत व महाराष्ट्रकवि)
- (२२) शक १४९७ तील खानदेशांतील सोनगीरच्या किल्यावरील शिलालेख [ग्रंथमाला]
- (२३) मराठीतील अनुनासिकाची पूर्वपरंपरा [निबंध]
- (२४) मराठीतील ' ल ' प्रत्यय [निबंध]
- (२५) मराठी छंद [निबंध, सरस्वती]
- (२६) शक १३९६ तील [उपलब्ध व प्रकाशित झाले]
- [सरस्वतीमंथर]
- (२७) मराठी शब्दाची

- (२८) स्टेफेन्स कृत इ. स. १६४९ तील कोंकणीअपभ्रंशांत उच्चार-
लेलें व रोमनलिपींत लिहिलेलें [छापलेलें नव्हें] खिस्त पुराण
[मंगलोर येथें इ. स. १९०७ त रोमन लिपींत छापलेलें]
- (२९) इ. स. १५७२ तील मराठी-फारशी (म. इ. सा. खं १ ले-
खांक १) लेख.
- (३०) शक १४६३ व १४७९ तील लिंब येथील दोन मराठी पत्रें
(म. इ. सा. खं. ८, प्रस्तावना)

गेत्या पांच वर्षांत इतके जुने मराठी लेख उदयास आलेले आहेत.
त्यांत अपभ्रष्ट मराठी, कोंकणी मराठी, खानदेशी मराठी व शिष्ट म-
राठी, ह्या चारींचें लहान मोठे मासले आलेले आहेत. शिवाय, दुर्गादेवीच्या
दुष्काळाच्या फर्मानांत मुसलमानी मराठी अपभ्रंश अथवा मराठी-पि-
शाच भाषा इचा मासला पहावयास सांपडतो. स्टेफेन्सच्या खिस्तपुराणांत
कोंकणी—पिशाची चा मासला आढळतो. स्टेफेन्सनें दासोपंत व जना-
र्दन यांचे प्रौढ शब्द गोव्याच्या कोंकणी-पिशाचींत गोविले आहेत. इ.
स. १६४९ तील स्टेफेन्स इ. स. १५०० तील किंवा त्याहून हि जुनी भा-
षा लिहितो. असें होणें साहजिक होतें. ज्ञानेश्वर, मुकुंदराज, नामदेव,
दासोपंत, गंगाधरसरस्वती, वगैरे शिष्ट ग्रंथकारांचे ग्रंथ वांचून, स्टेफेन्स
शिष्ट मराठी शिकला व तिच्यांत कोंकणी-पिशाचीची भेसळ करून त्यानें
आपलें पुराण निर्मिलें. अर्थात्, इ. स. १५०० तील ग्रंथिक शिष्ट मराठी
भाषा त्याच्या आंगवळणी पडली. परभाषेसंबंधानें असा चमत्कार होणें अप-

आहे. ह्या फरक, स. १८८० तील कुंटे इ. स. १७४० तील पोपची

आहे. ह्या फरक, स. १८८० तील कुंटे इ. स. १७४० तील पोपची
काव्यांत वापरतो; आणि १७२० तील आडि-
(१०) शक १८८० त ज्ञानप्रकाशांत लिहितो.

केत आलेले मराठी ग्रंथावरून शिकावी लागते; आणि ज्या
(११) शक १२१२ तील ज्ञान-कालची शिष्ट भाषा तो सहज नक-
राजाची आहे.]

(१२) शक १२७८ तील परशुरामोपदे
त्यांच्या इतिहासाचीं साधनें, खंड

१५ वरील सर्व लेखांत अत्यंत जुना मराठी लेख शक ४१० ताल

मराठी
भाषेचा
मूलारंभः
शक सु-
मारें ४००

आहे. अर्थात्, शक ४१० त मराठी भाषा वचून कांहीं काल गेला होता. आजपर्यंत इ. स. १३००, इ. स. १०००, इ. स. ९००, इ. स. ७०० वगैरे सन मराठीच्या मूलारंभाचे यूरोपियन लोक देत असत. परंतु, ते मराठीला इतकी अलीकडे ओढण्यांत मोठी भयंकर चूक करीत हैं आतां सिद्ध आहे. हिंदुस्थानांतील प्रत्येक वस्तु वस्तुतः असेल त्याहून बरीच अ-

र्वाचीन भासाविण्याची खोड बहुतेक सर्व यूरोपियनांना सारखी च आहे. खोडीचें कारण उघड आहे. हिंदुस्थानांतील अनेक वस्तूंचा इतिहास, परं-

यूरोपियनांचें
मात्सर्य व
करंटलक्षण.

परा, पुरातन निर्देश यांची माहिती ह्या लोकांना प्रायः तुटपुंजी व बरबर असते. शिवाय, यूरोपीयन वस्तूपेशां एखादी प्राचीन भारतीय वस्तू अर्वाचीन आहे, असें ठरवितां आलें तर स्वपितरांना पाहिल्याचा आनंद ह्या लो-

कांना होतो. निदान, भारतीय वस्तू यूरोपियन वस्तूहून फार प्राचीन नाही, इतकें तरी ह्मटल्या शिवाय त्यांना समाधान वाटत नाही. ह्या मात्सर्याला काय ह्मणावें ? यूरोपांतील तीन चारशें वर्षांतल्या उपटसुंभ राष्ट्रांना भारत-वर्षाच्या थोर, पौढ व संभावित पुरातनत्वाचा हेवा वाटतो, हैं त्यांच्या लघु मनाचें द्योतक आहे. बकाल करंट्यांना गर्भश्रीमंताचा हेवा वाटावा, ह्यांत जांहीं नवल नाही ! शास्त्रीय शोधांत मात्सर्याचा आवेश आणणें मायावी असुरांना हि लज्जास्पद होय. भांडारकर, तेलंग व नाना पावगी ह्यांचें हि मत एतत्प्रकरणीं माझ्यासारखें च आहे.

व्रीम्सनें हिंदी गुजराथी व पंजाबी यांचा प्रारंभ च, ग्रंथमाला]

व्रीम्स व्या शतकांत, मराठीचा प्रारंभ १३^व शतकांत]

प्रारंभ चौदाव्या शतकांत व बंगाली १५^व शतकांत]

अठराव्या शतकांत घातला आहे! शक १३^व शतकांत हिंदी मंदिर द्वै मासिक पुस्तक]
तार्थाचिंतामणींत, हिंदी, लाठी, बंगालीदेवीच्या हुष्काळाचा मराठी फर्मान
सांत मीं छापिलीं आहेत.

व्युत्पत्ती [ग्रंथमाला व सरस्वतीमंदिर]

१६ सुमारे शक १५० पासून शक ४०० पर्यंत महाराष्ट्रांत भयंकर अराजक माजलें [Bhandarkar's Dekkan, Section IX] ह्या अराजकाच्या अमदानींत शिष्ट महाराष्ट्री भाषा लोपत जाऊन, शक ४०० च्या सुमारास मराठी भाषा बनली गेली. शातवाहन राजांच्या तीनशें वर्षांच्या राजवटींत [शकपूर्व शक ४०० शक १५०] महाराष्ट्री भाषेंत विपुल सारस्वत झालें. शातवाहन राजांना संस्कृतपेशां महाराष्ट्री प्राकृत जास्त परिचित होती. “ मोदकैः परिताडय मां ” वगैरे कोट्या शातवाहनांच्या

संबंधानें प्रसिद्ध आहेत. शातवाहनांच्या अमलांत शिलालेखांची भाषाहि प्राकृत च असे. शातवाहनांच्या राशियतीनंतर तीनशें वर्षे जें अराजक माजलें त्यांत महाराष्ट्रीचा लोप झाला; ह्यणजे महाराष्ट्री भाषेचा पुरस्कर्ता असा कोणी सम्राट् राहिला नाहीं. शक ४०० च्या सुमारास मराठी भाषा देशांत प्रचलित होऊं लागली. परंतु, महाराष्ट्रीची मान्यता मराठीला, अर्थात् च, नावीन्यामुळें मिळाली नाहीं. त्यामुळें, शिलालेख व ताम्रलेख बहुतेक सर्व संस्कृत भाषेंत होऊं लागले. अशोकाच्या कालापासून शातवाहनांच्या अंतापर्यंत [शकपूर्व ३००—शक १५०] महाराष्ट्री, पाली, वगैरे प्राकृतांत लेख लिहिले जात ते शक ४०० नंतर संस्कृतांत लिहिले जाऊं लागले [Bhandarkar's Dekkan, Section IX] अशी टीका डा. भांडारकरांनीं केलेली आहे. ह्या फरकाचें कारण, मात्र, त्यांनीं दिलेलें नाहीं. जुनी महाराष्ट्री बुडा-

रिहायें आहीं मराठी शिष्ट गणली जात नव्हती; सवत्र, संस्कृताचा उप-इंग्रजी भाषा ^{नास्त होऊं लागला.} मराठीचा अगदींच उपयोग सनचें इंग्रजी विष्णु शास्त्री ^{ना संस्कृत समजे त्यांच्याकरितां संस्कृत कोणती हि शिष्ट भाषा परदेशस्थाली.} कालीन लौकिक भाषा जी मराठी ती कालचे ग्रंथ त्याच्या हातांत पडतील त्या लण्याचा प्रयत्न करतो.

१७ शक १५० पासून तत्पूर्वी १५०० वर्षे प्राकृत भाषा [पाली-महाराष्ट्री-शौरसेनी-मागधी-पैशाची] आर्यावर्तांत प्रथम (B. C. 1500-700) अशिक्षित लोकांत व नंतर (B. C. 700-A. D. 200) शिष्ट लोकांत चाळू होत्या असें दिसतें. कारण, शकापूर्वी एक हजार वर्षांचे प्राकृत किंवा पाली लेख नुकतेच सांपडलेले आहेत. सर्वांत आपल्याला माहीत असलेली अशी अत्यंत जुनी प्राकृत भाषा ह्यली ह्यणजे जीस पालि, पाळि किंवा पाली, पाळी ह्यणतात ती होय. पालि प्राकृत भाषा आहे, असें सार्वत्रिक मत आहे. उदाहरणार्थ, मोझे विहोर Henry आन्नी आपल्या पाली व्याकरणांत असें च मत प्रतिपादितो. (Le Pali est une langue pre-critique Grammaire Palie, p. 2, 1904 A. D.)

पाली ह्या शब्दाची व्युत्पत्ति अनिश्चित आहे, असें विहोर आन्नी ह्यणतो (Grammaire Palie, p. I.) ड व ल ह्यांच्या अभेदासंबंधानें लिहितांन, आपल्या व्याकरणाच्या ५६ व्या कलमांत पट्, वाचणें, या धातूपासून पालि शब्द निघाला असल्यास, पाठित=पडिअ=पडिअ=पलिअ=पालिअ=पालि असा परंपरेनें तो निष्पन्न व्हावा, अशी सूचना आन्नी करतो. ह्या परंपरेत प चा पा कसा झाला व अंत्य अ चा लोप काय कारणानें झाला, तें सांगणें दुरापास्त आहे. ह्याच व्याकरणाच्या १७४ व्या पृष्ठावर, पालि ह्यणजे लिहिण्याची ओळ, पंक्ति, पाठ असा अर्थ तो देतो व त्यावरून भाषेला पालि हें नांव पडलें असावें, असें सुचवितों. परंतु, एकंदरीत पालि या विशिष्ट भाषार्थक शब्दाची व्युत्पत्ति आपल्याला निःसंदेह माहीत नाही, असें हा वैश्याकरण प्रांजलपणें नमूद करतो. हिब्रू भाषेला वायव्य भाषा असें नांव देणें जितपत योग्य आहे तितपतच बौद्धांच्या पवित्र ग्रंथांच्या भाषेला पालि भाषा हें नांव देणें योग्य आहे, अशी हि टीका ह्या वैश्याकरणानें केली आहे. (Dire "le pali", c'est done exactement comme si l'on disait "la Bible" pour "l'he'breu". Grammaire Palie, page I.) सारांश, पालि शब्दाची खात्रीलायक व्युत्पत्ति आपल्याला माहीत नाही, असें आन्नी ह्यणतो. मोझे आन्नीचा विशेष उल्लेख करण्याचें कारण असें कीं,

ह्या फ्रेंच वैय्याकरणानें आपलें पालि भाषेचें व्याकरण इ. स. १९०४ त लिहिलें आहे. हणजे. १९०४ पर्यंत पालि या शब्दाची व्युत्पत्ति यूरोपांत माहीत नाहीं, हें उघड आहे. माझ्या मते,

पाली शब्दाची व्युत्पत्ति येणें प्रमाणें:—

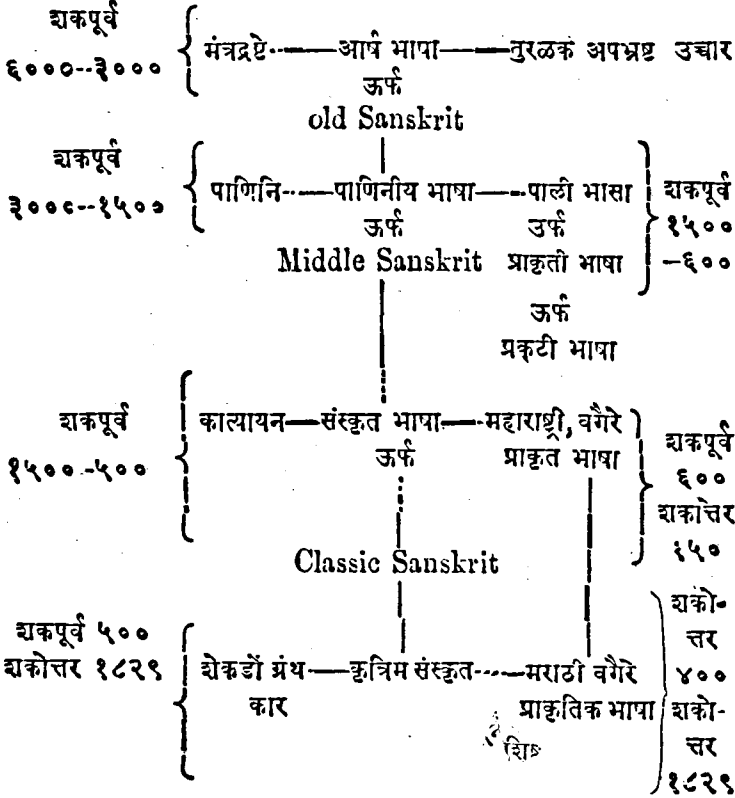
प्रकट=पाअड=पाअल=पाल.

पाल शब्दाचें स्त्रीलिंग पाली अथवा पाळी प्रकट अथवा पाली भाषा हणजे ती कीं जी सामान्य लोकांत प्रचलित असते. डलयोरभेद=। आड-विकं=आलविकं, आळविकं.

पाली तीच पालि; जसैं मती-मति इ. इ. इ.

एवंच, पाली, पालि, पाळी किंवा पाळि भासा हणजे सहज येळ किंवा प्रकट भाषा होय. प्रकट भाषा हणजे मूळ जन्म भाषाबौद्धांचें ग्रे ज्या मूळ भाषेंत लिहिले तिला सिव्हलद्वीपांतील लोक पाली भाषा किंवा मूळ भाषा हणूं लागले. ह्याहून ह्या शब्दांत जास्त गूढ नाहीं. बुद्ध जी भाषा बोलला त्या भाषेला सिव्हली लोक भक्तीने व अभिमानानें पाली अथवा मूळ भाषा हणतात— परंतु, पाली ही मूळ भाषा नसून, ती जिच्यापासून निघाली अशी तिच्याहून हि जुनी भाषा दाखवून देतां येते. ब्राह्मणांतील जी संस्कृत भाषा ती ही भाषा होय. हिला च डा. भांडारकर Middle Sanskrit किंवा पाणिनीय संस्कृत भाषा हणत तः— Weber, Victor Henry वगैरे लोक हिलाच “ ancetre inconnu ” हणजे “ अज्ञात पूर्वज ” हणतात. डा. भांडारकर जिला Classic संस्कृत हणतात तिला Weber वगैरे यूरोपियन लोक पाणिनीय संस्कृत चुकीनें समजतात, इतकेंच पाली भाषा Classic संस्कृताची हणजे शिष्ट संस्कृताची पुत्री नसून भगिनी आहे, असें हे लोक वस्तुतः हणतात; परंतु, पाली Middle संस्कृताची हणजे पाणिनीय संस्कृताची छाया व Vedic संस्कृताची हणजे आर्ष संस्कृताची स्तुपा आहे, हें [१] आर्ष भाषा, [२] पाणिनीय भाषा, व [३] संस्कृत भाषा अशा तीन पायांच्या त्यांच्या लक्षांत आणून दिव्या हणजे, त्यांना तेव्हां च पटेल, असें वाटतें. पालीची परंपरी अशी आहे:—

ग्रंथकार वै भाषा छाया
र्याकरण इ. इ.



बरील वृक्षावरून डा. भांडारकरांचें ह्मणणें स्पष्ट व्हावेंसें वाटतें. युरो-
पीयन लोक daughter, grand-daughter,
पाली भासा पाणि- पीयन लोक daughter, grand-daughter,
नीय भाषेची छाया mother, sister, वगैरे शब्द योजून व्यर्थ घोट-
आहे; आणि महाराष्ट्री ल्यांत पडतात व अभिमानाला किंवा दुरभिमानाला
भाषा संस्कृत भाषेची पेटतात. ते जर “छाया” हा शब्द योजतात तर
छाया आहे. पुष्कळ गैरसमज दूर होईल. पाणिनीय भाषेची पाली
भाषा ही छाया आहे आणि संस्कृत भाषेची महाराष्ट्री
भाषा छाया आहे, असें भांडारकरांचें ह्मणणें आहे. आणि तें अगदी बरोबर

आहे. पाणिनीय भाषा शिष्ट लोक बोलत आणि पाली भाषा शिष्टतर लोक बोलत. त्याप्रमाणेंच संस्कृत भाषा शिष्ट बोलत आणि महाराष्ट्री भाषा शिष्टतर लोक बोलत.

कालान्तरानें पाली भाषा एका धर्माची पूज्य भाषा झाली. ती शान्क्यमुनीनें काढलेल्या बौद्धधर्म होय. बुद्धाचा धार्मिक अवतार कीकट देशांत झाला, असें भागवत पुराणांत ह्मटलें आहे (१-३-२४); आणि टीकाकारांनें कीकट ह्मणजे गयाप्रदेश असा खुलासा केला आहे. ह्मणजे पाली भाषा बुद्धाच्या वेळीं गयाप्रदेशांत शिष्टतर लोक शेंकडों वरिं बोलत असत. चातुर्वर्ण्याचा व कर्ममार्गाचा आश्रय करणारे जे ब्राह्मण त्यांची भाषा पाणिनीय संस्कृत असे; आणि एकजातीचा व यानमार्गाचा आश्रय करणारा जो गौतम-बुद्ध त्याची भाषा प्राकृतजनांची पाली असे.

ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषां ।

बुद्धो नामांजनसुतः कीकटेशु भविष्यति ॥

(भावगत पुराण १-३-२४)

टीका:—कीकटे मध्ये गयाप्रदेशे.

ऋग्वेदांत हि ह्या कीकट देशाचा उल्लेख आला आहे:—

किं ते क्रिष्वन्ति कीकटेषु गावो.

यास्कः— कीकटो नाम देशो अनार्य निवासः । निरुक्त, ६—३२ ॥

पालीचा
मूळदेश

ऋग्वेद कालीं कीकट देशांत अनार्य रहात असत. सध्यां आपण ज्यांना कैकाडी ह्मणतो व युरोपियन लोक ज्यांना Gypsy ह्मणतात त्यांचा हा मूळदेश असावा. ह्या प्रांतांत आर्यांनीं वसाहत केल्यावर कैकाडी लोकांचे अपभ्रष्ट उच्चार आर्यांच्या कनिष्ठ जातींत व शिष्टतर लोकांत शिरले आणि प्रकटी ऊर्फ पाअडी ऊर्फ पाअली ऊर्फ पाली. उर्फ पाळी उर्फ पालि ऊर्फ पाळि भाषा प्रचलित झाली. भाषा अशिष्ट लोकांच्या तोंडीं जाऊन जो अपभ्रंश झाला, त्या अपभ्रंशालाच प्राकृत भाषा ह्मणतात, असें जें डा. भांडारकर म्हणतात, तें वरील हकीकती वरून खरें आहे, असें दिसतें. डाक्टरांचें विधान प्राकृत भाषासंबंधानें आहे व वरील हकीकत पाली भाषेसंबंधानें आहे. परंतु, तेवढ्यानें डाक्टरांचा सिद्धान्त

कांहीं कमजोर होत नाही; उल्ट शिरजोरच होतो. कारण पाली भासा ह्या शब्दांचा अर्थ प्राकृत भाषा असाच आहे.

पाणिनीचा काल डा. भांडारकर सुमारे शक पूर्व ८०० धरतात. परंतु ब्राह्मणांचा अगदीं शेवटला काल शक पूर्व १५०० जर त्यांना मान्य असेल तर, पाणिनीचा हि काल त्यांनी तोच धरल्यास, त्यांच्या उपपत्तीला ज्यास्त सामर्थ्य येईल.

पाणिनीय भाषेची ह्यणजे ब्राह्मणकालीन शिष्ट भाषेची छाया ज्याअर्थी पाली भासा आहे, त्याअर्थी ती पाणिनीय भाषे-
पाणिनीय भाषा व इतकीच वेद भाषेशीं संबद्ध आहे. इतकेंच कीं
पाली भासा यांच्या ब्राह्मणकालीन भाषा पाणिन्यादि शिष्ट वैय्याकर-
संबंधासंबंधानें यूरो पाण्या उपदेशानें नियमबद्ध होत आहे; आणि
पियन विद्वानांचा शिष्टेतर लोकांची जी पाली भासा ती होत नाही.
गैरसमज. त्यामुळें वेदभाषेतील कांहीं आर्षरूपे व लकवा

पाली भासेत सांपडाव्या, हें साहजिक आहे. (१)
ळ, ळ हे उच्चार; (२) ऱ्हस्व दीर्घाकडे दुर्लक्ष्य, जसे छंदस्सुखार्थ, रमती,
चेत्वा; (३) वैकल्पिक स्वरसंधित्व; (४) तृतीयेचा वैदिक प्रत्यय एभिः अथवा
येभिः; (५) विशेषणविशेष्यांपैकीं एखाद्यालाच विभक्ति प्रत्यय लावण्यांत धर.
सोड; (६) कर्मणि प्रयोगापेक्षां कर्तरि प्रयोगाचें बाहुल्य; (७) धातुसाधिताच्या
वैदिक त्वान प्रत्ययाचें आधिक्य; ह्या सात लकवांवरून यूरोपीयन लोकांनीं
असें ठरविलें आहे कीं पाणिनीय भाषेहून पालि भासा जुनी आहे. पालि
भासेहून पाणिनीय भाषा जास्त शिष्ट, नियमबद्ध व सुधारलेली आहे, असें
जर हे लोक ह्यणतील, तर त्यांना पाली व पाणिनीय भाषा यांच्यामधील भेद
उत्तम कळला असें ह्यणतां येईल. कोणत्याहि भाषेच्या वात्यावस्थेंत कर्मणि
प्रयोगापेक्षां कर्तरि प्रयोगाचा उपयोग जास्त होतो. शिष्ट व सुधारलेल्या
लोकांना कर्मणि प्रयोग पेलण्याचें सामर्थ्य येतें. तें सामर्थ्य गांवढ्यांना नसतें.
पाणिनीय भाषेंत शब्दांच्या आंत स्वरसंधि अगदीं नियमानें होतोच. हा नियम
शिष्ट लोक पाळूं शकतात; शिष्टतरांना इतकी नियमनशक्ति नसते. येभिः=
एभिः= एहिः= ऐः अशा परंपरेनें शिष्टांनीं तृतीयेचें अनेकवचन ऐः प्रत्य-
यानें करण्याचा कित्येक स्थलीं प्रघात पाडला. शिष्टेतर जुना येभिः च प्रत्यय

वेऊन बसले. शिष्टतर ऱ्हस्व दीर्घाकडे दुर्लक्ष्य करतात; असलें दुर्लक्ष्य शिष्टांना व सभ्यांना खपत नाही. करोती, रमती, चराति असलीं रूपें अशिष्ट पालींत व वैदिक भाषेंत सांपडतात; परंतु पाणिनीय शिष्ट व सभ्य भाषेंत ही धरसोड अजीवात बंद केलेली आहे. पाली भाषेच्या ह्या सात हि लकवा आधुनिक अशिष्ट मराठींत आढळतात. छंदःसौकर्यार्थ ऱ्हस्व दीर्घाकडे कुक-र्वांच्या मराठींत हमेश दुर्लक्ष्य होतें. शिष्टतर मराठी वक्ते कर्मणि प्रयोगाचा कर्तारिपेक्षां कमी उपयोग करतात. ळ, ळ्हा उच्चार अशिष्ट मराठींत फार आहे. सारांश, ह्या सात हि लकवा अशिष्टत्वाच्या द्योतक आहेत; श्रेष्ठत्वाच्या द्योतक नाहीत. त्यांना मिठी मारून, पाणिनीय भाषेला अर्वाचीन व कृतिम ढरविण्याच्या वृथा खटपटींत यूरोपीयन लोक पडले आहेत, ह्यांत विलकुल संशय नाही.

अशिष्ट लोक शिष्ट भाषेचा अपभ्रंश करण्यांत जितकें चपल असतात, अशिष्ट पाली तितकेंच जुन्यापुराण्या आर्ष शब्दांना व प्रत्ययांना चिक- दून बसण्यांत पटाईत असतात. अशिष्ट लोकांचे हे पर- चा दुतोंडे- स्पर विरुद्ध चाले आजपर्यंत अनेक यूरोपीयन लोकांना पणा. फसवीत आले आहेत. त्यांच्या भाषेंत ज्या अर्थी अंत जुनेपुराणें शब्द सांपडतात, त्याअर्थी त्यांची भाषा तत्कालीन शिष्ट भाषेहून जुनी असावी, असें जों क्षणभर मानावें, तों वर्तमान शिष्ट भाषेचे अप- भ्रंश करण्यांत हें लोक गुंतलेले पाहून, नवी भाषा बनविण्याच्या खटपटींत हे आहेत, असें दृष्यत्सत्तीस येते. ' कत्त्वान ' शब्दांत वैदिक ' त्वान ' प्रत्यय पाहून पाली भासा वैदिक भाषेच्या जोडीला नेऊन जों बसवावी, तों दत्तवत् शब्दाचा दिन्नवा अपभ्रंश पाहून पाणिनीय संस्कृतापासून ही पतित होत चालली आहे, असें ह्मणणें भाग पडतें. मराठींत हि हाच चम- त्कार दृष्टीस पडतो. " जात्याती " हें जुनें रूप अशिष्ट लोकांच्या तोंडीं जों ऐकावें, तों " घराप " हें अपभ्रष्ट रूप त्याच वाक्यांत आढळून येतें.

यान्तः असन्ति=जॉत आहाति=जॉताहाति=जॉत्याति=जॉत्याती; अशी ऩत्याती व जॉत्याती ह्या जुन्या रूपांची परंपरा आहे. ' जात्याती ' बद्दल ऩधुनिक शिष्ट लोक " जातात " असें रूप योजतात,

जाताहाति=जाताति=जातात.

परंतु, अशिष्ट लोक जात्याती किंवा जात्याती हैं जुनें अपभ्रष्ट रूप च धरून बसले आहेत. पण एवढ्यानें ते जुनी भाषा बोलतात, असें ह्याणण्यांत अर्थ नाही. कारण,

घरापासौनियां=घरापासौनि=घरापासौन=घरापास=घराप

ह्या परंपरेनें अशिष्ट लोकांनीं घराप हें अपभ्रष्ट रूप बनविलेलें पाहून, ते नवी भाषा तयार करीत आहेत, असा सिद्धान्त बसवावा लागतो. तात्पर्य, अशिष्ट लोकांच्या ठायीं जुन्याला चिकटण्याचा व नव्याला धरण्याचा परस्परविरोधी दुतोंडी गुण असतो, हा सिद्धान्त आहे. ह्या दुतोंडी गुणाच्या कोणत्या हि एकाच तोंडाला पाहून, पालीसारख्या अशिष्ट भाषांचे गुणधर्म व जातगोत ठरवूं जाणें अशक्य आहे.

गौतमबुद्ध जर न जन्मता आणि पाली भासेंत न बोलता व लिहिता, तर पाली भासेची आठवण आज न रहाती. पाली ऊर्फ प्राकृत सारस्वतामुळें पाली आज आहे असें समजतें गौतम बुद्धाच्या पूर्वी हजार वर्षे होती. परंतु, तींत सारस्वत किंवा वाङ्मय नसल्यामुळें, तिची माहिती हि कोणास नाही. बुद्धानंतर तींत धार्मिक सारस्वत होऊं लागलें व बौद्ध लोकांची ती धार्मिक भाषा बनली. त्यामुळें, ती आज उपलब्ध व माहित होत आहे.

यूरोपियन लोकांना पालीची जी इतकी वेसुमार गोडी लागलेली दिसत आहे, तिला कारण आहे. पाली भाषा ज्या बौद्ध लोकांची धर्मभाषा आहे ते लोक यूरोपियन लोकांप्रमाणेंच चातुर्वर्ण्यविहिन व आचारहीन आहेत. ह्या समानधर्मा शिवाय, पाली ग्रंथांवर यूरोपियन विद्वानांचा इतका भर असण्याचें दुसरें असें कारण आहे कीं, ख्रिस्ती धर्माचा एकोनएक स्वभाव बौद्ध धर्मांत सांपडतो. व ख्रिस्ती धर्म बौद्ध धर्माची नकल आहे, अशी खात्री होते. अशी ज्या अर्थी वस्तुस्थिती आहे, त्या अर्थी पाली भाषा संस्कृत भाषेहून, पाणिनीय भाषेहून व वैदिक भाषेहून ही पुरातन आहे, अतएव ब्राह्मणांच्या वेदभाषेहून श्रेष्ठ आहे, अशी सिद्धि करण्याकडे यूरोपियनांच्या मनाचा फार ओढा असतो. ब्राह्मणांपासून किंवा ब्राह्मणांच्या वडलांपासून सनं घेतल्याची लाज ह्या लोकांना फार वाटते, इतकी कीं, ज्यांच्याशीं केः

धर्माच्या नकलेचा बादरायण संबंध, त्या बौद्ध लोकांच्या पालीला हि पाणिनीय भाषेची नकल हटलेले ह्यांना खपत नाही. इतकेच नव्हे, तर, पाली भासा वैदिक भाषेहून हि पुरातन आहे, असे निराधार मत प्रस्थापित्याशियाय त्यांना समाधान वाटत नाही.

पाली भासा वैदिक भाषेच्या बराबरची नाही, हें ठरविण्याला तोडगा आहे. पालीचे छायारूप भाषान्तर युरोपीयन लोक पाणिनीय भाषेत देतात, वैदिक भाषेत किंवा संस्कृत भाषेत देत नाहीत. ह्याचा अर्थ इतकाच कीं पाली भासेची छाया पाणिनीय भाषेत साधर्म्यामुळे देणें जितकें सोयीचें आहे, तितकें वैदिक किंवा संस्कृत भाषेत देणें सोयीचें नाही.

पाणिनीय भाषेची छाया जशी पाली ऊर्फ प्रकटी ऊर्फ प्राकृत भाषा जशी वैदिक आर्ष भाषेची छाया असलेली उपलब्ध नाही. वेदांत अ. तशी वैदिक आर्ष भाषेची छाया असलेली उपलब्ध नाही. पभ्रष्ट उ. कारण, आर्षिकालीं अनार्य लोकांवर आर्षभाषा लादण्याचा प्रसंग उद्भवण्यास ह्यणण्यासारखें कारण झालें नाही. तत्रापि, चार असुर्या देशांतील असुर लोकांशी संबंध आला असतां, दुष्ट

उच्चार आर्यांच्या कानावर येऊ लागले, असें ह्यणण्यास आधार आहे. “ तेऽसुरा हेऽलयो हेलय ’ इति कुर्वतः परावभूवुः । तस्मात् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापमापितवै । म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः । तस्मान्न ब्राह्मणो म्लेच्छेत् । ” अशी शतपथश्रुति आहे. ही श्रुति ब्राह्मणकालीं रचलेली आहे, हें तिच्या भाषेवरून उघड दिसत आहे. परंतु, हीं पुरातन कालीं अपभ्रष्ट उच्चार करणाऱ्या असुरांचा पराभव झाला, असें वर्णन आहे. ह्यणजे आर्षिकालीं आर्ष शब्दांचा असुर लोक अपोच्चार अथवा अपभ्रंश करित. हे असुर ह्यणजे असुर्या किंवा असुर्या देशांतील लोक.

असुर लोक असुर्या देश इराणच्या पश्चिमेस यूफ्रेटीस व टैग्रिस इसवीपूर्वी या नद्यांच्या भोंवती आहे. असुर्या देशांत असुरांनीं ६०००—२००० मोठी पातशाहत इसवीसनापूर्वी ६००० पासून २००० पर्यंत केली. अर्थात् आर्ष ‘ अरयः ’ शब्दाचा ‘ अलयः ’ असा अपभ्रंश असुरांच्या तोंडून इसवीपूर्वी ३००० वर्षांच्या सुमारास झाला असला पा-

हिजे. “ पिक, ” “ नेम, ” “ तामरस ” वगैरे शब्द असुर भाषेंतून आर्षभाषेंत जे आले हणून शबरस्वामी हणतो, ते ह्या च कालांत आले. वायवलांत Molochians हणून एका लोकांचे नांव येते तेच हे म्लेच्छ असावेत आणि म्लेंच्छ हे अगुरांपैकीं होते, हें वरील श्रुतीवरून सिद्ध होतच आहे. अव्यक्त उच्चार करणें हा असुरांचा मुख्य उच्चारदोष होता. म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे । धातुपाठ २०५।.

ज्या अर्थी आर्ष शब्दांचा असुर लोक अपभ्रंश करित, त्या अर्थी आर्ष भाषेचा अपभ्रंश होता, असें हणावें लागतें. अपभ्रंशा-
 प्रांतिक, जा- भाषेचा अपभ्रंश होता, असें हणावें लागतें. अपभ्रंशा-
 तिक किंवा खेरीज, आर्षभाषेच्या प्रांतिक किंवा गोत्रीय विभाषा हि
 गोत्रीय आर्ष असाव्या, असें दिसतें. कारण, देवाः, देवासः, देवैः, दे-
 भाषा वेभिः, त्वानं, त्वीनं, त्वाः अशीं अनेक रूपें एकाच
 विभक्तीचीं व वचनाचीं ज्या भाषेंत सांपडतात त्या भाषेंत
 प्रांतिक किंवा गोत्रीय किंवा जातिक पोटभेद असले पाहिजेत, ह्यांत संशय
 नाहीं. तसेंच कृत बदल कुट, कर्त बदल काट, गृह बदल गेह वगैरे कटि-
 ण व सोपे उच्चार ज्या भाषेंत एका च वेळीं आढळतात त्या भाषेंत पोट-
 भेद असले पाहिजेत, असें मानिल्यावाचून गत्यंतर नाहीं, तात्पर्य, प्रांथिक
 भाषा, प्रांतिक भाषा, जातिक किंवा गोत्रिक भाषा, व अपभ्रंश, असा च-
 तुर्विध भाषाभेद वैदिक कालीं होता. पैकीं, म्लेच्छ व असुर लोकांनीं केलेला
 अपभ्रंश वैदिक आर्यांना त्रिलकुल खपत नसे व तो त्यांच्या तिरस्काराचा
 विषय होत असे. प्रांतिक व गोत्रिक भाषाविकार किंवा भेद प्रबल व सर्व-
 मान्य झाल्यास शिष्ट व प्रांथिक भाषेंत समावेधिल जाई, आणि दुर्बल
 झाल्यास लुप्त होई. प्रांतिक किंवा गोत्रिक पोटभाषा वोलणारे आर्ष पडल्या-
 मुळें तिरस्काराचें कारण नसे.

ह्या ज्या प्रांतिक किंवा जातिक किंवा गोत्रिक वेदकालीन पोटभाषा
 त्यांच्यापैकीं एकीपासून किंवा सर्वांपासून पाली भाषा उद्भ-
 युरोपियन त्यांच्यापैकीं एकीपासून किंवा सर्वांपासून पाली भाषा उद्भ-
 विद्वान वि- वली, असें युरोपियनांचे हणणे आहे. पाली पाणिनीय ऊर्फ
 रुद्र डा. ब्राह्मण भाषेची प्राकृत छाया आहे, असें डा. भांडारकरांचे
 भांडारकर मत आहे. पैकीं खरें कोणतें, ह्याचा निर्णय मागें झाला च
 आहे, पालीचा अक्षरशः व रूपशः तर्जुमा किंवा विपरिणाम

जसा पाणिनीय भाषेत तंतोतंत होतो तसा वैदिक भाषेत किंवा वैदिक भाषेच्या कोणत्या हि पोटभेदांत [माहीत असल्यास] होत नाही. त्या अर्थी पाली भासा वेदकालीन भाषेच्या कोणत्याहि पोटभेदांपासून निघाली नसून, पाणिनीय भाषेची छाया ऊर्फ प्राकृत प्रतिकृति आहे. पाणिन्यादि शिष्टांच्या भाषणांतून व ग्रथांतून लुप्त झालेलीं कांहीं वैदिक रूपें व शब्द अशिष्टांच्या प्राकृत, प्रकट, उर्फ पाली भासेंत सांपडतात इतकेंच. तेवढ्यानें युरोपीयनांचा सिद्धान्त स्थापित होणें अवघड आहे.

क्रीकटनामक गयाप्रदेशांत ब्राह्मणेतर आर्यांना अनार्य क्रीकटांच्या संसर्गानें अपभ्रष्ट उच्चार करण्याचा वाण लागला आ-
अनार्यांच्या नुस- णि कालान्तरानें हा वाण बळावून, पाली, ऊर्फ प्रकट
त्या संसर्गानें झा- ऊर्फ प्राकृत भासा जन्मास आली. अनार्यांच्या संस-
लेला अपभ्रंश. र्गानें ब्राह्मणांना देखील अपोच्चार व अपभाषण कर-
 ण्याची संवय लागण्याची भीति होती. एतदर्थ, ब्राह्मणानें अनार्य मल्लेंच्छासा-
अनार्यांनीं केलेला रखे अपभ्रष्ट उच्चार करूं नये, असा इशारा त्याकालीं
आंतर अपभ्रंश. उच्छृंखल ब्राह्मणांना तत्कालीन शिष्टांनीं दिला-सांराश,
 शिष्ट भाषेचा अपभ्रंश अनार्यांच्या संसर्गानें हि होणें
 शक्य असतो. आर्यभाषा अनार्य उच्चारूं व योजूं लागले असतां जो अपभ्रंश
 होतो, तो उच्चारपुरताच थांबत नाही. तर, लिंग, वचन, प्रत्यय, वगैरे
 भाषेच्या आंतर रचनेंत हि त्या त्या अनार्यांच्या भाषेच्या स्वभावानुरूप फेरफार
 करतो. असला आंतर अपभ्रंश होऊन, पाली भासा बनलेली नाही. फक्त
 संसर्गाचा अथवा सांसांगिक अपभ्रंश होऊन पाली भासा पाणिनीय भाषेची
 छाया बनली. संसर्गानें द्यापर्ण इत्यादि कित्येक ब्राह्मणजाति अपूत हाणजे
 असंकृत भाषा बोलत, असें विसृत वर्णन ऐतरेय ब्राह्मणाच्या प्रथम खंडाच्या
 ३५व्या अध्यायांत आलें आहे. तीच ही पाली असावी. *

* वैदिक भाषा (शकपूर्व ६०००-३०००) आणि ब्राह्मणभाषा ऊर्फ पा-
 णिनीय भाषा (शकपूर्व ३०००-१५००) ह्यांच्या वेळीं अपभ्रष्ट भाषा होती, हें
 बरील मुद्यांवरून स्पष्ट आहे युरोपीयनांच्या एतत्संबंधानें कल्पना अद्याप फार
 अस्पष्ट आहेत. इ. स. १९०४त राफसन येणें प्रमाणें लिहितो:—These Pra-
 पुढें चाल.

१८ पाली भासा गोतमबुद्धाच्या पुढें पन्नासशंभर वर्षे चालून, नंतर तिचें प्रयाण सिंहलद्वीपांत झालें. सिंहलद्वीपांत गेल्यापासून, ती बौद्ध लोकांची धार्मिक भाषा बनली व मृतभाषेची स्थिर कळा तिला आली. पाली भासा ह्यणजे मगधांतील किंवा कोसलांतील प्राकृत भाषेचा बुद्धाच्या वेळचा पोटभेद तो पोटभेद बौद्धधर्मीयांनीं यद्यपि स्थिर व मृत बनविला, तथापि मगध देशांतील मागधी प्राकृत तत्कालीन संस्कृताची मगधदेशांतील छाया ह्यणून नांदत होतीच. मथुरादेशांत जी संस्कृताची छाया होती तिला शौरसेनी असें नांव पडलें. आणि पिशाच लोक जी छायारूप संस्कृत बोलत तिला पैशाची असें अभिधान होतें. मागधी, शौरसेनी व पैशाची हीं विशेषणें व विशेष्यें मगध, सूरसेन व पैसाच ह्या देशवाचक शब्दांवरून पडलीं आहेत. वर्तमान बहार ह्यणजे मगध; मथुरेभोंवतालील जो प्रांत तो सुरसेन; आणि प्रस्तुतच्या पिशाच प्रांताच्या उत्तरेकडील जो प्रांत तो पिशाच. मगधदेश कोणता ह्यासंबंधानें वाद नाही. सूरसेनदेशाचा उल्लेख मनुस्मृतींत येणें प्रमाणें आला आहे.

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाःशूरसेनकाः ॥

[मनु. अ. २, श्लो. १९]

हा शब्द भारत व हरिवंश ह्यांत येतो.

पेशावर=पिसावर=पिसाउर=पिसाचपुर, अशा परंपरेनें आधुनिक पेशावर शब्द साधला असल्यानें, पेशावरच्या उत्तरे कडील काफरिस्थान, कोहिस्तान, चित्रल व अंशतः काश्मीर वगैरे प्रांतांतील पुराण भाषा पिशाचांची होय, ह्यांत संशय नाही. अलीकडे [इ. स. १९०४, journal R. A. S. pp. 725-731] ग्रियरसनचे हि मत असंच झालेले आहे.

मागील पृष्ठावरून पुढें चालू

kritis cannot be traced back to Vedic Sanskrit, or to the period of the Brahmanas or even to the date of the earliest Sanskrit of the Epics! (In what degree was संस्कृत a spoken Language? A. D. 1904, j. R. A. S.)

रास्वन पाणनीला शकपूर्व ३००ला आणून ठेवतो! कालाचा असा गोंधळ केल्यामुळे, युरोपियनांच्या संस्कृत प्राकृतभाषाविषयक बहुतेक सर्व कल्पना हि विचित्र व असंभाव्य होतात; मग सिद्धान्त तर होतीलच!!!

पौण्ड्रकाश्चौद्रविडाः कांबोजा यवनाः शकाः ।

पारदा पल्हवाश्चीनाः किराता दरदाः स्वशाः ॥

[मनु, अ. १०, श्लोक ४४].

ह्या श्लोकांत उल्लेखिलेले जे दरद तेच Dard होत. त्यांची भाषा पैसाची वर्गातील होय, असें वरील भाषागणकाचें मत आहे.

अपक्रामंतु भूतानि पिशाचाःसर्वतो दिशं !

संध्येतील ह्या श्लोकाधीत ह्या पिशाचांचा निर्देश आहे. तैत्तिरीय संहितेंत देखील यांचें नांव येतें. पैशाच विवाहाचा उल्लेख स्मृतिकारानीं केलेला प्रसिद्ध आहे. मुळीं, हे लोक अनार्य होते व आर्यांचे शत्रू होते. ह्यांच्या संसर्गानें कित्येक आर्य क्षत्रिय क्रियालोपानें आर्यत्वापासूब च्युत होऊन दरद झाले; व मूळ आर्यभाषा अपभ्रष्ट उच्चारानें बोलूं लागले.

शनकै स्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।

वृषलत्वं गतालोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥

(मनु, अ. १०; श्लोक ४३)

१९ सूरसेन, मगध व पिसाउर ह्या प्रांतांत पाणिनीय भाषेच्या प्रांत-
ऐतिहासिक दृष्ट्या परत्वे तीन निरनिराळ्या छाया झाल्या. त्यांतल्या
अथवा कालावच्छे- त्यांत पहिली छाया सूरसेनदेशांत झाली. कारण
दानें मराठीचें अर्वा- आर्यांचें भरतखंडांतील पहिलें नागरवसतिस्थान
चीनत्व. पहिली प्रा- झटलें ह्यणजे सरस्वती व दृषद्वती या दोन पवित्र
कृत—सौरसेनी नद्यांमधील जो ब्रह्मावर्त प्रांत तो होय.

सरस्वतीदृषद्वत्यो देवनद्यो र्यदन्तरम् ।

तं देवनिर्मितं देशं ब्रम्हावर्त्तं प्रचक्षते ॥

[मनु, अ. २, श्लोक १७]

सरस्वती व दृषद्वती या दोन नद्यांमधील प्रदेश देवांनीं प्रथम वसाहत
देव कोण? करून तयार केला आणि त्याला ब्रह्मावर्त्त असें नांव पडलें,

असा ह्या श्लोकाचा अर्थ आहे. देव ह्यणजे आपणा हिंदुस्था-
नांतील आर्यांचे मूळ पूर्वज. देव ह्यणजे ईश्वर gods नव्हे. अमुराशीं ह्यणजे

इंग्रज लोक ज्या देशाला Assyria हणतात त्या देशातील पुरातन रहिवा-
शांशी ज्यांचे हाडवैर असलेले वेदांत वर्णिले आहे ते हे देव होत. हे देव
कोण ते नीट न उलगड्यामुळे रा. रा. व्हीस डेव्हिस ह्या श्लोकावर अशी
अज्ञ व पोरकट टीका करतो:—

“That, according to the brahmins, is the land created
by the gods—as if, other lands were not. (Here), the
priestly authors of that famous manual (मनुस्मृति) have
thrown off all disguise.”

(journal R. A. Society for 1904, p. 93)

देव ह्या शब्दाचा नीट अर्थ उलगडला असता, ह्मणजे ब्राह्मण सत्य व इति-
हास सिद्ध जे होते ते च लिहीत आहेत, असे व्हीस डेव्हिसच्या लक्षांत
आले असते. असो. ब्रह्मावर्त्तांशेजारील जो मथुराप्रांत त्या प्रांतांत आ-
र्यांची कालान्तराने वसाहत पसरून भाषेत प्रथम अपभ्रंश सुरू झाला. त्याला
च प्रौढदशेंत सौरसेनी असे नांव पडले.

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः सूरसेनकाः ।

एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादिनन्तरः ॥

[मनु, अध्याय २, श्लोक २०]

कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पंचाल व सूरसेन ह्या देशांत आर्यांचा प्रसार
झाल्यानंतर, त्यांच्या वसाहती पूर्वेस मगध व पश्चिमेस पिसा-
उर प्रांतांत कायम झाल्या किंवा त्या प्रांतांना स्पर्श करुं
लागल्या अशा स्थितींत मागधी व पैसाची ह्या दोन प्राकृत-
भाषा तत्तद्देशस्थ मूळ लोकांच्या संसर्गाने उच्चारापभ्रंश
होऊन अस्तित्वांत आल्या. पूर्वेस व पश्चिमेस वसाहती झाल्या
नंतर आर्यांची दृष्टि दक्षिणदिशेकडे वळली आणि दंडकारण्यांत त्यांनी प्रवेश
केला. दंडकारण्यांत वसाहत व कायमची वसती झाल्यावर, महाराष्ट्री
नावांची प्राकृत भाषा तेथे जन्मास आली. दंडकारण्यांत जे
आर्य वसाहत करण्यास गेले त्यांनी आपल्या वसाहतीस
महाराष्ट्रदेश, आपल्यास महाराष्ट्रीय लोक व आपल्या
भाषेस महाराष्ट्री भाषा अशी अभिम्भनाची नावे दिली.

दुसऱ्या
प्राकृत
मागधी
व पैसाची

तिसरी
प्राकृत
महाराष्ट्री

ऋग्वेद, ब्राह्मण, रामायण, भारत, ह्या ग्रंथांतील उल्लेखांवरून आर्यांच्या वसाहतींचें पूर्वापरत्व व ऐतिहासिक क्रम ठरलेले प्रसिद्ध आहेत. सबब, त्यांचा येथें तपशिल देत नाहीं.

२० ऐतिहासिकदृष्ट्या ह्यणजे कालदृष्ट्या (१) सौरसेनी—(२) मागधी व पैसाची—(३) महाराष्ट्री, असा क्रम लागतो. उच्चारदृष्ट्या हि हाच क्रम असलेला आढळून येतो. उदाहरणार्थ, एक पाणिनीय क्रियापद घेतों:—

| | | |
|---|----------------|--------|
| १ | पाणिनीय भाषा:— | वर्तते |
| २ | पाली:— | वट्टति |
| ३ | { सौरसेनी:— | वट्टदि |
| | { मागधी:— | वट्टडि |
| | { पैसाची:— | वट्टति |
| ४ | महाराष्ट्री:— | वट्टइ |

पाणिनीय भाषेत वृत् धातूचें वर्तमानकालीं तृतीयपुरुषीं एकवचनीं आत्मनेपदीं-वर्तते असें रूप होतें. प्राकृतांत प्रायः परस्मैपद सार्वत्रिक आहे. 'त्तं' चा वृत् सर्व प्राकृतांत सामान्य आहे. 'ति' ची 'दि' सौरसेनीत होते. पैसाचींत मृदु व्यंजनं नसल्या-कारणानें 'ति' ची 'ति' च कायम रहाते. माग-धींत सौरसेनी 'दि' ची 'डि' होते. महाराष्ट्रांत 'ति' ची "इ" होते. 'ति' ची 'दि' होणें जितके सजातीय व सुलभ आहे तितकें 'इ' होणें सजातीय व सुलभ नाहीं. 'ति' ची 'दि' पाहिल्या पायरीचा अपभ्रंश झालेला दिसतो. 'ति' ची 'इ' व्हावयाची म्हणजे ति, दि, डि, ढि, हि, इ अशा परंपरेनें होईल. म्हणजे इ होणें पाहिल्या पायरीचा अपभ्रंश नसून, पाहिल्या अपभ्रंशाच्या अपभ्रंशाचा अपभ्रंश आहे. अर्थात्, उच्चारदृष्ट्या पाणिनीय भाषेपासून सौरसेनीहून महाराष्ट्री दूरतर आहे.

दुसरें उदाहरण भूतकालवाचक धातुसाधित विशेषणाचें घेतों:—

| | | |
|---|----------------|-----|
| १ | पाणिनीय भाषा:— | कृत |
| २ | पाली:— | कत |
| ३ | { सौरसेनी:— | कद |
| | { मागधी:— | कड |
| | { पैसाची:— | कत |
| ४ | महाराष्ट्री:— | कअ |

येथें पाली व पैसाची पाणिनीय भाषेच्या जवळ, नंतर सौरसेनी, नंतर मागधी व नंतर महाराष्ट्री असा उच्चारपभ्रंश दिसतो. तस्मात्, उच्चारदृष्ट्या हि महाराष्ट्री भाषा सौरसेनी, मागधी, पैसाची, व पाली ह्यांच्या अलीकडची ठरते.

२१ इतिहासदृष्ट्या व उच्चारदृष्ट्या महाराष्ट्री जर पाली, सौरसेनी, मागधी व पैसाची ह्या चार भाषांहून अर्वाचीन ठरते, तर वररूची सारख्या वैय्याकरणानें “शेषं महाराष्ट्रीवत्” हें सूत्र उच्चारून सौरसेनी, मागधी व पैसाची ह्या भाषांना गौणत्व कां दिलें, असा प्रश्न उ-
व्याकरणदृष्ट्या म-
हाराष्ट्रीचें अग्र-
मान्यत्व.

होतें व ती राजभाषा या नात्यानें नांदत होती. उत्कृष्ट सारस्वत मिळाल्यानें व दरवारी प्रवेश झाल्यानें महाराष्ट्रीला नागरत्व, राजमान्यत्व व शिष्टमान्यत्व येऊन, ती विद्वानांच्या व रसिकांच्या आदराचें पात्र झाली. ह्याच बलवत्तर कारणांच्या जोरावर दंडीनें आपल्या काव्यादर्शांत महाराष्ट्रीला सर्व प्राकृत भाषांत उत्कृष्ट ठरविलें.

महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टे प्राकृतं विदुः ॥

ह्याच शिष्टगुणसंपन्नत्वामुळें ती वैय्याकरणाच्या निरीक्षणाचा विषय झाली व व्याकरणदृष्ट्या तिच्याहून प्राचीन परंतु सारस्वताभावामुळें तिच्या-
हून हीन अशा इतर भाषांना उपमान झाली. शिष्ट महाराष्ट्रीचें व्याकरण र-
चलें ह्यणजे इतर प्राकृत भाषांचें व्याकरण बव्हंशांनें त्यांत आलेंच, असा सिद्धान्त झाला. इतर प्राकृत भाषांच्या ठोकळ ठोकळ दहा पांच लकवा दा-
खवून दिल्या, ह्यणजे झालें. महाराष्ट्रीच्या हवाल्यावर सर्व काम भागलें.
अशा दृष्टीनें, ह्यणजे वैय्याकरणांच्या दृष्टीनें महाराष्ट्री भाषेला अग्रमान्यत्व

आलेले आहे. बाकी, कालदृष्ट्या, इतिहासदृष्ट्या, जन्मदृष्ट्या, व उच्चार-
दृष्ट्या महाराष्ट्री भाषा ह्या तिन्ही भाषांहून अर्वाचीन आहे.

पालीत बौद्ध लोकांचे फक्त धार्मिक वाङ्मय आहे. आख्यायिका नां-
वाच्या कहाण्या आहेत; परंतु त्यांना कादंबरीच्या तोडीला आणून बसवितां
येत नाहीं. सौरसेनीत व अर्धमागधीत जैनांचे धार्मिक वाङ्मय—स्तोत्रे वगैरे
आहे. पैसाचीत एकटी बृहत्कथा तेवढी झालेली प्रसिद्ध आहे. परंतु, ती लुप्त
होऊन, आतां त्या भाषेतील एखाद दुसरे वाक्य नाटकांतून जेवढे सांपडते ते-
वढेच. इतर भाषांतील सारस्वताची अशी दुर्दशा असल्यामुळे, महाराष्ट्रीतील
विविध सारस्वतांचे तेज सापेक्षतेनें फारच चमकू लागले व तिच्या पाठीमागून
व्याकरण प्रदेशांत दास्यवृत्तीनें जाणे त्यांच्या कपाळीं आले.

२२ मथुरा अथवा सौरसेन[नंतरचे नांव]प्रांतांत वसाहत झाली, तेव्हां

पाली-मागधी-
सौरसेनी-पैसाची
यांचा जन्मकाल.

सौरसेनी प्राकृत उत्पन्न झाली; मगध देशांत वसाहत
झाली, तेव्हां मागधी झाली; पिसाउरांत
पैसाची निघाली; आणि महाराष्ट्रांत वसाहत झाल्यावर
महाराष्ट्री प्राकृत अवतीर्ण झाली. मागधी प्राकृताचे
पूर्व रूप जी पाली ती शकपूर्व १५०० च्या सुमारास मगधांत सुरू झाली.
त्यांच्या हि पूर्वी सौरसेनीचा प्रारंभ झाला असावा; कारण तो प्रांत ब्रह्माव-
तांच्या जवळ आहे. परंतु, सौरसेनीत सारस्वत नसल्यामुळे तिचा आदि व
मध्य स्पष्टपणे निर्देशितां येत नाहीत. पाली व सौरसेनी ह्यांच्यानंतर पैसाची
पिसाउरांत उदयास आली असावी. बृहत्कथेखेरीज हीत सारस्वत असल्याचे
प्रसिद्ध नसल्यामुळे व खुद्द बृहत्कथा लुप्त झाल्यामुळे, ह्या हि प्राकृताचा
आदिमध्य नक्की ठरवितां येत नाहीं. शहावाजगढी ऊर्फ कपूर्दगिरी येथील
अशोकाच्या शिलालेखांत पैसाची भाषेचा एक पोटभेद दृष्टीस पडतो. तसेंच
नाटकांत कोठे एखादे दुसरे वाक्य पैसाचीत येते. कृष्णयजुर्वेद संहितेवर
पैसाची भाषेत [आधुनिक पैसाची ?] टीका आहे, परंतु, ती हि अद्याप
प्रसिद्ध झालेली नाही. ह्या पलीकडे पैसाचीच्या ज्ञाताज्ञात सारस्वताची जास्त
माहिती उपलब्ध नाही.

२३ महाराष्ट्रभाषेची गोष्ट ह्या दोन्ही तिन्ही भाषांहून निराळी आहे.

तिचा जन्मकाल बराच नक्की ठरवितां येण्यासारखा आहे. कारण, दक्षिणा-

रण्यांत आर्यांची वसाहत केव्हां झाली व सारस्वताचा उदय महाराष्ट्रांत कि-
तपत झाला, ह्यांची हकीकत इतर भाषांच्यापेक्षा महाराष्ट्री भाषेसंबंधानें
जास्त खुलासेवार व विश्वसनीय मिळण्याची शक्यता आहे.

२४ पाणिनी आपल्या व्याकरणांत प्राकृत भाषांचा उल्लेख विलकुल
करीत नाही. त्या अर्थी प्राकृत भाषा ब्राह्मण भाषेपासून
विलग होऊन स्पष्टपणें भिन्न भासण्याच्या पूर्वी पाणिनी झाला
असला पाहिजे हें उघड आहे. मागें १७ व्या रकान्यांत
पाणिनीचा काल सुमारें शकपूर्व १५०० असावा असें
हटलें आहे. आणि, एकंदर गोळा बेरीज पहातां, हाच
काल प्रायः बरोबर असावा असें वाटतें. आतां, पाणिनि
शाख, पांचाल, कन्नोज वगैरे देशांचीं नावें देतो. परंतु
दक्षिणेंतील पांड्य, चोल इत्यादि देशांचीं नावें देत
नाहीं. त्या अर्थी, तीं त्याला व त्याच्या समाजाला माहीत
नव्हतीं. माहीत असतीं तर तो तीं घावयाला चुकताना.

कारण तो अत्यंत आस्थेवाईक वैयाकरण होता. पाणिनि विंध्यपर्वताच्या
उत्तरवाजूचे कुमुद्रत्, नड्वत् व वेतस्वत् ह्या तीन देशांचा उल्लेख करतो;
परंतु, विंध्यपर्वताच्या दक्षिणवाजूच्या प्रांतांचें नांव सुद्धां काढित नाही.
पाणिनि ज्याला वेतस्वत् ह्मणतो त्याच देशांतील मोठ्या नदीला पुढें
संस्कृत भाषेंत वेत्रवती [वेतस्=वेत्र] ह्मणूं लागले. वेत्रवतीलाच सध्यां
बेटवा ह्मणतात आणि ह्या नदीवरील मुख्य शहराला भिलसा, भेळसा, भेळसें
[वेतस्=वेडस=वेळस=वेळसें=भेळसें] असें अभिधान आहे. ह्मणजे विंध्यपर्व-
ताच्या उत्तरवाजूचे जे देश ते पाणिनीला माहीत होते, दक्षिणेकडील नव्हते,
ही सिद्ध गोष्ट आहे. विंध्यपर्वताच्या दक्षिणेस घोर अरण्य आहे, हें त्याला
माहीत होतें. परंतु, तेथें लोकवस्ति झालेली त्याला माहीत नव्हती. असती
तेथील लोकांच्या व देशांच्या नावांत काहीं वैयाकरणिक विशेष असलेला
नावश्य सांगता. ज्या अर्थी सांगत नाही, त्या अर्थी पाणिनीच्या कालीं
ह्मणजे शकपूर्व १५०० च्या सुमारास दंडकारण्यांत विंध्याच्या दक्षिणेस आ-
र्यांची वस्ती झाली नव्हती, अथवा, होत असल्यास, ती इतक्या मुधावस्थेंत

होती कीं तिच्यावरून देश व प्रांत व तत्रस्थ लोक यांना विशिष्ट नावे पडलीं नव्हतीं.

२५ पाणिनीच्या कार्ली पश्चिमेस सध्यांच्या गुजराथेंतून व पूर्वेस कलिं.

आर्य पश्चिमेकडून
कोंकणांत उतरले
व तेथून घाटांनीं
दंडकारण्यांत शि-
रले. शक पूर्व

१५००-१०००

गातून दक्षिणेकडे जाण्याचा आर्यांचा उपक्रम चालला होता. एक दोन शतकांत पूर्वपश्चिम किनारा व बहुतेक सर्व द्रविडदेश त्यांनीं आक्रमण केला. ह्यणजे दंडकारण्याला चान्ही दिशांनीं गराडा घातला. नंतर, दंडकारण्यावर हला करण्यास सुरवात केली. भाषेवरून जर ग्रंथांचा कालानुक्रम लाविला तर असें दिसतें कीं भारताचा कांहीं भाग ब्राह्मण-

कालाच्या ह्यणजे पाणिनीय कालाच्या अगदीं शेवटल्या पादांतील आहे आणि बराच भाग पाणिनीय कालाच्या नंतरचा आहे. भारतीय सभाषांची भाषा ह्या दुसऱ्या भागापैकीं दिसते तेव्हां त्यांतील मजकूर पाणिनीच्या नंतरच्या कालाला अनुलभून असावा, हें साहजिक आहे. सहदेवांनै पश्चिम किनाऱ्याचे जे देश जिकले त्यांत शूर्पारक, दंडक आणि करहाटक ह्या तीन देशांची नावे आहेत. पैकीं शूर्पारक ह्यणजे सध्यांचे सुपारें असून, प्राचीन कार्ली उत्तर कोंकणाचा बराच भाग त्यांत समाविष्ट होत असे. दंडक ह्यणजे दंडकारण्य नव्हे; तर शूर्पारकाच्या दक्षणेचें जे कोंकण तें. हा शब्द सध्यां डंडाराजापुरी किंवा दंडाराजापुरी ह्या शब्दांत राहिलेला आहे. दंडक या संस्कृत शब्दाचें दंडअ हें महाराष्ट्री प्राकृत असून डंडअ हें सौरसेनी प्राकृत आहे. आणि ह्या दोहोंची डंडा व दंडा अशी गुजराथी व मराठी रूपें सध्यां विद्यमान आहेत. दंडा किंवा डंडा हा शब्द कोंकणांतील व सह्यपर्वतांतील मूळच्या लोकांचा असून त्याचा अर्थ डोंगरांचा उतरता लांब पांटा असा आहे. दांड, डांड डांग, डंग, डुंग, डोंगर, डोंगरी, वगैरे शब्द संह्याद्रीतील कोळी लोकांत अद्याप हि प्रचलित आहेत. हे कोळ उर्फ कोल लोक सह्यपर्वतांवरील मुळचे रहिवासी असावे. दंडाराजापूर प्रांतांतून घाटांनै वर चढलें ह्यणजे करहाटक च लागतो. ह्यणजे दंडकारण्यावर पश्चिमेकडून हला आर्यांनीं समुद्र किनाऱ्यावरील घाटांनीं केला, हें स्पष्ट आहे. आणि हाच मार्ग सोपा, सु-
वर्षणाचा होता, आर्य पश्चिमेकडून (दक्षिणेंत) कसे उतरले.

त्याचा हा तपाशील येथे मुद्दाम दिला आहे. कारण, कोकणातील भाषेवर ह्या उत्तरणाचा परिणाम घडलेला आहे. कन्हाडाकडून कृष्णेच्याखोऱ्यांतून; नाशकाकडून गोदावरीच्या खोऱ्यांतून आणि विदर्भाकडून पाइनगंगेच्या खोऱ्यांतून, थोड्याच शतकांत आर्यांच्या दंडकारण्यांत कायमच्या व भरभराटीच्या वसाहती झाल्या आणि शकपूर्व १००० च्या सुमारास दंडकारण्याचें दंडकारण्यत्व खानमंत्रविधीत तेवढें राहिलें.

बुद्धाच्या पूर्वी काहीं शतके व त्याच्यावेळीं दंडकारण्य कृष्णा व शवरी ह्यांच्या खोऱ्यांनीं लोकांनीं अगदीं गजवजून गेलें होतें, अर्शा वर्णनें बौद्ध जातकांतून आहेत. [Foulkes, in Indian antiquary Vol XVI] तीं स्थूल मानानें विश्वसनीय मानण्याला काहीं हरकत दिसत नाही. महरट्ट, महाराष्ट्र हें नांवसुद्धां त्याकालीं सिद्ध झालेलें असावें, असा संशय येतो. शकपूर्व सहाशेंच्या सुमारास कात्यायननामक वैश्याकरण झाला. त्यानें विंध्यपर्वताच्या दक्षणेकडील महिष्मत् प्रदेशाचा व नाशिक शहराचा उल्लेख केला आहे. ह्यर्शांची उत्पत्ति पुष्कळ ज्या देशांत होते तो देश महिष्मत्. महिष्मती ही त्या देशाची राजधानी अर्वाचीन कालीं, महू, महेश्वर, वगैरे नांवांत ह्या देशाचें नांव ओळखूं येण्याजोगें आहे. सध्यां ह्या प्राचीन महिष्मत् प्रांताला नेमाड अशी संज्ञा असून अद्याप हि ह्या प्रांताची उत्तम ह्यर्शांवहल व हल्यांवहल ख्याती आहे. इतकी कीं दहापांच हजार जनावर ह्या प्रांतांतून दरवर्षी बाहेरदेशांत रवाना होतें.

बौद्ध जातके व कात्यायन्याकरण ह्यांच्या नंतर दंडकारण्यातील आर्यलोकांचा व अर्थात् त्यांच्या वसाहतींचा, प्रांतांचा, व स्थलांचा उल्लेख मगध देशाचा व आर्यावर्ताचा चक्रवर्ती राजा जो अशोक मौर्य त्याच्या शिलाशासनांत झाल्य आहे [शकपूर्व ३५०] त्यानंतर थोड्याच अवधीनें [शकपूर्व ३००] वररुचिनामक प्राकृत वैश्याकरण झाला. ह्यानें महाराष्ट्रीभाषेचें व्याकरण लिहून तिच्या नावांचा उल्लेख हि. केला आहे [शेष महाराष्ट्रीवत्]. अर्थात् राष्ट्रदेश त्यांतून उद्गीत होता हें उघड आहे [शकपूर्व] :

चीचें गोत्र यद्यपि कात्यायन होतें तत्रापि तेवढ्यावरून तो व वार्तिककार कात्यायन एकच होते, असें ह्मणतां येत नाहीं. कारण, अशोकाच्या शिलालेखांत निरनिराळ्या दिशांकडील ज्या पांच चार प्रकारच्या प्राकृत भाषा येतात त्या वररुचीच्या व्याकरणांतील पैसांची वगैरे भाषांहून किंचित् जुन्या भासतात. अर्थात् वररुचीच्या व्याकरणांतील प्राकृत भाषांच्या रूपांहून ज्या अर्थी अशोकाच्या शिलालेखांतील प्राकृत भाषा पुरातन आहेत, त्या अर्थी वार्तिककार कात्यायन जर वररुचि असतां तर त्याच्या प्राकृत व्याकरणांतील भाषांचें रूप अशोकाच्या शिलालेखांतील प्राकृत भाषांच्या रूपांहून जुनें निदान त्यांच्या सारखें तरी, असलें पाहिजे होतें. तसा ज्या अर्थी प्रकार नाहीं त्या अर्थी प्राकृत भाषांचा वैयाकरण जो वररुचि तो कात्यायन वार्तिक काराहून निराळा असून अशोकानंतरचा असावा, असें ह्मणणे भाग पडतें. बुद्धाच्या निर्वाणानंतर ३०० शें वर्षांनीं पालीवैयाकरण जो कच्चायनो तो झाला, असें व्हानसंग ह्मणतो. बुद्ध शकपूर्व ५६१ त ८०० व्या वर्षी वारला व ६०५ त निर्वाणांत त्यानें आपल्या वयाच्या ३६ व्या वर्षी प्रवेश केला. ह्मणजे पालीवैयाकरण जो कच्चायनो तो शकपूर्व ३०५ च्या सुमारास हयात होता. पालीवैयाकरण व प्राकृतवैयाकरण जर एकच व्यक्ति असेल, तर महाराष्ट्रादि प्राकृत भाषांचें व्याकरण रचणारा वररुचि कात्यायन किंवा कच्चायनो शकपूर्व ३०० त होता व तो अशोकानंतर (शकपूर्व ३५०) झाला. वार्तिककार कात्यायना (शकपूर्व ६००) ला विंध्य पर्वताजवळील म-हिष्मत देशाच्या व नाशिक शहराच्या पलीकडे दक्षिणापथांतील देशांची माहिती नव्हती. वार्तिककार कात्यायन जर अशोकानंतर झाला असता

वररुची
कात्यायन
शकपूर्व
३००

तर दक्षिणेंतील पांड्य वगैरे देश त्यानें उल्लेखिले असते; कारण अशोकानें तें उल्लेखिले आहेत. तेव्हां वार्तिककार कात्यायन (शकपूर्व ६००-७००) व पाली व इतर प्राकृत भाषांचा वैयाकरण जो वररुचिकात्यायन किंवा कच्चायनो (शक पूर्व ३००) तो, हे दोन भिन्न व्यक्ति भिन्न काळीं झाले, हें उघड आहे. पतंजलि " वाररुचे काव्यं " ह्मणून जो उल्लेख करतो तो ह्या प्राकृत वैयाकरणाच्या नांवाचा करतो किंवा वार्तिककार कात्यायनाचा करतो, तें स्पष्ट करण्यास सध्यां साधन नाहीं.

बौद्धधर्माभिमानी अशोक (शक पूर्व ३५०) व प्राकृतवैयाकरण वररुचि कात्यायन [शकपूर्व ३००], ह्यांच्यानंतर भाष्यकार पतंजलि [शकपूर्व २२५] झाला. ह्यानें विदर्भ, अपराना, आंध्र, पांड्य, केरल, वगैरे दक्षिणतील अनेक प्रांतांची व लोकांची नांवे निर्देशिलीं आहेत. ह्याचा काल लक्षांत घेतां, असा निर्देश होणे अपरिहार्य होतें. परंतु, त्याच्या ग्रंथांत महाराष्ट्राचा नामानिर्देश आलेला आढळला नाहीं. तत्रापि, तत्पूर्व जो वररुचि त्यानें आपल्या प्राकृत व्याकरणांत महाराष्ट्री भाषेचा उल्लेख केला असल्यामुळे, महाराष्ट्रदेशाचा उल्लेख त्या शब्दांत गर्भित आहे. अशोकानें रास्टिक किंवा रट्टक असा उल्लेख रट्टांचा, पेटेनिक असा उल्लेख पैठणच्या लोकांचा, अपरान्त असा उल्लेख उत्तर कोंकणांतील लोकांचा, भोज असा उल्लेख अर्वाचीन वैदर्भीतील लोकांचा, व सतिय असा उल्लेख कृष्णातीरीय लोकांचा केला आहे.

२६ येणेंप्रमाणें वररुचि कात्यायनाच्या वेळेपासून [शकपूर्व ३००] महाराष्ट्री भाषेचा उल्लेख नामानिर्देशानें झालेला साधार सांपडतो. वररुचीनें महाराष्ट्री भाषेचें व्याकरण रचलें, ह्यणजे ती भाषा त्याच्यापूर्वी व्याकरणरचनेच्या योग्य होण्यास दोन चार शतकांचा तरी अ्वाधि पाहिजे.

ह्यणजे शकपूर्व ७०० च्या सुमारास, अथवा साक्यमुनि बुद्धाच्या वेळेपर्यंत आपण येऊन ठेपलों. त्या सुमारास महाराष्ट्री भाषेचा प्रारंभ झाला असावा. भाषेच्या नावांत देशाच्या व लोकांच्या नावांचा समावेश प्रायः होतोच होतो. दंडकारण्यांत आर्यांनीं शकपूर्व १५०० पासून १००० पर्यंत वसाहत केली आणि वसाहत करतांना व नंतर स्वास्थ्य मिळाल्यावर शकपूर्व ७०० च्या सुमारास महाराष्ट्री भाषा विशिष्ट रूपानें भासूं लागली. पुढें शकपूर्व ३०० च्या सुमारास तिला वररुचि हा व्याकरणकार मिळाला. येथपासून ह्यणजे शकपूर्व ३०० पासून शकोत्तर २०० पर्यंत ह्यणजे ५०० वर्षे महाराष्ट्रीची अत्यंत भरभराटीचीं गेलीं. त्यांचा तपश्चिः खालीं देतो.

(४१)

२: चंद्रगुप्तमौर्याचा किंवा अशोकमौर्याचा वंश शकपूर्व २५० च्या
मौर्य ४००--२५०. सुमारास समाप्त झाला. तदनंतर, शुंगांचें राज्य
शुंग व काण्वायन सुरू झालें. त्यांना एकीकडे सारून काण्वायन ना-
२५०-१५०. मक ब्राह्मण राजांनीं साम्राज्याची पेशवाई
केली (शकपूर्व :२००). ह्या काण्वायनांचा
पराभव सिमुख शातवाहनांनं केला [शकपूर्व १५०]; साम्राज्य चालविण्याचा
आव घातला. ह्या सुमारास कलिगांनीं कलिगांत व शकांनीं पंजाबांत
विक्रमादित्य राज्यें स्थापिलीं. कालान्तरानें शकांनीं आपल्या राज्याचा
शकपूर्व १३५ विस्तार माळव्यांत उज्जनी पर्यंत नेऊन, सर्व आर्यावर्त
शकमय करण्याचा प्रसंग आणिला. तेव्हां, शकपूर्व १३५
च्या सुमारास उज्जनीस विक्रमादित्य नामेकरून एक अलौकिक वीरराजा
उत्पन्न झाला आणि त्यानें शकांचा मोठा पराभव केला. तेव्हांपासून विक्र-
मसंवत् सुरू झाला. शकांचीं उचलशांगडी यद्यपि माळव्यांतून झाली, तथापि
अपरान्तांत (नास्ति परः अंतं. प्रांतः यस्मात्=ज्याच्यापलीकडे प्रांत नाहीं,
समुद्र आहे तो देश) व अपरान्ताजवळील जुन्नर वगैरे घाटावरील प्रांतांत
त्यांची चिकाटी कांहीं काल [सुमारें पन्नास वर्षे] होती.
शातवाहन ती चिकाटी विक्रमसंवत् १३५ त व इ. स. ७८ त एका
उर्फ शातवाहन राजानें शकांचा पूर्ण पराभव करून कायमची
शालिवाहन सोडविली. ह्या वेळेपासून शातवाहनसंवत् सुरू झाला.
शक ० शकांचा प्रचंड व प्राणघेण्या पराभव करणाऱ्या ह्या
दोन्ही पराक्रमी वीरराजांचा गाथासप्तशतींत उल्लेख आला आहे. तो
असा:—

[महाराष्ट्री]

संवाहणमुहरसतोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खम् ।

चलणेण विक्रमादित्तचरिअं अणुसिन्धिवअं तिस्सा ॥ ६४ ॥

गाथा सप्तशती—शतक ५.

१ सेतुबंध, उच्छ्वासक ७, श्लोक ४३, रामदासकृत टीका:—“अन्तः
प्रांतेऽन्तिके नाशं स्वरूपे च मनोहरे ॥”

[संस्कृत]

संवाहनमुखरसतोपितेन ददता तव करे लाक्षाम् (अथवा) लक्षम् ।
चरणेन (अथवा चलनेन) विक्रमादित्यचरितं अनुशिक्षितं तस्याः ॥

(महाराष्ट्री)

आवण्णाई कुलाई दो चित्रा जाणान्ति उण्णई णेउम् ।

गोरीअ हिअदइओ अहवा सालाहण णरिन्दो ॥ ६७ ॥

गाथासतशती—शतक ५.

(संस्कृत)

आपन्नानि (किंवा आपर्णानि) कुलाने द्वावेव जानीत उन्नतिं नेतुम् ।

गौर्या हृदयदयितोऽथवा शातवाहननरेन्द्रः ॥ ६७ ॥

गाथासतशती ऊर्फ ७०० गाथांचा संग्रह हालशातवाहानानें केला, असें सतशतीच्या पहिल्या शतकाच्या तिसऱ्या गाथेंत हाल स्वतःच लिहितो. अर्थात्, हाल शातवाहनाच्या पूर्वी झालेले हे विक्रमादित्य व शातवाहननरेंद्र असले पाहिजेत. पैकीं, शकपूर्व १३५ व्या वर्षीं शकादि म्लेच्छांचा ज्यानें कोरूर येथें पराभव केला आणि ज्याच्या नांवानें विक्रमसंभत् नर्मदेच्या उत्तरेस प्रचलित झाला, तोच हा विक्रमादित्य असावा. आणि शक्यवनपल्हवादि म्लेच्छांचा पराभव करून गोत्राम्हणांचा प्रतिपाल करणाऱ्या अशा कोण्या तरी शातवाहनकुलोत्पन्न राजाचा उल्लेख शातवाहननरेंद्र या नांवानें गाथेंत केलेला असावा. शातवाहन आणि शातकर्णि हे दोन शब्द एकच अर्थाचे वाचक असल्यामुळें, वायुपुराणांत तिसरें ज्याचें नांव येतें तो शातकर्णि हा शातवाहननरेंद्र असेल. नाणेघाटांत ह्याचें चित्र दिलेलें आहे. ह्याजे शक० नंतर हाल झाला व त्याच्या-पूर्वीच्या विक्रमादित्य व शातवाहन ह्या दोन पराक्रमी वीरपुरुषांचा उल्लेख त्यानें संग्रह केलेल्या गाथांतून येतो. हा हाल प्राकृत भाषांचा मोठा भोक्ता होता. पिटर्सननें बुंदीहून आणिलेल्या गाथासतशतीच्या प्रतीची समाप्ति येणें प्रमाणें दिली आहे (Peterson's 3rd Report):—

“ राएण विरइआए कुन्तलजणवअइणेण हालेण ।

सत्तसई अ समत्तं सत्तममज्झासअं एअम् ॥

इति सतम शतकम् । इति श्रीमत्कुन्तलजनपदेश्वर प्रतिष्ठानपत्तनाधीश्वर शतक-
णांपनामक द्वीपिकर्णात्मज मलयवतीप्राणप्रिय कालापप्रवर्तकशर्ववर्मधीसख मलय-

वत्युपदेशपाण्डितभूत त्यक्तभापात्रयस्वीकृतपैशाचिकपण्डितराजगुणाढ्यनिर्मित-
भस्मीभवद्बृहत्कथावशिष्टसतमांशावलोकनप्राकृतादित्रायं चक्रीत कविवत्सल
हालाद्युपनामक श्रीसातवाहननरेंद्रनिर्मिता विविधान्योक्तिमयप्राकृतगीर्णुकिता
शुचिरसप्रधाना काव्योत्तमा सतशत्यवसानमगात् ॥ १ ॥

ह्या समाप्तीतील हकीकत पूर्वपरंपरागत (कथासरित्सागरसदृश) आ-
लेली असून विश्वसनीय दिसते. हींत महाराष्ट्री, मागधी, शौरसेनी, पैशाची
व अपभ्रंश अशा पांच भाषांवर प्रेम ठेवणारा हाल राजा होता, असें हटलें
आहे. कातंत्रव्याकरणाचा प्रवर्तक शर्ववर्म व बृहत्कथा पैशाचींत लिहिणारा
गुणाढ्य ह्याच्या पदरीं होते असें हि हटलें आहे. परंतु, ह्या बाहेरच्या
शिफारसी झाल्या. खुद्द गाथासतशतींत प्राकृत भाषांवरचें आपलें प्रेम हा-
लानें येणें प्रमाणें कदाश्चानें व्यक्त केलें आहे:—

[महाराष्ट्री]

अमिअं पाअडकव्वं पठितुं सोउं अ जे ण आणन्ति ।

कामस्स तत्ततन्ति कुणन्ति ते कइं ण लज्जन्ति ॥ २ ॥

गाथासतशती—शतक १

(संस्कृत)

अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ये न जानन्ति ।

कामस्य तत्त्वचिंतां कुर्वन्ति ते कथं न लज्जन्ते ॥

जिवंत व महारा
ष्ट्रीं मेलेली संस्कृत

भाषा.

ह्या गाथेंत प्राकृतकाव्याला हाल अमृत हाणजे जिवंत

हाणतो. अर्थात्, संस्कृतकाव्याला तो मृत किंवा मेलेलें

समजतो हें उषड आहे.

महाराष्ट्रींत कोश्यवधि गाथा आमच्यापूर्वीं झाल्या होत्या असें हि हा
राजा नमूद करतो:—

(महाराष्ट्री)

सत्त सताइं कइवच्छलेण कोडीअ मच्चआरम्मि ।

हालेण विरइआइं सालंकाराणं गाहाणम् ॥ ३ ॥

गाथासतशती—शतक १

(संस्कृत)

सप्तशतानि कविवत्सलेन कोटे मध्ये ।

हालेन विरचितानि सालंकाराणं गाथानाम् ॥

हणजे शकपूर्व ७०० पासून शक ० पर्यंत महाराष्ट्रीत विस्तृत सारस्वत निर्माण झालें होतें, असें हाल हणतो. गाथासप्तशतीत (निर्णयसागरी) दिलेल्या कवींची यादी पाहिली हणजे हालानें विधान अतिशयोक्तीचें नसून निव्वळ यथार्थ होतें, असें दिसून येतें.

गाथासप्तशतीत हालानें स्वतःच्या बऱ्याच गाथा व विक्रमराजाची एक गाथा (२।३४) दिली आहे. हा विक्रमराजा बहुचः प्रसिद्ध विक्रमादित्य असावा. ह्या च मुमाराला “ सेतुबंध ” नामक स्वोत्कृष्ट प्राकृत काव्याचा कर्ता जो कालिदास तो झाला. प्रवरसेन राजानें काव्य रचलें व कालिदासानें तें सुधारलें, असें ह्या काव्याच्या पहिल्या उच्छ्वासकाच्या नवव्या गाथेंत हटलें आहे.

(महाराष्ट्री)

अभिनवराभारदा चुक्कखलिएपु विहडिअपरिट्टिआ ।

मेत्ति व्व पमुहरसिआ णिव्वोडुं होइ दुक्करं कव्वकहा ॥ ९ ॥

[संस्कृत]

अभिनवराजारब्धा च्युतस्खलितेषु विघटितपरिस्थापिता ।

मैत्रीव प्रमुखरसिका निर्वोदुं भवति दुष्करं काव्यकथा ॥

राजतरंगिणीत लिहिल्याप्रमाणें प्रवरसेन कलिवर्ष ३१५९ त राज्यावर आला. त्यावेळीं तो अभिनवराजा हणजे गादीवर नवीन आलेला राजा असतांना, त्यानें सेतुबंधनामक प्राकृतकाव्य आरंभिलें आणि कालिदासाकडे सुधारण्यास दिलें. असलें श्रीमंतांचे काव्य सुधारून आद्यन्त सारख्या योग्यतेचें करणें जन्मापासून मरेपर्यंत मित्रत्व अबाधित ठेवण्याप्रमाणेंच अवघड आहे, अशी कालिदासानें उत्कृष्ट उपमा योजिली आहे. कलिवर्ष ३१५९ हणजे विक्रमसंवत् ११५ येतो.

पहिला
कालिदास
संवत् २०—
संवत् ११५

१ अभिज्ञानशाकुंतल, २ विक्रमोर्वशी व ३ मालविकाग्निमित्र, हीं तत्कृत ग्रंथ. तीन संस्कृतप्राकृत नाटकें ह्या कालिदासार्ची होत. पैकीं, भेळशाचा राजा भग्निमित्र आणि मालविका ह्यांचें ऐति-

हासिक वृत्त ह्या कालिदासाला समीपतर असून, तें त्याच्या नाट्यकलेचा विषय होण्याजोगें होतें. विक्रमोर्वशीतील राजा विक्रम ऐतिहासिक विक्रमादित्याचें काव्यरूपक असण्याचा संभव आहे. अभिज्ञानशाकुंतलहि ह्याच कालिदासाचें असावें, असें त्यांतील शुद्ध सौरसेनीवरून वाटतें. भेघदूत जर ह्याचेंच असेल तर एतत्समकालीन जो अश्वघोष त्यानें त्याची नकल केली असेल. मग, एवढें मात्र कबूल करावें लागेल कीं,

दिडनागानां पथि परिहरन् स्थूल हस्तावलेपान् ।

ह्या ओळींतील दिडनाग शब्द बुद्धधर्मानुयायी पांचव्या शतकांतला जो दिडनाग त्याचा वाचक नसून, इतर शब्दांप्रमाणें सहज तेथें पडला आहे आणि दिडनाग बौद्धाशीं त्या शब्दाचा संबंध जोडण्यांत टीकाकारांनीं केवळ पदरची मखलाशी केलेली आहे. परंतु, महिनाथाची माहिती इतिहाससमर्थित आहे असें मानलें तर, हें भेघदूत काव्य दिडनागाचा समकालीन जो दुसरा कालिदास त्याच्या पदरीं वांधावें लागेल व अश्वघोषाचा नकल्या त्याला उरवावा लागेल. कनिष्कानें जमविलेल्या बुद्धमंडळांत असणारा हा अश्वघोष कनिष्काच्या [संवत् ० (Fleet) पासून संवत् ३४० (भांडारकर)] कोणत्याहि काळांत असला, तत्रापि ह्या पहिल्या कालिदासाच्या काळाला अवरोध होत नाहीं.

गाथासप्तशतींत [१-२१, १-६८ ह्या दोन गाथा कालिराज व कालइव ह्या प्राकृत नावांवर आहेत. त्या कालिदासाच्या अगाथाशप्त- साच्या, असा बळकट संशय येतो. इतकेच कीं कालिदास शतींत का- असें नांव नाहीं. परंतु, ' ज्ञानदेव ' वद्दल ' ज्ञानराज ' असा लिदासा- पर्याय योजण्याची चाल फार पुरातन आहे, हें लक्षांत घेतलें चा उल्लेख असतां, कालिराज ह्यणजे कालिदास असण्याचा संभव आहे.

काश्मीरचा प्रवरसेन विक्रम कालिदासाचा आश्रयदाता जो प्रवरसेन त्याच्या हि कांहीं गाथा सप्तशतींत दिल्या आहेत.

संवत् ११५-१४५

इतर अनेक कवींचा उद्धार गाथासतशतीत झालेला मार्गें सांगितलाच आहे.

२८ शकपूर्व १५० पासून शकोत्तर १५० पर्यंत ३०० वर्षे राज्य करणाऱ्या ह्या शातवाहनांच्या-अमदानांत महाराष्ट्री भाषेचा अत्यंत उत्कर्ष झाला. उत्कर्षाचें कारण शातवाहनांचा पराक्रम व राज्यविस्तार होय. पराक्रमाचें चिन्ह शातवाहनांनीं स्थापिलेला शकसंवत्सर असून, राज्यविस्ताराचें स्मारक महाराष्ट्री भाषेचा उपयोग इतर भाषांना मार्गें सारून सर्व भारतवर्षांत ग्रथलेखनांत होऊं लागला, हें होय. शकसंवत्सर शक नांवाच्या म्लेच्छ लोकांनीं स्थापिला, असा भांडारकरादि विद्वानांचा समज आहे. परंतु, तो निराधार आहे, असें खात्रीनें झणतां येण्यास प्रमाणें आहेत.

(१) प्रथम, धर्मकृत्यांत म्लेच्छांनीं स्थापिलेला काल भारतवर्षांत कधींही मान्य झाला नाहीं व होणार नाहीं. फसली, अरबी, हिजरी, जलाली, इसवी वगैरे अनेक सन येथें आगतुकांनीं सुरू केले, परंतु, धर्मकृत्यांत त्यापैकीं एकाचाही प्रवेश झाला नाहीं. शकसंवत्सराचा ज्याअर्थी धर्मकृत्यांत प्रवेश झालेला आहे, त्याअर्थी हा संवत्सर म्लेच्छांनीं सुरू केलेला नसला पाहिजे, हा निश्चय. (२) शककालाचा Vonones मूलोत्पादक धरला असतां, कनिष्काला इसवी २८३-३०६ त ढकलावा लागतो. कनिष्काला इसवी ३०० त आणिला झणजे इसवीच्या पहिल्या शतकांतील अश्वघोषाला इसवी ३०० त ओढावा लागतो. परंतु, व्दानसंग, चिनी संयुक्तरत्नाकार, Record of Indian patriarchs, वगैरे चिनी ग्रंथांत कनिष्काचें अश्वघोषाशीं समकालीनत्व प्रख्यापिलेलें आहे (Takakusu on वसुबंधु in J. R. A. S. for 1906). तेव्हां, कनिष्काला इसवीच्या प्रारंभाच्या जवळ नेणें जरूर आहे. अर्थात्, व्हेनोनिस शककालोत्पादक होऊं शकत नाहीं. (३) Maues व Gondophares हे समकालीन होते. पैकीं, Maues शक होता व Gondophares पारद (Parthian) होता. ह्या दोघांनीं कालगणना शककालनें केली, असें भांडारकरांचें झणणें आहे. येथें असा विरोध येतो कीं, पारद शकांचा नायनाद

शकसंवत् शक, यवन, पारद, खश, खरोष्ट्र वगैरे म्लेच्छांनीं स्थापिलेला नाहीं.

करणारा असून शकांचाच काल कसा चालवील ? आपला काल सुरू करील. तेव्हां, Maues व Gondophares ज्या काळानें गणना करतात, तो भारतवासी तिसऱ्याच कोणातरी चक्रवर्ती व पराक्रमी राजाचा असला पाहिजे. तो बहुशः विक्रमसंवत् असावा (Fleet, J. R. A. S. for 1906) (४) शकसंवत् नर्मदेच्या दक्षिणेस प्रचलित आहे व उत्तरेस विक्रमसंवत् आहे. असें असून उत्तर हिंदुस्थानांत मथुरा, साकेत वगैरे स्थलीं राज्य करणारे म्लेच्छ शकसंवत्ताचा उपयोग करीत, असें ह्मणणें वस्तुस्थितिविरोधक होतें. प्रायः म्लेच्छ लोक ज्या प्रांतांत जात त्यां प्रांतांत प्रचलित असलेला काल प्रथम योजित. जसें, ईप्रज तीसऱ्याचीस वर्षापूर्वी फसली किंवा हिजरी सनानें हिंदुस्थानांत कालगणना करीत. शक, पारद, यवन, वगैरेंचीं राज्यें हिंदुस्थानांत फार वर्षे न टिकल्यामुळे, त्यांना आपले सन (असलेच तर) इकडे प्रचलित करण्याला प्रायः अवधि व स्वास्थ्य सांपडलें नाहीं. म्लेच्छ लोकांनीं शक काल स्थापिला नसावा, असें ह्मणण्यास ही इतकीं विरोधी कारणें आहेत. आतां शककाल शातवाहनराजांनीं नर्मदेच्या दक्षिणेस स्थापिला, ह्या विधानाला पोषक अर्शा कारणें देतोः—

(१) अत्यंत बलवत्तर कारण हें कीं, म्लेच्छांनीं सुरू केलेला शकसंवत् धर्म कृत्यांत योजतात, तस्मान् तो म्लेच्छ नाहीं. कोणताहि काल हिंदू लोकांच्या धर्मकृत्यांत ग्राह्य धरला जाणें केवळ अशक्य आहे. अर्थात्, शककाल ज्याअर्थी धर्मकृत्यांत ग्राह्य धरला जातो, त्या अर्थी तो कोणा तरी हिंदू राजानें स्थापिलेला काल आहे. [२] युरोपियन व आशियाटिक विद्वान लोक शक ह्या द्वयर्थी शब्दानें चकलेले आहेत. शक ह्मणजे म्लेच्छ असा एक अर्थ सर्वत्र मान्य आहे परंतु शक या शब्दाच्या दुसऱ्या अर्थीकडे बहुतेकांनीं कानाडोळा केला आहे. दुसरा अर्थ हा. शक ह्मणजे शातवाहन अथवा शालवाहन राजे, अथवा त्या राजापैकीं कोणी तरी एक प्रख्यात शककर्ती किंवा कालकर्ती व्यक्ति. नाणेघांटांतील पांडवलेण्यांत जी सहा सनाम चित्रें कोरलेलीं आहेत त्यांत “ कुमारो हकु सिरि ” हें एका राजपुत्राचें नांव आहे. हा हकु शब्द सकु शब्दाचेंच [स चा ह होऊन] दुसरें रूप आहे. असा स

चा ह आंध्रभृत्यांच्या दुसऱ्या एका नांवात झालेला आहे. वायुपुराणांतल्या यादीतील सातवें नांव “हाला ” चें आहे. हें नांव ‘ साल ’ असें हि प्रसिद्ध आहे ह्या “ साला’चें च संस्कृत “ शाल ” होऊन, “ शालो हालनृपेपिच,” असें त्रिकांडशेषांत रूप आलेलें आहे. देशीनाममालेंत “साला-हणम्मि हलो ” असें सादि रूप येतें. तात्पर्य, स व ह या उच्चारांचीं अद-लावहल आंध्रभृत्यांच्या लेखांत होतें. हा सकु किंवा हकु राजपुत्र मोठा पराक्रमी असल्यामुळें, त्याची मूर्ति इतर पराक्रमी स्त्री पुरुषांबरोबर नाणे-घाटांत कोरलेली आहे. ह्या सातकर्णपुत्र सकु राजपुत्रावरून सकुसंवत्सर मुरू झाला. सकु हें रूप १ शक १०४९ तील शिलारांचें ताम्रपट (Jbbras for 1904), २ शक ११९५ तील पंढरपुरच्या चौऱ्याशीच्या शिलालेखांत सहासातदां [ग्रंथमाला], ३ शत १२३३ तील चोख्यामेळ्याच्या शिलालेखांत (ग्रंथमाला), ४ शक १२८९ तील नागांव येथील शिलाले-खांत [ग्रंथमाला], शक १३१९ तील मठ येथील शिलालेखांत [म. इ. सा. खंड ८, प्रस्तावना, पृष्ठ ३३], व इतर अनेक स्थलीं आलेला आहे.

सात=साक (३) अशोकाच्या वेळीं दक्षिणेंत रट्ट, सत्त, आंध्र व मोज असें पश्चिम, दक्षिण, पूर्वं व उत्तर दिशेस क्षत्रिय वसाहत करून व अनार्य लोकांना जिंकून होते. त्या पैकीं, सतिय किंवा सत्त किंवा सलिय ह्मणून जे क्षत्रिय होते त्यांचेच नांव सातवाहन या शब्दां-तील ‘ सात ’ या अवयवांत दृष्टीस पडते. ह्या सात शब्दाचीं दोन रूपें असत; एक साल व दुसरें साक. साक (किंवा सक) रूप मदरीपुत सक-सेन (संस्कृत शकसेन) ह्या नावांत गोचर होतें. नाणेघाटांतील सहा चित्रांत एका चित्राचें नांव “ महारठी ” आहे. ह्या रठी किंवा रट्टाची मदत घेऊन सत्त किंवा सात किंवा साल किंवा साक यांनीं म्हेलांचा पराभव केलेला आहे. हा सत्तिअ शब्द शक्तिक, सत्तिअ अशा परंपरेनें उद्भवलेला आहे.

(१) शक्त=सत्त=सात=साल (संस्कृत शाल, संस्कृत अपभ्रंश शालि)

(२) शक्त = सक = साक { संस्कृत शाक, शाक हें विशेषण सम-
जून त्याचें मूळ प्रकृति शक, अर्शा अन्न
संस्कृतज्ञांची व्युत्पत्ति. }

मुक्त = मुक्त, मुत्त

रक्त = रत्त, रग्ग

वगैरे क्त ची क्त किंवा क्त अशा अंताचीं दुहेरीं रूपें महाराष्ट्रीत व महाराष्ट्रीच्या अपभ्रंशांत होतात.

[४] साल [वृक्षविशेष] वृक्षाला महाराष्ट्रांत साक, साग ह्मणण्याचा परिपाठ पुरातन आहे. डोंगरावरील लोक तर साक असाच उच्चार करतात ह्मणजे ल चा क महाराष्ट्रीत व मराठीत होतो. शातपर्ण किंवा सप्तपर्ण=सातवण किंवा सत्तवण=सातवाण=साअवाण=साकवाण=सागवाण.

[५] पुराणांत हि परंपरा अशीच सांगितली आहे.

शातवाहन राज्याच्या जन्मापासून शालिवाहनशककाल सुरू झाला अशी पौराणिक परंपरित माहिती आहे. ज्योतिषांची हि परंपरित माहिती अशीच आहे. मूर्धतमातैडाच्या शेवटीः—

त्र्यंकेंद्रपरिमिते वर्षे शालिवाहनजन्मतः ॥

असा उल्लेख आहे. अच्युतरायाच्या हरिहर येथील शक १४६० वील खिलालेखांत “ शालिवाहननिर्णितशकवर्षक्रममागते ” असे शब्द आहेत. “ शालिवाहनापासून ह्मणजे शालिवाहन राजाच्या जन्मापासून निघणाऱ्या ” असा “ शालिवाहननिर्णित ” ह्या समस्तपदाचा अर्थ आहे. मजजवळ शक ४१० तील ताम्रपटांत “ साळीवान सक ” असे शब्द आहेत. गुर्जरराजा दुसरा दड्ड याच्या लेखांत ३८० ही शकसंवत्सरानेंच गणना केलेली आहे. तात्पर्य, शक हें हिंदुराजाचें नांव आहे, अशी भावना व स्पष्ट माहिती परंपरेनें ह्या देशांत आहे ज्याच्या जन्मापासून ही कालगणना सुरू झाली, तो बहुशः कुमार हकु अथवा सकु सातवाहन असावा. सातवाहनसकवर्ष ह्मणजे शातवाहनवंशातील शक अथवा सक अथवा सकु अथवा हकु राजपुत्राच्या किंवा राजाच्या जन्मापासून धरलेलें वर्ष.

२९ शककाल, शाककाल, शकनृपकाल, शातवाहनशककाल, शालिवाहन शक, सकु, सके, शाके साळीवान सके अशा नाना रुपांनीं हा काल उल्लेखिलेला सांपडतो व हीं सर्वे रूपें शक ह्या मूळ शब्दाचे अपभ्रंश

आहेत. दक्षिणेकडील लोक कृष्णेंत किंवा गोदेंत स्नान करतांना परम श्रद्धेनें “शालिवाहनशका” चा जो उच्चार करतात, तो पवित्र व अम्लेच्छ आहे, अशा समजुतीनें करतात. सोंवळ्यांत व धर्मकृत्यांत म्लेच्छ शब्द उच्चारण्याची किळस हिंदुलोकांना फार प्राचीन काळापासूनची आहे [तस्मात् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै] ती चाल शकनामक म्लेच्छांच्या क्षणिक अमदानींत त्यांनीं सोडली असेल, हें कालत्रयी हि संभवत नाहीं. शककाल म्लेच्छस्थापित नाहीं, हिंदुस्थापित आहे, एवढें गृहीत धरून पुढें चालण्यास, हें एकच कारण बस आहे. परंतु, आर्यांचा व म्लेच्छांचा वेदी व्यवहार होत असे, आर्य धर्मकृत्यांत म्लेच्छकाल योजीत, वगैरे वाटेगिरीच्या कल्पना पसरविण्यांत भूषण मानणाऱ्या शोधकांना असले विपरीत अपसिद्धान्त फारच गोड वाटतात, असें दिसतें. अपसिद्धान्ताना पोषक असा दुसरा एक असाच शब्द आहे. तो शब्द

“क्षत्रप” हा होय. डा. भांडारकर हा शब्द Persian क्षत्रप शब्द फारसी नाहीं. [?] ‘Satrap’ शब्दापासून संस्कृतांत ‘क्षत्रप’ या रूपानें

आला, असें स्वच्छ सांगतात. [History of Dekkan, Section V]. Persian हणजे Modern Persian तर नव्हेच. तेव्हां, Persian हणजे Old-Persian असा डाक्टरांचा गर्भितार्थ असावा. Modern Persian इसवीच्या १० व्या शतकापासून आतांपर्यंतची समजण्याची चाल आहे; व Old Persian चवथ्या शतकापासून दहाव्या श-

क्षत्रपतिशब्द ब्राह्मणांत व संहितेंत येतो.

तकापर्यंतची फारसी भाषा, असा संकेत आहे. त्यापूर्वी पाल्हवी, आवेस्ती वगैरे भाषा होत्या. त्यांत हा शब्द “पोइत्रपैनि” अशा रूपानें येतो. परंतु, हा शब्द तैत्तिरीय संहितेंत व ब्राह्मणांत [तैत्तिरीय संहिता, प्रथमकांड, अष्टमप्रपाठक, अनुवाक १४ व तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रथमकांड, पद्यःप्रपाठकः] “क्षत्राणां क्षत्रपति रसि, ” “क्षत्राणां क्षत्रपतिरंसीत्याह । क्षत्राणामेवैनं क्षत्रपतिं करोति । ” वगैरे स्थली आवेस्त्याच्या पूर्वीपासून येत आहे. तेव्हां हा शब्द फारशीतून किंवा आवेस्तीतून उसना घेतलेला नाही; मूळ संस्कृतांतला च आहे. संस्कृतांतून आवेस्तींत उसना घेतला असण्याचा संभव मात्र जास्त आहे. क्षत्रपति शब्द पंजाब व अफगाणिस्थान ह्या प्रांतांत बोलल्या जाणाऱ्या पैसाची उच्चारांत सत्रप, सत्रपति, असा होऊन

“क्षत्रप” अशा रूपानें ग्रीक, पल्हव वगैरे लोकांत प्रचलित झाला. क्षत्रप व महाक्षत्रप या शब्दांची अशी परंपरा असल्यामुळे, एखाद्या शातवाहनाची बायको एखाद्या हिंदू क्षत्रपाची किंवा महाक्षत्रपाची मुलगी असून, म्लेच्छ नसू शकेल. क्षत्रप, महाक्षत्रप, ह्या हिंदुस्थानांत, विशेषतः पश्चिम हिंदुस्थानांत त्या कालीं प्रचलित असलेल्या पदव्या म्लेच्छ उड्डाणटप्पूनीं घेतलेल्या आहेत. क्षत्रपति ह्याचा अपभ्रंश होउन छत्रपति असा शब्द पश्चिम हिंदुस्थानांत हजारो वर्षे प्रचलित होता व तो तीनशें वर्षां-
 क्षत्रपति शब्द मागे शिवाजीच्या विरुदावलींत प्रविष्ट होऊन, अद्याप हि
 सी-यू-कीं त अजरामर आहे. ह्या क्षत्रपति, छत्रपति शब्दाचा उल्लेख
 येतो. सी-यू-कींत (Beals' Translation) आला आहे.

नरपति, हयपति, गजपति व क्षत्रपति, असे चार प्रकारचे राजे हिंदुस्थानांत असून, पश्चिम हिंदुस्थानांतील राजांना क्षत्रपति, क्षत्रपति-छत्रपति ही छत्रपति, ही पदवी लावतात, अतें सी-यू-कींत (A. D. 600) झटलें आहे. शिवाजी पश्चिम हिंदुस्थानांत झाला, तेव्हां त्याला क्षत्रपति-छत्रपति ही पदवी इतिहासोक्त, शास्त्रोक्त व रुढियुक्त मिळाली, ह्यांत विलकुल संशय नाही. व्युत्पत्तीची चूक झाल्यामुळे, डाक्टरांनीं म्लेच्छांचीं आर्यांशीं लग्न लावून दिलीं आहेत !

३० विद्वज्जनचक्रोरचंद्र अशा ह्या महाराष्ट्री प्राकृत भाषेला शिरसा सातवाहनांच्या प्रणाम करणाऱ्या शातवाहनांची ऊर्फ शाकरा-
 साम्राज्याबरोबर जांची रियासत शक १५० पर्यंत चालली. शकपूर्व
 महाराष्ट्रीचें सा- १५० त सीमुख शातवाहनांनें सुंग व काण्वायन
 राज्या. वंशांचा नाश करून मगधाचें सिंघासन स्वतःच
 बळकाविलें. तेव्हां पासून शकोत्तर १५० पर्यंत
 शातवाहनांची छाप उत्तर व दक्षिण हिंदुस्थानांत चांगली बसलेली होती.
 ती इतकी कीं, त्यांच्या राज्याला तीन समुद्रांचा—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण—
 स्पर्श होतो, अशी ह्मणच पडून गेली. ह्या राजकीय छापीबरोबर त्यांच्या
 भाषेची ह्मणजे महाराष्ट्रीची हि छाप भारतवर्षांत सर्वत्र बसली. कालिदास
 माळव्यांघ व कामरींघांत राहत असे, परंतु त्यांच्या नाटकांतील प्राकृत भाषा

अंशतः महाराष्ट्री आहे. गाथासतशतीत दिलेली विक्रमराजाची गाथा किंवा काश्मीरच्या प्रवरसेनाची गाथा किंवा काश्मीरस्थ प्रवरसेन-विरचित सेतु-बंधाची भाषा महाराष्ट्रीच आहे. राजकीय साम्राज्याबरोबर व वजनाबरोबर भाषेचें हि साम्राज्य व वजन वाढतें. इसवीच्या १७ व्या व १८ व्या शतकात यूरोपांत सर्वत्र फ्रेंच भाषेचें जसें साम्राज्य झालें किंवा एकोणिसाव्या व विसाव्या शतकांत हिंदुस्थानांत जसें परक्या इंग्रजीचें साम्राज्य झालें आहे, तोच प्रकार शक पूर्व १५० पासून शकोत्तर १५० पर्यंत व पुढें हि कांहीं काल महाराष्ट्रीचा झाला. पेशव्यांच्या अमदानींत खुद्द दिल्लीचे पातशाहा मराठी लिहूं व बोळूं लागले आणि कायथ लोक व रजपूत राजे मराठी मायने घोळूं लागले किंवा हैसूरचे कानडीअप्पा मराठींत हिसाब ठेवूं लागले. हा सर्व प्रभावं राजकीय साम्राज्याचा व सामर्थ्याचा होय.

३१ शक १५० नंतर शातवाहनांचें साम्राज्य नष्ट झालें. विशिष्ट

शातवाहनांच्या साम्राज्याची धूळधाण-तत्समवेत महाराष्ट्री भाषेचा पडित काळ.

कारण काय तें माहित नाहीं. नित्याप्रमाणें अंतस्थ दौर्बल्य व बहिःस्थ अनार्यांचें प्राबल्य हीच कारणें असावीं. शातवाहनांच्या आपूर्वपश्चिमसमुद्र राज्यांत लहान मोठे संस्थानिक होते. त्या पैकीं महाराष्ट्राच्या उत्तरेस व पश्चिमेस

कांहीं राष्ट्रकूट होते त्यांनीं बंड केलें. चेदिदेशांत कलचूरींनीं आपला शक सुरू केला (शक १७०). दक्षिणेंत कदंबांनीं व म्लेच्छ पल्लवांनीं आपापली स्वतंत्र संस्थानें स्थापिलीं. अभीर, पिंडार, पुलिंद, शक, वगैरेनीं हि दंगे माजवले. अशी शातवाहनांच्या राज्याची शोचनीय वाताहत झाली. त्याबरोबर महाराष्ट्री भाषेला हि पडितकळा लागली. शक १५० पासून शक ४५० पर्यंत सुमारे तीनशें वर्षे महाराष्ट्रांत कोणी चक्रवर्ती राजा नव्हता; लहान लहान संस्थानें व मवास होते. नर्मदेच्या उत्तरेस शक २५० च्या सुमारास गुप्तांचें साम्राज्य सुरू झालें. समुद्रगुप्ताच्या जयस्तंभांत (शक २४६—२९६) दक्षिणेतील कांहीं संस्थानिकांचीं नांवें येणेंप्रमाणें दृष्टीस पडतात (Fleets गुप्त inscriptions).

| | राजा | देश |
|-----------------|--------------|--|
| शक १५०-४५० | १ महेंद्र | कोसल (रायपूर-संबळपूर) |
| पर्यंचे महारा- | २ व्याघ्रराज | महाकांतार (विंध्याद्रीच्या आस- |
| ष्ट्रातील किलेक | | पासचा डोंगराळ मुळूख) |
| संस्थानिक. | ३ मंतराज | केरल (मलबार) |
| | ४ महेंद्र | पिष्टपुर (पिठापूर-मद्रास) |
| | ५ स्वामिदत्त | कोट्टूर (नाशिक, कोटरे) |
| | ६ दमन | एरण्डपल्ल (एरंडोल-खानदेश) |
| | ७ विष्णुगोप | कांची (कांचीवरम्) |
| | ८ नीलराज | अवमुक्त [अनभिज्ञात] |
| | ९ हस्तिवर्म | वेंगी [वारंगल-मछलीपट्टम्] |
| | १० उग्रसेन | पालक [अनभिज्ञात] |
| | ११ कुबेर | देवराष्ट्र [कन्हाड-सातारा जिल्हा, सध्याचे देवराष्ट्रें, येथे जुने अवशेष फार आहेत.] |
| | १२ धनंजय | कुस्थलपुर [कोठलूर] |

पैकी व्याघ्रराज, स्वामिदत्त, दमन व कुबेर हे संस्थानिक विंध्याद्रि,
नाशिक, खानदेश, व कन्हाड या प्रांतांभोवतीं
महाराष्ट्रीचा न्हास
व
अंत.

शक २५०-३०० च्या सुमारास राज्य करीत
होते, आणि गुप्तांना कदाचित् करभार देत होते.
ह्या संस्थानिकांची वजनदारी वेताचीच पडल्यामुळे,
महाराष्ट्री भाषेचा बोज रहावा तसा राहिला नाही व ती भाषा उत्तरोत्तर
मागसत चालली. शातवाहनांच्या कारकीर्दीत पैठण हें प्राकृत विद्वानांचें
व सरस्वतीभक्तांचे माहेरघर बनलें होतें. तें ह्या तीनशें वर्षांत मोडून,
शक ४५० च्या सुमारास महाराष्ट्री भाषा व सारस्वत ह्यांचा अंत झाला.

३२ शक १५० पासून शक ४५० पर्यंतच्या अवधींत महाराष्ट्री भाषा
अपभ्रंश झाली. नागर महाराष्ट्रीचे पुरस्कर्ते जे शातवाहन राजे
आणि तदाश्रित विद्वान व प्रतिभासंपन्न ग्रंथकार त्यांचे नियमन
नाहीं झाल्याबरोबर महाराष्ट्री भाषा सर्वस्वी अनागर लोकांच्या हातांत गेली

आणि अपभ्रष्ट झाली. नागर महाराष्ट्री ऐन रंगांत असतां, अनागर अपभ्रंश केवळ खालच्या प्रतीच्या अनागर लोकांत होता. ह्या अपभ्रंशाची परंपरा फार पुरातन आहे. म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः, तस्मान्ब्राह्मणो म्लेच्छेत्, वगैरे इशारे शतपथश्रुतींतून सांपडतात. ह्यणजे ब्राह्मणकालीं संस्कृत उच्चारंचे अपभ्रष्ट उच्चारं म्लेच्छादि अनार्य लोक व त्यांच्या संसर्गानें खालच्या प्रतीचे आर्य लोक करूं लागले होते, आसा अर्थ होतो. हा म्लेच्छकृत व अनागरार्यकृत अपभ्रंश स्वतंत्र भाषेच्या योग्यतेला ब्राह्मणकालीं आला नव्हता. परंतु कालान्तरानें त्याची व्याप्ति समाजांत अतोनात होऊन, ती प्रकट-पअड पअळ-पाल-पाली [स्त्रीलिंग] भाषेच्या रूपानें प्रसिद्ध झाली. ह्याच सुमारास शौरसेनी, मागधी, पैशाची व महाराष्ट्री, ह्या हि प्रकट ऊर्फ अपभ्रष्ट भाषा निरनिराळ्या प्रांतांत सुरू झाल्या. ह्या प्रकट भाषा बहुजन मान्य झाल्यावर त्यांना अपभ्रंशाच्या वर्गांतून काढून स्वतंत्र भाषांच्या मान्य वर्गांत घालणें वैय्यकरणांना इष्ट दिसलें, व त्यांना प्राकृत भाषा असें अभिधान प्राप्त झालें. संस्कृत व प्राकृत असे आर्यभाषेचे दोन मान्य पोटभेद झाले; आणि ह्यांच्या खेरीज जें अपभाषण त्याला अपभ्रंश हणूं लागले. सारांश, अपभ्रंश व्याप्तिमान् झाला ह्यणजे त्याला स्वतंत्र भाषा ह्यावाचयाचें व त्या नव्या झालेल्या स्वतंत्र भाषेचा जो दुसरा अपभ्रंश त्याला अपभ्रंश ह्यावाचयाचें, असा वैय्यकरणी प्रघात प्रचलित झाला.

प्राकृतं संस्कृत चैतदपभ्रंश इति त्रिधा ॥

३३ काहीं काल संस्कृत, आणि मागधी, शौरसेनी, पैशाची व महाराष्ट्री ह्या पांच मुख्य भाषा असून, अपभ्रंश हा स्वतंत्र भाषा-भेद ह्यणून गणला जात नव्हता. परंतु कालान्तरानें संस्कृत व ह्या चारी प्राकृत मागसत जाऊन, अपभ्रंशांचे व प्राकृत पोटभाषांचे राज्य सुरू झालें. मागधी-अपभ्रंश, शौरसेनी-अपभ्रंश, पैशाची-अपभ्रंश व महाराष्ट्री-अपभ्रंश, असे चार मुख्य अपभ्रंश प्रचलित झाले. शक १५० च्या सुमारास शालिवाहनांचें महाराष्ट्रांतील साम्राज्य नष्ट झाल्यापासून शक ४५० त चालुक्यांचे साम्राज्य सुरू होईतोपर्यंत महाराष्ट्री-अपभ्रंश महाराष्ट्रांत प्रचलित होता. नर्मदेच्या उत्तरेस मौर्यांचें साम्राज्य शकसंवतापूर्वीं सुमारे दीडशें वर्षांच्या सुमारास नष्ट झालें. तेव्हांपासून शक २०० च्या सुमारास गुप्तांचें सा-

म्राज्य सूरुं होईतोंपर्यंत मागधी-अपभ्रंश, शौरसेनी-अपभ्रंश व पैशाची-
 मागधी-अपभ्रंश, अपभ्रंश नर्मदेच्या उत्तरेस प्रचलित झाले. अप-
 शौरसेनी-अपभ्रंश, भ्रंशाचे हे चार भाषापरत्वे भेद झाले; प्रांतपरत्वे
 पैशाची-अपभ्रंश, व जातिपरत्वे जे भेद झाले त्यापैकीं कित्येकांचीं नांवे
 व येणें प्रमाणें:—१ शाकारी, २ ढकी, ३ दाक्षिणात्य
 महाराष्ट्री-अपभ्रंश. ४ चूलिकापैशाची, ५ चांडाली, ६ आभीरी, ७
 अवंतिजा, ८ प्राच्या, ९ पांचाली, १० मालवी,

११ गोडी, १२ ओडी, १४ कालिंगी, १५ कार्नाटकी, १६ द्राविडी, १७
 गुर्जरी, १८ अर्धमागधी. शक, यवन, किरात, दर्द, खश, पल्लव, वगैरे पि-
 शाच लोक शकपूर्व १५० पासून सुमारें शक ४५० पर्यंत भरतखंडांतील नि-
 रनिराळ्या भागांत राज्यकर्ते या नात्यानें पसरले हेति. तत्संबंधानें पैशाची
 भाषेचे ११ भेद प्राकृत वैयाकरणानीं उल्लेखिलेले आहेत.

कांचीदेशीयपांड्ये च पांचालगौडमगधम् ।

ब्राह्मणं दाक्षिणात्यं च शौरसेनं च कैकयम् ।

शाबरं द्राविडं चैव एकादश पिशाचकाः ।

सारांश सुमारें शक ४५० पर्यंत पांचपंचवीस अपभ्रंश भरतखंडांत उत्पन्न
 झाले. पैकीं, अवंतिज अपभ्रंशासंबंधानें एक बाब येथें नमूद करतों. प्रो-
 परशुरामपंत पाटणकर, बनारस, यांनीं गेल्या वर्षीं उजनी प्रांतांतील रांगडी
 बोलीच्या व्युत्पत्तीवर एक लहानसा निबंध लिहून, त्यांत असें दाखविण्याचा
 प्रयत्न केला आहे कीं, मराठी व रांगडी ह्यांचा कांहीं तरी संबंध आहे.
 कोणता विशिष्टसंबंध आहे तें, मात्र, त्यांनीं नीट उलगडून दाखविलें नाहीं.
 अवंतिजा भाषेची नात सध्याची रांगडी भाषा आहे. त्या अवंतिजा भाषेची
 उत्पत्ति येणेंप्रमाणें:—

अवंती स्यान्महाराष्ट्री-शौरसेन्यास्तु संकरात् ॥

(मार्केडेय in pischel's Grammatik)

तेव्हां, महाराष्ट्रीचे कांहीं गुण रांगडींत दिसावे, हें रास्तच आहे.

३४ ह्या पाचपंचवीस अपभ्रंशांतून महाराष्ट्री-अपभ्रंशांशीं प्रस्तुत
 स्थळीं विशेष कर्तव्य आहे. हा अपभ्रंश शातवाहनसाम्राज्याच्या अंतापासून
 हणजे सुमारें शक १५० पासून चालुक्यांच्या साम्राज्याच्या प्रारंभापर्यंतच्या
 हणजे शक ४५० च्या पर्यंतच्या काळामध्ये उदयास आला, ह्याचें स्वरूप

कसें होतें, तें मुख्यतः हेमचंद्राच्या सिद्धहेमचंद्रम् नांवाच्या व्याकरणाच्या ३२९ पासून ४४६ पर्यंतच्या सूत्रांवरून कळतें. हेमचंद्राची हयात शक १०१० पासून शक १०९४ पर्यंत होती. ह्या वेळीं महाराष्ट्री-अपभ्रंश महाराष्ट्रीतील लोक बोलत असत कीं काय ? ह्या प्रश्नाला, नाही, असें स्वच्छ उत्तर देतां येण्याला साधनें आहेत. तीं हीं:—शक १०५१ तील अभिलषितार्थचिंतामर्णांतील पदें जिला मराठी भाषा ह्यणतात व जी ज्ञानेश्वर बोलत व लिहित असे तींत आहेत. शक ९०५ तील चामुंडरायाचा शिलालेख हि मराठी भाषेंतच आहे. शक ६५८ तील चिकुडें येथील लेखाची भाषा हि मराठी आहे. इतकेंच नव्हे तर, शक ४१० तील मंगळवेढें येथील ताम्रपट हि मराठी भाषेंतला आहे. ह्यणजे मराठी भाषा ह्यणून ज्या भाषेला आपण ह्यणतो, तिच्यांतील अत्यंत जुना लेख

शक ४१० पर्यंत गेलेला आहे. आतां, इतकें उ-

**महाराष्ट्री—अप-
भ्रंश शक ४०० च्या
सुमारास मृत झाला.**

घड आहे कीं, शक १०५१ तल्या मराठी भाषेच्या रूपाहून तत्पूर्वीच्या लेखांची भाषा उत्तरोत्तर जास्त जास्त जुनाट आहे. परंतु ह्या सर्व लेखांतील भाषा मराठी आहे, अपभ्रंश नाही. ह्याचा

अर्थ काय होतो ? ह्याचा अर्थ असा होतो कीं, महाराष्ट्री—अपभ्रंश शक ४०० च्या सुमारास संपून, मराठी भाषेला प्रारंभ झाला व हेमचंद्रानें ज्या अपभ्रंशाचें व्याकरण रचिलें तो अपभ्रंश त्याच्या कालीं मृत होता. मराठी भाषा शक ६०२ पासून शक ११२८ पर्यंत महाराष्ट्रांत चालू होती, ह्या बाबीला दुसरा हि अवांतर पुरावा आहे. ह्या अवधीतील चाळुक्य, राष्ट्रकूट, शिलार, यादव वगैरे महाराष्ट्रांतील राजांचे जे संस्कृत ताम्रपट आहेत त्यांतून स्थळोस्थळीं अस्सल मराठी शब्द सांपडतात. शक ६०२ तील विक्रमादित्य सत्याश्रयाच्या ताम्रपटांत “पन्नास” हा शब्द आलेला आहे. हा शब्द महाराष्ट्रीप्राकृतांतील किंवा महाराष्ट्री-अपभ्रंशांतील नाही. महाराष्ट्रीत व अपभ्रंशांत पण्णासं, पण्णासा, पन्ना, अशीं रूपें येतात. शक ६०२ पासून शक ११२८ पर्यंत ताम्रपटांतून आलेल्या अस्सल मराठी शब्दांची यादी प्रभात-मासिकांतील पाटण येथील शक ११२८ तील शिलालेखांत दिली आहे. तात्पर्य, मराठी शक ४०० च्या सुमारास सुरू झाली, हें अस्सल पुराव्यानें

सिद्ध आहे व हेमचंद्रानें ज्या अपभ्रंशाचें व्याकरण रचलें तो अपभ्रंश शक ४०० च्या सुमारास मृत झाला होता, असें ह्यटल्यावांचून गत्यन्तर नाहीं.

३५ मराठी भाषा शक ४०० च्या सुमारास मुळं होईतावत्कालपर्यंत भाषांची परंपरा माझ्या मतें थेंपेंप्रमाणें दिसते:—

संस्कृत. { ऋषि:—वैदिक भाषा:—शकपूर्व १०,००० पासून शकपूर्व ३०००.
पाणिनि:—ब्राह्मण भाषा:—शकपूर्व ३००० पासून शकपूर्व १५००.
पतंजलि:—संस्कृत भाषा:—शकपूर्व १५०० पासून शकपूर्व २००.

प्राकृत. { पाली भाषा:—शकपूर्व १५०० पासून शकपूर्व ४००
सौरसेनी भाषा:—शकपूर्व १५०० पासून शकोत्तर १५०
मागधी भाषा:—शकपूर्व ५०० पासून शकोत्तर १५०
पैशाची भाषा:—शकपूर्व ५०० पासून शकोत्तर १५०
महाराष्ट्री भाषा:—शकपूर्व १००० पासून शकोत्तर १५०

प्राकृतिक. { सौरसेनी—अपभ्रंश
मागधी—अपभ्रंश
पैशाची— „
महाराष्ट्री— „
वगैरे } शक ० पासून
शकोत्तर ४५०
पर्यंत

प्राकृतिकोद्भव. { ब्रज
मैथिल
बंगाली
ओढी
काश्मिरी
नेपाली
पंजाबी
सिंधी
गुजराथी
रांगडी
मराठी
वगैरे } शक ४०० पासून
आतांपर्यंत ह्यणजे
शक १८३० पर्यंत.

कालाचे आंकडे कित्येक स्थलीं शंभर दोनशें वर्षे अलीकडे पलीकडे होऊं शकतील, हें सांगावयास नको. एक वाच, पूर्व भाषा असतांनाच उत्तर भाषा अपभ्रंश ह्मणून सुरू होते. होऊं शकतील, हें सांगावयास नको. एक वाच, मात्र, पूर्णपणें निश्चित आहे. ती ही कीं, मराठी भाषा शक ४०० च्या सुमारास सुरू झाली. येथें एक गोष्ट लक्षांत घेतली पाहिजे. पूर्वभाषा प्रचलित असतांनाच उत्तरभाषा अपभ्रंश ह्या नात्यानें सुरू झाल्या होत्या. ह्मणजे ब्राह्मण-संस्कृत प्रचलित असतांना पाली भाषा अपभ्रंश ह्मणून सुरू झाली व ब्राह्मण-संस्कृत प्रचारांतून गेल्यावर तत्स्थानीं अधिष्ठापित झाली. पालीभाषा प्रचलित असतांना, मागधीभाषा अपभ्रंशरूपानें सुरू झाली व पालीभाषा आटोपल्यावर तत्स्थानापन्न झाली. तसेंच, महाराष्ट्री भाषा चालू असतांच महाराष्ट्री-अपभ्रंश सुरू झाला व महाराष्ट्री नष्ट झाल्यावर तिची जागा त्यानें पटकाविली महाराष्ट्री-अपभ्रंश चालू असतांच मराठी सुरू झाली व तो गेल्यावर त्याची जागा मराठीनें व्यापिली.

एका भाषेच्या स्थलीं दुसरी भाषा येत असतांना, आणीक एक चम. उत्तर भाषा लोकमान्य होत असतांना, पूर्वभाषा कांहीं काल टिकाव धरून रहाते. एका भाषेच्या स्थलीं दुसरी भाषा येत असतांना, आणीक एक चम. त्कार दृष्टयुत्पत्तीस येतो. नवी अपभ्रष्ट भाषा आस्ते आस्ते लोकमान्य होत असतांना, जुनी मुमूर्षु भाषा कांहीं काल प्रतिष्ठित ग्रंथकार व लोक लिहित व बोलत असतात. पाली, शौरसेनी, महाराष्ट्री वगैरे प्राकृत भाषा लोकमान्य होत असतांना, ब्राह्मण-संस्कृत व पातंजल-संस्कृत प्रतिष्ठित लोकांत प्राचलित होतेंच. अपभ्रंश सुरू होत असतां, महाराष्ट्री-प्राकृत प्रातिष्ठित ग्रंथकार लिहीतच असत. आणि मराठी उदयास येत असतांना शतक-दोन शतक अपभ्रंशाला प्रतिष्ठित ग्रंथकार विसरले नव्हते. संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश, ह्यांचा लोप झाला असतां हि, शक ४०० च्या नंतरचे नाटककार ह्या तिन्ही भाषा प्रतिष्ठित ह्मणून आपल्या नाटकांत योजीत असत, व अप्रतिष्ठित ज्या मराठी वगैरे भाषा त्यांचें नांव ही काढीत नसत. प्रतिष्ठित ग्रंथकार जुन्या गेलेल्या भाषांना चिकटून राहतात, ह्या विधानाला पोषक अशीं दोन प्रमाणें देतां. प्रथमः पातंजलीचें जें संस्कृत तेंच भवभूति, हर्ष,

हेमाद्रि, वगैरेंचें संस्कृत आहे. तोंच कालीदासाचें जें प्राकृत तेंच हेम-
चंद्राचें प्राकृत आहे. ह्यणजे हे प्रतिष्ठित उत्तरकालीन ग्रंथकार मेलेल्या भाषा
योजित आहेत, हें स्पष्ट आहे. द्वितीयः शूद्रक, विशाखदत्त, बाण, श्रीहर्ष,
नारायणभट्ट, जयदेव, भवभूति, इत्यादि नाटककार, महाराष्ट्र, माळवा, काश्मीर,
ओढिया, प्रयाग, इत्यादि निरनिराळ्या प्रांतांत रहाणारे असून, सर्वच महाराष्ट्री,
शौरसेनी, अपभ्रंश, वगैरे भाषा योजतात. शिवाय; प्राकृतांत काव्य रचतांनां
महाराष्ट्रीचा उपयोग करावा व गद्य बोलतांनां शौरसेनी वापरावी, वगैरे नि-
यम साहित्यग्रंथकार देतात; मग नाटककार कोणत्या हि प्रांतांतला असो व
श्रोतृवर्ग वाटेल त्या प्रदेशांतला असो. ह्याचा अर्थ काय ? उदाहरणार्थ, म-
थुराप्रांतांतील लोक श्रीहर्षाच्या वेळां काय दोन भाषा बोलत होते, काव्या-
करितां महाराष्ट्री व गद्याकरितां शौरसेनी ? तसेंच, नाटकांवरून असें दिसतें
कीं, नायक संस्कृत बोलतो, नायिका महाराष्ट्रींत गाते व शौरसेनींत बोलते,
सेवक बागधीत विनंती करतो, मेव्हणा शाकारीत वक्तो, चोर ढकी बोलतात
व चांडाल चांडाली वापरतात, आणि ह्या सर्व भाषा एकाच घरांत चालतात.
तेव्हां, हा प्रकार काय आहे ? शकसंवताच्या प्रारंभी होऊन गेलेल्या कालीदास
एकाच पात्राच्या तोंडून महाराष्ट्री व शौरसेनी अशा दोन भाषा वदवतो, हें
देखील जरा चमत्कारिकच आहे. परंतु, त्या कालीं महाराष्ट्री भाषा उन्नत व
नागर स्थितीप्रत पावून शातवाहनराजांच्या पाठिव्यामुळे भरतखंडांत सर्वत्र
मान्य व ग्राह्य झालेली होती. तेव्हां, महाराष्ट्रवाद्य प्रांतांत हि तिचा प्रचार
स्त्रीपुरुषांत अन्याहृत होता, असें समजून चालतां येईल. परंतु शकाच्या
पांचव्या शतकाच्या पुढें झालेले जे बाण, श्रीहर्ष, इत्यादि नाटककार ते हि
महाराष्ट्री, शौरसेनी वगैरे एकाहून जास्त भाषा एकाच पात्राच्या तोंडीं घाल-
तात, हा चमत्कार कोठला ? शकाच्या पांचव्या शतकाच्या सुमारास महा-
राष्ट्री भाषा मरून दोनतीनशें वर्षे झालीं होती व अपभ्रंश मुमुर्षुदशेंत होता,
हें तर शक ४१० तील मराठी शिलालेखावरून स्पष्ट आहे. तेव्हां बाण,
श्रीहर्ष वगैरे कवी गतानुगतिकन्यायानें मृतसंस्कृतप्रमाणेंच, मृत महाराष्ट्री,
मृत शौरसेनी व मुमुर्षु अपभ्रंश योजित होते, यांत संशय नाहीं. जयदेवाच्या
कालीं महाराष्ट्री मेली होती, अपभ्रंश मेलला होता व मराठी भाषा चांगली
नावांरूपाला येत चालली होती; तसेंच, शौरसेनी मरून तिच्या जागीं जुनी
ब्रह्म भाषा आलेली होती. तत्रापि, प्रसन्नराघवांत महाराष्ट्री व शौरसेनी—

कालिदासाची व वररुचीची महाराष्ट्री व शौरसेनी जयदेव योजतो. त्यांत दुसरी एक नकलेची गोष्ट अशी कीं जयदेव रहाणारा ओढिया प्रांतांतला. जुन्या ओढियेचा मागधीकडे संबंध. असें असून, ओढीया, किंवा तत्पूर्व-कालीन मागधी भाषा न योजतां, जयदेव ज्याअर्थी महाराष्ट्री व शौरसेनी भाषा योजतो, त्या अर्थी तो साहित्यशास्त्रकारांच्या उपदेशाला अनुसरून गतानुगतिक न्यायानें मृत व मुमूर्षु भाषांत लिहीत आहे, हें उघड आहे. हा अचरटपणा कृष्णाजीवंत शेषे वगैरे नुकत्या तीनशें वर्षांपलीकडील नाटककारांनीं हि केलेला आहे. असे, गतानुगतिकास्तव व पुढाणप्रियतेस्तव मृत व मुमूर्षु भाषांत नाटके लिहिण्याच्या ह्या लक्ष्मीनें कित्येक युरोपियन टीकाकारांना चकविलें आहे. कालदृष्ट्या पहावें तर लोकांत एक भाषा प्रचलित आहे असें दिसतें व नाटककारांच्या ग्रंथांत पहावें तर मृत व मुमूर्षु भाषा योजलेल्या दृष्टीस पडतात. त्यावरून ह्या टीकाकारांना अशी शंका आली कीं, संस्कृत, प्राकृत व प्राकृतिक अपभ्रंश, ह्या कृत्रिम भाषा तर नसाव्या! कित्येक उतावळे व दुष्टबुद्धि टीकाकार, तर, इतक्या हि थराला गेले कीं, ही सर्व ब्राह्मणांची फसवेगिरी असावी! ह्या दुसऱ्या वालिश टीकाकारांकडे लक्ष देण्यांत हांशील नाहीं. कृत्रिमभाषावाद्यांची शंका, मात्र, सकारण होती. तिचा परिहार वर झाला च आहे. जैनमहाराष्ट्री, जैनशौरसेनी वगैरे भाषांचा हि प्रकार वरच्याप्रमाणें च आहे. जुनी मृत महाराष्ट्री भाषा आपली धर्मग्रंथभाषा हाणून जैन ग्रंथकार समजत. आपले धर्मशास्त्रग्रंथ जसे मृत संस्कृतांत अद्याप हि रचले जातात, तोच प्रकार जैनधर्मग्रंथांचा आहे. तात्पर्य, भरतखंडांतील ग्रंथकारांचा मृतभाषांत लिहिण्याचा ओढा विशेष असतो, हें उघड आहे.

“A Peep into the early history of India ” (J. B. B. R. A. S. 1901 vol XX) ह्या चटकदार निबंधांत डाक्टर भांडारकर यांनीं खालील विधानें केलीं आहेत. (1) Another peculiarity of this period (from about the beginning of the second century before Christ to about the end of the fourth century after) was the use of the Pali or the current Prakrit language in Inscriptions. (2) But now (from about the end of the fourth century after Christ) we

find that sanskrit rose in importance and the vernaculars were driven out of the field. ख्रिस्तपूर्व २०० पासून ख्रिस्तनंतर ४०० पर्यंत प्राकृतांचें साम्राज्य होतें; परंतु ४०० नंतर प्राकृतांना गचांडी मिळून संस्कृत तत्स्थानापन्न कां झाली, ह्याचें कारण, डाक्टरांनीं असें दिलें आहे कीं, Brahmanism चा उदय झाला, त्यामुळे प्राकृत मागें पडल्या व संस्कृत पुनः उदयास आली. ह्या चमत्काराचें खरें कारण मी जें वर दिलें आहे तें आहे. महाराष्ट्री वगैरे प्राकृत भाषा शक २०० च्या सुमारास मेल्या. पुढें दोनअडीचशें वर्षे अपभ्रंश प्रचलित होता. तो हि शक ४०० च्या सुमारास मरून, आधुनिक मराठी वगैरे प्राकृतिकोद्भव भाषा जन्मास आल्या. परंतु, त्यांना विद्वन्मान्यता नसल्यामुळे, त्यांचा उपयोग ह्याणावा तसा होत नसे. डाक्टर भांडारकरांनीं वृत्तिरूपण बराबर केलेलें आहे; परंतु वृत्ताचें कारण, मात्र, जें द्यावें तें दिलें नाहीं. संस्कृत भाषेचा पुनरुदय व Brahmanism चा पुनरुदय हीं एकाच कारणाचीं कार्ये आहेत. बौद्धधर्म व प्राकृत भाषा मेल्यामुळे संस्कृत भाषा व Brahmanism उदयास आली. बौद्धधर्माचा अस्त व प्राकृत भाषांचा मृत्यु हीं कारणे असून, Brahmanism व संस्कृत भाषा यांचा उदय हीं सोदरकार्ये आहेत. संस्कृत भाषेच्या पुनरुदयाचें Brahmanism हें कारण नाहीं, प्राकृत भाषांचा मृत्यु हें कारण आहे.

३६ शक ४०० च्या सुमारास मराठी भाषा सुरू झाली, तेव्हां, अपभ्रंश नष्ट होत चालला होता व महाराष्ट्रीभाषा मृत झाली होती, ह्याला दुसरें एक प्रमाण आहे. शक ४५० च्या सुमारास महाराष्ट्रांत चालुक्यांचें राज्य सुरू झालें. चालुक्यांच्या अमदानींत जे ताम्रपत्र व शिलालेख खोदले गेले ते प्रायः सर्व संस्कृत भाषेत आहेत, शातवाहनांच्या कारकीर्दीतल्या प्रमाणें प्राकृतांत किंवा अपभ्रंशात नाहींत. ह्याचा अर्थ असा होतो कीं, महाराष्ट्री व अपभ्रंश मृत व सुमूर्प स्थितींत चालुक्यांच्या वेळीं होते. तेव्हां, सहजच त्यांनीं त्या मृत व सुमूर्प भाषांचा उपयोग केला नाहीं. मराठीचा उपयोग करावा ह्यादलें तर ती भाषा राजमान्य झाली नव्हती, नुकतीच उदयास येत चालली होती. तत्रापि, शक ४१० तील मंगळवेढ्याचा ताम्रपत्रावरून व शक ६५८ तील चिकुड्यांच्या ताम्रपत्रावरून असें दिसतें कीं,

सामान्य लोकांचें सर्व लिखाण मराठी भाषेंतच चाललें होतें. शिवाय हा हि एक प्रश्न उभा रहातो कीं, चालुक्यराजांचें दफतर, राज्याचे हिशोब वगैरे, कोणत्या भाषेंत लिहिलें जात असे ? संस्कृत भाषा दफतरांतोळ कारकुनांस येत असेल हें संभवत नाहीं. तसेंच, सामान्य लोकांस ह्मणजे पाटीलकुळकर्ण्यांस उद्देशून जीं सरकारी आज्ञापत्रें जात असतील तीं संस्कृतांत लिहिलीं जात असत, हें हि विधान मराठी उर्फ देशी.

असंभाव्य च दिसतें. तेव्हां, असें ह्मणणें प्राप्त होतें कीं, चालुक्यराजे राज्यांतील सामान्य व्यवहार तत्कालीन देशभाषेंत च करीत असले पाहिजेत. असामान्य व्यवहारह्मणजे विशिष्ट देणग्या वगैरे संबंधींचें आज्ञालेख किंवा दानलेख विद्वान व शिष्ट ब्राह्मणांना उद्देशून लिहिल्यामुळे, ते तेवढे संस्कृतभाषेंत कोरले जात. इतर सर्व व्यवहार त्या त्या देशभाषेंत च होत होते. चालुक्यांच्या साम्राज्यांत मुख्यतः दोन भाषा सामान्य लोकांत प्रचलित असतः— १ मराठी व २ कानडी. ह्या दोन भाषांत सामान्य लिखाण होत असे. पैकीं मराठी भाषेला देश्य, देशी अशी संज्ञा असे. ज्ञानेश्वर मराठीला देशी ह्मणतो. हेमचंद्राच्या देशीनाममालेंतील देशी शब्द प्रायः तत्कालीन मराठीच आहेत. इतकेंच कीं, वृत्तसुखार्थ व संस्कृतभाषारूपार्थ बहुतेक देशी शब्दांना त्यानें संस्कृत पेहराव थोडा बहुत दिला आहे.

३७ आतांपर्यंत जे जुने मराठी लेख उपलब्ध झाले आहेत त्यांत अत्यंत जुना लेख झटला ह्मणजे शक ४१० शक ९०० पर्यंत मराठींत सारस्वताभाव. तील मंगळवेढें येथील ताम्रपट होय. हा लेख व ह्याच्यानंतरचे जुने मराठी लेख ह्यांची समग्र यादी मार्गे चवदाव्या रकान्यांत दिली आहे. त्यावरून पहातां, असें दिसतें कीं, शक ४०० पासून शक ९०० पर्यंत मराठी भाषा केवळ बोलण्यांत येत होती, तिच्यांत सारस्वत उत्पन्न झालें नव्हतें. अभंग, पदे, भूषाळ्या, कहाण्या, वगैरे वाङ्मय ह्या हि काळीं उत्पन्न झालें असण्याचा पूर्ण संभव आहे. परंतु शक ९०० पर्यंतचें हें वाङ्मय अद्याप उपलब्ध नाहीं. तेव्हां, सध्यांपुढें तरी असेंच ह्मणणें भाग आहे कीं, शक ९०० पर्यंत मराठींत सारस्वत नव्हतें.

३८ शक ९०० पासून पुढें मराठी सारस्वताला प्रारंभ झाला. सार-
स्वताचें अगदीं पहिलें उदाहरण ह्यटलें ह्यणजे
शक ९०० नंतर अभिलपितार्थचिंतामर्णांतिल पदांचें होय. तदनंतर
नागर मराठी. निवृत्ति, ज्ञानेश्वर, वगैरे नागर ग्रंथकार उदयास
आले व त्यांनीं मराठीला नागर केली. हेमाडपं-
ताच्या वेळीं दरवारचें सर्व लिखाण मोडी मराठींत होत असे.

३९ ज्ञानेश्वरानंतर मुसलमानांचें राज्य महाराष्ट्रांत झालें. त्यामुळें मरा-
ठीला फारसी व अरबी भाषांचा संसर्ग घ-
डला. ह्या संबंधीं विवेचन मराठ्यांच्या
शक १२००-१५००. इतिहासाच्या साधनांच्या आठव्या
खंडाच्या प्रस्तावनेंत साद्यन्त केलेलें आहे.
सबब, त्या तपशिलांत येथें पडत नाहीं. मुसलमानी रियासतींत जनार्दन, दा-
सोपंत, एकनाथ वगैरे नामांकित ग्रंथकार मराठींत झाले.

४० नंतर, स्वराज्याचा काळ आला.
स्वराज्य शक १५०० पासून त्यांत रामदास—मोरोपंतादि ग्रंथकार व
शक १७३९ पर्यंत. सभासदादि बखरकार झाले.

इंग्रजाचा संसर्ग ४१ शक १७३९ नंतर मराठीला इंग्रजीचा
शक १७३९-१८३०. संसर्ग झाला. तो सध्यां आपण पहातच आहें

४२ मराठी भाषेच्या स्थित्यंतरांचें स्थूल टिपण हें असें आहे. आज-
पर्यंत मिळालेल्या लेखांवरून १ मराठी भाषेचा इतिहास, २ मराठी भाषेचें
ऐतिहासिक व्याकरण, ३ मराठी भाषेचें निरुक्त व, ४ मराठी भाषेतील-
सारस्वताचा इतिहास, अशीं चार प्रकरणें नामी रीतीनें सजवतां येण्यासारखीं
आहेत. ह्या एकेक विषयाला एकएक स्वतंत्र ग्रंथ च अर्पण केला पाहिजे.

४३ शक १८१८ त मराठी भाषेतील जुने लेख व ग्रंथ शोधण्यास
मी प्रारंभ केला. तेव्हांपासूनच्या बारा वर्षांत जी महत्वाची लेखप्राप्ति झाली
तिच्यावरून ही चोटक हकीकत येथपर्यंत दिली. आतां, प्रस्तुत छापलेल्या
ज्ञानेश्वरी-संबंधानें तपशील देऊन, ही प्रस्तावना आपवितीं.

४४ बालैघाटीं बीडशहरीं पाटांगण नांवाचें एक देवस्थान आहे. तेथें सके १८२५ त ही ज्ञानेश्वरीची प्रत सांपडली. पोथीचें मूलस्थान. इतर दहावीस ज्ञानेश्वऱ्या तेथें पडल्या होत्या त्यांत ही प्रत एका कोनाड्यांत पोथ्यांच्या ढिगांत लोळत पडली होती. मठाधिपति जे मथुरानाथगोसावी त्यांनीं मला ही प्रत नजर केली व हिचा योग्य उपयोग करण्यास कळकळीनें सांगितलें.

४५ ही प्रत सवंध श्रावृत आहे. पानें ३२२ असून, पाठपोट मिळून पोथीचें रूप. पृष्ठें, अर्धात्, ६४४ आहेत. पानाची लांबी ९ इंच व रुंदी ४ $\frac{१}{४}$ इंच आहे. दर पृष्ठास बारापासून चौदापर्यंत ओळी आहेत. अक्षर उत्कृष्ट वळणदार असून, येथूनतेथून एकहातचें आहे. प्रायः प्रत्येक पान कागदाची दुहेरी घडी गोंदानें चिकटवून एकजीव केलेलें आहे. हणजे गोंद काढून पान उघडलें असतां, आंत पोट कोरें आहे आणि पाठीवरील क्षेत्रफळाची दोन पृष्ठें करून वर लिहिलेलें आहे. तात्पर्य कागद आंतून गोंदानें चिकटवून दुहेरी जाड केलेला आहे. शाई लाखी असून, अद्याप अक्षरें पूर्ण श्रावृत आहेत. अक्षराचें वळण तत्कालीन मराठी आहे. सोबत जोडलेल्या फोटोवरून पानाचें व अक्षराचें स्वरूप ध्यानांत येईल. प्रत्येक पानाचे चारी कोपरे मुद्दाम वाटोळे केलेले आहेत. कागद तुरटीच्या पाण्यानें धुतला असल्यामुळें, तो जलनिर्भय झाला आहे. विरामाच्या उभ्या रेखा व ओव्यांचे अंक तांबड्या शाईनें लिहिले आहेत; आणि संस्कृत श्लोकांवर तांबडी काव पासली आहे. लांकडाच्या फळीवर सुतळी बांधून, ती आंखणी कागदावर दावून रेखा पाडलेल्या आहेत. अक्षर वेळूच्या लेखणीनें लिहिलें आहे. पहिल्यापासून अखेरच्या पानापर्यंत अक्षरांची लांबीरुंदी एकसारखी आहे. हणजे एकाच टोकाच्या पांच पन्नास लेखण्या लेखकांनें जवळ तयार करून ठेविल्या असल्या पाहिजेत. लेखक लिहण्याचा धंदा जन्मघर करणारा असून स्वकर्मकुशल होता, असें दिसतें.

४६ लेखनशुद्धीकडे पहातां, ती प्रायः केवळ निर्दोष आहे. क्वचित् एखादें अक्षर गळालेलें आढळतें. परंतु अशीं स्थलें सवंध लेखनशुद्धि. पोथींत फारच थोडीं सांपडतात. गळलेलीं अक्षरें, गळल्या ठिकाणीं काकपद ✓ देऊन, समासांत दाखविलीं आहेत. हणजे पोथी संपल्यावर नूतार्शीं कसोशीनें ताडून वधितलेली आहे.

४७ पोथी वाचनाच्या मालक विद्वानांनं कोठें कोठें समासावर शोध घातलेले आढळतात. मालकाचें अक्षर लेखकाच्या विद्वच्छुद्धि. अक्षराहून भिन्न आहे.

४८ व्याकरणदृष्ट्या पोर्थातील रूपें अत्यन्त शुद्ध लिहिलेलीं आहेत. ह्यणजे ज्ञानेश्वराच्या वेळीं नागर मराठी भाषेचें जें रूप भाषाशुद्धि. होतें तें अक्षरद्वारा जसेचेंतसें ह्या पोर्थांत दाखविलेलें आहे. ऱ्हस्व, दीर्घ, अनुस्वार, अनुनासिक, कान्हा, मात्रा, उकार, इकार, येथूनतेथून सबंद पोर्थांत, प्रावः, तत्कालीनव्याकरणदृष्ट्या शुद्ध लिहिलेले आहेत. ज्या शब्दाचा व रूपाचा जो उच्चार तो तशाचा तसाच अक्षरांनीं वठवलेला आहे. अगदीं एक सुद्धा अपवाद नाही. इतकी शुद्ध पोथी संस्कृतांत हि सांपडणें कठिण. प्राकृतांत, तर, ती केवळ अनुपमेय आहे. ह्या पोथीचें मराठी भाषाशास्त्राला व निरुक्ताला फारच साहाय्य होईल.

४९ ही पोथी कोण्या विद्वन्मन्यांनं पुनः एकदां शुद्ध केलेली आहे. ज्ञानेश्वरकालीन रूपें एकनाथाच्या किंचित् पूर्वी वदलून आधुनिक होत होतीं. अशा काळीं, ही पोथी कोणा गृहस्थाच्या हातीं पडून, त्यानें हजारों स्थलीं गंधाचा व गेरूचा उपयोग करून मूळपाठ बुजवून टाकिले आहेत. गंध व गेरू हलक्या हातानें खरडून काढून मूळपाठ मी प्रस्तुत छापील प्रतींत दिले आहेत. गंध व गेरू ह्यांच्या लेपाखालील मूळपाठ ज्ञानेश्वरकालीन व्याकरणदृष्ट्या शुद्ध होते, ते ह्या गृहस्थाला अशुद्ध वाटून, त्यानें ही मखलाशी केली आहे. परंतु, ती मखलाशी हि फारच काळजीनें व सफाईनें केली आहे. सारांश, ही पोथी, लेखक, मालक, व मखलाशीकार, ह्या तिन्ही उत्कृष्ट लोकांच्या हातून जातजात मथुरानाथ गोसाव्यांच्या द्वारा माझ्या हातांत आली. ती जशीची तशी महाराष्ट्रांतील विद्वानांच्या सेवेस छापून सादर केली आहे.

५० श्रीमहागणपतयेनमः ॥, असा पोर्थाचा प्रारंभ आहे. पोर्थाची समाप्ति येणें प्रमाणें:-

पोथीचे
आद्यन्व.

ऐसें युगां वरि कली । आणि महाराष्ट्रमंडलीं ।
श्री गोदावरिचां कुलीं । दक्षिणिणीं ॥ ८४ ॥
तेथ भुवनैकपवित्र । अनादिपंचक्रोशक्षेत्र ।
जगाचें जीवनसूत्र । जेथ श्रीमहालसा ॥ ८५ ॥
तेथ इंदुवंशविलासु । जो सकलकलां निवासु ।
न्यायातें पोखीत क्षितीशु । श्रीरामचंद्रु ॥ ८६ ॥
तें माहेशान्वयसंभूतें । श्रीनिवृत्तिनाथसुतें ।
केलें ज्ञानदेवें गीते । देशीकार लेणें ॥ ८७ ॥
एवं भारताचां गावीं । भीष्मनामीं प्रसिद्धपर्वीं ।
श्रीकृष्णांजुनीं बरवी । जे गोष्टि केली ॥ ८८ ॥
जें उपनिषदाचें सार । सर्वशास्त्राचें माहिण्ण ।
परमहंसीं सरोवर । सेविजे जें ॥ ८९ ॥
तिथे गीतेचा कलशु । संपूर्ण हा अष्टादशु ।
हणें निवृत्तिदासु । ज्ञानदेवो ॥ ९० ॥
पुडुतीं पुडुतीं पुडुतीं । इया ग्रंथा पुण्यसंपत्ती ।
सर्वसुखीं सर्वभूतीं । संपूर्ण होइजो ॥ ९१ ॥

ॐ तत्सिदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णांजुनसंवादे मोक्षयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ हिरण्य । श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ १८ ॥ लेखनं श्रीकृष्णार्पणमस्तु । श्री +++++ साम्राज्यलक्ष्मीस्वरूपीश्वरा गुरुकृपालु नारायण पातु मां ॥

येथें ज्ञानेश्वरीचा अखेर झाला. ९० व्या ओवीच्या "दासु ॥ ज्ञानदेवो" पासून " पातु मां " पर्यंतच्या सर्व ओळी आळित्याच्या तांबड्या शार्डेंनें मूळलेखकानें लिहिल्या होत्या. त्यापैकीं ९१ वा अभंग संपेतोंपर्यंतचीं तांबडीं अक्षरें एका गृहस्थानें काढ्या शार्डेंनें गिरविलीं आहेत. आंतून तांबडी शार्डें दिसते व वरून काढ्या शार्डेंचीं ओवडधोवड गिरवणी डोळ्यांत सलते. ह्या गृहस्थानें ८४ व्या ओवीपासून ९१ व्या ओवीपर्यंतचीं काळी व तांबडी अर्दीं सर्वच अक्षरें काढ्या शार्डेंनें गिरविलीं आहेत. कारण, ह्या गृहस्थान्या हातांत ही पोथी आली, तेव्हां पोथीच्या ह्या शेवटल्या पृष्ठावरचीं अक्षरें घासटून अगदीं पुसटून गेलीं होतीं. तेव्हां स्पष्टतेकरतां तीं काढ्या शार्डेंनें

गिरवणें त्याला भाग पडलें. परंतु, गिरवणाऱ्याला मूळलेखका इतकें सुंदर लिहितां येत नसल्यामुळें वळवलेलें प्रत्येक अक्षर बेटव वनलें आहे. मूळ अक्षराची सफाई, ह्या गिरवणाऱ्याच्या धसाऱ्या हातानें, अगदीं निघून गेली आहे. आतां इतकें खरें आहे कीं गिरविणाऱ्यानें जर घासटून पुसटत जात चाललेलीं अक्षरें गिरवून झावूत राखिलीं नसतीं, तर ह्या पोथीच्या समाप्तीचीं हीं अक्षरें व ओव्या आपणांस पहावयास न सांपडत्या. ह्या दृष्टीनें पाहिलें ह्यणजे, ह्या गृहस्थानें अक्षरें गिरवून बचावण्यांत जगावर मोठा उपकार केला आहे, त्यांत संशय नाहीं. ह्या शेवटल्या पानाचे दोन्ही बाजूचे समास व समासांच्या मधील बोट अर्धबोट जागा फाटून गेली होती ती हि ह्या मनुष्यानें स्वकालीन कागदाच्या तुकड्यांनीं डागडूज केली आहे. मूळलेखकानें लिहिलेल्या ज्ञानेश्वरीच्या पोथीच्या समाप्तीच्या ओव्यांचा व अक्षरांचा हा तपशील झाला. समाप्तीच्या शेवटल्या ओळीवरून असें दिसतें कीं, लेखकाला संस्कृत भाषा येत नव्हतीं.

“ पादुमां ” नंतर दुसऱ्या एका मनुष्यानें लिहिलेली व निराळेंच वळण असलेली एक ओवी येणेंप्रमाणें आहे:—

(१) शके बारा शतें बाराचरें । तें टीका केली ज्ञानेश्वरें ।
सच्चिदानंद वाया आदरें । लेखक जाला ॥ ९२ ॥

ह्या ओवीच्या अक्षरांचें वळण उपरिनिर्दिष्ट गृहस्थाच्या वळणासारखें नाहीं. शिवाय अक्षरांची साई उपरिनिर्दिष्ट गृहस्थाच्या साईहून जुनी आहे. ह्यणजे ही ओवी उपरिनिर्दिष्ट गृहस्थाच्या आधीं कोणी तरी लिहिलेली आहे, व तिच्यावर ९२ चा आंकडा टाकिला आहे.

हा ९२ व्या ओवीच्या खालीं एक संस्कृत श्लोक ९२ व्या ओवीच्या वळणाहून निराळ्या वळणांत लिहिलेला आहे. त्याची साई ९२ व्या ओवीच्या साईहून निराळी व जुनी दिसते. हा श्लोक येणेंप्रमाणें:—

(३) श्रीसद्गुरुमुकुदेन दत्ता ज्ञानेश्वरी शुभा ॥

विद्याधराय शिष्याय स्वीए स्वत्वं न शोभते ॥ १ ॥ ७ ॥

९२ वी ओवी व हा श्लोक ह्यांच्या मध्यें खालील खरडलेली ह्यणजे प्रथम लिहून नंतर लेखणीनें खरडून व पुसून टाकिलेली एक ओळ आहे.

हे अक्षर वरल्यां तिन्ही अक्षरांहून अगदीं निराळें व फिरटें आहे.- ओळ येणेंप्रमाणें:—

(२) हें पुस्तक विश्वनाथ कोनेर धोलर देवनुरकर

ह्या तीन लेखांपैकीं तिसरा लेख कालदृष्ट्या सर्वांच्या आधींचा, पहिला लेख तदनंतरचा आणि दुसरा लेख शेवटचा आहे.

५१ समातीच्या ह्या तीन लेखांवरून खालील निगमनें प्राप्त होतात. [१] मूळलेखकानें ज्या प्रतीवरून आपली प्रत उतरून घेतली त्या प्रतीत व अर्थात् उताऱ्यांत “ शके बारां शते ” इत्यादि ओवी नव्हती. [२] ती ओवी ज्ञानदेवानंतर कोणी तरी रचिलेली आहे. ती ओवी सच्चिदानंदबाबांनै हि रचिलेली नाहीं. कारण, ज्ञानदेव व सच्चिदानंदबाबा यांच्या कालीं बाबा असें रूप प्रचलित नसून बाबा असें रूप प्रचलित होतें.

पोथीचा काळ वत्सा=वप्पा=वापा=बाबा=बाबा, अशी उच्चारपरंपरा आहे. **निर्णय.** सच्चिदानंदबाबांनै ही ओवी लिहिली असती, तर बाबा असा पाठ आला असता. मजजवळ ज्ञानेश्वरीच्या इतर मुमांरें पन्नास पोथ्या आहेत. त्यापैकीं एकींत हि बाबा असा पाठ नाहीं, बाबा असाच पाठ आहे. ह्यगजे सच्चिदानंदबाबा वारल्यावर त्याच्या कोण्या चाहत्यानें तत्स्मरणार्थ ही ओवी रचिलेली आहे. अर्थात्, प्रस्तुत छापिली गेलेली प्रत ज्या मूळ प्रतीवरून केली, ती मूळ प्रत सच्चिदानंदबाबाच्या मृत्यूच्या आधीं लिहिलेली होती. [३] ही मूळ प्रत सहुरु मुकुंदानें विद्याधर नामक शिष्याला दिली. सच्चिदानंदबाबाच्या मृत्यूच्या अगोदर असणारा हा मुकुंद मुकुंदराज ज्याला ह्मणतात तो च होय. दुसरा कोणी मुकुंद शक १२१२ पासून शक १२४० पर्यंत हयात नव्हता. मुकुंदराजाची हयात शक ११५८ पासून शक १२५८ पर्यंत होती, (ग्रंथमाला, मुकुंदराज). तात्पर्य मुकुंदराजांनै आपला शिष्य जो विद्याधर त्याला आपल्याजवळील ज्ञानेश्वरीची प्रत बक्षीस दिली. तीच ही मजजवळ असलेली प्रत होय. ही प्रत सच्चिदानंदबाबाच्या मृत्यूच्या अगोदर ह्यगजे शक १२४० च्या अगोदर व शक १२१२ च्या नंतर केव्हां तरी लिहिलेली आहे. ह्या प्रतीचा उत्तम मजबूत, तलम व कमावलेला कागद; उत्तमोत्तम शाई; कसलेल्या लेखन-कुराल लेखकाचें येथूनतेथून एकवळणी अक्षर. पाहिलें ह्यगजे असें कबूल

करणे भाग पडते कीं, ही प्रत तयार करण्यास पुष्कळ द्रव्य लागले असावे व ज्या धन्याकरितां ही प्रत तयार केली तो धनी श्रीमान असावा. मुकुंदराज होयसळवंशीय जयंतपाळाचा गुरु होता, व त्याला अर्थात् उत्तम द्रव्य व उत्तम राजदरवारी लेखक मिळण्यासारखे होते. दरियाच्या हातून अशी प्रत तयार होणे अशक्य आहे. ही प्रत लिहून काढण्यास, इतक्या काळजीनें, सुवक्रपणानें व सफाईनें उतरून घेण्यास व मुळावरहुकूम तपासण्यास वर्षे दोन वर्षे लागलीं असावीं. ह्मणजे सुमरिं हजारपांचशे रुपयांच्या खर्चा ह्या प्रतीला खर्च पडला नसावा. तेव्हां, असली ही द्रव्यसाध्य प्रत तयार करविणारा राजगुरु मुकुंदराज च असला पाहिजे. सारांश, ही प्रत मुकुंदराजाची आहे व ही शक १२१२ पासून शक १२४० पर्यंतच्या काळांत केव्हां तरी लिहिलेली आहे. एकाच शब्दानें सांगावयाचें झटलें, तर असें ह्मणणे प्राप्त होतें कीं, महाराष्ट्रमंधसंग्रहांत ही ज्ञानेदेवीची प्रत केवळ “ अमूल्य ” आहे

५२. मुकुंदराजाचा शिष्य जो विद्याधर—आपुल्याला ही देणगी शोभत नाही, आपण हिचे मालक होण्यास योग्य नाही, असें उद्गार काढणारा जो विद्याधर—त्याच्या हातून ही पोथी विश्वनाथ कोनेर धोलर देवनुरकर याच्या ताब्यांत गेली. व त्याच्या द्वारा परंपरेनें बीड येथील पाटांगणांत येऊन दाखल झाली.

५३. तलम कागदाची मजबुती, बारीक पण घोसदार अक्षराची एकवळणी सफाई, मालकाची द्रव्यसंपन्नता, वगैरे पोथीच्या गुणांचें अनुवादन केलें. परंतु, ह्या सामान्य गुणांहून दुसरा एक असामान्य गुण ह्या पो-

पोथीतील
शक १२१२
तली निर्भेळ
नागर मराठी
भाषा.

थीत आहे. तो हा. ह्या पोथीतील भाषा—जी ज्ञानेश्वर बोलला, जी ज्ञानेश्वरानें नेवाद्यांतील शिलेवर लिहिली, व जी शक १२१२ त नागर मराठे बोलत—ती च साक्षात् आहे. कागद भिकार असतां, अक्षर गिचमीड असतें, व मालक शतदरिद्री असता, आणि भाषा जर ह्या पोथीतल्याप्रमाणें साक्षात् शक १२१२ तील नागर मराठी असती, तरी देखील, ह्या एकाच असामान्य गुणाच्या वळावर, अशा पोथीचा सकौतुक आदर करणे भाग पडेलें असतें. ज्ञानेश्वरांच्या पुण्याईनें व मुकुंदराजांच्या श्रीमंतीनें उत्तम कागद व उत्तम अक्षर ह्यांच्या

जोडीला शक १२१२ ताल निमेंळ नागर मराठी भाषा आपल्याला उपलब्ध झाली आहे. तेव्हां, ह्या प्रतींचे कौतुक करावं तेवढे थोडेच आहे, पंढर-पूर येथील शक ११९५ ताल शिलालेखांतल्यासारखी किंवा पाटण येथील शक ११२८ ताल शिलालेखांतल्यासारखी भाषा ह्या पोथीची आहे. तेव्हां, मुकुंदराजाचा उल्लेख ज्यांत केला आहे असा श्लोक यद्यपि ह्या पोथीच्या समाप्तीस नसतां, तथापि देखील निव्वळ भाषेच्या स्वरूपावरून ही पोथी थेट ज्ञानेश्वराच्या वेळची आहे, असें तज्ञांमाग सहज ताडतां आलें असतें. प्रथम मीं जेव्हां ही पोथी पाटांगणांत अधूनमधून वाचून पाहिली, तेव्हां भाषेवरून प्रथमदर्शनीच लक्षांत आलें कीं, ही प्रत एखाद्या ज्ञानेश्वरकालीन प्रतीची नकळ आहे. पुढें अक्षराच्या वळणाचा जेव्हां विचार करूं लागलों, तेव्हां असें हि दृश्युत्पत्तीस आलें कीं, ह्या पोथीतील अक्षरें पंढरपूर येथील शक ११९५ ताल शिलालेखांतल्या अक्षरांसारखीं आहेत. आणि समाप्तीतील मुकुंदराजाच्या श्लोकाचें जेव्हां मनन केलें, तेव्हां तर अची पक्की खात्री झाली कीं, ही पोथी खुद्द मुकुंदराजाची आहे. व ती त्यानें आपला नम्र व श्रद्धालू शिष्य जो विद्याधर त्याला बक्षीस दिली होती. शेवटीं, सच्चिदानंदवाचा संबंधीची ओवी मूळप्रतींत नाही, हें जेव्हां पाहिलें, तेव्हां शक १२४० च्या पूर्वीची हणजे सच्चिदानंदवाचाच्या मृत्यूच्या पूर्वीची ही पोथी आहे, असें ठाम मत झालें, आणि मराठी भाषेच्या व्युत्पत्तीला व व्याकृतीला व इतिहासाला ही प्रत अत्यंत उपयोगी पडेल असा भरंवसा वाटला. पंढरपूर येथें पोलीस चावडींत व पंढरपूर जिल्ह्यांत जेवढें हणून यादवकालीन शिलालेख आहेत तेवढ्यांतील अक्षरांचें वळण या पोथीतील अक्षरांच्या वळणासारखें आहे. ही पोथी हणजे मराठी भाषेतील कागदावर लिहिलेला अत्यंत जुना असा पहिला लेख होय. मुदैव कीं हा लेख पाठपोट ६४४ पृष्ठे आहे व संबंध साबूत आहे. कागदावर लिहिलेला इतका जुना लेख किंवा इतकी जुनी पोथी डेकन कालेजांतील संग्रहांत किंवा आनंदाश्रमांतील संग्रहांत नाही. अर्थात्, ह्या पोथीवरून हें हि सिद्ध होतें कीं ज्ञानेश्वरकालीं कागद हा पदार्थ प्रचारांत होता. डेकन कालेजांत एक कागदाची पोथी शक १२०० च्या पूर्वीची आहे, हणून तेथील संग्रहालयाच्या लायब्ररी-यनच्या सांगण्यांत आलें, परंतु, ती पोथी साक्षात् पाहिल्याशिवाय व तिला

कसास लावल्याशिवाय तिच्यासंबंधाने निश्चयाने कोणतेंच विधान ग्राह्य करतां येत नाही.

५४ एकनाथानें शुद्ध केलेल्या प्रतींत तद्विषयक उल्लेखाच्या कांहीं एकनाथी ओव्या येत असतात. ज्ञानेश्वरीच्या शोधाची लेखनकामाठी एकनाथानें शक १५०६ तारणसंवत्सरीं संपूर्ण केली. त्या ओव्या अर्थात्च प्रस्तुत छापल्या गेलेल्या मुकुंदराजाच्या प्रतींत नाहीत. हणजे, ह्या पोथीवर शुद्धाशुद्धाची जी मखलाशी केली आहे ती हि एकनाथाच्या पूर्वीची आहे; नंतरची असती तर एकनाथी ओव्यांचा समावेश मखलाशीकारानें अवश्यमेव केला असता. कारण, शुद्धाशुद्ध करणारा मखलाशीकार मोठा साक्षेपी गृहस्थ दिसतो. एकनाथानें आपली शुद्ध प्रत शक १५०६ तारणांत तयार केली. त्याच्या पुढें ९ वर्षांनीं शक १५१५ तील एक पोथी तंजावरांतील ग्रंथसंग्रहांत माझ्या पहाण्यांत आली. हिची समाप्ति अशी:—

“ शके पंधरा शतें सावोत्तरि । तारणनाम संवत्सरि ।
एका जनार्दने अत्यादारि । गीता-ज्ञानेश्वरी-प्रती शुद्ध केली ॥ १ ॥
ग्रंथ पूर्वी च अतिशुद्ध । परि पाठांतरें शुद्धाबद्ध ।
ते शोधुनियां येवंविध । प्रति शुद्ध सिद्धज्ञानेश्वरी ॥ २ ॥
नमो ज्ञानेश्वरा निष्कळका । ज्याचे गीतेची वाचितां टीका ।
ज्ञान होय लोकां । अतिभाविका ग्रंथार्थियां ॥ ३ ॥

श्रीशके पंधरा शतें पंधरा, विजयसंवत्सर, उत्तरायणें, फाल्गुनमासे, शुक्लपक्षे, सप्तमी, रविवार, गीता संपूर्ण । श्रीकृष्णापर्णमस्तु । गोदादक्षिण भागे राजधानि अहमदानगरस्थाने फरशरामात्मज-नृसिंह-भारद्वाजगोत्रोत्पन्नेन । ग्रंथो लिखितः संपूर्णमस्तु ॥ ”

शके १५१५ च्या फाल्गुन शुक्ल सप्तमीला रविवार येतो, तेव्हां, ही प्रत शक १५१५ तील आहे, ह्यांत संशय नाही. एकनाथानें शुद्ध केलेल्या प्रतीवरून ही प्रत उतरून घेतलेली आहे. अर्थात् एकनाथी प्रत कशी असेल तें हिच्यावरून ताडतां येतें. पैठणापासून जवळ असलेल्या अहमदनगर

शहरां फरशरामात्मज नृसिंह भारद्वाज यानें ही प्रत उत्तरली. भारद्वाज ह्यणजे भारदे. नगर येथील ज्या भारद्वाजांनी ऊर्फ भारद्वाजांनं काहीं वर्षां-पूर्वी एकाचे दोनचार ज्ञानेश्वर केले होते त्यांचाच कोणी पूर्वज हा नृसिंह भारद्वाज असाया. यावरून असें दिसतें कीं, ज्ञानेश्वरीचें पठण ह्या भारद्वाजांच्या कुळांत वंशपरंपरेनें आहे. ह्या प्रतीत (१) भाद्रपदमास कपिला-षष्ठी, इत्यादि व (२) या ज्ञानेश्वरी पाठीं, इत्यादि, दोन ओंव्या नाहींत. तंजावर येथील प्रतीतील अध्यायवार ओंवी संख्या येणेंप्रमाणें आहे.

| अध्याय | ओंव्या | अध्याय | ओंव्या |
|--------|----------|--------|----------|
| १ ... | ... २७५ | २ ... | ... ३७२ |
| ३ ... | ... २७३ | ४ ... | ... २२५ |
| ५ ... | ... १८० | ६ ... | ... ५०८ |
| ७ ... | ... २१० | ८ ... | ... २७१ |
| ९ ... | ... ५३६ | १० ... | ... ३३६ |
| ११ ... | ... ७१२ | १२ ... | ... २४७ |
| १३ ... | ... ११६९ | १४ ... | ... ४१५ |
| १५ ... | ... ५९९ | १६ ... | ... ४७३ |
| १७ ... | ... ४३३ | १८ ... | ... १८१० |

१०४७

कुंटे आपल्या प्रतीला एकनाथी प्रत ह्यणतात. कुंट्यांच्या प्रतीत १०३७ कुंट्यांची प्रत. ओंव्या आहेत. त्यापक्षां ह्या तंजावरी प्रतीत १० ओंव्या जास्त आहेत.

५५ तंजावरांतील भारद्वाजी प्रत व कुंट्यांची एकनाथी ह्यणून सट. लेली प्रत ह्यांत प्रत्येकीं १०४७ व १०३७ मुकुंदराजाच्या प्रतीतील ओंव्या आहेत. प्रस्तुत छापलेल्या मुकुंदराजाच्या प्रतीत अध्यायवार ओंवीसंख्या अशी आहे:—

| अध्याय | ओंव्या | अध्याय | ओंव्या |
|--------|---------|--------|---------|
| १ ... | ... २७३ | २ ... | ... ३७८ |

(७३)

| | |
|----------------|----------------|
| ३ २७१ | ४ २२२ |
| ५ १७८ | ६ ४९४ |
| ७ २०५ | ८ २६९ |
| ९ ५३० | १० ३१० |
| ११ ६९८ | १२ २४४ |
| १३ ११६३ | १४ ३७१ |
| १५ ५९६ | १६ ४७२ |
| १७ ४३१ | १८ १७९१ |

८८९२

५६. वार्डस एका सोनाराच्या येथे सांपडलेली ज्ञानेश्वरीची एक प्रत
आहे तीत ओंव्या अध्यायवार येणेप्रमाणे
सोनारी प्रतीतील ओंवी-
संख्या. आहतः—

| अध्याय | ओंव्या | अध्याय | ओंव्या |
|----------------|----------------|--------|--------|
| १ २९९ | २ ४३६ | | |
| ३ ३५१ | ४ २५४ | | |
| ५ २२० | ६ ५३९ | | |
| ७ २३६ | ८ २९३ | | |
| ९ ६१७ | १० ४७१ | | |
| ११ ७५९ | १२ २७२ | | |
| १३ ११८६ | १४ ४६४ | | |
| १५ ६१४ | १६ ५२९ | | |
| १७ ४६८ | १८ १८६३ | | |

९८५१

५७ अकळूज येथील एका भराड्यापाशी एक ज्ञानेश्वरीची पोथी होती
तीत ओंवीसंख्या येणेप्रमाणे होतीः—
भराड्याच्या प्रतीतील
ओंवीसंख्या.

| अध्याय | ओंव्या | अध्याय | ओंव्या |
|---------|----------|---------|----------|
| १ | ३२२ | २ | ४८८ |
| ३ | ३१८ | ४ | २६७ |
| ५ | २०९ | ६ | ५४४ |
| ७ | २३९ | ८ | २९८ |
| ९ | ५६९ | १० | ३७९ |
| ११ | ७६२ | १२ | २६६ |
| १३ ... | ... १२०५ | १४ ... | ... ४१३ |
| १५ ... | ... ६२० | १६ ... | ... ४९७ |
| १७ ... | ... ४६१ | १८ ... | ... १८८७ |

९७३४

५७ वाई येथे उद्बोधनाथसंप्रदायी खेडकर हरिदास आहेत त्यांच्या-
उद्बोधनाथी प्रतीतील जवळील प्रतीकांच्या पोर्थात ज्ञानेश्वरीच्या ओंव्यांची
ओंवीसंख्या. संख्या ९०३४ आहे. ही प्रत संप्रदायपरंपरेने
आलेली आहे, असे हरिदास झणतात.

५८ रा. रा. माडगांवकर यांनी एक पाठान्तरें देऊन ज्ञानेश्वरी छा-
पिली आहे; परंतु जर्बी प्रसिद्ध करावी तशी जाहीर-
माडगांवकरी छापील रीतीने प्रसिद्ध केली नाही. तिची एक प्रत कै०
प्रतीतील ओंवी- काशिनाथपंत परब यांनी मला दिली. ही प्रत
संख्या तयार करतांना माडगांवकर यांनी क, ख, ग, घ,
च, छ, ज, झ, ट, ठ, ड, अशा एकदर ११ नि-
रनिराळ्या प्रती पाठान्तरांकरितां जमविल्या होत्या. पैकीं नव्याजुन्या किती,
वगैरेचा तपशील त्यांनीं दिला नाही. त्यांनीं आपल्या प्रतीला उपोद्घात वगैरे
कांहींच माहिती दिली नाही. त्यामुळे अकरा हि प्रतींत सारख्याच ओंव्या
होत्या किंवा प्रत्येक प्रतीतील ओंवीसंख्या निरनिराळी होती, या संबधानें
कांहींच सांगतां येत नाही. प्रायः ओंवीसंख्या निरनिराळ्या पोथ्यांत भिन्न-
भिन्न असलीच पाहिजे, असें मजजवळील पन्नास पोथ्यांवरून मी खात्रीनें
सांगूं शकतो. माडगांवकरांनीं हा प्रपंच केला नसल्यामुळे त्यांनीं छापिलेल्या
प्रतीतील च तेवढ्या ओंव्यांची संख्या येथें देतो.

(७५)

| अध्याय | ओंव्या | अध्याय | ओंव्या |
|-----------|--------|-----------|--------|
| १ | २७५ | २ | ३७५ |
| ३ | २७६ | ४ | २२५ |
| ५ | १८० | ६ | ४९७ |
| ७ | २१० | ८ | २७१ |
| ९ | ५३५ | १० | ३३५ |
| ११ | ७०८ | १२ | २४७ |
| १३ | ११७० | १४ | ४१५ |
| १५ | ५९८ | १६ | ४७३ |
| १७ | ४३३ | १८ | १८११ |

९०३४

५९ निळोवाच्या गाथेतील ज्ञानेश्वरीच्या ओंव्यांची संख्या दहा हजार आहे.

निळोवाच्या मते
ओंवीसंख्या.

तया स्थळीं केला भगवतीताअर्थ ।

दहासहस्र ग्रंथ पूर्ण झाला ॥ ९७ ॥

ज्ञानेश्वरचरित्र, निळोवाकृत ॥

६० चिध्दनस्वामी भक्तकथामृतसारांत

करी नवसहस्र पत्रास (९०५०) ।

चिध्दनमते
ओंवीसंख्या.

ओंवी गीतार्थ ज्ञानेश्वरी ॥ १४६,

अध्याय ९ (भिगारकर).

भारद्यांच्या प्रतीतील
ओंवीसंख्या.

६१ भारद्यांच्या पोथीतील ओंवीसंख्या
९००९ आहे,

६२-येणेंप्रमाणें निळोवाच्या १०००० पासून मुकुंदराजाच्या ८८९२ पर्यंत निरनिराळ्या पोथ्यांत ओंवीसंख्या आहे. पैकीं, मुकुंद-
क्षेपक. राजाच्या पोथीतील ८८९२ चा आंकडा मूळ धरणें काल-
 दृष्ट्या व भाषादृष्ट्या प्रशस्तच नव्हे, तर अवश्यच आहे. ह्या
 ८८९२ हून जेवढ्या ओंव्या जास्त सांपडतील तेवढ्या सर्व क्षेपक होत.
 परीक्षकरितां प्रस्तुत प्रतींतील पहिला अध्याय घेतों व सोनारी प्रतींतील पहिला
 अध्याय घेतों, आणि, सोनारी प्रतींतील क्षेपक ओंव्या संस्कृत श्लोकांच्या व
 मराठी ओंव्यांच्या अनुक्रमानें देतो. निळोवाची दहाहजार ओंव्यांची प्रत
 मला उपलब्ध झाली नाही. सबब, तिच्या खालोखाल ओंव्यांची संख्या
 मजजवळील सोनारी प्रतींत असल्याकारणानें तुलनेकरितां सोनारी प्रतच
 घेतली आहे.

मुकुंदराजाच्या प्रतींतील
 कोणत्या ओंवी नंतर

सोनारी प्रतींतील क्षेपक ओंवी
 किंवा ओंव्या आंकड्यासह.

क्षेपकः—

- (१) कीं ज्ञानामृताची सरिता ।
 मुमुक्षुसाधकां तृपितां ।
 अज्ञानदारिद्र्ये पीडितां ।
 कामधेनु हे ॥ २९ ॥
- २८ व्या ओंवी नंतर
- (२) जो विक्रमं महामेरु ।
 तेजस्वी प्रतापे भास्करु ।
 जयाचीया बळा नेणवे पारु ।
 ऐसा वीर ॥ १०२ ॥
- १०० " "
- (३) आधीं च बळाचा महामेरु ।
 वरि अवलंबीला अवसरु ।
 येणें काळासी ही हीमज्वरु ।
 प्रगट्ये पाहे ॥ १५० ॥
- १४८ " "

(७७)

- १५० " " (४) जैसे सागर हेलावती ।
तैसे नादावारि नाद उठती ।
दोहीं दळीं आंदोळती ।
सींहनाद ॥ १५३ ॥
- १५५ " " (५) ऐसा घोषु अचाट प्रगटला ।
आकाशीं पाताळीं व्यापला ।
तेणें महाभूतांचा राहीला ।
व्यापारु आषवा ॥ १५९ ॥
- १५६ " " (६) पवन प्राणें कोंडला ।
तोय सर्वत्र शोखीनला ।
तेज तरी लोपला ।
सैन्यरजें ॥ १६१ ॥
- १७० " " (७) योध्ये सत्रळ भारी टणक ।
शस्त्रास्त्रीं पूर्ण साधक ।
युध्य करुं आले सकळीक ।
भूपती जे जे ॥ १७५ ॥
- १७४ " " (८) कैसा कृष्णार्जुनें रथ मिरवत ।
ध्वजास्तंभी तो हणुमंत ।
मूर्त्तित्रय अत्यद्भुत ।
देखती डोळां ॥ १७९ ॥
- १७५ " " (९) तंव कृष्णु हणु पार्थाप्रती ।
येथें समस्त राये आले असती ।
कौरवातें ही निगुती ।
पाहे पां वरवें ॥ १८० ॥
- १८४ " " (१०) परस्परें कोणहा न गणिति ।
दोहिं दळीं वीर हाकारिति ।
आजी फावलि रे आहां छणति ।
संग्रामगंगा ॥ १९० ॥

(७८)

- १८८ " " [११] झणोनी येथें स्वजनु देखीला ।
कृपेनें अत्यंत मोहीनला ।
तये वीरवृत्तीसी केला । -
अनादरु ॥ १९४ ॥
- २०६ " " [१२] नीमीलें वीपरीत दीसती ।
न चोजवे श्रेयसंपत्ति ।
वृथाची दुराग्रहो श्रीपती ।
संग्रामी यये ॥ ११३ ॥
- " " " [१३] कैसा संग्राम हा दुर्धर ।
बोडवला पापाचा सागर ।
येथें निस्तरावया धीर ।
कवण आथी ॥ ११४ ॥
- २२१ " " [१४] कैसें हें नसावरत चि आलें ।
अदृष्ट दुःख कोसळलें ।
नेणों काय आर्जविलें ।
प्राकृत पूर्वी ॥ २२९ ॥
- २२४ " " [१५] जयांचें करुं पूजन ।
हृदयीं भावें भजन ।
नीरंतर दरुषण ।
वाहों पोटी ॥ २३२ ॥
- " " " [१६] यांचिया कृपेचें मज जीवन ।
तेणें मी जालों अर्जुन ।
तो आतां काय जुझोंन ।
मारुं यांसी ॥ २३३ ॥
- २३१ " " [१७] कां पंचमु सभेमाजी एतां ।
न थरे श्रोत्रीयु सर्वथा ।
नां तारि खळाची प्रसन्नता ।
साधु न वांछी ॥ २४० ॥

- २३१ " " [१८] जरि अनंत जन्मीचे सुकृत ।
तेणें तुं जोडलासि अभ्युत ।
ऐसें देखोनि विपसित ।
राहे कोण्हीं ॥ २४१ ॥
- २४० " " [१९] तैसा हा दोषाचा महापूर ।
कुळघात भी च संवहार ।
येथें वाहवलियां पार ।
न सांपडे चि ॥ २५० ॥
- २४१ " " [२०] ऐसें पार्थुं तीये अवसरीं ।
ह्मणे देवा अवघारीं ।
ययां कल्मषांची थोरी ।
जाणसी तुं ॥ २५२ ॥
- २५० " " [२१] ऐसा वर्णसंकरां तयां ।
अशेखां कुळघातीयां ।
नरकभोगा वांचुनीयां ।
नाहीं आन ॥ २६२ ॥
- २५८ " " [२२] मग तयांचे धर्म नासती ।
बुळ जाये अधोगती ।
ऐसी करिजैल ख्याति ।
पारपीं याहीं ॥ २७० ॥
- २६५ " " [२३] ऐसें वीचारुनी सकळ ।
अवलोकुनीयां कुळ ।
मग ह्मणे राज्य तें केवळ ।
नीरयभोगु ॥ २७८ ॥
- २७३ " " [२४] जेणें अर्जुनाचा मोहो नाशे ।
सम्यक्-ज्ञान हृदयीं प्रकाशे ।
ऐसीं प्रबोध उत्तरें विश्वेशे ।
बोलिजति ॥ २८६ ॥

(८०)

| | | | | | | | | |
|-----|---|---|---|---|---|---|---|--|
| | | (२५) जे उत्तरमीमांसा उपनिषदें । तीर्थे मथुनीयां मुकुंदें । निरुपिजैल आनदें । पार्थु जेणें उमजे ॥ २८७ ॥ | | | | | | |
| २७३ | ” | ” | | | | | | |
| | | (२६) वेदीं त्रिकांडनिरोपण । कर्म उपासना ज्ञान । तें स्वयें ची कृष्ण आपण । बोधिति पार्थासी ॥ २८८ ॥ | | | | | | |
| ” | ” | ” | | | | | | |
| | | माडगांवकरांच्या प्रतीत खालील दोन ओंव्या क्षेपक आहेत. ऐसें पार्थ तिये अवसरें । २४१ | ” | ” | ह्मणे देवा अवधारीं । या कल्मषाची थोरी । सांगैन तुज ॥ २४२ ॥ ऐसें देखोनि सकळ । अर्जुनें आपुलें कुळ । २६५ | ” | ” | मग ह्मणे राज्य तें केवळ । निरयभोग ॥ २६७ ॥ |

सोनारी प्रतीतल्या शेवटल्या तीन ओंव्या कुंट्यांनीं पहिल्या अध्यायांत क्षेपक ह्मणून नमूद केल्या आहेत.

माडगांवकरांच्या प्रतीच्या पहिल्या अध्यायांतल्या दोन्हीं क्षेपक ओंव्या सोनारी प्रतीत पाठभेदानें आल्या आहेत.

मजजवळील इतर सर्व पोथ्यांच्या पहिल्या अध्यायांतील क्षेपक सोनारी प्रतीतील क्षेपकांत आले आहेत. ज्याअर्थीं सोनारी प्रतीत ओवीसंख्या ९८५१ आहे व निळोवाच्या प्रतीत १०००० ओंव्या होत्या, त्याअर्थीं निळोवाच्या प्रतीत सोनारी प्रतीतल्याहून १४९ क्षेपक जास्त होते, हें उघड आहे. तंजावरी प्रतीत ओंव्या ९०४७ आहेत, तेव्हां तींत १५५ क्षेपक मुकुंदराजाच्या प्रतीहून जास्त आहेत. तंजावरची

(८१)

प्रत एकनाथाच्या प्रतीनंतर ९ वर्षांनीं ह्यणजे शक १५१५ त तयार केली असल्यामुळे, एकनाथाच्या प्रतीत सुमारे ९०४७ ओंव्या असल्या, असें ह्यणण्यास हरकत नाही. भारद्यांच्या प्रतीप्रमाणें एकनाथी प्रतीत ९००९ ओंव्या होत्या असें जरि धरलें, तरी हि एकनाथाच्या प्रतीत ११७ क्षेपक राहिले च होते, असें ह्यणावें लागतें. ह्यणजे एकनाथाला ज्ञानेश्वरीची अस्तल प्रत मिळाली नव्हती, ह्यांत बिलकुल संशय नाही. क्षेपक असलेल्या पोथ्या एकनाथाच्या हातांत पडल्या, व भाषा, औचित्य, पुनराक्ति, असंभव, वगैरे प्रमाणांनीं त्यानें आपली प्रत आपल्या समजुतीप्रमाणें शुद्ध करून घेतली. परंतु, इतकें हि करून आपल्या शुद्ध केलेल्या प्रतीत क्षेपक राहिले नसतील च, अशी खात्री त्याची त्याला च पटली नाही. सबब, उद्विग्न होऊन त्यानें खालील शापोक्ति प्रकट केलीः—

या ज्ञानेश्वरीपाठी । जो टीका करील मऱ्हाटी ।

तेणें रत्नखचित्या ताटी । जाण नरोटी ठेविली ! ॥ १ ॥

पाठीं ह्यणजे नंतर, असा अर्थ कित्येक अप्रबुद्ध करतात ! पाठीं ह्यणजे पाठांत, ओंव्यांत. ज्ञानेश्वरीच्या मूळ ओंव्यांत जो कोणी आपल्या टीकारूप ओंव्या करून समासावर लिहून ठेवील, त्यानें रत्नखचित ताटाच्या भोंवतीं नरोत्र्या ठेविल्यासारखें होईल, असा एकनाथाचा शाप आहे. आणि हा शाप अक्षरशः खरा होता. ज्ञानेश्वरीनंतर कोणी ओंव्या करूं नये, असा नाथांचा आशय नाही. तर, ज्ञानेश्वरीच्या पोथीच्या पानांच्या समासावर ज्ञानेश्वरी वाचतांना तलीन होऊन कित्येक लोक ज्यास्त विशदीकरणार्थ स्फूर्तीनें टीकारूप ओंव्या भाविकपणानें व प्रेमानें लिहून ठेवीत. ह्या ओंव्या नकल करणारे लेखकलोक मूळांत अज्ञानानें घुसडून देत. त्यामुळे, मूळ कोणतें व प्रक्षिप्त कोणतें, तें हि कळण्याची मारामारी कचित् प्रसंगीं पडे. ह्या घोंटाळ्याला अनुलक्षून नाथांनीं ही शापोक्ति प्रगट केली आहे. मजजवळील ज्ञानेश्वरीच्या पोथ्यांवरून प्रक्षेपांचा समावेश निरनिराळ्या प्रतीत कसा झाला, तें उत्तम कळतें. एका पोथीच्या समासावर टीका ह्यणून जी ओंवी लिहिली असते, तीच दुसऱ्या एखाद्या तत्पश्चात्क पोथींत मूळांत प्रविष्ट केलेली आढळते. तद्घांत, हुद्देहुद्द ज्ञानेश्वराच्या धर्तीवर जर ओंवी बनली गेली असेल, तर ती मूळ ओंव्यांतून निवडून काढण्यास पंचाईत पडते. सुसिद्धंतरूपे,

शब्द, औचित्य, वगैरे साधनांनीं प्रक्षेप निवडून काढितां येतील. परंतु, हीं साधनें शोधक संपादकाच्या हातीं समग्र असलीं पाहिजेत. अशीं साधनें एकनाथाच्या कालीं उपलब्ध नव्हती, हें तर काय, परंतु, तीं सध्यां हि असावीं तशीं उपलब्ध नाहींत. आतां इतकें खरें आहे कीं, ज्ञानेश्वराच्या पूर्वींचे व वेळचे मराठी शिलालेख व ताम्रपत्रे सध्यां उपलब्ध झालीं आहेत. त्यांवरून ज्ञानेश्वरीची भाषा कशी असली पाहिजे, हें सूक्ष्म रीतीनें सांगता येईल. परंतु, ज्ञानेश्वरकालीन शब्दकोश अद्याप मराठींत तयार व्हावयाचा आहे. त्यामुळे, अमूक शब्द ज्ञानेश्वरींत येऊं शकेल किंवा शकणार नाहीं, हें सांगण्यास साधन नाहीं. तसेंच, धर्मकोश, दृष्टान्तकोश, इतिहासकोश, वगैरे कोशांचा आपल्याकडे अभाव असल्यामुळे, ज्ञानेश्वरोत्तरकालीन पोध्यां-तील प्रक्षेप निवडून काढणे सध्यां देखील प्रायः दुर्घट आहे. एकनाथाच्या वेळीं, तर, सर्वस्वींच दुर्घट होतें. तशांत, फक्त १००।१५० च क्षेपक त्यानें आपल्या प्रतींत येऊं दिलें ही कांहीं लहानसहान गोष्ट नाहीं. साक्षात्, मुकुंदराजाची पोथी मला न मिळती, तर भाषा, शब्द, औचित्य, पुनरुक्ति वगैरेच्या जोरावर एकनाथाच्या इतकी हि शुद्ध प्रत मला तयार करतां आली नसती. आली असती किं नसती, ह्या शंकेची केवळ कल्पना च करावयाला नको.

केवळ बिनअस्सल ह्याणजे
नकल पोध्या ताडून ग्रंथां-
चें मूळ निर्भेळ स्वरूप
सिद्ध होत नाहीं.

मूळ अस्सल प्रत उपलब्ध नसतां, अकरा
पोध्यांची तुलना करून, माडगांवकरांनीं
जी ओवीसंख्या दिली आहे, तींत १४२
क्षेपक राहिलेच आहेत. मूळ अस्सल प्रत
किंवा प्रतीची प्रत उपलब्ध नसतां, कोणत्या
हि ग्रंथाचा मूळ मजकूर नकीं अमुक होता,

है अगदीं विनचुक ठरवितां येणें केवळ, अशक्य आहे. जुन्या ग्रंथकारांच्या Varorium Editions यूरोपियन विद्वान लोक काढतात, त्यांच्या शुद्धा-शुद्धतेची परीक्षा ह्या न्यायानेंच केली पाहिजे. भारतासारख्या ग्रंथांनां हि हाच दंडक लागू आहे. अस्सल प्रतीच्या अभावीं, वाटेल त्यानें वाटेल तो भाग प्र-क्षित समजावा व त्याच्या मरतुकड्या बलावर वाटतील तीं अनुमानें काढावीं. शास्त्रदृष्ट्या दोहोंची हि किंमत शून्य आहे. स्यात्पक्ष सदा डळमळितच असतो.

६३ सच्चिदानन्दभावानें लिहिलेल्या ज्ञानेश्वरीच्या मूळ प्रतीत क्षेपकां-
 नकलकारांनीं मूळज्ञानेश्वरी-
 ची छाटाछाट केलेली नाहीं;
 प्रक्षेपानीं भरती केली आहे.
 ची उत्तरोत्तर जास्त भरती झाली; परंतु
 मूळ ओव्या काढून टाकून कमती मात्र
 कोणत्या हि पोथीत झालेली दिसत नाहीं.
 चुकून एखाददुसरी मूळ ओंवी लेखकानें
 गाळलेली पोथ्यांतून आढळते. पण, जाणूनबुजून ज्ञानेश्वरी ओंवी मूळ ग्रंथां-
 तून काढून टाकण्याचें धाष्टर्य कोण्याहि लेखकानें केलेलें आढळत नाहीं. का-
 रण, भक्तिमार्गी लोक ज्ञानेश्वराच्या शब्दाला केवळ ईश्वरीवचन समजत आणि
 विद्वान जे असत त्यांना मुळाची सहृदयता असे. त्यामुळें, मूळ ज्ञानेश्वरीच्या
 ओंव्यांत कटाई झालेली नाहीं. झालें काय ? तर, टीकाकारांच्या समासावर
 लिहिण्याच्या खोडीनें, मूळग्रंथांत क्षेपकांची खोगीरभरती मात्र जास्त झाली.
 ओंव्यांचा अनुक्रम एखाद्या पोथीत बदलेला आढळतो. ह्यणजे मागची पुढें
 व पुढची मागें, असा व्युत्क्रम दृष्टीस पडतो. परंतु, संबंद ओंवी किंवा ओंव्या
 गाळलेल्या कोणत्या हि संबंद पोथीत आढळत नाहीत.

ज्ञानेश्वरीच्या पाठांत क्षेपक ओंव्या कोणी नवीन करून घालूं नये,
 असा निबंध ज्यानें केला त्या एकनाथानें स्वतःक्षेपक ओंव्या रचून ज्ञानेश्वरींत
 घातल्या नाहीत, हें उघडच आहे. परंतु, कित्येकांचें असें ह्यणणें आहे
 कीं, “ एकनाथानें ज्ञानेश्वरीच्या बऱ्याच ओंव्यांतील चरणांची फिरवाफिरव
 केली आहे ” (भिंगारकर, ज्ञानेश्वरमहाराज यांचा कालनिर्णय, पृष्ठ ७२-
 ७३). भिंगारकरांनीं अशा चरणांची फिरवाफिरव केलेल्या ह्यणून चार
 ओंव्या दिलेल्या आहेत. त्या चान्ही मुकुंदराजी प्रतीत नाहीत व त्यांची त्या
 त्या स्थलीं अवश्यकता हि नाहीं. पांचव्या अध्यायांतील “ बुद्धिनिश्चयें आत्म-
 ज्ञान ” इत्यादिक ओंवी संबधानें भिंगारकर असा प्रश्न करतात कीं, ही
 ओंवी प्रक्षिप्त समजली तर श्लोकाच्या टीकेची ज्ञानेश्वरकृत मूळ ओवी को-
 णती ती दाखवून दिल्याशिवाय ही ओंवी नवी किंवा जुनी याचा नीटसा
 खुलासा होणार नाही (भिंगारकर, पृष्ठ ७२।७३). परंतु, मुकुंदराजी प्रती-
 वरून पहातां, प्रत्येक श्लोकांतील प्रत्येक पदाची टीका ज्ञानेश्वर हटकून कर-
 तो च, असें ह्यणतां येत नाहीं. उदाहरणार्थ, दुसऱ्या अध्यायांतील १८ व २०
 या श्लोकांवरील ज्ञानेश्वरी टीका पहा. १८ व्या श्लोकांतील अनाशिन; व

अप्रमेयस्य ह्या दोन पदांचें भाषान्तर ज्ञानेश्वरानें दिल्लें नाहीं. २० व्या श्लोकांतील एका हि पदाचें भाषान्तर ज्ञानेश्वरी टीकेंत नाहीं. २१ व्या श्लोकाची हि हांच दशा आहे. ह्यणजे, जेथें विशेष कांहीं भानगड नाहीं, प्रायः पुनरुक्ति व गौरव आहे तेथें ज्ञानेश्वर प्रुति करतो. तोच प्रकार पांचव्या अध्यायातील तद्बुद्धयः इत्यादि श्लोकाचा झाला आहे. मूळ श्लोकांतील प्रत्येक पदाचा अर्थ ज्ञानेश्वरानें दिला नाहीं. सर्व टीका दृष्टान्तांनीं च भरून काढिली आहे. प्रत्येक श्लोकांतील प्रत्येक पदाचें भाषान्तर ज्ञानेश्वर नियमानें देतोंच, अशी जर गोष्ट असती, तर भिंगारकरांचें ह्यणणें सयुक्तिक दिसलें असतें. तशी गोष्ट नाहीं, त्याअर्थी ही “बुद्धिनिश्चये आत्मज्ञान” इत्यादिक ओवी प्रक्षिप्त आहे व ती एकनाथांनीं केली आहे, असें हि ह्यणवत नाहीं. मजजवळ कोंकणांतील मालवण शहरां सांपडलेली एक पोथी आहे, तींत ह्या प्रक्षिप्त ओवीचा पाठ असा आहेः—

बुद्धिनिश्चये आत्मज्ञान । ब्रह्मरूप भावि आपणाआपण ।

ब्रह्मनिष्ठा राखे पुर्ण । अहिर्णिशि ॥ ८८ ॥

तत्परायण हें पद ह्या पाठांत नाहीं. तेव्हां, ह्या अशा पाठाच्या ओवीवर एकनाथित्व हि आरोपितां येत नाहीं.

माहित असलेले सर्व क्षेपक मूळांत घालण्याचा सोनारी प्रतीचा तर बाणाच आहे. त्या प्रतींत ही ओवी नाहीं. हिच्या ऐवजीं,

अनुभवे बुद्धि भरुनी । भोगवीती मना करुनी ।

मग तें चि इंद्रियभुवनीं । वर्षाव करीती ॥ ११६ ॥

अशी ओवी आहे. सोनारी प्रत एकनाथाच्या नंतरची आहे. तिच्यांत ज्या अर्थी “बुद्धिनिश्चये” ही ओवी नाहीं त्याअर्थी ही ओवी एकनाथाची तर नव्हेच, परंतु, एकनाथकालीन हि नाहीं. कोणी नंतर रचिलेली आहे. ह्या ओवीचा पाठ दोन तऱ्हांचा सांपडतो. एकनाथी चार चरणांचा व चार यमकांचा एक पाठ; आणि साडेतीन चरणांचा दुसरा पाठ. तस्मात्, एकनाथानें हा प्रक्षेप घातलेला नाहीं, ह्याविषयी शंका नको. इतकेंच नव्हे, तर एकनाथानें ज्ञानेश्वरींत एक हि प्रक्षेप घातलेला नाहीं, हा नियम समजावा.

६४ अस्सल प्रतीच्या अभावीं, निव्वळ दहा पांच पोथ्या घेऊन प्रक्षिप्ताप्रक्षिप्त निवडण्यांत जसें फारसें ह्यणण्याजोगें यश येत नाहीं, तसेंच ह्या

पद्धतीने मूळप्रतीची मूळ अस्सल भाषा हि नक्की ठरविणें दूरापास्त होतें. माडगांवकरांनीं अकरा निरनिराळ्या प्रती घेऊन जे पाठ ठरविले आहेत, ते मुकुंदराजाच्या प्रतीतील मूळपाठांशीं ताडून पाहिले असतां, वरील विधानाची सत्यता प्रतीत होईल. सबब, कांहीं पाठ दोन्ही प्रतीतील घेऊन तुलना करतो.

| अध्याय पहिला मुकुंदराज ओवी | माडगांवकर | माडगांवकरांच्या टिपां- तील पाठान्तरें |
|-----------------------------------|---------------|--|
| ४ रेखा | देखा | देखां [१] |
| ४ टेव | टेव | ० [२] |
| ५ तिये | तें | तियें-तीं [३] |
| ६ पद्यबंध | पदबंध | ० [४] |
| ७ तिया | त्या | ० [५] |
| ९ व्यासादिकांचिया | व्यासादिकांची | व्यासादिकांचिया [६] |
| ९ तिया | ते | ० [७] |
| १० विसंवादें | विसंवाद | विसंवादें [८] |
| १३ सत्कर्कवादु | सत्कारवादु | ० [८अ] |
| २४ जालेयां | जालियां | जालेयां [९] |
| २५ कृतकार्या | कृतकार्या | कृतकार्य [१०] |
| २८ कलाकौतुकां | सकळां कौतुकां | सकळ कौतुकां [११] |
| ३० वसैठ | वसौठ | विशिष्ट [१२] |
| ३२ आविष्करौनि | आविष्करोनि | आदिकरूनि [१३] |
| ३३ महाकाव्या रा३० हा काव्यां रावो | | शास्त्रां [१४] |
| ३५ सिहाणें | शाहणें | ० [१५] |
| ३५ प्रेम | प्रमेय | ० [१६] |
| ४० सुवाडलें | सुरवाडलें | ० [१७] |
| ४१ नागरां | नागरा | नागरां [१८] |
| ४२ आगळी | आगळी | ० [१९] |
| ६२ देआवें | द्यावें | परितणेया [२०] |
| १०९ काज | कां जें | ९ [२१] |

| | | | | | |
|-----|--|---|-----------|----------|------|
| ११३ | जूझती | जुंझती | • | (२१) | |
| ११५ | तेया | तया | • | (२३) | |
| ११९ | उ०इचिलें | वरचिलेनि | • | (२४) | |
| १२५ | रायाचेयात्रोला | राजयाचिया | बोला | राजाचेया | (२५) |
| १५६ | रासौभा | सडा | • | (२६) | |
| १६६ | बाणवारि | बाणवरि | • | (२७) | |
| १७० | सकलै | सकळ | • | (२८) | |
| १७१ | आपणपेयां | आपणयां | आपणयांतें | (२९) | |
| २६४ | आतां इया वेऱ्हि जें जिआवें । तेयापासौनि हें बरवें । जें शखें संडौनु साहावे । बाण एयांचे ॥ २६४ ॥ | आतां यावरी जें ज्यावें । तयापासौनि हें बरवें । जें शखें सांडूनि साहावे । बाण यांचे ॥ २६५ ॥ | | (३०) | |

स्पष्टीकरण:—

(१) माडगांवकर, कुंटे, साखरे, वगैरेंच्या प्रतीत देखा, देखां असा पाठ आहे. ह्या पाठानें बराबर अर्थ लागत नाहीं. अंगिकभाव हें नाम आहे. तें अवयव किंवा स्मृति या शब्दांशीं जोडतां येत नाहीं. व्याकरण आड येतें. साखऱ्यांच्या प्रतीत कांहीं तरी गडबडगुंडा केला आहे. २ व्या ओवी पासून १९ व्या ओवीपर्यंत रूपक आहे. त्यांत,

| | |
|--------------------------------|------------------------------------|
| १ देव = गणेश | १२ पदें = रत्नें |
| २ शब्दब्रह्म = गणेशमूर्ति | १३ मती = पल्लवसडका |
| ३ वर्ण = वपु | १४ षड्दर्शनें = साहाभुजा |
| ४ स्मृति = अवयव | १५ तर्क = परंशु (१ भुजा) |
| ५ रेखा = अंगिकभाव | १६ न्याय = अंकुश (२ भुजा) |
| ६ अर्थशोभा = लावण्याची टेव | १७ वेदान्त = मोदक (३ „) |
| ७ पुराणें = मणिभूषणें | १८ भग्नदंत = बौद्धमतसंकेत (४ „) |
| ८ पदपद्धति = खेवणें | १९ वरदहस्त = सत्तर्कवाद (५ „) |
| ९ पद्यबंध = अंबर | २० अभयहस्त = धर्मप्रतिष्ठा (६ „) |
| १० साहित्य = वाणें | २१ गुंडादंड = विवेक |
| ११ काव्यनाटकें = क्षुद्रपंडिका | २२ समग्रदंत = संवाद |

२३ सूक्ष्मेक्षणु = उन्मेष

२७ उपनिषदें = कुसुमें

२४ दोन्ही-मिमांसा = दोनी कान २८ अकार = चरणयुगुल

२५ मुनि = अलि •

२९ उकार = उदर

२६ द्वैताद्वैत = दोनी गंडस्थलें

३० मकार = मस्तक

असें हें गणेशदेवाचें रूपक आहे. त्यांत इतर उपमानांना जशीं उपमेयें आहेत, तसें, देखा हा पाठ ३ व्या ओवींत घेतला असतां, अंगिकभाव ह्या उपमानाला उपमेय उपलब्ध होत नाहीं. तेव्हां, रेखा हाच मुकुंदराजाच्या प्रतींतील पाठ प्रशस्त आहे. रेखा ह्यणजे काव्यरचना. अंगिक ह्यणजे इंद्रियांसंबंधी, अवयवांसंबंधी. भाव ह्यणजे अवयवांच्या द्वारा विकारांचें प्रदर्शन. हा रेखा शब्द चवथ्या अध्यायाच्या २१५ व्या ओवींत व सहाव्या अध्यायाच्या १८ व्या ओवींत आला आहे.

जें साहित्य आणि शांती । हे रेखा दिसे बोलती ॥ अध्याय ५, ओवी २१५ ॥
नवल बोलतिये रेखेची वाहाणी । अध्याय ६, ओवी १८ ॥
ह्या दोन्ही स्थलीं रेखा ह्या शब्दाचा अर्थ काव्यरचना असा आहे.
रेखा हा पाठ घेऊन, पहिल्या अध्यायांतील ह्या चौथ्या ओवीच्या प्रथमार्धाचा अर्थ असा:—

गणेशा! स्मृती ह्या तुझे अवयव आहेत व काव्यरचना ही तुझ्या मनांतील विकारांची व विचारांची अवयवद्वारा प्रदर्शक आहे.

माडगांवकरांच्या टीपांत हि हा पाठ नाहीं. मजजवळील सेनारी प्रतींत रेखा असाचपाठ आहे.

(२) माडगांवकरादि प्रतींत टेव असा पाठ आहे. तो पाठ घेऊन अर्थ असा होतो. तेथ ह्यणजे अवयवरूप ज्या स्मृती त्यांच्या ठायीं, अर्थशोभा ही लावण्याचा साठा आहे. स्मृतींचा जो अर्थ तो लावण्याचा साठा कसा सम जावयाचा ? आतां मुकुंदराजाच्या प्रतींतील टेव पाठ घेऊन काय अर्थ होतो तो पहा. टेव ह्यणजे नखरा. तेथ ह्यणजे आंगिकभावरूप जी काव्यरचना तिच्या ठायीं, अर्थशोभा ही सौंदर्याच्या नखन्याप्रमाणें आहे. काव्य ह्यणजे प्रतिभोत्पदित ग्रंथरचना.

(३) माडगांवकरांच्या तें हा पाठ व्याकरणदृष्ट्या दुष्ट आहे. 'त' ह्या सर्वनामाचें नपुंसकलिङ्गी प्रथमेचें एकवचन तें, 'तें' हें 'मणिभूषणें' ह्या नपुं-

सकलिंगी प्रथमेच्या अनेकवचनाचें विशेष होऊं शकणार नाहीं. 'त' ह्या सर्वनामाचें नपुंसकलिंगी प्रथमेचें अनेकवचन ज्ञानेश्वरकालीं 'तियें' असें होत असे. तेव्हां 'तियें' हा पाठ शुद्ध आहे व तो च मुकुंदराजाच्या प्रतीत आहे. माडगांवकरांनीं टीपेंत पाठभेदांत 'तियें' हा शुद्ध पाठ दिला आहे व 'तें' हा अशुद्ध पाठ मूळांत स्वीकारला आहे.

(४) पद्यबंध व गद्यबंध असे दोन प्रकारचे बंध साहित्यशास्त्रांत सांगितले आहेत. पैकीं पद्यबंधांना रंगीत छताची उपमा ज्ञानेश्वरांनीं दिली आहे. पदबंध ह्या सामासिक शब्दाला काहीं अर्थच नाहीं. पदबंध हा जर एकप्रकारचा बंध ह्यणजे प्रबंध समजला, तर दुसऱ्या प्रकारचा बंध कोणता? प्रत्ययबंधाचा ! तात्पर्य, पदबंध हा अपपाठ आहे. माडगांवकरांच्या टिपांत हि हा किंवा इतर कोणता हि पाठभेद दिलेला नाहीं.

(५) 'त' ह्या सर्वनामाचें खिलिंगी प्रथमेच्या अनेकवचनाचें रूप 'तिया' असें ज्ञानेश्वरकालीं होत असे. सव्व, 'त्या' हा अपपाठ आहे, कारण व्याकरण दुष्ट आहे.

(६) व्यासादिकांच ह्या विशेषणाचीं प्रथमेचीं रूपे अशीं होतः—

पु. प्र. ए. व्यासादिकांचा

न. प्र. ए. व्यासादिकांचें

स्त्री. प्र. ए. व्यासादिकांची

पु. प्र. अ. व्यासादिकांचे

न. प्र. अ. व्यासादिकांचीं

स्त्री. प्र. अ. व्यासादिकांचिया

मती ह्या अनेकवचनी रूपाचें विशेषण व्यासादिकांचिया हें अनेकवचनी रूप आहे. "व्यासादिकांची" हें एकवचनी रूप व्याकरणदुष्ट आहे. माडगांवकरांच्या प्रतीत ही संवद ओंवी वाकडी तिकडी व अशुद्ध छापिली आहे.

[७] 'तिया' हें पल्लवसडका या अनेकवचनी स्त्रीलिंगी शब्दाचें विशेषण आहे. सव्व ते हें रूप दुष्ट.

[८] तृतीया एकरूचन हवें. हात विसंवाद धरीत नाहींत, तर विसंवादानें शस्त्रें धरतात. विसंवादे ह्यणजे एकमेकांच्या विरुद्ध. षड्दर्शनांपैकीं

प्रत्येक दर्शन इतर दर्शनाच्या विसंवादी ह्यणजे विरुद्ध आहे, असा ज्ञानेश्वरांचा आशय.

(८अ) सत्कारवाद कोणता? विसंवादी तर्क वर उल्लेखिलाच आहे. येथें सत्कर्ताचें मंडण आहे.

(९) जालियां हें रूप व्याकरणदुष्ट आहे. जालेयां हें रूप येथें शुद्ध आहे.

(१०) कृतकार्यवान्=कृतकार्यां. कृतकार्यां हें रूप व्याकरणदुष्टवान् प्रत्य-यान्त सर्व संस्कृतरूपें ज्ञानेश्वरींत प्रथमेच्या एकवचनी पुष्टिगी आँकारान्त होतात.

(११) मुकुंदराजी पाठ स्पष्ट व चांगला आहे, हें दिसतें च आहे.

(१२) वसति+स्थ=वसइ+ठ=वसैठ (विशेषण), वसैठा-ठी-ठें--वसैठा असें पुष्टिगी रूप ह्याच अध्यायाच्या २२८ व्या ओंवीत आलें आहे. वसैठ हें रूप व्युत्पत्तिदुष्ट आहे.

(१३) करउन-नि-नियां-नु अशीं अपभ्रंशांतील रूपें. त्याचीं क-रुन-नि-नियां-नु, अथवा करौन-नि-नियां-नु अशीं रूपें ज्ञानेश्वरकालीं होत. करोन-नि-नियां- ही ओयुक्त रूपें ज्ञानेश्वरकालीं अस्थानक होत. ओयुक्त रूपें पुढें तीनघें वर्षांनीं प्रचारांत आलीं.

(१४) मुकुंदराजी पाठ प्रशस्त आहे, हें उघड आहे.

(१५) जीव्=जीवाण (वर्तमानकालवाचक धातुसाधित)
शिक्ष्=शिखाण=सिहाण, णा-णी-णें.

शहाणें हें रूप ज्ञानेश्वरोत्तरकालीन आहे, ज्ञानेश्वरकालीन नाहीं.

(१६) मुकुंदराजी पाठ प्रशस्त दिसतो च आहे.

(१७) सुखाडलें हा पाठ मुकुंदराजी असून, मजजवळील ज्ञानेश्वरीच्या प्राचीन कोशांत आहे. ख मधील र आणि व हीं दोन अक्षरें निराळीं करून सुखाडलें असा अपपाठ बनला आहे. सुख पासून क्रियापद सुखाडणें:

(१८) नगरवान्=नागरवां=नागरां.

(१९) अग्र=अग्र=आग+ल (स्वार्थक), ला, ली, लें लचा ळ हा उच्चार ज्ञानेश्वरोत्तरकालीन आहे. मुकुंदराजाच्या सबंद पोर्थांत ळ हा उच्चार विलकुल नाहीं.

(२०) यावें हें रूप व्युत्पत्तिदृष्ट आहे.

धेयावें, देआवें, नेआवें, अशीं रूपें ज्ञानेश्वरकालीं होत.

२१ काज हे प्रभार्थकसर्वनाम ज्ञानेश्वरकालीं होतें. त्याच्या दोन्ही अक्षरांचा विभाग करून कां जें असा अपपाठ बनला. अर्थात्, अर्थ हि अनर्थावह झाला.

२२ युद्ध = जुद्ध = जूद्ध. जू वर अनुनासिक किंवा अनुस्वार ज्ञानेश्वरकालीं नव्हता.

२३ तथा हें रूप ज्ञानेश्वरकालीन व्याकरणाच्या दृष्टीनें दुष्ट आहे. तेहाचा, तेआचा, तेयाचा, हीं रूपें ज्ञानेश्वरकालीं व चांगदेवकालीं प्रचलित होतीं.

(२४) अव+ईषत्=ओइच ओइच+इल्ल=ओइचिल्ल = ओइचिल, ला-ली-लें. ओइचिल्लें झणजे अत्यंत थोडें.

ओइचिल्लें ह्या शब्दाचा अर्थ न कळल्यामुळें वरिचिल्लें हा पाठ ज्ञानेश्वरोत्तरकालीं आला.

(२५) रायाचा (पु.) = रायाचेया (पु. च. ए.) बोला (पु. च. ए.) रायाची (स्त्री) = रायाचिया (स्त्री. सप्तमी एकवचन)

तेव्हां बोला ह्या पुल्लिगी चतुर्थीच्या एकवचनी रूपा पाठीमागें स्त्रीलिङ्गी रायाचिआ हें विशेषणरूप येणें व्याकरणदृष्ट्या दुष्ट आहे.

(२६) राशि-उद्भ्रम = रासि-उष्भवं = रास+उष्भां = रासौभां = रासौभा. रास मोडून वाच्यानें पखलण जी होते तिला रासौभा झणतात. रासौभा हा शब्द कळतनासा होऊन समासावर सडा असा जो त्या शब्दाचा अर्थ दिला होता, तो च मूळांत लेखकांनीं प्रविष्ट केला.

(२७) बाणरूप पाण्याचा पाऊस पाडूं लागले, तेव्हां, बाणवारि हा पाठ योग्य आहे. बाणवारि हा पाठ सर्वथा अशुद्ध आहे.

(२८) सवें, सकलै, दाधै, अशीं रूपें ज्ञानेश्वरकालीं होतीं.

(२९) आपण ह्याचें भाववाचक नाम आपणपें, त्याचें चतुर्थीचें एकवचन आपणपेंयां.

आपण ह्याचें चतुर्थीचें नपुंसकलिङ्गी एकवचन आपणआं, आपणयां पैकीं मुकुंदराजी पाठ आपणपेंयां हा अर्थाला उचित आहे.

[३०] माडगांवकरांची ही सबंद ओवी व्याकरणदुष्ट आहे व अशा व्याकरणदुष्ट ओव्या त्यांच्या प्रतीत शेकडों आहेत.

येणेंप्रमाणें माडगांवकरांच्या तौलनिक प्रतीत हजारों अपपाठ आहेत.

**तौलनिक पद्धतीनें
मूळाचा थांग नकी
लागतोच असें नाहीं.**

इतकेंच नव्हे, तर व्याकरणदृष्ट्या एथून तेथून सर्व प्रत दुष्ट आहे. कुंटे, साखरे, वगैरेंच्या प्रतीसंबंधानें, तर बोलावयाला च नको. जसा एखादा पारशी किंवा युरोपीयन मराठी भाषा लिंग, वचन, विभक्ति वगैरेंचा चुथडा करून बोलतो, त्याच धर्तावर, कुंटे, साखरे, माडगांवकर वगैरेंच्या आधुनिक प्रतीत अपभ्रष्ट मराठी भाषा योजिलेली आहे. हें ज्ञानेश्वरकालीन व्याकरण, ज्याला समजलें त्याच्या प्रतीतीस सहज येईल. ती प्रतीती यावी व ज्ञानेश्वरकालीन शुद्ध मराठी भाषा कशी होती, हें कळावें, एतदर्थ ही मुकुंदराजी प्रत छापिली आहे.

मूळ प्रत उपलब्ध नसतां, इतर किती हि प्रतींची तुलना करून मूळ पाठ ठरविण्याचा प्रयत्न केला, तत्रापि मूळपाठ अमुकच असेल, हें निश्चयानें सांगतां येत नाहीं, हें वरील यादीवरून स्पष्ट आहे. प्रायः असें हि होऊं शकतें कीं, मूळपाठ टिपांत रहातो व अपपाठ मुख्य ग्रंथांत विराजमान होतो. Variorum Edition काढण्यांत हा चमत्कार अपरिहार्य असतो. कालिदासादि संकृतप्राकृत नाटककारांच्या नाटकांच्या अनिश्चितकालीन दहा पांच पोथ्या घेऊन तौलनिक प्रती बनविल्या असतां, मूळग्रंथकाराच्या मूळप्रतीपासून त्या किती अपभ्रष्ट असूं शकतील तें माडगांवकरांच्या ज्ञानेश्वरीच्या प्रतीवरून चांगलें ध्यानांत येतें.

६५ सारांश, आजपर्यंत जेवढ्या ह्मणून ज्ञानेश्वरीच्या प्रती छापिल्या

**ज्ञानेश्वरीचें अपभ्रष्ट पाठ
व त्या पाठांचीं भ्रामक
भाषान्तरें**

गेल्या आहेत, त्या सर्व अशुद्ध व अविश्वसनीय आहेत. तत्रापि, त्या लोकांत प्रचलित आहेत. सध्यां भक्तिमार्गी लोक इतके गचाळ झाले आहेत कीं व्याकरण, व्युत्पत्ति इतिहास, शास्त्र यांची त्यांना बिलकुल पर्वा राहिलेली नाहीं. वाटेल तें चिताड त्यांच्या हातीं दिलें व तें ज्ञानेश्वराचें, नामदेवाचें किंवा तुकारामाचें आहे असें सांगितलें झणजे तें त्यांना शिरसामान्य

होतें. खरें, खोटें विश्वास्य अविश्वास्य, हा भेदभाव ते करित नाहींत. त्यामुळें झालें आहे काय कीं, त्यांना ज्ञानेश्वरीचा खरा अर्थ हि कळतनासा झाला आहे. कोल्हापूरचे भावे, पनवेलचे आठल्ये, व पुण्याचे भिडे ह्यांनीं ज्ञानेश्वरीचा अर्थ करण्याचा प्रयत्न केला आहे. परंतु स्पष्टपणें सांगावयास कांहीं हरकत दिसत नाहीं कीं, हे सर्व व्याख्याते अथ पासून इतिपर्यंत अपव्याख्यान करित गेलेले आहेत. पैकीं आठल्यांचें भाषान्तर अगदीं कुचकामाचें व कवडीमोल आहे. त्यापेक्षां भावे यांचें भाषान्तर किंचित् बरें ह्मणतां येईल. आणि साखरेवावांच्या तोंडचें ह्मणून ज्यास रा. भिडे नामाभिधान देतात तें ह्या दोहींपेक्षां शुद्ध आहे. परंतु, तिन्ही भाषान्तरासंबंधानें असें ह्मणावें लागतें कीं, ह्या तिन्ही गृहस्थांना घेतलेली कामगिरी विनचुक बजावण्याचा अधिकार आलेला नव्हता. ह्या विधानाची सत्यता भासमान होण्याकरितां, ज्ञानेश्वरीची अगदी पहिली ओवी घेतो, तिचा ह्यांनीं काय अर्थ केला आहे तो देतो व ह्यांच्या चुका कोठें झालेल्या आहेत तें दाखवितों. भावे यांचें भाषान्तर आतां मागसलें असल्यामुळें, त्याची परीक्षा येथें करित नाहीं.

आठल्यांचें भाषान्तरः—हे मूळ, अनादि, वेदप्रतिपादित, ओंकार-रूप परमेश्वरा! तुला नमस्कार असो. हे आपल्या आपण जाणणाऱ्या आत्मस्वरूपा! तुझा जयजयकार असो.

भिड्यांचें भाषान्तरः—हे निर्गुणब्रह्मा आत्मरूपा, तूं सर्वांचा आदिअसून तुझें वेदांनीं वर्णन केलेलें आहे व तुझ्या स्वरूपास जाणणारा तूं स्वतःच आहेस. तुला माझा नमस्कार असो; आणि तुझा जयजयकार होवो.

पैकीं, आठल्ये यांच्या भाषान्तरांतील प्रत्येक शब्द चुकलेला आहे.

आठल्यांचें भाषान्तर (१) प्रथम, ते नामरूपरहित जें परब्रह्म त्याला परमेश्वर ह्या नांवानें संबोधतात. (२) दुसरें, परब्रह्माला ते अनादि ह्मणतात. (३) तिसरें, तें वेदांनीं प्रतिपादित आहे, असा भ्रम त्यांनीं करून घेतला आहे. आणि (४) चौथें, परब्रह्म आपल्याआपण जाणणारें आहे, असा दुर्ग्रह त्यांच्या ठायीं झालेला आहे. आतां, ह्या, चारी

विधानांपैकी एक हि विधान सशास्त्र नाही. (१) परमेश्वर ही कोटी परब्रह्माहून निराळी, खालच्या दर्जाची व तत्पश्चात्क आहे, हें सर्वश्रुतच आहे. ह्या ओर्वीत परमेश्वराचें नांव नाही, इतकेंच नव्हे, तर परब्रह्माचें हि नांव नाही. कारण, परब्रह्माचें जर नांव घ्यावें तर तें संगुण म्हणजे नामरूपसहित होतें. सबब, ज्ञानेश्वरांनीं ह्या संबंद ओर्वीत त्याचा नामनिर्देश केला नाहीं. एवढेंच नव्हे, तर तत् ह्या सर्वनामानें हि त्याचा उल्लेख केला नाहीं. ज्ञानेश्वरांचीं हीं सर्व धोरणें आठल्यांनीं ह्मणारून दिल्ली आहेत व आपलें गाढ अज्ञान प्रकट केलेलें आहे. (२) प्रपंच, माया, परमेश्वर, ह्या कोटींना अनादि हें विशेषण लावतात. कारण प्रपंच हा अनादि व अनंत असून, केवळ व्यक्तमध्य आहे. तत् ही वस्तु सर्वत्र व सर्वदा आय च असणार. तिला अनादि हें विशेषण लावणें अयुक्त आहे. (३) ही निर्गुण वस्तु आजपर्यंत कोणाला हि संपूर्ण कळलेली नाहीं. कळण्याचा प्रयत्न पुष्कळांनीं केलेला आहे. त्यां प्रयत्न करणाऱ्यां पैकींच वेद होत. त्यांना हि ती आकळलेली नाहीं. सबब, ज्ञानेश्वरांनीं वेदप्रतिपाद्य असा शब्द योजलेला आहे. वेदप्रतिपादित असा शब्द मुद्दाम योजला नाहीं. परब्रह्म जर वेदांनीं प्रतिपादित केलें असेल, तर तें वेदांहून गौण ठरूं लागेल. वेदांनीं एवढेंच केलें आहे कीं, परब्रह्माचें प्रतिपादन करण्याचा प्रयत्न केलेला आहे. ह्या पलीकडे त्यांनीं काहीं केलेलें नाहीं. एवढ्याच करितां, ज्ञानेश्वरांनीं प्रतिपादित हा शब्द टाळलेला आहे. तो दुष्ट शब्द आठल्यांनीं अंधदृष्टीनें मुद्दाम कवटाळला आहे. सद्वस्तूचें आकलन करतां करतां वेद टेंकीस आले, असे उद्गार ज्ञानेश्वरीत व अमृतानुभवांत अनेक स्थली आहेत. (४) स्वसंवेद्या या पदाचा तर शब्दार्थ हि आठव्यांस झाला नाहीं. स्वसंवेद्या ह्मणजे आपल्याआपण जाणणाऱ्या, असा अनर्थ आठव्ये च करूं जाणोत. सत् चित् च आहे. त्याला आपलें संवेदन आपण च करण्याची कोणती अपेक्षा आहे? काय त्याचें संवेदन कधीं लोप पावलें होतें कीं तें पुनरपि करून घेण्याचें त्याला कारण पडावें? काय साखर कधीं कडू झाली होती कीं तिनें आपली गोडी आपणच चाखून पहाण्याचें मनांत आणावें? तर, असें विपरीत कदापि होणें नाहीं. संवेद्य कोणाला? इतरांना, स्वतःला नव्हे. स्व ह्मणजे जीवात्मा, त्याला संवेदन होण्याचा विषय. तें संवेदन हि संपूर्ण होईलच असा भाग नाहीं. ज्याचें संवेदन, ज्या सद्वस्तूचें संवेदन करून

घेण्याचा प्रयत्न जीवात्म्यानें करणें संभाव्य आहे, अशा तद्रसूला. असा स्वसंवेद्य, ह्या पदाचा अर्थ आहे. चित् संबंधानें नाना कोट्या ज्ञानेश्वरांनीं अमृतानुभवांत केलेल्या आहेत. त्यांचा जर परिचय आठल्यांनीं करून घेतला असता, तर ते असे वरळते ना. स्व आणि पर असे दोन प्रकारचे आत्मे कल्पिलेले आहेत. ह्यांना च जीवात्मा व परमात्मा अशा संज्ञा आहेत. संवित् ही दोघांना सामान्य आहे. ह्या संविद्वारा जीवात्म्याला परमात्म्याशीं ऐक्य होण्याचा संभव असतो. संवित्प्रतीति न झाली, तर ऐक्य होण्याचा ह्मणजे परमात्मसंवेदन होण्याचा मार्ग खुंटतो. हें सर्व लक्ष्यांत घेऊन ज्ञानेश्वरांनीं स्वसंवेद्य हें पद योजिलेलें आहे; आणि त्याला पोषक ह्मणून आत्मरूपा असें पद घातलें आहे. जीवात्म्यानें संवेद्य कां, तर जीवात्मा व परमात्मा हे दोन्ही हि आत्मरूप ह्मणजे आत्मा च आहेत. आत्मा एव आत्मरूपः । जीवात्मा व परमात्मा हा भेद भ्रांतिमूलक आहे. ती भ्रांति उद्भूत गेली ह्मणजे दोन्ही एक च आहेत, अशी प्रतीति होते. सारांश, ह्या ओर्वीत एक कारणपरंपरा गोविली आहे. सद्वस्तु आद्य आहे; कारण, अनादि जे वेद त्यांनीं तिची प्रतिपत्ति करण्याचा प्रयत्न केला आहे; परंतु, तो प्रयत्न सफल झालेला नाही. कां कीं ही सद्वस्तु जीवात्म्यालाच संवेद्य आहे, इतरांना नाही. कां तर, जीवात्मा व परमात्मा आत्मरूप आहेत.

आठल्यांच्या इतका घोटाळा भिड्यांनीं केलेला नाही. त्याला कारण

**भिड्यांचें
भाषान्तर**

सद्गुरुमुख. नानाबोवा साखरे यांच्यासारख्यांच्या व्याख्यानाच्या श्रवणानें भिडे किंचित् ताळ्यावर राहिलेले दिसतात मात्र. परंतु, अनधिकारित्वास्तव ते हि ह्या ओवीचा अर्थ करतांना भ्रांत झालेले आहेत. “तुजें वेदांनीं वर्णन केलेलें आहे, ” असें संपूर्ण—क्रिया—द्योतक वाक्य भिड्यांनीं योजिलें असून, “तुझ्या स्वरूपास जाणणारा तूं स्वतःच आहेस ” असें हि वाक्य योजून स्वमुखदर्शनदोष ते आठल्यांच्या प्रमाणेंच करतात. आठल्यांच्याप्रमाणें अनादि, परमेश्वर, वगैरे वाकळ शब्द मात्र ते योजीत नाहींत. हा सद्गुरुसंगतीच्या सातत्याचा परिणाम. ह्या ओर्वीत कारणपरंपरा आहे, ह्याची प्रतीति भिड्यांना हि झालेली दिसत नाही.

वेदान्तशास्त्रानभिज्ञतेच्या मुळें ओंवीचा अर्थ भाषान्तरकारांना कसा
लागला नाही, त्याचा हा तपशिल झाला.
व्याकरणदृष्ट्या भाषा- आतां व्याकरणानभिज्ञतेस्तव त्यांच्या चुक्या
न्तरांची दृष्टता. कशा झाल्या आहेत तें दाखवितों.

ॐ नमो आद्या । वेदप्रतिपाद्या ।

जय स्वसंवेद्या । आत्मरूपा ॥ १ ॥

अशी ओवी आहे. अन्वयः—आद्या वेदप्रति पाद्या नमो; स्वसंवेद्या
आत्मरूपा जय. येथें नमो व जय हीं रूपें आज्ञार्थीं द्वितीयपुरुषांचीं अनेक-
वचनाचीं आहेत.

| | | | |
|---------|---------|---------|---------------|
| संस्कृत | प्राकृत | अपभ्रंश | मराठी |
| नमत | नमह | नमहु | नमूँ, नमो |
| जयत | जयह | जयहु | जयूँ, जयो, जय |

नम व जी ह्या धातूंचीं रूपें ग्रंथारंभीं नांदीत आणण्याचा परिपाठ
प्राकृत व संस्कृत ग्रंथांत अनेक स्थलीं आढळतो. गाथासतशतींत, सेतु-
बंघांत व कर्पूरमंजरींत नांदीत नमह व जअइ हीं रूपें आलीं आहेत.
नमह—नमहु—नमो झगजे तुझीं नमस्कार करा. जय ह्या धातूचा अर्थ मरा-
ठींत “ कोणासाठी तरी जयशब्द उच्चारणें ” असा झाला आहे. उदा-
हरणार्थ, जय शंकरा (शंकराचा जयकार करा). तेव्हां, पहिल्या ओवीचा
व्याकरणदृष्ट्या अर्थ असाः—

आद्या वेदप्रतिपाद्या नमस्कार करा; स्वसंवेद्या आत्मरूपाचा जयकार
करा; ज्ञानेश्वर श्रोत्यांना स्वहितार्थ आद्याला नमस्कार व प्रमाण करावयाला
सांगतात व त्याचा जयकार करावयास सांगतात. नांदीत श्रोत्यांना इष्टदेवतेला
नमस्कार करण्यास सांगण्याची चाल संस्कृत व प्राकृत नाटकांत व काव्यांत
आहे. तीच परंपरागत चाल ज्ञानेश्वरांनीं उचललेली आहे. ज्ञानेश्वरांनीं
ज्ञानेश्वरी श्रोत्यांना उद्देशून मुद्दाम लिहिलेली आहे; स्वतःला उद्देशून लिहि-
लेली नाही. एताद्विषयक उल्लेख ज्ञानेश्वरींत अनेक आहेत; बहुतेक प्रत्येक
अध्यायांत आहेत. तेव्हां, ह्या ओंवीतील क्रियापदें द्वितीयपुरुषांनीं अनेकवचनां
आज्ञार्थीं आहेत, हें ठीकच आहे.

आठव्ये व भिडे परब्रह्माला सांगतात कीं, तुझा जयजयकार असो ! परब्रह्माचा जयजयकार नव्हता कधीं, कीं तुझा जयजयकार असो, असा आशीर्वाद कवीनें त्यास देण्याचें धाष्टर्य व औद्धत्य करावें. “ तुला नमस्कार असो (आठव्ये), “ तुला माझा नमस्कार असो ” (भिडे), ह्या हि भाषान्तराला हाच दोष लागतो. शिवाय ग्रंथकर्त्यानें आपण एकद्वयानेंच नमस्कार करण्यापेक्षां, श्रोत्यांसह नमस्कार करणें जास्त सौजन्याचें आहे. ज्ञानेश्वर, तर, सौजन्याचें केवळ पुतळेच होते. तेव्हां, त्यांच्या तोंडून, तुला माझा नमस्कार असो, अशी उद्धत वाणी कदापि हि निघावयाची नाहीं.

६६ वेदान्तशास्त्रदृष्ट्या व व्याकरणदृष्ट्या आठव्ये, भिडे, कुंटे व माडगांवकर ह्यांच्या प्रतीत असे हजारो दोष आहेत. मासल्याकरितां, एकाच ओवींतील दोष दाखविले. जास्त दाखविण्यास प्रकृत स्थली अवकाश नाहीं. शिवाय, हे दोष दाखविण्याचें काम हरिभक्तिपरायण भिंगारकरबुवा याणीं केसरति अनेकवेळां केलेलें आहे. भारदे उर्फ भारद्वाज ह्यांच्या चर्पटपंजरीचा, तर, त्यांनीं “ ज्ञानेश्वरमहाराज यांचा कालनिर्णय व संक्षिप्त चरित्र ” या टीकाप्रबंधांत चांगला च धुव्वा उडविला आहे. आठव्यांच्या चुक्या हि त्यांनीं अन्यत्र चांगल्या दाखविलेल्या आहेत. ह्या गृहस्थांनीं जर ज्ञानेश्वरीच्या अर्थाचें पुस्तक छापलें, तर, ज्ञानेश्वरीच्या नावावर चिताड व गचाळ बाईं भक्तिमार्गी लोकांत जो खोड्या वेदान्ताचा व भोळेपणाचा प्रसार करतात त्याला काहीं तरी आळा पडून ऐतिहासिक व प्रागतिक मार्गाला भक्तिमार्गी लोक लागतील.

६६ प्रस्तुत मुकुंदराजी प्रतीत प्रत्येक श्लोक त्या श्लोकावरील ओव्यांच्या मध्यें कोठें तरी लिहिला आहे. आधुनिक प्रतीत मूळ संस्कृत श्लोक प्रथम देऊन, नंतर त्याच्यावरील टीकाओव्या देण्याचा जो प्रघात दिसतो, तो मूळचा ज्ञानेश्वराचा नाहीं. ज्ञानेश्वरांनीं ओवीबंधांत ज्ञानेश्वरी अशी रचिली कीं मूळ संस्कृत श्लोक मुळांच न दिला, तत्रापि व्याख्यानाच्या ओघाला तुटकपणा येऊं नये. अलीकडील कित्येक पोथ्यांत दर प्रतीकाच्या व पदाच्या नंतर ज्ञानेश्वरी टीका ओव्यांचे तुकडे पाडून सुद्धां दिलेली असते. हा हि प्रकार मूळ ज्ञानेश्वराचा नव्हे, हे सर्व चोचटें आधुनिक आहेत.

६७ प्रस्तुत प्रतीत मूळ संस्कृत श्लोकांचे पाठ प्रचलित गतिच्या पाठांद्दन कोठें कोठें भिन्न सांपडतात, त्यांची याद खालीं देतोः--

| अध्याय | श्लोक | प्रचलित पाठ | मुकुंदराजी किंवा ज्ञानेश्वरी पाठ |
|--------|-------|------------------------|----------------------------------|
| * १ | ५ | काशीराजः | काशिराजः |
| १ | १९ | धार्तराष्ट्राणां | धार्तराष्ट्राणां |
| १ | २० | धार्तराष्ट्रान् | धार्तराष्ट्रान् |
| १ | २३ | धार्तराष्ट्रस्य | धार्तराष्ट्रस्य |
| * १ | ३० | गांडीवं | गांजीवं |
| १ | ३२ | किं नो | किन्नो |
| १ | ३५ | किं नु | किन्नु |
| १ | ३६ | धार्तराष्ट्रान् | धार्तराष्ट्रान् |
| १ | ३७ | ” | ” |
| १ | ३९ | जनार्दन | जनाईन |
| २ | १ | अश्रुपूर्णा | अश्रुपूर्णा |
| २ | २ | अकीर्तिकरं | अकीर्तिकरं |
| २ | ६ | धार्तराष्ट्राः | धार्तराष्ट्राः |
| २ | ८ | यच्छोकमुच्छोषणं | यच्छोकमुच्छोषणं |
| * २ | ९ | गुडाकेशः | गुडाकेशः |
| २ | १३ | धीरः | द्धीरः |
| २ | १८ | युध्यस्व | युद्धयस्व |
| * २ | २८ | परिवेदना | परिवेदना |
| २ | ३१ | युद्धाच्छ्रेयः | युद्धाच्छ्रेयः |
| २ | ३२ | यदृच्छया | यदृच्छया |
| * २ | ३३ | अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं | अथचेत्त्वंधर्म्यामिमं |
| २ | ३४ | अकीर्ति | अकीर्ति |
| २ | ३४ | अकीर्तिः | अकीर्तिः |
| * २ | ३५ | येषां | एषां |
| २ | ४४ | भोगैश्वर्य | भोगैश्वर्य |
| २ | ४९ | योगाद्धनंजय | योगात्धनंजय |
| २ | ४९ | अन्विच्छ | अन्विच्छ |
| २ | ५० | दुष्कृते | दुःकृते |

| | | | |
|---|----|------------------------|--------------------|
| २ | ६२ | पुंसः | पूसः |
| २ | ६९ | जागर्ति | जागर्ति |
| २ | ७१ | गच्छति | गछति |
| २ | ७२ | ऋच्छति | ऋछति |
| २ | ७२ | स्थितिः | स्थिती |
| ३ | १ | जनाईन | जनाईन |
| ३ | ४ | अधिगच्छति | अधिगछति |
| ३ | ५ | अकर्मकृत् | अकर्मकृत् |
| ३ | १२ | तैर्दत्तान् | तैर्दत्तान् |
| ३ | १३ | कित्त्विषैः | कित्त्विषैः |
| ३ | २० | कर्तुं | कर्तुं |
| ३ | २१ | अनुवर्तते | अनुवर्त्तते |
| ३ | २२ | वर्ते | वर्ते |
| ३ | २३ | वर्तेयं | वर्त्तेयं |
| ३ | २३ | अनुवर्तते | अनुवर्त्तते |
| ३ | २४ | कर्ता | कर्ता |
| ३ | २७ | कर्ता | कर्ता |
| ३ | २८ | वर्तते | वर्त्तते |
| ३ | ३० | युद्धयस्व | युध्यस्व |
| ३ | ३४ | आगच्छेत् | आगछेत् |
| ३ | ३६ | अनिच्छन् | अनिछन् |
| ३ | ३९ | दुष्पूरेण | दुःपूरेण |
| ३ | ४३ | बुद्ध्वा | बुध्वा |
| ४ | ७ | सृजामि | शृजामि |
| ४ | ८ | धर्म | धर्म |
| ४ | ११ | अनुवर्तते | अनुवर्त्तते |
| ४ | १३ | सृष्टं | शृष्टं |
| ४ | १३ | विद्धय | विध्य |
| ४ | १३ | कर्तारं | कर्तारं |
| ४ | १३ | ज्ञात्वामोक्षयसेशुभात् | ज्ञात्वामृतमश्नुते |
| ४ | १८ | कर्मकृत् | कर्मकृत् |
| ४ | २२ | यदृच्छा | यदछा |

| | | | |
|-----|------------------|--------------|---------------|
| * ४ | २३ | ० चेतसः | ० चेतसा |
| ४ | २९ | रुद्धवा | रुध्वा |
| ४ | ३४ | तत्त्व | तत्व |
| ४ | ३९ | अधिगच्छति | अधिगच्छति |
| ५ | १ | यच्छेय | यच्छेय |
| ५ | ६ | अधिगच्छति | अधिगच्छति |
| ५ | ८ | तरबवित् | तत्ववित |
| ५ | ८ | पदयञ् | पदयन् |
| ५ | ८ | स्पृशञ् | स्पृशन् |
| ५ | ८ | गच्छन् | गच्छन् |
| ५ | ८ | स्वपञ् | स्वपन् |
| ५ | ९ | वर्तते | वर्तते |
| ५ | ११ | बुद्धया | बुध्या |
| ५ | १२ | निबद्धयते | निबध्यते |
| ५ | १४ | प्रवर्तते | प्रवर्तते |
| ५ | १७ | गच्छति | गच्छति |
| * ५ | १९ | येषां | एषां |
| ५ | २४ | अधिगच्छति | अधिगच्छति |
| ५ | २६ | वर्तते | वर्तते |
| ५ | २८ | विगतेच्छा | विगतेच्छा |
| * ५ | २८ | मुक्त | युक्त |
| ५ | २९ | ऋच्छति | ऋच्छति |
| ६ | ६ | वर्तते | वर्तते |
| ६ | ६ | शत्रुवत् | शत्रुवत् |
| ६ | १३ | धारयन्नचलं | धारयन्नचलं |
| ६ | १५ | अधिगच्छति | अधिगच्छति |
| * ६ | २० (द्वितीयार्ध) | यत्र | तत्र |
| ६ | २१ | वैत्ति | वैत्ति |
| ६ | २१ | तत्त्वतः | तत्त्वतः |
| ६ | २२ | यस्मिँस्थितो | यस्मिन्स्थितो |
| ६ | २२ | गुरूणा | गुरूणा |
| ६ | ३१ | वर्तमानो | वर्तमानो |

| | | | |
|-----|----|----------------|---------------|
| ६ | ३१ | वर्तते | वर्त्तते |
| ६ | ३७ | गच्छति | गछति |
| ६ | ३८ | विभ्रष्टश् | विभ्रष्टः |
| ६ | ३९ | च्छेतुं | छेतुं |
| ६ | ३९ | च्छेत्ता | छेत्ता |
| ६ | ४० | कृताँलोकान् | कृताँल्लोकान् |
| ६ | ४४ | अतिवर्तते | अतिवर्त्तते |
| ७ | १ | तच्छृणु | तछृणु |
| ७ | ३ | तत्त्वतः | तत्वतः |
| ७ | ७ | इव | इवँ |
| ७ | १३ | एभिःसर्व | एभिसर्व |
| ७ | २१ | भक्ताःश्रद्धया | भक्तश्रद्धया |
| ७ | २१ | इच्छति | इछति |
| ७ | २६ | वर्तमानानि | वर्त्तमानानि |
| ७ | २७ | इच्छा | इछा |
| * ७ | २८ | अंतगतं | अंतर्गतं |
| ७ | २९ | कर्म | कर्म |
| ८ | ७ | युद्धय | युध्य |
| ८ | ११ | इच्छंतो | इछंतो |
| ८ | १२ | निरुध्य | निरुध्य |
| * ८ | १६ | ब्रह्मभुवनात् | ब्रह्मभवनात् |
| ८ | २१ | निवर्तते | निवर्त्तते |
| ८ | २४ | गच्छंति | गछंति |
| ८ | २५ | निवर्तते | निवर्त्तते |
| ८ | २६ | आवर्तते | आवर्त्तते |
| ९ | २ | कर्तुं | कर्त्तुं |
| ९ | ३ | निवर्तते | निवर्त्तते |
| ९ | ४ | मूर्तिना | मूर्त्तिना |
| ९ | १० | विपरिवर्तते | विपरिवर्त्तते |
| * ९ | १३ | आश्रिताः | आश्रिथताः |
| ९ | १४ | कीर्तयंतो | कीर्त्तयंतो |
| ९ | १८ | भर्ता | भर्त्ता |

| | | | |
|------|----|-----------------|-----------------|
| * ९ | २४ | च्यवति | चवंति |
| ९ | २६ | प्रयच्छति | प्रयछति |
| ९ | ३१ | शश्वच्छांति | शश्वछांति |
| ९ | ३१ | निगच्छति | निगछति |
| १० | २ | प्रभवं न | प्रभवन्न |
| १० | ७ | तत्त्वतः | तत्वतः |
| १० | ८ | प्रवर्तते | प्रवर्त्तते |
| १० | १८ | जनार्दन | जनाईन |
| १० | २१ | ०र्मरतां | ०र्मरतां |
| * १० | ०० | २३ वा श्लोक | २२ वा आहे. |
| * १० | ०० | २२ वा श्लोक | २३ वा आहे. |
| " | २७ | उच्चैःश्रवसं | उच्चैश्रवसं |
| " | २९ | यमःसंयमतां | यमसंयमतां |
| " | ३४ | कीर्तिः | कीर्त्तिः |
| " | ३४ | ० म्मेधा | ० म्मेधा |
| " | ३६ | सत्त्ववतां | सत्ववतां |
| " | ४१ | सत्त्वं | सत्त्वं |
| " | ४१ | अवगच्छ | अवगछ |
| ११ | २ | श्रुतौ | शृतौ |
| " | ३ | इच्छामि | इछामि |
| " | ४ | तच्छक्यं | तछक्यं |
| " | १७ | नलार्कं | नलार्कं |
| * " | २० | रूपमिदं तवोम्रं | रूपमुम्रं तवेदं |
| * " | २२ | त्वा | त्वां |
| " | ३१ | इच्छामि | इछामि |
| " | ३२ | समाहर्तुं | समाहर्त्तुं |
| " | " | ऋते | रुते |
| " | " | प्रत्यर्नाकेषु | प्रत्यनिकेषु |
| " | ३४ | युद्धयस्व | युध्यस्व |
| " | ३५ | एतच्छ्रुत्वा | एतछ्रुत्वा |
| * " | ४२ | यच्चावहासार्थं | यच्चापिहासार्थं |
| * " | ४३ | पूज्यश्च | पूज्यस्य |

| | | | |
|------|----|------------------|----------------|
| * ११ | ४३ | अप्रतिमप्रभाव | अप्रतिमप्रभावः |
| " | ४६ | इच्छामि | इच्छामि |
| " | " | विश्वमूर्ते | विश्वमूर्ते |
| * " | ५० | सौम्यवपुः | सौम्यवपुः |
| " | ५२ | जनार्दन | जनार्दन |
| " | ५४ | तत्त्वेन | तत्त्वेन |
| " | ५५ | कर्मकृत् | कर्मकृत् |
| १२ | २ | अनिर्देश्यं | अनिर्देश्यं |
| " | " | ध्रुवं | ध्रुवं |
| " | ७ | समुद्धर्ता | समुद्धर्ता |
| " | ९ | इच्छ | इच्छ |
| " | १० | कर्माणि | कर्माणि |
| " | " | कुर्वन्सिद्धिं | कुर्वन्सिद्धिं |
| * " | ११ | अशक्तोसि | अशक्तोसि |
| " | १२ | ल्यागाच्छांतिः | ल्यागाच्छांतिः |
| * " | १३ | समदुःखसुखः क्षमी | समदुःखसुखक्षमी |
| " | १५ | मे | मे |

ज्यांच्या पाठीमागे नक्षत्रांचें चिन्ह काढलें आहे त्यांखेरीज बाकीचे सर्व पाठभेद उच्चाराने आहेत. सनक्षत्र पाठभेदांपैकीं हि बरे च पाठभेद उच्चाराने च पाठभेद असावे, असें ह्मणतां येईल. उदाहरणार्थ, शी ब-दल शि, ये बदल ए, च्य बदल च. काशिराजः, एपां, चवंति, हे पाठभेद उच्चाराने पाठभेद न समजले, तर ते स्वतंत्र पाठभेदांत गणले जातील. लेखकाला उच्चार करण्याची जी स्वभावसिद्ध व देशसिद्ध सवय होती तिच्या अनुरोधानें त्यांनै हे उच्चारपाठ दिले आहेत. ह्या उच्चारपाठांचें वर्गीकरण येणेंप्रमाणें करतां येतें.

[१] ऋ बदल रु. जसें, ऋते बदल रुते

[२] ए बदल ऐं. जसें, वेत्ति बदल वैत्ति

[३] निरनुनासिकावदल सानुनासिक. जसें, इव बदल इवँ आणि मे बदल में

[४] स, श व क्ष ह्यांच्या पूर्वी विसर्गलोप. जसें, एभि-सर्व, भक्त श्रद्धया, उच्चैश्रवस.

- [५] रेफानंतर द्वित्त. जसें, कीर्त्ति, धर्म, कर्म, तैर्दत्तान् .
 [६] च्य बद्दल च. जसें, चवंति
 [७] च्छ बद्दल छ जसें, गछति
 [८] द्ध बद्दल त्थ. जसें, योगात्धनंजय
 [९] द्दय बद्दल ध्य. जसें, युध्य
 [१०] ध्य बद्दल द्दय. जसें, युद्दयस्व
 [११] व बद्दल व. जसें, कित्विषं
 [१२] श बद्दल ष. जसें, गुडाकेषः
 [१३] श बद्दल स. जसें, अशक्तः बद्दल असक्तः
 [१४] रू बद्दल ऋ. जसें, अशृ
 [१५] ष बद्दल ः. जसें दुःपूर
 [१६] स बद्दल श. जसें, सृष्टं बद्दल शृष्टं
 [१७] त्व बद्दल त्व. जसें, तत्त्व बद्दल तत्त्व
 [१८] श्च बद्दल स्य. जसें, पूज्यश्च बद्दल पूज्यस्य

हे पाठभेद किंवा उच्चारभेद लेखकानें चुकून केले आहेत, असें नाहीं. त्याच्या वेळची व प्रांतातली सामान्य मंडळी जे उच्चार करित, ते ह्या लेखकानें नमूद केले आहेत. मुकुंदराजी ज्ञानेश्वरीतील संस्कृत श्लोकांतल्या अक्षरांचे जे उच्चार वर नमूद केले आहेत, त्यावरून संस्कृत उच्चारांचा अपभ्रंश गोदावरीतीरीं शक १२०० च्या सुमारास कसा होत असे, तें कळण्याचें एक उत्कृष्ट साधन उपलब्ध झालें आहे.

६८ मुकुंदराजी ज्ञानेश्वरीत ह्यणजे कोणत्या हि ज्ञानेश्वरीच्या विश्वसनीय व अप्रक्षिप्त प्रतीत फारसी शब्द आढळत नाहींत. ज्ञानेश्वरी शक १२१२ त रचली गेली व त्यानंतर मुसलमानांचा महाराष्ट्राला स्पर्श झाला. तत्पूर्वी यद्यपि शंभर वर्षे ह्यणजे शक ११०० पासून नर्मदेपलीकडे मुसलमानांचें राज्य सुरू झालें होतें, तथापि महाराष्ट्राला व मराठी भाषेला मुसलमानी व फारसी शब्दांचा स्पर्श झाला नाहीं. तो शक १२०० नंतर पांच पन्नास वर्षांनीं मुसलमानी अंमल जारी झाल्यावर

झाला. अर्थात्, ज्ञानेश्वरीत फारसी शब्द साहजिक च आढळत नाहींत. इंग्रजी भाषेच्या स्पर्शासंबंधानें असा च प्रकार झालेला आढळतो. बंगाल, मद्रास वगैरे देशांत यद्यपि इंग्रजांचा अंमल वसून पन्नास शंभर वर्षे लोटलीं, तथापि इंग्रजी शब्द मराठींत शक १७३९ नंतर येजं लागले. तत्पूर्वी गोलंदाज, कडावीन, पलटण, वगैरे कांहीं डच, फ्रेंच, पोर्तुगीज वगैरे लष्करी शब्द मराठींत आले, परंतु इंग्रजी शब्द आले नाहींत. कारण उघड आहे. मराठ्यांच्या लष्करांत ज्या खालच्या प्रतीच्या युरोपियन शिपायांचा संबंध आला ते प्रथम प्रथम प्रायः पोर्तुगीज, डच, फ्रेंच वगैरे असत, इंग्रज नसत. शक १२०० पूर्वी मुसुलमानी शिपायांचा प्रवेश कल्याणी वेथील चालुक्यांच्या व देवगिरीच्या यादवांच्या सैन्यांत झाला असावा, असें ह्मणण्यास पुरावा आहे. शक १०५१ त लिहिलेल्या अभिलषितार्थचिंतामर्णींत आठ प्रकारचे सैन्य वर्णिलेले आहे; त्यांत म्लेच्छ सैन्याचा उल्लेख आहे. म्लेच्छ ह्मणजे मुसुलमान. अर्थात्, कदाचित् कांहीं लष्करी शब्द मराठी भाषेंत शक १०५१ च्या सुमारास आले असण्याचा संभव आहे. खुद्द अभिलषितार्थचिंतामर्णींत च तेजी (घोडा) हा फारसी शब्द आला आहे. हिंदु, पोतास वगैरे यावनी शब्द ह्याच्या हि पूर्वी हिंदुस्थानांतील प्राकृत व अर्थात् संस्कृत भाषांत व्यापारसंबंधानें प्रचलित झाले होते. हा पोतास शब्द यावनी आहे, फारसी नाहीं; व हा फार प्राचीन कालापासून संस्कृत भाषेंत प्रविष्ट झाला आहे. तेव्हां हा पोतास शब्द ज्ञानेश्वरीत सांपडला असतां, तो फारसी ह्मणून गणण्यांत हाशील नाहीं. निशाण, दादर, वखार, मोहरें, हेवा वगैरे शब्द भिंगारकर यवनी ह्मणजे फारसी समजतात. परंतु, ते अस्सल मराठी आहेत. संस्कृत निःसाण ह्मणजे नगारा. ह्याचा मराठी अपभ्रंश निसाण, निशाण. हा पट्टहार्थक निशाण शब्द फारसी निशान (ध्वजपताका) शब्दासारखाच उच्चारांत आहे. परंतु, ह्या दोहोंत अर्थभेद आहे. मराठी निशाण ह्मणजे नगारा व फारसी निशान [ण] ह्मणजे ध्वजपताका. संस्कृत दरदर=प्राकृत दादर. दर=विवर. संस्कृत वर्षाग्रह=प्राकृत वर्खांअर=मराठी वखार. संस्कृत मुखहर=प्राकृत मुहअर=मराठी मोहर (रा, री, रें). संस्कृत हृन्नन्=हिअक्=मराठी हेवा. हेवा=मर्नीची उत्कट ओढ. सारांश, ज्ञानेश्वरीत फारसी किंवा अरबी शब्द नाहींत.

६९ ज्याअर्थी मुकुंदराजी ज्ञानेश्वरीत फारसी शब्द नाहींत त्याअर्थी ज्ञानेश्वरकालीन ह्यणून नांवाजलेल्या कोणत्या हि अस्सल लेखांत प्रायः फारसी शब्द येणें दुर्मीळ आहे. तशांत, फारसी उभयान्वयी अव्ययें ज्या ज्ञानेश्वरकालीन ह्यणविणाऱ्या लेखांत येतील तो लेख अर्वाचीन ह्यणजे मुसुलमानी रियासतीतला बिनधोक समजावा. उदाहरणार्थ, भिंगारकरकृत “श्रीज्ञानेश्वरमहाराज यांचा कालनिर्णय व चरित्र” ह्या निबंधाच्या ६० व ६१ यां पृष्ठांवर दिलेलीं शक ११२९ व शक ११३५ सालचीं दोन्हीं पत्रें अस्सल नसून बनावट आहेत. कारण त्या दोन्हीं लेखांत फारसी कीं हे उभयान्वयी अव्यय आलें आहे. फारसीत के असें उभयान्वयी अव्यय आहे त्याचे मराठी की, कीं हें कीं अव्यय रामदास व शिवाजी यांच्यानंतर मराठीत रूढ झालें. ज्ञानेश्वरकालीं व ज्ञानेश्वराच्या पूर्वी फारसी कीं किंवा इंग्रजी that या उभयान्वयी अव्ययाच्याबदला जे, जें असें उभयान्वयी अव्यय नियमानें योजीत. ह्या कीं खेरीज, भिंगारकरांच्या ह्या दोन्ही पत्रांत इतर आणीक अशीं शकडों रूपें आहेत कीं त्यांच्यावरून ह्या पत्रांचा बनावटपणा स्पष्ट करून दाखवितां येईल. भिंगारकरांच्या पत्रांतील हीं शकडों रूपें आधुनिक व बनावट कां, हें नीट लक्षांत घेण्यास, मराठी भाषेचें ऐतिहासिक व्याकरण अथवा नुसतें ज्ञानेश्वरीचें व्याकरण चिकित्सक वाचकांपुढें मांडलें पाहिजे. मराठी भाषेचें हें ऐतिहासिक व्याकरण येथें च द्यावयाचें. परंतु, मराठी भाषेच्या स्थित्यंतरांची त्रोटक हकीकत व मुकुंदराजी पोर्थांचा तपशील देतां देतां च फार विस्तार झाला. सबब, ऐतिहासिक व्याकरण पुढील भागावर टाकणें अपरिहार्य आहे. तोंपर्यंत सरस्वतीमंदिरादिमासिकपुस्तकांतील मराठीच्या ऐतिहासिक व्याकरणावरील माझें निबंध जिज्ञासूनां एतत्प्रकरणीं बरेच उपयोगाचे होतील असें वाटतें.

७० ज्ञानेश्वरीत एकंदर जी ओवीसंख्या आहे तिचा सरासरीनें निम्मा भाग पहिल्या बारा अध्यायांत येतो; आणि बाकीचा निम्मा भाग राहिलेल्या सहा अध्यायांत येतो. प्रस्तुत पहिल्या खंड ह्या पहिल्या बारा अध्यायांचा आहे. ह्या खंडाला दुर्बोध शब्दांच्या अर्थाची याद दिली आहे.

(१०६)

७१ ज्ञानेश्वरांचें चरित्र, नाथपंथाची हकीकत, ज्ञानेश्वराचा वेदान्त, भक्तिमार्गाच्या अनादिसिद्ध व ऐतिहासिक परंपरेचें वर्णन, वगैरे अनेक विषयांवर बहुत विवेचन करण्यासारखें आहे. तें, ज्ञानेश्वरांचे इतर अस्सल जुने ग्रंथ मिळून छापण्याचा योग आल्यास, यथावकाश करतां येईल.

॥ नटकृततांडवविकटाः पंडितटीकाः स्फुरंति गीतायां ॥

॥ रंभालास्यविलासा जयति ज्ञानेश्वरीतासु ॥



ज्ञानेश्वरी

श्रीमहागणपतये नमः ॥ ॐ नमो आद्या । वेदप्रतिपाद्या ।
जय स्वसंवेद्या । आत्मरूपा ॥ १ ॥
देवा तू चि गणेशु । सकलार्थप्रकाशु ।
ह्यणे निवृत्तिदासु । अवधारिजो ॥ २ ॥
हे शङ्खब्रह्म अशेष । ते चि मूर्ति मुखे ।
जथे वर्णवपु निर्दोष । मिरवत असे ॥ ३ ॥
स्मृति ते चि अवयव । रेखा अंगिकभाव ।
तेथ लावण्याची टेव । अर्थशोभा ॥ ४ ॥
अष्टादश पुराणे । तिथे चि मणिभूषणे ।
पदपद्मति खेवणे । प्रमेयरत्नाची ॥ ५ ॥
पद्यबंध नागर । ते चि । रंगाथिले अंबर ।
जेथ साहित्य वाणे सपुर । उजलचें ॥ ६ ॥
देखां काव्यनाटका । जि निर्द्धारितां सकांतुका ।
तिया चि रणुगुणिति क्षुद्रघटिका । अर्थध्वनि ॥ ७ ॥
नाना प्रमेयाची परि । निपुणपणे पांतां कुसरि ।
दासति उचित पदे माझारि । रत्ने भली ॥ ८ ॥
तेथ व्यासादिकांचिया मती । चोखंडपणे झळकती ।
तिया मखले मिरवती । पल्लवसडका ॥ ९ ॥
देखां पद्दर्शने ह्यणिपति । ते चि भुजांची आकृति ।
ह्यणुनि विसंवादे धरिति । आयुधानें ॥ १० ॥

तारि तर्कु तो चि परशु । नीति भेदुअंकुशु ।
 वेदांत महारमु । मोदकु मिरवे ॥ ११ ॥
 एकी हातीं दंतु । जो स्वभावता खंडितु ।
 तो बौधमतसंकेतु । वार्त्तिकांचा ॥ १२ ॥
 मग साहाजे सत्तर्कवाटु । तो पद्मकर वरटु ।
 धर्मप्रतिष्ठा तो सिद्धु । अभयहस्तु ॥ १३ ॥
 देखां विवेकवंतु विमलु । तो चि शुंडादंडु सरलु ।
 जेथ परमानंदु केवलु । महामुखाचा ॥ १४ ॥
 तारि संवाटु तो चि दश नु । समताशुभ्रवर्णु ।
 दे३० उन्मेखुसूक्ष्मक्षणु । विन्नराजु ॥ १५ ॥
 मज अवगमलिया दोन्ही । मांसांशु श्रवणस्थानीं ।
 बौधमदामृत मुनी । अलि सेविति ॥ १६ ॥
 प्रमेयप्रवालमुप्रभ । द्वैताद्वैतनिकुंभ ।
 सारिसे एकवटति ईभ । मस्तकावारि ॥ १७ ॥
 उपरि दशोपनिषदें । जियें उदारें ज्ञानमकरदें ।
 तियें मुकुटीं कुमुमें सुगंधें । शोभते भलीं ॥ १८ ॥
 अकार चरणयुगुल । उकार उदर विशाल ।
 मकार महामंडल । मस्तकाकारें ॥ १९ ॥
 हे तिन्ही एकवटले । तेथ शब्दब्रह्म कवल्लें ।
 तें मियां गुरुकृपा नमिलें । आदिबीज ॥ २० ॥
 आतां, अभिनववाग्विलासिनी । जि चातुर्यकलाकामिनी ।
 ते शारदा विश्वमोहिनी । नमिलीं मियां ॥ २१ ॥
 मज हृदई सद्वरु । तेणें तारिल्लें संसारपुरु ।
 ह्यणौनि विशेषें मती आदरु । विवेकावारि ॥ २२ ॥
 जैसें डोलेयां अंजन भेटे । तेव्हलि दृष्टीसि पाटा फुटे ।
 मग शम पाहिजे तेथ प्रकटे । महानिधि ॥ २३ ॥

कां चिंतामणि जालेयां हातीं । सदा विजयेपण मनोरथीं ।
 तैसा पूर्णकाम निवृत्ती । ज्ञानदे३० हणें ॥ २४ ॥
 जाणतेन गुरू भजिजे । जेणें कृतकार्या होईजे ।
 जैसैं मूलसिंचनि साहाजें । निगति शाखापह्लुव ॥ २५ ॥
 कां तीर्थें जियें त्रिमुवनीं । तियें वडति समुद्रावगाहनीं ।
 ना तरि अमृतरसास्वादनीं । रस सकल ॥ २६ ॥
 तैसा पुढुतीं पुढुतीं तो चि । मिया वंदिला श्रीगुरु चि ।
 जो अभिलाखित मनोरथु चि । पुरविता ॥ २७ ॥
 आतां अवधारा कथा गहन । जें कलाकौतुकां जन्मस्थान ।
 किं अभिनव उद्यानवन । विवेकतरुचें ॥ २८ ॥
 ना तारे सर्वमुखाची आदि । जे प्रेमयमहानिधि ।
 नाना नवरसमुधाब्धी । परिपूर्ण हा ॥ २९ ॥
 किं परमधाम प्रकट । हें विद्यांचें मूलपीठ ।
 शास्त्रजातां वसैठ । अशेषांचा ॥ ३० ॥
 ना तारे सकल धर्मांचें माहेर । सज्जानांचें जिन्हार ।
 लावण्यरत्नभांडार । द्वारदेचें ॥ ३१ ॥
 नाना कथारूपें भारती । प्रकटली असे त्रिजगती ।
 आविष्करौनि महामती । व्यासाचिये ॥ ३२ ॥
 हणौनि महाकाव्यारा३० । ग्रंथुगरुवतिचा ठा३० ।
 एथौनि रसां जाला आहे । रसालपणांचा ॥ ३३ ॥
 तेविं चि आइकां आणिक ही एक । एथौनि शब्दश्री भली शास्त्रिक ।
 आणिक महाबोधीं कौवलिक । दृणावली ॥ ३४ ॥
 एथ चातुर्य सिहाणें जालें । प्रेम रुचांसि आलें ।
 आणि सौभाग्य पोखलें । सुखाचें एथ ॥ ३५ ॥
 माधुर्या मधुरता । श्रिंगारिं सुरेखता ।
 रूढपण उचिता । दीसे भलें ॥ ३६ ॥

एथ कलाविदपण कलां । पुण्यासि प्रतापु आगदां ।
 ह्यगौनि जन्मेजयाचे अवलीला । दोष गेले ॥ ३७ ॥
 आणि पांतां नावेक । रंगीं मुरंगतेची आगलिक ।
 गुणा सगुणपणाचें बीक । बहुवस एथें ॥ ३८ ॥
 भानुचेंनि तेजें ढवललें । जैसें त्रैलोक्य दासे उजललें ।
 तैसें व्यासमती कवललें । सकल मिरवे ॥ ३९ ॥
 कां मुखेत्रीं बीज घातलें । तें आपुल्यापरी विस्तारलें ।
 तैसें भारतीं मुरवाडलें । अर्थजात ॥ ४० ॥
 ना तरि नगरांतरीं वसिजे । तरि नागरां चि होईजे ।
 तैसें व्यासोक्तितेजें । ढवललें सकल ॥ ४१ ॥
 किं प्रथमवयसाकालीं । लावण्याची नव्हाली ।
 प्रकटे जैसी आगली । अंगनाअंगीं ॥ ४२ ॥
 ना तरि उद्यानीं माधवी घडे । तें वनशोभेचीं खाणि उघडे ।
 आदिलापासौनि अपाडें । जिया परीं ॥ ४३ ॥
 नाना घनीभृत सुवर्ण । जैसें निहाळितां साधारण ।
 मग अलंकारीं बरवेपण । निवाडु दावी ॥ ४४ ॥
 तैसें व्यासोक्ति अलंकरलें । आवडतें बरवेपण पातलें ।
 तें जाणौनि चि काइ आश्रडलें । इतिहासीं ॥ ४५ ॥
 नाना पुरतिये प्रतिष्ठेलागि । सानोव घरूनि आंगीं ।
 पुराणें आख्यानरूपें जगीं । भारता आलीं ॥ ४६ ॥
 ह्यगौनि भारतीं नाहीं । तें न्हवे चि लोकीं तिहीं ।
 एणें कारणें ह्यणिपे पाहीं । व्यासोच्छिष्ट जगत्रय ॥ ४७ ॥
 ऐसी मुरस जगीं कथा । जे जन्मभूमि परमार्था ।
 मुनि सांत्रे नृपनाथा । जन्मेजया ॥ ४८ ॥
 जे अद्वितीय उत्तम । पवित्रैक निरूपम ॥
 परममंगल धाम । अवधारिजो ॥ ४९ ॥

आतां भारतकमलपरागु । गीताख्यु प्रसंगु ।
 जो संवादला श्रीरंगु । अर्जुनेसीं ॥ ५० ॥
 ना तरी शब्द ब्रह्माब्धी । मथिलें व्यासबुद्धी ।
 निवडलें निरवधी । नवनीत हें ॥ ५१ ॥
 मग ज्ञानाग्निसंपर्के । कडसिलें विवेके ।
 पदा आलें परिपाके । आमोदासीं ॥ ५२ ॥
 जें अपेक्षिजे विरक्ती । अनुभविजे संतीं ।
 सोहंभावे पारंगतीं । रमिजे जेथ ॥ ५३ ॥
 जें आकर्णिजे भक्ति । आदिवंच त्रिजगतीं ।
 ते भीष्मपर्वी संगति । सांघिजैल ॥ ५४ ॥
 जे भगवद्गीता ह्यणिजे । जे ब्रह्मेशानीं प्रसंसिजे ।
 जे सनकादिकीं सेविजे । आदरेसीं ॥ ५५ ॥
 जैसें शारदियेचिये चंद्रकले । माझि अमृतकण कोवले ।
 ते वैचिंति मनें मौआलें । चकोरतळगे ॥ ५६ ॥
 तेयापरीं श्रोतां । अनुभवार्ची हे कथा ।
 अति हलुवारपण चित्ता । आणूनियां ॥ ५७ ॥
 हें शब्देविण संवादिजे । इंद्रियां नेणतां भोगिजे ।
 वोला आर्चीं ज्ञोविजे । प्रमेयासि ॥ ५८ ॥
 जैसें भ्रमर परागु नेति । परि कमलदले नेला नेणति ।
 तेसीं परि आहे सेविती । ग्रंथीं इये ॥ ५९ ॥
 कां आपुला ठाऊ न संडितां । आलंगिजे चंद्रु प्रकटतां ।
 हा अनुरागु भोगितां । कुमुदिनी जाणें ॥ ६० ॥
 ऐसेनि गंभोरपणें । थिरावलेनि अंतःकरणें ।
 आथिला तो जाणे । मातु इये ॥ ६१ ॥
 आहो अर्जुनाचिया पांती । जे परिसणेयां योग्य हांति ।
 तिहिं कृपा करुनि संतीं । अवधान देयावें ॥ ६२ ॥

हें सलगी मियां हणितलें । चरणा लागौनि विनविलें ।
 प्रभू सखोल हृदय आपुलें । हणौनियां ॥ ६३ ॥
 जैसा स्वभावो मायेवापांचा । अपत्य बोले जन्हीं बोवडिया वाचा ।
 तन्हीं अधिकाधिक तेयांचा । संतोखु चि आधि ॥ ६४ ॥
 तैसा तुह्नीं मीं अंगिकारिलां । सज्जनीं आपुला हणितलां ।
 तारे उणावो साहाजें उपसाहला । प्रार्थुं काइ ॥ ६५ ॥
 परि अपराधु तों आणिकु आहे । जें मीं गीतार्थु कळूं पाहें ।
 तें अवधारां विनउं लाहें । हणौनियां ॥ ६६ ॥
 हें अनावरत विचारितां । वायां चि धिवंसा उपनला चित्ता ।
 यन्हविं काइ भानुतेजीं खद्योता । शोभा आधि ॥ ६७ ॥
 कां टिटिसुं चांचुवेन्हीं । माप मुये सागरीं ।
 मीं नेणतु तिया परीं । प्रवर्ते एथ ॥ ६८ ॥
 आइकां आकाश गवंसावें । तारि आणिक तैसें चि होआवें ।
 हणौनि अपाडु हें आधवें । निर्धारितां ॥ ६९ ॥
 एया गीताशास्त्राची थोरी । स्वयं शंभु विवरी ।
 जेथ भवानी प्रणु करी । चमत्कारौनि ॥ ७० ॥
 तेथ हरु हणो जेवि नेणिजे । देवीं जैसें कां स्वरूप तूझें ।
 हें निल्यनूतन देखिजे । गीतातत्त्व ॥ ७१ ॥
 हा वेदार्थुसागर । जेया निद्रिताचा घोर ।
 तो स्वयें सर्वेश्वर । अनुवादला ॥ ७२ ॥
 एसें जें अगाध । जेथ वेडावति वेद ।
 तेथ अल्प मीं अतिमंद । काइ होयें ॥ ७३ ॥
 हें अपार कैसें कवलावें । महातेज कवणें ढवलावें ।
 गगन मुठी मुआवें । मशकें केवि ॥ ७४ ॥
 परि एथ असे एकु आधार । तेंणें चि बोलें मीं सधर ।
 जें मानुकूल श्रीगुरु । ज्ञानदेव ३० ब्रह्म ॥ ७५ ॥

यन्हविं तन्हि मीं मूर्खु । जन्हैं जाला असे अविवेकु ।
 तन्हीं संतकृपादीपकु । सोज्वलु असे ॥ ७६ ॥
 लोहाचें कनक होथे । हें परिसिं सामर्थ्य आहे ।
 कां मृत ही जीवित लाहे । अमृतसिद्धी ॥ ७७ ॥
 जरि प्रकटे सिद्धसरस्वती । तारि मुंकेयां आधि भारती ।
 एथ वस्तुसामर्थ्यशक्ती । नवल काइ ॥ ७८ ॥
 जेयातें कामधेनु ऐसी माये । तेयासि अप्राप्य काहीं आहे ।
 ह्यणौनि मीं प्रवर्तों लाहें । ग्रंथीं इये ॥ ७९ ॥
 तन्हीं न्यून तें पुरतें । अधिक ही सरतें ।
 करुनि घेयावें हें तुमतें । विनविळें मियां ॥ ८० ॥
 आतां देइजे अवधान । तुझीं बोलविलां मीं बोलैनि ।
 जैसें चेष्टे सूत्रार्थीन । दारुयंत्र ॥ ८१ ॥
 तैसा मी अनुगृहीतु । साधूचा निरोपितु ।
 तो आपुला अलंकारनु । भलेतैसा ॥ ८२ ॥
 तव गुरु ह्यणति राहीं । हें तुज बोलावें न लगे काहीं ।
 आतां ग्रंथा चित्त देइ । झडकरि गा ॥ ८३ ॥
 एया बोला निवृत्तिदामु । पावौनि परम उल्हासु ।
 ह्यणं परियसां मना अवकाशु । देउनियां ॥ ८४ ॥

॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।

मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

पुत्रस्नेहें मोहितु । धृतराष्ट्रु असे पूसतु ।

सावै संजया मानु । कुरुक्षेत्रिची ॥ ८५ ॥

जें धर्मालय ह्यणिजे । तेथ पांडव आणि माझे ।

गळे अमति व्याजें । ज्ञानाचेनि ॥ ८६ ॥

तरि ते चि धेतुलां अवसरीं । काय कीजतसे येरएरी ।
हें झडकरि कथन करीं । मजप्रति ॥ ८७ ॥

॥ सञ्जय उवाच ॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

तेव्हलि संजयो बोले । ह्यगे पांडवसैन्य उचळले ।
जैसें महाप्रलयां पसरले । कृतांतमुख ॥ ८८ ॥
तैसें ते घनदाट । उठावळें एकावट ।
जैसें उलंडले कालकूट । धरी कवग ॥ ८९ ॥
ना तरि वडवानलु सांदुकटा । प्रलयघातें पोळटा ।
सागरु शोषूनि उधवळा । अंबरासि ॥ ९० ॥
तैसें दल दुर्वर । नाना व्यूहीं परिकर ।
आवरलें भयासुर । तिपे कारीं ॥ ९१ ॥
तें देखिलेयां दुर्योधने । अन्हेरिलें कवगे मानें ।
जैसें न गणिजे पंचाननें । गजवंटातें ॥ ९२ ॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

मग द्रोणापासीं आला । तेयातें ह्यगे हा देखिला ।
कैसा दलभार उचळला । पांडवांचा ॥ ९३ ॥
गिरिदुर्ग जैसें चालते । तैसें त्रिविध व्यूह भवते ।
हें रचिले आहाति बुद्धिमते । द्रुपदकुमरे ॥ ९४ ॥
जो कां तुहीं शिक्षापिला । विद्येसिखसैठा केला ।
तेणे हा सैन्ये मिथु पान्तरिया । देव देव ॥ ९५ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

आणिक ही एथ असाधारण । जे शस्त्रास्त्रों भले प्रवीण ।
ते क्षात्रधर्मी निपुण । वीर आहाति ॥ ९६ ॥
बलें प्रौढी पौरुषें । जे भीमार्जुनासारिखें ।
ते सांघैन कवतिकें । प्रसंगें चि ॥ ९७ ॥
एथ युयुधानु सुभट्ट । आला असे विराट्टु ।
महारथी श्रेष्ठु । द्रुपट्टु वीरु ॥ ९८ ॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥ ५ ॥

चेकितानु धृष्टकेतु । काशीश्वरु विक्रान्तु ।
उत्तमौजा नृपनाथु । शैब्यु देख ॥ ९९ ॥
हा कुन्तिभोजु पाहे । एथ युधामन्यु आला आहे ।
आणि पुरुजितादि राये । सकलै जाणें ॥ १०० ॥

युधामन्युश्चविक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

हा सुभद्राहृदयनंदनु । जो अपरु नवा अर्जुनु ।
तो अभिमन्यु हणें दुर्योधनु । देखें द्रोणां ॥ १ ॥
आणिकही द्रौपदिकुमर । जे सकलही महारथी वीर ।
मीति नेणिजे अपार । मीनले असति ॥ २ ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ॥
नायका मम सैन्यस्य संशयं तान्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

आतां आमचां दळीं नायक । जे रूढ वीर सैनिक ।

ते प्रसंगे आइक । सांवेन मी ॥ ३ ॥
 उदेशे एक दोनि । जाइजति बोल्योनि ।
 तुह्नीं आदिकरुनि । मुख्य जे जे ॥ ४ ॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिजयः ।
 अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

हा भीष्म गंगानंदनु । जो प्रतापतेजस्वीं भानु ।
 रिपुगजपंचाननु । कर्ण वीरु ॥ ९ ॥
 एकैकाचेनि मनोव्यापारें । हें विश्व होये संहरे ।
 हा कृपाचार्यु न पुरे । एकलाचि ॥ ६ ॥
 एथ विकर्ण वीरु आहे । हा अश्वत्थामा पैलु पाहे ।
 जेयाचा आडदरु सदा वहे । कृतांतु मनीं ॥ ७ ॥
 समितिजयो सौमदत्ति । ऐसे आणिकही बहुत असति ।
 जेयांचेया बलाची मीती । धाता नेणें ॥ ८ ॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
 नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

जे शस्त्रविद्यांपारंगत । मंत्रावतार मूर्त्त ।
 हो काज अस्त्रजात । एथौनि रूढि ॥ ९ ॥
 हे अप्रतिमहृत् जर्गी । पुरता प्रतापु आंगीं ।
 परि सर्वप्राणें मज चि लागि । आराइले ॥ ११० ॥
 पतिव्रतेचें हृदय जैसें । पतीवांचौनि न स्पर्शें ।
 मी सर्वस्व ययां तैसें । सूभटांसि ॥ ११ ॥
 आमचेया काजाचेनि पाडें । देखति आपुलें जीवित थोडें ।
 ऐसे निरवधि चोखडे । स्वामिभक्ती ॥ १२ ॥
 जूझती कुलकेणी जाणति । कले कीर्त्तिसिं जीति ।

हैं बहू असो क्षात्रवृत्ती । एथोनियां ॥ १३ ॥
 ऐसे सर्वे परीं पुरते । वीर दलिं आमतें ।
 आतां काइ गणूं ययांतें । अपार हे ॥ १४ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
 पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीष्माभिरक्षितम् ॥ १० ॥

वरि क्षेत्रियांमाजि श्रेष्ठु । जो जगजेठी जर्गीं सूभट्टु ।
 तेया दलवैपणाचा पाटु । भीष्मासि पै ॥ १५ ॥
 आतां ययाचेनि बलें गवसलें । हें दुर्ग जैसें पंनासिलें ।
 एणें मानें थेंकुलें । लोकत्रय ॥ १६ ॥
 आदि चि समुद्र काइ । तेथ दुवाडपण कवणा नाही ।
 मग वडवानलु तैसेयाही । विरजा जैसा ॥ १७ ॥
 ना तारि प्रलयवन्दि महावातु । एयां दोवां जैसा सांघातु ।
 तैसा हा गंगासूतु । सेनापति ॥ १८ ॥
 आतां येणेंसीं कवण भीडे । हें पांडवसैन्य कीरु थोकडें ।
 उ०इचिलें अपाडें । दीसतसे ॥ १९ ॥
 वरि भीमसेनु बेंथु । तो जालासे सेनानाथु ।
 ऐसें बोलैनि मातु । सांडिली तेणें ॥ १२० ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
 भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११ ॥

मग पुनरपि काई बोलें । सकलां सैनिकांतें ह्यणितलें ।
 आतां दलभार आपुलाले । सारिसे करा ॥ २१ ॥
 जेयां जिया अक्षौहिणी । तेणें तिया आरणां ।
 वरगण कवणा कवणी । महार्थीयां ॥ २२ ॥
 तेणें तें आवरिजे । भीष्मातलिं राहिजे ।

हृणो द्रोणातें परिसिजे । तुझीं सकळीं ॥ २३ ॥

हा चि येकु रक्षावा । मी तैसा देखावा ।

एणें दलभारु आववा । साचु आमचा ॥ २४ ॥

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुबृद्धः पितामहः ।

सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥

एया रायाचेया वोला । सेनापति संजोखला ।

मग तेणें केला । सिंहनादु ॥ २५ ॥

तो गाजतसे अद्भुतु । तिहिं लोकां आंतु ।

प्रतिध्वनि न समातु । उपजतसे ॥ २६ ॥

तेया चि तुळिगासवें । वीरवृत्तिचेनि धावें ।

दिव्य शंखु भीष्मदेवें । आस्फुरेला ॥ २७ ॥

ते दोन्ही नाद मोनले । तेथ त्रैलोक्य वधिर जालें ।

जैसें आकाश कां पडिलें । तूटोनिघां ॥ २८ ॥

घडवडीत अंबर । उचंवळत सागर ।

क्षोभलें चराचर । कांपत असे ॥ २९ ॥

तेणें महाघोषगजरें । दुमुदुमिति गिरिदरें ।

तवं दलामाक्षि रणतुरें । आस्फालिळीं ॥ १३० ॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पगवानकृगोमुखाः ।

सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

उदंडें सैव वाजते । भयानकें खांखातें ।

महाप्रलयो जेयें । धाकडांसि ॥ ३१ ॥

तेथ भेडांची कवणि मातु । काचेयां केरु फांटतु ।

जेणें दचकला कृतांतु । आंग नेवे ॥ ३२ ॥

भेरी निशाण मादल । शंखु टीविल्या भोंगल ।

आणि भासुर रणकोल्हाळ । तूमटांचे ॥ ३३ ॥
 आवेसें भुजा आत्राटिति । विसणैले हाका देति ।
 जेथ महामद भद्रजाति । धरति ना ॥ ३४ ॥
 एकां उभेयां चि प्राण गेले । चांगाचे दांत बैसले ।
 विरिदांचे दादुले जाले । हीवां ऐसे ॥ ३५ ॥
 ऐसा अद्भुत तुरवंवालु । आइकौनि ब्रह्मा व्याकुलु ।
 देव ह्मणति प्रलयकालु । होईल हा ॥ ३६ ॥
 ऐसी स्वर्गां मातु । देखौनि तो आकांतु ।
 तवं पांडवदळा आंतु । काइ जालें ॥ ३७ ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।

माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यो शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

हों काज सार विजयाचें । किं तें भांडार महातेजाचें ।
 जेथ गरुडाचिये जावलिचे । कांतले च्याऱ्ही ॥ ३८ ॥
 किं पाखांचा मेरु जैसा । रहवरु मिरवत तैसा ।
 तेजें कोंधाटलिया दिशा । जेयाचेनि ॥ ३९ ॥
 जेथ अश्ववाहकु आपण । वैकुण्ठाचा राणा जाण ।
 तेया रथाचे गुण । काइ वर्णू ॥ १४० ॥
 ध्वजेवार वानरु । तो मूर्तिमंतु शंकरु ।
 सारथ्यां शार्ङ्गधरु । अर्जुनेसीं ॥ ४१ ॥
 देखां नवल तेया प्रभूचें । अद्भुत प्रेम भक्ताचें ।
 जें सारथ्य पार्थाचें । कारितु असे ॥ ४२ ॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।

पौण्ड्रं दध्मो महाशंखं भोमकर्मो वृकोदरः ॥ १५ ॥

। पाइकु पाटिसि घातला । आपण पुढां राहिला ।

तेणें पांचजन्य आस्फुरिला । अवलीला चि ॥ ४३ ॥
 परि तो महाघोषु धोर । गाजतसे गहीरु ।
 जैसा उदैला दिनकर । लोपी नक्षत्रांतें ॥ ४४ ॥
 तैसे तुरवंबाल भवते ! जे कौरवदळि गाजत होते ।
 ते हारपौनि नेणों केउते । गेले तेथ ॥ ४५ ॥
 तैसा चि देखें एरें । निनादें अति गहिरें ।
 देवदत्तु धनुर्धरें । आस्फुरिला ॥ ४६ ॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तोपुत्रो युधिष्ठिरः ।

नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

ते दोन्हीं शब्द अचाट । मीनछे एकावट ।
 तेथ ब्रह्मकटाहो शतकूट । हो पांत असे ॥ ४७ ॥
 तवं भीमसेनु विसाणैला । जैसा महाकालु खवळला ।
 तेणें पौंडु आज्ञाटिला । महाशंखु ॥ ४८ ॥
 तो महाप्रळई जलधर । तैसा घडवडिला गहिर ।
 तवं अनंतविजयो युधिष्ठिर । आपूरिता जाला ॥ ४९ ॥
 नकुळें सुघोषु । सहदेवें मणिपुष्पकु ।
 तेणें नादें अंतकु । गजवजला ॥ १५० ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डो च महारथः ।

धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

तेथ भूपति होते आणिक । द्रुपद्रौपदादिक ।
 हा काशीपति देख । महाबाहु ॥ ५१ ॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवोपते ।

सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥

एथ अर्जुनाचा सतु । सात्यकी अपराजितु ।
 धृष्टद्युम्नु नृपनाथु । शिखंडी हान ॥ ५२ ॥
 विराटादिक नृपवर । जे सैनीक मुख्य वीर ।
 तिहीं नाना शंख निरंतर । आस्फुरिले ॥ ५३ ॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।

नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

तेणें महाघोषनिर्घातें । शेषकूर्म अवचिते ।
 गजबजौनि भारातें । सांडूं पांति ॥ ५४ ॥
 तेथ तीन्ही लोक डंडलित । मेरुमंदार आंदोलत ।
 समुद्रजल उसलत । आकाशवेन्ही ॥ ५५ ॥
 पृथिवांतल उलंडों पांत । आकाश असे अडदरत ।
 तेथ रासौभा होंत । नक्षत्रांचा ॥ ५६ ॥
 गेली रे सृष्टि गेली । देवां मोकळवांदि जाली ।
 ऐसी एकताली पीटली । सत्यलोकि ॥ ५७ ॥
 दिहा चि दीनु थोंकला । जैसा प्रलयदीपु माल्हवला ।
 तेंथ हाहाकार उठिला । तिहीं लोकि ॥ ५८ ॥
 तवं आदिपुरुखु विस्मितु । ह्यणे झनें होये अंतु ।
 मग लोपिला अद्भुतु । संभ्रमु तो ॥ ५९ ॥
 ह्यणोनि विश्व संवरलें । यन्हविं युगांत होतें उडवलें ।
 जेथ महाशंख आपूरिले । कृष्णादिकां ॥ १६० ॥
 तो घोपु तरि उपसंहरला । परि पडिसादा होउनि राहिला ।
 तेणें दलभार विध्वंसिला । कौरवांचा ॥ ६१ ॥
 जैसा सांडूं गजवंटा आंतु । संचरे लीला विदारतु ।
 तैसा हृदयातें भेदितु । वीरांचियां ॥ ६२ ॥
 तो गाजत जवं आइकति । तवं उभेयां चि हियें घालिति ।

एक एकाते ह्यगति । सावव रे ॥ ६३ ॥
 तेथ बलें प्रौढी पुरते । जे महार्थी वीर होते ।
 तिहिं पुनरपि दलाते । आवरिलें ॥ ६४ ॥
 मग सरिसेपणें उठावले । दुणावटानि उचलले ।
 तेया दंडी क्षोभलें । लोकत्रय ॥ ६५ ॥
 तेथ बाणवारि धनुर्वर । वरिपताति निरंतर ।
 जैसे प्रलयांतीं जलवर । अनिवार कां ॥ ६६ ॥

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपि ध्वजः ।
 प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुस्त्वयस्य पाण्डवः ॥ २० ॥

तें देखिलेयां अर्जुनें । संतोखु घेउनि मनें ।
 मग संभ्रमें सैन्यें । अवलोकित असे ॥ ६७ ॥
 तवें संग्रामीं सज्ज जाले । सकळ कौरव देखिले ।
 मग लीला धनुय उचलिलें । पांडुकुमरें ॥ ६८ ॥

दृपीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
 सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

तेव्हळिं ह्यणतसे देवा । आतां झडकारि रथु पेलवावा ।
 नेउनि मय्यें घालवा । दोहीं दलां ॥ ६९ ॥

यावदैतान्निरीक्ष्येऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
 कर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्नणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

जत्रे मीं नाथ येक । हे सकळ वीर सैनिक ।
 निहाळीन अशेख । जुझते जे ॥ १७० ॥
 एथ आले असति आवत्रे । पारि मियां कवणेंसीं जुझावें ।
 हें रणीं लागे पहावें । ह्यणानियां ॥ ७१ ॥

योत्स्यमानानवेक्ष्येऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्दुद्धैर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

बहुत करुनि कौरव । हे आतुर दुःस्वभाव ।
बांठिवांविण हांव । बांधति जुझीं ॥ ७२ ॥
जुझाची आवडि धरति । परि संग्रामीं थीर न्हवति ।
हैं सांघौनि रायाप्रति । काइ संजयो हाणे ॥ ७३ ॥

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोहभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥

आइका अर्जुनु इतुकें बोलिला । तवं कृष्णं रथु पेलिला ।
दोहों सैन्यामाझि केला । उभा तेंणें ॥ ७४ ॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५ ॥

जेथ भीष्मद्रोणादिक । जवलिकेचि संमुख ।
पृथिवीपति आणिक । बहुत आहाति ॥ ७५ ॥
तेथ थीर करुनि रथु । अर्जुनु असे पांतु ।
तो दलभारु समस्तु । संभ्रमेंसीं ॥ ७६ ॥
मग हाणे देख देख । हे गोत्रगुरु अशेष ।
तवं कृष्णा मनीं नाविक । विस्मो जाला ॥ ७७ ॥
तो आपणपेंयां आपण हाणे । एथ काइ कंवण जाणे ।
हैं मनीं धारिलें एणें । परि कांहीं असे ॥ ७८ ॥
ऐसी पुढील से घेतु । तो साहाजें जाणे हृदयस्थु ।
परि उगाचि असे निवातु । तिये वेले ॥ ७९ ॥

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥ २६ ॥

तवं तेथ पार्थु सकल । पितृ पितामह केवल ।
गुरु बंधु मातुल । देखता जाला ॥ १८० ॥
इष्ट मित्र आपुले । कुमर हान देखिले ।
शालक असति आले । तेयामाझि ॥ ८१ ॥

श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धून्वचस्थितान् ॥ २७ ॥

मुहृद हान समुरे । आणिक ही सखे सोयरे ।
कुमर पौत्र धनुर्धरें । देखिले तेथ ॥ ८२ ॥
जेयां उपकार होंते केले । जे आपदीं होंते रक्षिले ।
हें असो वडिल धाकुले । आदि करुनि ॥ ८३ ॥
ऐसें गोत्र चि दोहीं दलीं । उद्यत जालें असे कलीं ।
तें अर्जुनें तिये कालीं । अवलोकिलें ॥ ८४ ॥

कृपया परयाविष्टो विषीदद्विदमब्रवीत् ।

अर्जुन उवाच ॥

हृण्द्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८ ॥

एथ मनीं गजव्रज जालीं । आपैसी कृपा आलीं ।
तेणें अपमानें निगालीं । वीरवृत्ति ॥ ८५ ॥
जिये उत्तमे कुलिचिया होंति । आणि गुणलावण्यें आथि ।
तिया आणिकीतें न साहाति । मुतेजपणें ॥ ८६ ॥
नविये आवडिचेनि भरें । कामिकु निज वनिता विसरे ।
मग पाडेंविण अनुसरे । भ्रमला जैसा ॥ ८७ ॥

कां तपोवले रिद्धि । पातलेयां भंशु बुद्धी ।
 मग विरगतां सिद्धि ! आठवेना ॥ ८८ ॥
 तैसें अर्जुना तेथ जालें । जें असतें पौरुष धाडिलें ।
 जें अंतष्करण दीन्हलें । कारुण्यासि ॥ ८९ ॥
 देखां मंत्रजु बरलु जाये । तेथ कां जैसा संचारु होये ।
 तैसा तो धनुर्धरु महामोहें । आकलिला ॥ १९० ॥
 ह्यणौनि असता धीरु गेला । हृदयासि द्रा३० आला ।
 जैसा चंद्रकला सीतला । सोमकांतु ॥ ९१ ॥
 तिया परीं पार्थु । अति स्नेहें मोहितु ।
 मग सखेदु असे बोलतु । अच्युतेंसीं ॥ ९२ ॥
 तो ह्यणे अवधारीं देवा । मियां पाहिला हा मेलावा ।
 तव गोत्रवर्गु आघवा । देखिला एथ ॥ ९३ ॥
 हे संग्रामी अति उदित । जाले असति कीरु समस्त ।
 परि आपणयां उचित । केवि हांये ॥ ९४ ॥
 येणें नावें चि नेणों काइ । मज आपणपें सर्वथा नाहीं ।
 मनो बुद्धि ठांड । थीरु न्हवे ॥ ९५ ॥

सीदान्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥

देखें देह कांपत । तोंड असे कोरडें होत ।

विकलता उपजत । गात्रांसि ॥ ९६ ॥

सर्वांगा कांटाळा आला । अति संतापु उपनला ।

तेणें विव्हलु हातु गेल्या । गांडिवाचा ॥ ९७ ॥

गाण्डीवं संसते हस्तास्त्वक्चैव परिदेह्यते ।

न च शक्नोम्यवस्थानुं भ्रमतोव च मे मनः ॥ ३० ॥

ते न धरत निसुटलें । परि नेणे चि हातांनि पडिलें ।
 ऐसें हृदय असें व्यापलें । मोहें तेणें ॥ ९८ ॥
 जें वज्रापासौनि कठिन । दुर्द्धर अति दारुण ।
 तेयाहीडूनि असाधारण । हें स्नेहनवल ॥ ९९ ॥
 जेणें शंकर रणीं जीतिला । कृतांतु आंकणा घातला ।
 तो अर्जुनु मोहें कवलिला । क्षणामाझि ॥ २०० ॥
 जैसें भ्रमर तरि भेदी कोडें । भलेतैसें काष्ट कोरडें ।
 परि कलिकेमाझि सांपडे । कोवलिये ॥ १ ॥
 तेंथ उत्तीर्ण होये प्राणें । परि तें कमलदल चीरूं नेणे ।
 ऐसें कठिन कोवलेपणें । स्नेह देखां ॥ २ ॥
 हे आदिपुरुषाची माया । ब्रह्मेयाहीं नैये चि आया ।
 ह्यणौनि भुलविला आइकैं राया । संजयो ह्यणे ॥ ३ ॥
 अवधारीं मग ता अर्जुनु । देखौनि सकल स्वजनु ।
 विसरला अभिमानु । संग्रामिचा ॥ ४ ॥
 कैसी नेणों सदयता । उपनली असे चित्ता ।
 मग ह्यणे कृष्णा आतां । नसिजे एथ ॥ ५ ॥
 माझें अतिशयें मन व्याकुल । हांतसे वाचा बरल ।
 जें वधावे हे सकल । एणें नावें ॥ ६ ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।

न च श्रेयोनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

एयां कौरवां वरिवावें । तरि युधिष्ठिरादिक कां नेघावे ।
 हे येरयेरै आववे । गोत्र आमुचें ॥ ७ ॥
 ह्यणौनि जलो हें जूझ । प्रत्यया नैये मज ।
 एणें काइ काज । महापापें ॥ ८ ॥
 देवा बहुतीं परीं पांतां । एथ उष्वटें होईल जूझतां ।
 बर काहीं एक चुकवितां । त्यामु आधि ॥ ९ ॥

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥

तिया विजयवृत्ती काहीं । मज सर्वथा काज नाही ।
एथ राज्य तरि काइ । हें पाउनियां ॥ २१० ॥

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥

एयां सकलतें वधावें । मग जे भोग भोगावे ।
जलतु ते आववे । पार्थु ह्याणे ॥ ११ ॥
तेणें मुखेंविण जें होइल । तें भलेतें वर साहिजैल ।
वरि जीवित ही शेषीं जाइल । एथ देवा ॥ १२ ॥
परि यांसि घातु कीजे । मग आपण राज्य भोगिजे ।
हें स्वप्नीं ही मन माझे । करूं न शके ॥ १३ ॥
तरि आहीं कां जन्मावें । कवणालागि जियावें ।
जें वडिलां येयां चितावें । विरूं मनीं ॥ १४ ॥
पुत्रातें इछीं कुल । तेयाचें काइ हें चि फल ।
जें निर्दलिजे केवल । गोत्र आपुलें ॥ १५ ॥
हें मनीं चि केवि धरिजे । आपण वज्राचेंयां बोलिजे ।
वर घडे तरि कीजे । भलें एयां ॥ १६ ॥
आहीं जें जें जोडावें । तें समस्तीं इहीं भोगावें ।
हें जिवित ही उपकरावें । काजीं यांचां ॥ १७ ॥
आहीं दिगतिचे भूपाळ । विभांडूनि सकल ।
संतोषविजे कुल । आपुलें जें ॥ १८ ॥
ते चि हे समस्त । परि कैसें कर्म विपरीत ।
जें जाळे असती उद्यत । जूझावेया ॥ १९ ॥
आंत्रौरिया कुमरें । सांडूनियां भांडारें ।

शस्त्रास्त्रीं जिह्वारं । आरोपुनि ॥ २२० ॥
 ऐसेयांतें कैसेनि मारूं । कवणावरि शस्त्र धरूं ।
 निज हृदया करूं । भेदु केवि ॥ २१ ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।

मातुलाः श्वशुराः पौत्राः शालाः संबन्धिनस्तथा ॥ ३४ ॥

हे नेणसि तूं कवण । तरि पैळ पैं भीष्मद्रोण ।
 जेयांचे उपकार असाधारण । आह्मां बहुत ॥ २२ ॥
 एथ शालक समुरे मातुळ । अणि वंधु किर हे सकळ ।
 पुत्र नातू केवळ । इष्ट असति ॥ २३ ॥
 अवधारीं अति जवळिकेचे । हे गकळ ही मोडरे आमचे ।
 हाणौनि दोषु आथि वाचे । एणें नावें ॥ २४ ॥

एताव हन्तुमिच्छामि क्षत्रेणैः मधुसूदन ।

अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ ३५ ॥

हे वर भलेतें करितु । आतां चि एथ मारितु ।
 परि आपण मनें घातु । न चिंतावा ॥ २५ ॥
 त्रैलोकिकें अनकलित । जन्हें राज्य जोडैल एथ ।
 तन्हें हें अनुचित । नाचरें मीं ॥ २६ ॥

निहत्य धार्तराष्ट्राक्षः का प्रीतिः स्याज्जनादेन ।

पापमेवाश्रयेदस्मान्हृद्यैतान्नातनायिनः ॥ ३६ ॥

जारि आजि एथ ऐसं कांजे । तरि कवणाचां मनीं उरिजे ।
 सांवें मुख केवि पाहिजे । तूहें कृष्णा ॥ २७ ॥
 जारि वधु करुनु गोत्राचा । तरि वसैठा होइन दोषांचा ।
 मग जोडळामि तूं हातिचा । दूरि होनीं ॥ २८ ॥

कुलहरणी पातकें । तियें आंगीं जडति अशेषें ।
 तेव्हळि तूं कवणें कें । देखावासि ॥ २९ ॥
 जैसा उद्यानामाझि अनलु । संचरला देखौनि प्रबलु ।
 क्षणु एकु कोकिलु । स्थिर न्हेवे ॥ १३० ॥
 कां सकर्दमु सरोवरु । अवलोकुनिया चकोरु ।
 न सेवितु अन्हेरु । करुनि निगे ॥ ३१ ॥
 तिया परीं तूं देवा । मग झांकउं नैयेसि मावा ।
 जरि पुण्याचा ओलावा । नाशजैल ॥ ३२ ॥

तस्माद्गार्हा चयं हंतुं धार्तराष्ट्रान्सवांधवान् ।

स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥

हणौनि मीं हें न करीं । इये संग्रामीं शस्त्र न धरीं ।
 हें कीडाल बहुती परीं । दीसतसे ॥ ३३ ॥
 तुजसिं अंतरा३० होइल । मग सांघें आमचें काइ उरैल ।
 तेणें दुःखें चि हियें फूटैल । तुआंविण ॥ ३४ ॥
 हणौनि कौरव हे वधिजति । मग आहीं भोग भोगिजति ।
 हे असो मातु अघडती । अर्जुनु हणणे ॥ ३५ ॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।

कुलक्षयकृतं दोषं भिन्नद्रोहेच पातकम् ॥ ३८ ॥

हे अभिमानमदें भूलले । जन्हीं पा संग्रामा आले ।
 तन्हीं आहीं हित आपुलें । जाणाचें लागे ॥ ३६ ॥
 मार्गें चि चालतां । पुढां सिंहुं दीसे अवचिता ।
 तो चूके तत्रारि चुकवितां । वांचिजे कीं ॥ ३७ ॥

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पाशादस्मान्निवर्त्तितुं ।

कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

हैं ऐसे कैसें करावें । जें आपुले आपण मारावे ।
जाणतां केवि सेवावें । कालकूट ॥ ३८ ॥
आतां असता प्रकाशु सांडावा । मग अंधकूपु आश्रावा ।
तारि तेथें कवणु देना । लामु सांघें ॥ ३९ ॥
कां समोर आगि देखौनि । जरि न वचिजे चि अ०संडुनि ।
तारि क्षणा येका कवलुनि । जाळूं शके ॥ ४० ॥
तैसे दोख हे मूर्त्त । आगिं वाजों असति पांत ।
हैं जाणतां केवि एथ । प्रवर्त्तावें ॥ ४१ ॥

कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मं नष्टे कुलं कुत्सनमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

जैसें काष्ठें काष्ठ मधिजे । तेथ वन्हि एकु उपजे ।
तेणें काष्ठजात जालिजे । प्रज्वललेनि ॥ ४२ ॥
तैसें गोत्रिं चि परस्परें । जरि वधु घडे मत्सरें ।
तरि तेणें दोषें महाबोरें । कुल चि नशे ॥ ४३ ॥
हणौनु एणें पापें । वंशजधर्म लोपे ।
मग अधर्म चि आरोपे । कुलामाजि ॥ ४४ ॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वाष्ण्येय जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

तेथ सारासार न विचारावें । कव्हणें काइ आचारावें ।
जेणें विधिनिषेध आघवे । पारुखति ॥ ४५ ॥
असता दीपु धवडिजे । मग अंधकारिं राहाटिजे ।
तारि उजू चि आडलिजे । जेया परी ॥ ४६ ॥
तैसा कुलीं क्षयो होये । तेव्हालिं आदिधर्मु जाए ।
मग आन काहीं आहे । पापादांचौनि ॥ ४७ ॥

जै यमनियम टकति । तै इन्द्रिये सैरा विचरति ।
 ह्यणौनि व्यभिचार घडति । कुलस्त्रियां ॥ २४८ ॥
 उत्तम अधर्मी संचरति । वर्णावर्ण मिसलति ।
 तेथ समूल उपडति । जातिधर्म ॥ ४९ ॥
 जैसे चोहटांचेया बली । पांवति सैरा काउली ।
 तैसीं महापापे कुलि । प्रविशति ॥ २५० ॥

संकरो नरकायैव कुलघानां कुलस्यच ।
 पतंति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

मग कुला तेया अशेखा । आणिक कुलघातकां ।
 एरएरां नरका । जाणे आधि ॥ ५१ ॥
 देखे वंशवृद्धि समस्त । इया परी होए पतित ।
 मग उभंडति स्वर्गस्थ । पूर्वपुरुष ॥ ५२ ॥
 जेथ नित्यादि क्रिया टके । नैमित्तिक कर्म पाखे ।
 तेथ कवहणा तिलोदके । कवण अर्पा ॥ ५३ ॥
 तारि पितर काइ करिति । कैसेनि स्वर्गि वसति ।
 ह्यणौनि ते हीं येति । कुलापासि ॥ ५४ ॥
 जैसा नखाग्रि व्यालु लागे । तो शिखांत पावे वेगे ।
 तेवि आब्रह्म कुल आववे । आहूविजे ॥ ५५ ॥

दोषैरैतैः कुलघानां वर्णसंकरकारकैः ।
 उत्साद्यंते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥
 उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
 नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥
 अहो वत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयं ।
 यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

देवा अवधारीं आणिक एक । एथ घडे महापातक ।

जें संगदोषें हे लौकिक । भ्रंश पावे ॥ ५६ ॥
 जैसा घरि आपुलां । वानिवसें वन्हि लागला ।
 तो आणिकां हीं पाजलला । जालौनि घलीं ॥ ५७ ॥
 तैसिया तिया कुलसंगती । जे जे लोक प्रवर्त्तति ।
 ते हिं बाधा पावति । निमित्तें एणें ॥ ५८ ॥
 तैसें नाना दोषीं संकुल । अर्जुनु हणें तें कुल ।
 महाघोर केवल । निरय भोगी ॥ ५९ ॥
 पडलेयां तिये ठांडें । कल्पांतीं हीं उगंडु नाहिं ।
 एसणें पतन कुलक्षयिं । अर्जुनु हणें ॥ २३० ॥
 देवा हें विविध आइकिजे । परि अझुइंवरि त्रास नुपजे ।
 हियें वज्राचें हें काइ कीजे । अवधारीं पां ॥ ६१ ॥
 अपेक्षिजे राज्यमुख । जेयालागिं तें तवं क्षणिक ।
 ऐसें जाणतां हीं दोख । अब्हेरुं ना ॥ ६२ ॥
 जें हे वडिल सकल आपुले । वधावेयां दीठि सूदले ।
 सावें पां काइ थेकुलें । घडलें आहां ॥ ६३ ॥

यदिमामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।

धार्तराष्ट्रा रणे हन्यु स्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

आतां इयावेन्हि जें जिआवें । तेयापासौनि हें वरवें ।
 जें शस्त्रें संडौनु साहावे । बाण एयांचे ॥ ६४ ॥
 इयावेन्हि होए जेतुकें । तें मरण हीं वर नीकें ।
 परि एणें कल्मषें । चाड नाहीं ॥ ६५ ॥

सञ्जय उवाच ॥

एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।

विस्मृत्य सशरं चापं शोकसंविन्नमानसः ॥ ४७ ॥

ऐसें तिये अवसरीं । अर्जुनु बोलिल्ला समरीं ।
 संजयो ह्मणे अवधारीं । धृतराष्ट्रांतें ॥ ६६ ॥
 मग अत्यंत उद्वेगला । नधरे गहिवर आला ।
 तेथ उडी घातली खाला । रथौनियां ॥ ६७ ॥
 जैसा राजकुमर पदच्युतु । सर्वथा होये उपहतु ।
 कां रवि राहुप्रस्तु । प्रभाहीनु ॥ ६८ ॥
 ना तारि महासिद्धिसंभ्रमें । जीतला तापमु भ्रमें ।
 मग आकळनि कामें । दीनु कीजे ॥ ६९ ॥
 तैसा तो धनुर्द्धर । अत्यंत दुःखें जर्जर ।
 दीसे तेथ राहवर । त्यजिला तेणें ॥ ७० ॥
 मग धनुष्यबाण सांडिले । नधरत अश्रुपात आले ।
 ऐसें आइकें तेथ वर्तलें । संजयो ह्मणे ॥ ७१ ॥
 आतां यावरि वैकुण्ठनाथ । देखौनि सखेदु पार्थ ।
 कवणी परी परमार्थ । निरोपील ॥ ७२ ॥
 ते सविस्तर पुढां कथा । अति सकौतुक आइकतां ।
 जें ज्ञानदे३० ह्मणैल आतां । निवृत्तिदासु ॥ ७३ ॥

३०तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतामूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

॥ व्याख्यानमिदं ॥



ज्ञानेश्वरी

अध्याय दुसरा

सञ्जय उवाच ॥

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणं ।

विषीदंतमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

मग संजयो ह्यणे रायातें । आइकैं तो पार्थु तैथें ।

शोकाकुलित रुदनातें । करीतु असे ॥ १ ॥

तें कुल देखौनि समस्त । स्नेह उपनलें अद्भुत ।

तेणें द्रवलें असे चित्त । कवणी परी ॥ २ ॥

जैसें लवण जलें झलंवलें । ना तारि अभ्र वातें हालें ।

तैसें सधिर परि विरालें । हृदय तेयाचें ॥ ३ ॥

ह्यणुनि कृपा आकलिया । दीसतसे अति कोमाइला ।

जैसा कर्दमीं रूतअ । राजहंसु ॥ ४ ॥

तिया परी तो पांडुकुमरु । महामोहें निर्भरु ।

तें देखौनि सारंगधरु । काये बोले ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपास्थितं ।

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकोर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

ह्यणे अर्जुना आदिं पाहिं । तुज उचित कायें इयें ठांइं ।
 तूं कवणु हें काइ । करीतु आहासि ॥ ६ ॥
 तुज सांघें काय जालें । कवण उणें आलें ।
 करितां काइ ठेलें । खेदु काइसा ॥ ७ ॥
 तूं अनुचिता चित्त नेंदिसी । धीरु कहिं न संडिसि ।
 तूझेनि नावें आपेसि । दिशा लंघी ॥ ८ ॥
 तूं शूरवृत्तिचा ठाउ । क्षत्रियांमाझि राउ ।
 तूझेया लोठपणाचा आवो । तिहिं लोकि ॥ ९ ॥
 तुवां संग्रामीं हरु जींतला । निवातकवचाचा ठावो फेडिला ।
 पवाडा तुवां केला । गंधर्वासिं ॥ १० ॥
 हें पांतां तूझेनि पाडें । दीसे त्रैलोक्य ही थोकडें ।
 ऐसें पौरुष चोखडें । पार्था तूझे ॥ ११ ॥
 तो तूं किं आजि येथें । सांडूनियां वीरवृत्तितें ।
 अधोमुख रुदनातें । करीतु आहासि ॥ १२ ॥
 विचारीं तूं अर्जुनु । किं कारुण्यें कीजतासि दीनु ।
 सांघ पां अंधकारें भानु । प्रसिला आथि ॥ १३ ॥
 नातरि पवनु मेघासि विहे । किं अमृतासि मरण आहे ।
 पाहे पां इन्धन चि गीळ्ळनि जाये । पावकातें ॥ १४ ॥
 किं लवणें चि जल विरे । संसर्गे कालकूट मरे ।
 सांघें महाफणि दर्दुरें । गीळ्ळिजे कायि ॥ १५ ॥
 सिंहांसि झोंवे कोन्हा । ऐसा अपाडु आधिकां जाला ।
 पारि तुवां साचु केला । आजि येथें ॥ १६ ॥
 ह्यगुनि आझुंइं अर्जुना । ज्ञानें चित्त देंसि यया हीना ।
 वेगीं धीरु करुनि मना । सावधु होइं ॥ १७ ॥
 सांघीं हें मूर्खपण । उठिं घेइं धनुषवाण ।
 संग्रामिं हें कवण । कारुण्य तूझे ॥ १८ ॥

हैं गा तू जाणता । तारे न विचारीसि कां आतां ।
 सांघें जूझावेले सदयता । उचित काई ॥ १९ ॥
 हें असतिये कीर्ती नाशु । आणि पारत्रिकासि भंशु ।
 हणें जगन्निवासु । अर्जुनातें ॥ २० ॥

क्लेशं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
 श्वद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

हणुनि शोक न करीं । हा पुरुता धीरु धरीं ।
 हे शोच्यता अब्हेरीं । पांडुकुमरा ॥ २१ ॥
 तुज नव्हे हें उचित । येणें नाशेल जोडलें बहुत ।
 तूं अझुईं हित । विचारि पां ॥ २२ ॥
 येणें संग्रामाचेनि अवसरें । येथ कृपालुपण नुपकरे ।
 हे आतां चि काइ सोइरे । जाले तुज ॥ २३ ॥
 तूं आदीं चि काइ नेणसि । किं हें गोत्र नोलखसि ।
 वायां चि काइ कारिसी । अतिशो एथ ॥ २४ ॥
 आजिचें हें जूझ । काये जन्मा नवल तूज ।
 हें परस्परें तुहा व्याज । सदा चि आधि ॥ २५ ॥
 तारे आतां चि काइ जालें । काइसें स्नेह उपनलें ।
 हें नेणजे परि कुडें केलें । अर्जुना तुवां ॥ २६ ॥
 मोहो धारिलेयां ऐसें होइल । जें असती प्रतिष्ठा जाइल ।
 आणि परलोक अंतरैल । इहिकेंसीं ॥ २७ ॥
 हृदयाचें ढालेपण । येथ नीकियासि नव्हे कारण ।
 ह संग्रामि पतन जाण । शत्रियांसि ॥ २८ ॥
 ऐसेनि तो कृपावंतु । नानापरी असे सिकवितु ।
 तें आइकौनि पांडुमुतु । काये बोले ॥ २९ ॥

अर्जुन उवाच ॥

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।

इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

देवा हैं इतुलेवेन्हीं । बोलवें नलगे अवधारीं ।
 आदीं तू चि चित्ति विचारीं । संग्रामु हा ॥ ३० ॥
 हैं जूझ नव्हे प्रमादु । येथ प्रवर्तलेयां दीसतसे बाधु ।
 हा उघड लिंगभेटु । बोडवला आह्ला ॥ ३१ ॥
 देखें मातापितरें अर्चिजति । तियें सर्वस्वें तोषु पावविजति ।
 तियें पाठीं केवि वधिजति । आपुलां हातीं ॥ ३२ ॥
 देवा संतवृंद नमस्कारिजे । कां घडे तारे पूजिजे ।
 हैं बांचूनि केवि निदिजे । स्वयें वाचा ॥ ३३ ॥
 तैसे गौत्रगुरु आमचे । हे पूज्य आह्लां नियमाचे ।
 मज बहूत भीष्मद्रोणाचें । वर्ततसे ॥ ३४ ॥
 जेयांलागि मनें वीरुं । आह्लां स्वर्मीं हिं न धरुं ।
 तेयां प्रत्यक्ष केवि करुं । धातु देवा ॥ ३५ ॥
 वर जलो हैं जियालें । येथ आवघेयांसि हैं चि जालें ।
 जे याचा वधि अभ्यासिलें । मिरविजे आह्लां ॥ ३६ ॥
 मी पार्थु द्रोणाचा केला । येणें धनुर्वेदु मज दीन्हला ।
 तणें उपकारें काइ आमरैलां । वधि ययातें ॥ ३७ ॥
 जंथिचिया कृपा लाभे वरु । तेथ चि मनें व्यभिचारु ।
 तारे काइ मां भस्मामुरु । अर्जुनु हणें ॥ ३८ ॥
 देवा समुद्र हा भरितु आइकिजे । वर तो ही आहाचु देखिजे
 पारं क्षोभु मनीं नणिजे । द्रोणाचिये ॥ ३९ ॥
 हैं अपार जें गगन । वरि तेया ही हाईल मान ।
 पार अगाध भलें गहन । हृदय ययाचें ॥ ४० ॥

वरि अमृत ही वीटे । कां कालवसें वज्र फूटे ।
 पारि मनोधर्मु न लोटे । विकरविला हा ॥ ४१ ॥
 स्नेहालागि माये । ह्मणिये ते कीरु होये ।
 पारि कृपा ते मूर्त आहे । इये द्रोणीं ॥ ४२ ॥
 हा कारुण्याची आदि । सकल गुणाचा निधि ।
 विद्यासिंधु निरवधी । अर्जुनु ह्मणे ॥ ४३ ॥
 हा येणें मानें महंतु । वरि आह्मालागि कृपावंतु ।
 आतां सांव पां काइ घातु । येथ चिंतुं येइल ॥ ४४ ॥

**गुरूनहत्वा हि महानुभावान्श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
 हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुंजीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥५॥**

हे ऐसे राणें वधावे । मग आपण राज्यमुख भोगावें ।
 हें मना नैये आघवें । जीवितेंसि ॥ ४५ ॥
 हे येणें मानें दुर्भर । जें यया ही होनि भोग सपुर ।
 ते असतु एथ भिक्षा वर । मागतां भली ॥ ४६ ॥
 नातारि देशत्यागें जाइजे । कां गिरिकंदर सेविजे ।
 पारि शस्त्र आतां न धरिजे । ययांवरि ॥ ४७ ॥
 देवा नव नवनिसितिं सरीं । वावरुनि येयांचां जिहारीं ।
 भोग गिंवसावे रुधिरां । बुडाले जे ॥ ४८ ॥
 ते काहुनि काये कीजति । विलिप्त केवि सेविजति ।
 मज नैये हें उपपत्ती । इया चि लागि ॥ ४९ ॥

**न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
 यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥**

ऐसें अर्जुनु तियें अवसरीं । ह्मणे कृष्णा अवधारीं ।
 पारि ते मना नैये चि मुरारी । आइकौनियां ॥ ५० ॥

हैं जाणौनि पार्थु भियाला । मग पुनरपि बोलों लामला ।
 दे३० चित्त कां या बोला । देति चि ना ॥ ५१ ॥
 यहविं माझां चित्ति जें होंतें । मीं विचारुनि बोलिलां येथें ।
 परि नीकें काय यया परौतें । तें तुहीं चि जाणा ॥ ५२ ॥
 पै वीरुं जेयांसि आइकिजे । आणि इं बोलिं चि प्राणु सांडिजे ।
 ते हे येथ संग्रामुव्याजें । उभे आहाति ॥ ५३ ॥
 आतां ऐसेयांतें हों परि वधावें । किं अग्हेरुनि वेगिं निगावें ।
 एया दोहिं माजि काय करावें । तें नेणों आहीं ॥ ५४ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः ।

पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे ।

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नं ॥ ७ ॥

आह्वां काय उचित । तें पल्हातां न स्फुरे येथ ।
 जें मोहें येणें चित्त । व्याकुल माझें ॥ ५५ ॥
 तिमिरावरुद्ध जैसें । दृष्टिचें तेज भरो ।
 मग पासि असत न दिसे । वस्तुजात ॥ ५६ ॥
 देवा तैसें मज जालें । जें मन हें भ्रांती प्रसिलें ।
 आतां हित काये आपुलें । तें हिं नेणें ॥ ५७ ॥
 तारि कृष्णा तुवां जाणावें । नीकें तें आह्वां सांघावें ।
 जें सखा सर्वस्व आघवें । आह्वासि तूं ॥ ५८ ॥
 तुं गुरु बंधु पिता । तूं आमची इष्टदेवता ।
 तूं चि सदा रक्षिता । आपदीं आमतें ॥ ५९ ॥
 जैसें शिष्यातें गुरु । सर्वथा नैये अब्हेरुं ।
 कां सरितातें सागरु । ल्यजी केवि ॥ ६० ॥
 नातरि अपत्यातें माये । ३०संढूनि जारि जाये ।

तारि तें कैसेनि जिये । आइकैं कृष्णा ॥ ६१ ॥
 तैसा सर्वी परीं आहासि । देवा तूं चि येकु आहासि ।
 आणि बोलिलें जरि न मनिसि । मागील माझे ॥ ६२ ॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणां ।
 अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यं ॥ ८ ॥

तारि उचित काइ आहां । जें व्यभिचरे ना धर्मा ।
 तें झडकारि पुरुषोत्तमा । सांघै आतां ॥ ६३ ॥
 हें सकल कुल. देखौनि । जो शोकु उपनला असे मनीं ।
 तो तूझे वाक्य वांचूनि । न जीपें आणिकें ॥ ६४ ॥
 एथ पृथ्वीतल आपुलें होइल । महेंद्रपद ही पाविजैल ।
 पारि दुःख हें न जिपैल । मानसिचें ॥ ६५ ॥
 जैसां सर्वथा बीजें आहललीं । सुक्षेत्रि जन्हीं पेरिलिं ।
 तन्हीं न विरुढती चि सिंचिलिं । भलेतैसीं ॥ ६६ ॥
 नातरि आयुष्य पुरलें आहे । तरि उखदिं हिं काहिं नव्हे ।
 तेथ येक चि उपेगा जाये । परमामृत ॥ ६७ ॥
 तैसें राज्यभोगसमृद्धी । उज्जीवन नव्हे इये बुद्धी ।
 येथ जीवाला कृपानिधी । कारुण्य तूजें ॥ ६८ ॥
 ऐसें अर्जुनु तेथ बोलिला । जवं क्षणु येकु भ्रांती सांडिला ।
 पुनरपि व्यापिला । ऊर्मि तेणें ॥ ६९ ॥
 मज पांतां ऊर्मि नोहे । हें अनारिसें गमत आहे ।
 तो ग्रसिला महामोहें । कालसर्पें ॥ ७० ॥
 सुवर्महृदयकल्हारीं । कारुण्यवेलेचां भरीं ।
 लागला ह्यणौनि लाहरी । भांजे चि ना ॥ ७१ ॥
 हें जाणौनि जैसा प्रौढी । जो दृष्टीसत्रें चि विष फेडी ।
 तो धावेया हरिगारुडी । पातला कां ॥ ७२ ॥

तैसिया पांडुकुमरा व्याकुला । मिरवत असे कृष्णु जवला ।
 जो कृपावसें अवलीला । रक्षैल आतां ॥ ७३ ॥
 ह्यणौनि तो पार्थु । मोहफणिप्रसितु ।
 भियां ह्यणितला हा हेतु । जाणौनियां ॥ ७४ ॥
 मग देखां तेथ फाल्गुनु । घेतला असे भ्रांती कवल्लुनु ।
 जैसा घनपटलीं भानु । आक्षादिजे ॥ ७५ ॥
 तिया परीं धनुर्दरु । जाला असे दुःखें जर्जरु ।
 जैसा ग्रीष्मकालीं गिरिवरु । वणवला कां ॥ ७६ ॥
 ह्यणौनि साहाजें सुनीलु । येरु कृपामृतें सजलु ।
 तो बोलला असे गोपालु । महामेघु ॥ ७७ ॥
 तेथ मुदर्शनाची दीप्ति । ते चि विद्युत् जैसी झल्लकती ।
 गंभीर वाचा ते आइती । गर्जनेची ॥ ७८ ॥
 आतां तो उदारु कैसा वरिषैल । जेणें अर्जुनाचलु निवैल ।
 मग नवी विरुढि फूटैल । उन्मेषाची ॥ ७९ ॥
 ते चि कथा आइकां । मनाचिया आराणुका ।
 ज्ञानदेउ ह्यणे देखां । निवृत्तिदासु ॥ ८० ॥

संजय उवाच ॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।

न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

ऐसें संजयो असे सांघतु । ह्यणे राया तो पार्थु ।
 पुनरपि शोकाकुलितु । काये बोले ॥ ८१ ॥
 आइकें सखेदु ह्यणे कृष्णातें । आतां नाळवावें तुझीं मातें ।
 मां सर्वथा न जुझे एथें । भरवसेनि ॥ ८२ ॥
 ऐसें एकी हेला बोलिला । मग मौन करुनु राहिला ।
 तेथ कृष्णु विस्मो पातला । देखौनि तेयातें ॥ ८३ ॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोहभयोर्मध्ये विद्योदंतमिदं वचः ॥ १० ॥

मग आपुलां चित्तिं ह्मणे । एथ हें आदारिल्लें काय येणें ।
अर्जुनु सर्वथा काहिं नेणें । काय कीजे ॥ ८४ ॥
हा उमजे आतां कवणी परी । कैसेनि धीरु स्वीकरी ।
जैसें प्राहाते पांचाखरी । अनुमानी कां ॥ ८५ ॥
नातार असाध्य देखौनि व्याधि । वैद्य सूची निरवधी ।
अमृतासारिखी उ०वधी । निर्वाणिची ॥ ८६ ॥
तैसें विवरीतु असे अनंतु । तेयां दोन्हीं सैन्यां आंतु ।
जेया परीं पार्थु । भ्रांति सांडी ॥ ८७ ॥
तें कारण मनीं धरिल्लें । मग सरोख बोलों आदारिल्लें ।
जैसें मातेचां कोपीं थोकलें । खेह आथि ॥ ८८ ॥
कां ओषधाचां कडवटपणीं । जैसी अमृताची पुरवणी ।
ते आहाच न दिसे परगुणीं । प्रकट होये ॥ ८९ ॥
तैसीं वरि पांतां उदासें । आंतु तारि अति सुरसें ।
तिथें वाक्यें हृषीकेशें । बोलों आदारिल्लें ॥ ९० ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः ॥ ११ ॥

मग अर्जुनातें ह्मणितलें । आहीं आजि हें नवल देखिल्लें ।
जें तुआं एथ आदारिल्लें । माझारि चिं ॥ ९१ ॥
तूं जाणता जरि ह्मणिपसी । तारि नेणिवेतें न संडिसी ।
आणि सिखौं ह्मणों तारि बोलसी । तूं चि बहुत ॥ ९२ ॥
जात्यथा लागें पिसें । मग ते सैरा धांवें जैसें ।
तूखें सिहाणेपणं तैसें । दीसतसे ॥ ९३ ॥

तू आपणपें तारि नेणसि । परि यां कौरवांतें शोचुं पाहासि ।
 हा बहुत विस्मयो आह्मांसि । पुडुतीं पुडुतीं ॥ ९४ ॥
 तारि सांघ पां अर्जुना । तुजपासौनि स्थिति त्रिभुवना ।
 हे आदि विश्वरचना । तें लटिकें काइ ॥ ९५ ॥
 एथ समर्थु एक आधि । तेयापासौनि भूतें होति ।
 तारि हें वायां चि काइ बोलति । जगामाझि ॥ ९६ ॥
 हो काज सांप्रतें जालें । जें हें जन्मे तुआं श्रुजिलें ।
 आणि नाशु यावें नाशिलें । विचारि पां ॥ ९७ ॥
 तू भ्रमलेपणें अहंकृती । ययां घातु न धरिसि चित्ति ।
 तारि सांघै काइ हे होंती । चिरंतन ॥ ९८ ॥
 किं तू एकु वधिता । आणि सकल लोकु हा मरता ।
 ऐसी भ्रांति झनें चित्ता । येयों देंसी ॥ ९९ ॥
 हें अनादिसिद्ध आघवें । होंत जात स्वभावें ।
 तारि तुवां कां शोचावें । सांघै मज ॥ १०० ॥
 परि मूर्खपणें नेणसि । न चिंतावें तें चितिसि ।
 आणि तू चि नीति सांघसि । आह्वाप्रति ॥ १ ॥
 देखैं विवेकियें जे होति । ते दोहींतें हीं न शोचिति ।
 जें होये जाये हे भ्रांति । हणौनिया ॥ २ ॥

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥

अर्जुना सांघैन आइक । एथ आह्मीं तुझीं देख ।
 आणि हे भूपति अशेष । आदिकरुनि ॥ ३ ॥
 नित्यता ऐसे चि असौनि । कां निश्चित क्षया जाउनि ।
 इये भ्रांती वेगळी करुनि । दोन्ही नाहीं ॥ ४ ॥
 हें उपजे आणि नाशे । तें मायामय दीसें ।

यन्हवि तत्वता वस्तु असे । अविनाश चि ॥ ५ ॥
 जैसें पवनें तोय हालवळें । आणि तरंगाकार जालें ।
 तरि कवण कें जन्मलें । ह्यणों तेथ ॥ ६ ॥
 तें चि वायुचें स्फुरण ठेलें । आणि उदक साहाजें सपाटलें ।
 तरि काइ आतां निमालें । विचारि पां ॥ ७ ॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
 तथा देहान्तरप्राप्तिर्धौरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

आइकें शरीर तरि एक । परि वयसा भेद अनेक ।
 हें प्रत्यक्ष चि देख । प्रमाण तूं ॥ ८ ॥
 एथ कौमारत्व दीसे । मग तारुण्यें तें भ्रंशे ।
 परि देह चि न नशे । एकासवें ॥ ९ ॥
 तैसिं चैतन्याचां ठांडं । इयें शरीरांतरें पाइं ।
 ऐसें जाणे तेया नाहीं । व्यामोहदुःख ॥ ११० ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
 आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥

येथ नेणावया हें चि कारण । जें इंद्रियां अधीनपण ।
 तिहिं आकलिजे अंतष्करण । ह्यणौनि भ्रमें ॥ ११ ॥
 इंद्रियें विषय सेविति । तेथ हर्ष शोक हे उपजति ।
 ते आंतर आण्णविति । संगें एणें ॥ १२ ॥
 जें ययां विषयांचां ठांडं । एकनिष्ठता नाहीं ।
 एथ दुःख आणि काहीं । सुख ही दीसे ॥ १३ ॥
 देखें हे शब्दाची व्याप्ति । जें निंदा आणि स्तुति ।
 तेथ द्वेषाद्वेष उपजति । श्रवणद्वारें ॥ १४ ॥
 मृदु आणि कठिन । हे स्पर्शाचे दोन्हीं गुण ।
 जे वपुचेनि संगें कारण । संतोखखेदा ॥ १५ ॥

भयासुर आणि सुखेख । हें रूपाचें स्वरूप देख ।
 जें उपजवी सुखदुःख । नेत्रद्वारे ॥ १६ ॥
 सुगंधु आणि दुर्गंधु । हा परिमळाचा भेदु ।
 जो प्राणसंगें विषादु । तोषु देता ॥ १७ ॥
 तैसाचि द्विविधु रसु । उपजवी प्रीति त्रासु ।
 ह्यणौनि हा अपभ्रंशु । विषयसंगु ॥ १८ ॥
 देखैं इंद्रियां आधीन होइजे । तरि शीतोष्णातें पाविजे ।
 आणि सुखदुःखीं आकलिजे । आपणपें ॥ १९ ॥
 एयां विषयांवांचूनि काहीं । आणिक सर्वथा रम्य नाहीं ।
 ऐसा स्वभाउ चि पाहीं । इंद्रियांचा ॥ २० ॥
 हे विषय तरि कैसे । रोहिणीचें जल जैसे ।
 कां स्वप्निचा आभासे । भद्रजाति ॥ २१ ॥
 देखैं अनित्य तिया परीं । ह्यणौनि तूं अन्हेरी ।
 हा सर्वथा संगु न करीं । धनुर्धरा ॥ २२ ॥

यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।

समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

हे विषय जेया नाकळीति । तेया सुखदुःखें न पवति ।
 आणि गर्भवाससंगति । नाहिं तेया ॥ २३ ॥
 तो नित्यरूपु पार्था । उल्लखात्रा सर्वथा ।
 जो यां इंद्रियार्था । नाकले चि ॥ २४ ॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।

उभयोरपि दृष्टोऽतस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

आतां अर्जुना आणिक एक । सांघैन मी आइक ।
 जें विचारपर लोक । उल्लखति ॥ २५ ॥

एया उपाधिमाञ्जि गुप्त । चैतन्य असे सर्वगत ।
 तें तत्वज्ञ संत । स्वीकरीति ॥ २६ ॥
 सलीलीं पय जैसें । एक होउनि मिनलें असे ।
 पारि निवडूनि राजहंसें । वेगलें कीजे ॥ २७ ॥
 कां अभिमुखें कीडाल । तोडूनियां चोखाल ।
 निवडीति केवल । बुद्धिमंत ॥ २८ ॥
 ना तारि जाणिवेचिया आयणी । करितां दधिकडसणी ।
 मग नवनीत निर्वाणी । दीसे जैसें ॥ २९ ॥
 कां भूस बीज एकावट । उपणितां राहे घणवट ।
 तेथ उडे तें फलकट । जाणों आलें ॥ ३० ॥
 तैसें विचारिती निरसलें । तें प्रपंचूनि साहजें सांडलें ।
 मग तत्वता तत्व उरलें । ज्ञानियासि ॥ ३१ ॥
 ह्यणौनि अनित्याचां ठांड । तेया आस्तिकिबुद्धि नाही ।
 जें निष्कर्षु दोहीं । देखिला असे ॥ ३२ ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।

विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

देखें सारासार विचारितां । भ्रांति ते नाही असारता ।
 सारे सार तें स्वभावता । नित्य जाणें ॥ ३३ ॥
 हा लोकत्रयाकार । तो जेयाचा विस्तार ।
 जेथ नामवर्णुआकार । चिन्ह नाहिं ॥ ३४ ॥
 जो सर्वदा सर्वगत । जन्मक्षयां अतीतु ।
 तेया केल्यां हीं घातु । कदा न्हेवे ॥ ३५ ॥

अंतर्वत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।

अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्बन्धस्व भारत ॥ १८ ॥

आणि शरीरजात आवेवें । नाशवंत स्वभावे ।
हृणानि तुवां जूझावें । पांडुकुमरा ॥ ३६ ॥

य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥ १९ ॥

तूं धरूनि देहाभिमानातें । आणि दांढि सूनि एया शरीरातें ।
मी वधिता हे मरते । हणतु आहासि ॥ ३७ ॥
अर्जुना हें नेणसि । जरि तत्वता विचारिसि ।
तरि वधिता तूं न्हवसि । हे वध्य न्हयति ॥ ३८ ॥
जैसें स्वप्नामाझि देखिजे । तें स्वप्नीं चि साच आपजे ।
मग चेटनियां पाहिजे । तव काहीं च नाहिं ॥ ३९ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्

नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो

न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

तैसी हे माया । तूं भ्रमतु आहासि वायां ।
शखें हाणितलेयां छाया । आंगीं न रुपे ॥ १४० ॥
कां पूर्णु कुंभु उलंडळा । तेथ विवाकारु चि अंशला ।
पारि भानु नाही नाशला । तेयासवे ॥ ४१ ॥
ना तरि मठीं आकाश जैसें । मठाकृती आवरलें असे ।
तो चि भंगलेयां आपसें । स्वरूप चि ॥ ४२ ॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।

कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति कम् ॥ २१ ॥

तैसें शरीराचां लोपीं । सर्वथा नाशु नाही स्वरूपीं ।

हृणानि तुं हें नारोपीं । आति वापा ॥ ४३ ॥

घासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥

जैसी जीणें बल्लें सांडिजे । मग नूतनें आणिकें वेढिजे ।
तैसें देहांतरातें स्वीकारिजे । चैतन्यनाथें ॥ ४४ ॥

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥

हा अनादि नित्य सिद्धु । निरुपाधि विशुद्धु ।

ह्यगौनि शस्त्रादिकिं छेदु । न घडे एया ॥ ४५ ॥

हा प्रलयोदके नापूत्रे । अग्निदाहो न संभवे ।

एथ महाशोषु न प्रभवे । मारुताचा ॥ ४६ ॥

हा तर्काचिये दृष्टी । गांचरु नव्हे किराटी ।

ध्यान येयाचिये भेटी । उत्कंठा वाहे ॥ ४७ ॥

हा सदा दुर्लभु मना । आपु नव्हे साधना ।

निःसीमु हा अर्जुना । पुरुषोत्तमु ॥ ४८ ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव व ।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २३ ॥

हा गुणत्रयरहितु । व्यक्तीसि अतीतु ।

अनादि अविकृतु । सर्वरूपु ॥ ४९ ॥

अर्जुना हा नित्यु । अचलु हा शाश्वतु ।

सर्वत्र सदोदितु । परिपूर्णु हा ॥ १५० ॥

अव्यक्तोऽयमचित्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।

तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

अर्जुना ऐसा जाणावा । हा सकलात्मकु देखावा ।

मग साहाजे शोक आववा । हरंला तूझा ॥ ५१ ॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।

तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

अथवा ऐसा नेणसी । तूं अंतवंत चि हें मानिसि ।

तुन्ही शोचूं न पवामि । पांडुकुमग ॥ ५२ ॥

जें आदि स्थिति अंतु । हा निरंतर असे नित्यु ।
 जैसा प्रवाहो अनस्यूतु । गंगाजलाचा ॥ ५३ ॥
 तें आदि नाही खंडलें । समुद्रि तरि असे मीनलें ।
 आणि जात चि मध्ये उरलें । दीसे जैसे ॥ ५४ ॥
 इयें तीन्हीं तियापरीं । सरिसिं चि सदा अवधारीं ।
 भूतांसि कव्हर्णा अवसरीं । टाकति ना ॥ ५५ ॥
 ह्यणौनि हें आघवें । एथ नटगे तुज शोचावें ।
 जे स्थिति चि हे स्वभावें । अनादि ऐसी ॥ ५६ ॥
 ना तरि हें अर्जुना । नये चि तूझेया मना ।
 जें देखौनि लोकु अधिना । जन्मक्षयां ॥ ५७ ॥
 तन्है एथ काहीं । तुज शोकासि कारण नाहीं ।
 जें जन्म मृत्यु हे पाहीं । अपरिहर ॥ ५८ ॥
 जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
 तस्मादपरिहायेंऽथे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥
 उपजे तें नाशे । नाशलें पुनरपि दीसे ।
 हें घटिकायंत्र तैसें । परिभ्रमे ॥ ५९ ॥
 ना तरि उदो अस्तु आपसे । अखंडित होति जैसे ।
 हें जन्ममरण तैसें । अनिवार जगीं ॥ १६० ॥
 महाप्रलयअवसरें । हें त्रैकोक्य ही संहरे ।
 ह्यणौनि हा न परिहरे । आदिअंतु ॥ ६१ ॥
 तू जरि हें ऐसें मानिसि । तरि खेदु कां करिसि ।
 काइ जाणतू चि नेणसि । धनुर्धरा ॥ ६२ ॥
 अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
 अव्यक्तानिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥
 एथ आणिक ही एक पार्था । तुज बहुतां परीं पल्हांतीं ।
 दुःख करावेया सर्वथा । विषो नाही ॥ ६३ ॥

जें समस्तें इयें भूते । जन्मा आदीं अमूर्ते ।
 मग पातलीं व्यक्तितें । जन्मलेयां ॥ ६४ ॥
 तियें क्षया जेथ जांति । तेथ निभ्रांत आनें नव्हति ।
 देखें पूर्वस्थिति चि एंति । आपुलिये ॥ ६५ ॥
 परि मध्ये जें प्रतिभासे । तें निद्रिता स्वप्न जैसें ।
 तैसा आकार हा मायावशें । स्वस्वरूपीं ॥ ६६ ॥
 ना तारि पवनें स्पर्शिलें नीर । पडिहासे तरंगाकार ।
 कां परापेक्षा अलंकार । व्यक्तिकनकिं ॥ ६७ ॥
 तैसें सकळ हें मूर्त । जाण पां मायाकारित ।
 जैसें आकाशीं विवत । अभ्रपट्ट ॥ ६८ ॥
 ऐसें आदी चि जें नाहीं । तेयालागि रुदसी काइ ।
 तूं अवीट हें पाहीं । चैतन्य येक ॥ ६९ ॥

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्भूति तथैव चान्यः ।

आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

जेयाची आर्त्ती चि भोगित । विषडं त्यजिले संत ।
 जेयालागि विरक्त । वनवासिये ॥ १७० ॥
 दृष्टि सूनि जेयातें । ब्रह्मचर्यादि व्रतें ।
 मुनीश्वर तपातें । आचरिति ॥ ७१ ॥
 एकां गुगानुवादु करितां । उभरति होउनि चित्ता ।
 निरवधी तळीनता । निरंतर ॥ ७२ ॥
 एक आंतरां निश्चळ । जे निहाळोति केवळ ।
 विसरले सकळ । संसारजात ॥ ७३ ॥
 एक आंईकतां चि निवाळे । ते देहभावो सांडिले ।
 एक अनुभवे पातले । तद्रूपता ॥ ७४ ॥
 जैसे सारिता ओव समस्त । समुद्रामात्रि मिलत ।
 पारि मावतें न समात । परतले नाहीं ॥ ७५ ॥

तैसिया योगीश्वरांचिया मती । मिल्णोसमें दुणावटती ।
परि जें विचारूनि पुनरावृत्ती । भजती चि ना ॥ ७६ ॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।

तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

तें सर्वत्र सर्वदेही । जेया करितां ही घातु नाही ।

तें विश्वात्मकु तूं पाहीं । चैतन्य एक ॥ ७७ ॥

ययाचेनि चि स्वभावे । हें होत जांत आवे ।

तरि सावें काइ शोचावें । एथ तुयां ॥ ७८ ॥

यन्हवि तन्हीं पार्था । तुज कां नेणों न गमे चित्ता ।

परि कोडाल हें शोचितां । बहुती परीं ॥ ७९ ॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि ।

धर्म्याद्धे युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥

तूं अगुडें कां न विचारिसि । काइ हें चितितु आहासि ।

स्वधर्मु तो विसरलासि । तरावें जेणें ॥ १८० ॥

ण्यां कौरवां भलतें जालें । अथवा तुज चि काहीं पातलें ।

कां युग चि हें बुडालें । जन्हें एथ ॥ ८१ ॥

तन्हीं स्वधर्मु एकु आहे । तो सर्वथा त्याजु नव्हे ।

मग तरिजळ काइ पाहें । कृपालुपणें ॥ ८२ ॥

अर्जुना तूजें चित्त । जन्हें जालें द्रविभूत ।

तन्हीं हें अनुचिन । संप्रामसमइ ॥ ८३ ॥

गोक्षीर जन्हें जालें । तन्हीं पध्यासि नाही बोलिलें ।

ऐसेनि द्वि विष नोहे सुडलें । देइजे ज्वरि ॥ ८४ ॥

तैसें आनां आन करितां । नाशु होईल हिता ।

हणौनि तूं आतां । सावधु होइ ॥ ८५ ॥

याया चि व्याकुळ काइ । आपुला निजधर्मु तूं पाहीं ।

जे आचरितां बाधु नाही । कव्हणा काळीं ॥ ८६ ॥

जैसे मार्गें चि चालतां । अपावो न पवे सर्वथा ।
 कां दीपाधरें वृत्ततां । नाडलिजे ॥ ८७ ॥
 निया परीं पार्था । स्वधमें राहटतां ।
 सकल कामपूर्णता । साहाजें होये ॥ ८८ ॥
 ह्यर्णोनि तुं पाहीं । क्षत्रियां आणिक काहीं ।
 संप्रामु वांचूनि नाहीं । उचित जाणें ॥ ८९ ॥
 निष्कपटां होआवें । उशिना घाईं ज्ञावें ।
 हें असो काइ सांघावें । प्रत्यक्षावरि ॥ १९० ॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥
 अर्जुना देखें जज्ञ आतांचें । हें हों काज देव तुमचें ।
 किं निधान सकल धर्माचें । प्रकटले असे ॥ ९१ ॥
 हा संप्रामु काइ ह्यणिये । कीं स्वर्गु चि येणें रूपें ।
 मूर्तु कां प्रतापें । उदो केला ॥ ९२ ॥
 ना तरि गुणाचेनि परिकरें । आर्तिचेनि पडिभरें ।
 हे कीर्ति चि स्वयंवरें । आली तुज ॥ ९३ ॥
 क्षत्रि बहुत पुण्य कीजे । नें जज्ञ ऐमें लाहिजे ।
 जैसें मार्गें जातां आडलिजे । चिंतामणी ॥ ९४ ॥
 ना तरि जांभैया पमरे मुख । तेथ अवचटें पडे पीयूष ।
 तैसा हा संप्रामु देख । पातला असे ॥ ९५ ॥

अथ चेत्त्वामिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।

ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्त्यसि ॥ ३३ ॥

आतां ऐसा अव्हेरिजे । मग नाथिलें शोचूं त्रैसिजे ।
 तरि आपण आहाणां नोहिजे । आपणपेयां ॥ ९६ ॥
 पूर्वजांचें जोडिलें । आपण चि होये धाडिलें ।
 जारें आजि शत्रु मांडिलें । र्णां इये ॥ ९७ ॥

असति कीर्ति जाइल । जग चि अभिशाप देइल ।
 आणि गिवर्सात पावर्ताल । महादोष ॥ ९८ ॥
 जैसी भातरेंहीन वनिता । उपहति पावे सर्वथा ।
 मग तैसी दशा जीविता । स्वधमेंविण ॥ ९९ ॥
 ना तरि अरण्यां शव सांडिजे । तें चौहोरि गिधि विदारिजे ।
 तैसें स्वधमेंहीन अभिभविजे । महादोषीं ॥ २०० ॥
 हाणानि हा सांडिसील । तरि पापा वरपडा होसील ।
 आणि अपयश तें न वचैल । कल्पान्तुवेन्हीं ॥ १ ॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।

संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

जागते न तवं चि जियावें । जवं अपकीर्ति आंग न पवे ।
 आणि सांघपां केवि निघावें । ऐशानियां ॥ २ ॥
 तूं निर्मळरु सदयता । एथ निघसी किर माघाता ।
 परि तें गती समस्तां । नैए येया ॥ ३ ॥
 हे चहुंकडूनि कवलितील । बाण वरि घेंतील ।
 एथ पार्था न मुटिजेंल । कृपालुपणें ॥ ४ ॥
 ऐसेन हीं प्राणसंकटें । जरि विपायें निगणें घटें ।
 तरि तें जियालें हीं अवटें । मरणाहूनि ॥ ५ ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वां महारथाः ।

येयां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥

तूं आणिक एक न विचारिसि । एथ संभ्रमें जूझों आलासि ।
 आणि सकणवपणें निघालासि । माघाता जरि ॥ ६ ॥
 तरि तूजें तें अर्जुना । एयां वैरियां दुर्जनां ।
 कां प्रत्यया येईल मना । सांघें मज ॥ ७ ॥
 हे क्षणती गेला रे गेला । अर्जुनु आह्लासि भियाला ।
 हा सांघें वोलु उरला । नीका काइ ॥ ८ ॥

लोक सायासें करूनि बहुते । कां वेचाति आपुलि जीवितें ।
 परि वाढवीनि कीर्तितें । धनुर्धरा ॥ ९ ॥
 ते तुज अनायासें । अनकलीत जोडली असे ।
 हें अद्वितीय जैसें । गगन होये ॥ २१० ॥
 तैसी कीर्ति निःसीम । तूझां ठांडं निरूपम ।
 तूझे गुण उत्तम । तिहिं लोकि ॥ ११ ॥
 दिगंतीचे भूपति । भाट होउनि वाखाणिति ।
 जे आयकिलेया दचकति । कृतांतादिक ॥ १२ ॥
 ऐसी महिमा घणवट । गंगा तैसी चोखट ।
 जिया देखो जगीं मुभट । जाणते जाले ॥ १३ ॥
 तें पौरुष तूझे अद्भुत । आइकौनिया हे समस्त ।
 जाले आधि विरक्त । जीवितेसीं ॥ १४ ॥
 जैसे सिंहाचिया हाका । युगांत होये मद्रमुखा ।
 तैसा कौरवां एयां अशेयां । धाकु तूझा ॥ १५ ॥
 जैसे पर्वत वज्रातें । ना तरि सर्प गरुडातें ।
 तैसे अर्जुना हे तूतें । मानिति सदा ॥ १६ ॥
 तें अगाधपण जाइल । मग हांणा३० आंगा येईल ।
 जरि माघांता निघसांल । न जुझतू चि ॥ १७ ॥

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यंति तवाहिताः ।

निंदंतस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं तु किम् ॥ ३६ ॥

आणि हे पलतां पळों नेंदिति । धरूनि अवकला करीति ।
 न गर्णांत कूटि बोलति । आइकतां तुज ॥ १८ ॥
 मग ते व्हालि हियें फूटावें । तें आतां लांठणें का न जुझावें ।
 हे जींतले तरि भोगावें । पृथ्वांतल ॥ १९ ॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कुननिश्चयः ॥ ३७ ॥

ना तरि रणीं एथ । जूझतां वेचलें जीवीत ।
 तरि स्वर्गमुख अनकलित । पावसील ॥ २२० ॥
 हणौनि इथे गोटी । विचारु न कीजे किराटी ।
 आतां धनुष घेउनि उठीं । जूझें वेगां ॥ २१ ॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥
 देखें स्वधर्मु आचरतां । दोषु नाशे असता ।
 तुज हे भ्रांति कवणि चित्ता । एथ पातकाची ॥ २२ ॥
 सांधें घूवें चि काइ बुडिजे । किं मार्गे जातां आडलिजे ।
 परि विपायें चालों नेणिजे । तरि तें हीं घडे ॥ २३ ॥
 अमृतें चि मरिजे । जरि विषेंसि सेविजे ।
 तंसा स्वधर्मे दोषु पाविजे । हेतुकपणें ॥ २४ ॥
 हणौनि तुज पार्था । हेतु सांडूनि सर्वथा ।
 क्षात्रवृत्ती जूझतां । पाप नाहीं ॥ २५ ॥
 मुखि संतोषा नयावें । दुःखि विषादा न भजावें ।
 आणि लाभालाभ न धरावें । मनामाझि ॥ २६ ॥
 एथ विजयपण होईल । कां सर्वथा देह जाईल ।
 हें आदिं चि काहिं पुढेंल । चिंतावें ना ॥ २७ ॥
 आपण येया उचिता । स्वधर्मातें चि राहटतां ।
 जें पावे तें निवांता । साउनि जावें ॥ २८ ॥
 ऐसेया मनें होआवें । तरि दोषु न घडे स्वभावें ।
 हणौनि आतां जूझावें । निभ्रांत तुवां ॥ २९ ॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धियांगे त्विमां शृणु ।

बुद्ध्या युक्तो यथा पार्थ कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥
 हे सांख्यस्थिति मुकुलित । सांघितली तुज येथ ।
 आतां बुद्धि योगिं विस्तृत । अवधारि पां ॥ २३० ॥

जिया बुद्धि युक्तां । जालेयां पार्था ।
कर्मबंधु सर्वथा । बाधुं न पत्रे ॥ ३१ ॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

जैसें वज्रकवच लेइजे । मग शस्त्राचा वरिषा३० साहिजे ।
परि जैतेंसि उरिजे । अचुंबितां ॥ ३२ ॥
तैसें इहिक तरि न नशे । आणि मोक्षु तो उरला असे ।
जेथ पूर्वानुक्रम दीसे । चौखालत ॥ ३३ ॥
कर्माधारें तरि राहाटिजे । परि कर्मफल न भोगिजे ।
जैसा मांत्रु न बाधिजे । भूतबाधा ॥ ३४ ॥
तिया परीं जे बुद्धि । आपु जालेयां निरवधी ।
हा असता चि उपाधि । कळं न शके ॥ ३५ ॥
जेथ न संचरे पाप । जें सूक्ष्म अति निष्कंप ।
गुणत्रयादि लेप । जेथ नाहीं ॥ ३६ ॥
अर्जुना जें पुण्यवशें । जरि अल्प चि हृदइं प्रकाशे ।
तारि अशेष हें नाशे । संसारभय ॥ ३७ ॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।

बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्ध्योऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

जैसी दीपकालिका धाकुटी । परि बहुता तेजातें प्रकटी ।
तैसी सद्बुद्धि हे थेंकुटी । ह्यणों नये ॥ ३८ ॥
पार्था बहुतीं परीं । अपेक्षिजे सदा मुरीं ।
जे दुर्लभ चराचरीं । सद्वासना ॥ ३९ ॥
जैसा न जोडे परिमु । आणिकासारिखा बहुवसु ।
कां अमृताचा लेमु । दैवें पाविजे ॥ २४० ॥
तैसी दुर्लभ हे बुद्धि । जिये परमात्मा चि अवधि ।
जैसा गंगेसि कां उदधि । निरंतर ॥ ४१ ॥

तैसा ईश्वर वांचूनि काहीं । जिये आणिकि लागि नाहिं ।
तेथ एकी चि बुद्धि पाहीं । अर्जुना जगीं ॥ ४२ ॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।

वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तौति वादिनः ॥ ४२ ॥

एरि ते दुर्मति । जे बहुधा असे विकरति ।
जेथ निरंतर रमति । अविधेकिये ॥ ४३ ॥
ह्यणौनि तेयां पार्था । स्वर्गसंसारीं आस्था ।
आत्मसुख सर्वथा । दृष्ट नाहीं ॥ ४४ ॥
वेदाधारे बोलति । केवल कर्म प्रतिष्ठिति ।
पारं कर्मफलीं आसक्ति । दाउनियां ॥ ४५ ॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥

ह्यणति संसारीं जन्मिजे । यज्ञादि यजन कीजे ।
मग स्वर्गसुख भोगिजे । मनोहर ॥ ४६ ॥
एथ हें वांचूनि काहीं । आणिक सर्वथा सुलभ नाहीं ।
ऐसें अर्जुना बोलति पाहीं । दुर्बुद्धि ते ॥ ४७ ॥
देखें मना अभिभूत । होउनि कर्म आचरत ।
केवल भोगीं चित्त । देउनिया ॥ ४८ ॥
क्रियाविशेषें बहुते । न लेपीति विधितें ।
निपुण होउनि धर्मातें । अनुष्ठिति ॥ ४९ ॥
परि एक चि कूड करीति । जे स्वर्गकामु मनीं धरिति ।
यज्ञपुरुष चूकति । भोक्ता जो ॥ २५० ॥
जैसा कापुराचा राशि कीजे । मग अग्नि लाउनि जालिजे ।
कां मिष्टान्नां संचरिजे । कालकूट ॥ ५१ ॥
देखें अमृतकुंभु जोडला । तो पायें ह्यणौनि उलडिला ।
तैसा नाशीति धर्मुं निफनला । हेतुकपणें ॥ ५२ ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विश्रीयते ॥ ४४ ॥

सायासं पुण्य आर्जिजे । मग संसार कां अपेक्षिजे ।

परि नेणति ते काइ कीजे । अप्राप्त देखै ॥ ५३ ॥

जैसी रांशवणि रसोय नीकी । करूनियां मोले वीकी ।

तैसा भोगासाटीं अविबेकी । धाडिति धर्म ॥ ५४ ॥

हणौनि हे पार्था । दुर्बुद्धि देख सर्वथा ।

तेयां वेदवादरतां । मनी वसे ॥ ५५ ॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥

तिहिं गुणी आवृत । हे वेद जाणें निभ्रांत ।

हणौनि उपनियदादि समस्त । सात्त्विक ते ॥ ५६ ॥

एर रजतमात्मक । जेथ निरूपिजे कर्मादिक ।

जें केवल स्वर्गसूचक । धनुर्द्वरा ॥ ५७ ॥

हणौनि तूं हें जाण । हें मुखदुःखानां चि कारण ।

एथ झनं अंतष्करण । रिगों दैसि ॥ ५८ ॥

तूं गुणत्रयातें अन्हरीं । मीं माझे हें न करीं ।

एक आत्ममुख आंतरां । विसंभ ना ॥ ५९ ॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।

तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥

जन्हें वेदें बहुत बोलिलें । विविध भेद सूचिले ।

तन्हीं आपण हित आपुलें । तें चि घेपे ॥ २६० ॥

जैसैं प्रकटलेयां गभस्ती । अशेष ही मार्ग दीसति ।

तरि तेतुके ही काइ चालिजति । सांघें मज ॥ ६१ ॥

कां उदकमय सकळ । जन्हीं जालें असे महीतळ ।

तन्हीं आपण घेपे केवल । आत्ति चि जोगें ॥ ६२ ॥

तैसैं ज्ञानिये जे होंति । ते वेदार्थतैं विचारिति ।
मग अपेक्षीत स्वीकरीति । ससार जें ॥ ६३ ॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

ह्यणौनि आईकैं पार्था । इया चि परीं पल्हातां ।
तुज उचित होये आतां । स्वकर्म हें ॥ ६४ ॥
आह्मीं समस्त ही विचारिलें । तत्रं ऐसैं चि हें मना आलें ।
जें न संडिजे तुआं आपुलें । त्रिहित कर्म ॥ ६५ ॥
परि कर्मफलीं आश न करावी । आणि कुकर्मिं संगति न न्हावी ।
हे सक्रिया चि आचरावी । हेतूविण ॥ ६६ ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥४८॥

तू योगयुक्त होउनि । फलचा संगु सांडुनि ।
मग अर्जुना चित्त देउनि । करि कर्म ॥ ६७ ॥
परि आदरिलें कर्म दें । जन्हीं समासितें न पवे ।
तन्हीं विशेषें तेथ न तोपावें । हें इ नको ॥ ६८ ॥
कां निमित्तें कारणें एकें । तें सिद्धी न वचत ठाके ।
तन्हीं तेथिचेनि अपरितोपें । क्षोभावें ना ॥ ६९ ॥
आचरतां सिद्धी गेलें । तरि काजा चि कीर आलें ।
परि ठेठेया हीं सगुण जालें । ऐसैं चि मानीं ॥ ७० ॥
देखैं जेतुलालें कर्म निफजे । तेतुलालें आदिपुरुषीं जरि अर्पिजे ।
तरि परिपूर्ण तें साहाजे । जालें जाणें ॥ ७१ ॥
आगा संतासंतीं कर्मी । जें सरिसेपण मनोभ्रमीं ।
हे चि योगस्थिति उत्तमीं । प्रसंसिजे ॥ ७२ ॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।

बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥

अर्जुना समत्वं चित्ताचें । तें चि सार जाण योगाचें ।
जेथ मना आणि बुद्धिचें । ऐक्य आधि ॥ ७३ ॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलं ॥ ५० ॥

तो बुद्धियोगु विवरितां । बहुवें पाडें पार्था ।
दीसे हा आरौता । कर्मभागु ॥ ७४ ॥
परि तें चि कर्म आचरिजे । तरी चि हा योगु पात्रिजे ।
जें कर्मशेष साहाजें । योगस्थिति ॥ ७५ ॥
ह्यणौनि बुद्धियोगु सधरु । तेथ अर्जुना होइं थीरु ।
मनें करीं अन्हेरु । फलें हेतुचा ॥ ७६ ॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।

जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयं ॥ ५१ ॥

ह्यणौनि जे बुद्धियोगें ओजले । ते चि पारंगत जाले ।
एहीं उभयबंधीं सांडिलें । पापपुण्यां ॥ ७७ ॥
ते कर्मीं तरि वर्तति । परि कर्मबंधा नाकलति ।
आणि यातायात लोपति । अर्जुना तेयां ॥ ७८ ॥
मग निरामयभरित । पावति पद अच्युत ।
ते बुद्धियोगयुक्त । धनुर्दरा ॥ ७९ ॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥

तूं ऐसा तैं होंसी । जें मोहाते येया सांडिसी ।
आणि वैराग्य मानसीं । संचरैल ॥ २८० ॥
मग निष्कलंक गहन । उपजैल देखैं ज्ञान ।
तेणें निचाड होईल मन । आपैसैं तूझें ॥ ८१ ॥
तेथ आणिक काहीं जाणावें । कां मागिलातें स्मरावें ।
हें अर्जुना आघवें । पारुखैल ॥ ८२ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।

समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

इंद्रियांचिया संगती । जो प्रसर हंतुसे मती ।

ते स्थिर होईल मार्गती । आत्मरूपी ॥ ८३ ॥

समाधिसुखीं केवल । जें बुद्धि होईल निश्चल ।

तें पावसी तूं सकल । योगस्थिति ॥ ८४ ॥

अर्जुन उवाच ॥

स्थितप्रहस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।

स्थितधीः किम्प्रभाषेत किमासीत ब्रजेत किम् ॥ ५४ ॥

तेथ अर्जुनु हणें देवा । हा चि अभिप्रा३० आघवा ।

मी पूसैन आतां सांघावा । कृपानिधि ॥ ८५ ॥

मग अच्युतु हणें मुखें । जें किरीटी तुज नीकें ।

तें पूसै पां उन्मेखें । मनाचेनि ॥ ८६ ॥

एयां बोल्य पाथें । हणितलें सांघा कृष्णातें ।

काइ हणिजे स्थितप्रज्ञातें । ३०लखें केवि ॥ ८७ ॥

आणि स्थिरबुद्धि हणिजे । तो कैसां चिन्हि जाणिजे ।

जो समाधिसुख भुंजे । अखंडितु ॥ ८८ ॥

तो कवणी स्थिती असे । कैसेनि रूपीं विलसे ।

देवा सांघावें हें ऐसें । लक्ष्मीपती ॥ ८९ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।

आत्मन्येवात्माना तुष्टः स्थितप्रहस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

तवं परब्रह्मअवतरणु । पडुणाधिकरणु ।

तो काइ तेथ नारायणु । बोलत असे ॥ २९० ॥

हणें अर्जुना तरि परियसैं । हा अभिलाषु प्रौढु मानसीं ।

जो अंतरा३० स्वमुत्रेंसां । कर्तन असे ॥ ९१ ॥

सर्वदा नित्यतृप्त । तें तरि अंतष्करण भरित ।
 परि विषयांमाक्षि पर्तीत । जेणें संगें कांजे ॥ ९२ ॥
 तो कामु सर्वथा जाये । आत्मतोषीं मनें राहे ।
 तो चि स्थितप्रज्ञ होथे । पुरुषु जाणें ॥ ९३ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
 वीतरागभयक्रोधःस्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

नाना दुःखां प्राप्तीं । जेया उद्वेगु नाहिं चिंत्ति ।
 आणि मुखाचिया आर्त्तीं । अडचिजेना ॥ ९४ ॥
 अर्जुनां तेषांचां ठाईं । कामक्रोध साहाजें नाहिं ।
 आणि भयातें नेणें कहीं । परिपूर्णुं तां ॥ ९५ ॥
 ऐसा जो निरवधी । तो जाण पां स्थिरबुद्धि ।
 तो मुनि उपाधि- । भेदहीनु ॥ ९६ ॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
 नाभिनंदति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

जो सर्वत्र सदा सरिसा । परिपूर्णुं कां चंद्रुं जैसा ।
 अधमोत्तमप्रकाशा । माक्षि न हणें ॥ ९७ ॥
 ऐसीं अविच्छिन्न समता । भूतमात्रां सदयता ।
 आणि पाळटु नाहीं चित्ता । कव्हणीं कार्ळीं ॥ ९८ ॥
 गोमटें काहिं पावे । तरि संतोषें तेषें नाभिभवे ।
 जो उश्वटेनि नांगवे । वियादासि ॥ ९९ ॥
 ऐसा हर्षशोकरहितु । जो आत्मबोधें भरितु ।
 तो जाण पां प्रज्ञायुक्तु । धनुद्धरा ॥ ३०० ॥

यदा संहरते चायं कूर्मो गानीव सर्वशः ।
 इंद्रियाणांन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

आतां अर्जुना आणिक हि एक । सांघैःन आइकें कवतीक ।
 जें विषयातें साधक । त्यजीति नियमं ॥ १ ॥

देखें कूर्माचिया परी । उवाइला अवयव पसरी ।
 ना तरि इछावसें आवरी । आपणपां चि ॥ २ ॥
 तेंसि इंद्रिये आपैतीं होंति । जेयाचें हाणियें कारिति ।
 तेयाची प्रज्ञा जाणें स्थिति । पातली असे ॥ ३ ॥

विषया विनिवर्त्तते निराहारस्य देहिनः ।

रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥ ५९ ॥

श्रोत्रादि इंद्रिये धरिति । परि रसनेसि नियमु न करीति ।
 तेथ सहस्रधा कत्रलिजति । विपइ इहीं ॥ ४ ॥
 जैसी वरिवारि पातवी खुडिजे । आणि मूर्खीं उदक घाळिजे ।
 तरि केंसेनि नाशु निफजे । वृक्षा तेया ॥ ५ ॥
 तो उदकाचेन बळें अधिकें । जैसा आडवेन आंगें फांके ।
 तैसा मानसीं विषो पोखे । रसद्वारे ॥ ६ ॥
 एरा इंद्रियां विखो तूटे । तैसा नियमूं नैये रमु हटें ।
 जें जीवित हें न वटे । एणेंविण ॥ ७ ॥
 मग अर्जुना स्वभावे । हा ही नियमातें पावे ।
 जें परब्रह्म अनुभवे । होउनि जाइजे ॥ ८ ॥
 तें शरीरभाव नाशति । इंद्रिये विषय विसरती ।
 जें सोहंभावप्रतीती । प्रकट होये ॥ ९ ॥
 यन्हावि तन्हें अर्जुना । हें आया नैये साधना ।
 जे राहटताति जतना । निरंतर ॥ ३१० ॥

यततोहापि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः ।

इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥

जे हांतें अभ्यासाची घरटी । यमनियमाची ताटी ।
 जे मनातें यया मूठी । धरुनि असति ॥ ११ ॥
 तेही कांजति कासाविसी । एया इंद्रियांची प्रौढि ऐसी ।
 जैसी मंत्रज्ञातें विवंसी । भूलवी कां ॥ १२ ॥

देखें विषय हे तैसे । पावति ऋद्धिचंनि मासे ।
 मग आकलिति स्पर्शे । इंद्रियांचेन ॥ १३ ॥
 तिये संधी मन जाये । मग अभ्यासीं ठोंटावला ठाये ।
 ऐसें बलिकटपण आहे । इंद्रियांचें ॥ १४ ॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

हणौनि आइकें पार्थी । एयातें निर्दली जो सर्वथा ।
 सर्व विषइं आस्था । सांडूनियां ॥ १५ ॥
 तो चि तूं जाण । योगनिष्ठेसि कारण ।
 जेयाचें विषयें मुखें अंतष्करण । ज्ञांकवे चि ना ॥ १६ ॥
 तो आत्मबोधयुक्तु । होउनि असे संततु ।
 जो मातें हृदया आंतु । विसंभे ना ॥ १७ ॥
 यन्हविं बाहें विषय तरि नाही । परि मानसीं होईल जरि काहीं ।
 तरि साद्यंतू चि हा पाहीं । संसारु असे ॥ १८ ॥
 जैसा कां विषाचा लेमु । घेतलेया होये बहुवमु ।
 मग निभ्रांतु करी नाशु । जीवितासि ॥ १९ ॥
 तैसी एयां विषयांची शंका । मनीं वाहाती देखां ।
 घातु करी अशेषां । विवेकजातां ॥ २० ॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।

संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते ॥ ६२ ॥

जरि हृदइं विषयस्मृति । तरि निःसंगा ही आपजे संगति ।
 संगीं प्रकटे मूर्त्ति । अभिलाषाची ॥ २१ ॥
 जेथ कामु उपनला । तेथ क्रोधु आदिं चि आला ।
 क्रोधीं असे ठेवला । संमोहो जाणें ॥ २२ ॥

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

संमोहा जाली व्यक्ति । तरि नाशु पावे स्मृती ।
चंड वार्ते ज्योति । आहत जैसी ॥ २३ ॥
मग अज्ञानांध केवल । तेणें आप्तविजे सकल ।
तेथ बुद्धि होये व्याकुल । हृदयामाझि ॥ २४ ॥
कां अस्तमानां निशि । जैसी सूर्यतेजातें प्रसी ।
तेसी दशा स्मृतिभ्रंशीं । प्राणियांसि ॥ २५ ॥
जैसी जात्यंधा पलणि पावे । मग तें काकुलती सैरा धावे ।
तैसे बुझीसि होंति भवे । धनुर्दरा ॥ २६ ॥
ऐसा स्मृतिभ्रंशु घडे । मग सर्वथा बुद्धि अवघडे ।
तेथ समूल हें उपडे । ज्ञानजात ॥ २७ ॥
चैतन्याचां भ्रंशीं । शरीरा दशा जैसी ।
तैसें पुरुषा बुद्धिनाशीं । होये देखें ॥ २८ ॥
हणौनि आइकें अर्जुना । जैसा विस्फुलिंगु लागे इंधना ।
मग तो प्रोढु जाला त्रिभुवना । पुरों शके ॥ २९ ॥
तैसें विषयांचें ध्यान । जरि विपायें वाहे मन ।
तरि एसणें हें पतन । गिवसीत पावे ॥ ३३० ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥

हणौनि विषय आघवे । सर्वथा मनानि सांडावे ।
मग रागद्वेष स्वभावे । नाशार्ताळ ॥ ३१ ॥
पार्था आणिक ही एक । जरि नाशले हे रागद्वेष ।
तरि इंद्रियां विषय वाधक । रमतां नाहीं ॥ ३२ ॥
जैसा सूर्यु आकाशगतु । रश्मिकरीं जगातें स्पर्शतु ।
तरि संगदोषें काडु लिपतु । तेथिचेनि ॥ ३३ ॥
तैसा इंद्रियार्था उदासीनु । आत्मरसें चि निर्भिन्नु ।
जो कामक्रोधविहीनु । होउनि अमे ॥ ३४ ॥

तेया विविध आणिक काहीं । एक आपणपें वांचूनि नाहीं ।
 तरि विषय कवण काइ । बाधिति तेया ॥ ३५ ॥
 जरि उदकें उदकीं बुडीजे । कां अग्नी आणि पोलिजे ।
 तरि विषयसंगीं आकलिजे । परिपूर्णु तो ॥ ३६ ॥
 ऐसा आपण चि केवल । होउनि असे निश्चल ।
 तेयाची प्रज्ञा अचल । निभ्रांत मानीं ॥ ३७ ॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।

प्रसन्नचेतसोह्याशु बुद्धिःपर्यवतिष्ठते ॥ ६४ ॥

देखें अखंडित प्रसन्नता । आथि जेथ चित्ता ।
 तेथ रिगणें नाहीं समस्तां । संसारदुःखां ॥ ३८ ॥
 जैसा अमृताचा निर्झर । प्रसन्ने जेयाचा जठर ।
 तेया क्षुधेतृपेचा अडदर । काहिं चि नाहिं ॥ ३९ ॥
 तैसें हृदय प्रसन्न होये । तरि दुःख कैचें कें आहे ।
 तेथ आपैसी बुद्धि राहे । परमात्मरूपीं ॥ ३४० ॥
 जैसा निर्वातिचा दीपु । सर्वथा नेणे कंपु ।
 तैसा स्थिरबुद्धि स्वस्वरूपु । योगयुक्ती ॥ ४१ ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।

न चाभावयतः शांतिरशांतस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥

इये युक्तिची कडसणी । नाहिं जेयाचां अंतःकरणीं ।
 तो आकलिला जाण गुणीं । विषयादिकिं ॥ ४२ ॥
 तेया स्थिर बुद्धि पार्या । काहिं चि नाहिं सर्वथा ।
 आणि स्थैर्याची आस्था । ते ही नुपजे ॥ ४३ ॥
 निश्चलत्वाची भावना । जारि नव्हे चि देखें मना ॥
 तरि शांति केवि अर्जुना । आपु होये ॥ ४४ ॥
 आणि जेथ शांतिचा जीवाला नाहीं । तेथ सुख न रिगे चि कहीं ।
 जैसा पापियांचां टांड । मोक्षु न वसे ॥ ४५ ॥

देखें अग्नीमाशि घापति । तिर्ये वीजे जरि विरुढति ।
तरि अशांता मुखप्राप्ति । घडों शके ॥ ४६ ॥

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोनुविधीयते ।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥ ६७ ॥

हणौनि अयुक्तपण मनाचें । तें चि सर्वस्व दुःखाचें ।
एया कारणें इंद्रियांचें । दमन नीकें ॥ ४७ ॥
इयें इंद्रियें जें जें हणति । तें तें चि जे पुरुष कारिति ।
ते तरले चि न तरति । विषयसिंधु ॥ ४८ ॥
जैसी नात्र थडी टाकितां । वरिपडो होये दुर्वाता ।
तरि चूकला ही माघौता । अग्रा३ पावे ॥ ३४९ ॥
तैसीं प्राप्ते हीं पुरुषें । इंद्रियें टालिलिं कवतिकें ।
तरि आक्रमिला देख दुःखें । संसारिकें ॥ ३५० ॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।

इंद्रियाणांन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

हणौनि आपुलीं आपणपेया । जरि इंद्रियें येति आया ।
तरि आणिक ही काहीं धनंजया । सार्धक असे ॥ ५१ ॥
ऐसीं इंद्रियें आपैतीं हांति । जेयाचें हणितलें हणियें कारिति ।
तेयाची प्रज्ञा जाणें स्थिती । पातली असे ॥ ५२ ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी ।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥

आतां आणिक ही एक गहन । पूर्णाचें चिन्ह ।
अर्जुना तुज साधेन । परियस पां ॥ ५३ ॥
देखें भूतजात निदेलें । जेथ तें चि जेया पाहालें ।
आणि जीव जेथ चेडले । तेथ निद्रितु जो ॥ ५४ ॥
तो चि तो निरुपाधि । अर्जुना स्थिरबुद्धि ।
तो चि जाणें निरुपाधि । मुनीश्वर ॥ ५५ ॥

भापूर्णमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्गत् ।
तद्द्रुकामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

पार्थ आणि कि ही परीं । तो जाणों ये अवधारीं ।
जैसा अक्षोभता सागरों । अखंडीत ॥ ५६ ॥
जन्हीं सारिता उभव समस्त । परिपूर्ण होउनि मिलत ।
तन्हीं अधिकु नव्हे इपत् । मर्यादा न संडी ॥ ५७ ॥
ना तारे प्रीष्मकालीं सारिता । शोषाणि जांति सर्वथा ।
परि न्यूत नव्हे पार्था । समुद्र जैसा ॥ ५८ ॥
तैसा प्राप्ति ऋद्धिसिद्धिं । तेया क्षोभु नाही बुद्धी ।
आणि न पवतां न वात्री । अमृति तेयातें ॥ ५९ ॥
काइ सूर्याचां घरीं । प्रकाशु वातिवेन्हीं ।
किं न लविजे चि तरि आंधारीं । कोंडैल तो ॥ ३६० ॥
देखें रिद्धी चि तेया परीं । आली गेली से न करी ।
तो विगुंतला असे आंतरीं । महामुखें ॥ ६१ ॥
जो आपुलेनि नागरपणें । इंद्रभवना पावळें हणणे ।
तो रंजे केवि पालिवणें । भिळांचेनि ॥ ६२ ॥
जो अमृतामि ठी टेवी । तो कांजी जैसा न सेवी ।
तैसा स्वमुखानुभवीं । न भोगी रुद्धी ॥ ६३ ॥
पार्था हें नवल पाहीं । जेथ स्वर्गमुख लेखणिये नाहीं ।
तेथ रिद्धिसिद्धी इया काइ । प्राकृता हांति ॥ ६४ ॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमाश्चरति निस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥७१॥

ऐसा आत्मबोधें तोपला । जो परमानंदें पोखला ।
तो चि स्थिरप्रज्जु भला । बोलख तूं ॥ ६६ ॥
तो अहंकारातें जिणौनि । सकल कामना सांडूनि ।
विचरे विश्व होउनि । विश्रामाक्षि ॥ ६६ ॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।

स्थित्वास्यामंतकालेपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥

हे ब्रह्मस्थिति निःसीम । जे अनुभवितां निष्काम ।

पातले परब्रह्म । अनायासे ॥ ६७ ॥

चिद्रूपिं मिलतां । देहांतिची व्याकुलता ।

आड ठाको न शके चित्ता । आज्ञा जिया ॥ ६८ ॥

ते चि हे स्थिति । स्वमुखें श्रीपति ।

सांघतसे अर्जुनाप्रति । संजयो ह्यणे ॥

ऐसें कृष्णवाक्य आइकिलें । तेथ अर्जुनें मनीं ह्यणितलें ।

आतां आमचेया चि काना आलें । उपपत्ती इया ॥ ३७० ॥

जे कर्मजात आववें । एथ निराकारिलें देवें ।

तरि पाउखलें मियां जूझावें । ह्यणोनिया ॥ ७१ ॥

ऐसा अच्युताचेया बोला । चित्ति धनुद्वर उवाइला ।

आतां प्रश्नु करील मला । शंकुनिया ॥ ७२ ॥

तो प्रसंगु असे नागर । जो सकल धर्मासि आगर ।

किं विवेकामृतसागर । प्रांतहीनु ॥ ७३ ॥

जो आपण सर्वज्ञ नाथु । निरूपिता होइल अनंतु ।

ते ज्ञानदेउ सांघेल मातु । निवृत्तिदामु ॥ ३७४ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोध्यायः ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



ज्ञानेश्वरी

अध्याय तिसरा

अर्जुन उवाच ॥

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।

तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥

मग अर्जुनें ह्यणितलें । देवा तुह्मीं वाक्य बोलिलें ।

तें मियां परिसिलें । कमलापती ॥ १ ॥

तेथ कर्म आणि कर्ता । नुरे चिं पल्हाता ।

ऐसें मत्त तूझे अनंता । निश्चित जरि ॥ २ ॥

तरि मातें केवि हरी । ह्यणसि संग्रामु करीं ।

इये लाजसि ना घोरीं । कर्मीं सूतां ॥ ३ ॥

हां गा तूं चि कर्म अशेष । निराकरिसि निःशेष ।

आणि मजकरविं हिंसक । करवीसि कां ॥ ४ ॥

तरि हें विचारीं ह्यपीकेशा । तूं मानु नेंदसि कर्मलेशा ।

आणि एसणी हे हिंसा । करवीतासि ॥ ५ ॥

व्यामिश्रेणैव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

देवा तुवां णि ऐसें बोलावें । तरि नेणतां आह्मीं काइ करावें ।

आतां सरलें ह्यणों आववें । विवेकाचें ॥ ६ ॥

हां गा उपदेशु जरि ऐसा । तरि अपभ्रंशु तो केसा ।
 आतां पुरला पां धिवंसा । आत्मबोधाचा ॥ ७ ॥
 वैद्यु पथ्य वारुनि जाये । मग त्रिप आपण चि सुये ।
 तरि रोगिया कैसेनि जिये । सांघें मज ॥ ८ ॥
 जैसे आंधलेया अह्हांटा । कां माजवणदान मर्कटा ।
 तैसा उपदेशु हा गोमटा । उडवडा आह्हां ॥ ९ ॥
 मीं आदीं चि काहीं नेणें । वरि कवलिलां मोहें एणें ।
 कृष्णा विवेकु एया कारणें । वृसिला तूतें ॥ १० ॥
 तव तूझी एकएकि नवाई । एथ उपदेशामाझि गावाई ।
 तरि अनुसरलेया काई । बोज सांघें ॥ ११ ॥
 आह्नि तनुमनुजीवें । तूझेया बोल्य उटंगावें ।
 आणि तुवां चि रेणें बोल्यवें । तरि सरलें हणें ॥ १२ ॥
 आतां ऐसिया परी बोधिसी । तरि नाकें आह्हां करिसी ।
 एथ ज्ञानाची आश काइसी । अर्जुनु हणें ॥ १३ ॥
 तिथे जाणियेचें करु सरलें । परि आणिक एक असे जालें ।
 जें थोतें हें डहुडुटें । हृदय माझें ॥ १४ ॥
 तेवि चि कृष्णा तूतें । हें चरित्र काहीं नेणजे ।
 जरि चित्त पाहांसि माझें । एणें मीसें ॥ १५ ॥
 ना तरि झांकव्यानु आहासि मातें । किं तत्व चि कथिलें ध्वनितें ।
 हें अवगमितां निरुवें । जाणवे ना ॥ १६ ॥
 हगोनि आइकें देवा । हा भावार्थु आतां न बोलवा ।
 मज विवेकु तो सांघावा । मन्हाटा जी ॥ १७ ॥
 मीं अय्यनु जडु असें । पारि ऐसा ही नाकें परिहसें ।
 कृष्णा बोल्यवें तुवां तैसें । एकनिष्ठ ॥ १८ ॥
 देखें रोगातें जीणावें । उरव वरि घेयावें ।
 परि तें रुचिकर होआवें । मंधुर जैसें ॥ १९ ॥
 ९.

तैसैं सकलार्थभरित । तत्व सांघावें उचित ।
 परि बोधे माझे चित्त । जिया परीं ॥ २० ॥
 देवा तुज ऐसा निजगुरु । आजि आर्तिचो धणि कां न करूं ।
 एथ भीड कवणाची धरूं । तूं माये आमचीं ॥ २१ ॥
 हां गा कामधेनूचें दुभतें । आणि दैवें जालें आपैतें ।
 तरि कामनेची कां तैथें । वाणि कीजे ॥ २२ ॥
 जरि चिंतामणि हाता चडे । तरि वांसनेचें कवण सांकडें ।
 कां आपुलेनि सुरवाडें । इल्लवें ना ॥ २३ ॥
 देखें अमृतसिंधुतें टाकावें । मग ताहाना जरि फूटवें ।
 तरि सायास कां करावें । मागीळ ते ॥ २४ ॥
 तैसां जन्मांतरीं बहुतीं । उपासितां लक्ष्मीपती ।
 तूं दैवें आजि हातीं । जालासि जरि ॥ २५ ॥
 तरि आपुलालिया सावेसा । कां न मगावासि परेशा ।
 देवा मुकालु हा मानसा । पाहल्या असे ॥ २६ ॥
 देखें सकलार्तिचें जियाळें । आणि पुग्य यशासि आळें ।
 हे मनोरथ जाले । विजई माझे ॥ २७ ॥
 जि परममंगलधामा । देवदेवोत्तमा ।
 तूं स्वार्थानु जी आह्वां । झणानियां ॥ २८ ॥
 देखें मातेचां टांड । अपत्या अनवसरु नाहीं ।
 स्तन्यासि त्यागानि पाई । जिया परीं ॥ २९ ॥
 तैसैं देवा तूतें । वृसिजत असे आवडतें ।
 आपुलेनि आत्तें । कृपानिधी ॥ ३० ॥
 तरि पारत्रिकीं हित । आणि आचरतां उचित ।
 तें सांघें एक निश्चिंत । पार्थु कृणे ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

लोकेऽस्मिन्निद्विधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।

ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

तत्रं येया बोला अच्युतु । सांघेन ह्यणे विस्मितु ।
 अर्जुना परिसैं हा ध्वनितु । अभिप्रा० ॥ ३२ ॥
 जें बुद्धियोगु सांगतां । सांख्यमतसंस्था ।
 प्रकटिली स्वभावता । प्रसंगें आहीं ॥ ३३ ॥
 तो उद्देशु तूं नेणसी चि । हणौनि क्षोभलासि वायां चि ।
 तरि जाणैं आतां मियां चि । उक्ता दोन्हीं ॥ ३४ ॥
 अवधारीं वीरश्रेष्ठा । इये लोकीं इया दोन्हीं निष्ठा ।
 मज चि पासौनि प्रकटा । अनादिसिद्धा ॥ ३५ ॥
 एक ज्ञानयोगु ह्यणिजे । तो सांख्यि अनुष्ठिजे ।
 जेथ बोलखीसवें पाविजे । तद्रूपता ॥ ३६ ॥
 एरु कर्मयोगु जाण । जेथ साधकजन निपुण ।
 होउनियां निर्वाण । पावति वेले ॥ ३७ ॥
 हे मार्ग तरि दोन्हीं । परि एकावटति निदानीं ।
 जैसी सिद्धसाध्यभोजनीं । तृप्ति एकि ॥ ३८ ॥
 कां पूर्वापर सरिता । भिन्ना दीसति पल्हातां ।
 मग सिंधुमिलणीं ऐक्यता । पावति शेयीं ॥ ३९ ॥
 तैसीं दोन्हीं इयें मते । सूचीति एका चि कारणाते ।
 परि उपास्ति ते योग्यते । अधीन असे ॥ ४० ॥
 देखें उत्पवनासारिसा । पक्षिया फलासि झोंवे जैसा ।
 सांघें नरु केवि तैसा । पावे वेगें ॥ ४१ ॥
 तो हट्टहट्ट टाळें । केतुकेनि एकें वेले ।
 मार्गाचेनि बळें । निश्चित टाकी ॥ ४२ ॥

तैसें विहंगममते । अधिष्टनि ज्ञानाते ।
 सांख्य सद्य मोक्षाने । आकलिति ॥ ४३ ॥
 एर योगिये कर्माधारें । विहितें चि निजाचारें ।
 पूर्णता अवसरें । पावते हांति ॥ ४४ ॥

न कर्मणामनारंभात्प्रैकर्म्यं पुरुषोऽश्रुते ।

न च संन्यासनादेव लिङ्गि समाधिगच्छति ॥ ४ ॥

वांचूनि कर्मारंभ उचित । न कारितां सिद्धवत ।
 कर्महीना निश्चित । होइजे ना ॥ ४५ ॥
 कां प्राप्त कर्म सांडिजे । एतुलेनि नैष्कर्म्या होइजे ।
 हें अर्जुना वायां चि बोळिजे । मूर्खपणें ॥ ४६ ॥
 साधें पैल तीरा जावें । ऐसें व्यसन जेथ पावे ।
 तेथ नावतें त्यजावें । घडे केवि ॥ ४७ ॥
 ना तरि तृप्ति इछिजे । तरि कैसेनि पाकु न कीजे ।
 कां सिद्ध ही न सेविजे । केवि साधें ॥ ४८ ॥

न हि कश्चिद्व्यसनमपि जानु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

जवं निरार्त्ता नाही । तवं व्यापारु असे पाई ।
 मग संतुष्टिचां ठांडे । कुंटे साहाजे ॥ ४९ ॥
 ह्यणौनि आइकें पार्था । जेया नैष्कर्म्यपदी आस्था ।
 तेया उचित कर्म सर्वथा । त्याज्य नोहे ॥ ५० ॥
 आणिक आपुलिये चाडे । गा आपादिलें हें मांडे ।
 किं त्यजिलें कर्म सांडे । ऐसें आहे ॥ ५१ ॥
 हें वायां चि सैरा बोळिजे । उकलु तरि देखों पाहिजे ।
 परि त्यजितां कर्म न त्यजे । निभ्रान्त मानी ॥ ५२ ॥
 जवं प्रकृतिचें अधिष्ठान । तवं सांडि मांडि हें अज्ञान ।
 जे चेष्टा ते गुणाधीन । आपैसी असे ॥ ५३ ॥

देखें विहित कर्म जेतुलें । तें सकल जन्हें उ०संडिलें ।
 तरि स्वभाव काइ निमाले । इंद्रियांचे ॥ ५४ ॥
 साधें श्रवणें आइकों टेलें । किं नेत्रांचें तेज गेलें ।
 हें नासारंध्र बुजालें । परिमलु नेघे ॥ ५५ ॥
 कां प्राणपानगती । खटन जालें इथे मती ।
 किं क्षुधातृयादि आती । खुंटलिया ॥ ५६ ॥
 हे स्वप्नावबोध टेले । किं चरण चाल्यो विसरले ।
 हें असो काइ निमाले । जन्ममृत्यू ॥ ५७ ॥
 हें न टके चि जरि पाई । तरि सांडिलें एथ काई ।
 ह्यणानि कर्मानि त्यागु नाही । प्रकृतिमंतां ॥ ५८ ॥
 कर्म पराधीनपणें । निरुजतसे प्रकृतिगुणें ।
 एरि धरी मेकळी अंतःकरणें । बाहिजे बायां ॥ ५९ ॥
 देखें रथीं आरुढां होइजे । मग जन्हें निश्चलां वैसिजे ।
 तन्हें चलां होउनि हींडिजे । परतंत्रता ॥ ६० ॥
 कां उचळलें व्युत्पन्नं । शुभ्रलें पत्र जैसें ।
 निश्चेष्ट आकाशें । परिभ्रमं ॥ ६१ ॥
 तैसें प्रकृति आधारें । कर्मेन्द्रियें विकारें ।
 नैष्कर्म्य हीं व्यापारे । निरंतर ॥ ६२ ॥
 ह्यणानि संगु जत्रं प्रकृतिचा । तत्रं त्यागु न घडे कर्माचा ।
 एथ कर्म ह्यणति तेयांचा । आग्रहो चि उरें ॥ ६३ ॥
 कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
 इंद्रियार्थान्विमृडात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६४ ॥
 जे उचित कर्म सांडिति । मग नैष्कर्म्य हीं पाहाति ।
 परे कर्मेन्द्रियप्रवृत्ति । निरुचुनि ॥ ६४ ॥
 तेयां कर्मत्यागु न घडे । जें कर्तव्य मनीं सांपडे ।
 वरि नटति ते कुडे । दरिद्र जाण ॥ ६५ ॥

ऐसे ते पार्था । विषयासक्त सर्वथा ।

अलखावे अन्यथा । भ्रांति नाहीं ॥ ६६ ॥

यस्त्विन्द्रियाणे मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।

कर्मैन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

आतां देइ अवधान । प्रसंगें तुज साधेन ।

एया निराशाचें चिन्ह । धनुर्दरा ॥ ६७ ॥

जो आंतरीं दृढु । परमात्मरूपीं गूढु ।

वाह्ये तरि रूढु । लौकिकु जैसा ॥ ६८ ॥

जो इंद्रियां आज्ञा करी । विषयांचें भय न धरी ।

प्राप्त कर्म नव्हेरी । उचित जै जें ॥ ६९ ॥

कर्मैन्द्रियें कर्मी । राहटतां तरि नियमी ।

परि तेथिचिया उर्मी । झांकोले ना ॥ ७० ॥

जो कामनामात्रें न घेपे । मोहमळे न लिपे ।

जैसें जळीं जळें न सिपे । पद्मपत्र ॥ ७१ ॥

तैसा संसर्गामाजि असे । सकळांसारिखा दीसे ।

जैसें तोयसंगें आभासे । भानुवित्र ॥ ७२ ॥

तैसा सामान्यत्वे पाहिजे । तरि साधारणू चि देखिजे ।

यन्हविं निर्द्धारितां नेणिजे । सोय जेयाची ॥ ७३ ॥

ऐसा चिन्हि चिन्हतु । देखसी तो चि मुगतु ॥

आशापाशरहितु । अलख पां ॥ ७४ ॥

अर्जुना तो चि ना योगी । विशेषिजे जगीं ।

ह्यणौनि ऐसा होथे ययाद्यागि । ह्यणिपें तूतें ॥ ७५ ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।

शरीरयात्रापि च ते न प्रमिद्व्येदकर्मणः ॥ ८ ॥

तूं मानमासि नियमु करीं । निश्चलु होउनि आंतरीं ।

मग कर्मैन्द्रियें व्यापारीं । वर्ततु मुखें ॥ ७६ ॥

ह्यणसि निष्कर्मा जरि होवावें । तारि येथ ते न संभवे ।
आणि निषिद्ध केविं राहाटावें । विचारि पां ॥ ७७ ॥
ह्यणौनि जें जें उचित । आणि अवसरें करूनि प्राप्त ।
ते कर्म हेतुरहित । आचार तूं ॥ ७८ ॥

पार्था आणिक ही एक । नेणसि तूं कवतिक ।
जैसें कर्म चि मोचक । आपसें असे ॥ ७९ ॥
देखें अनुक्रमाधारे । धर्मु जो आचरं ।
तो मोक्षु तेणें व्यापारें । निश्चित पावे ॥ ८० ॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः ।

तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर ॥ ९ ॥

स्वधर्मु जो वापा । तो नित्ययज्ञु जाण पां ।
ह्यणौनि वर्ततां तेथ पापा । संचारु नाहीं ॥ ८१ ॥
हा निजधर्मु जें सांडे । कुकर्मा रति घडे ।
तें चि बंधु पडे । संसारिकु ॥ ८२ ॥
ह्यणौनि स्वधर्मानुष्ठान । तें अखंड तुज यजन ।
जो करी तेया बंधन । कहीं नाहीं ॥ ८३ ॥
हा लोकु कर्म बांधला । जो परतंत्र असे भूतला ।
तो नित्ययज्ञाते असे चूकला । ह्यणौनियां ॥ ८४ ॥

सहायज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।

अनेन प्रसविष्यध्वमेव वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥

आतां इयं चि विखें पार्था । तुज मी सांवेन एकि कथा ।
जें श्रिष्टि आदि संस्था । ब्रह्मेनि केली ॥ ८५ ॥
तें नित्ययागसहितें । सृजिलीं भूतें समस्तें ।
परि नेणति चि तियें यज्ञातें । सृक्षु ह्यणौनि ॥ ८६ ॥
तेव्हलि प्रजां विनविला ब्रह्मा । देवा आश्रो काइ एथ आहां ।
तवें तो ह्यणे कमळजन्मा । भूतां प्रति ॥ ८७ ॥

तुह्मां वर्णविशेषवसें । आर्त्तां यज्ञ स्वधर्मु विहिला असे ।
 एयाते उपासा मग आपसें । काम पुरती ॥ ८८ ॥
 तुह्मीं व्रतनियम न करावे । शरीराते न पीडावे ।
 दुरिकें हीं न वचावे । तीर्थाति गा ॥ ८९ ॥
 योगादिकें साधनें । साक्षाक्षें आराधनें ।
 मंत्रयंत्रविधानें । ज्ञनें करा ॥ ९० ॥
 देवतांतरा भजावे । हे सर्वथा न करावे ।
 स्वधर्मयज्ञ यजावे । अनायासें ॥ ९१ ॥
 अहेतुकेनि चितें । अनुष्टा पां एयाते ।
 पतिव्रता पतितें । जेया परीं ॥ ९२ ॥
 तैसा स्वधर्मुरु मनु । हा चि सेव्यु तुज्जां येकु ।
 ऐसें सत्यलोकनायकु । बोटता जाय ॥ ९३ ॥
 देखां स्वधर्माते भजाल । तरि कामवेनु हा होईल ।
 यन्हवि प्रजा हा चि नाडील । तुमतें सदा ॥ ९४ ॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।

परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

एणेंकरुनि समस्तां । परितांनु होईल देवतां ।
 मग ते तुह्मां इच्छितां । अर्थातें देति ॥ ९५ ॥
 एया स्वधर्मपूज्य वृजितां । देवगणां समस्तां ।
 योगक्षेमु निश्चिता । करिति तुमचा ॥ ९६ ॥
 तुह्मीं देवां जेया भजाल । ते देव तुज्जां तुटतील ।
 ऐसी परस्परें घडैल । प्रीति जेथ ॥ ९७ ॥
 तेथ तुह्मीं जें करूं हणाल । तें आपसें सिद्धी जाईल ।
 वांछित ही पुरैल । मानसिचें ॥ ९८ ॥
 वाचासिद्धि पायाल । आज्ञापक होआल ।
 ज्ञाणियें तुमतें मागतील । मद्रासिद्धि ॥ ९९ ॥

जैसें रितुपतिचें द्वार । वनश्री निरंतर ।

उलगे फलभार । लावण्येसीं ॥ १०० ॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः ।

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥ १२ ॥

तैसें सर्वमुखें सहित । दैव चि मूर्तिमंत ।

एईल देखां काढत । तुह्नां पाठीं ॥ १ ॥

ऐसे समस्तभोगभरित । होआल तुह्नीं अनार्त्त ।

जरि स्वधर्मैकनिरत । वर्ताल बापा ॥ २ ॥

कां जालिया सकल संपदा । जो अनुसरैल इंद्रियमदा ।

लुब्ध होउनि आस्त्रादा । विययांचेया ॥ ३ ॥

तिहीं यज्ञभावित्तीं सुरीं । जे हे संपत्ति दिधली पुरी ।

तिया स्वमार्गें सर्वेश्वरीं । न भजैल जो ॥ ४ ॥

अग्निमुखीं हावन । न करील देवतापूजन ।

प्राप्ति वेले भजन । ब्राह्मणाचें ॥ ५ ॥

विमुख होईल गुरुभक्ती । आदरु न करिल अतिथि ।

संतोषु नेंदील ज्ञाती । आपुल्लिए ॥ ६ ॥

ऐसा स्वधर्मुक्रियारहितु । आथिलेपणें माजतु ।

केवल भोगासक्तु । होईल जो ॥ ७ ॥

तेयातें मग अपाउ थोरु होए । जेणें तें हातिचें सकल जाए ।

देखां प्राप्त हीं न लाहे । भोग भोगुं ॥ ८ ॥

जैसें गतायुषे शरीरीं । चैतन्य वामु न करी ।

कां निदैवांचां मंदिरीं । न न्हाय लक्ष्मी ॥ ९ ॥

तैसा स्वधर्मु जरि खेपला । तरि सर्व मुखाचा थारा मोडला ।

जैसा दीपासवें हारतला । प्रकाशु जाए ॥ ११० ॥

तैसी निजवृत्ति जेथ सांडे । तेथ स्वतंत्रते वस्ति न घडे ।

आइकां प्रजा हो हें फुडे । विरिंचीं हाणे ॥ ११ ॥

ह्यगौनि स्वधर्मु जो सांडील । तेयातें कालु दंडील ।
 चोरु ह्यगौनु हरिल । सर्वस्व तेयाचें ॥ १२ ॥
 मग सकल दोष भवते । गिंवसूनि घेंति तेयातें ।
 रात्रीसमैं स्मशानातें । भूतें जैसीं ॥ १३ ॥
 तैसीं त्रिभुवनिचीं दुःखें । आणिक नानाविधें पातकें ।
 दैन्यजात तेतुकें । तेथ चि वसे ॥ १४ ॥
 ऐसें होए तेया उन्मत्ता । मग न मुष्टे बापा रुदतां ।
 परि कल्पातिं हिं सर्वया । प्राणिगण हो ॥ १५ ॥
 ह्यगौनि निजवृत्ति हें न संडावीं । इंद्रियें बरलों नेंदावीं ।
 ऐसें प्रजातें सिकत्री । चनुराननु ॥ १६ ॥
 जैसें जलचरां जरु सांडे । आणि ततक्षणीं मरण घडे ।
 हा स्वधर्मु हीं तेंणें पाडे । त्रिसंभों नए ॥ १७ ॥
 ह्यगौनि तुझीं समस्तीं । आपुलाळं कर्मीं उचितीं ।
 निरतां होआवें हें पुडुतीं पुडुतीं । ह्यणिमत असे ॥ १८ ॥

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यन्ते सर्व किंलिवैः ।

भुंजते तेत्वग्रं पापा ये पचंत्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥

देखैं विहितक्रियाविधी । निर्हेतुका बुद्धी ।
 जो असतिथे समृद्धी । विनियोगु करी ॥ १९ ॥
 गुरु गो अग्नि पूजा । अवसरें भजे द्विजीं ।
 निमित्तादिकीं यजी । पितरोदेशें ॥ १२० ॥
 इया यज्ञक्रिया उचिता । यज्ञेंसीं हवन करितां ।
 हुतशेष स्वभावता । उरे जें जें ॥ २१ ॥
 तें मुखें आपुलां घरीं । कुटुंबेंसीं भोजन करी ।
 किं भोग्य चि ते निवारी । कल्मपातें ॥ २२ ॥
 तें यज्ञावशिष्ट भोगी । ह्यगौनि सांडिजे गा तो अर्घीं ।
 जिया परीं महारोगी । अमृतमिद्धि ॥ २३ ॥

कां तन्वनिष्टु जैसा । ना गवे भ्रांतिदेशा ।
 तो शेष भोगी तैसा । ना कडे दोषां ॥ २४ ॥
 ह्यणानि स्वधमें जें जें आज्ञे । तें स्वधमें चि विनियोगिजे ।
 मग उरे तें भोगिजे । संतोषेंसीं ॥ २५ ॥
 हें वांचूनि पार्था । राहाटों न ये अन्यथा ।
 ऐसी आय हे कथा । मुरारि सांवे ॥ २६ ॥
 जे देह चि आपणों मानिति । आणि विषयांतें भोग्य लणति ।
 यथा परंतै न स्मरति । आणिक कांहों ॥ २७ ॥
 हें यज्ञोपकरण सकट । नेणत सांते वरळ ।
 अहंबुद्धां केवळ । भोगूं पाहांति ॥ २८ ॥
 इंद्रियरुची सारिखे । करवीति पाक नांके ।
 ते पापिये पातकें । सेविति जाणें ॥ २९ ॥
 जें संपत्तिजात आववें । हें हवनद्रव्य मानावें ।
 मग स्वधर्मयज्ञें अर्पावें । आदिपुरुषीं ॥ १३० ॥
 हें सांडूनियां मूर्ख । आपणोपया त्यागि देव ।
 निष्कजवीति पाक । नानाविध ॥ ३१ ॥
 जिहिं यज्ञ सिद्धी जाये । परेशा संतोषु होये ।
 तें हें सामान्य अन्न नोहे । ह्यणानियां ॥ ३२ ॥

अन्नान्द्रवन्ति भूतानि पर्जन्याद्ब्रह्मसंभवः ।

यज्ञान्द्रवन्ति पर्जन्यो यज्ञःकर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥

हें न ह्यणावें साधारण । अन्न ब्रह्मरूप जाण ।
 तें जीवनहेतू जाण । विश्वा एया ॥ ३३ ॥
 अन्ना तव भूतें । प्ररोहो पावनि समस्तें ।
 मग वर्षु एया अन्नातें । सर्वत्र प्रसवें ॥ ३४ ॥
 तेया पर्जन्या यज्ञीं जन्म । यज्ञातें प्रकटीं कर्म ।
 ह्यणानि कर्मानि आदि ब्रह्म । वेदरूप ॥ ३५ ॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं ।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

मग वेदाते परापर । प्रसवतसे अक्षर ।

हणौनि हें चराचर । ब्रह्मबंध ॥ ३६ ॥

परि कर्माचिया मूर्ती । यज्ञीं अधिवासु श्रुती ।

आइकें मुभद्रापती । अखंड गा ॥ ३७ ॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्त्तयतोह यः ।

अघायुरिन्द्रियारामो मोयं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥

हे ऐसी आदिपरंपरा । संक्षेपें तुज धनुर्दरा ।

सांघितली एया अध्वरा । लागौनियां ॥ ३८ ॥

हणौनि समूळ हा उचितु । स्वधर्मरूपु क्रतु ।

ननुष्टी जो मत्तु । लोकीं इये ॥ ३९ ॥

तो पातकांचा रासि । जाण नार भूमीसि ।

जो कुकर्म इंद्रियांसि । उपेगा गेळा ॥ १४० ॥

तें जन्मकर्म सकळ । अर्जुना अतिनिष्कळ ।

जैसैं कां अभ्रपटळ । अकालिचें ॥ ४१ ॥

कां गळा स्तन अजेचे । तैसैं जियाळें देख तेयाचें ।

जेया अनुष्टान स्वधर्माचें । घडे चि ना ॥ ४२ ॥

हणौनि आइकें पांडवा । स्वधर्म कव्हणीं न संडावा ।

सर्वभावे भजावा । हा चि येकु ॥ ४३ ॥

हां गा शरीर जरि जालें । तरि कर्तव्य हें ओवें आलें ।

मग उचित कां आपुलें । असंडावें ॥ १४४ ॥

यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मनृपश्च मानवः ।

आत्मन्येव च संतुष्टः तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

देखैं असतेनि देहधर्में । पथ तो एकु न सिंपे कर्में ।

जो अखंडित रमे । आपणपां ॥ ४५ ॥

जें तो आत्मबोधें तोपला । तरि कृतकार्यु देखैं जाळा ।
 ह्यणौनि सहजें सांडला । कर्मसंगु ॥ ४६ ॥
 तृप्ति जालेयां जैसीं । साधनें सरति आपैसीं ।
 देखैं आत्मतुष्टी तैसीं । कर्म नाही ॥ ४७ ॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।

न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

जवें वेरि अज्जुना । तो बोधु न भेटे मना ।
 तवें चि येया साधना । भजवें लागे ॥ ४८ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥

ह्यणौनि तूं नियतु । सकळ कामरहितु ।
 होउनियां उचितु । धर्म राहाट ॥ ४९ ॥
 जे स्वकर्मा निष्कामता । अनुसरले या पार्था ।
 ते कैवल्य परम तत्वता । पातले जर्गी ॥ १५० ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।

लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

देख पां जनकादिक । कर्मजात अशेष ।
 न संडितां चि मोक्षमुख । पावते जाले ॥ ५१ ॥
 एया कारणें पार्था । होआवी कर्मी आस्था ।
 हें आणिका ही एका अर्था । उपकरैल ॥ ५२ ॥

यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

जें आचरतां आपणयेया । देखि लागेल लोका येया ।
 तरि चूकैल हा अपाया । प्रसंगें चि ॥ ५३ ॥
 देखैं प्रामार्थ जाळे । जे निष्कामता पातळे ।
 तेयां हीं कर्तृत्व असें उरळें । लोकांलागि ॥ ५४ ॥

मार्गि अंवासरिसा । पुढां देखणा हीं चाले जैसा ।
 अज्ञा प्रकटावा धर्मु तैसा । जाणतेन ॥ ५५ ॥
 हां गा जरि ऐसें न कीजे । तरि अज्ञाना काइ वौजे ।
 तेहिं कवणी परीं जाणिजे । मार्गातिं ॥ ५६ ॥
 एथ बडिल जें जें कारिति । तेया नावं धर्मु ठेविति ।
 तो चि एर अनुष्ठिति । सामान्य सकल ॥ ५७ ॥
 हें ऐसें असे स्वभावें । ह्यणौनि कर्म न संडावें ।
 विशेषें आचरावें । लागे संतीं ॥ ५८ ॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥

आतां आणिकाचिया गोठी । तुज सांघों काइ किरीटी ।
 देखैं मीं चि कीं इये राहाटी । वर्त्तत असे ॥ ५९ ॥
 काइ सांकडें काहीं मातें । किं कन्हणें येकें आत्तें ।
 अनुचरें मीं कर्मातिं । ह्यणसि जरि ॥ १६० ॥
 तारि पुरतेपणालागि । आणिकु दुसरा नाहिं जर्गि ।
 ऐसी सामग्री माझां आंगीं । जाणसी तू ॥ ६१ ॥
 पारि स्वधर्मिं वर्त्तें कैसा । साकांक्षु कां होथे जैसा ।
 तेया चि एका उदेशा । लागौनियां ॥ ६२ ॥

यदि ह्यहं न वर्त्तयं जानु कर्मण्यतन्द्रितः ।

मम वर्त्मानुवर्त्तते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥

जें भूतजात सकल । असे आह्वां चि अर्थीन केवल ।
 तारि न व्हावें हे वरल । ह्यणौनियां ॥ ६३ ॥
 आह्नि पूर्णकाम होउनि । जरि आत्मस्थिती राहुनि ।
 तारि प्रजा हे कैसेनि । निस्तरैल ॥ ६४ ॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।

संकरस्यच कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४ ॥

इया आमची वास पावी । मग वर्त्तती परी जाणावी ।
ते लौकिकस्थिति आघवी । नाशली होईल ॥ ६५ ॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वति भारत ।

कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुलोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

हणौनि समर्थु जो एथें । आणि लाणि सर्वज्ञते ।

तेणें सविशेष कर्मातें । लजावें ना ॥ ६६ ॥

देखें फलाचिया आशा । आचरे कां मूर्खु जैसा ।

कर्मि भरु होआवा तैसा । निराशा ही ॥ ६७ ॥

जें पुढुतीं पुढुतीं पार्था । हे सकललोकसंस्था ।

रक्षणीय गा सर्वथा । हणौनियां ॥ ६८ ॥

मार्गाधारें वर्तावें । विश्व हें मोहरे लावावें ।

अलौकिकां नोहावें । लोकाप्रति ॥ ६९ ॥

जें सायासें स्तन्य सेवी । तें पक्वान्नें केवि जेवी ।

हणौनि वालका जैसां नेंदावी । धनुर्द्धरा ॥ १७० ॥

न बुद्धिभेदं जनयेद्द्वानां कर्मसंगिनाम् ।

जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तःसमाचरन् ॥ २६ ॥

तैसी कर्मि जेया योग्यता । तेया प्रति नैष्कर्म्यता ।

न प्रकटावी खेलतां । आदिकरुनि ॥ ७१ ॥

तेथ सत्क्रिया चि लावावी । ते चि एकि प्रशंसावी ।

नैष्कर्मी हीं दावावी । आचरौनि ॥ ७२ ॥

तेया लोकसंप्रहालागि । वर्त्ततां कर्मसंगीं ।

तो कर्मबंधु आंगीं । वाजैल ना ॥ ७३ ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।

अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ॥ २७ ॥

देखें पुढिल्याचें ओझें । जरि आपुलां माथां घेइजे ।

तारि सावें कां न दटिजे । धनुर्द्धरा ॥ ७४ ॥

तैसीं शुभाशुभ कर्म । निफजती प्रकृतिधर्म ।
 तिये मूर्ख मतिधर्म । मी कर्ता हणने ॥ ७५ ॥
 ऐसा अहंकाररूढ । एकदेशी मूढ ।
 तेया परमार्थ मूढ । प्रकटावा ना ॥ ७६ ॥
 जें तत्वज्ञाचां ठांडें । तो प्रकृतिभावो नाहिं ।
 जेथ कर्मजात पाई । निफजत असे ॥ ७७ ॥
 तो देहाभिमानुं सांडूनि । गुणकर्म उलखौनि ।
 साक्षिभूत होउनि । वर्ते देहीं ॥ ७८ ॥

तत्वचित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।

गुणागुणेषु वर्तते इति मत्त्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

हणौनि शरीरं जन्हें होंति । तन्हीं कर्मबंधें बाधति ।
 जैसा भूतचेष्टा गभस्ती । घेपवे ना ॥ ७९ ॥
 एथ कर्म तो चि लिपे ! जो गुणसंभ्रमें घेपे ।
 प्रकृतिचेनि आटोपें । वर्तनु असे ॥ १८० ॥
 इंद्रियें गुणाधारें । राहाटति निजव्यापारें ।
 तें परकर्म बलान्कारें । आपादि जो ॥ ८१ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जते गुणकर्मसु ।

तानकृत्स्नविदो मंदान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ २९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।

निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥

हें असो आतां प्रस्तुत । सांघिजैल तुज हित ।
 तें अर्जुना देउनि चित्त । अवधार पां ॥ ८२ ॥
 तार उचितें कर्म आवर्षीं । तुवां आचरौनि मज अपर्षीं ।
 पार चित्तवृत्ति हे न्यसावीं । आत्मरूपीं ॥ ८३ ॥
 हें कर्म मी कर्ता । आचरेंन मी येया अर्था ।
 ऐसा अभिमान ज्ञनें चित्ता । रिगों देसीं ॥ ८४ ॥

नुवां शरीरपरां नाहावे । कामनाजात सांडावे ।
 मग अवसरोचित भोगात्रे । भोग सकल ॥ ८५ ॥
 आतां कोदंड घेउन हातां । आरूढ पां इण रथीं ।
 देइं आलिंगन वीरवृत्ती । समाधाने ॥ ८६ ॥
 जगीं कीर्त्तिते रूढवीं । स्वधर्माचा मानु वाढवीं ।
 येया भारापासांनि सोडवीं । मेदिनी हे ॥ ८७ ॥
 आतां पार्थी निःशंकु होइं । एया संग्रामा चित्त देइं ।
 एथ हें वांचूनि काहीं । कर्म नैण ॥ ८८ ॥

ये मे मद्रामिदं नित्यमनुतिष्ठंति मानवाः ।

श्रद्धावंतो न सूर्यंते मुच्यंते तेऽपि कर्मभिः ॥ ३१ ॥

ऐसें अनुपरोध मत माझे । जिहिं परमादरें स्वीकारजे ।
 श्रद्धासूं अनुष्ठिजे । धनुर्द्वारा ॥ ८९ ॥
 ते हों सकल कर्मा वर्त्तत । जाण पां कर्मरहित ।
 हणौनि हें निश्चित । करणीय गा ॥ १९० ॥

ये त्वेतदभ्यसूर्यंतो नानुतिष्ठंति मे मतम् ।

सर्वज्ञानविमृदान्स्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥

नां तारि प्रकृतिमंत होउन । इंद्रियां लला देउन ।
 जे हें मत माझे अवेहरनि । अस्तिडिति ॥ ९१ ॥
 जे सामान्यत्वे विशेषिति । अवज्ञा करूनि देखति ।
 कां हा अर्थवादु हणति । वाचालपणे ॥ ९२ ॥
 ते मोहमदिरा भ्रमले । विषयविषे घारले ।
 अज्ञानपंक्तीं बुडाले । निभ्रंत जाणें ॥ ९३ ॥
 देखें शवाचां हाति दीघले । जैसें रत्न कां वायां गेले ।
 नातरि जाल्यंथा पाहाले । प्रमाण नोहे ॥ ९४ ॥
 कां चंद्राचा उदयो जैसा । उपेगा न वचे चि वायसां ।
 मूर्खां विवेकु हा तैसा । रुचेल ना ॥ ९५ ॥

हणौनि ते न मानिति । आणिक निंदा ही करूं लाहाती ।
 सावै पतंग काइ साहांति । प्रकाशातें ॥ ९६ ॥
 तैसे ते पार्था । जे त्रिमुख एया अर्था ।
 तिहिंसि संभाषण सर्वथा । करावें ना ॥ ९७ ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।

प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

हणौनि इंद्रिये इयें एकें । जाणतेन हीं पुरुषें ।
 लालाचीं ना कवतिकें । आदिकरुनि ॥ ९८ ॥
 हां गा सर्पेसीं खेळों एईल । किं व्याघ्रसंगु सिद्धी जाईल ।
 सावै हलाहल जिरैल । सेविलें काइ ॥ ९९ ॥
 देखें खेळतां अग्नि लाविला । मग तो न संवरे जैसा उधळला ।
 तैसा प्रकृती मानु दीधला । भला नोहे ॥ २०० ॥

इन्द्रियस्यैन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।

तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ ॥ ३४ ॥

यन्हविं तन्हि अर्जुना । एया शरीरा परार्थीना ।
 कां नाना भोगरचना । मेळवार्वा ॥ १ ॥
 आपण सायासें करुनि बहुतें । सकळें समृद्धिजातें ।
 मग उदो अस्तु येयातें । प्रतिपालावें ॥ २ ॥
 मग हें तवं पांच मेळवा । शेपीं अनुसरैल निजस्वभावा ।
 तेव्हलि लोके गिविसावा । सीणु आपुला ॥ ३ ॥
 हणौनि केवल देहभरण । ते उघड जाणें नागवण ।
 एयालागि एथें अंतष्करण । देयावें ना ॥ ४ ॥
 यन्हविं इंद्रियांचिया आर्ता- । सरिसा त्रिखो वोपितां ।
 संतोसु किर चित्ता । आपजैल ॥ ५ ॥
 परि तो सवंचोराचा सांघातु । जैसा नावं चि येक स्वस्थु ।
 जवं नगराचा प्रांतु । सांडिजैना ॥ ६ ॥

बापा विखाचिया मधुरता । ज्ञनें आवडि उपजे चित्ता ।
 तो परिणामु न विचारितां । सेवावे ना ॥ ७ ॥
 देखें इंद्रियां कामु असे । तो लावी सुख दुरासे ।
 जैसा जलीं मीनु आर्विसें । भूलविजे ॥ ८ ॥
 परि तेया माझारि गलु आहे । तो ग्राणातें घेउनि जाये ।
 तो जैसा ताउवा नोहे । झांकवलपणें ॥ ९ ॥
 तैसें अभिलाषें एणें कीजैल । जरि विपयांची आश धरिजैल ।
 तरि वरपडेयां होइजैल । क्रोधानला ॥ २१० ॥
 जैसा कवळनियां पारधी । घातेचिये संधी ।
 आणि मृगातें बुद्धी । साधावेया ॥ ११ ॥
 एथ तैसी चि परि आहे । हणौनि तुज हा संसर्गु नोहे ।
 पार्था दोन्हीं कामक्रोध हे । घातक जाणें ॥ १२ ॥
 हणौनि आश्रो हा न करावा । मनीं हीं आठौ न धरावा ।
 एकु निजवृत्तिचा उल्लावा । नाशों नेंदीं ॥ १३ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

आगा स्वधर्मु हा आपुला । जन्हें कां कठिणु जाला ।
 तन्हें हा चि अनुष्ठिला । भला देखें ॥ १४ ॥
 एरु आचारु जो परावा । तो देखतां किर वरवा ।
 परि आचरतेनि आचरावा । आपुला चि ॥ १५ ॥
 सांवे शूद्रगृहीं आघवीं । जन्हें पक्वानें आथि वरवीं ।
 तियें द्विजें केवि सेवावीं । दुबला जन्हें ॥ १६ ॥
 हें अनुचित कैसेनि कीजे । अप्राप्य केवि इच्छिजे ।
 अथवा इच्छिलें हीं पाविजे । विचारि पां ॥ १७ ॥
 तारि लोकाचीं धवलारें । देखौनियां मनोहरें ।
 असतीं तणहारें । सांडावीं केवि ॥ १८ ॥

हैं असो वनिता आपुली । कुरूप जन्हें जाली ।
 तन्हें भोगितां ते चि भली । जिया परीं ॥ १९ ॥
 तेवि आवडेतैसा सांकडु । आचरतां जन्हीं दुवाडु ।
 तन्हीं स्वधर्में चि मुरवाडु । पारत्रिकि ॥ २२० ॥
 हा गा शर्करा आणि दूध । हें गौल्य किर होये प्रसिद्ध ।
 परि कृमिदोषीं विरुद्ध । घेपे केवि ॥ २१ ॥
 ऐसेनि हिं जरि सेविजैल । तरि ते अलुकी चि आगा उरैल ।
 जें तें परिणामीं पथ्य नव्हैल । धनुर्द्वरा ॥ २२ ॥
 ह्यणौनि आणिकांसि जें विहित । आणिक आपणेया अनुचित ।
 तें नाचरावें जरि हित । विचारिजे ॥ २३ ॥
 एया स्वधर्मतिं अनुष्टितां । जरि वेचु होईल जीविता ।
 तो ही नीका वर उभयता । दीसतसे ॥ २४ ॥

अर्जुन उवाच ॥

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः ।

अनिच्छन्नपि चाष्णंय चलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥

ऐसैं समस्तमुरशिरोमणी । बोलिले जेथ शारंगपाणी ।
 तेथ अर्जुनु ह्यणे विनवणी । आधि देवा ॥ २५ ॥
 हें जें जें तुझीं सांगितलें । तें सकल किर मियां परिसिलें ।
 परि आतां पूसैन काहीं आपुलें । अपेक्षित ॥ २६ ॥
 तरि देवा हें कैसें । जें ज्ञानियां हीं स्थिति अंशे ।
 मार्गु सांडूनि अनारिसें । चालत देखों ॥ २७ ॥
 सर्वज्ञ जे हीं होंति । हेय उपादेय जाणति ।
 ते ही परधर्मीं व्यभिचरति । कवणें गुणें ॥ २८ ॥
 बीजा आणिक भूसा । अंधु निवाडु नेणे कां जैसा ।
 नाव येक देखणा हीं तैसा । वरले कां पां ॥ २९ ॥

जे असता संगु सांडिति । ते चि संसर्गु करितां न धांति ।
 वनवासी ही सेविति । जनपदाते ॥ २३० ॥
 आपण तारि पळति । सर्वस्त्रें पाप चुकविति ।
 परि बलिवडें सूडजति । तेया चि माझि ॥ ३१ ॥
 जेयाची घेंति विवसी । तें जडौनि ठाके जीवेंसी ।
 चुकविति ते गिंवसी । तेयाते चि ॥ ३२ ॥
 ऐसा बलात्कार एकु दीसे । तो कोणाचा एथ असे ।
 हें बोलावें हर्षाकेशें । पार्थु हणें ॥ ३३ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

काम एव क्रोध एव रजोगुणसमुद्भवः ।

महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥

तत्र हृदयकमलरामु । जो योगियांचा कामु ।
 तो हणतु असे पुरुषोत्तमु । सांघानि आडकें ॥ ३४ ॥
 तरि हे कामक्रोध पाई । जेयांतें कृपेचा सांठोवा नाही ।
 हे कृतांताचां टांडें । मानिजति ॥ ३५ ॥
 हे ज्ञाननिर्धाचे भूवंग । हे विपयराणिचे वाघ ।
 भजनमार्गिचे मातंग । मारक हे ॥ ३६ ॥
 हे देहदुर्गिचे डोंड । इंद्रियग्रामिचे कोंड ।
 एयांचे व्यामोहादिक धवड । जगावरि ॥ ३७ ॥
 हे रजोगुणा मानेयाचे । समूळ ऐसे आवळिचे ।
 धायेपण येयांचें । अविद्या केलें ॥ ३८ ॥
 हे रजाचे किर जाले । परि तमांसि पढियंते भले ।
 तेंणें निजपद एयांसि दीधले । प्रमादजात ॥ ३९ ॥
 हे मृत्युचां हान घरीं । मानिजति निकिया परीं ।
 जें जीविताचे वैग । हणोनियां ॥ २४० ॥

जियां भूकेलियां आंविंसा । हें विश्व न पुरे चि घांसा ।
 तिया कुलवाडि एया चि आशा । चालिजत असे ॥ ४१ ॥
 कवतिकें कवलितां मुष्टि । जिये चौदा ही भुवनें थेंकुटीं ।
 ते भ्रांति तियेची धाकुटी । हणौनि सरे । ४२ ॥
 जे लोकत्रयाचें भातुकें । फार करीति खाये कवतिकें ।
 ते दासिपणाचेनि विकें । तृष्णा जिण ॥ ४३ ॥
 हें असो मोहें मानिजे । एयांतें अहंकारें घेपेदीजे ।
 जेणें जग आपुलिं भोजें । नाचविजत असे ॥ ४४ ॥
 नेणसि सत्याचा भोकसा काढिला । मग अकृत्य तणकुटा भरिला ।
 तो दंभु नव्हे रूढविला । लोकीं इहीं ॥ ४५ ॥
 साध्वी शांति नागविली । माया मांगि श्रिघारिली ।
 तियेकरवि विटालविली । इहीं साधुवृंदें ॥ ४६ ॥
 एहीं विवेकाची त्राये फेडिली । वैराग्याची खाल काढिली ।
 जींतेया मान मोडिली । उपशमाची ॥ ४७ ॥
 इहीं संतोखवन खांडिलें । धैर्यदुर्ग पाडिलें ।
 आनंदरोप सांडिलें । उपडूनियां ॥ ४८ ॥
 इहीं बोधाची चोपि छसिली । मुखाची लीपि घूसिली ।
 चिन्हारीं आगि सूदली । तापत्रयां ॥ ४९ ॥
 हे आंगा तरि घडलें । जीवीं चि आधि जडले ।
 परि नांतुडति गिविसिले । ब्रह्मादिकां ॥ २५० ॥
 हे चैतन्याचां सेजारीं । वसति ज्ञानाचां एकहारीं ।
 हणौनि प्रवर्तले मारीं । संवरति ना ॥ ५१ ॥
 हे जलेंविण बुडलिति । आगीविण जालिति ।
 न बोलत कवलिति । प्राणियांतें ॥ ५२ ॥
 हे शस्त्रेंविण साधिति । दोरेंविण बांधिती ।
 ज्ञानियां तरि वधीति । पैज घेउनि ॥ ५३ ॥

हे चिखलेंविण रोविति । पासिकेंविण गोविति ।
हे कोणहा हीं जोगे नव्हती । आंतुवटपणें ॥ ५४ ॥

धूमेनाव्रियते वन्हिर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृत्तो गर्भस्तथा तेनेदमावृत्तम् ॥ ३८ ॥

जैसी चंदनाची मूली । गिंवसूनि घेपे व्यालीं ।
ना तारि उल्वाची खोली । गर्भस्थासी ॥ ५५ ॥
कां प्रभाविण भानु । धूमेंविण हुतारानु ।

जैसा दर्पणु मलहानु । कहीं चि नसे ॥ ५६ ॥
तैसें एहींविण एकलें । आह्नीं ज्ञान नाहीं देखिलें ।
जैसें कोंडेनियां गुंतलें । बीज निफजे ॥ ५७ ॥

आवृत्तं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण काँतेय दुःपूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥

तैसें ज्ञान तारि विशुद्ध । परि एहिं दीसे प्रबद्ध ।
हणौनि तें अगाध । होउनि ठेलें ॥ ५८ ॥
आदिं एयातें जीणावें । मग तें ज्ञान पावावें ।
तवें एयां काहीं न प्रभवे । रागद्वेषां ॥ ५९ ॥
एयातें साधावेया लागि । जें बल बाणिजे आंगीं ।
तें इंधन जैसें आगी । सावा३० होये ॥ २६० ॥

इंद्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्त्य देहिनम् ॥ ४० ॥

तैसें उपाये कीजति जे जे । ते येयांसी चि होंति विरजे ।
हणौनि हाटियातें जाणिजे । इहीं चि जगीं ॥ ६१ ॥
ऐसेया ही सांकडा बोला । एकु उपा३० असे भला ।
तो कारि पां जरि आंगवला । सांघेंन तुज ॥ ६२ ॥

तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

तारि एयांचा पहिला कुरुटा इंद्रिये । जेथोनि प्रवृत्ति कर्माते विये ।

आदीं निर्दळनि घालीं तिये । सर्वथैव ॥ ६३ ॥

मग मनाची धावं पारखेल । आणिक बुद्धी सोडवण होईल ।

एतुलेनि तागा एयां मोडेल । पापियांचा ॥ ६४ ॥

हे आंतरौनि जरि फीटले । तारि निभ्रांत जाण निवटले ।

जैसें रश्मीविण उरले । मृगजल नाहीं ॥ ६५ ॥

तैसे रागद्वेष जरि निमाले । तारि ब्रह्मिचें स्वाराज्य आलें ।

मग भोगी मुख आपुलें । आपण चि ॥ ६६ ॥

इंद्रियाणि पराण्याहुर्निद्रियेभ्यः परं मनः ।

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३ ॥

जे गुरुशिष्याची गोठी । पदपिंडाची गाठी ।

तेथ स्थिर होउनि नुठी । कव्हणी काली ॥ ६७ ॥

ऐसें सकल सिद्धांचा राउ । देवी लक्ष्मीचे नाहो ।

राया आइकें देवदेउ । बोलता जाला ॥ ६८ ॥

आतां पुनरपि तो अनंतु । आद्य एकि मातु ।

सांघेल तेथ पांडुसुतु । प्रभु करिल ॥ ६९ ॥

तेया बोलाचा हान पाडु । कां रसवृत्तिचा निवाडु ।

जेणें श्रोतियां होईल मुरवाडु । श्रवणमुखाचा ॥ २७० ॥

ज्ञानदेउ हणणे निवृत्तिचा । चांगु उवाउ धरुनु उन्मेषाचा ।

मग हा संवाडु हरिपार्थाचा । भोगां बापा ॥ २७१ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां

योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो

नाम तृतीयोध्यायः ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

ज्ञानेश्वरी

अध्याय चौथा.

आजि श्रवणेंद्रिया पीकलें । जेणें हे गीतानिधान देखिलें ।
आतां स्वप्न चि हें तूकलें । साचा सरिसें ॥ १ ॥
आदी चि विवेकाची गोठी । वारि' प्रतिपदी कृष्णु जगजेठी ।
आणि भक्तराजु किरीटी । परिसतसे ॥ २ ॥
जैसा पंचमालापु सुगंधु । किं परिमलु आणि सुस्वादु ।
भला जाला विनोदु । कथेचा इये ॥ ३ ॥
कैसी आगलीक देवांची । जें गंगा जोडली अमृताची ।
हो काज तपें श्रोतेयांचीं । फला आलीं ॥ ४ ॥
आतां इंद्रियजात आववें । तेणें श्रवणाचें घर रिगावें ।
मग संवादमुख भोगावें । गीताख्य हें ॥ ५ ॥
हा अतिशयो अतिप्रसंगें । सांडुनि कथा चि ते सांघें ।
जें कृष्णार्जुन दांघें । बोलत होते ॥ ६ ॥
तेव्हळि संजयो रायातें हणें । अर्जुनु अधिप्रिया दैवगुणें ।
जें अतिप्रीती नारायणें । बोलिजत असे ॥ ७ ॥
देवी लक्ष्मी येतुली जवळिक । परितेही यया प्रेमाचें नेदखे चि मुख ।
आजि कृष्णस्नेहाचें पीक । ययातें चि आयि ॥ ८ ॥
सनकांदिकांचेया दुरासा । वाढिनलेया किर वहुवसा ।
परि तियाही येणें मानें एया । येती चि ना ॥ ९ ॥

यया जगदीश्वराचें प्रेम । येथ दीसतसे निरूपम ।
 कैसें पार्थे येणें सर्वोत्तम । पुण्य केलें ॥ १० ॥
 हो काज येयाचेया प्रीती । हा अमूर्तु आला व्यक्ती ।
 मज येकत्रंकिचिया स्थिती । आवडतसे ॥ ११ ॥
 यन्हविं योगियां नाडले । वेदार्थासि नाकले ।
 जेथ ध्यानाचे डोले । पावतिना ॥ १२ ॥
 तें हा स्वरूप । जें अनादि निष्कंप ।
 परि कवणें मानें सकृप । जालां असे ॥ १३ ॥
 हा त्रैलोक्यपटाची घडी । आकाराची पैल थडी ।
 आड्कें कैसा ययाचिया आवडी । आवरला असे ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।

विवस्वान् मनवे प्राह मनुर्इश्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

मग हणगे पांडुमुता । हा चि योगु आह्मीं विवस्वता ।
 कथिला परि ते वार्ता । बहुतां दिसांची ॥ १५ ॥
 मग तेणें विवस्वतें रवी । हे चि योगस्थिति आववी ।
 निरोपिली वरवी । मनुप्रति ॥ १६ ॥
 मनु आपण अनुष्टिली । मग इश्वाकूसि उपदेशिली ।
 ऐसी परंपरा विस्तारली । आद्य हे ॥ १७ ॥

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।

सकालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥ २ ॥

मग आणिक ही या योगातें । राजरुषी जाळे जाणते ।
 परि तेथीनि आतां सांप्रतें । नेणिजे हा ॥ १८ ॥
 जें प्राणियां कामीं भरु । देहा चि वरि आदरु ।
 बहुत करुनि विसरु । आत्महिताचा ॥ १९ ॥
 अविष्ट नाथिली आस्थानुद्धि । विषयमुख चि परमावधी ।

जाँउ तेसा उपाधि । आवडे लोकां ॥ २० ॥
 यन्हीं तन्हीं खवणेयाचां गावीं । पाटाउवें काइ करावीं ।
 साधें जाल्यंथा रवि । काजा आधि ॥ २१ ॥
 कां बहिरांचिये आस्थानीं । कव्हणीं गीतांतें हानमानी ।
 कां कोल्हेयां चंदनीं । आवडि उपजे ॥ २२ ॥
 पै चंद्रोदया आरौते । जेयांचे डोले फूटति असते ।
 ते काउले केवि चंद्रातें । उच्छ्रखति ॥ २३ ॥
 तैसी वैराग्याची सांव नेदखति । जे विवेकाची भाष नेणति ।
 ते मूर्ख केवि पावती । ईश्वरातें ॥ २४ ॥
 कैसा नेणों मोहो वाढीनला । तेंणें बहुते येकु वेलु गेला ।
 हणौनि योगु हा लोपला । लोकीं इये ॥ २५ ॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

तो चि हा आजि आतां । तुजप्रती कुंतीमुता ।
 सांघितला आहीं तन्वता । भ्रांति न करीं ॥ २६ ॥
 हें जीविचें गा गुज । परि न न्हाइजे चि तूज ।
 जें पढियंसि तूं मज । हणौनियां ॥ २७ ॥
 तूं प्रेमाचा पूतला । भक्तिचा जीवाला ।
 मैत्रियेची कला । धनुर्दरा ॥ २८ ॥
 तूं अनुसंगाचा ठाऊ । आतां तुज काइ राहों ।
 जन्हीं संप्रामाकूढ आहों । जालें आहों ॥ २९ ॥
 तन्हीं नावेक हें साहावें । गाजावज्य ही धरावें ।
 परि तूजें अज्ञानतन्व हरावें । लागे आदीं ॥ ३० ॥

अर्जुन उवाच ॥

अपरं भवतो जन्म नरं जन्म विचस्वतः ।

कथमेतद्विजानोयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

तवं अर्जुनु ह्यणे हरो । माये आपुलेयाचा खेहो करी ।
 एथ विस्मयो काइ अवधारीं । कृमानित्री ॥ ३१ ॥
 तूं सवंसारश्रंताची साउली । अनाथांचो माउली ।
 आमते किर प्रसवली । तूझी चि कृमा ॥ ३२ ॥
 देवा पांगूळ एकार्थे वीजे । तरि जन्मौनि जोजारु साहिजे ।
 हें बोलों काइ तूझे । तुज चि पुढां ॥ ३३ ॥
 आतां पूसैन जें मीं काहीं । तेथ नाकें चित्त देई ।
 तोंचि चि देवें कोपावें नाही । बोला एका ॥ ३४ ॥
 तारं मागीलकी जे वार्ता । तुवां सांगितली होंती अनंता ।
 ते नावेक मज चित्ता । येचिना ॥ ३५ ॥
 जें तो विवस्वतु ह्यणिजे काइ । ऐसें हें वडिलां हीं ठाउवें नाही ।
 तरि तुवां चि केवि पाई । उपदेशिल्य ॥ ३६ ॥
 तो आइकिजे बहुतां कालांचा । आणि तूं तवं कृग्गा सांपेचा ।
 ह्यगौनि गा इये मातूचा । विसंवादु ॥ ३७ ॥
 तेवि चि चरित्र देवा तूझे । आपण काहीं नेणिजे ।
 हें लठिकें केवि ह्यणिजे । येकी हेलां ॥ ३८ ॥
 परि हे चि मातु आवची । मो पारेसें तैसी सांधाची ।
 जें तुवां चि तेया रवां । उपदेशु केडा ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

तवं कृग्यु ह्यगे पांडुमुता । तो वैवस्वतु जें होता ।

तें आह्मी नसां ऐसी चित्ता । प्रतीति तुज ॥ ४० ॥

तरि तूं गा हें नेगसी । पै जन्में आह्मां तुझांसि ।

बहुतें गेलीं परि न स्मरसी । आपुलीं तूं ॥ ४१ ॥

मी जेणें जेणें अवतरें । जें जें होउनि अवतरें ।
 तें समस्त हीं स्मरें । धनुर्द्धरा ॥ ४२ ॥
 ह्यगौनि हें आधर्वें । मागोल मज आठवें ।
 मी अजुही परि संभवें । प्रकृतियोगें ॥ ४३ ॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामोश्वरोऽपि सन् ।
 प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाभ्यात्ममायया ॥ ६ ॥

माझे अव्यक्तत्व न नशे । परि होणें जाणें एक दीसे ।
 तें प्रतिबिंबे मायावशें । स्वस्वरूपीं ॥ ४४ ॥
 माझी स्वतंत्रता न मोडे । परि कर्माधीनु ऐसा आवडें ।
 तें हीं भ्रांतिबुद्धी तरि घडे । यन्हविं नाहिं ॥ ४५ ॥
 जें येक चि दीसे दुसरें । तें दर्पणाचेनि आधरें ।
 यन्हविं काइ वस्तुविचारें । दूजें आहे ॥ ४६ ॥
 तैसा अमूर्तु चि मीं किरीटी । परि प्रकृतितें जें अधिष्ठीं ।
 तें साकारपण नटीं । काजा येया ॥ ४७ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

जें धर्मजात आधर्वें । युगीं युगिं मियां चि रक्षार्वें ।
 ऐसा ओधु हा स्वभावं । आयु असे ॥ ४८ ॥
 ह्यगौनि अजत्व परांतें ठेवीं । मीं अव्यक्तपण हीं नाठत्रिं ।
 जेव्हलि धर्मातें अभिभवो । अधर्मु हा ॥ ४९ ॥
 तेव्हलि आपुलेयाचेनि कैवारें । मी साकार होउनि अवतरें ।
 मग अज्ञानाचें आधरें । गोव्हनि घाली ॥ ५० ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे ॥ ८ ॥

अधर्माची अवधि तोडीं । दोषांचें लिहिलें फेडीं ।
 सज्जनाकरवि गुढीं । उभवीं मीं ॥ ५१ ॥

दैत्यांचीं कुलें नारीं । साधूचा मानु गिवसीं ।
 धर्मासि नीतीसीं । सेस भरीं ॥ ५२ ॥
 मी अविवेकाची काजली । फेडूनि विवेकुदीपु उजलीं ।
 तैं योगियां पाहे दिवाली । निरंतर ॥ ५३ ॥
 स्वसुखें विश्व कोंदे । धर्माचें जगां नांदे ।
 भक्तांसि होंति दोंदे । सात्विकाचीं ॥ ५४ ॥
 तैं पापाचा अचलु फीटे । पुण्याची पाहाट फूटे ।
 जैं मूर्ति माझी प्रकटे । पांडुकुमरा ॥ ५५ ॥
 येयां ऐसेयां काजालागि । अवतारिजें गा युगीं युगीं ।
 परि हें चि वोळखे जो जगां । तो विवेकिया ॥ ५६ ॥
 जन्मकर्मच मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तःवतः ।
 त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥
 माझें अजत्व जन्मणें । अक्रियता चि करणें ।
 अविकार जो जाणे । तो मुक्तु मानी ॥ ५७ ॥
 तो चालिला संगें न चले । देहिचा देहा नाकले ।
 मग पंचत्वीं तवं मिले । माझां चि रूपीं ॥ ५८ ॥
 वीतरागभयक्रोधाः मन्मया मामुपाश्रिताः ।
 बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥
 यन्हवि तन्हीं परापर न शोचिति । जे कामनाशून्य होंती ।
 वाटा केव्हलि न वचति । क्रोधाचिये ॥ ५९ ॥
 जे मियां सदा आथिले । माझियाचि सेवा जियाले ।
 कां आत्मबोधें तोखले । वीतराग ॥ ६० ॥
 जे तपोतेजाचे राशी । कां येकायतन ज्ञानासी ।
 जे पवित्रता तीर्थांसि । तीर्थरूप ॥ ६१ ॥
 ते मद्भावा साहाजें आले । मी ते चि होनि ठेले ।
 जें मज तेयां उरले । पदर नाहीं ॥ ६२ ॥

साधै पितलेचो गंधिकालिक । फीटली होये निःशेष ।
 तै सुवर्णवाइ आणिक । जोइ जाइजे ॥ ६३ ॥
 तैसे यमनियमी कडसले । जे तपोज्ञानी चोखालले ।
 ते मी ते चि जाले । एथ संशयो काइसा ॥ ६४ ॥

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहं ।

मम वर्त्मानुवर्तते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥

यन्हविं तन्हीं पाहीं । जे जैसे माझां ठाई ।
 भजति तेयां मीं हीं । तैसाचि भजें ॥ ६५ ॥
 देखैं मनुष्यजात सकल । हें स्वभावता चि भजनशील ।
 जालें असे केवल । माझां ठाई ॥ ६६ ॥

कांक्षंतः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवताः ।

क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥

परि ज्ञानेविण नारालें । जें बुद्धिभेदासि आलें ।
 तेणें एकां कल्पलें । अनेकत्व ॥ ६७ ॥
 ह्यगौनि अभेदा भेटु देखति । अनामा नामें ठेविति ।
 देवो देवी ह्यगती । अवाच्यातें ॥ ६८ ॥
 जें सर्वत्र सदा सम । तेथ विभाग अधमोत्तम ।
 मतिवसें संभ्रम । विवंचिती ॥ ६९ ॥
 मग नाना हेतूपकारें । यथोचितें उपचारें ।
 मानलीं देवतातरें । उपासिति ॥ ७० ॥
 तेथ जें जें काहीं अपेक्षित । तें तैसेचि पावती समस्त ।
 परि तें कर्मसिद्ध निश्चित । उग्रख तूं ॥ ७१ ॥
 वांचूनि देंतें घेंतें आणिक । निभ्रांत नाहीं सम्यक ।
 येथ कर्म चि फलसूचक । मनुष्यलोकीं ॥ ७२ ॥
 जैसें क्षेत्रीं जें परिजे । तें वाचैनि आन न निफजे ।
 कां पाहिजे तें चि देखिजे । दर्पणाधारें ॥ ७३ ॥

ना तरि कडेयासि तळवटीं । जैसा आपुला चि बोलु किरिटी ।

पडिसादा होउनि उठी । निमित्तयोगें ॥ ७४ ॥

तैसा समस्तां यां भजनां । मी साक्षिभूतु अर्जुना ।

येथ प्रतिस्फले ते भावना । आपुलाली ॥ ७५ ॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ १३ ॥

आतां यया चि परीं जाण । हे च्याऱ्ही वर्ण ।

सृजिले मियां गुण- । कर्मविभागें ॥ ७६ ॥

न मां कर्माणि लिपंति न मे कर्मफले स्पृहा ।

इति मां योऽभिजाताति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४ ॥

हें मज चि तव जालें । परि मियां नाहीं केले ।

ऐसें सांचे जेणें देखिलें । तो सूट्या गा ॥ ७७ ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वं पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥

जें प्रकृतिचेनि आधारें । गुणाचेनि व्यभिचारें ।

कर्म तदनुसारें । विवंचलि ॥ ७८ ॥

येथ येक चि हें धनुषपाणी । परि जालें गा चहूवणीं ।

ऐसी गुणकर्मि कडसगीं । केडी साहाजें ॥ ७९ ॥

हणौनि आइकें पार्था । हे वर्णभेद संस्था ।

मी करिता नोहें सर्वथा । तें यया चि हेतू ॥ ८० ॥

मागील मुमुक्षु जे होते । तिहीं ऐसें चि जाणोनियां मातें ।

कर्म केलीं समस्तें । धनुद्धरा ॥ ८१ ॥

परि तिभें वाजें जैसीं दग्धलीं । कां नुगवती चि पेरलीं ।

तैसिं कर्म चि तेयां जालीं । मोक्षहेतू ॥ ८२ ॥

किं कर्म किमकर्मोति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।

तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽनुभात् ॥ १६ ॥

येथ आणिक ही एक अर्जुना । हे कर्माकर्माविवंचना ।
 आपुलिये चाडे सज्ञाना । योग्य नव्हे ॥ ८३ ॥
 कर्म ह्यणिजे तें कवण । अथवा अकर्मा काय लक्षण ।
 ऐसें विचारितां विचक्षण । गुंणौनि ठेले ॥ ८४ ॥
 जैसें कां कुडें नाणें । खरेयाचेनि सारिखेपणें ।
 डोलियांचें हीं पाहाणें । संशङ् घाली ॥ ८५ ॥
 तैसें नैष्कर्म्यतेचेन भ्रमं । गिर्वसिजत आहाति कर्म ।
 जिहीं दूजी श्रुष्टी मनोधर्म । करूं शकती ॥ ८६ ॥
 वांचूनि मूर्खाची गोठि काड्सी । एथ मोहलले गा क्रांतदर्शी ।
 ह्यणौनि तेंचि आतां परिहसैं । साधेन तुज ॥ ८७ ॥

कर्मणोह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।

अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥

तारि हें कर्म ह्यणिजे स्वभावे । जेणें हा विश्वाकारु संभवे ।
 तें सावेव आदीं जाणावें । लागे एथ ॥ ८८ ॥
 मग वर्णाश्रमासि उचित । जें विशेष कर्म विहित ।
 तें ही ओलखावें निश्चित । उपेगेंसी ॥ ८९ ॥
 पाठिं जें निपिद्ध ह्यणिपे । तें ही बुझावें स्वरूपें ।
 येतुलेनि येथ काहीं न गुंपे । आपैसैं चि ॥ ९० ॥
 यन्हविं जग हें कर्माधीन । ऐसी व्यासि याची गहन ।
 पारि तें असो आड्कैं चिन्ह । प्राप्ताचें ॥ ९१ ॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।

स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

जो सकल कर्मिं वर्त्ततां । देखे निष्कर्मता ।
 कर्मसंगें निरासता । फलाचिया ॥ ९२ ॥
 आणि कर्तव्यते लागि । जेया दूसरें नाहिं जगिं ।
 ऐसी नैष्कर्म्यता तरि चांगी । बोधला असं ॥ ९३ ॥

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ।

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं वुधाः ॥ १९ ॥

परि क्रियाकलापु आववा । आचरतु दीसे बरवा ।

तारि तो इहीं चिन्हीं जाणावा । ज्ञानियां गा ॥ १४ ॥

जैसा जो जलापासैं उभा ठाके । तो जन्है आपणपें जलामाजि देखे ।

तन्हीं निभ्रांत उल्लखे । हणणे मीं वेगला आहे ॥ १५ ॥

अथवा नावे हान रिगे । तो थडियेचे रंखजात देखे वेगें ।

साचोकारें पाहों लागे । तवं रुख हणणे अचल ॥ १६ ॥

तैसें सकल कर्मी असणें । तें फुडें मानूनिया वायाणें ।

मग आपणपां जो जाणे । नैष्कर्म्यता ॥ १७ ॥

आणि उदोअस्तूचेनि प्रमाणें । जैसें न चलतां सूर्यां चालणें ।

तैसें नैष्कर्म्यत्वीं जाणे । कर्म जो गा ॥ १८ ॥

तो मनुष्यासारखा आवडे । परि मनुष्यत्व तेयासि न घडे ।

जैसें जलाधारें न बुडे । भानुबिंब ॥ १९ ॥

तेणें न पांतां विश्व देखिलें । न कारितां सर्व केलें ।

न भोगितां भोगिलें । भोग्यजात ॥ १०० ॥

येके ठांडं बैसला । परि सर्वत्र तो चि गेला ।

हैं असो विश्व जाला । देंहें चि तो ॥ १ ॥

जेया पुरुपाचां ठांडं । कर्माचा तारि खेदु नाही ।

परि फलापेक्षा काहीं । संचरेना ॥ २ ॥

आणि हैं कर्म मी करीन । अथवा आदारिलें सिद्धी नेईन ।

येणें संकल्पें हीं जेयाचें मन । विटाले ना ॥ ३ ॥

ज्ञानाग्नीचेनि मुखें । जेणें जालिलीं कर्म अशेषें ।

तो ब्रह्मचि मनुष्यवेखें । उल्लख तूं ॥ ४ ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।

कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् करोति सः ॥ २० ॥

जो शरीरी उदासु । फलभोगीं निरासु ।
 नित्यता उल्हासु । होउनि असे ॥ ५ ॥
 जो संतोपाचा गाभारां । आत्मबोधाचेया उग्रा ।
 पुरे न हणने चि धनुर्दरा । आरोगितां ॥ ६ ॥
 कैसा अधिकाश्रीक आवडी । घेंत महामुखाची गोडी ।
 सांडौनि आशां सीकु खंडी । अहंभावाची ॥ ७ ॥

निराशर्यताचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।

शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥

हणौनि अवसरें जें जें पावे । तेंणें चि तो मुखावे ।
 जेया आपुलें आणि परावें । दोन्ही नाहीं ॥ ८ ॥
 तो दीठी जें पाहे । तें आपण चि होउनि जाये ।
 आइके तें आहे । तो चि जाला ॥ ९ ॥
 चरणीं हान चाले । कां मुखें जें जें बोले ।
 ऐसें चेष्टाजात तेंतुलें । आपण चि जो ॥ ११० ॥

यदृच्छा त्याभसंतुष्टो द्वंद्वार्तातो विमत्सरः ।

समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबद्धयते ॥ २२ ॥

हें असो विश्वें पाई । जेया आपणपें वांचूनि नाहीं ।
 कर्म तें कवण काइ । वाधी तेयातें ॥ ११ ॥
 आणि हा मत्सरु जेथ उपजे । तें नुरे चि तेया दूजें ।
 तो निर्मत्सरु काइ हणजे । बोलवरी ॥ १२ ॥

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसा ।

यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

हणौनि सर्वां परीं जो मुक्तु । तो सकर्मु चि कर्मरहितु ।
 सगुणु परि गुणार्तातु । येथ भ्रांति नाहीं ॥ १३ ॥
 तो देहसंगें तारी असे । पारि चैतन्या सारिखा दोसे ।
 पाहांतां परब्रह्माचेनि कर्में । चोखाळु भला ॥ १४ ॥

ऐसा ही तो कवतिकें । जरि कमें करी यज्ञादिकें ।
 तारि तियें लया जाति अशेषें । तेयाचां चि ठांडें ॥ १५ ॥
 अकालिचीं अभ्रें जैसीं । ऊर्मावीण आकाशीं ।
 हारपति आपैसीं । उदैलीं सांतीं ॥ १६ ॥
 तैसिं विधिविधानरहितें । जन्हीं आचरला तो समस्तें ।
 तन्हीं तियें ऐक्यभावें ऐक्यातें । पावर्ताळ ॥ १७ ॥
 जें हें हवन मी होता । कां इये यज्ञीं हा भोक्ता ।
 ऐसी बुद्धीसि नाहीं भिन्नता । ह्यणौनियां ॥ १८ ॥
 जें यष्टा यज्ञ यजावें । ते हविमंत्रादीक आववें ।
 तो देखे अविनाभावें । आत्मबुद्धी ॥ १९ ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं ।

ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

ह्यणौनि ब्रह्म तें चि कर्म । ऐसें बोधा आलें जेया सम ।
 तेया कर्तव्य तें नैष्कर्म्य । धनुर्द्वरा ॥ १२० ॥
 आतां अविवेककुमारत्वा मूकलें । जेयां विरक्तीचें पाणिग्रहण जालें ।
 मंगे उपासन जिहिं आणिलें । योगाग्नीचें ॥ २१ ॥
 जे यजनशील अहर्निशीं । जिहीं अविद्या हवीली मनेंसीं ।
 गुरुवाक्य हुताशीं । हवन केलें ॥ २२ ॥
 तिहीं योगाग्नीकिं यजिजे । तो दैवयज्ञु वीजे ।
 तेथ आत्ममुख कामिजे । पांडुकुमरा ॥ २३ ॥
 दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
 ब्रह्माग्नाधपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुव्हति ॥ २५ ॥
 आतां अवधारीं सांघैन आणिक । जे ब्रह्माग्नि क साग्नि क ।
 तेयातें यज्ञें चि यज्ञु देख । उपासिजे ॥ २४ ॥
 एक संयमाग्नी होत्री । ते युक्तित्रयाचां मंत्री ।
 यजन कारति पवित्रीं । इंद्रियद्रव्यां ॥ २५ ॥

भ्रोत्रादीनोंद्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुव्हति ।

शद्वादीन् विपयानन्ये इंद्रियाग्निषु जुव्हति ॥ २६ ॥

एकां वैराग्यरवी विवर्ल्ले । तवं संयती विहार केले ।

तेथ अपावृत जाले । इंद्रियानल ॥ २६ ॥

तिहिं विरक्तिची ज्वाला घेतली । तवं विकारांचीं इंधनें पळिपलीं ।

तेथ आशाधूमें सांडिलीं । पांचे कुंडे ॥ २७ ॥

मग वाक्यविधीचिया निरिविडी । विपयाहुती उदंडीं ।

हवन केले कुंडीं । इंद्रियाग्नीचां ॥ २८ ॥

सर्वाणींद्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।

आत्मसंयमयोगाग्नौ जुव्हति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

येकिं यियाचि परीं पार्था । दोष क्षपिले सर्वथा ।

आणिकीं हृदयारणीं मंथा । विवेकु केला ॥ २९ ॥

तो उपशमीं निहिटिला । धैर्ये वरी दाटिला ।

गुरुवाक्यें काटिला । बलिकटपणें ॥ १३० ॥

ऐसें समरसें मथन केले । तेथ झडकरी काजा आले ।

जे उर्जीवन जाले । ज्ञानाग्नीचें ॥ ३१ ॥

पहिला रिद्धीसिद्धीचा संभ्रमु । तो निवर्त्तोनि गेला धूमु ।

मग प्रकटला सूक्ष्मु । विस्फुलिगु ॥ ३२ ॥

तेया मनाचें मोकले । पेटवण घातले ।

जे यमनियमां हलुवारले । आज्ञे होंते ॥ ३३ ॥

तेणें सांधुक्षणें ज्वाला समृद्धा । तेथ वासनांतराचिया समिधा ।

जेहोंसि विविधा । जालोलाया ॥ ३४ ॥

मग सोहंमंत्रीं दीक्षिति । इंद्रियकर्माचिया आहुती ।

तिये ज्ञानानलीं प्रदीप्ती । दीधलिया ॥ ३५ ॥

पाठि प्राणक्रियेचेन सृवेनसीं । पूर्णाहुति पडिली हुताशीं ।

तेथ अवभृथ समरमीं । साहाजे जाले ॥ ३६ ॥

मग आत्मबोधिचें मुख । तें जैसे संयमाग्नीचें शेष ।
तो चि पुरोडाशु देख । घेतला तिहिं ॥ ३७ ॥
येक ऐसां यजनीं । मुक्त जाले गा त्रिभुवनीं ।
इया यज्ञक्रिया तार आनानीं । परि प्राप्य तें एक ॥ ३८ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥

येक द्रव्ययज्ञ ह्यणपती । एक तपसामाप्रिया निरुजति ।
येक योगयाग ही आहाती । जे सांचीतले ॥ ३९ ॥
येकिं शद्धीं शद्ध चि यजिजे । तो वाग्यज्ञु ह्यणिजे ।
ज्ञानें ज्ञेय गमिजे । तो ज्ञानयज्ञु ॥ १४० ॥
हें अर्जुना सकल कुवाडें । जें अनुष्ठितां अति सांकडें ।
पारे जितेंद्रियांसी चि वडे । योग्यतावसें ॥ ४१ ॥
ते प्रवांण येथ भले । योगसमृद्धी आधिले ।
ह्यणौनि आपणपां तिहीं केलें । आत्महवन ॥ ४२ ॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।

प्राणापानगती रुद्धा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

एक अपानाग्नीचां मुखीं । प्राणद्रव्यें देखें ।
हवन केलें एकीं । अभ्यासयोगं ॥ ४३ ॥
एक अपानु प्राणीं अर्पिती । एक दोहोंतें हीं निरुधिती ।
ते प्राणायामीं ह्यणिपती । पांडुकुमरा ॥ ४४ ॥

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।

सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

येक वज्रयोगक्रमें । सर्वाहारसंयमें ।
प्राणीं प्राणु संभ्रमें । हवन करिती ॥ ४५ ॥
ऐसे मोक्षकाम सकल । समस्त हे यजनशील ।
जिहीं यज्ञद्वारां मल । क्षालन केलें ॥ ४६ ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्मसनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

जेयां अविद्याजात आकलितां । जें उरलें निज स्वभावता ।
तेथ अग्नि आणि होता । उरोचिना ॥ ४७ ॥
जेथ यजितेयाचा कामु पुरे । यज्ञीचें विधान सरे ।
माघातें जेथौनि ॐसरे । क्रियाजात ॥ ४८ ॥
विचार जेथ न रिगे । हेतु जेथ नेवे ।
जें द्वैतदोपसंगें । सिंपै चि ना ॥ ४९ ॥
ऐसे अनादिसिद्ध चोखट । जें ज्ञानयज्ञांविशिष्ट ।
तें ते सेविति ब्रह्मनिष्ठ । ब्रह्माहमंतें ॥ १५० ॥
ऐसे सेखामृतें धाले । कीं अमृतभावासि आले ।
ह्यगौनि ब्रह्म ते जाले । अनायासें ॥ ५१ ॥
एरां विरक्ती माळ न घली चि । जेयां संयमाग्नीची सेवा न घडेचि ।
जे योगयागु ही न कारिती चि । जन्मले सांते ॥ ५२ ॥
एयां अहिक ही एक धड नाही । मग परत्रीक सांविजैल काइ ।
ह्यगौनि असो हे गोठि पाई । पांडुकुमरा ॥ ५३ ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्बुद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥

ऐसे बहुतीं परीं अनेग । जे सांघितले कां याग ।
ते विस्तारुनि वेदें चांग । ह्यणितले आहाति ॥ ५४ ॥
परि तेंणें विस्तारें काइ करावें । हे कर्मसिद्ध जाणावे ।
एतुलेनि कर्मबंधु स्वभावे । पांचल ना ॥ ५५ ॥
अर्जुना वेदु जेहाचें मूल । जें क्रियाविशेषें स्थूल ।
जेयां नवहालियेचें फळ । स्वर्गमुख ॥ ५६ ॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

ते द्रव्ययाग फिर होंती । परि ज्ञानयज्ञाची सरी न पवती ।
 जेवि तारातेज संपती । दिनकरेंसी ॥ ५७ ॥
 देखें परमात्मसुखनिधान । साधावेया योगीजन ।
 जें न विसंभति अंजन । उन्मेखनेत्रीं ॥ ५८ ॥
 जें धावतेया कर्माची लाणि । नैष्कर्म्य बोधाची खाणि ।
 जें भूकैलेयां धणि । साधनाची ॥ ५९ ॥
 जेथ प्रवृत्ति पांगुळ जाली । तर्काचि दृष्टि गेली ।
 जेणें इंद्रियें विसरलीं । विषयसंगू ॥ १६० ॥
 मनाचें मनपण गेलें । जेथ बोलांचें बोलणें ठेलें ।
 जेयामाजि सांपडलें । ज्ञेय दीसे ॥ ६१ ॥
 जेथ वैराग्याचा पांगु फांटे । विवेकाचा ही सोसु तूटे ।
 जें न पांतां साहाजें भेटे । आपणां पें ॥ ६२ ॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेश्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

तें ज्ञान पें गा बरवें । जें मनीं आधि जाणावें ।
 तें संतां ययां भजावें । सर्वस्वेंसीं ॥ ६३ ॥
 जेयांचा ज्ञानकुरुठा । तेथ साधुसेवा हो दारवठा ।
 तो स्वाधीनु करीं सूभटा । उल्लगौनि ॥ ६४ ॥
 जारें तनुमनुजावें । विचारासि लागावें ।
 आणि अगर्वता करावें । दास्य सकळ ॥ ६५ ॥

यश्चात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव ।

येन भूतान्यदोषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥

मग अपेक्षित जें आपुलें । तें ही सांगतील घूसिलें ।
 जेणें अंतःकरण बोधलें । संकल्पा नैये ॥ ६६ ॥
 जेहाचेनि उजीवडें । जालें चित्त निश्रुडें ।
 ब्रह्माचेनि पाडें । निशंक होईल ॥ ६७ ॥

तेव्हलि आपणपेन सहितें । ये अशेपें हीं भूतें ।
 माझां स्वरूपीं अखंडिनें । देखसी तूं ॥ ६८ ॥
 ऐसें ज्ञानप्रकाशें पाहिल । तें मोहांधकार जाइल ।
 जें गुरुकृपा होइल । पार्था गा ॥ ६९ ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
 सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

जन्हीं कल्मषांचा आगर । तूं भ्रांतिचा सागर ।
 व्यामोहाचा डोंगर । होउनि आहासि ॥ १७० ॥
 तन्हीं ज्ञानशक्तींचेन पाडे । हें आववेंचि गा थोकाडे ।
 ऐसें सामर्थ्य जेयाचें चाखडे । ज्ञानीं इये ॥ ७१ ॥
 देखें विश्वसंभ्रमा ऐसा । जो अमूर्तीचा कडवसा ।
 तो जेयाचेया प्रकाशा । पुरे चि ना ॥ ७२ ॥
 तेया काइसे मनोमल । हें बोलतां चि अति कौडाल ।
 नाहिं येणें पाडें दिसाल । दूजें जर्गी ॥ ७३ ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

सावें भूतत्रयाची काजली । जें गगनामात्रि उधली ।
 तियें प्रलङ्घचिये वाहुंठली । काइ अभ्र पुरे ॥ ७४ ॥
 किं पवनाचेनि कोपें । पाणियें चि जें पाळियें ।
 तो प्रलयानलु काइ दडपें । नृणें नावें ॥ ७५ ॥

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥ ३८ ॥

क्षणौनि असां हें न घडे । जें विचारितां चि असंघडे ।
 पुढुतीं ज्ञानाचेनि पाडें । पवित्र न दिसे ॥ ७६ ॥
 एक ज्ञान ही उत्तम होय । आणिक ही येथ तैसें चि आहे ।
 तरि सावें चैनच्य कां नोहे । दूनरें गा ॥ ७७ ॥

ना तरि महातेजाचेनि कसें । चोखाल प्रतिबिंब दीसे ।
 कां गवसलें गवसे । आकाश हें ॥ ७८ ॥
 ना तरि पृथ्वीचेनि पाडे । कांटालें जरि जोडे ।
 तारि ज्ञानासि उपमा घडे । पांडुकुमरा ॥ ७९ ॥
 ह्यणौनि बहुतीं परी पाहातां । पुडुतीं पुडुतीं निर्द्धारितां ।
 हे ज्ञानिची पवित्रता । ज्ञानीचि आधि ॥ १८० ॥
 जैसी अमृताची चवि निवडिजे । तरि अमृता चि सारिखी ह्यणिजे ।
 तैसें ज्ञान हें उपमिजे । ज्ञानेसीं चि ॥ ८१ ॥
 आतां ययावारें बोलणें । वायां चि वेलु फेडणें ।
 तवें साच जी हें पार्थु ह्यणे । बोलिजत असां ॥ ८२ ॥
 परि तेंचि ज्ञान केवि जाणावें । ऐसें जवें अर्जुनें पूसावें ।
 तवें तें मनोगत देवें । जाणीतलें ॥ ८३ ॥

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

मग ह्यणतसे किराटी । आतां चित्त देइ इये गोठी ।
 सांघेन ज्ञानाचिये भेटी । उपावो तुज ॥ ८४ ॥
 तारि आत्मसुखाचिया गोडिया । विटला जो विषयां ।
 जेयाचां ठांइ इंद्रियां । मानु नाही ॥ ८५ ॥
 जो मनासि चाड न संघे । जेयां प्रकृतिचें केलें ने घे ।
 जो श्रद्धेचेनि संभोगें । मुखिया जाला ॥ ८६ ॥
 तेयातें चि गिवसित । हें ज्ञान पावे निश्चित ।
 जेयामाजि अचुंवित । शांति असे ॥ ८७ ॥
 तें ज्ञान हृदयीं प्रतिष्टे । आणि शांतिचा अंकुरु फूट ।
 मग विरतारु बहुत प्रकटे । ततक्षणीं ॥ ८८ ॥
 तेन्हां जेउति वांस पाहिजे । तेउती शांती चि एकि देखिजे ।
 तेथ पारावार नेणजे । निर्द्धारितां ॥ ८९ ॥

ऐसा हा उत्तरोत्तर । ज्ञानबीजाचा विस्तार ।
हा सांगतां असे अपार । परि असो आतां ॥ १९० ॥

अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा त्रिनश्यति ।

नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥

आइकै जेया प्राणियांचां ठांड । यया ज्ञानाचें पाहिलें नाहिं ।
तेयाचें जियालें हणों काड । वरि मेलें चांग ॥ ९१ ॥

भून्य जैसें गृह । कां चैतन्यैवीण देह ।

तैसें जीवीत तें संमोह । ज्ञानहीन ॥ ९२ ॥

अथवा ज्ञान कोर आपु नोहे । परि तें चाड येकि जन्हीं वाहे ।

तेथ जीवाला काहीं आहे । प्राप्तिचा ॥ ९३ ॥

वांचूनि ज्ञानाची गोठि काडसी । परि ते आस्था ही न धरो जो मानसीं ।

तो संशयरूप हुताशीं । पडिला जाण ॥ ९४ ॥

जें अमृत ही परि नावडे । ऐसें संवियां चि अरोचक जें पडे ।

तें मरण आलें असें फुडें । हें जाणों ये कीं ॥ ९५ ॥

तैसा विषयमुखरजें । जो ज्ञानेसीं चि माजे ।

तो संशइ अंगिकरिजे । एथ भ्रांति नाहीं ॥ ९६ ॥

मग संशइ जरि पडिला । तरि निभ्रांत जाणें नाशला ।

तो अहिकाही परि मूकला । मुखासि गा ॥ ९७ ॥

जेया कालञ्जरु आंगीं वाणे । तो शीतोष्णें जैसीं नेणे ।

आगि आणि चांदिणें । सारसें चि मानीं ॥ ९८ ॥

तैसें साच आणि लटकें । वीरू अथवा नीकें ।

संशइ तो नोळखे । हिताहितें ॥ ९९ ॥

हा रातिदिवसु पाहिं । जैसा जख्यथा टाउवा नाहिं ।

तैसें संशया मत्य काहीं । मना नै ये ॥ २०० ॥

हणौनि संशयाहूनि थोर । आणिक पाप नाहिं थोर ।

हा त्रिनाशाची वागुर । प्राणियांसि ॥ १ ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।

आत्मवंतं न कर्माणि निघ्नन्ति धनंजय ॥ ४१ ॥

क्षणानि हा त्यजावा । हाचि येकु जीणावा ।

१० जो ज्ञानाचिया अभावा— । माजि असे ॥ २ ॥

जे अज्ञानाचें गडदे पडे । ते हा बहुयमु मनीं वाढे ।

क्षणानि सर्वथा मार्गु मोडे । विश्वासाचा ॥ ३ ॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।

छित्त्वेनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

हृदईं हाचि न समाए । आणि बुद्धितें गवसूनि ठाए ।

तेथ संशयात्मक होए । लोकत्रय ॥ ४ ॥

ऐसा ही जन्हीं थोरावे । तन्हीं उपायें येकें आंगवे ।

जार हातीं होये बरवें । ज्ञानखड्ग ॥ ५ ॥

तारि तें ज्ञानशस्त्रें तोखटें । निखलु हा निवटे ।

मग निःशेष स्वता फिटें । मानसिचा ॥ ६ ॥

या कारणें पार्था । उठीं वेगी वरौता ।

नाशु करुनि हृदयस्था । संशयासि ॥ ७ ॥

ऐसें सर्वज्ञाचा बापु । जो कृष्णु ज्ञानदीपु ।

तो क्षणतसे सकृपु । आइकें राया ॥ ८ ॥

तव एया पूर्वापर बोलाचा । विचारुनि कुमरु पांडुचा ।

कैसा प्रशु हान अवसरिचा । करिता होईल ॥ ९ ॥

जेयाचां बरवेपणीं । कीजे आठां रसांची ओलावणीं ।

जो सज्जनाचिये आणीं । विसावां जगीं ॥ २१० ॥

तो शांतू चि अभिनवेल । ते परियसां मन्हाटे बोल ।

जे समुद्रा ही हूनि खोल । अर्थभरित ॥ ११ ॥

जैसें त्रिंबं तारि बचकेयेवडे । पारि प्रकाशा त्रैलोक्य थोकडे ।

शब्दाची व्याप्ति तें पाडे । अनुभवांची ॥ १२ ॥

ना तारि कामितेयाचिया इच्छा । फले कल्पवृक्षु जैसा ।
बोलु व्यापकु होये तैसा । तारि अवधान् देयावें ॥ १३ ॥
हैं असो काये ह्यणावें । सर्वज्ञ जाणती स्वभावें ।
तन्हीं नीकैनि चित्त देयावें । हे विनती माझी ॥ १४ ॥
जें साहित्य आणि शांती । हे रेखा दिसे बोलती ।
जैसी लावण्यगुणयुवती । आणि पतिव्रता ॥ १५ ॥
आदिं चि साखर आवडे । आणि ते चि जरि ओखधा जोडे ।
तारि न सेवावीं कां कोडें । नावां नावां ॥ २१६ ॥
साहाजें मलयानीलु मुंदु । तेया हीं होये अमृताचा स्वादु ।
आणि तेथ चि जोडे नादु । दैवंगत्या ॥ १७ ॥
तारि स्पर्शें सर्वांग जीववी । स्वादें जीभेतें नाचवी ।
तेविं चि कानाकरवि ह्यणवी । बापु माझा ॥ १८ ॥
तैसें कथेचें इये आइकणें । एक श्रवणासि होये पारणें ।
आणि संसारदुःखा मोकलवणें । विहृतीविण ॥ १९ ॥
जरि मैत्रें चि वैरी मरे । तारि बायां कां बांधावे कटारे ।
रोगु जाये दूधें ओंगरें । तारि नीबु कां पियावा ॥ २२० ॥
तैसा मनाचा मारु न कारितां । इंद्रियां दुःख नैदितां ।
एथ मोक्षु असे आइकतां । श्रवणांमाझि ॥ २१ ॥
ह्यणौनि आधिलिया आराणुका । गीतार्थु हा नीका ।
ज्ञानदे^{३०} ह्यणे आइकां । निवृत्तिदामु ॥ २२२ ॥

^{३०} तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानयोगो
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ श्रीमद्वामदेवशरणमस्तु ॥

ज्ञानेश्वरी

अध्याय पांचवा.

अर्जुन उवाच ॥

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।

यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

मग पार्थु कृष्णातें ह्यणे । हां हो हें कैमें तुमचें बोलणें ।

एक होये तरि अंतष्करणें । विचारु ए ॥ १ ॥

मागां सकल कर्मांचा संन्यासु । तुझीं चि निरोपिला होता बहुवसु ।

तरि कर्मयोगीं केवि अतिरसु । पोखित असा ॥ २ ॥

हें ऐसें द्वैतार्थ बोलतां । आहां नेणतेयांचेया चित्ता ।

आपुलिये चाडे अनंता । उमजु नोहे ॥ ३ ॥

आइकैं एकसरां तें बोधिजे । तरि एकनिष्ठ चि बोलिजे ।

हें आणिकें काये सांघिजे । तुह्याप्रति ॥ ४ ॥

तन्हीं येया चि लागौनि तुमते । मियां माहोरासि एक विनविलें होतें ।

जें हा परमार्थु ध्वनितें । न बोलावा ॥ ५ ॥

पारें तें मागील असो देवा । आतां प्रस्तुतीं उकळु देखावा ।

सावै दोहोंमाझि बरवा । मार्गु कवणु ॥ ६ ॥

जो परिणामीचा निर्वाला । अचुंविता ये फला ।

आणि अनुष्ठितां प्रांजला । मवियां चि ॥ ७ ॥

जैसें निद्रेंचें मुख न मोडे । आणि मार्गु तरि बहूं सांडे ।
तैसें सोखासना सांघडे । सोहपें होये ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।

तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

एणें अर्जुनाचेनि बोलें । देवो मनीं रिझले ।
मग होईल आइकें ह्यणितलें । संतोखौःनियां ॥ ९ ॥
देखां कामधेनु ऐसी माये । सदैवां जेया होये ।
तो चंद्रु चि परि लाहे । खेळावया ॥ १० ॥
पाहा पां शंभूची प्रसन्नता । तेया उपमन्युचिया आर्त्ता ।
काये क्षीराब्धि दूधमाता । देई चि ना ॥ ११ ॥
तैसा औदार्याचा कुरुठा । कृष्णु आपु जालेयां मुभटा ।
कां सर्व मुखाचा वसैठा । तो चि नोहावा ॥ १२ ॥
एथ चमत्कार काइसा । गोसांविं लक्ष्मीकांता ऐसा ।
आतां आपुलालिया सावेसा । मागाचा किं ॥ १३ ॥
ह्यणौनि अर्जुनें ह्यणितलें । तें हांसौनि येरें दीधलें ।
तें चि सांघेन बोळिलें । काइ कृष्णे ॥ १४ ॥
तो ह्यणे गा कुंतीमुता । हे संन्यासयोग विचारितां ।
मोक्षकर तत्त्वता । दोन्हीं होंति ॥ १५ ॥
तन्हीं जाणां नेणां सकलां । हा कर्मयोग किर पांजला ।
जेसी नाव स्त्रियां वालां । तोयतरणी ॥ १६ ॥
तैसें सारासार पाहिजे । तारि सांहोपा हा चि देखिजे ।
एणें संन्यासफल लाहिजे । अनायासें ॥ १७ ॥

ब्रह्मैव स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।

निर्द्वंद्वो हि महाबाहो सुखं बंधात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

आतां येया चि लागि सांघेन । तुज संन्यासियाचें चिन्ह ।
 मग साहाजें हें अभिन्न । जाणसी तूं ॥ १८ ॥
 तारि गेल्याची से न करी । न पवतां चाड न धरी ।
 जो मुनिश्चलु आंतरां । मेरु तैसा ॥ १९ ॥
 आणि मी माझे हे आठवण । विसरलें जेयाचें अंतःकरण ।
 तो पार्था संन्यासी जाण । निरंतर ॥ २० ॥
 जो मनें ऐसा जाला । संगि तो चि सांडिला ।
 हणौनि मुखें मुख पातला । अखंडीत ॥ २१ ॥
 आतां गृहादीक आवयें । तें काहीं च नलगे लजवें ।
 जें घेंतें जालें स्वभावें । निःसंगु हणुनि ॥ २२ ॥
 देखें अग्नि विज्ञानि जाये । मग जें राखौंडी केवल होये ।
 तें ते कापुसें हों गवसूं ये । जिया परीं ॥ २३ ॥
 तैसा असतेन उपायी । नाकलिजे तो कर्मबंधीं ।
 जेयाचिये बुद्धी । संकलु नाहीं ॥ २४ ॥
 हणुनि कल्पना जें सांडे । तें चि गा संन्यासु घडे ।
 येया कारणें दोन्हीं सांवडे । संन्यासयोग ॥ २५ ॥

सांख्ययोगौ पृथग्वालाः प्रवदंति न पंडिताः ।

एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विदते फलम् ॥ ४ ॥

यन्हवि तन्हीं पार्था । जे मूर्ख होंति सर्वथा ।
 ते सांख्यकर्मसंस्था । जाणति केवि ॥ २६ ॥
 साहाजें ते अज्ञान । हणौनि हणति हें भिन्न ।
 यन्हवि दीप प्रति काइ आनान । प्रकाश आहाति ॥ २७ ॥
 पै सम्यक् एकानुभवें । जेहि देखिलें तत्त्व आवयें ।
 दोहोंतें हों एकभावें । मानिति गा ॥ २८ ॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥

आणि सांख्यीं जें पाविजे । तें चि योगिं गमिजे ।
 ह्यौनि ऐक्य दोहों साहाजे । इया ही परी ॥ २९ ॥
 देखें आकाशा आणि अवकाशा । भेदु कां नाहिं जैसा ।
 तैसें ऐक्य योगसंन्यासा । बोलखे जो ॥ ३० ॥
 तेया चि जगीं पाहले । आपणपें तेंचि देखिलें ।
 जेया सांख्ययोग जाणवले । भेदेविण ॥ ३१ ॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
 योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

जो युक्तिपर्यें पार्था । चडे मोक्षपर्वता ।
 तो महामुखाचा निमथा । बहिला पावे ॥ ३२ ॥
 ऐसी योगस्थिति जेया सांडे । तो बायां चि हव्यासीं पडे ।
 परि प्राप्ति कहीं न घडे । संन्यासाची ॥ ३३ ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः ।
 सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥
 जेणें भ्रांतीपासांनि हीतलें । गुरुवाक्यें मन धूतलें ।
 मग आत्मस्वरूपीं घातलें । हरौनियां ॥ ३४ ॥
 जैसें समुद्रीं लवण न पडे । तवें वेगलें अल्प आवडे ।
 मग होये सिंधू चि एवढें । मिले तेव्हां ॥ ३५ ॥
 तैसें संकल्पौनि काढलें । जेयाचें मन चैतन्य जाले ।
 तेंचि एकदेशिये परि व्यापिलें । लोकत्रय ॥ ३६ ॥
 आतां कर्ता कर्म करावें । हें कुठलें तेया आववें ।
 आणि करी तन्हीं स्वभावं । अकर्ता तो ॥ ३७ ॥

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
 पश्यन्शृण्वन्स्पृशन्निज्जन्मश्रन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥ ८ ॥

जें पार्था तेया देहीं । मीं ऐसा आठौं नाहीं ।
 तरि कर्तृत्व कैचें काइ । उरें सावें ॥ ३८ ॥

ऐसैं तनुत्यागैविण । अमूर्त्तिचे गुण ।
 दीसति संपूर्ण । योगयुक्ता ॥ ३९ ॥
 यन्हविं आणिकाचिया परी । तो ही येकु शरीरी ।
 अशेषीं हीं व्यापारीं । वर्त्ततु असे ॥ ४० ॥
 तो ही नेत्रीं पाहे । श्रवणीं आइकतु आहे ।
 परि तेथिचा सर्वथा नोहे । हें नवल देखैं ॥ ४१ ॥
 स्पर्शासि तरि जाणे । परिमलु सेवीं प्राणें ।
 अवसरोचित बोलणें । तेया हीं आथि ॥ ४२ ॥
 आहारातें स्वीकरीं । त्याज्य तें परिहरीं ।
 निद्रेचा अवसरीं । निदिजे मुखें ॥ ४३ ॥
 आपुलेनि इछावसैं । तो हीं गा चालतु दीसे ।
 पै सकल कर्म ऐसैं । राहाटे किर ॥ ४४ ॥

प्रलपन्विस्सृजन्गृणहन्नुन्मिषन्निभिषन्नपि ।

इन्द्रियार्णोन्द्रियार्थेषु वर्त्तत इति धारयन् ॥ ९ ॥

हें सांघों काइ एकैक । देखैं श्वासोश्वासादिक ।
 आणि निमेषानिमेष । आदिकरुनि ॥ ४५ ॥
 पार्था तेयाचां ठांड । हें आवयें चि आथि पाइं ।
 परि तो कारिता नोहे काहीं । प्रतीतिबलें ॥ ४६ ॥
 जै भ्रांतिसेजे सूतला । तें स्वप्नमुखें भूतला ।
 मग तो ज्ञानोदयीं चेइला । ह्यर्णानियां ॥ ४७ ॥
 आतां अधिष्ठानसंगति । अशेषा हीं इन्द्रियवृत्ती ।
 आपुलाळं अर्थीं । वर्त्तत आर्थीं ॥ ४८ ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥ १० ॥

दोषाचेनि प्रकाशे । गृहिचे व्यापार जैसे ।
 देहीं कर्मजात तैमें । योगयुक्त ॥ ४९ ॥

तो कर्म करी सकलें । परि कर्मबंधा नाकले ।

जैसे न सिंघे जळि जलें । पद्मपत्र ॥ ५० ॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।

योगिनः कर्म कुर्वति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

देखें बुद्धीची भाष नेणजे । मनाचा अंकर नुदैजे ।

ऐसा व्यापार तो बोलिजे । शारीर गा ॥ ५१ ॥

हैं चि मन्हाटे परिहसैं । तारे बालकाची चेष्टा जैसी ।

योगिये करिति कर्म तैसीं । केवला तनू ॥ ५२ ॥

मग पांचभूतिक सांचलें । जेव्हां शरीर असे निदलें ।

तेथ मन चि राहाटे एकलें । स्वतीं जेवि ॥ ५३ ॥

नवल आइकें धनुर्दरा । कैसा वासनेचा संवसारा ।

देहा हों नेंदी उजगरा । परि मुखदुःखें भोगी ॥ ५४ ॥

दाहिं इंद्रियांचां गाविं नेणजे । ऐसा व्यापार जो निरुजे ।

तो केवलु गा ह्यणिजे । मानसाचा ॥ ५५ ॥

योगिये तो ही करिति । परि अकर्म तैसें बुद्धति ।

जे सांडिली आहे संगती । अहंभावाची ॥ ५६ ॥

आतां जालेयां भ्रमहत । जैसे पिशाचाचें चित ।

मग इंद्रियांचें चेष्टित । विकट दीसे ॥ ५७ ॥

स्वरूप तारि देखे । आलविलें आइके ।

शब्दु बोले मुखें । परि ज्ञान नाहीं ॥ ५८ ॥

हैं असो काजेंविण । जें जें काहीं करण ।

तें केवल कर्म जाण । इंद्रियांचें ॥ ५९ ॥

मग सर्वत्र जें जाणतें । तें बुद्धीचें कर्म निहत्तें ।

बोलख अजुनातें । ह्यणे हरी ॥ ६० ॥

ते बुद्धि धूर करुनि । कर्म करी चित देउनि ।

परि नैष्कर्म्यापासौनि । मुक्त दीसनि ॥ ६१ ॥

जे बुद्धिचिये ठाडनि देहीं । तेयां अहंकाराचो शंका नाहीं ।
 ह्यणौनि कमें चि कारित पाहीं । चोखालले ॥ ६२ ॥
 आगा करितेन विण कर्म । तें चि तें नैकर्म्य ।
 हें जाणति गुरुगम्य । सुवर्म जे ॥ ६३ ॥
 आतां शांतरसाचें भरितें । सांडित आहे पातातें ।
 जें बोलणें बोला परातें । बोलवलें ॥ ६४ ॥
 एथ इंद्रियांचा पांगु । जेया फोटला आहे चांगु ।
 तेयांसां चि आथि लागु । परिसावेया ॥ ६५ ॥
 हा असो अतिप्रसंगु । न संडि पां कथालागु ।
 होईल श्लोकसंगती भंगु । ह्यणौनियां ॥ ६६ ॥
 जें मना कळितां कुवाडें । घांघवसितां बुद्धी नातुडे ।
 तें दैवाचेन सुरवाडें । सांघवलें तुज ॥ ६७ ॥
 जें शद्धातीत स्वभावे । तें बोलीं धि जरि फावे ।
 तरि आणिकें काड करारें । साधें कथा ॥ ६८ ॥
 हा आर्त्तिविशेषु श्रोतेयांचा । जाणौनि दामु निवृत्तिचा ।
 ह्यणे संवादु तेयां दोषांचा । परियसां तरि ॥ ६९ ॥
 मग कृष्ण ह्यणे पार्थातें । आतां प्राप्ताचें चिन्ह मुरतें ।
 साध्वैन तुज निरुतें । चित्त देई ॥ ७० ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नेष्टिकीम् ।

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निवर्त्तयते ॥ १२ ॥

तरि आत्मयोगें आधिल । जो कर्मफलासि वीटला ।
 तो घर रिगौनि वरिला । शांती जगी ॥ ७१ ॥
 एरु कर्मबंधें किरीटी । अभिलाखाधिया गांठी ।
 कालासला खुंटी । फलभोगाचां ॥ ७२ ॥
 फलाचिये आधवे । ऐसें कर्म करी आधवें ।
 मग न कीजे येणें भावें । उपेक्षि जो ॥ ७३ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्याऽऽस्ते सुखं वशी ।

नचद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्नकारयन् ॥ १३ ॥

तो जियाकडे वास पाहे । तेउती सुखाची सृष्टि होये ।

तो हग्रे तेथ राहे । महाबोधु ॥ ७४ ॥

नवद्वारें देहीं । तो असे परि नाही ।

कारितू चि न करी काहीं । फलत्यागी ॥ ७५ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।

न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

जैसा कां सर्वेश्वर । पाहिजे तवं निर्व्यापार ।

परि तो चि रची विस्तार । त्रिभुवनाचा ॥ ७६ ॥

आणि कारिता ऐसें क्षणिये । तारि कर्मिं कव्हणिं न सिंघे ।

जें हातुपात्र न लिंघे । उदासवृत्तिचा ॥ ७७ ॥

योगनिद्रा तारि न मोडे । अकर्त्तपणा सांचलु न पडे ।

परि महाभूतांचें दलवाडें । उभारी भलें ॥ ७८ ॥

जगाचां जिविं आहे । परि कव्हणांचा कहिं नोहे ।

जग चि होये जाये । तो शुद्धि ही नेणे ॥ ७९ ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुदृढं विभुः ।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः ॥ १५ ॥

पापपुण्यें अशेषें । तो पासिं चि असतु न देखे ।

आणि साक्षि ही दोहों न टके । एरि गोठि काइसी ॥ ८० ॥

पें मूर्त्तिचेंनि मेलें । तो मूर्त्तु चि होउनि खेले ।

परि अमूर्त्तपण न मेलें । दादुलेयाचें ॥ ८१ ॥

तो मृजी पाळी संहारी । ऐसें बोलति जे चराचरीं ।

ते अज्ञान गा अवघारीं । पांडुकुमरा ॥ ८२ ॥

ज्ञानेन तु तद्ज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।

तेषामादित्यवज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥

तें चि अज्ञान जै समूल तूटे । तें भ्रांतिकें मसैरें फीटे ।
 मग अकर्तृत्व हें प्रकटे । ईश्वराचें ॥ ८३ ॥
 एथ ईश्वर एकु अकर्ता । ऐसें मानलें जरि चित्ता ।
 तो चि मी हें स्वभावता । आदि चि आहे ॥ ८४ ॥
 ऐसेनि विवेकें उदो चित्ति । तेयांसि भेदु कैचा त्रीजगती ।
 देखें आपुलिया प्रतीती । जग चि मुक्त ॥ ८५ ॥
 जैसी पूर्व दिशेचां राउलीं । उदयाची सूर्ये होथे दिवाली ।
 किं एहीं हीं दिशां तिये चि कार्ळीं । कालिमा नाहिं ॥ ८६ ॥
 ऐसें व्यापक ज्ञान भलें । जेयांचेया हृदया गिवसत आले ।
 तेयांची समतादृष्टि बोले । विशेषू कार्ई ॥ ८७ ॥

तद्बुद्ध्यस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।

गच्छंत्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

एक आपणयां चि जैसें । ते देखति विश्व तैसें ।
 हें बोलणें काइ ऐसें । नवल एथ ॥ ८८ ॥
 परि दैव जैसें कवतिकें । कहिं चि सरौनि दैन्य न देखे ।
 कां विवेकु हा नोलखे । भ्रांतितें ॥ ८९ ॥
 ना तरि अंधकाराची वानी । जैसा सूर्यु नेणें स्वप्नीं ।
 अमृत नाइके आपुले कार्णीं । मृत्युकथा ॥ ९० ॥
 हें असो संतापु कैसा । ह्यगौनि चंदु कां न स्मरे जैसा ।
 भूर्ति भेदु नेणाति तैसा । ज्ञानिये ते ॥ ९१ ॥

विद्याचिनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥

मग मशकु हा गजु । कां श्वपचु हा द्विजु ।
 पैल इतरु हा आत्मजु । हें उरैल के ॥ ९२ ॥
 ना तरि धेनु हे श्वान । एक उरुपे एक हीन ।
 हें असो कैचें स्वप्न । जागतेया ॥ ९३ ॥

एथ भेदु तारि देखावा । जरि अहंभाओ उरला होआवा ।
तो आदीं चि नाहिं आघवा । आतां विपम काइ ॥ ९४ ॥
हणौनि सर्वत्र सदा सम । तें आपण चि अद्वय ब्रह्म ।
हैं संपूर्णता जाणै बर्म । समदृष्ट्यांचें ॥ ९५ ॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ १९ ॥

जिहिं विषयसंगु न संडितां । इंद्रियांतें न दंडितां ।

भोगिळी निःसंगता । कामेविण ॥ ९६ ॥

जिहिं लोकाचेन आधारे । लौकिकें चि व्यापारें ।

सांडिलें निदसुरें । लौकीक हें ॥ ९७ ॥

जैसा जनामाजि खेचरु । असतू चि जना नव्हे गोचरु ।

तैसे शरीरी ते परि संसारु । नोलखे तेयां ॥ ९८ ॥

हैं असो पवनाचेनि मेलें । जैसें जलि जल चि लोले ।

आणिकें हणति वेगले । कट्टोल हे ॥ ९९ ॥

तैसें नामरूप तेयाचें । यन्हविं ब्रह्म चि ब्रह्मिचें ।

मन साम्या आलें जेयाचें । सर्वत्र गा ॥ १०० ॥

न प्रदृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।

स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥

ऐसेन समदृष्टी जो हांथे । तेया पुरुषा लक्षण हीं आहे ।

अर्जुना संक्षेपें सांघेन पाहे । अच्युतु हणें ॥ १ ॥

तरि मृगजलाचेनि पूरें । जैसें न लोटिजे कां गिरिवरें ।

तैसा शुभाशुभीं न विकरें । पातळां जो ॥ २ ॥

तो चि तो निरुता । समदृष्टी तत्वता ।

हरि हणें पांडुमुता । तो चि ब्रह्म ॥ ३ ॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विदित्यात्मनियत्सुखम् ।

स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २१ ॥

जेया आपणपें सांडूनि कहीं । इंद्रियत्रामुंवारि एणें नाहीं ।
 तो विषय न सेवी हे काइ । चित्र एथ ॥ ४ ॥
 साहाजें स्वमुखिचेन अपारें । मुरवाडें आंतरें ।
 रचला हणौनि बाहिरें । पाउळ न घली ॥ ५ ॥
 साधें कुमुददलाचेनि ताटें । जेविलः चंद्रकिरणें चोखटें ।
 तो चकोरु बालुवटें । चुंबितु आहे ॥ ६ ॥
 तैसें आत्मसुख उपाइलें । जेयासि आपणपां चि फावळें ।
 तेयां विषय साहाजें सांडले । सांवों काइ ॥ ७ ॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
 आद्यंतवतः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥

यन्हविं तन्हीं कवतिकें । विचारूनि पाहे पां नाकें ।
 एयां विषयांचेन मुखें । झांकवति कवण ॥ ८ ॥
 जिहि आपणपें नाहिं देखिलें । ते चि हीं इंद्रियार्थी रंजले ।
 जैसें कां आलुकैलें । तुपान्न सेवी ॥ ९ ॥
 ना तारि मृगें तृपापीडितें । संभ्रमें विसरौनि जलातें ।
 मग तोयबुद्धि बरडीतें । टाकूनि एंति ॥ ११० ॥
 तैसें आपणपें नाहिं दीठें । जेहांतें स्वमुखाचे सदा खरांटे ।
 तेयांसी चि विषय हे गोमटे । आवडति ॥ ११ ॥
 यन्हविं विपै काइ मुख आहे । हें बोलणें चि सारिखें नोहे ।
 तारि विद्युत्स्फुरणें कां न पाहे । जगामाझि ॥ १२ ॥
 सांघें वातातापु हा धरे । ऐसें अभ्रछाया चि सरें ।
 तारि त्रिमाळिकें धवळारें । करावीं कां ॥ १३ ॥
 हणौनि विषयमुख जें बोलिजे । तें नेणतां गा वायां जल्पिजे ।
 जैसें महुरें हान कां हणिजे । विपकंदातें ॥ १४ ॥
 ना तारि भौमा नावं मंगलु । रोहिर्णानिं हणिजे जलु ।
 तैसा मुग्धप्रवादु वरलु । विपदकु हा ॥ १५ ॥

हे असो आघवी बोली । सांघ पां सर्पफणिची साउली ।
 ते शीतल होईल केतुली । मूखकांसि ॥ १६ ॥
 जैसा आमीपकवल्लु पांडवा । मीनु न सेवी तवं चि वरवा ।
 तैसा विषयसंगु आघवा । निभ्रांत जाणें ॥ १७ ॥
 हें चि विरक्तिचिया दृष्टी । जें निहालिजे किरीटी ।
 तें पांडुरोगाचिये पुष्टी । सारिखें दीसे ॥ १८ ॥
 ह्यणौनि विषयभोगीं जें मुख । तें साद्यंत चि जाण दुःख ।
 पारं काइ करीतु मूर्ख । तें न सेवितां न सरे ॥ १९ ॥
 ते आंतर नेणती चि बापुडे । ह्यणौनि अगत्या सेवणें घडे ।
 साधें पृथपंकिचे कीडे । काइ चिलिसि घेंती ॥ १२० ॥
 तेयां दुःख्यां दुःख चि जिन्हार । ते विषयकर्दमिचे दर्दूर ।
 तें चिं जलतें जलचर । सांडितु केवि ॥ २१ ॥
 आणि दुःखयोनी जिया आहाति । तिया निरर्थका तारे नव्हति ।
 जरि विषयांवारि विरक्ति । धरीति जीव ॥ २२ ॥

शक्रोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।

कामत्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३ ॥

ना तारे गर्भवासादि संकट । कां जन्ममरणींचे कष्ट ।
 हे विसांविनिविण वाट । वाहवी कवण ॥ २३ ॥
 जरि विपद् विषयो सांडिजैल । तरि महादोषिं कें वसिजैल ।
 आणि हा संसारशब्दु नव्हैल । लटका जगीं ॥ २४ ॥
 ह्यणौनि अविद्याजात नाथिलें । तें तिहिं चि साच दाविलें ।
 जिहिं सुखबुद्धी घेतलें । विषयदुःख ॥ २५ ॥
 एया कारणें गा सूभटा । हा विचारितां विखो ओखटा ।
 तूं ज्ञनें कहीं इया वाटा । विसरौनि जासी ॥ २६ ॥
 पैं ययातें विरक्त पुरुष । त्यजीति कां जैसैं विप ।
 निराशां तेयां दुःख । दाविलां नावडे ॥ २७ ॥

ज्ञानियांचां ठाई । एयाची मातु ही किर नाहि ।
 देहीं देहभाव जिहीं । स्ववश केले ॥ २८ ॥
 जेयारें बाह्याची भाप । गेणजे चि निःशेष ।
 आंतर चि सुख । एक आथि ॥ २९ ॥
 परि ते वेगलेपणें कां भोगिजे । जैसें पक्षियें फल चुंबिजे ।
 जैसें नव्हे तेथ विसरिजे । भोगितेपण ॥ १३० ॥
 भोगिं अवस्था एकि उठि । ते अहंकाराचलु लोटी ।
 मग सुखेंसीं घे आंटी । गाढेपणें ॥ ३१ ॥
 तिये आलिंगनमेलीं । होये आपेंआपु कवली ।
 तेथ जल जैसें जलीं । वेगलें न दिसे ॥ ३२ ॥
 कां आकाशीं वायु हारपे । तेथ दोनि हा भाउ लोपे ।
 तैसें मुख चि उरे स्वरूपें । सुरतिं तिये ॥ ३३ ॥
 ऐसी द्वैताची भाप जाये । मग ह्यणों जरि येक चि होये ।
 तारि तेथ साक्षि कवण आहे । जाणतें जें ॥ ३४ ॥
 ह्यणौनि असो हें आववें । एथ न बोलणें काइ बोलवें ।
 ते खुण चि पावैल स्वभावें । आत्मरामीं ॥ ३५ ॥
 जे ऐसेन सुखें मातले । आपणपां चि आपण गुंतले ।
 ते मी जाण निखल ओतले । समरसाचे ॥ ३६ ॥
 ते आनंदाचे अनुकार । मुखाचे अंकुर ।
 किं महाबोधें विकार । केले जैसे ॥ ३७ ॥
 ते विवेकाचे गावं । किं परब्रह्मिचे स्वभाव ।
 ना तरि अलंकरले अवयव । ब्रह्मविद्येचे ॥ ३८ ॥
 ते सत्वाचे सात्विक । किं चैतन्याचे आंगिक ।
 हें बहु असो एकैक । वानिसि काइ ॥ ३९ ॥
 तूं संतस्तवनीं रचसी । तरि कथेचीं से न करिसि ।
 किर निरालीं बोल देखसी । सनागर ॥ १४० ॥

परि तो रसातिशयो मुकुलीं । मग ग्रंथार्थदीप उजलिं ।
 करीं साधुहृदयराउलीं । मंगलउखा ॥ ४१ ॥
 ऐसा गुरूंचा उवाइल । निवृत्तिदासासि पातला ।
 मग तो हण्णे कृष्णु काइ बोलिला । तें चि आइका ॥ ४२ ॥
 योंऽतःसुखोंऽतरारामस्तथांतज्योतिरेव यः ।
 स योगी ब्रह्म निर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥
 अर्जुना अंतःसुखाचां डोहीं । येकसरा तलु घेतला जिहीं ।
 मग थिरावौनि ते हीं । ते चि जाले ॥ ४३ ॥
 अथवा आत्मप्रकाशें चोखें । जो आपणपां चि विश्व देखे ।
 तो देहें चि ब्रह्मसुखें । मानूं येइल ॥ ४४ ॥

लभंते ब्रह्म निर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।

छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥

जें साचोकारं परम् । नातःपर निःसीम ।
 जिये गाविचे निष्काम । अधिकारिये ॥ ४५ ॥
 जें महर्षी वांटलें । विरक्तां भागा फीटलें ।
 जें निःसंशयां पीकलें । निरंतर ॥ ४६ ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।

अभितो ब्रह्म निर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

जिहिं विषयांपासांनि हीतलें । चित्त आपुलें आपण जितलें ।
 ते निश्चित जेथ सूतले । चेंति चि ना ॥ ४७ ॥
 तें परब्रह्मनिर्वाण । जें आत्मविदांचें कारण ।
 ते चि ते पुरुष जाण । पांडुकुमरा ॥ ४८ ॥
 ते ऐसे कैसेन जाले । जें देहें चि ब्रह्मत्वा आले ।
 हें हीं पूससि तारि भलें । संक्षेपे सांगों ॥ ४९ ॥

स्पर्शान्कृत्वा वह्निर्वाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः ।

प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ ॥ २७ ॥

तारि वैराग्याचंन आधारें । तिहिं विषय दबडूनि बाहिरे ।
 शरीरीं एकदरें । केलें मना ॥ १५० ॥
 साहाजें तिहिं संधिसिं भेटी । जेथ भ्रूपल्लवां पडे गांठि ।
 तेथ पाठिमोरी दीठी । पाउखौनियां ॥ ५१ ॥
 सांडूनि दक्षिण वाम । प्राणापानसम ।
 चित्तेंसिं व्योम । गामिये कारति ॥ ५२ ॥

यतेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मांक्षपरायणः ।

विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

तेथ जैसीं रथ्योदकें सकलें । घेउनि गंगा समुद्रीं मिले ।
 मग एकैक वेगलें । काढूं नैये ॥ ५३ ॥
 तैसी वासनांतरांची विवंचना । मग आपैसी पाउखे अर्जुना ।
 जेव्हलि गगनीं लो मना । पवनें कीजे ॥ ५४ ॥
 जेथ हें संसारचित्र उमटे । तो मनोरूपु पट फाटे ।
 जैसा सरोवर आटे । मग प्रतिभा नाहीं ॥ ५५ ॥
 तैसें मनपण मुदल जाये । मग अहंभावादिक कें आहे ।
 ह्यणौनि शरीरें चि गगनं होये । अनुभवी तो ॥ ५६ ॥
 आह्मि मागा मत सांघितलें । जें देहीं चि ब्रह्मत्व पातले ।
 ते एणें मार्गें आले । ह्यणौनियां ॥ ५७ ॥
 यमनियमाचे डोंगर । अभ्यासांचे सागर ।
 क्रमूनि हें पार । पातले ते ॥ ५८ ॥
 तिहिं आपणपें करुनि निर्लेप । प्रपंचा घेतलें माप ।
 मग साचाचें चि रूप । होउनि ठेले ॥ ५९ ॥
 ऐसा योगयुक्तिचा उद्देशु । जेथ बोलिल्या हृषीकेशु ।
 तेथ अर्जुनु मुडंसु । चमत्कारला ॥ १६० ॥
 तें देखिलेयां कृष्णें जाणितलें । मग हांसौनि पार्था ह्यणितलें ।
 हें काइ पां चित्त उवाडलें । इयें बोलीं तूजें ॥ ६१ ॥

तवं अर्जुनु ह्यणे दे३० । परचित्तलक्षणाचा रा३० ।
 भला जाणितला जी भा३० । मानसु माझा ॥ ६२ ॥
 मियां जें विवरूनि काहीं पूसावें । तें आदि च कलिलें देवें ।
 तारि बोलिलें तें चि सांघावें । विवळ करुनि ॥ ६३ ॥
 यन्हविं तन्हैं अवधारां । जो दाखविला तुझीं अनुसारा ।
 तो पन्हणेयांहूनि पायेउतारा । सोहोपा जैसा ॥ ६४ ॥
 तैसा सांख्याहूनि षाहा प्रांजला । परि आह्वांसारिखेयां जी अभोलां ।
 एथ आधि काहिं प्रकाला । तो साहों ए वर ॥ ६५ ॥
 ह्यणौनि एकु वेळ देवा । तो चि पडिताला घेयावा ।
 विस्तरैल तन्हैं सांघावा । सायंतु चि ॥ ६६ ॥
 तवं कृष्ण ह्यणति हो कां । तुज हा मार्गु गमला नीका ।
 तारि काइ जालें ऐकिजो कां । सुखें बोलों ॥ ६७ ॥
 अर्जुना तूं परियससी । परियसौनियां अनुष्ठिसि ।
 तारि आह्वासि वाणि काइसी । सांघें बापां ॥ ६८ ॥
 आदि चि चित्त मायेचें । वरि मीस जालें पढियतेयचें ।
 आतां तें अद्भुतपण स्नेहाचें । कवण जाणे ॥ ६९ ॥
 ते ह्यणो कारुण्यरसाची वृष्टि । किं दयेया स्नेहाची सृष्टी ।
 हें असो नेणिजे दिठी । हरिर्ज्ञ वानुं ॥ १७० ॥
 जे अमृताची जाणों ओदली । किं प्रेम चि पेउनि मातली ।
 ह्यणौनि कां अर्जुनमोहें गुंतली । निगों नेणे ॥ ७१ ॥
 हें बहू जें जें जल्पिजेल । तेंणें कथेसी चि फांकु होईल ।
 परि तें स्नेहरूा नै येइल । बोलवारि ॥ ७२ ॥

भोक्तारं यत्रतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।

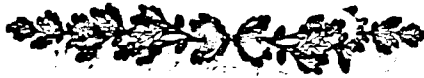
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ २९ ॥

ह्यणौनि विसुरा काः येणें । तो ईश्वर कवलावा कोणें ।
 जो आपुलें मान नेणे आपण चि ॥ ७३ ॥

तन्हीं मागिला ध्वनी आंतु । मज गमला साविया चि मोहितु ।
 जें बलात्कारें असे हणतु । पारियसें परिस ॥ ७४ ॥
 अर्जुना जेणें जेणें भेदें । तूझें कां चित्त बोधे ।
 तैसें तैसें दिनोदें । निरूपिजैल ॥ ७५ ॥
 तो काइसेया नावं योगु । तेयाचा कवण उपयोगु ।
 अथवा अधिकारप्रसंगु । कवणां एथ ॥ ७६ ॥
 ऐसें जें जें काहीं । उक्त असे इये ठांडु ।
 तें आघवें चि पाहीं । सांघेन आतां ॥ ७७ ॥
 तूं चित्त देउनि अवधारीं । ऐसें हणौनियां हरी ।
 बोलिजैल ते पुढारी । कथा आहे ॥ १७८ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
 योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो नाम
 पंचमोध्यायः ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



ज्ञानेश्वरी

अध्याय साहावा

श्रीगणेशायनमः

रायातें ह्यणे संजयो । तो चि अभिप्राउ^३ अवधारिजो ।
कृष्णु सांघति आतां जो । योगरूपु ॥ १ ॥
साहाजें ब्रह्मरसाचें परगुणें । केलें अर्जुनालागि नारायणें ।
किं तिया चि अवसरीं पाहुणे । पातलें आहीं ॥ २ ॥
कैसी दैवाची थोरी नेणजे । जैसें तान्हैलेयां तोय सेविजे ।
किं तें चिये विकरुनु पाहिजे । तवं अमृत आहे ॥ ३ ॥
तैसें आह्वांतुह्वां जालें । जें आठमुठी तत्व फावलें ।
तवं धृतराष्ट्रें ह्यणितलें । हें न पुसों तूतें ॥ ४ ॥
तेया संजया येणें बोलें । रायाचें हृदय चोजवलें ।
जें अवसरीं आहे घेतलें । कुमाराचिया ॥ ५ ॥
हें जाणौनि मनीं हांसिला । ह्यणे ह्यातारा मोहें नासिला ।
यन्हविं बोलु तरि भला जाला । अवसरिचा ॥ ६ ॥
परि तें तैसें कैसेन होईल । जायंथा कैचें पाहील ।
तेविं च एरु सें घेईल । ह्यणौनि भिए ॥ ७ ॥
परि आपण्य चित्ति आपुलां । निकिया परीं संतोषला ।
जें तो संयादु कां फावला । कृष्णार्जुनाचा ॥ ८ ॥

तेणें आनंदाचेनि धालेपणें । साभिप्रायें अंतष्करणें ।
 आतां आदरेंसीं बोलणें । घडैल तेया ॥ ९ ॥
 तो गीतेमाजि षष्टिचा । प्रसंगु असे आणिचा ।
 जैसा क्षीरार्णविं अमृताचा । निवाडु जाला ॥ १० ॥
 तैसें गीतार्थाचें सार । जें विवेकासिंधुचें पार ।
 नाना योगविभवभांडार । उघडलें कां ॥ ११ ॥
 जें आदिप्रकृतिकें विसवणें । जें शब्दब्रह्मासि न बोलणें ।
 जेथौनि गीतावल्लिचें ठाणें । प्ररोहो पावे ॥ १२ ॥
 तो अध्या३^० हा साहावा । वरि साहिल्याचिया वरवा ।
 सांघिजैल ह्यणौनि परियसावा । चित्त देउनि ॥ १३ ॥
 माझा मन्हाटा चि बोलु कवतिकें । परि अमृतातें हीं पैजेंसीं जांके ।
 ऐसीं अक्षरें चि रसिकें । मेलवीन ॥ १४ ॥
 जिये कोवलिकेचेनि पाडे । दीसति नादिचे तरंग थोकडे ।
 वेधें परिमलाचें बीक मोडे । जेयाचेनि ॥ १५ ॥
 आइकां रसालपणाचेया लोभा । किं श्रवणि चि होधि जीभा ।
 बोलें इंद्रियां लागे कलभा । येकमेकां ॥ १६ ॥
 साहाजें शब्दु तरि विषो श्रवणाचा ।
 पारि रसना ह्यणे कां रसु चि हा आमचा ।
 घ्राणासि भावो जाये परिमलाचा ।
 हा तो चि कां होईल ॥ १७ ॥
 नवल बोलतिये रेखेची वाहाणी । दावितां डोलेयां हीं पुरों लागे आणि ।
 ते ह्यणति उघडिलीं कां खाणि । रूपांची हे ॥ १८ ॥
 जेथ संपूर्ण पद उभारे । तेथ मन चि धांवे बाहिरें ।
 बोलुभुजांहीं आशे भरे । आळिंगाचेया ॥ १९ ॥
 ऐसां इंद्रियें आपुलां भाविं । झोंवतां पारि तो सरिसेपणें चि बुझावी ।
 जैसा एकला जग चैववी । सहस्रकरु ॥ २० ॥

तैसैं शब्दाचें व्यापकपण । देखिजे असाधारण ।
 पाठेयां भावज्ञां फावति गुण । चिंतामणिचे ॥ २१ ॥
 हें असो तेयां बोलाचीं ताटें भलीं । वारि कैवल्यरसैं ओगरलीं ।
 हे प्रतिपत्ति मियां केली । निष्कामासि ॥ २२ ॥
 आतां आत्मप्रभा नीचनवी । ते चि करूनि ठाणा दिवी ।
 जो इंद्रियांतें चोरुनु जेवी । तेयासी च फावे ॥ २३ ॥
 एथ श्रवणाचेनि पांगें । विण श्रोतेयां होआवें लगे ।
 हें मनाचेनी चि आंगें । भोगिजे गा ॥ २४ ॥
 आहाच बोलाची वालीप फेडिजे । आणि ब्रह्माचेया चि आंगा घडिजे ।
 मग मुखेंसीं मुरवाडिजे । तेयामाझि ॥ २५ ॥
 ऐसैं हलुवारपण जारि येईल । तारि चि हें उपेगा जाइल ।
 यन्हविं आधवी गोठि होईल । मूकां बोलतेयाची ॥ २६ ॥
 परि तें असो आतां आघवें । न लगे श्रोतियां कडसावें ।
 जें एथ अधिकारिये स्वभावें । पूर्णकाम ॥ २७ ॥
 जेहीं आत्मबोधाचिया आवडी । केली स्वर्गसंसाराची कुरवंडी ।
 ते वांचौनु एथिची गोडी । नेणति आणिक ॥ २८ ॥
 जैसा वायसीं चंद्र नालखिजे । तैसा प्राकृतीं ग्रंथु हा नेणिजे ।
 आणि तो हिमांशु जेविं खाजें । चकोरांचें ॥ २९ ॥
 तैसा सज्ञानांसि तारि हा टाउ । आणि अज्ञानांसि आन गाउ ।
 ह्णौनि बोलावेया विपो पाहा हो । विशेषें नाहिं ॥ ३० ॥
 परि अनुवादळें मी प्रसंगें । तें सज्जनीं उपसाहावें लगे ।
 आतां सावेंन काइ श्रारंगें । निरूपितें जें ॥ ३१ ॥
 तें बुद्धी हीं कवलितां सांकडें । ह्णौनि बोलीं विपायीं सांपडे ।
 परि निवृत्तिह्णुपाउजियेडें । देखेंन मी ॥ ३२ ॥
 जें दिठी हीं न पविजे । तें दिठाविण देखिजे ।
 जन्हे अर्ताद्रिय लाहिजे । ज्ञानवटें ॥ ३३ ॥

ना तरि जें धातुवादिया हीं न जोडे । तें लोहीं चि पन्हें सांपडे ।
 जारि दैवयोगें चडे । परिसु हाता ॥ ३४ ॥
 तैसी सदुरुकृपा होए । तरि करितां काइ आपु नोहे ।
 हणौनि अपार मातें आहे । ज्ञानदेउ हणें ॥ ३५ ॥
 तेंणें कारणें मीं बोलैन । बोलीं अरूपाचें रूप दावीन ।
 अतींद्रिय परि भोगवीन । इंद्रियांकरविं ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ॥

स संन्यासी च योगी च न निरग्निरन चाक्रियः ॥ १ ॥

आइकां यशश्रीऔदार्य । ज्ञानवैराग्यऐश्वर्य ।
 हे साही गुणवर्य । वसति जेथ ॥ ३७ ॥
 तेथ तो भगवंतु । जो निःसंगाचा सांगातु ।
 हणें पार्था दत्तचित्तु । होई आतां ॥ ३८ ॥
 आइकें योगी आणि संन्यासी जनीं । हे एक चि सिनाने जनें मानीं ।
 यन्हविं विचारिजति जवं दोन्हीं । तवं एकु चि ते ॥ ३९ ॥
 सांडिजे दुजेया नामाचा आभासु । तारे योगु तो चि संन्यासु ।
 पांतां ब्रह्मीं नाहिं अवकाशु । दोहींमाझि ॥ ४० ॥
 जैसें नावांचेनि अनारिसेपणें । एका पुरुषातें आलवणें ।
 कां दोहीं मार्गी जाणें । एका चि ठाया ॥ ४१ ॥
 ना तरि एक चि उदक साहाजें । परि सिनानां घटीं भारिजे ।
 तैसें भिन्नत्व हें जाणिजे । योगसंन्यासांचें ॥ ४२ ॥
 आइकें सकलसंमतें जगिं । पाहे तो चि योगी ।
 जो कमें करौनि रागी । नव्हे चि फलें ॥ ४३ ॥
 जैसी मही हे उद्विजें । जनीं अहंबुद्धिविण साहाजें ।
 तेथिचीं तियें वीजें । अपेक्षा ना ॥ ४४ ॥

तैसैं आम्नायाचेनि आधारें । जातीचेनि अनुकरें ।
 जे जैं भवसरें । करणें पावे ॥ ४५ ॥
 तें तैसैं चि उचित करी । परि साटोप नाहिं शरीरी ।
 बुद्धि हीं करौनु फलवेन्ही । जाये चि ना ॥ ४६ ॥
 ऐसा तो चि गा संन्यासी । पार्था परिग्यसि ।
 तो चि भवसेंसी । योगीश्वर ॥ ४७ ॥
 वांचूनि उचित कर्म प्रासंगिक । तेयातें ह्यणे हें सांडीन बद्धक ।
 तरि टाकटाकीं आणिक एक । मांडी चि तो ॥ ४८ ॥
 जैसा ज्ञालैनियां लेपु एकु । सर्वें चि लाविजे आणिकु ।
 तैसा आप्रहाचा पाइकु । विचंचे वायां ॥ ४९ ॥
 गृहस्थाश्रमाचें ओझे । कपालीं आदिं चि आहे साहाजें ।
 किं तें चि संन्यासु सवा टेविजे । सरिसें पुडुती ॥ ५० ॥
 ह्यणौनि अग्निसेवा न संडितां । कर्मरेखा नोलंडिता ।
 आधि योगमुख स्वभावता । आपणपां चि ॥ ५१ ॥
 आइकें संन्यासी तो चि योगी । ऐसी एकवाक्यतेची जर्गि ।
 गुढी उभिली अनेकीं । शास्त्रांतरी ॥ ५२ ॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव ॥
 न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥
 आरुह्योर्मुनेयोगं कर्म कारणमुच्यते ।

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

जेथ संन्यासैला संकल्पु तूटे । तेथ चि योगाचें सर्वस्व भेटे ।
 ऐसैं हें अनुभवाचेनि धटे । ताच तेया ॥ ५३ ॥
 आतां योगाचलाचा निमधा । जरि टाकावा आधि पार्था ।
 तरि सोपाना या कर्मपंथा । चूकामि ज्ञनें ॥ ५४ ॥
 एणें यमनियमाचेनि तळवटे । रिगें आसनाचिये पाउलवाटे ।
 एइं प्राणायामाचेनि आडकंठें । वरौता गा ॥ ५५ ॥

मग प्रत्याहाराचा आधाडा । जो बुद्धिचेयां हीं पायां निसरडा ।
 जेथ हटिये सांडित होडा । कडेलग ॥ ५६ ॥
 तर्हि अभ्यासाचेनि वलें । तिये प्रत्याहारीं निराले ।
 नाखि लागैल घेइं डालें । वैराग्याचीं ॥ ५७ ॥
 ऐसा पत्रनाचेनि पाठारें । एतां धारणेचें पैयारें ।
 क्रमिध्या नावं चवरों । सांडे तत्रं ॥ ५८ ॥
 मग तेया मार्गाचीं धावं । पुरैल प्रवृत्तिचीं हावं ।
 जेथ साध्यसाधना खेवं । समरसें होइल ॥ ५९ ॥
 जेथ पुढैल पैसु पारुखे । मार्गील स्मरावें तें ठाके ।
 ऐसिये सरिसिये भूमिके । समाधि राहे ॥ ६० ॥
 येणें उपायें योगारूढु । जां निरवधीं जाला प्रौढु ।
 तेयाचेया चिन्हामाजि निवाडु । तें सांघेन आइक ॥ ६१ ॥

यदा हि नैन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ॥

सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

तारि जेयाचेया इंद्रियांचेया घरा । नाहिं विषयांचिया परझारा ।
 जो आत्मबोधाचेया उभरां । पत्रडला असे ॥ ६२ ॥
 जेयाचें सुखदुःखाचेनि आंगें । झगटलें मानस चेउ नेधे ।
 विखां पासीं हीं आलेयां आशे न रिगे । हें काइ हणौनि ॥ ६३ ॥
 इंद्रियें कर्माचां च ठांइ । वाढिनलीं परि कहीं ।
 फलहेतुचो राळ नाहीं । अंतःकरणों ॥ ६४ ॥
 असतेनि देहें येतुळा । जो चेंतू चि देखसी निदेल ।
 तो चि योगारूढु भला । बोळख तूं ॥ ६५ ॥
 तेथ अर्जुनु हणें अनंता । हें मज विस्मो ब्रह्म आइकतां ।
 सांघें तेया ऐनां योग्यता । कवणें दीजे ॥ ६६ ॥

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवग्रयाद्ध्येन् ।

आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

तव हासौनि कृष्ण हणें । तून्नं नवल ना हें बोलणें ।
 कवणासि काइ दीजेल कवणें । एथ अद्वैतीं इये ॥ ६७ ॥
 पैं व्यामोहाचिये सेजे । बलियां अविद्या निद्रितां रिगिजे ।
 तेव्हलि हा दुःस्वप्नु भोगिजे । जन्ममृत्युचा ॥ ६८ ॥
 पाठिं अवसांत ये चे३० । तैं ते आववें चि होये वावो ।
 ऐसा उपजे नित्य सद्भावो । तो ही आपणपां चि ॥ ६९ ॥
 हणौनि आपण चि आपणपेया । घातु कौजतसे धनंजया ।
 चित्त देउनि येया नाथिलेया । देहाभिमाना ॥ ७० ॥

बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ॥

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६॥

हा विचारुनि सांडिजे । मग असती चि वस्तु होइजे ।
 तारि आपुली शास्ति साहाजें । आपण केली ॥ ७१ ॥
 यन्हर्वि कोसेकीटकिएचिया परीं । तो आपणपेया आपण बैरी ।
 जो आत्मबुद्धि शरीरीं । चारुस्थला ॥ ७२ ॥
 कैसा प्राप्तिचिये वेले । निदैंवां आंधलेपणाचे डौले ।
 किं असने आपुले डोले । आपण बांधे ॥ ७३ ॥
 कां कन्हणीं येकु भ्रमलेपणें । मी तो नोहें गा चोरलां हणें ।
 ऐसा नाथिला संदु अंतष्करणें । घेउनि ठाके ॥ ७४ ॥
 यन्हर्वि होय तें चि तो आहे । पारि काइ कीजे बुद्धि तैसी नोहे ।
 देखां स्वप्निचेनि घायें । किं मरे साचे ॥ ७५ ॥
 जैसी तेया शुकाचेनि आंगभारें । नलिका भविनली परी मोहरे ।
 तारि तेंणें नुडावें कां पारि न पुरे । मनाशंके ॥ ७६ ॥
 वायां चि मान पीली । आंठूंइ हियें आवली ।
 टिटियांतु नली । धरुनि ठाके ॥ ७७ ॥
 हणें बांधला मी फुडा । णेसिये भावनेचिये पडे खोडां ।
 किं मोकलेयां पांयांचा चवडा । गुफी अधिकें ॥ ७८ ॥

ऐसा काजेविण आंतुडला । तो साचें पां काइ आणिकें बांधला ।
 मग नोंसंडी जन्हें नेला । तोडानु आया ॥ ७९ ॥
 हणानि आपणपेयां आपण चि रिपु । जणें वाढविला हा संकरु ।
 एरु स्वये हणां वन्युवापु । जो नाथिलें नेधे ॥ ८० ॥

जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः ॥

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥

तेया स्वांतष्करणाजिता । सकलकामोपशांता ।
 परमात्मा परौता । दूरिं नाहीं ॥ ८१ ॥
 जैसा किडाल्याचां दोखु जाये । तारि पन्हें तें चि होये ।
 तेंसं जीवा ब्रह्मत्व आहे । संकल्पलोपीं ॥ ८२ ॥
 घटाकाशु हा जैसा । निमाळ्यां तेया अवकाशा ।
 न लगे मिलें जाणें आकाशा । आना ठाया ॥ ८३ ॥
 तैसा देहो अहंकार नाथिला । समूल जेयाचा नासला ।
 तो चि परमात्मा सांचला । आदिं चि आथि ॥ ८४ ॥
 आतां शीतोष्णाचिया वाहणी । तेथ कें सुखदुःखाची कडसणी ।
 इयें न समांति गा बोलणीं । मानापमानांचिया ॥ ८५ ॥
 जिया जिया वाटा सूर्यु जाये । तेउतें तेजाचें चि विश्व होये ।
 तैसें तेया पावें तें आहे । तो चि हणानि ॥ ८६ ॥
 देखें मेवौनि सृष्टति धारा । तिया न रूपति जैसिया अंबरा ।
 तैसीं शुभाशुभें योगेश्वरा । नव्हंति आनं ॥ ८७ ॥

ज्ञानविज्ञानवृत्तात्मा कृटस्थो विजितेंद्रियः ॥

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ८ ॥

जो हा विज्ञानात्मकु भावो । तेया विवरितां जाला वावो ।
 मग लागला जवं पाहो । तवं ज्ञान तें तो चि ॥ ८८ ॥
 आतां व्यापकु कि एकदेशी । हे उहांपुही जे ऐसी ।
 ते करावे टेली आपैसी । दुजेन विण ॥ ८९ ॥

ऐसा शरिरं च परि कवतिकें । ब्रह्माचेनि पाडें तुके ।
 जेणें जितिलीं इयें एकें । इंद्रियें गा ॥ ९० ॥
 तो जितेंद्रियु साहाजें । योगयुक्तु चि ह्यणिजे ।
 जेयातें सानें थोर नेणिजे । कव्हणिये कार्लिं ॥ ९१ ॥
 देखें सोनेयाचें निखल । मेरु एसणें ढिसाल ।
 आणि मातियेचें डिखल । सरिसें चि मानी ॥ ९२ ॥
 पातां पृथ्वयेचे मोल थोकडें । ऐसें अनर्थ्य रत्न चोखडें ।
 देखे दगडाचेनि पाडे । निचाड ऐसा ॥ ९३ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥

साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धि विशिष्यते ॥ ९ ॥

आतां सुहृदु आणि शत्रु । कां उदामु आणि मित्रु ।
 हा भावभेदु विचित्रु । संकल्पु कैचा ॥ ९४ ॥
 तेया बंधु काइ कासेयाचा । द्वेषिया कव्हणु कैहाचा ।
 मीं च विश्व ऐसा जेयाचा । बोधु जाला ॥ ९५ ॥
 मग तेयाचिये दृष्टी । अधमोत्तम किरीटी ।
 काइ परिसाचिये कंसवटी । वानिया जाणें ॥ ९६ ॥
 तो जेविं निर्वाणवर्णु चि करी । तैसी तेयाची बुद्धि चराचरीं ।
 होए साम्याची उजरी । निरंतर ॥ ९७ ॥
 ते विश्वालंकाराचेनि विमुरें । जन्हि आहाति आनान आकारें ।
 तन्हि घडलें एकें चि भांगारें । परब्रह्म ॥ ९८ ॥
 ऐसें जाणणें जें वरवें । तेया फावलें तें आववें ।
 ह्यणौनु आहाचवाहाच न झकवे । एणें आकारचित्रें ॥ ९९ ॥
 घापे पटामाजि दाटी । दासे तंतुची संघ सिठी ।
 परि तो एका बांचौनि गोटी । करूं चि नैये ॥ १०० ॥
 ऐसी प्रतीति हे जेथे गवसे । अनुभव हिं जेया असे ।
 तो चि समबुद्धि अनारिसें । नव्हे जाणें ॥ १ ॥

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ॥

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥

जेयाचें नात्रं गा तीर्थरा३० । दर्शनें प्राप्तिचा चि ठा३० ।
जेयाचेनि संगें ब्रह्मभा३० । भ्रांतांसी गा ॥ २ ॥
जेयाचेनि बोले धर्मु जिए । दीठि महासिद्धितें विये ।
देखें स्वर्गसुखादि इएं । खेलु जेयाचा ॥ ३ ॥
विपार्यें जरि आठवला चित्ता । तरि दे आपुली योग्यता ।
हें असो तेहातें प्रसंसितां । लामु आथि ॥ ४ ॥
पुढुतीं अस्तवेना ऐसें । जेया पाहलें अद्वैतदिवसें ।
मग आपणपां चि आपण असे । अखंडीत ॥ ५ ॥
ऐसिया द्विष्टि जो विवेकी । पार्था तो एकाकी ।
साहाजें अपरिग्रही जें तिहिं लोकीं । तो चि ह्यणौनि ॥ ६ ॥
ऐसिं इयें असाधारणें । निष्पन्नाचीं लक्षणें ।
आपुलेन बौहसपणें । बोले कृष्णु ॥ ७ ॥
जो ज्ञानियांचा बापु । देखणेयांचिये दीठी दीपु ।
जेया दादुलेयाचा संकल्पु । विश्व रची ॥ ८ ॥
प्रणवाचिये पेंठे । जालें शब्दब्रह्म मांजिठें ।
तें जेयाचेया यशा धाकुटें । वेदूं न पुरे ॥ ९ ॥
जेहाचेनि अंगिकें तेजें । आ३० रविशशिये वणिजे ।
ह्यणौनि जग हें वेसजें । पोसे तेयां ॥ ११० ॥
हां गा नात्रं चि येक जेहाचें । पातां गगन हीं दीसे टांचें ।
गुण येकैक काइ तेहाचे । कलिशील तूं ॥ ११ ॥
ह्यणौनि असो हें वानणें । साध्रें नेणों कवणाचीं लक्षणें ।
दावावीं मीसें एणें । बोलिलां तों ॥ १२ ॥
आइकां द्वैताचा ठा३० चि फेडी । ते ब्रह्मविद्या कीजैल उवडी ।
तरि अर्जुनु पाढिये हे गोडी । नासैल हान ॥ १३ ॥

ह्यणौनि तें तैसें बोलणें । नव्हे सततल आड लावणें ।
 केलें मेद्व चि वेगलेपणें । भोगावेया ॥ १४ ॥
 जै सोहंभाओ हा ढंकु । मोक्षसुखा लागौनि रंकु ।
 तेयाचिये दीठिचा झनें कलंकु । लागे प्रेमा ॥ १५ ॥
 विपायें अहंभाओ येयाचा जाइल । मिं तें चि जरि हा होईल ।
 तरि काइ कीजेल । एकलेयां ॥ १६ ॥
 दीठी चि पाहातां निविजे । कां तोंड भरुनु बोलिजे ।
 दाट्टुनु खंव देइजे । ऐसैं कवण आहे ॥ १७ ॥
 आपुलेया मना बरवी । जे असमाई गोठि जीवीं ।
 ते कवणोंसिं मग चावलावी । जरि ऐक्य जालें ॥ १८ ॥
 इया काकुलती जनार्दन । अन्योपदेशाचेनि हातासनें ।
 बोळामाझि मन मनें । आळिगु सरलें ॥ १९ ॥
 हें परिसतां जरि कानडें । तरि जाण पां पार्थु उघडें ।
 श्रीकृष्णसूपाचें चि रूपडें । ओतलें आहे ॥ १२० ॥
 हें असो वयसेचिये सेवटीं । जैसें येक चि विये वांझौटी ।
 मग ते मोहाची तुगुटी । नाचों लागे ॥ २१ ॥
 तैसें जालें अनंता । ऐसैं तरि मीं न ह्यणतां ।
 जरि तेथ न देखतां । अतिशयो एथ ॥ २२ ॥
 पाहा पां नवल कैसें चोज । के उपदेशु के जूझ ।
 पारि पुढें वालभाचें चि भोज । नाचतसें ॥ २३ ॥
 आवडि ह्यणौनि न लजवी । व्यसन जैसें न सीणवी ।
 पीसैं आणि न भुलवी । तरि तें चि काइसें ॥ २४ ॥
 ह्यणौनि भावार्थु हा ऐसा । अर्जुनु मैत्रिएचा कुवांसा ।
 किं मुखें शृंगारलेया मानसा । दर्पणु तो ॥ २५ ॥
 बापु पुण्य पवित्र । जगीं भक्तिर्वाजासि क्षेत्र ।
 तो कृष्णकृपे पात्र । एया चि लागि ॥ २६ ॥

हो काज आत्मनिवेदनातलिची । जे पीठिका आहे सख्याची ।
 पार्थु अधिष्ठात्री तैथिची । मातृका गा ॥ २७ ॥
 पासिं चि गोसांविं वर न वनिजे । मग पाइकाचा गुणु घेइजे ।
 ऐसा अर्जुनु तो साहाजे । पढिए हरी ॥ २८ ॥
 पाहे पां अनुरागे भजे । जे प्रियोत्तमें मानिजे ।
 ते पती ही हुनु काइ न वनिजे । पतिव्रता ॥ २९ ॥
 तैसा अर्जुनु विशेषे स्तवावा । ऐसें आवडलें मज जीवा ।
 जें तो त्रिभुवनीचेया दैवां । आयतन जाला ॥ १३० ॥
 जेयाचिये आवडीचेन पांगें । अमुर्तु ही मूर्ति आवगे ।
 पूर्णा पारि लागे । अवस्था जेयाची ॥ ३१ ॥
 तव श्रोते ह्यणति दैव । कैसी बोलाची हवाव ।
 काइ नादातें हान वरिवं । जीर्णानि आले ॥ ३२ ॥
 हां हो नवल नोहे देशी । मन्हाटी बोलिजे तरि ऐसी ।
 वाणें उमटत आहे मा आकाशीं । साहिल्या रंगाचें ॥ ३३ ॥
 कैसें उन्मेखचांदिणें तार । आणि भावार्था पडतसे गार ।
 हें चि श्लोकार्थ कुमुदिं तरि फार । सेवितां होंतें ॥ ३४ ॥
 चाड चि निचाडां करी । ऐसी मनोरथीं इए थोरी ।
 तेणें विवळलें जेथ आंतरीं । तेथ डोलु आला ॥ ३५ ॥
 तें निवृत्तिदासें जाणीतलें । मग अवधान देआं ह्यणितलें ।
 नवल पांडवकुलीं पाहलें । कृष्णदिवसें ॥ ३६ ॥
 देवकिया उदरीं वाहिला । यशोदा सायासें पाहिला ।
 किं शेषीं आइता उपेगा गेला । पांडवांसी ॥ ३७ ॥
 ह्यणौनि बहुत दीवसु ओलगावा । कां अवसरु पाहोनि विनवावा ।
 हा ही सोसु तेया सदैवां । पडे चि ना ॥ ३८ ॥
 हें असोनु कथा सांवे वेगीं । मग अर्जुनु ह्यणें सलगी ।
 देवा इये संतचिन्हें हान आंगीं । न ठांति माझां ॥ ३९ ॥

यन्हविं ययां लक्षणाचेया सारा । मी अपाडे किर अपुरा ।
 पारि तुमचेनि बोलें अवधारां । थोरावें जरि ॥ १४० ॥
 जी तुहीं चित्त देआल । तारि ब्रह्म माझे होइल ।
 काइ जाले अभ्यासिजैल । सांघाल तें ॥ ११ ॥
 हां हो नेणों कोणाची काहाणी । श्लाघिजत असे अंतष्करणीं ।
 ऐसो जालेपणाची स्त्रियाणी । काइसी तन्है ॥ ४२ ॥
 तें आंगें चि मियां होइजो कां । एतुलें गोसांविपणें आपुलें कीजो कां ।
 तवं हांसौनि कृष्णु हो कां । करुं हणथी ॥ ४३ ॥
 देखां संतोखु एकु न जोडे । तवं सुखाचें सैघ सांकडे ।
 मग जोडलेयां काहीं कवणीकडे । अपुरें असे ॥ ४४ ॥
 तैसा सर्वेश्वरु चि बलिया सोंके । हणौनि ब्रह्म होये कवतुकें ।
 पारि कैसा भारें आतला पां पीके । दैवांचेनि ॥ ४५ ॥
 जो जन्मसहस्रांचिया साटीं । इंद्रादिकां महागु भेटी ।
 तो आधीनु कैतुला किरिटी । जें बोलु ही न साहे ॥ ४६ ॥
 मग आइकां जें पांडवें । हणितलें ब्रह्म मियां चि होआवें ।
 तें अशेष ही देवें । निर्द्धारिलें ॥ ४७ ॥
 तेथ ऐसें चि एक विचारिलें । जें यया ब्रह्मत्वाचे डोहोले ।
 पारि उदरा वैराग्य आहे आलें । बुद्धिचेया ॥ ४८ ॥
 यन्हविं दिवस तरी येया अपुरे । पारि तें वैराग्यवसंताचेनि भारें ।
 जें सोहभावमहुरें । मोडौनि आलें ॥ ४९ ॥
 हणौनि प्राप्तिफलीं फलतां । एयासि वेळु न लगैल आतां ।
 होये विरगतु ऐसा अनंता । भरवसां जाला ॥ १५० ॥
 हणो जें जें हा अधिष्ठील । तें आतां आरंभीं चि एआ फावैल ।
 हणौनि सांघितला न वचैल । अभ्यासु वायां ॥ ५१ ॥
 ऐसें विवरौनियां श्रीहरी । हणितलें तेया अवस्वरीं ।
 अर्जुना हा अवधारीं । पंधराजु ॥ ५२ ॥

जेथ प्रवृत्तितरूचां बुडि । दीसती निवृत्तिकळांचिया कोडी ।

जिये मार्गिचा कापडी । महेशु आबुई ॥ ५३ ॥

पैं योगिवृद्धें वहिलीं । आड चि आकाशें निगाली ।

किं तेथ अनुभवाचां पाउलीं । धोरणु पडिला ॥ ५४ ॥

ते हीं आत्मबोधाचेनि उजुकारें । धांव घेतली एकसरें ।

एर सकल मार्ग निदुमुरे । सांडूनियां ॥ ५५ ॥

पाठिं महर्षा एणें आले । सावकांचे सिद्ध जाले ।

आत्मविद थोरावले । एणें चि पथें ॥ ५६ ॥

हा मार्गु जैं देखिजे । तैं ताहन भूक विसरिजे ।

रात्रि दिवसु नेणिजे । वाटे इये ॥ ५७ ॥

चालतां पाउल जेथ पडे । तेथ अपवर्गाची खाणि उघडे ।

अव्हांटलेयां जोडे । स्वर्गमुख ॥ ५८ ॥

निगिजे पूर्विलीं मोहोरा । किं येइजे पश्चिमाचेया घरा ।

निश्चलपण धनुर्दरा । चालणें एथिचें ॥ ५९ ॥

एणें मार्गें जेया जाइजे । तो गाउं आपण होइजे ।

हें सांधें काइ साहाजें । जाणसी तू ॥ १६० ॥

तेथ पाथें ह्मणितले देवा । तारि तें चि मग केव्हां ।

कां आर्त्तिसमुद्रौनि न कदावा । बुडुतु जी मी ॥ ६१ ॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ॥

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥

तवं कृष्णु ह्मणति ऐसें । उत्मुक बोलणें काइसें ।

आह्मिं सांघत असों आपैसें । वरि पूसिलें तुवां ॥ ६२ ॥

तारि विशेषें आतां चि बोलिजैल । परि तें अनुभवें उपेगा जाइल ।

ह्मणौनि तैसें एक लागेल । स्थान पाहावें ॥ ६३ ॥

जेथ आराणुकेचेनि कोडें । बैठलेयां उठूं नावडे ।

वैराम्यासि दूश चडे । देखिलेयां जें ॥ ६४ ॥

जो वसविला ठा३० । संतोषासि सान्हा३० ।
 मना होये सान्हा३० । धैर्याचा ॥ ६५ ॥
 अभ्यासू चि आपणेयांतें करी । हृदयातें अनुभउ चि विवरी ।
 ऐसी रम्यपणाची थोरी । अखंड जेथें ॥ ६६ ॥
 जेवा आड जातां पार्था । तपश्चर्येचेयां मनोरथां ।
 पाखांडियाची हां आस्था । मूल होये ॥ ६७ ॥
 सभावें वाटा येतां । जरि वरिपडा जाला अवचिता ।
 तरि सकामु हीं परि माघौता । निगों विसरे ॥ ६८ ॥
 ऐसें न न्हातेआतें राहावी । भ्रमातुकातें बैसवी ।
 थापटूनि चेववी । विरगतिते ॥ ६९ ॥
 हें राज्य वर सांडिजे । मग निवातां एथ चि असिजे ।
 ऐसें श्रिगारिआंहीं उपजे । देखत खे३० ॥ १७० ॥
 जें एणें मानें वरवंट । तैसें चि अति चोखट ।
 जेथ अधिष्ठान प्रकट । डोलां दीसे ॥ ७१ ॥
 आणिक येक पावें । जें साधकिं वसतें होआवें ।
 आणि जनाचेनि पाएरेवे । मैले चि ना ॥ ७२ ॥
 जेथ अमृताचेनि पाडें । मुलां हीं सकट गोडें ।
 जोडति दाटें झाडें । सदा फलति ॥ ७३ ॥
 पाउलां पाउलां उदकें । परि वरियाकालिं हिं चोखें ।
 निक्षेरे कां अशेषे । मुलमें जेथ ॥ ७४ ॥
 हो अतपु ही आलुमालु । जाणिजे तन्हीं सीतलु ।
 पवनु अति निवृलु । मंदु गुलुका ॥ ७५ ॥
 बहुतकरुनि निःशब्द । दाट न रिगे स्वापद ।
 शुक्र हान षट्पद । तेयांचे नाही ॥ ७६ ॥
 पाणिलगें हंसें । दोनि न्यारि सारसें ।
 कण्हणी एकीं वेळीं बैसे । तरि कोकिलु ही होए ॥ ७७ ॥

निरंतर नाही । तन्हीं आलां गेलां कहीं ।
 होंतु कां मयूरें हीं । तें आम्हीं न म्हणों ॥ ७८ ॥
 परि आवसिक पांडवा । ऐसा ठाओ जोडावा ।
 तेथ निर्गुडु मठु होआवा । कां शिवालय ॥ ७९ ॥
 दोहोमाजि आवडतें । जें मानलें होये चित्तें ।
 बहुतरुनि एकांतें । त्रैसिजे गा ॥ १८० ॥
 ह्यणौनि तैसें तें जाणावें । मन राहांतें पावें ।
 राहील तेथ रचावें । आसन हें ॥ ८१ ॥
 वरि चोखट मृगसेवडी । माझि वस्त्राची घडी ।
 तलवटीं अमोडी । कुशांकुर ॥ ८२ ॥
 सकोमल सरिसे । सुवद्ध राहांति आपैसे ।
 एकें पाडें तैसें । ओजा घालीं ॥ ८३ ॥
 परि सांविह्यां चि उंच होईल । तरि आंग हान डोलैल ।
 नीचा तरि पावैल । भूमिदोखु ॥ ८४ ॥
 म्हणौनि तैसें न करावें । सामधेनिआ एं धरावें ।
 हें बहू असो होआवें । आसन ऐसें ॥ ८५ ॥

तत्रैकाग्रं मनःकृत्वा यतचित्तैन्द्रियक्रियः ॥

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

मग तेथ आपण । एकाग्र अंतःकरण ।
 करुनि गुरुस्मरण । अनुभविजे ॥ ८६ ॥
 जैसेनि स्मरतेनि आदरें । सवाह्य तात्विकें भरे ।
 जवं कठिनपण कां विरे । अहंभावाचें ॥ ८७ ॥
 विषयांचा विसरू पडे । इंद्रियांची कसमस मोडे ।
 मनाची घडी घडे । हृदयामाझि ॥ ८८ ॥
 ऐसें ऐक्य हें साहाजें । फावे तवं राहिजे ।
 मग तेंचि चि बोधें वैसिजे । आसनावारी ॥ ८९ ॥

आतां आंगाते आंग करी । पवनाते पवनु चि धरी ।
 ऐसी अनुभवाची उजिरी । हों चि लागे ॥ १९० ॥
 प्रवृत्ति मागौति मोहरे । समाधि ऐलाडि उत्तरे ।
 आघवे अभ्यासु सरे । बैसत खेवो ॥ ९१ ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम् ॥

संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥

मुद्रेची प्रौढि ऐसी । ते चि सांघिजैल आतां परिहसैं ।
 तारि ऊरू इया जघनेसीं । जडूनि घाली ॥ ९२ ॥
 चरणतलें देव्हडीं । आधारद्रुमाचां बुडीं ।
 सुघटितें गाठीं । संचरि पां ॥ ९३ ॥
 सव्य तें तलीं ठेविजे । तेणें सीवणिमध्यु पीडिजे ।
 वरि बैसे तो साहाजें । वामचरणु ॥ ९४ ॥
 गुदमेंद्र आंतौतीं । च्यारि चि आंगुलें निरुतीं ।
 तेथ सार्द्ध सार्द्ध प्रांतीं । सांडूनियां ॥ ९५ ॥
 माक्षि अंगुल एक नीगे । तेथ टांकेचेन उत्तरभागें ।
 निहटिजे वरि आंगें । पेललेनि ॥ ९६ ॥
 उचललें कां नेणिजे । तैसें पृष्ठांत उचलिजे ।
 गुल्फद्वय धरिजे । तेणें चि मानें ॥ ९७ ॥
 मग शरीरुसंचु पार्था । हा अशेषु ही सर्वथा ।
 पार्श्विचा माथां । स्वयंभु होये ॥ ९८ ॥
 अर्जुना हें जाण । मूलबंधाचें लक्षण ।
 वज्रासन गौण । नाम एयासि ॥ ९९ ॥
 ऐसी आधारीं मुद्रा पडे । आणि अधिचा मार्गु मोडे ।
 तेथ अपानु आंतुलीकडे । उ०हटों लागे ॥ २०० ॥
 तथं करपुठ आपैसैं । वाम चरणीं बैसे ।
 बाहुमूलीं दीसे । थोरी आली ॥ १ ॥

माझि उभारलेनि दंडें । शिरकमल होये गाढें ।
 नेत्रद्वारिचीं कवाडें । लागों पांति ॥ २ ॥
 वारिचिलें पातिं न ढलति । तलिचिं तलिं पुंजालति ।
 ते अद्धेन्मीलनस्थिति । उपजे तेयां ॥ ३ ॥
 दीठि राहुनु आंतुलीकडे । बाहिरें पाउल घाली कोडें ।
 तें ठायें ठाउ पडे । नासाप्रपीठीं ॥ ४ ॥
 ऐसें अढचें आंतु चि रचे । बाहिरील माघौते न वचे ।
 हणौनि राहाणें आधि ए दीठिचें । तेथ चि होये ॥ ५ ॥
 आतां दिशांची भेटि घेयावी । कां रुपाची वाट पाहावी ।
 हे चाड सरे आघवी । आपसेया ॥ ६ ॥
 मग कंठनाल आटे । हणौटी हडौती दाटे ।
 ते गाढी होउनि निहटे । वक्षस्थलीं ॥ ७ ॥
 माझि घंटिका लोपे । वरि बंधु जो आरोपे ।
 तो जालांधरु हणिपे । पांडुकुमरा ॥ ८ ॥
 नाभी वरि पोखे । उदर हें थोंके ।
 आंतरीं फांके । हृदयकोश ॥ ९ ॥
 स्वाधिष्ठानावरिली कांठीं । नाभिस्थानातलवटीं ।
 बंधु पडे किराटी । उडियाणु तो ॥ २१० ॥

प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचार्त्स्वते स्थितः ॥

ममः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत् मत्परः ॥ १४ ॥

ऐसी शरीराबाहिरिलीकडे । अभ्यासाची पाखर पडे ।
 तंत्र आंतु त्राये मोडे । मनोधर्माची ॥ ११ ॥
 कल्पना निर्मे । प्रवृत्ति समे ।
 आंगें मन विरमे । साबिहआं चि ॥ १२ ॥
 धुधा काड जाली । निद्रा केउती गेली ।
 हे आठवण हीं हीरतली । न दिसे वेगां ॥ १३ ॥

जो मूलबंधे अडल्य । अपानु माघौता मुरडला ।
 तो सर्वे चि वरि सांकडला । फांकु धरी ॥ १४ ॥
 क्षोभलेपणे माजे । उवाइला ठाई गाजे ।
 मणिफुलेसीं जूझे । राहूनियां ॥ १५ ॥
 मग थावली ते वाहुंटली । सैग घेउनि घर डहुली ।
 बालपणिचि कोठली । बाहिरि घाली ॥ १६ ॥
 भीतरि बलि न धरे । कोठेआं माक्षि संचरे ।
 कफपित्ताचे थारे । उरों नेंदी ॥ १७ ॥
 धातुचे समुद्र उलंडी । मेदाचे पर्वत फेडी ।
 आटली मजा काढी । अस्तिगत ॥ १८ ॥
 नाडितें सोडवी । गात्रातें विघडवी ।
 साधकातें भेडसवी । परि बिहावें नां ॥ १९ ॥
 व्याधितें दावी । सर्वे चि हारवी ।
 आप पृथ्वी कालवी । एकावट ॥ २० ॥
 तव एरीकडे धनुर्दरा । आसनाचा उबारा ।
 शक्ति करी उजगरा । कुंडलिणिए ॥ २१ ॥
 नागाचें पिलें । कुंकुमेंे न्हालें ।
 बलण देउनि आलें । सेजे जैसें ॥ २२ ॥
 तैसी ते कुंडलिणी । मोटकां औठे बलणीं ।
 अधोमुख सर्पिणी । निदौली असे ॥ २३ ॥
 विद्युल्लतेची विडी । वन्हिज्वालांची घडी ।
 पन्हरेयाची चोखडी । खोटि जैसें ॥ २४ ॥
 तैसी सुबद्ध आडली । पुटीं होती दाटली ।
 ते बजासनें चिमूटली । सावध होये ॥ २५ ॥
 तेथ नक्षत्र जैसें उलंडलें । कां सूर्याचें आसन मोडलें ।
 तेजाचें बीज विरुढलें । अंकुरेंसी ॥ २६ ॥

तैसी वेढेयांतें सोडिती । कवतिके आंग मोडिती ।
 कंदावारि शकति । उठिली दीसे ॥ २७ ॥
 साहजें बहुवां दिआंची भूक । वरि चवविली तें होये मीख ।
 मग आवेसें पसरी मुख । ऊर्ध्वाउजू ॥ २८ ॥
 तेथ हृदयाकाशातलवटीं । जो पवनु भरे किरीटी ।
 तेया सगलेयाची मीठी । देउनि घाली ॥ २९ ॥
 मुखिचां जालीं । तलीं वरि कवली ।
 मांसाचिया वडवालीं । आरोगुं लागे ॥ ३० ॥
 जे जे ठाये समांस । तेथ आहाच जोडे घाउस ।
 पाठीं एकदोनि घांस । ते ही भरी ॥ ३१ ॥
 मग तलवे तलहाथ शोधी । ऊर्ध्वचें खंड भेदी ।
 झाडा घे संधी । प्रत्यंगीचां ॥ ३२ ॥
 आधार तरि न संडी । परि नखिचें हीं सत्व काढी ।
 त्वचा धूनि जडी । पांजरेंसीं ॥ ३३ ॥
 अस्थिचे नले निरपे । शिरांचे हीर उरपे ।
 तवं बाहिरि विरुढि करपे । रोमबीजाची ॥ ३४ ॥
 मग सप्तधातुचां सागरीं । तान्हैली घोंटु भरी ।
 आणि सर्वें चि उन्हाला करी । खडखडितु ॥ ३५ ॥
 नासापुटौनि वारा । जो जांतु असे अंगुलें बारा ।
 तो गाचि धरुनि माघारा । आंतु घाली ॥ ३६ ॥
 तेथ अध वरौतें आकुंचे । ऊर्ध्व तल्हौतें खांचे ।
 तेआ खेवांमाझि चक्रांचें । पदर उरे ॥ ३७ ॥
 एन्हविं तेव्हां चि दोन्हीं मीलतीं । परि कुंडलिणी नावेक दुचिती ।
 जे तेयांतें ह्मणे पन्हौतीं । तुझीं काइसीं ॥ ३८ ॥
 आइकें पार्थिव धातु आववी । आरोगितां काहीं नुरवी ।
 आणि आपातें तवं ठेवी । पूसूनियां ॥ ३९ ॥

ऐसीं दोन्हीं भूते खाये । तेव्हलि संपूर्ण धाये ।
 मग सौम्य होउनि राहे । सुषुप्तेपासीं ॥ २४० ॥
 तेथ तृप्तिचेनि संतोषें । गरल जे वमी मुखें ।
 तेंणें तिपेचेनि विषें । प्राणु जिये ॥ ४१ ॥
 तो आगी आंतौनि निगे । परि सबाह्य निववूं चि लागे ।
 तेथ कसु बांधति आंगें । सांडिला पुडुतीं ॥ ४२ ॥
 मार्ग भोडथि नाडींचे । नवविधपण वायुचें ।
 जाये ह्यगौनि शरीरिचे । धर्म नाही ॥ ४३ ॥
 इडा पिंगला एकवटथि । गांठी तीन्हीं सूटति ।
 साही पदर फूटथि । चक्रांचे हे ॥ ४४ ॥
 मग शशि आणि भानु । ऐसा कल्पी जो अनुमानु ।
 तो वातिवरी मनु । गिवसितां न दिसे ॥ ४५ ॥
 बुद्धिची पुलिक विरे । परिमळु घ्राणीं उरे ।
 तो ही सकतीसवें संचरे । मध्यमेमाशि ॥ ४६ ॥
 तवं वरिलीकडौनि ढालें । चंद्रामृताचें तलें ।
 कानवडौनि मिले । शक्तिमुखीं ॥ ४७ ॥
 तेंणें नातकें रसु भरे । तो सर्वागामाशि धरे ।
 जेथिचा तेथ मुरे । प्राणपवनें ॥ ४८ ॥
 तातलिये मूसे । मेण निगौनि जाये जैसें ।
 मग कौदळां ठाये रसें । अतलेनि ॥ ४९ ॥
 तैसी पिंडाचेनि आकारें । ते कला चि का अवतरे ।
 वरि त्वचेचेनि पदरें । पांगुतलीसे ॥ २५० ॥
 जैसी अभालिची बंधि । करुनि राहे गभस्ति ।
 मग फाटलेयां दीसि । धरुं नैए ॥ ५१ ॥
 तैसा आहाचुवरि कोरडा । त्वचेचा असे पातवडा ।
 तो शडौनि जाये कौंडा । जैसा होये ॥ ५२ ॥

मग काश्मिराचें स्वयंभ । कां रत्नबीजा निगाले कोभ ।।
 अवेवकांतिची भांभ । तैसी दीसे ॥ ५३ ॥
 ना तरि संध्यारागिचे रंग । काढुनि वलिलें तें आंग ।।
 किं अंतर्ज्योतिचें लिंग । निर्वालिलें ॥ ५४ ॥
 कुंकुआचें भरिवं । सिद्ध रसाचें उ०तिव ।।
 मज पाहांतां सावेव । शांती चि तें ॥ ५५ ॥
 तें आनंदचित्तिचें लेप । ना तरि महासुखाचें रूप ।।
 किं संतोषतरुचें रोप । थावलें जैसें ॥ ५६ ॥
 तो कनकचंपकाचा कला । किं अमृताचा पूतला ।।
 नाना सांसिनला मला । कोवलिकेचा ॥ ५७ ॥
 हों काज शारदियेचेनि उ०लें । चंद्रबिंब पाल्हेलें ।।
 कां तेज चि मूर्त बैठलें । आसनावरि ॥ ५८ ॥
 तैसैं शरीर होये । जेव्हलि कुंडलिणी चांद्र पिए ।।
 मग देहाकृती विहे । कृदांतु गा ॥ ५९ ॥
 वृद्धाप्य तन्हीं बाहुडे । तारुण्याची गांठि विघडे ।।
 लोपली उघडे । बालदशा ॥ २६० ॥
 वयसा तरि येतुली वेन्हीं । जें बलाचा बालार्थु करी ।।
 धेयाची थोरी । निरूपम ॥ ६१ ॥
 कनकद्रुमाचां पालवीं । रत्नकलिकांचीं नवीं ।।
 बानी तैसी बरवीं । नाखें निगति ॥ ६२ ॥
 दांत ही आन होंती । परि अपाडे सानेजांती ।।
 जैसी दोंवाहीं बैसे पांती । हरियांची ॥ ६३ ॥
 माणिकुलेयांचिया कणियां । सावियां चि अणुमाणियां ।।
 तैसिया सर्वांगीं उभ्रवति अणियां । रोमेचिया ॥ ६४ ॥
 करचरणतलें । जैसीं कां रातोत्पलें ।।
 परवाली होथि डोले । काइ सांगों ॥ ६५ ॥

निडाराचेनि कोंघाटें । मोतियें नावरतिःसंपुटें ।
मम सिवाणि जैसी उतटे । शुक्तिपल्लवांची ॥ ६६ ॥
तैसी पातेचिये कवलिये न समाए । दीठि जाकद्वनि निगों पाए ।
आधिली चि परि होये । गगनखल्लिचें ॥ ६७ ॥
आइकें देह होये सोनेयाचें । परि लाघव ये वायुचें ।
जें आपा आणि पृथ्विचे । अंश नाही ॥ ६८ ॥
मग समुद्रा पैलाडी देखे । स्वर्गिचा आलोचु आइके ।
मनोगत ओलखे । मुंगियेचें ॥ ६९ ॥
पवनाचां वारिकां बलघे । चाले तरि उदकीं पाउं न लगे ।
एणें बहु काइ प्रसंगें । होति सिद्धि ॥ ७० ॥
आइकें प्राणाचा हस्तु धरुनि । गगनाचीं पाउटीं करान ।
मध्यमेमाझिचेनि दादरेहुनि । हृदया आली ॥ ७१ ॥
जे कुंडलिणी जगदंबा । जे चैतन्यचक्रवर्तिची शोभा ।
जिया विश्वव्रजाचेया कौंभा । साउली केली ॥ ७२ ॥
जे शून्यलिंगाची पिंडी । जे परमात्मशिवाची करंडी ।
जे प्राणाची उबडी । जन्मभूर्मी ॥ ७३ ॥
हें असो ते कुंडली । हृदया आंतु आली ।
तव अनाहताचां बोटी । चावले ते ॥ ७४ ॥
शक्तिचेया आंगा लागलें । बुद्धिचें चैतन्य होंतें जालें ।
तेणें तें आइकिलें । आलुमालु ॥ ७५ ॥
वोषाचां कुंडीं । नादचित्तांचीं रूपडीं ।
प्रणवाचिया मोडी । रेखिली जैसी ॥ ७६ ॥
हें चि कल्पवे तरि जाणिजे । परि आतां कल्पितें कैचें आणिजे ।
तन्हें नेणों काइ वाजे । तिये टांडें ॥ ७७ ॥
विसरौनि गेलें अर्जुना । जवं नाशु नाही पवनां ।
तवं वाचा आधि गगना । हणौनि बोलें ॥ ७८ ॥

तेया अनाहताचेनि मेघे । मग आकाश दुमुदुमूं लागे ।
 तवं ब्रह्मस्थानिचें बेगें । फांटे साहाजें ॥ ७९ ॥
 आइकें कमलगर्भाकारें । जें महदाकाश दूसरें ।
 जेथ चैतन्य आथुधुरे । करुनि असिजे ॥ २८० ॥
 तेया हृदयाचां परिवरीं । कुंडलिया परमेश्वरी ।
 तेजाची सिधौरी । विनियोगिली ॥ ८१ ॥
 बुद्धिचेनि शाकें । हातबोने नाकें ।
 द्वैत जेथ नेदखे । तेथ केलें ॥ ८२ ॥
 ऐसी निजकांति हारविली । मग प्राणाची केवल जाली ।
 तेव्हलि कैसी गमली । ह्यणाची पां ॥ ८३ ॥
 हो कां जे पवनाची पूतली । पांगुतली होंती सोनेसली ।
 तियें काढूनियां वेगली । ठेविलीं तिआ ॥ ८४ ॥
 ना तारि वारेआचेनि आंगें झगटली । दीपाची दीठि निमुटली ।
 कां लखुलखुनि हारतली । विजु गगनीं ॥ ८५ ॥
 तैसी हृदयकमलवेन्हीं । दीसे सोनेयांची जैसी सरी ।
 ना तारि प्रकाशजलाची झरी । वाहांति आली ॥ ८६ ॥
 मग तिये हृदयभूमी पोकले । जिराली कां येकें वेळें ।
 ऐसें शक्तीचें रूप मावले । शक्तीमाझि ॥ ८७ ॥
 तेव्हां तन्हीं शक्ती चि मग झणिजे । एन्हविं तो प्राणु केवल जाणिजे ।
 आतां नादविंदु नेणिजे । कलाज्योति ॥ ८८ ॥
 मनाचा हान मारु । कां पवनाचा धरु ।
 ध्यानाचा आदरु । नाना परीं ॥ ८९ ॥
 हे कल्पना घे सांडी । तें नाहिं इये परिवडी ।
 हे महाभूतांची फुडी । आटणी देखां ॥ २९० ॥
 पिंढें पिंडाचा त्रासु । तो हा नाथसंकेतिचा डंसु ।
 परि दाउनु गेला उद्देशु । महाविष्णु ॥ ९१ ॥

तेया ध्वनिताचें केणें सोडुनि । यथार्थाची घडी झाडुनि ।
 उपलविली मियां जाणौनि । ग्राहिक श्रोते ॥ ९२ ॥
 आइकां शक्तिचें तेज लोपे । तेथ देहिचें रूप हारपे ।
 मग तें डोलेयां चि माशि लपे । जगाचेयां ॥ ९३ ॥
 यन्हविं आदिला चि ऐसें । सावयव तारि असे ।
 पारि वायुचें जैसें । वलिलें आहो ॥ ९४ ॥
 ना तारि कदलिचा गाभा । बूंधि सांडूनु उभा ।
 कां अवेवु चि नभा । निवडला तो ॥ ९५ ॥
 तैसें होये शरीर । तें तें ह्मणिजे खेचर ।
 हें पद होतां चमत्कार । पिंडुजनीं ॥ ९६ ॥
 देखें साधकु निगौनि जाये । मागां पाउलाची अलि राहे ।
 तेथ ठांडें चि होए । अणिमादिक ॥ ९७ ॥
 पारि तेणें काइ आपणपेया । अवधारीं ऐसा धनंजया ।
 लोपु आथि भूतत्रया । देहिचा देहीं ॥ ९८ ॥
 धृथ्वीतें आप विरवी । आपातें तेज जिरवी ।
 तेजातें पवनु हारवी । न्हुदयामाशि ॥ ९९ ॥
 पाठिं येकला आपण उरे । पारि शरीराचेनि अनुकारें ।
 मग तो ही निगे आंतरें । गगना मिलें ॥ ३०० ॥
 तेव्हलि कुंडलिणी हे भाक जाये । मग मारुती ऐसें नांव लाहे ।
 पारि शकतिपण तें आहे । जवं मिलैल शिविं ॥ १ ॥
 मग जालंधर सांडी । ककारांत फोडी ।
 गगनाचिये पाडी । पैठी होए ॥ २ ॥
 तेथ अकाराचिये पाटी । पाये दंत उठाउटी ।
 पश्यंतियेची पाउटी । मागां घाली ॥ ३ ॥
 पुढां तन्मात्राद्धवेन्हीं । आकाशाचां आंतरां ।
 भरति गमे सागरीं । सरिता जैसें ॥ ४ ॥

मगं ब्रह्मरंध्रीं थिरावौनि । अहंभावाचिया बाह्या पसरुनि ।
 परत्मलिंगा धावौनि । आंगा घडे ॥ ९ ॥
 तवं महं भूतांची जवनीक फीटे । मग दोहोंसीं ही होय श्रुटे ।
 तेथ गगनासकट आटे । समरसिं तिए ॥ ६ ॥
 पैं मेघाचेनि मुखें निवडला । समुद्र कां उधिं पडिला ।
 तो माघौता जैसा आला । आपणपेआ ॥ ७ ॥
 पिंडाचेनि मीसें । पर्दीं पद प्रवेशे ।
 तें येकत्व होये तेंसें । पांडुकुमरा ॥ ८ ॥
 आतां दुजें हान होतें । किं एक चि हें आइतें ।
 ऐसिये विवंचनेपुरतें । उरे चि ना ॥ ९ ॥
 गगनीं गगन लया जाये । ऐसां जे काहीं आहे ।
 तें अनुभवं जो होये । तो होउनि ठाके ॥ ३१० ॥
 ह्यणौनि तेथ चि मातु । न चडे चि बोलाचा हातु ।
 जेणें संवादाचेआ गांवां आंतु । पैठी कीजे ॥ ११ ॥
 अर्जुना यन्हविं तन्हें । एआ अभिप्रायाचा जे गर्भु घरीं ।
 ते पाये पां वैखरी । दूरि ठेली ॥ १२ ॥
 भ्रूलतां मागिलीकडे । तेथ मकाराचें चि आंग नडे ।
 सडेआ ग्राखा सांकडे । गगना एतां ॥ १३ ॥
 पाठीं तेथ चि तो भांसलला । तवं शब्दाचा दिउ मावळला ।
 मग तेया ही वरि आटु भविनला । आकाशाचा ॥ १४ ॥
 आतां महाशून्याचां डोहीं । गगनासी चि थाउं नाही ।
 तेथ तागा लागेल काइ । बोलाचा एआ ॥ १५ ॥
 ह्यणौनि आखरांमाक्षि सांपडे । कां कानवरि जोडे ।
 हें तैसें न्हवे फुडें । त्रिशुद्धी मा ॥ १६ ॥
 चैं कहीं देंवें । अनुभविलें फाकवें ।
 तें आपण चि हें ठाकावें । होउनिआं ॥ १७ ॥

पुडुतीं जाणणें तें नाहीं चि । हणौनि असो केती हें चि ।
 बोलावें आतां वायां चि । धनुर्द्वारा ॥ १८ ॥
 ऐसें शब्दजात माघौतें फिरे । तेथ संकल्पाचें आयुष्य पुरें ।
 वारा ही जेथ सिरे । विचाराचा ॥ १९ ॥
 जें उन्मनियेचें लावण्य । जें तुरियेचें तारुण्य ।
 अनादि जें अगण्य । परमतत्व ॥ २० ॥
 जें आकाराचा प्रांतु । जें मोक्षाचा एकांतु ।
 जेथ आदि आणि अंतु । विरौनि गेलीं ॥ २१ ॥
 जें विश्वाचें येया मूल । जें योगद्रुमाचें फल ।
 जें आनंदाचें केवल । चैतन्य गा ॥ २२ ॥
 जें महाभूताचें बीज । जें महातेजाचें तेज ।
 पार्था जें निज । स्वरूप माझे ॥ २३ ॥
 हे चतुर्भुज कोभैली । जेयाची शोभा चि रूपा आली ।
 देखौनि नास्तिकीं नोंकिलीं । भक्तवृंदें ॥ २४ ॥
 तें अनिर्वाच्य महासुख । पै आपण चि जाले पुरुष ।
 जेहांचें कां निष्कर्ष । प्राप्तिवेन्हीं ॥ २५ ॥

युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ॥

शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

आर्त्ति साधन जें हें सांघितलें । तें चि शरीरीं जेहीं केलें ।
 ते अमचेन चि पाडें आले । निर्वालेया ॥ २६ ॥
 परब्रह्माचेनि रसें । देहाकृतिचिये मूसे ।
 उ०तिवें जाले तैसे । दीसथि आंगें ॥ २७ ॥
 ना तारि प्रतीति हान आंतरिं फांके । तारि विश्व चि हे आवघें ज्ञांके ।
 तव अर्जुनु हणो नीकें । साच जी हें ॥ २८ ॥
 कां जें आपण आतां देउ० । हा बोलिजे जो उपाउ० ।
 तो प्राप्तिचा चि ठाउ० । हणौनि घडे ॥ २९ ॥

इये अभ्यासीं दृढ जे होंथि । ते भरवसेनि ब्रह्मत्वा एंथि ।
 हे सांघतियां चि रीती । कललें मज ॥ ३३० ॥
 देवा गोठि चि हे आइकतां । बोधु उपजत असे चित्ता ।
 मां अनुभवें तळीनता । नव्हैल केवि ॥ ३१ ॥
 हणौनि एथ काहीं । अनारिसें नाही ।
 पारि नांभारि चित्त देई । बोला एका ॥ ३२ ॥
 आतां कृष्णा सांघितला योगु । तो मना तारि आला चांगु ।
 पारि न सके करूं पांगु । योग्यतेचा ॥ ३३ ॥
 साहांजें आंगिक जेतुलें आहे । तेतुलिया चि जरि सिद्धी जाये ।
 तारि हा चि मार्गु सुखोपायें । अभ्यासीन ॥ ३४ ॥
 नातारि देउ जैसी सांघतील । तैसी आपणपां जरि निद्रिसैल ।
 तारि योग्यताविण होइल । तें चि पूसों ॥ ३५ ॥
 जीविची ऐसी धारण । हणौनि पूसावेया जालें कारण ।
 मग हणें तरि आपण । चित्त देइजो ॥ ३६ ॥
 हां हो जी अवधारिलें । जें हें साधन तुम्हीं निरूपिलें ।
 तें आवडतेया ही अभ्यासिलें । फांवों सके ॥ ३७ ॥
 किं योग्यतेविण नाही । ऐसें हान असें काहीं ।
 तेथ कृष्ण म्हणथि तरि काई । धनुर्दरा ॥ ३८ ॥
 हें काज किर निर्वाण । पारि अनिक ही काहीं जें साधारण ।
 तें अधिकाराचेनि उडवलेन विण । कायि सिद्धी जायें ॥ ३९ ॥
 पै योग्यता जे म्हणजे । ते प्राप्ती चि आर्धान जाणजे ।
 कां जें योग्यां होनि कीजे । तें आरंभीं चि फले ॥ ४० ॥
 तैन्ह तैसी एथ काहीं । साविह्यां चि कोणि नाही ।
 आणि योग्यांची काई । खाणि आहे ॥ ४१ ॥
 नाव एक विरक्तु । जाला देहधर्मि जरि नियतु ।
 तारि नो चि नव्हे व्यवस्थितु । अधिकारिया ॥ ४२ ॥

एतुलालिए आणिमाझिवडे । योग्यपण तूतें हीं जेडे ।
 ऐसें प्रसंगें सांकडे । फेडिलें तेयाचें ॥ ४३ ॥
 मग म्हणे पार्था । हे ते ऐसी चि व्यवस्था ।
 अनियतासि सर्वथा । योग्यता नाही ॥ ४४ ॥

नात्यश्रतस्तु योगोस्ति न चैकान्तमनश्रतः।

न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चाजुर्न ॥ १६ ॥

जो रसनेद्रियांचा आंकला । कां निद्रेसि जीवें वीकला ।
 तो नाही एथ म्हणितला । अधिकारिया ॥ ४५ ॥
 अथवा आप्रयाचिये बांधौडी । क्षुधातृषा इये कौडी ।
 आहारातें तोडी । मारुनियां ॥ ४६ ॥
 निद्रेचिया वाटा न वचे । ऐसा दंडीचेनि अवतरणें नाचे ।
 तें शरीर चि नव्हे तेयाचें । मग योगु कवणां ॥ ४७ ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥

म्हणौनि अतिशयें विषयसेवां । तैसा बोलु न व्हावा ।
 कां सर्वनिरोधु करावा । तें हीं नको ॥ ४८ ॥
 आहार तरि सेविजे । परि युगुतिचेनि मापें मविजे ।
 क्रियाजात आचरिजे । तिया चि स्थिती ॥ ४९ ॥
 मितलां बोलीं बोलिजे । मवलां पाउलिं चालिजे ।
 निद्रे ही मानु दीजे । अवसरें येकें ॥ ३५० ॥
 जागणें जन्हे जालें । तन्हे तें ही होआवें मितलें ।
 एतुलेनि धातुसाम्य सांचलें । असंल मुखें ॥ ५१ ॥
 ऐसें युगुतिचेनि हाथें । जें इंद्रियां उभे भातें ।
 तें संतोषासि वाढतें । मनु चि करी ॥ ५२ ॥
 बाहिरि युगुतीची मुद्रा पडे । तव आंतु सुख वाढे ।
 यथ साहाज चि योगु घडे । नाभ्यासितां ॥ ५३ ॥

भाग्याचिये भडसे । उद्यमाचेनि मासे ।
 समृद्धिजात जैसे । घर रिगों ये ॥ ५४ ॥
 तेसा युगुतिमंत कवतिके । अभ्यासाचिये मोहरे ठाके ।
 आणि आत्मसिद्धि चि पीके । अनुभौ तेयाचा ॥ ५५ ॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।

निरूपहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८ ॥

म्हणौनि युक्ति हे पांडवा । घडे जेया सदैवा ।
 तो अपवर्गिचिया राणिवा । अलंकरेजे ॥ ५६ ॥
 युक्तियोगाचें आंग पावे । ऐसें प्रयाग होये बरवें ।
 तेथ क्षेत्रसंन्यासें थिरावे । मानस जेहाचें ॥ ५७ ॥

यथा दीपो निवातस्थो नैगते सोपमा स्मृता ।

योगिनो यताचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥

तेयांतें योगयुगुतु हण । प्रसंगें हें हीं जाण ।
 तेया दीपाचें उपलक्षण । निर्वातिचेया ॥ ५८ ॥
 आतां तूझे मनोगत जाणौनि । कांहिं येक आर्हिं म्हणौनि ।
 तें नीकें चित्त देउन । परियसावें ॥ ५९ ॥
 तूं प्राप्तिची चाड वाहांसी । परि अभ्यासिं दक्षु नोहोंसि ।
 तें सांघ पां काइ विहसी । दुवाडपणां ॥ ३६० ॥
 तरि पार्था हें ज्ञनें । सायास वोंसि हो मनें ।
 वायां बागुलु इयें दुर्जनें । इंद्रियें करिति ॥ ६१ ॥
 पाये पां आयुष्याचा आडलु करीं । जें सरतें परिणामु वेन्हीं ।
 तेया औपध्राते काइ वैरी । जिह्वा न हणें ॥ ६२ ॥
 ऐसें हितासि जें जें नीकें । तें सदा चि एआं दुःखें ।
 यन्हांवि सोहोपें योगासारिणें । कांहिं आहे ॥ ६३ ॥

हणोनि अवंसानाचिया गाढिका ।

जो आह्नीं अभ्यासु सांधितला नीका ।

तेणें होईल तरि हो कां ।

निरोधु एहां ॥ ६४ ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।

तत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ २० ॥

यन्हाकिं तन्है थोंगें । जें इंद्रिआं विंदाण लागे ।

तें चि चित्त भेटों निगे । आपणपेया ॥ ६५ ॥

परतौनि पाठिभोरें ठाके । आणि आपणपेयांतें आपण देखे ।

देखतखेओ ओलखे । हणणे तत्व हें मीं ॥ ६६ ॥

तिये ओलखी चि सरिसें । मुखाचां साम्राज्यां त्रैसे ।

एथ चित्तपण समरसें । विरौनि जाये ॥ ६७ ॥

सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतींद्रियं ।

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१ ॥

मग मेरूपासौनि थोरें । देहदुःखाचेनि डोंगरें ।

दाटिजो पां परिभारें । चित्त न दटे ॥ ६८ ॥

कां शस्त्रवारि तोडिलेआं । देह आगीमाक्षि पडिलेआं ।

चित्त महामुखीं पवढलेआं । चे३० नैए ॥ ६९ ॥

ऐसें आपणपां रिगौनि ठाये । मग देहाची वास न पाये ।

आणि तें मुद्ध चि होउनि जाण । हणौनि विसरे ॥ ३७० ॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।

यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ २२ ॥

त्रेआ मुखाचिआ जोडी । मन आत्तिची से चि सांडी ।

सारासाराचें तोडी । गुंतले जें ॥ ७१ ॥

जें योगाची बरव । संतोपाची राणिव ।

ज्ञानाची जाणिव । जेयालार्गी ॥ ७२ ॥

तै अभ्यासिलेनि योगे । सावेव देखावै लागे ।
देखिलें तरि आंगें । होइजैल गा ॥ ७३ ॥

तं विद्यादुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।

स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

पारि तो चि योगु बापा । एकी परी आहे सोहोपा ।
जरि पुत्रशोकु संकल्पा । दाखविजे ॥ ७४ ॥
हा विषयातें निमालेयां आइके । इंद्रियें नियमाचां धारणीं देखे ।
तरि हियें घाल्दनि मूके । जावितासि ॥ ७५ ॥

संकल्पप्रभावान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।

मनसैवैन्द्रियग्रामं विनियम्य समंततः ॥ २४ ॥

एसें वैराग्य हें करी । तरि संकल्पाचीं सरे वारी ।
मुखे धृतिचां धवलारीं । बुद्धि नांदे ॥ ७६ ॥
बुद्धी धैर्यां होये वसैठा । तरि मनातें अनुभवाचिया वाटा ।
आणूनि करी प्रतिष्ठा । आत्मभुवनीं ॥ ७७ ॥
इया हि एकी परी । प्राप्ति आहे विचारीं ।
न टके तरि सोपारीं । आणिकि ही आइक ॥ ७८ ॥

शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिंतयेत् ॥ २५ ॥

आतां नियमू चि हा येकठा । जीवें करावा आपुला ।
जैसा कृतनिश्चयाचेया बोला । बाहिरा नोहे ॥ ७९ ॥
जरि एतुळेन चि चित थिरावे । तरि काजा आलें स्वभावें ।
न न्हाये तरि घालावें । मोकलुनि ॥ ३८० ॥
मग मोकलें जेथजेथ जाइल । तेथीनि नियमू चि घेउनि येईल ।
एमें चि स्थैर्याचां होईल । सवे एआ ॥ ८१ ॥

यतो यतो निश्चलरति मनश्चंचलमस्थिरम् ।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥

पाठिं केतुलेनि एकं वेलें । तेआ स्थैर्याचेनि मेलें ।
 आत्मरूपा जवलें । एईल साहाजें ॥ ८२ ॥
 तेहातें देखौनि आंगा धडैल । तेथ अद्वैतीं द्वैत बुडैल ।
 आणि ऐक्यतेजें उजिवडैल । त्रैलोक्य हें ॥ ८३ ॥
 आकाशीं दीसे दुसरें । तें अभ्र जै विरे ।
 तूं गगनें चि कां भरे । विश्व जैसें ॥ ८४ ॥
 तैसें चित्त लया जाये । आणि चैतन्य चि आववें होये ।
 ऐसी प्राप्ति सुखोपायें । आहे एणें ॥ ८५ ॥
 इयां सोहोपियाचिया योगस्थिती । उकलु देखिला गा बहुतिं ।
 संकल्पाचिये संपत्ती । रूसौनियां ॥ ८६ ॥

प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।

उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

तेया सुखाचेनि सांघातें । आले परब्रह्मा आंतौतें ।
 तेथ लवण जैसें जलातें । सांडूं नेणें ॥ ८७ ॥
 तैसें होये तिये मेलीं । मग सामरस्याचां राउलीं ।
 माहासुखाची दिवाली । जगासिं दीसे ॥ ८८ ॥
 एसें आपुले पाएवरी । चालिजे आपुलिण पाठीवरी ।
 हें पार्था नांगवे तारि । आन कीजे ॥ ८९ ॥

युंजेन्नवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥

मीं तवं सकल देहीं । असें एथ विघडु नाही ।
 आणि तैसें चि माझां ठांडूं । सकल असें ॥ ३९० ॥
 हें एसें चि सांचलें । परस्परें मिसळलें ।
 बुद्धि घेपे एतुलें । होआवें गा ॥ ९१ ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।

इक्ष्वरे योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥

एन्हविं तन्हीं अर्जुना । जो एकावटलिआ भावना ।
 सर्व भूतीं अभिन्ना । मातें भजे ॥ ९२ ॥
 भूतांचेनि अनेकपणें । अनेकु नोहे अंतष्करणें ।
 केवल एकत्व चि माझे जाणे । सर्वत्र जो ॥ ९३ ॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

मग तो एकु हे माया । बोलतां दीसतसे वायां ।
 यन्हवीं न बोलिजे तारि धनजया । तो मीं आहे ॥ ९४ ॥
 तन्है दीपा आणि प्रकाशा । एकवकैयेचा पाडु जैसा ।
 तो माझां ठांडं तैसा । मीं तेयामाझि ॥ ९५ ॥
 जैसा उदकाचेनि आंयुष्ये रमु । कां गगनाचेनि मानें अवकाशु ।
 तैसा माझेनि रूपें रूपमु । पुरुषु गा तो ॥ ९६ ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।

सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ३१ ॥

जेणें ऐक्याचिया दीठी । सर्वत्र मातें चि किरीठी ।
 देखिलें जैसा पटीं । तंतु एकु ॥ ९७ ॥
 कां सरूपें तारि बहुतें आधि । परि तैसिं सोनिं बहुतें नोहोति ।
 ऐसी ऐक्याचलाची बुंधी । केली जेणें ॥ ९८ ॥
 ना तारि वृक्षाचिं पानें जेतुलीं । तेतुलीं रोपें नाहि लाविलीं ।
 ऐसी अद्वैतदिवसें पाहाली । रात्रि जेआं ॥ ९९ ॥
 तो पंचात्मिकीं सांकडे । मग सांघ पां कैसेनि अडे ।
 जो प्रतीतिचेनि पाडें । मासिं तूक्रे ॥ ४०० ॥
 माझे व्यापकपण अध्वे । गवसलें तेयाचेनि अनुभवें ।
 तारि न ह्यणतां स्वभावे । व्यापकु जाला ॥ १ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति येऽर्जुन ।

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥

आतां शरीर तरि आहे । परि शरीरिंचा तो नाहे ।
 ऐसें बोलवारि होये । करुं काये ॥ २ ॥
 ह्यणौनि असो तें विशेषें । अथवा आपणपेया सारिखें ।
 चराचर जो देखे । अखंडित ॥ ३ ॥
 सुखदुःखादि वर्में । कां शुभाशुभें कर्में ।
 दोनि ऐसीं मनोधर्में । नेणे चि जो ॥ ४ ॥
 हे समविषम भाव । अनिक ही वैचित्र्य जें सर्व ।
 तें मानी जैसे अवेव । आपुले होधि ॥ ५ ॥
 हें एकैक काइ सांघावें । जेआ त्रैलोक्य चि आघवें ।
 मीं ऐसें सभावें । बोधा आलें ॥ ६ ॥
 तेआ ही देह एक किर आधि । अणिकै लौकिकु ही तेहातें ह्यणधि ।
 परि आह्नां ऐसी चि प्रतिति । जें परब्रह्म हा ॥ ७ ॥
 ह्यणौनि आपण पां विश्व देखिजे । आणि विश्वां आपण होइजे ।
 ऐसें साम्य चि एक उपासिजे । पांडवा गा ॥ ८ ॥
 हें तुहतें बहुतीं प्रसंगीं । आक्षिं ह्यणों तें येया चि लागीं ।
 जे साम्या परौति जगीं । प्राप्ति नाही ॥ ९ ॥

अर्जुन उवाच ॥

योग्यं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।

एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिरां ॥ ३३ ॥*

तवं अर्जुनु ह्यणे देवा । तुझीं सांघा किर आमचिआ कणवा ।

परि न पुरों जी स्वभावा । मनाचेआ ॥ ४१० ॥

हें मन कैसें केवडें । ऐसें ह्यणो पांडव तरि न संपडे ।

यन्हविं राहाटावया तोकडें । त्रैलोक्य येया ॥ ११ ॥

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढं ।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करं ॥ ३४ ॥

हणौनि ऐसें कैं घडैल । जें मर्कटा समाधि एईल ।
 कां राहे हणितला राहिल । महावातु ॥ १२ ॥
 जी बुद्धितें सली । निश्चयातें ढाली ।
 स्थैर्येसी हाता फली । मेलैनि जाये ॥ १३ ॥
 जें विवकातें भूलवी । संतोषासि चाड लावी ।
 बैसिजे तन्हीं हींडवी । चहूं दिशीं ॥ १४ ॥
 जें निरंधिलें घे वाउं । जेआ संयमू चि होये सावाओ ।
 तें मन आपुला स्वभाउं । सांडील काइ ॥ १५ ॥
 हणौनि मन येक निश्चळ राहिल । मग आह्मासि साम्य येईल ।
 हें विस ही विश्वे न घडैल । तें एआ लागि ॥ १६ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं ।

अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥

तवं कृष्णु हणायि साच चि । बोलतु आहासि तें तैसें चि ।
 एआ मना किर चपळ चि । स्वभाओ गा ॥ १७ ॥
 परि वैराग्याचेनि आधारे । लाविलें अभ्यासाचिए मोहरे ।
 तारि केतुडेनि एके अवसरें । थिरावैल ॥ १८ ॥
 कां यया मनाचें एक नीकें । जें हें देखिलेंआ ठाया सोंके ।
 हणौनि स्वानुभवमुखा चि कवतिकें । दाखवितां जाइजे ॥ १९ ॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ॥

वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्नुमुपायतः ॥ ३६ ॥

यन्हविं विरक्ति जेयां नाहिं । जे अभ्यासिं निरिगती चि कहीं ।
 तैयां नाकले हें आहीं हीं । न मनुं काइ ॥ ४२० ॥
 परि यमनियमाचिया वाटा न वचिजे ।
 सार्विया वैराग्याची से न करिजे ।

केवल विषयजलीं ठाकिजे ।

बुडी देउनि ॥ २१ ॥

एआ जालेआ मानसा कहीं । युगुतिची कांवि लागली नाहीं ।

तारि निश्चल होईल काई । कैसेन सांघें ॥ २२ ॥

हणौनि मनाचा निग्रहो होए । ऐसा उपाओ जो आहे ।

तो आरंभी मग नोहे । कैसा पाउं ॥ २३ ॥

तारि योगसाधन जेतुकें । तें आघवें चि काइ लटिकें ।

परि आपणपेयां अभ्यासु न टके । हें चि हणौं ॥ २४ ॥

आजि योगाचें होये बल । तारि मन केतुलें चपल ।

काइ महदादि हें सकल । आपुलें नो होए ॥ २५ ॥

अर्जुन उवाच ॥

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाञ्जलितमानसः ।

अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ ३७ ॥

तेथ अर्जुनु हणणे नीकें । देओ बोलताति तें न चुके ।

साच योगबलेंसीं न तुके । मनोबल ॥ २६ ॥

परि तो चि योगु कैसा केवि जाणों ।

आह्मीं येतुले दीइया मातु ही नेणों ।

हणौनि मनातें जी हणों ।

अनावर हें ॥ २७ ॥

हा आतां आघवेआ जन्मां । तूझेनि प्रसादें पुरुषोत्तमा ।

योगपरिचयो आह्मां । जाला आजि ॥ २८ ॥

परि आणिक येकु गोसाविआं । मज संशयो आहे साविआं ।

तो तुज वांचूनि फेडावया । समर्थु नाहीं ॥ २९ ॥

हणौनि सांघें गोविंदा । कव्हणी येकु मोक्षपदा ।

ज्ञोवतु होता श्रद्धा । उपायें विण ॥ ४३० ॥

इंद्रियप्रामौनि निगाला । आस्थेचिये वाटे लागला ।
आत्मसिद्धिचेआ पुढैला । नगरा एआवेआ ॥ ३१ ॥

कश्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥

तव आत्मसिद्धि न टके चि । आणि माघौतेआ हीं नैयवे चि ।
एसां अस्तु गेला माझारि चि । आयुष्यभानु ॥ ३२ ॥
जैसें अवकालीं आभाल । अलुमालु सपतल ।
विपायें आलें केवल । वसे ना वरिषे ॥ ३३ ॥
तैसीं दोन्हीं इयें दुरावलीं । जे प्राप्ति तव अलग ठेली ।
आणि अप्राप्ति ही सांडविली । श्रद्धा तिआ ॥ ३४ ॥

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

ऐसा ओलांतरला काजीं । जो श्रद्धेचां चि समाजीं ।
बुडाला तेआ हो जी । कवण गति ॥ ३५ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ॥
नहि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४० ॥

तव कृष्ण ह्यणथि पार्था । जेया नैष्कर्म्यसुखीं आस्था ।
तेया मोक्ष वांचूनि अन्यथा । गति आहे गा ॥ ३६ ॥
परि येतुलें चि येक घडे । जें माझारि विसावें पडे ।
त हीं ऐसेनि सुरवाडे । जो देवां नाहीं ॥ ३७ ॥
यन्हविं अभ्यासाचां उचळतां । पाई जरि चालतां ।
तारि दिवसा आधिं टाकित । सोहसिद्धितें ॥ ३८ ॥
परि तेतुला वेगु तो नोहे चि । ह्यणौनि विसावां त्हे नैका चि ।
पाठिं मोक्षु तव तसा चि । ठेवला आहे ॥ ३९ ॥

प्राप्य पुण्यकृतौल्लेकानुपित्वा शाश्वतीः समाः ।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगघ्नोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

आइकै कवतिक होये कैतें । जें शतमन्त्रां लोक सायासैं ।

तें तो पावे अनायासैं । कैवल्यकामु ॥ ४१० ॥

मग तेथिचे जे अमोघ । अलौकिक भोग ।

ते भोगी जवं चांग । कवतिक पुरे ॥ ४१ ॥

पाठिं जन्मे संसारीं । परि सकळ धर्माचां माहेरीं ।

लांबा उगवे आगरीं । विभवश्रियेचां ॥ ४२ ॥

जेहांतें नीतिंथें चालिजे । सत्यसंभूतें बोळिजे ।

देखावें तें देखिजे । शास्त्रदीर्घी ॥ ४३ ॥

वेदु तो जागेश्वर । जेआ वेवसाओ निजु आचार ।

सारासारविचार । मंत्रु जेहांतें ॥ ४४ ॥

जेहाचा कुलीं चिता । जाली ईश्वराची कांता ।

जेहांतें गृहदेवता । आदिरिद्धि ॥ ४५ ॥

ऐसी निजपुण्याचिया जोडी । वाढिनची सर्व सुखांची कुलवाडी ।

तिण जन्मे तो मुरवाडीं । योगच्युतु ॥ ४६ ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति श्रीमताम् ।

एतद्धि दुर्लभतरं लेके जन्म यद्देहशम् ॥ ४२ ॥

अथवा ज्ञानाग्निश्रेत्री । जे परब्रह्मण्य श्रेत्री ।

माहामुखक्षेत्री । आदिवंत ॥ ४७ ॥

जे सिद्धांचां सिंहासनीं । राज्य कारिताति त्रिभुवनीं ।

जे कूजते कोकिळ वनीं । संतोषाचां ॥ ४८ ॥

जे विवैकप्रामिचे मुग्धी । जे वैठळे आहाति फळीं ।

तेआं योगियांचां चि कुळीं । जन्म पावे ॥ ४९ ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।

यतने च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनंदन ॥ ४३ ॥

मोटकी देहाकृति उमटे । आणि उन्मेखा पाहाट फूटे ।
 सूर्या पुढां प्रकटे । प्रकाशु जैसा ॥ ४५० ॥
 तैसी दशेची वाट न पांतां । वयभेचिया गात्रां नैयतां ।
 बालपर्णी चि सर्वज्ञता । वरी तेयातें ॥ ५१ ॥
 तिए सिद्धप्रज्ञेचेनि लभें । मन चि सारस्वतें दुभे ।
 मग सकल शास्त्रें स्वयंभें । निगति वाचें ॥ ५२ ॥
 ऐसें जें जन्म । जेयालागि देव सकाम ।
 स्वर्गी ठेले जन्होम । करिथि सदा ॥ ५३ ॥
 अमरीं भाटां होइजे । मग मृत्युशोकातें वानिजे ।
 ऐसें जन्म गा पार्था जें । तें तो पात्रे ॥ ५४ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव न्हियते ह्यवशोऽपि सः ।

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ४४ ॥

आदिं मागील जे सद्बुद्धि । जेथ जीविता नेली होंती अवधी ।
 मग ते चि पुढुतीं निरवधी । नवी लोहे ॥ ५५ ॥
 तेथ सदैवां आणि पायला । वरि दिव्यांजन हीं होये डोलां ।
 मग देखे जैसीं अवलीला । पातालधनें ॥ ५६ ॥
 तैसे दुर्भेद्य जे जे अभिप्राये । कां गुरुगम्य हान ठाये ।
 तेथ सौरसें विण जाये । बुद्धिं तेहाची ॥ ५७ ॥
 बलियें इंद्रियें एंथि मना । मन एकवटे पवनां ।
 पवनु साहाजें गगना । मीलों चि लागे ॥ ५८ ॥
 ऐसें नेणें चि काइ आपैसें । तेहातें चि कीजे अभ्यासें ।
 समाधि घर पूसे । मानसाचें ॥ ५९ ॥
 जाणिजे योगपाठिचा भैरवु । काइ हा आरंभरंभेचा गौरवु ।
 कीं वैराग्यसिद्धिचा अनुभवु । रुपा आला ॥ ४६० ॥
 हा संसार उमाणें माय । किं अष्टांगसान्निध्येचें दीप ।
 जैसें परिमलें चि धारेलें रूप । चदनाचें ॥ ६१ ॥

तैसा संतोषाचा काइ घडिला । कां सिद्धभांडारौनि हान काडिला ।
 दीसे तेणें मानें रूढला । साधकदशे ॥ ६२ ॥
 जे वरिखशताचां कोडीं । जन्मसहस्रांचिआ आडी ।
 लंघितां पातला थडी । आत्मसिद्धिची ॥ ६३ ॥
 ह्यणौनि साधनजात आघवें । अनुसरे तेआ स्वभावें ।
 मग आइतियें बसे राणिवे । विवेकाचिये ॥ ६४ ॥
 पाठिं विचारितेया वेगा । तो विवेकु ही ठाके मागां ।
 मग अविचार ये आंगा । घडौनि जार् ॥ ६५ ॥
 तेथ मनाचें मेघौडें विरे । पवनाचें पवनपण सरे ।
 आपणपां आपण मुरे । आकाश ही ॥ ६६ ॥
 प्रणवाचा माथा बुडे । एतुलेंनि अनिर्वाच्य सुख जोडे ।
 ह्यणौनि आदिचि बोलु बाहुडे । तो येया चि लागि ॥ ६७ ॥
 ऐसी परब्रह्मिची स्थिती । जे सकलां गतींसि गति ।
 तेया अमूर्त्ताची मूर्त्ति । होउनि ठाके ॥ ६८ ॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धक्लिबषः ॥
 अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५ ॥

तेणें बहुतीं जन्मीं मागिलीं । विक्षेपाचीं पाणिवलें झाडिलीं ।
 ह्यणौनि उपजतखेवो बुडाली । लगिनवटिका ॥ ६९ ॥
 आणि तद्रूपतासीं चि लग्न । लागौनि ठेलें अभिन ।
 जैसें लोपलें अभ्र गगन । होउनि ठाके ॥ ७० ॥
 तैसें विश्व जेथें होये । मात्रौतें लया जाये ।
 तें विद्यमानें चि देहें । जाला तो गा ॥ ७१ ॥
 जेया लाभाचिआ आशा । करूनि धैर्यवीहूंचा भरवसा ।
 घालित पट्कर्माचां धारसां । कर्मनिष्ठ ॥ ७२ ॥
 कां जिये येकी वस्तूलागि । बाणूनि ज्ञानाची वज्रांगी ।
 जूझत प्रपंचेसीं समरंगी । ज्ञानिये गा ॥ ७३ ॥

अथवा निर्लागे निसरडां । तपोदुर्गाचां आडकडां ।
 झोंबति तपिये चाडा । जेयाचिया ॥ ७४ ॥
 जें भजतेयांसि भज्य । याज्ञिकांचें याज्य ।
 येवं जें पूज्य । सकळां सदा ॥ ७५ ॥
 तें चि तो आपण । स्वयं जाळा निर्वाण ।
 जें साधकांचें कारण । सिद्ध तत्व गा ॥ ७६ ॥

तपस्विभ्योऽधिको योगो ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
 कर्मिभ्यश्चाधिको योगो तस्माद्योगो भवार्जुन ॥ ४६ ॥

हणौनि कर्मनिष्ठां वंद्यु । तो ज्ञानियांसि वेद्यु ।
 तापसांचा आयु । तपोनाथु ॥ ७७ ॥
 पै जीवपरमात्मसंगमां । जेयाचेया एणेंजाणें मनोधर्मा ।
 तो शरीरिं चि परि महिमा । ऐसी पावे ॥ ७८ ॥
 हणौनि एआ कारणें । तूतें मीं सदा हणे ।
 योगी होये अंतःकरणें । पांडुकुमरा ॥ ७९ ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्भूतेनांतरात्मना ।

श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ ४७ ॥

आगा योगी जो हणिजे । तो देवांचा देओ जाणिजे ।
 आणि मुखसर्वस्व माझे । चैतन्य तो ॥ ४८० ॥
 जेया भजता भजन भजावें । हें भगतिसाधन जें आधवें ।
 तें मी चि जाळें अनुभवें । अखंडीत ॥ ८१ ॥
 तेया एकवटलेया प्रेमा । जरि पाडें पाडजे उपमा ।
 तरि मी देह तो आत्मा । हें चि होये ॥ ८२ ॥
 ऐसें भक्तचकोरचंद्रें । जेथ त्रिभुवनैकनरेंद्रें ।
 बोलिलें गुणसमुद्रें । संजयो हणें ॥ ८३ ॥
 तेथ आदित्याप्रसौनि पार्या । अडुकिजे ऐसी चि आस्था ।
 दुणावली हे यदुनाथा । पावें सरलें ॥ ८४ ॥

किं सावियां चि मनीं तोपला । जें बोलां आरिसा जोडला ।
 तेणें हारिषें आतां उपलवला । निरूपील ॥ ८५ ॥
 जो प्रसंगु असे पुढां । जेथ शांतु दीसैल उघडा ।
 तो पाळविला मुडा । प्रमेयबीजाचा ॥ ८६ ॥
 जें सात्विकाचेनि वडपें । गेलें अध्यात्मिक खरपें ।
 साहाजें निरोलले वापे । चतुर चित्ताचे ॥ ८७ ॥
 वारि अवधानाचा वापसा । लाधला सोनेआं ऐसां ।
 ह्यणौनि पेरावेआ धिवंसा । निवृत्तिसी ॥ ८८ ॥
 ज्ञानदेओ ह्यणे मी चाडें । सद्गुरु केलां कोडें ।
 माथां हातु ठेविला तें फुडें । विं चि वाडलें ॥ ८९ ॥
 ह्यणौनि येणें मुखें जें निगे । तें संतांचां हृदइं लागे ।
 हें असो सांवेँ श्रीरंगें । बोलिलें जें ॥ ९० ॥
 परि तें मनाचां कार्नीं आइकावें । बोलु बुद्धिचां डोलां देखावें ।
 हें साटोवार्टीं घेआवें । चित्ताचिआ ॥ ९१ ॥
 अवधानाचेनि हातें । नेया पां हृदया आंतौतें ।
 हें रिझवितील आणितें । जाणांचिए ॥ ९२ ॥
 हे हितातें निवविती । परिणामातें जिवविती ।
 सुखाचीं लाविती । लाखौली जीवा ॥ ९३ ॥
 जें अर्जुनेसीं मुकुंदें । नागर बोलिलें विनोदें ।
 तें बोविथेचेनि बंधें । सांघैन मीं ॥ ९४ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
 योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अभ्यासयोगो नाम

पष्ठमोऽध्यायः ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

ज्ञानेश्वरी

अध्याय सातवा

श्रीकृष्णाय नमः ॥

तरि आइकां मग तो अनंतु । पार्थितें असे हणतु ।
पैं गा तूं योगयुक्तु । जाळा सांता ॥ १ ॥
मज समप्रातें जाणसी ऐसैं । आपुलिये तळहातिचें रत्न जैसें ।
तुज ज्ञान सांघेंन तैसें । विज्ञानेंसीं ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥
ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

येथ विज्ञानें काइ करावें । ऐसैं घेंसि जरि मनोभावें ।
तरि पैं आदिं जाणावें । तें चि लागे ॥ ३ ॥
मग ज्ञानाचिये वेळे । ज्ञांकाति जाणिवेचे डोळे ।
जैसी तीरीनाव न ढळे । टेंकळी सांती ॥ ४ ॥
तैसी जाणीव जेथ न रिगे । विचार माघौता वाउळीं निगे ।
तर्कु आणि ने घे । आंगीं जेयाचां ॥ ५ ॥

अर्जुना तेया नावं ज्ञान । येरु प्रपंचु हें विज्ञान ।
 येथ सत्वबुद्धि तें अज्ञान । तीन्ही जाण ॥ ६ ॥
 आतां अज्ञान आववें हारपे । विज्ञान निःशेष करपे ।
 आणि ज्ञान तें स्वरूपें । होउनि जाइजे ॥ ७ ॥
 ऐसें वर्म जें गूढ । तें कीजैल वाक्यारूढ ।
 जेणें थोडेनि पुरे कोड । बहुत मनिकें ॥ ८ ॥
 जेणें सांघतेया बोलवें कुंठे । आइकतेयाचें वेसन तूटे ।
 हें जाणणें सानें मोठें । नव्हे आइकें ॥ ९ ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

पै गा मनुष्यांचेया सहस्रां । माझि विपाइलेयां चि एथं धिवंसा ।
 तैसेयां धिवंसेकरां बहुवसां । माझि विरला जाणें ॥ १० ॥
 जैसें भरलेया त्रिभुवना । आंतु येकु येकु चांगु अर्जुना ।
 निवडूनि कीजे सेना । लक्षवरि ॥ ११ ॥
 किं तेयां ही माझि सेवटीं । जेव्हलिं लोहमासातें घाटी ।
 तेव्हलिं विजेश्रियेचां पाटीं । एकु चि वैसे ॥ १२ ॥
 तैसे आस्थेचां महापुरीं । रिगताति कोडिवेन्हीं ।
 परि प्राप्तिचां पैली तीरीं । विरला निगे ॥ १३ ॥
 ह्यगौनि सामान्य गा नोहे । हे सांघतां वडिलि गोठि आहे ।
 परि ते बोलें येईल पाहें । आतां प्रस्तुत आइक ॥ १४ ॥
 तरि अवधारि धनंजया । हे महदादिक माझी माया ।
 जैसी प्रतिविबे छाया । निजांगाची ॥ १५ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥

आणि इयेतें प्रकृति ह्यणिजे । हे अष्टधा भिन्न जाणिजे ।
 लोकत्रय निफजे । इयेतव ॥ १६ ॥

हे अष्टधा भिन्न कैसी । ऐसा ध्वनि धरिसी जरि मानसीं ।
तरि ते चि आतां परिसैं । विवंचना ॥ १७ ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे परां ।

जीवभूतां महाबाहो ययेद् धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

आप तेज गगन । मही मारुनु मन ।

बुद्धि अहंकार हे भिन्न । आठै भाग ॥ १८ ॥

आणि एयां आठांची जे साम्यावस्था । ते माझी परम प्रकृति पार्थ ।

तिये नावं व्यवस्था । जीउ ऐसी ॥ १९ ॥

जे जडातें जीववी । चेऩेतें चेववी ।

मनातें मानवी । शोक मोह ॥ २० ॥

पैं बुद्धिचां आंगां जाणणें । तें जियेचिये जवलिकेचें करणें ।

जिया अहंकाराचेनि विदाणें । जग चि धरिजे ॥ २१ ॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणोत्पुपधारय ।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

ते सूक्ष्म प्रकृति कोडें । जें स्थूलेचेपा आंगा घडे ।

तैं भूतसृष्टिची पडे । टांकसाल ॥ २२ ॥

चतुर्विधु ठसा । उमटों लागे आपैसा ।

मोला तरि सरिसा । परि धर चि आनान ॥ २३ ॥

होंति चौरासी लक्ष धरा । एरा मीति नेणिजे भांडारा ।

भरे आदिशून्याचा गाभारा । नाणेयांसिं ॥ २४ ॥

ऐसे एकतूकें पांचभौतिक । पडति वौहस टांक ।

मग तिये समृद्धिचें लेख । प्रकृती चि धरी ॥ २५ ॥

जे आंकूनि नाणें विस्तारी । पाठिं तेयाची चि आटणी करो ।

माझि कर्माकर्माचां व्यवहारी । प्रवर्तुं दावी ॥ २६ ॥

हे रूपक परि असो । सांघां उघड जैसैं परियसों ।

तरि गा नामरूपाचा अतिमो । हा प्रकृती चि कीजे ॥ २७ ॥

आणि प्रकृति तवं माज्ञां ठांइ । त्रिंवे एथ आन नाहीं ।
ह्यणौनि आदिनिधन पाइं । जगासि मीं ॥ २८ ॥

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।

मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥ •

हें रोहिणीचें जल । तेयाचें पांतां जें मूल ।
तें रश्मि हीं नव्हति केवल । होये तें भानु ॥ २९ ॥
तिया चि परीं किरीटी । इये प्रकृती जालिये सृष्टी ।
जें उपसंहारौनि कीजैल गोठि । तें मी चि आहें ॥ ३० ॥

रसोऽहमप्सु कांतेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८ ॥

ऐसें होये दीसे न दिसे । हें मज चि माझिवडें असे ।
मियां चि विश्व धरिजे । जैसें सूत्रें मणि ॥ ३१ ॥
ह्यणौनि उदकीं हान रसुं । कां पवनीं जो स्पर्शु ।
शशिसूर्यां जो प्रकाशु । तो मी चि जाण ॥ ३२ ॥
तैसा चि नैसर्गिकु शुद्धु । पृथ्वीचां ठांइ गंधु ।
गगनीं मीं शब्दु । वेदीं प्रणवु ॥ ३३ ॥
नराचां ठांइ नरत्व । जें अहंभावियें सत्व ।
तें पौरुष मीं हें तत्व । बोलिजत असे ॥ ३४ ॥

पुण्यो गंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।

जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

अग्नी ऐसें आहाच । तेजीं नावांचें आहे कवच ।
तें परतें केलेयां साच । तेज तें मीं ॥ ३५ ॥
आणि नानाविधिं योनि । जन्मौनि भूतें त्रिभुवनीं ।
वर्ततें आहाति जीवनीं । आपुळाळां ॥ ३६ ॥
पैं एकें पवनू चि पीथि । एकें तृणेतव जीथि ।
एकें अन्नाधारें आहाति । जलें एकें ॥ ३७ ॥

ऐसें भूतप्रति आनन । जें प्रकृतिवशें दीसे जीवन ।
तें आघवां ठाई अभिन्न । मी चि एक ॥ ३८ ॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥

पै आदिज्ञेनि अवसरें । विरुढे गगनाचेनि अंकुरें ।
जें अंतीं गीली आखरें । प्रणवा पटिचीं ॥ ३९ ॥
जवं हा विश्वाकारु असे । तवं जें विश्वा चि सारिखें दीसे ।
मग महाप्रलयदशे । कैसें हीं नव्हे ॥ ४० ॥
ऐसें अनादि जें सहज । तें गा मीं विश्वबीज ।
हें हाता तळीं तुज । देइजतसे ॥ ४१ ॥
मग उघड करूनि पांडवा । जै हें आणिसी सांख्याचेया गावां ।
तें येयाचा उपेगु बरवा । देखसील ॥ ४२ ॥
परि हें अप्रसंगालाप । आतां असतु न बोलें साक्षेप ।
जाणें तपियांचां ठाईं तप । तें रूप माझें ॥ ४३ ॥
बलियां माझि बल । तें मीं जाण अढल ।
बुद्धिमतीं केवल । बुद्धि ते मीं ॥ ४४ ॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११ ॥

भूतांचां ठाईं कामु । तो मीं ह्मणे रामु ।
जणें अर्थातव धर्मु । थोरु दीसे ॥ ४५ ॥
एन्हविं विकाराचेनि पैसें । करी किर इंद्रियांचेया चि ऐसें ।
परि धर्मासि वेखासें । जाओं नेंदी ॥ ४६ ॥
जे अप्रवृत्तिचा अव्हांटा । सांडूनि विधिचिया चि नीगे वाटा ।
तेवीं चि नियमाचा दीवटा । सर्वे चाले ॥ ४७ ॥
कामु ऐसिया ओजा प्रवर्ते । ह्मणौनि धर्मासि होये पुरतें ।
मग माक्षतार्थिचें मुगुते । संसार भोगीं ॥ ४८ ॥

जो श्रुतिगौरवाचा मांडवी । कामुसृष्टिचा वेळ वाढवी ।
जवं कर्मफलेंसां पालवी । अपवर्गी टेंके ॥ ४९ ॥
ऐसां नियतु कां कंदर्पु । जो भूतां एयां वाजरूपु ।
तो मीं ह्मणे वापु । योगियांचा ॥ ५० ॥
हें येकेक केती सांघावें । आतां वस्तुजात चि आवघें ।
मज पासौनि जाणावें । विकरलें असे ॥ ५१ ॥

ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ॥
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ १२ ॥

जे सात्विक हान भाव । कां रजतमादि सर्व ।
ते ममरूपसंभव । ओलख तूं ॥ ५२ ॥
हे जाले तरि माझां ठांड । परि येया माझि मी नाही ।
जैसी स्वप्निचां डोहीं । जाग्रति न बुडे ॥ ५३ ॥
ना तरि रसाची चि सुवट । जैसी वीजकणिका तरि घनवट ।
परि तियेतव होये जें काष्ट । अंकुरद्वारें ॥ ५४ ॥
मग तेया काष्टाचां ठांड । सांघ पां वाजपण आहे काहीं ।
ह्मणौनि विज्ञानी मीं नाही । जन्हीं हें माझें ॥ ५५ ॥
पैंगा गगनीं उपजे आभाळ । परि तेथ गगन नाहिं केवळ ।
अथवा अभाळीं होये सलीळ । तेथ अभ्र नाहिं ॥ ५६ ॥
मग तेया उदकाचेनि चि आवेसैं । जालें तेज जें लखलखीत दीसे ।
तेयां विजू माझि काइ असे । सलीळ तें ॥ ५७ ॥
सांघें अग्रीतव धूमु होये । तिण धूमों काये अग्नि आहे ।
तैसा विकारु हा मी नोहें । जन्हीं विकरलां असें ॥ ५८ ॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।

मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३ ॥

परि उदकीं जालीं वावुली । उदकातें चि जैसी झांकोली ।
कां वायांचिया आभाळीं । आकाश कोप ॥ ५९ ॥

हो गा स्वप्न हें लटकें नोहे । परि निद्रावशें जै बाणलें होये ।
 तैं आठउ काइ देंत आहे । आपणपें ॥ ६० ॥
 हें असो नेणों कैचें । जें डोलां चि पटल रचे ।
 तेणें देखणेपण डोलेयांचें । न गीलजे काइ ॥ ६१ ॥
 तैसी माझी चि हे बिंबली । गुणात्मक साउली ।
 किं मज चि आड ठेली । जवनीक जैसी ॥ ६२ ॥
 ह्णौनि भूतें मातें नेणती । माझीं चि परि मीं नव्हति ।
 जैसीं जला जलें न विरति । मुक्ताफलें ॥ ६३ ॥
 पै पृथ्वीचा घट्टु कीजे । सर्वे चि पृथ्वीसि मिले जरि मेलधिजे ।
 तो चि अग्निसंगें सिंविजे । तारि मांगल होये ॥ ६४ ॥
 तैसैं भूतजात सर्व । हे माझे चि कीर अवयव ।
 परि मायायोगें जीव— । दशे आले ॥ ६५ ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥

मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते ॥ १४ ॥

आतां महानदी हे माया । उतरौनियां धनंजया ।
 मी होइजे हें आया । कैसेनि ये ॥ ६६ ॥
 जिये ब्रह्माचलाचां आधाडां । पहिलेया संकल्पजलाचेया उभडा ।
 सर्वे चि महाभूतांचा बुडडा । साना आला ॥ ६७ ॥
 जे शृष्टिसंचाराचेनि ओर्वे । चडतकालकलांचेनि वेर्वे ।
 प्रवृत्तिनिवृत्तिचीं तुंगें । तटें सांडी ॥ ६८ ॥
 जे गुणघनाचेनि वृष्टिभरें । भरली मोहाचेनि महापूरें ।
 घेउनि जांत नगरें । यमनियमांचीं ॥ ६९ ॥
 जे द्वेषाचां आवर्ती दाटत । तेथ मत्सराचे हकरे पडत ।
 माझि प्रमादादि तलपु अंत । माहामीन ॥ ७० ॥
 जेथ प्रपंचाचीं वलणें । कर्मा अकर्माचीं ओभाणें ।
 वारि तराति ओसाणें । मुखदुःखांचीं ॥ ७१ ॥

रतिचेया बेटा । आदलति कामाचिया लाटा ।
 तेथ जीवफेन संघाटां । सीव दीसे ॥ ७२ ॥
 अहंकाराचिया चलियां । वरि मद्रयाचिया उकलिया ।
 जेथ विषयोर्माचे कलिया । उल्टालु घेंति ॥ ७३ ॥
 उदोअस्तूंचे लोंढे । पाडित जन्ममृत्युचे चोंढे ।
 जेथ पांचभौतिक बुडडे । होंत जांत ॥ ७४ ॥
 संमोह—भ्रम—मासे । गीलित धैर्याचीं आविसें ।
 जेथ देवढे भवंत वलसे । अज्ञानाचे ॥ ७५ ॥
 भ्रांतिचेनि खडुलें । रेवेल आस्थेचे अवगाले ।
 रजोगुणाचेनि खलालें । स्वर्गु गाजे ॥ ७६ ॥
 तमाचे धारसे काढ । सत्वाचें थीरपणें जाड ।
 किंबहुना हे दुवाड । मायानदी ॥ ७७ ॥
 पै पुनरावृत्तिचेनि उभडें । झलंबताति सत्यलोकिचे हुडे ।
 घायें गडबडीत ढोंढे । ब्रह्मगोलकांचे ॥ ७८ ॥
 ते पाणियांचेन वहिलेपणें । आझूं न धरिती चि ओभाणें ।
 ऐसा मायापुरु हा कवणें । तारिजैल गा ॥ ७९ ॥
 एक स्वयंबुद्धिचां वाहीं । रिगाले तेयांचीं शुद्धि नाहीं ।
 एक जाणिवेचां डोहीं । गवें गीलिले ॥ ८० ॥
 एकिं विद्येचिया सांगडी । घेतलिया अहंभावाचिया डोंडी ।
 ते मदमीनाचां तोंडीं । सगळे चि गेले ॥ ८१ ॥
 एकिं वयसेचें जाड बांधलें । मग मन्मथाचिये कासे लागले ।
 ते विषयमगरीं सांडिले । चवट्टनियां ॥ ८२ ॥
 आतां वृद्धाप्याचेया तरंगा । माझि मतिभ्रमाचा जरंगा ।
 तेणें कवलजिताति पै गा । चडूंकडे ॥ ८३ ॥
 आणि शोकाचां कडां उपटत । रोगाचां आवतीं दाटत ।
 आपदागिधिं चुंविजत । उधवलं टांई ॥ ८४ ॥

मग दुःखाचेनि वरटेनि बोंबले । पाठिं मरणाचिया रेवा रेवले ।
 ऐसे कामाचिये कासे लागले । गेले वायां ॥ ८५ ॥
 एकिं यजनक्रियेचीं पेटां । घातलीं बांधौनि पोटां ।
 ते स्वर्गसुखाचां कपाटां । भरौनि ठेले ॥ ८६ ॥
 एकिं मोक्षिं लागवियाचिया आशा । केला कर्मबाह्याचा भर्वसा ।
 परि ते पडिले गा करूनि वळसां । विधिवोधाचा ॥ ८७ ॥
 जेथ वैराग्याची नाव न रिगे । विवेकाचा तागा न लगे ।
 वरि काहिं काहिं तरों ये योगें । परि विपायें तो ॥ ८८ ॥
 ऐसें जीवाचिये आंगवणे । इये मायानदीचें उतरणें ।
 हें काइसेयासारखें बोलणें । ह्यणावें पां ॥ ८९ ॥
 जरि अपध्याशीला व्याधी । कले साधू दुर्जनाची बुद्धि ।
 कां रागी सांडी रिद्धि । आली सांती ॥ ९० ॥
 जरि चोरा सभा दाटे । अथवा मीना गळु घोंटे ।
 ना तरि भेडा उल्हाटे । विवसी जरि ॥ ९१ ॥
 पाडसा वागूर केरांडी । जरि मुंगी मेरु उळांडी ।
 तरि मोहाचि पैली थडी । देखति जीव ॥ ९२ ॥
 ह्यणौनि गा पांडुसुता । जैसी सकामा न जिणवे चि वनिता ।
 तैसी मायामय हे सारिता । न टके जीवां ॥ ९३ ॥
 एथ एक चि लीला तरले । जिहिं भजौनि मातें वरिलें ।
 तेया ऐली चि थडिये सरलें । मायाजळ ॥ ९४ ॥
 जे अहंभावाचें ओझे सांडुनि । विकारांचिया झुलुआ चूकौनि ।
 अनुरागाचा नीरुताउनि । पाणिढालु ॥ ९५ ॥
 जेया ऐक्याचिये उतारां । बोधाचा जोडला तारा ।
 मग निवृत्तिचेया पैलातारा । झेंपावले जे ॥ ९६ ॥
 जेयां सद्गुरू तारू पुढें । जे अनुभवाचिये कासे गाढे ।
 जेयां आत्मनिवेदन तराडें । आकळले ॥ ९७ ॥

ते उपरतिचां वाविं सेलत । सोहंभावाचेनि थावें पेलत ।
मग निगाले अनकळित । निवृत्तितटीं ॥ ९८ ॥
एणें उपायें मज भजले । ते हे माझी माया तरले ।
परि ऐसे भक्त विपाडले । बहुवस नाहिं ॥ ९९ ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराघमाः ॥

माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

जें बहुतां एकां आवांतरु । अहंकाराचा भूतसंचारु ।
जाला हणौनि विसरु । आपणपां तेयां ॥ १०० ॥
तेव्हां नियमाचें बन्ध नाठवे । पुढैली अधोगतिची लाज नेणवे ।
आणि करिताति जें न करावें । वेदु हणो ॥ १ ॥
पाहे पां शरीराचेया गावां । जेयालागि आले मांडवा ।
तो कार्यार्थु आश्रवा । सांडूनियां ॥ २ ॥
इंद्रियांचां राजर्वादीं । अहंमतिचां जल्पवादिं ।
विकारांतराची मांडी । मेलविताति ॥ ३ ॥
आणि दुःखशोकाचां घाई । मारिलेयाची सें चि नाहिं ।
हे सांघावेया कारण काड । प्रसिले माया ॥ ४ ॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आर्ता जिज्ञासुरर्थार्थी क्षात्री च भरतर्षभ ॥ १६ ॥

हणौनि माते चूकले । ऐसां चतुर्विध मज भजले ।
जिहिं आत्महिता केलें । वाढतें गा ॥ ५ ॥
तो पहिल्या आर्तु हणजे । दुसरा जिज्ञामु बोळिजे ।
तीजा अर्थार्थी जाणजे । ज्ञानियां चौथा ॥ ६ ॥
तेथ आर्तु तो आर्तिचेन व्याजें ।
जिज्ञासु तो जाणावेया चि दागि भजे ।
तांजेनि तेणें अर्थजे ।
अर्थसिद्धी ॥ ७ ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिविशिष्यते ।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ १७ ॥

मग चौथ्याचां ठाई । काहिं चि करणें नाहीं ।
 ह्यणौनि भक्तु येकु पाई । ज्ञानियां जो ॥ ८ ॥
 जे तेया ज्ञानाचेनि प्रकाशें । फीटलें भेदांचें कडवसें ।
 मग मी चि जाळा समरसें । आणि भक्तु तेविं चि ॥ ९ ॥
 पारि आणिकाचिये दीठी नावेक । जैसा फटिकु चि आवडे उदक ।
 तैसा ज्ञानी नव्हे कवतीक । सांघतां तें ॥ ११० ॥
 जैसा वारा कां गगनीं वीरे । मग वारेपण वेगलें नुरे ।
 तेवि भक्तु हे पैज न सरे । जरि ऐक्या आला ॥ ११ ॥
 पारि पवनु हालौनि पाहिजे । तारि गगना हि वेगला देखिजे ।
 एन्हवि गगन तों हें साहाजें । असे जैसें ॥ १२ ॥
 तैसें शारारें हान कर्म । तो भजतसे ऐसा गमे ।
 पारि आंतरें प्रतीतिधर्म । मी चि जाळां ॥ १३ ॥
 आणि ज्ञानाचेनि उजियडलेपणें । मी आत्मा ऐसें तो जाणे ।
 ह्यणौनि मी हीं तैसें चि ह्यणें । उचंचलला सांता ॥ १४ ॥
 हां गा जीवापलीकडिलीं षूणे । जो पावौनि वावरों हीं जाणे ।
 तो देहाचेनि वेगलेपणें । काइ वेगला होये ॥ १५ ॥

उदाहारः सर्व एवैते ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम् ।

आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ १८ ॥

ह्यणौनि आपुलालेया हिताचेनि लोभें ।
 मज आवडे तो ही भगनु शोबे ।
 पारि मीं चि करीं वालभें ।
 ऐसा ज्ञानियां येकु ॥ १९ ॥
 पाहे पां दुभतेयाचिया आशा । जग चि धेनू कारित आहे फांसा ।
 पारि दोरेंविण कैसा । वत्साचा बली ॥ १७ ॥

कां जें तनुमनुप्राणें । तें आणिक कांहीं चि नेणें ।
 देखे तेयातें ह्मणे । हे माये चि कीं ॥ १८ ॥
 तें एणें मानें अनन्यगति । ह्मणौनि धेनू हीं तैसी चि प्रीति ।
 एयालागि लक्ष्मीपति । बोलिले साच ॥ १९ ॥
 हें असो मग ह्मणितलें । जे कां गा तुज सांघितले ।
 तेही भक्त भले । पढियति आह्मां-॥ १२० ॥
 परि जाणौनियां मातें । जो पाहों विसरला माघौतें ।
 जैसैं सागरा एउनि सरिते । मुरुडावें ठेलें ॥ २१ ॥
 तैसी अंतष्करणकुहंरीं उपनली । जेयाची प्रतीतिगंगा मज मनिनी ।
 तो मीं हे काइ बोली । फार करूं ॥ २२ ॥
 तरि ज्ञानियां जो ह्मणिजे । तो चैतन्य चि केवल माझें ।
 हें न ह्मणावें परि काइ कीजे । न बोलों नैये ॥ २३ ॥
 जें तो विपयांचिये मांठ झाडी । माझि कामक्रोधाची पाझडी ।
 चूकौनि आला पाडी । सदासनेचिये ॥ २४ ॥
 मग साधुसंगें सूभटा । उजू सत्क्रियेचिया वाटा ।
 अप्रवृत्तिचा अव्हांटा । डावा केलो ॥ २५ ॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ॥

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

आणि जन्मशताचां वाहातवणां ।
 तेविं चि आशेचिया न हें चि वाहाणां ।
 तेथ फलहेतुचा उगाणां ।
 कवण चार्थी ॥ २६ ॥
 ऐसा शरीरसंयोगाचिये गती । माझि धावंत नडिया आइती ।
 तव कर्मक्षयाची पाहूंती । मांये चार्थी ॥ २७ ॥
 तैसीं चि गुरुकृपा उखा उजळयी । मग ज्ञानाची ओतपली पडिली ।
 तेथ साम्याचां गिद्धि उपनयी । तेयाचिये दर्श ॥ २८ ॥

तेव्हलि जियाकडे वांस पाहे । तेउता मीं चि येकु तेया आहे ।
 अथवा निवांतु जन्ही राहे । तन्हीं मीं चि आथि ॥ २९ ॥
 हें असो आणिक काहीं । तेया सर्वत्र मीवांचूनि नाही ।
 जैसें सबाद्य जल डोहीं । बुडालेया घटा ॥ १३० ॥
 तैसा तो मज भीतरि । मी तेया आंतु बाहिरि ।
 हें सांघिजे वोलवारि । तैसें नोहे ॥ ३१ ॥
 ह्यगौनि असो हें इयापरीं । तो देखे ज्ञानाची वाखारी ।
 तेणें सवंतारेनि करी । आपु विश्व ॥ ३२ ॥
 हें समस्त ही श्रीवासुदेउ ॥ ऐसेया प्रतीतिरसाचा उते भाउ ॥
 ह्यगौनि भक्तांमाक्षि राओ । ज्ञानियां तो ॥ ३३ ॥
 जेयाचिये प्रतीतींचां वाखोरां । पवाडु होथे चराचरां ।
 तो महात्मा धनुर्धरा । दुर्लभु अति ॥ ३४ ॥

कामैस्त्रैस्त्रैर्द्वैतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।

तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियता स्वया ॥ २० ॥

येर बहू जोडति किरीटी । जेयांचीं भजनें भोगासाठीं ।
 जे आशातिमिरें दीठी । मंद झाले ॥ ३५ ॥
 आणि फलाचिया हांवां । हृदयीं कामा जाला रिगावां ।
 कीं तेयाचिया घसणी दीवा । ज्ञानाचा गेला ॥ ३६ ॥
 ऐसें उभयथा आंधारें पडिलें । ह्यगौनि पासिं चि मातें चूकले ।
 मग सर्वभावे अनुसरले । देवतांतरां ॥ ३७ ॥
 आदिंचे प्रकृतिचे पाइक । वारि भोगालागौनि तवं रंक ।
 मग तेणें लौल्यें कवतीक । कैसें भजतें ॥ ३८ ॥
 कवणी तिया नियमबुद्धी । कैसिया हान उपचारसमृद्धी ।
 कां अर्पण यथाविर्वा । विहित करणें ॥ ३९ ॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चिनुमिच्छति ।

तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ २१ ॥

पै जो जो जिये जिये देवतांतरीं । भजावेया चाड धरी ।
 तेयाते ते चाड पूरी । पुरविता मीं ॥ १४० ॥
 मग तिया श्रद्धायुक्त । तेथिचें आराधन जें उचित ।
 तें सिद्धिवेन्हीं समस्त । वत्तो लागे ॥ १४१ ॥

स तथा श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ॥
 लभते च ततः कामाभ्यैव विहितान्हितान् ॥ २२ ॥

ऐसे जेणें जें भाविजे । तें फल तेणें पाविजे ।
 परि तें हीं सकल निफजे । मज चि तत्र ॥ १४२ ॥
 परि ते भक्त मारें नेणति । जे कल्पने बाहिरे न निगति ।
 म्हणौनि कल्पित फल पावति । अंतवंत ॥ १४३ ॥

अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
 देवान्देवयजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि ॥ २३ ॥

दिग्गुहना ऐसे भजन । तें संसाराचें चि साधन ।
 येरु फलभोगु तें स्वप्न । नावंभरि दीसे ॥ १४४ ॥
 हें असो पन्हैतें । पाठिं हो कां आवडतें ।
 परि यर्जा जो देवतातें । तो देवत्वासि ये ॥ १४५ ॥
 येर तनुमनुप्राणी । जे निरंतर माझिया चि वाहाणी ।
 ते देहाचां निर्वाणी । मी चि हेंति ॥ १४६ ॥
 परि तैसें न करीति प्राणिये । यायां आपुलां चि सुखि वाणिये ।
 पन्हताति पाणियें । तल्हातिचेनि ॥ १४७ ॥
 नाना अमृताचां सागरीं वुडिजे । मग तांडासि काइ वज्र पाडिजे ।
 आणि मनीं तरि आठविजे । थीळरातें ॥ १४८ ॥
 हें ऐसें काइसेया करावें । जें अमृति हिं रिगौनि मरावें ।
 सुखें अमृत होउनि कां नसावें । अमृतामाझि ॥ १४९ ॥
 तैसा फडहेतुचा पांजरा । सांडूनियां धनुर्दरा ।
 कां प्रतीतिपाखि अंबर । गोमर्षियां नोहावें ॥ १५० ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।

परं भावमजानंतो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

जेथ उंचावते न पवाडे । मुखाचा पैसारु जोडे ।

आपुलेनि मुरवाडे । उडों ये ऐसा ॥ ५१ ॥

तेया उमपा मापं कां मुआवें । मज अव्यक्ताते व्यक्ता कां मानावें ।

सिद्ध असतां कां निमावें । साधनवरि ॥ ५२ ॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५ ॥

परि हा बोलु आघवा । जरि विचारिजत असे पांडवा ।

तरि विशेष एयां जीवां । नलगे किर ॥ ५३ ॥

कां जें योगमायापटले । हे जाले आधि आंधले ।

हणौनि प्रकाशाचेन हीं दिहवले । न देखती चि माते ॥ ५४ ॥

यन्हविं मीं नव्हे ऐसें । कांही वस्तुजात असे ।

पाहे पां कवण जल रसें । रहित आहे ॥ ५५ ॥

पवनु कवणाते न सिवै चि । आकाश के न समाये चि ।

हें असो येकु मीं चि । विश्वि असें ॥ ५६ ॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चाहुंन ।

भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥

एथ भूतें जिये अलंतलि । तिये मीं चि होउनि ठेलीं ।

आणि वर्तते आधि जालीं । ते हीं मीं चि ॥ ५७ ॥

कां भविष्यमाणे ज्ये हीं । ते हिं मज वेगलीं नाहीं ।

हा बोलु चि यन्हविं कांहीं । होये ना जाए ॥ ५८ ॥

ऐसा मीं पांडुमुता । अनस्यूनु सदा असता ।

एयां संसारु जो भूतां । तो आनें बोलें ॥ ५९ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ।

सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यांति परंतप ॥ २७ ॥

तरि तेही आतां थोडी ऐसी । गोठि सांविजैळ परियसैं ।
 जैं अहंकारा तनूसीं । बालभ पडिलें ॥ १६० ॥
 तैं इछा हे कुमारी जाली । मग ते कामाचेया तारुण्या आली ।
 तेथ द्वेषेसीं मांडिली । कुलवाडि तिये ॥ ६१ ॥
 तेयां दोषां तव जन्मला । ऐसा द्वंदमोहो पडिला ।
 मग तो आजेन वाढविला । अहंकारें ॥ ६२ ॥
 तो धृतिसीं सदा प्रतिकूल । नियमा हीं ना गवे मूल ।
 आशारसैं दोंदिलु । जाला सांता ॥ ६३ ॥
 असंतुष्टिचिया मदिरा । मत्तु होउनि धनुर्दरा ।
 विषयाचां वोवरा । विकृतिसिं असे ॥ ६४ ॥
 तेणें भावशुद्धिचिये वाटे । त्रिखुरिले विकल्पाचे कांटे ।
 मग चीरिले अवांटे । अप्रवृत्तिचे ॥ ६५ ॥
 तिहिं भूतें भांभावलिं । लग्नांनि संसाराचेया अडवींमाझि पडिलीं ।
 मग जेथ महादुःखाचे घेतलीं । दांडेवारि ॥ ६६ ॥

येषां त्वंतर्गतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते ब्रह्मोहविनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

ऐसां विकल्पांचें वायाणें । कांटे देखौनि ससाणे ।
 जे मतिभ्रमाचे पासवणे । घेंति चि ना ॥ ६७ ॥
 उजू एकनिष्ठतेचां पाउलीं । रगडूनि विकल्पाचिया भाली ।
 पातकांची सांडिली । अटवी जीही ॥ ६८ ॥
 मग पुण्याचें धांव घेतलें । आणि माझी जवलीक पातले ।
 किंवहुना ते चूकले । वाटवधेया ॥ ६९ ॥

जरामरणमोक्षाय भामाश्रित्य यतन्ति ये ।

ते ब्रह्म नद्विदुः क्वत्स्नमभ्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ २९ ॥

यन्हविं तर्हि पार्था । जरामरणाची नीमे कथा ।
 ऐसेया प्रयत्नातें आस्था । विये जेयांची ॥ २७० ॥
 तेयां तो प्रयत्नू चि येकें वेळें । मग समग्रें परब्रह्में फळें ।
 जेया पीकलेया रसु गले । पूर्णतेचा ॥ ७१ ॥
 तेव्हलि कृतकृत्यें जग भरे । तेथ अध्यात्माचें नवलपण पूरे ।
 कर्माचें काम सरे । वीरे मन ॥ ७२ ॥
 ऐसा आत्मलाभु तेयां । होये गा घनजया ।
 भांडवल जेया । उद्यमी मी ॥ ७३ ॥
 तेयांतें साम्याचिया वाढी । मग ऐक्याची चि सांधे कुलवाडि ।
 तेथ भेदाचीं सांकडीं । नेणजति ॥ ७४ ॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियन्नं च ये विदुः ॥

प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः । ३० ॥

जिहिं साधिभूतां मातें । प्रतीतीचेनि हातें ।
 धरुनि अधिदैवातें । सीतळे गा ॥ ७५ ॥
 जेयां जाणिवेचिये उगें । मीं अधियन्तु रिगें ।
 ते तनुचेनि हिं वियोगें । विरहिये नव्हति ॥ ७६ ॥
 एन्हविं आयुज्याचें सूत्र विवडतां । भूतांचीं उमेठें षडाडितां ।
 काइ न मरतेया ही चित्ता । युगांत नोहे ॥ ७७ ॥
 परि नेगें कैसें पै गा । जे दडउनि गेले माझेया आंगा ।
 ते प्रयाणचिया ही लगवगा । न संडींति मातें ॥ ७८ ॥
 यन्हविं तन्हीं जाण । ऐसे जे निषण्ण ।
 ते चि अंतश्करण— । युक्त योगी ॥ ७९ ॥
 तवं इये शब्दकूपिकेतलिं । नोडवे चि अवधानांची आंजुली ।
 जें अर्जुनु नावेक तेव्हली । मागां चि आहे ॥ १८० ॥

जेथ तद्ब्रह्मादिवाक्यफलें । जियें नानार्थरसरसालें ।
 बाहाकातें आहाति पारिमलें । भावांचेनि ॥ ८१ ॥
 सहजकूपामंदानीलें । कृष्णद्रुमु डालति तिये वेलें ।
 अर्जुनु श्रवणाचिये खोलें । अवसात पडिलीं ॥ ८२ ॥
 तिये प्रमेयाचीं चि हों काज वलिलीं ।
 किं रसाचां सागरीं चुबुकुलिलीं ।
 मग तैसां चि कां घोलिलीं ।
 परमानदें ॥ ८३ ॥
 तेंणें बरवेपणें निर्मलें । अर्जुनोन्मेषाचे डोलें ।
 घेंताति गलालें । विस्मयामृताचे ॥ ८४ ॥
 तिया सुखसंपत्ती जोडलिया । मन स्वर्गा वांत बाकुलिया ।
 हृदयाचां जीवीं गुतकुलिया । होंती आथि ॥ ८५ ॥
 ऐसैं बरचिलि चि बरवा । सुख जावों लागे फावा ।
 तवं रसास्वादाचिया हावां । लाहा केला ॥ ८६ ॥
 झाकारि अनुमानाचेनि करतलें । घेउनि तियें वाक्यफलें ।
 प्रतीतिमुखि एके वेलें । घालूं पाहिलीं ॥ ८७ ॥
 तवं विचाराचिया रसना न दटति ।
 परि हेतुचां दशनी ही न फुटति ।
 ऐसैं जाणौनि सुभद्रापति ।
 चुंबी चि ना ॥ ८८ ॥
 मग चमत्करला ह्यणे । इयें जलचि मा तारागण ।
 कैसा ज्ञापकळें आसलगपणें । अक्षरांचेनि ॥ ८९ ॥
 इयें पदें नव्हति फुडिया । गगनाचिया चि मां घडिया ।
 एथ आमाचिये मती बुडिया । थाउं न निगे ॥ १९० ॥

वांचूनि जाणावेयांचिया कें गोठी । ऐसें जीवीं चि कळूनि किरीटी ।
 तिवें पुनरपि केडीं दीठी । यादवेद्रा ॥ ९१ ॥
 मग विनविळें सूभटे । हां हो जी इयें एकावटे ।
 सात ही पदे अगुमुटे । नवलें असति ॥ ९२ ॥
 एन्हविं अवधानाचेनि वहिलेगणें । नाना प्रमेयांचे उगाणे ।
 काइ श्रवण.चेनि आंगणें । बोलों लाहांति ॥ ९३ ॥
 पारि तैसें नव्हे हें देवा । देखिळा अखरांचा चि मेलवा ।
 आणि विस्मयाचेया ही जीवा । विस्मयो जाला ॥ ९४ ॥
 कानाचेनि गवाक्षद्वारे । बोळाचें रस्मि आधंतरे ।
 पडेना तत्रं चमत्कारें । अवधान ठकळें ॥ ९५ ॥
 तेविं चि मज आर्त्ता अर्थाची चाड आहे । तेया सांगतां हीं वेलु न साहे ।
 ह्यागोनि निरूपण लवठहें । कीजो देवा ॥ ९६ ॥
 ऐसा मार्गालु पडिताला घेउनि । पुढां अभिप्राया दीठि सूनि ।
 तेविं चि माझी सूनि । आर्त्ति आपुली ॥ ९७ ॥
 कैसी पूसती पांहे जाणिव । भीडेची तारि लंगो नेंदी सीवं ।
 यन्हविं कृष्णद्वयासि खेवं । देउं सरलें ॥ ९८ ॥
 आगा गुहते जें पूसवे । तें एगें मानें सावधान होआवें ।
 हें एकु जाणें आवयें । सव्यसार्त्ता ॥ ९९ ॥
 आतां तेमाचें तें प्रश्रु करणें । वरि सर्वज्ञा श्रीहरिचें बोलणें ।
 हें सत्रयो आवडलेगणें । सांगेळ कैसें ॥ २०० ॥
 तिवे गा अवधान देयां गोठी । बोळिजैल नीट मन्हाटी ।
 जैसी काना आदिं दांठि । उमेगा जाये ॥ १ ॥
 बुद्धिचिया जांभा । बोळाचा न चखतां गाभा ।
 आखरांचिया चि भांभा । इंद्रियें जीति ॥ २ ॥
 पाहा पां मालतींचे कळे । प्राणासि वांटले कोर परिमलें ।
 पारि वरिचिळी बरवा काइ डोळे । श्रावली नोहोंति ॥ ३ ॥

तैसें देशिचिया हवावा । इंद्रियें करिति राणिवा ।
मग प्रमेयांचिया गावां । लेसां जाइजो ॥ ४ ॥
ऐसेनि नागरपणें । बोलु निमे तें बोलणें ।
आइका ज्ञानदेओ हणें । निवृत्तिचा ॥ ५ ॥

अंतत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे परमहंसयोगो नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ॥



ज्ञानेश्वरी

अध्याय आठवा

श्रीकृष्णाय नमः ॥

अर्जुन उवाच ।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।

अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥

मग अर्जुनें हाणितलें । अहो जी अवधारिलें ।

जें मियां पूसिलें । तें निरोपिजो ॥ १ ॥

सांघां कवण तें ब्रह्म । काइसेया नावं कर्म ।

अथवा अध्यात्म । काइ हाणिपे ॥ २ ॥

अधिभूत तें कैसें । एथ अधिदैव कवण असे ।

हें उघड मीं परियसें । तैसें बोलां ॥ ३ ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।

प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽति नियतात्मभिः ॥ २ ॥

देवा अधियज्ञु तो काइ । कवणु पां इये देहीं ।

हें अनुमानासि काहीं । दीठि न भरे ॥ ४ ॥

भाणि जी नियता अंतःकरणीं । तूं जाणिजसि प्रयाणीं ।

तें कैसें शार्ङ्गपाणी । परिसवां माते ॥ ५ ॥

देखां धवलारीं चिंतामणिचां । जरि पत्रडला होये देंवांचा ।
 ओसणतां हीं बोलु तेयाचा । परि सोपु न वचे ॥ ६ ॥
 तैसें अर्जुनाचेया शब्दा चि सवें । आलें तें चि ह्यणितलें देवें ।
 पार्था परियसैं गा बरवें । प्रूसिलें तुवां ॥ ७ ॥
 किरीटीकामधेनूचा पाडा । वरि कल्पतरूचा आहे मांदोडा ।
 ह्यणौनि मनोसिद्धिचेया पडा । तो नवलु नोहे ॥ ८ ॥
 जें कृष्णाचेयां होयजे आपण । कृष्णु होये आपुलें अंतःकरण ।
 तें संकल्पाचें आंगण । उल्लगति सिद्धी ॥ ९ ॥
 तरि ऐसैं जें प्रेम । तें अर्जुनीं चि आधि निःसीम ।
 ह्यणौनि तेयाचें काम । सदाफल ॥ १० ॥
 एया कारणें अनंतें । मनोगत तेयाचें पूसतें ।
 होईल जाणौनि आइतें । ओगरूनि ठेविलें ॥ ११ ॥
 जें अपत्य धानौनि निगे । तेयाची भूक ते मायेसी चि लागे ।
 वांचुनि शब्दें काइ सांघे । मग स्तन्य दे एरि ॥ १२ ॥
 ह्यणौनि कृपालुवा गुरुचां ठांइ । हें नवलु नोहे काहीं ।
 परि तें असो आइकां काई । बोलता जाला ॥ १३ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥

मग ह्यणितलें सर्वेश्वरें । जें आकारिं इये खोंकरे ।
 कोंदलें असति न सिरे । कव्हणी कालीं ॥ १४ ॥
 एन्हविं संपूरपण तेयाचें पावें । तरि शून्य चि नव्हे तें स्वभावें ।
 वरि गगनाचेनि पालवें । गाळुनि घेतलें ॥ १५ ॥
 जें ऐसैं हीं परि विरुळें । इये विज्ञानाचिये खोले ।
 हालवळें हीं न गलें । तें परब्रह्म ॥ १६ ॥

आणि आकाराचेनि जालेपणें । जन्मकर्मातें नेणें ।
 आकारलोपीं नीमणें । नाहीं काहीं ॥ १७ ॥
 ऐसी आपुलियाचि सहजस्थिती । जेतया ब्रह्माची नित्यता असती ।
 तेया नावं सुभद्रापती । अध्यात्म गा ॥ १८ ॥
 मग गगनीं जेवि निर्मले । नेणों कैचीं येकें वेलें ।
 उठीति घनपटलें । नानावर्णें ॥ १९ ॥
 तैसिं अमूर्तीं तियें विशुद्धें । महदादिभूतभेदें ।
 ब्रह्माडाचे बांधे । हों चि लागति ॥ २० ॥
 पैं निर्विकल्पाचिये बरडी । किं फूटे आदिसंकल्पाची विरुढि ।
 आणि ते सत्रें चि मोडौनि ये ढोंढी । ब्रह्मगोलकांचां ॥ २१ ॥
 तेयां एकेकाचा भीतर पाहिजे । तवं बीजां चि भरला देखिजे ।
 माक्षि होंतेयांजातेयां नेणिजे । लेख जीवां ॥ २२ ॥
 मग तेयां गोलकांचे अंशांश । प्रसवति आदिसंकल्प असम साहास ।
 हें असो ऐसी बहुवस । श्रुष्टि वाढे ॥ २३ ॥
 परि दूजेन विण एकलां । परब्रह्मीं चि सांचलां ।
 अनेकत्वाचा आला । पूरु जैसा ॥ २४ ॥
 तैसैं समविषमत्वं नेणों कैचें । वायां चि चराचरण एक रचे ।
 पातां प्रसवतियां योनीचे । लक्ष हीं दीसति ॥ २५ ॥
 एरी जीवभावांचिये पालविये । काहिं मर्यादा चि करुं नये ।
 पाहिजे कवण हें आघवें चि विये । तरि मूल तें शून्य ॥ २६ ॥
 ह्यणौनि करिता मुदलु न दिसे । आणि शेषीं कारण हीं काहीं नसे ।
 माक्षि कार्य चि आपैसैं । वाढों लागे ॥ २७ ॥
 ऐसा करितेन विण अगोचरु । अव्यक्तीं हा आकार ।
 निफजवी जो व्यापारु । तेया नावं कर्म ॥ २८ ॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।

अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥

आतां अधिभूत जें ह्यणिपे । तें हीं सांघों संक्षेपें ।
 तरि होय आणि हारपे । अत्र जैसैं ॥ २९ ॥
 तैसैं असतेपण आहाच । जेया नाहिं होइजे हें साच ।
 जेयातें रूपा आणीति पांच पांच । मिलौनियां ॥ ३० ॥
 भूतांतें अधिकरूनि असे । आणि भूतसंयोगें तरि दीसे ।
 जें वियोगावेगलें भ्रंशे । नामरूपादिक ॥ ३१ ॥
 तेयातें अधिभूत ह्यणिजे । मग अधिदैव पुरुष जाणिजे ।
 जेणें प्रकृतिचें भोगिजे । उपार्जलें ॥ ३२ ॥
 जो चेतनाचा चक्षु । इंद्रियदेशिचा अध्यक्षु ।
 जो देहास्तमानी वृक्षु । संकल्पविहंगा ॥ ३३ ॥
 जो परमात्मा चि परि दूसरा । जो अहंकारनिद्रा निदसुरा ।
 ह्यणौनि स्वप्निचिया अखरा । संतोषें सीणे ॥ ३४ ॥
 जीउ येणें नावें । जेयातें आलविजे स्वभावे ।
 तें अधिदैव जाणावें । पंचायतनिचें ॥ ३५ ॥
 आतां इये शरीरग्रामी । जो शरीरभावांतें उपशमी ।
 तो अधियज्ञु गा मी । पांडुकुमरा ॥ ३६ ॥
 एर अधिदैवाधिभूत । तें हीं मीं चि कीर समस्त ।
 परि पन्हेंरें कीडासि मिलत । काइ सकें नव्हे ॥ ३७ ॥
 तन्हीं तें पन्हेंरपण न मैले । आणि कीडाचिया अंशा ही मिले ।
 परि असे जवं तेयाचेनि मेलें । तवं साकें चि ह्यणिजे ॥ ३८ ॥
 तैसैं अधिभूतादि आघवें । हें अविद्येचेनि पाळवें ।
 झांकलें तवं मानवें । वेगलें ऐसैं ॥ ३९ ॥
 ते चि अविद्येची जवनीक फीटे ।
 आणि भेदभावाची अवधि तूटे ।
 मग ह्यणों जारि येक होउनि आटे ।
 तरि दोनि काय होंति ॥ ४० ॥

पै केशाचां गुंडालां । वरि ठेविली स्फटिकाची शीला ।
 ते वरि पाहिली डोलां । तवं भेदली गमेली ॥ ४१ ॥
 पाठिं केश परौते नेले । आणि भेदलेपण काय नेणों जालें ।
 तारि डांक देउनि सांधिलें । शिलेतें कांड ॥ ४२ ॥
 ना ते एकखंड चि आइती । परि संगें भिन्न गमली होंती ।
 तो चि नेलेया माघौती । जैसी का तैसी ॥ ४३ ॥
 तेविं चि अहंभाओ हा जाये । तारि ऐक्य तें आदिं चि आहे ।
 हें चि साचें जेथ होये । तें अधियज्जु मीं ॥ ४४ ॥
 पै गा आह्मी तुज । सकल यज्ञ कर्मज ।
 सांधितलें कां जें काज । मनीं धरुनि ॥ ४५ ॥
 तो हा क्रियाजाताचा विसांवां । नैष्कर्म्यमुखाचा ठेवा ।
 परि उघड करुनि पांडवा । दाविजतसे ॥ ४६ ॥
 पहिलें वैराग्यइंधनपरिपूर्ती । इंद्रियानलीं प्रदीतीं ।
 विषयद्रव्याचिया आहुती । देउनियां ॥ ४७ ॥
 मग वज्रासन ते उर्वी । शोधूनि आधारीं मुद्रा बरवी ।
 वेदी रचे मांडवीं । शरीराचां ॥ ४८ ॥
 तेथ संयमाग्नीचीं कुडें । इंद्रियद्रव्याचेनि पवाडें ।
 पूजिजति उदंडें । युक्तिघोषें ॥ ४९ ॥
 मग मनप्राणु आणि संयमु । हा चि हवनसंपदेचा संभ्रमु ।
 तेणें तोषविजे निर्द्वं नू । ज्ञानानदू ॥ ५० ॥
 ऐसेनि सकल हें ज्ञानिं अर्पें । मग ज्ञान तें ज्ञेयीं हारपे ।
 पाठिं ज्ञेयाचीं स्वरूपें । निखल उरे ॥ ५१ ॥
 तिया नावं गा अधियज्जु । ऐसें बोलिल्या जवं सर्वज्जु ।
 तवं अर्जुनु अतिप्राज्जु । तेया पातलें तें ॥ ५२ ॥
 हें जाणौनि ह्यणितलें देवें । परिहसतु आहासि बरवें ।
 एया कृष्णाचेया संतोषासत्रें । एरु मुखाचा जाला ॥ ५३ ॥

देखां बोलाचिया धणी धाइजे । कां शिष्याचेनि जालेपणें हाइजे ।
 हें सद्गुरू चि एकलेनि जाणिजे । कां प्रसवतिया ॥ ५४ ॥
 ह्यणौनि सात्विकां भावांची मांदी । कृष्णा आंगिची अर्जुना आदि ।
 न समातसे परि बुद्धी । संवरुनि देवें ॥ ५५ ॥
 मग पीकलेया मुखाचा परिमळु । कां निवालेया अमृताचा कळोळु ।
 तैसा कोवला आणि रसालु । बोळु बोळिला ॥ ५६ ॥

अंतकाले च मामेव रमरःमुक्त्वा कलेवरम् ।

यः प्रयाति स मद्भावं याति नारत्यत्र संशयः ॥ ५ ॥

ह्यणितलें परिसणेयांचेया राया । आइकैं वा घनंजया ।
 ऐसी जळें सरलेयां माया । जालितें हीं जळें ॥ ५७ ॥
 जें आतां चि सांघिलें होतें । अगा अधियज्ञु ह्यणितलें जयातें ।
 जे आदि चि तया मातें । जाणौनि अंती ॥ ५८ ॥
 तें देह झोलु ऐसें मानूनि । ठेलें आपणपें होउनि ।
 जैसा मठु गगना भरौनि । गगनीं चि आधि ॥ ५९ ॥
 इये प्रतीतीचां माझि घरीं । तेयां निश्चयाची ओहिरी ।
 आली ह्यणौनि बाहिरी । नव्हे चि से ॥ ६० ॥
 ऐसें सवाह्य ऐक्यें सांचले । मीं चि होउनि असतां रचले ।
 बाहिरि भूतांचीं पांचै ही खवलें । नेणति चि पडिलीं ॥ ६१ ॥
 उभेयां उभेपण नाहिं जेयाचें । पडिलेयां गहन कवण तेयाचें ।
 ह्यणौनि प्रतीतिचिये पोटिचें । पाणी ना हाले ॥ ६२ ॥
 ते ऐक्याची आहे उतली । कां नित्यतेचां हृदयीं घातली ।
 जैसी समरससमुद्रीं धूतली । तैसी रूळें चि ना ॥ ६३ ॥
 पै अथवि घडा बुडाला । तो आंतु बाहिरि उदका भरला ।
 पाठिं दैवंगत्या जरि फूटला । तरि उदक काय फूटे ॥ ६४ ॥
 नां तारे सपें कवच सांडिलें । कां उवातेनि वस्त्र फेडिलें ।
 तरि सांव पां काय मोडलें । अवयवां माझि ॥ ६५ ॥

तैसा आकार हा आहाचु भ्रंशे । वांचून वस्तु ते सांचली चि असे ।
 ते चि बुद्धि जालेयां विसकुसे । कैसेनि आतां ॥ ६६ ॥
 ह्यणौनि इया परीं मातें । अंतकालीं जाणत सांते ।
 जे मेकलीति देहातें । ते मी चि होंति ॥ ६७ ॥

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यंते कलेवरम् ।

तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

यन्हविं तन्हीं साधारण । ऊरीं आदल्लेयां मरण ।
 जो आठउ धरी अंतष्करण । तें चि होइजे ॥ ६८ ॥
 जैसें कव्हणां येका काकुलती । पलतां पवनगती ।
 दुपाउली अवचिती । कुहां पडिली ॥ ६९ ॥
 आतां तेया पडणेयां अरौतें । पडण चूकवावेया पुरतें ।
 नाहिं ह्यणौनि तेथें । पडावें चि पडे ॥ ७० ॥
 तेविं मृत्युचेनि अवसरें येकें । जें एउनिं जीवा सामोर ठाके ।
 तें होणें मग न चुके । भलेतिया परीं ॥ ७१ ॥
 आणि जागतां जवं असिजे । तवं जेणें ध्यानें भावना भीजे ।
 डोला लागत खेओ देखिजे । तें चि जेविं ॥ ७२ ॥
 तारि जांतेन अवसरें । जें आवडौनि जीविं उरे ।
 तें चि मरणाचिये भेरे । फार हों लागे ॥ ७३ ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।

मथ्यर्पितमनोबुद्धिर्मीमेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥

आणि मरणीं जेया जें आठवे । तो तिये चि गतितें तवं पावे ।
 ह्यणौनि सदा स्मरावें । मातें तुवां ॥ ७४ ॥
 डोलां जें पाहावें । कार्नी हान आइकावें ।
 मनीं जें भावावें । बोलावें जें ॥ ७५ ॥
 तें आंतु वाहिरि आव्रवें । मी चि करुनि घालावें ।
 मग सर्वीं कालीं स्वभावं । मी चि आहें ॥ ७६ ॥

आगा ऐसियां जरि जाल्यां । तरि न मरिजे देह गेल्यां ।
 ह्यणौनि उठिं वरौता आलेया । संग्रामु करीं ॥ ७७ ॥
 तूं मन बुद्धि साचेंसीं । जरि माझां स्वरूपीं अर्पिंसीं ।
 तरि मातें चि गा पावसीं । हे भाख माझी ॥ ७८ ॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।

परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचितयन् ॥ ८ ॥

हें चि काइसें वरि होये । ऐसा संदेहो जरि वर्ततु आहे ।
 तरि अभ्यासूनि आदीं पाहे । मग नव्हे तरि कोप ॥ ७९ ॥
 येणें चि अभ्यासेंसिं योगु । चित्तासि करि पां चांगु ।
 आगा उपायवळें पांगु । पाडि टाकी ॥ ८० ॥
 तेवि साभ्यास निरंतर । चित्तासि परमपुरुषाची मोहोर ।
 लावि मग शरीर । असो आडें जाऊ ॥ ८१ ॥
 जें नाना गती पावतें । तें चित्त वरील आत्मियतें ।
 मग कवण आठवी देहातें । तें गेलें किं आहे ॥ ८२ ॥
 पै सरिताचेनि बोधे । सिंधु जलाचे मीनले घोधे ।
 ते काइ वर्तत आहे मागें । ह्यणौनि पाहों पंथि ॥ ८३ ॥
 ना ते समुद्रू चि होउनि ठेले । तेवि चित्ताचें चैतन्य जालें ।
 जेथ यातायात निमाले । घनानंद जे ॥ ८४ ॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।

सर्वस्य धातारमचित्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥९॥

जें गगनाहूनि जूनें । जें परमाणूहूनि सानें ।
 जेयाचेनि सन्निधानें । विश्व चले ॥ ८५ ॥
 जेयाचें आकारेविण असणें । जेथ जन्म ना नीमणें ।
 जें आघवें चि आघवेपणें । देखत असे ॥ ८६ ॥
 जें सर्वातें येया विये । सर्व जेणें जिये ।
 हेतु जेयासि भिये । आर्च्य जें ॥ ८७ ॥

देखैं वोळिंबा इंगल न चरे । तेजिं तिभिर जेविं न सिरे ।
 जें दिहा चि आंधारें । चर्मचक्षूसी ॥ ८८ ॥
 सुसडा सूर्यकणाचा राशि । जो निल्योदयो ज्ञानियांसि ।
 अस्तमानाचें जेयासि । अडिनाचं हीं नाहीं ॥ ८९ ॥
 तेया आवेंगवाणेया ब्रह्माते । प्रयाणकालें प्राप्तें ।
 जो थिरावलेनि चित्तें । जाणौनि स्मरे ॥ ९० ॥

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
 श्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

बाहिरि पद्मासन रचूनि । उत्तराभिमुख बैसौनि ।
 जीवीं सुख सूनि । कर्मयोगाचां ॥ ९१ ॥
 आंतु मीनलेनि मनोधर्में । सूर्यप्राप्तिचेनि प्रेमें ।
 आपीं आपु संभ्रमे । मिलावेया ॥ ९२ ॥
 आकललेनि योगें । मध्यमा मध्यमार्गे ।
 अग्निस्थानौनि निगे । ब्रह्मरंध्रा ॥ ९३ ॥
 तेथ अचेतन चित्ताचा सांघातु । आहाचवाणा दीसे मांडतु ।
 जेथ प्राणु गगना आंतु । सज्जु होउनि ॥ ९४ ॥
 तो जडाजडातें विरिचितु । भ्रूलतां माझि संचरतु ।
 जैसा घंटानादु लयस्थु । घंटे चि होये ॥ ९५ ॥
 झांकलिये घटिचा दीवा । नेणिजे काइ जाला केव्हां ।
 यया रीती पांडवा । जो देह ठेवी ॥ ९६ ॥
 तो केवल परब्रह्म । जेया परमपुरुषु ऐसें नाम ।
 तें माझें निजधाम । होउनि ठाके ॥ ९७ ॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

सकला जाणणेयांसि लाणि । तिथे जाणिवेची जे खाणि ।
 तेयां ज्ञानियांची आणि । जेयातें अक्षर ह्याणिपे ॥ ९८ ॥

चंडवाते ह्रीं न मोडे । ते गगन । चि किं फुडे ।
 वांचूनि होईल जारि मेहुडे । तरि उरैल कैचे ॥ ९९ ॥
 तेवि जाणणेयां जें आकलले । ते जाणवलेपण चि उमाणले ।
 मग नेणवे चि तेयातें ह्णितले । अक्षर सहाजें ॥ १०० ॥
 ह्णौनि वेदविद नर । जेयातें ह्णति अक्षर ।
 जें प्रकृतीसि पर । परमात्मस्वरूप ॥ १ ॥
 आणि विषयांचें विष उलंडुनि । जे सर्वेद्रियां प्रायश्चित्त देउनि ।
 आहाति देहाचेया बैसौनि । झाडातलीं ॥ २ ॥
 ते इया परीं विरक्त । जेयाची निरंतर वाट पाहांत ।
 निष्कामासि अभिप्रेत । सर्वदा जें ॥ ३ ॥
 जेयाचिया आवडी । नगणित ब्रह्मचर्याची सांकडीं ।
 निष्ठुर होउनि वापुडीं । इंद्रियें करिति ॥ ४ ॥
 ऐसें जें पद । दुर्लभ आणि अगाध ।
 जेयाचिये थडिये चि वेद । बुचुकलले ॥ ५ ॥
 तें ते पुरुष होंति । जे इया परीं लया जांति ।
 तारि पार्था हे चि स्थिति । येकोल सांघों ॥ ६ ॥
 तेथ अर्जुनें ह्णितले स्वामीं । हें चि ह्णवेया होंतां पां मी ।
 तवं साहाजें कृपा केली तुह्णीं । तरि बोलिजो कां जी ॥ ७ ॥
 पारि बोलावें तें अति सोहपें । येथ ह्णितले त्रिभुवनदीपें ।
 तुज काइ तेणें संक्षेपें । सांघौनि आइक ॥ ८ ॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।

मूर्ध्याध्यात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ १२ ॥

तरि मना येया बाहिरिली कडे ।
 येयावेयाचि सवे चि सावियां मोडे ।
 हें हृदयाचां डोहीं बुडे ।
 तैसें कीजे ॥ ९ ॥

पारिं हें तरी चि घडे । जरि संयमांचीं अखडे ।
 सर्व द्वारीं कवाडें । कलासति ॥ ११० ॥
 तारि साहाजें मन कोंडलें । हृदयीं चि असैल उगुलें ।
 जैसें करचरण मोडलें । परिवरु न संडी ॥ ११ ॥
 तैसें चित्त राहलेयां पांडवा । प्राणाचा प्रणवु चि करावा ।
 मग तो अनुवृत्तिपथें आणावा । मूर्ध्निवैन्हीं ॥ १२ ॥
 तेथ आकाशीं मीले न मीले । तैसा धरावा साधनबलें ।
 ज्वं मैत्रियाचें मावले । अर्धर्विव ॥ १३ ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥

तव वेरि तो समिरु । निरालीं कीजे स्थिरु ।
 मग लग्नीं जेवि ॐकारु । विंविं विलसे ॥ १४ ॥
 तैसें ॐ हें स्मरों सरे । आणि तेथ चि प्राणु पूरे ।
 मग प्रणवातीत उरे । पूर्ण घन जें ॥ १५ ॥
 ह्यगौनि प्रणवैकनाम । हें एकाक्षर ब्रह्म ।
 जो माझे स्वरूप परम । स्मरतु सांता ॥ १६ ॥
 इया परीं त्यजी देहातें । तो त्रिशुद्धी पावे मातें ।
 जेया पावणेयां परौतें । आणिक नाहीं ॥ १७ ॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १४ ॥

येथ अर्जुना जरि विपायें । तूझां जीवीं ऐसें हान जाये ।
 ना हें स्मरण मग होथे । काइसेया वरि अंतीं ॥ १८ ॥
 इंद्रियां अनुधाडु पडिलेयां । जीविताचें सुख बुडालेयां ।
 आंतु बाहिरि उघडलेयां । मृत्युचिन्हें ॥ १९ ॥
 तेव्हालि विसावें चि कवणें । मग कवण निरुंधी करणें ।
 तेथ काहाचेनि अंतःकरणें । प्रणवु स्मरावा ॥ १२० ॥

तरि आगा येया ध्वनी । झनें थारा देंसि हो मनीं ।
 पै सेविला मीं चि निदानीं । सेवकु होवें ॥ २१ ॥
 जे विषयांसि तिलांजुली देउनि । प्रवृत्ति वरि निगटु वाउनि ।
 मातें हृदयीं सूनि । भोगिताति ॥ २२ ॥
 पारि भोगितिया नाराणुका । भेटणें नाहीं क्षुधादिकां ।
 तेथ चक्षुरादि रांकां— । चा कवणु पाडु ॥ २३ ॥
 ऐसे निरंतर येकावटले । अंतष्करणें मज लिंगटले ।
 मी चि होउनि आटले । उपासिति ॥ २४ ॥
 तेया देहावसान जें पावे । तें तिहिं मातें स्मरावें ।
 मग मियां जरि पावावें । तरि उपास्ति ते काइसी ॥ २५ ॥
 पै रंक येक अडलेपणें । काकुलती धावां गा धावां झणे ।
 तरि तेयाचि ग्लानीं धावणें । न घडे काइ ॥ २६ ॥
 आणि भक्तां ही तैसी चि दशा । तरि भक्तिचा ही सोसु काइसा ।
 हणौनि हा ध्वनि ऐसा । वाखाण्णावा ॥ २७ ॥
 तिहिं जेह्णहिं मीं स्मरावा । तेह्णहिं स्मरला किं गा पांडवा ।
 तो आभारु जीवा । साहावे ना ॥ २८ ॥
 तें रिणियेपण देखौनि आंगीं । मी आपुलेया उत्तीर्णत्वा लागि ।
 भक्तांची तनुल्यागीं । परिचर्या करीं ॥ २९ ॥
 येया देहवैकल्याचा वारा । झणें लागैल येया सकुमारां ।
 हणौनि आत्मभावांचां पांजरां । मुयें तेयातें ॥ १३० ॥
 वरि आपुलेया स्मरणाची उपाइली । हीं वं ऐसी करीं साउली ।
 ऐसेन नित्य बुद्धि सांचली । मि ल्यासि आणी ॥ ३१ ॥
 हणौनि देहांतिचें जें सांकडें । तें माझेयां एक ही न पडे ।
 मीं आपुलेयातें आपुलिये कडे । मुखें चि आणीं ॥ ३२ ॥

वरिचील देहाची गवसणी फेडूनि ।

आहाच अहंकाराचें रज झाडूनि ।

शुद्ध वासना चि निवडूनि ।

आपणपां मेलवीं ॥ ३३ ॥

आणि तेयातें तन्हें देहीं । विशेष येकवंकैयेचा ठाओ नाही ।

हणौनु अन्हेरुनु करितां काहीं । वियोगु ऐसें नावडे ॥ ३४ ॥

ना तरि देहांतीं चि मियां यावें । मग आपणपें तेयां नेयावें ।

हें इं नाही जे स्वभावे । ते आदीं चि मीनले ॥ ३५ ॥

येरि शरीराचां सलीलीं । असतेपण ते साउली ।

वांचूनि चंद्रिका ते ठेली । चंद्रां चि आहे ॥ ३६ ॥

ऐसेनि जे निलययुक्त । तेयांसि सूलभू मी सतंत ।

हणौनि विदेह निश्चित । मी चि होंति ॥ ३७ ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतं ॥

नान्पुवंति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १५ ॥

मग क्लेशतरुची वाडी । तापत्रयाग्नि चि सेगडी ।

जे हें मृत्युकागासि कुरौडी । सांडिली आहे ॥ ३८ ॥

जे दैन्याचें दूभतें । जें महाभयाचें वाढतें ।

जे सकल दुःखाचें पुरतें । भाडवल गा ॥ ३९ ॥

जे दुर्मतिचें मूल । जें कुकर्माचें फल ।

जे व्यामोहाचें केवल । स्वरूप चि ॥ ४० ॥

जे संसाराचें बैसणें । जें विकाराचें उदाणें ।

जे सकल रोगांसि भाणें । वाढलें आहे ॥ ४१ ॥

जे कालाचें खीचु उसिता । जें आसेचा आंगवटा ।

जन्ममरणाचा अलिवटा । स्वभावे जें ॥ ४२ ॥

जे भूलिचें भरिवं । जें विकल्पाचें अतिवं ।

किंबहुना जें पेंव । विंचुवांचें ॥ ४३ ॥

जें व्याघ्राचें छत्र । जें पण्यांगनेचें मैत्र ।
 जें विषयविज्ञानयंत्र । संपूजित ॥ ४४ ॥
 जें लावेचा कलवला । निवालेया विषोदकाचा गलाला ।
 जे विश्वासु आंगवला । सर्वचोराचा ॥ ४५ ॥
 जें कोढियाचें खेवं । जें कालसर्पाचें मार्दवं ।
 गोरिचें स्वभाव । गायन जें ॥ ४६ ॥
 जें वैरियांचा पाहुणरु । जें दुर्जनाचा आदरु ।
 हें असो जें सागरु । अनर्थाचा ॥ ४७ ॥
 जें स्वप्नें देखिलें स्वप्न । जें मृगजळें सांसिनलें वन ।
 जें धूम्रजाचें गगन । ओललें आहे ॥ ४८ ॥
 ऐसें जें हें शरीर । तें ते पुढुतीं न पवती चि नर ।
 जे होउनि ठेले अपार । स्वरूप माझे ॥ ४९ ॥

आग्रहभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन ।

मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

यन्हर्वि ब्रह्मपणांचिये ही भडसे । न चुकती चि पुनरावृत्तिचे वलते ।
 परि निवटिलेयाचें जैसें । पोट न दूखे ॥ ५० ॥
 ना तरि चेइलेया नंतरें । न बुडिजे स्वप्निचेनि मग पुरें ।
 तेवि मातें पातले संसारें । सिपती चि ना ॥ ५१ ॥

सहस्रयुगपर्यंतमहर्ष्यब्रह्मणोविदुः ।

रात्रिं युगसहस्रांतां तेऽहोरात्रविदो जनाः १७ ॥

यन्हर्वि जगदक्षराचें सिरें । जें चिरस्थाइयांचिये धूरे ।
 ब्रह्मभुवन गा चवरें । लोकाचलाचें ॥ ५२ ॥
 जिये गाविंचा पाहारु दियां वेन्हीं ।
 येका अमरेंद्राचें आयुष्य न धरी ।
 विलौनि पांति उठी येकसरी ।
 चौदा जणाची ॥ ५३ ॥

जें चौकडिया सहस्रु जाये । ते ठाये ठाऽ वीळु होये ।
 आणि तैसेनि सहस्रें भरियें पाहे । राति जेथ ॥ ५४ ॥
 येवढें अहोरात्र जेथिचें । ते न लोटती चि जे भाग्याचें ।
 देखति ते स्वर्गिचे । चिरंजीवी ॥ ५५ ॥

येरां सुरगणांची नवाई । विशेष सांघावी एथ काई ।
 मुदलां इंद्राची चि दशा पाई । जें देहाचे चौदा ॥ ५६ ॥

अव्यक्ताश्च्युक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागने ।

राज्यागमे प्रलीयंते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

परि ब्रह्मेयांचिया ही पाहारात्ते । आपुलां डोला देखते ।
 आहाति गा तयांतें । अहोरात्रविद ह्यणिपे ॥ ५७ ॥
 तिये ब्रह्मभवनी जेव्हळि पाहे । तेव्हळि गणना केहि न माये ।
 ऐसें अव्यक्ताचें होये । व्यक्त विश्व ॥ ५८ ॥

पुडुतीं देहाची चौपाहारी फांटे । आणि हा आकारसमुद्रु आटे ।
 पळें तैसा चि मग पाहाटे । भरो लागे ॥ ५९ ॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।

राज्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

शारदियेचां प्रवेशीं । अत्रे जिरति आकाशीं ।
 मग ग्रीष्मांतीं जैसीं । निगति पुडुतीं ॥ १६० ॥
 तैसी ब्रह्मदिनांचिये आदिं । इये भूतसृष्टिची मांदी ।
 मिले जवं सहस्रावधी । निमति युगें ॥ १६१ ॥
 पाठिं रात्रिचा अवसरु होये । आणि विश्व हें अव्यक्ती लया जाये ।
 तो ही युगसहस्रु मोटका पाहे । आणि तैसें चि रचे ॥ १६२ ॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तो व्यक्तात्सनात्तना ।

यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न चिनश्यति ॥ २० ॥

हें सांघावेया काये उपपत्ती । जें जगाचा प्रलयो संभूति ।
 इयें ब्रह्मभुवनिचिया होंति । अहोरात्रां भाक्षि ॥ १६३ ॥

कैसें पोरिबेचें मान पाहे पां । तें सृष्टिबीजांचा ह्ये किं सांटपा ।
 परि पुनरावृत्तिचेया मापा । सीग जाले ॥ ६४ ॥
 यन्हवि त्रेलोक्य हे धनुर्दरा । तिथे गाविंचा गा पसादा ।
 नव्हे दीनोदमीं एकसरा । मांडतसे ॥ ६५ ॥
 पाठि रात्रिचा समो पावे । आणि आपैसेया चि सांटने ।
 ह्यणिपे जेथिचें तेथ स्वभावे । साम्यासि ये ॥ ६६ ॥
 जैसें वृक्षपण बीजासि आले । कां मेघ हे गगनीं जाले ।
 तैसें अनेकत्व जेथ सामावले । तें साम्य ह्यणिपे ॥ ६७ ॥
 तेथे समविषम न दिसे काहीं । ह्यणुनि भूते हे भाष नाहीं ।
 जेवि दूध चि जालेयां दहीं । नामरूप जाये ॥ ६८ ॥
 तेवि आकारलोपा सरिसें । जगाचें जगपण भंशे ।
 परि जेथ जालें तें जैसें । तैसें चि उरे ॥ ६९ ॥
 तें तेया नावें सहजें अव्यक्त । आणि आकारवेले तें चि ह्ये व्यक्त ।
 हें येकातव एक सूचत । येन्हवि तारि नाही ॥ ७० ॥
 जैसीं आटलेयां स्वरूपें । आटलेपणातें खोटी ह्यणिपे ।
 पुडुतीं तो घनाकार हारपे । जेन्हाले अलंकार होंति ॥ ७१ ॥
 इयें दोन्हीं जैसीं होणीं । एकी साक्षिभूते सुवर्णीं ।
 तैसी व्यक्ताव्यक्ताची कडसणी । वस्तु चि ठाई ॥ ७२ ॥
 तें तारि श्यक्त ना अव्यक्त । नित्य ना नाशवंत ।
 येयां दोहीं भावां अतीत । अनादिसिद्ध ॥ ७३ ॥
 जें हें विश्व चि होउनि असे । परि विश्वपणें माशलेनि भंशे ।
 आखरें प्रसिलेयां न पूसे । अर्थु जैसा ॥ ७४ ॥
 पाहे पां तरंग तारि होंत जाते । परि तेथे उदक तें अखंड असतें ।
 तेवि भूतमात्रीं माशवंत । अविनाश जें ॥ ७५ ॥
 ना तारि आटलिये अलंकारी । नाटतें कनक आहे जिया परी ।
 तेवि भरतिये जीवाकारी । अमर जें आहे ॥ ७६ ॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।

ये प्राप्य न निवर्तते तद्धाम परम मम ॥ २१ ॥

जेयातें अव्यक्त हणों ये कोडें । हणतां स्तुति हें ऐसे नावडे ।

जे मना बुद्धी न संपडे । हणौनियां ॥ ७७ ॥

आणि आकारा आलेयां जेयाचें । निराकारपण न वचे ।

आकारलोपीं न विसंचे । नित्यता गा ॥ ७८ ॥

हणौनि अक्षर जें हणिजे । तेविं चि हणतां बोधु ही उपजे ।

तेयां परौता पैसु न देखिजे । येया लागि परमगति जें ॥ ७९ ॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।

यस्यांतःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२ ॥

पैं आघवां इहीं देहपूरीं । आहे निदलेयाचिया परीं ।

जे व्यापार करवी ना करी । हणौनियां ॥ ८० ॥

यन्हविं शरीरीं चेशं । माक्षि येकि ही न ठके गा सूमटा ।

दाहीं इंद्रियांचिया वाटा । वाहाति चि आथि ॥ ८१ ॥

उकळु विषयांचिया पेंठा । होंत मनाचां चौहटां ।

तो सुखदुःखाचा राजवंटा । भितरा ही पात्रे ॥ ८२ ॥

परि तें राउं पौढलेयां सुखें । जैसा देशिचा व्यापार न ठके ।

प्रजा आपुलेनि अभिलाखें । कारित चि असे ॥ ८३ ॥

तैसें बुद्धिचें हान जाणणें । कां मनाचें घेणें देणें ।

इंद्रियांचें करणें । स्फुरण वायुचें ॥ ८४ ॥

हे देहक्रिया आघवी । न करवितां होये बरवी ।

जैसा नचलतेनि रवी । लोकु चले ॥ ८५ ॥

अर्जुना तया परीं । सूतला आहे शरीरीं ।

हणौनि पुरुषु गा अवधारीं । हणिपे जेयातें ॥ ८६ ॥

आणि प्रकृती पतिव्रते । पडिला येकपतिव्रतें ।

येणें हीं कारणें जेयातें । पुरुषु हणों ये ॥ ८७ ॥

पै येया वेदांचे बौहसपण । देखे चि ना जेयाचें आंगण ।
 हें गगनाचें पांगुरण । होये देखों ॥ ८८ ॥
 ऐसें जाणौनि योगीश्वर । जयातें ह्यणति परात्पर ।
 अें अनन्य गतिचें घर । गिवसित ये ॥ ८९ ॥
 जें तनुवाचाचित्तें । नाइकति दूजेयाचिये गोठितें ।
 तेयां येकनिष्ठाचें पीक तें । सुक्षेत्र जें ॥ १९० ॥
 हें त्रैलोक्य चि पुरुषोत्तमु । ऐसा साचु जेयांचा मनोधर्मु ।
 तेयां आस्तिकां जें आश्रमु । पांडवा गा ॥ ९१ ॥
 जें निगर्वाचें गोरव । निर्गुणाची जाणिव ।
 सुखाची राणिव । निराशांसि ॥ ९२ ॥
 जें संतोषियां वाढलें ताट । जें अचित्तें अनाथांचें पोट ।
 भक्ति उजू वाट । जेया गावां ॥ ९३ ॥
 हें येकैक सांगौनि वायां । काइ फार करुं धनंजया ।
 पै गेलेयां जेया ठाया । ठाउ चि होइजे ॥ ९४ ॥
 हिंवांचिया झुलुका । जैसें हिंवं चि पडे उष्णोदका ।
 कां समोर जालेयां अर्का । तम प्रकाशु होये ॥ ९५ ॥
 तैसा संसारु जेया गावां । गेला सांता पांडवा ।
 होउनि ठाके आघवा । मोक्षाचा चि ॥ ९६ ॥
 मग अग्नी माझि आलें । जैसें इंधन चि अग्नि जालें ।
 पाठि न निवडे चि काहीं केलें काष्टापण ॥ ९७ ॥
 ना तारि साखरेचा माघौता । बुद्धिमंतपणें हीं करितां ।
 पारि ऊंसु नव्हे चि पांडुमुता । जिया परीं ॥ ९८ ॥
 लोहाचें कनक जालें । हें येकें चि परिसें केलें ।
 आतां आणिकु केंचा जो गेलें । लोहत्व आणी ॥ ९९ ॥
 ह्यणौनि तूप होउनि माघौतें । जेवि दूधपणां नैये चि निरुतें ।
 तेवि पावौनियां जेयातें । पुनरावृत्ति नाहीं ॥ २०० ॥

ते गां माझे परम । साचोकारें निजधाम ।

हें आंतुवट तुज वर्म । दाविजंत असे ॥ १ ॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।

प्रयाता यांति तं कालं ब्रक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

तेषिं चि आणिकें प्रकारें । हें जाणतां आहे सोपारें ।

तारि देह सांडितेनि अवसरें । जेथ मिलति योगी ॥ २ ॥

अथवा अवचटें ऐसें ही घडे । अनवसरें देह साडे ।

तै मावौतें येणें पडे । देहासि चि ॥ ३ ॥

ह्यगौनि कालशुद्धी जरि ठेविति । तारि ठेवित खे ॐ ब्रह्म चि होति ।

यन्हविं अकालें तारि येति । संसारा पुढुतीं ॥ ४ ॥

ऐसें सायुज्य आणि पुनरावृत्ति । इयें दोन्हीं अवसरा अर्थांनि आहाति ।

तो चि अवसर तुज प्रति । प्रसंगें सांघों ॥ ५ ॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।

तत्र प्रयाता शक्यंति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

तारि आइकें गा सुभटा । प्रातलेंयां मरणाचा साजिवटा ।

पांच ही सापुंलाळिया बाटा । निगति आसीं ॥ ६ ॥

ऐसां वरिपडिलां प्रयाणकालीं । बुद्धितें कां अमुनि मीळी ।

स्मृति नोहे आंभली । न मरे मन ॥ ७ ॥

हा चैसनाकर्तू चि भाषवा । मरणीं असे टपटवा ।

पारि अनुभवलेया ब्रह्मभावा । गवसणीं होउनि ॥ ८ ॥

ऐसां सांख्यु हा समवा ॐ । आणि निर्वाणवेन्हीं निर्वाही ।

हें तरी चि घडे जरि सावा ॐ । अग्निचा आधि ॥ ९ ॥

पाहे पां वारेनि कां उदकें । जें दीवियाचें दीवेषण झाके ।

तै असती चि काइ देखे । दीठि आपुली ॥ २१० ॥

सैसें देहांतितेनि विषमवातें । देह आंतुबाहिरि श्लेष्मु आते ।

तेणें विज्ञौनि जाये उदितें । अग्निचें जेव्हां ॥ ११ ॥

तेहलि प्राणासि प्राणु नाही । तेथ बुद्धि असौनि करील काइ ।
 ह्यगौनि अग्नि विण देहीं । चेतना न थरे ॥ १२ ॥
 आगा देहिचा अग्नि जारि गेला । तारि तें देह नोहे तो चि खलु बोला
 वायां आयुष्य वेळु आपुला । आंधारां गिवसी ॥ १३ ॥
 आणि मागील स्मरण आघवें ।
 तें तें अवसरें सरिसें सांभालवें ।
 मग देह तेज्जनि मिलावें ।
 स्वरूपीं किं ॥ १४ ॥
 तत्रं तेया श्लेष्माचां चिखलीं । चेतना चि बुडौनि गेली ।
 येथ मागिल पुढैलि ठेली । आठवण सहाजें ॥ १५ ॥
 ह्यगौनि आदिं चि जो अभ्यासु केला ।
 तो मरण नैयंतां निमौनि गेला ।
 जैसें ठेवणें नेदखतां मात्हवला ।
 दीपु हातिचा ॥ १६ ॥
 आतां असो हें सकल । जाण पां ज्ञानासि अग्नि मूल ।
 तेया अग्निचें प्रयाणीं वल । संपूर्ण आधि ॥ १७ ॥
 आंतु अग्निर्ज्यातिचा प्रकाशु । बाहिरि शुक्लपक्षु परि दिवसु ।
 आणि सां मासां माक्षि मासु । उत्तरायणां ॥ १८ ॥
 ऐसेया समा योगाची निरुती । लाडुनि जे देह ठेविति ।
 ते ब्रह्मविद होंति । परब्रह्म ॥ १९ ॥
 अवधारें गा धनुर्दरा । येथ थोर सामर्थ्य येया अवसरा ।
 तेषिं चि हा उजू मार्गु स्वपुरा । येयावेया ॥ २२० ॥
 येथ अग्नि हें पहिलें पैयारें । ज्योतिर्मय हें दुसरें ।
 दिवसा जाणें तिसरें । चौथा शुक्लपक्षु ॥ २१ ॥
 आणि सामास उत्तरायण । तें बरिचिल गा सोपान ।
 येणें सायुज्यसिद्विसदन । पावति योगी ॥ २२ ॥

हा उत्तमु कालु जाणिजे । येयातें चि अर्चिरमार्गु ह्मणिजे ।
आतां अकालु तो ही साहाजें । सांघौनि आइकें ॥ २३ ॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षणमासा दक्षिणायनम् ।

तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५ ॥

तरि प्रयाणाचेनि अवसरें । वात श्लेष्मु सुभरें ।

तेणें अंतष्करणें आंधरें । कोंदौनि ठाके ॥ २४ ॥

सर्वेंद्रियां लांकुड पडे । स्मृति भ्रमा माझि बुडे ।

मन होये वेडें । कोंडे प्राणु ॥ २५ ॥

अग्निचें अग्निपण जाये । मग तो धूमिचा आघवा होये ।

तेणें चेतना गवली ठाये । शरीरिंची ॥ २६ ॥

जैसैं चंद्रा आड आभाल । सदट दाटे सजल ।

मग गडद नां उजल । ऐसैं झावलें होये ॥ २७ ॥

कां मरे ना सावध । ऐसैं जीविता पडे स्तब्ध ।

आयुष्यमरणाची मर्याद— । मेलें टाकी ॥ २८ ॥

ऐसी मनीं बुद्धि करणीं । सुभति धूमाकुलाचीं कोंडणीं ।

जेथ जन्में जोडिछिये वाहाणीं । युग चि बुडे ॥ २९ ॥

हां गा हातिचें जेव्हलिं जाये ।

तेव्हलि आणिका लाभाची गोठि कें आहे ।

ह्मणौनि प्रयाणीं तत्रं होये ।

येतुली दशा ॥ २३० ॥

आणि देहांतु ऐसी स्थिति । बाहिरि कृष्णपशु वारि राति ।

आणि सा मास ते ही वोडवति । दक्षिणायन ॥ ३१ ॥

इयें पुनरावृत्तिचीं घराणीं । आघवीं येकावटति जेयाचां प्रयाणीं ।

तो स्वरूपसिद्धिचीं काहाणी । कैसेनि आइके ॥ ३२ ॥

ऐसां जेयाचें देह पडे । योगी ह्मणौनि चंद्रु वेन्हीं जाणें घडे ।

मग तेथौनु मावौता वहुडे । संसारा ये ॥ ३३ ॥

आह्नि अकालु जो पांडवा । ह्यणितला तो हा जाणावा ।
 आणि हा चि धूम्रमार्गु गावां । पुनरावृत्तिचेया ॥ ३४ ॥
 येरु अर्चिरामार्गु । तो वसता आणि आसलगु ।
 सावियां स्वस्थ चांगु । निवृत्ति वेन्हीं ॥ ३५ ॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।

एकया यात्यनावृत्तिमन्यद्वावर्तते पुनः ॥ २६ ॥

ऐसिया अनादि इया दोन्हीं वाटा । येकि-उजू येकि अन्हांटा ।
 ह्यणौनि बुद्धिपूर्वक सूभटा । दाविलिया तुज ॥ ३६ ॥
 कां जे मार्ग अमार्ग देखावे । साच लटकें ओलखावें ।
 हिताहित जाणावें । हिता चि लागि ॥ ३७ ॥
 पाहे पां नाव देखतां बरवीं । कोण्हे आड घाली काइ अथावीं ।
 कां सुपंथु जाणौनि अडविं । रिगत असे ॥ ३८ ॥
 जो विष अमृतें ओलखे । तो अमृत काइ सांडूं शके ।
 तेवि उजू वाट देखे । तो अन्हाटेनि न वचे ॥ ३९ ॥
 ह्यणौनि गा फुडे । पारिखावें खरें कुडें ।
 पारिखिलें तारि न पडे । अखरें कहीं ॥ ४० ॥
 येन्हविं देहांतीं धोर विषम । येयां मार्गांचें आहे संभ्रम ।
 जन्में अभ्यसिलेयाचें हें काम । जाईल वायां ॥ ४१ ॥
 जरि अर्चिरामार्गु चूकलेयां । अवचटें धूम्रपथिं च पडिलेयां ।
 तरि संसारपांती जूतलेयां । भवंतां चि असावें ॥ ४२ ॥
 हे सायास देखां मोटे । आतां कैसेनि पां येकोल फीटे ।
 ह्यणौनि योगीं मार्ग गोमटे । शोधिले दोन्हीं ॥ ४३ ॥
 तवं एकें ब्रह्मत्वा जाइजे । आणि एकें पुनरावृत्ती येइजे ।
 पारि दैवगत्या जो लाहिजे । देहांतीं जेणें ॥ ४४ ॥

नैते सृती पार्थ ज्ञानन्योगी मुह्यति कश्चन ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७ ॥

तेव्हलिं ह्यणितलें हें नव्हे । वायां अत्रचटें काइ पावे ।
 देह जाउनु वस्तु होआवें । मार्गें किं ॥ ४५ ॥
 तारि आतां देह असो अथवा जाओ । आर्ह्यां तत्र वस्तूचि केवळ आहों ।
 कां दोरी सर्पत्व वाओ । दोराचिया कडौनि ॥ ४६ ॥
 मज तरंगपण असे कां नसे । ऐसें उदकासि काहीं प्रतिभासे ।
 तें भले तेव्हां जैसें तैसें । उदक चि किं ॥ ४७ ॥
 तरंगाकारें न जन्मे चि । ना तरंगलोपे नाशे चि ।
 तेवि विदेह जे देहें चि । वस्तु जाले ॥ ४८ ॥
 आतां शरीराचें जेयाचां ठांडें । अडिनावं हीं उरलें नाहीं ।
 तारि कोणें कालें काइ । निमे तें पाहे पां ॥ ४९ ॥
 मग मार्ग ते काइसेया शोधवे । कवणें कोठूनि कें जावें ।
 जारि देशकालादि आघवें । आपणपां चि असिजे ॥ २५० ॥
 आणिक हां गा घट्टु जेव्हलिं फूटे ।
 तेव्हां तेथिचें आकाश लागे काइ येकी वाटे ।
 मग वाटा लागे तारि गगना भेटे ।
 येव्हविं चूके ॥ ५१ ॥
 पाहे पां ऐसें हान आहे । किं तो आकार चि ह्यणें जाये ।
 येर गगन तें गगनीं चि आहे । घट्टवा ही आदीं ॥ ५२ ॥
 ऐसेया बोधाचेनि सुरवाडें । मार्गमार्गिचें सांकडें ।
 तेयां सोहंसिद्धां न पडे । योगियांसि ॥ ५३ ॥
 येया कारणें पांडुसुता । तुत्रां होआवें गा योगयुक्तां ।
 येतुलेनि सर्वकालीं साम्यता । आपणपां येईल ॥ ५४ ॥
 मग भले तेय भले तेधवां । देहबंधु असो अथवा जावा ।
 पारि अबंधा नित्यभावा । विघडु नाहीं ॥ ५५ ॥
 तो कल्पदि जन्मां नांगत्रे । आणि कल्पपांतीं मरणा नापुत्रे ।
 मास्त्रि स्वर्गसंसाराचेनि लाघवें । झांक्त्रेना ॥ ५६ ॥

येणें बोधें जो योगिया होये । तेयासि यया बोधाचें नीटपण आहे ।
 कां जें भागातें पेलुनि पाएं । निजरूपा ये ॥ ५७ ॥
 पै गा इंद्रादिकां देवां । जियां सर्वस्वें गाजति राणिवा ।
 तें सांडणें मानुनि पांडवा । डावली जो ॥ ५८ ॥

वेदेषु यज्ञेषु तपस्सु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
 अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८॥

जन्हीं वेदाध्ययनाचें जालें । अथवा यज्ञाचें सेत चि पीकलें ।
 कां तपोदानाचें जोडलें । सर्वस्व हान जें ॥ ५९ ॥
 तेयां आद्यवेयां चि पुण्यांचा मेल ।
 भार आतांनि जेया ये फला ।
 जें परब्रह्म निर्मला ।

साठिं सरे ॥ २६० ॥

जें वीटे ना सरे । भोगितेयाचेनि पवाडें पूरे ।
 पुढुतीं महामुखाचें सोड्रें । भाउंड चि पां ॥ २६१ ॥
 जें निलानंदाचेनि मानें । उपमेचा काटालां न दिसे साणें ।
 पाहे पां वेदयज्ञादिसाधनें जेया मुखा ॥ ६२ ॥
 ऐसें दृष्ट चि सुखपणें । जेयासि अदृष्टाचे बैसणें ।
 जें शतमखीं हीं आंगणें । नव्हे चि येकां ॥ ६३ ॥
 तेयातें योगीश्वर अलौकिकें । दोटिचेनि हाततुकें ।
 अनुमानिति कवतिकें । तवं हलुवट आवडे ॥ ६४ ॥
 मग तेया चि मुखाचीं किरीटी । करूनियां गा पाउटी ।
 परब्रह्माचिये पाटीं आरूढति ॥ ६५ ॥
 ऐसें चराचरैक्यभाग्य । जें ब्रह्मेशां आराधनायोग्य ।
 जें योगियांचें भोग्य । भोगधन जो ॥ ६६ ॥
 जो सकलकलांची कला । जो परमानंदाचा पूतला ।
 जो जीवांचा जीवाला । विश्वाचेया ॥ ६७ ॥

जो सर्वज्ञतेचा ओलावा । जो यादवकुलिचा कुलैवा ।
 तो कृष्णु जी पांडवा । प्रतिबोळिला ॥ ६८ ॥
 ऐसा कुरुक्षेत्रीचा वृत्तांतु । संजयो रायासि असे सांघतु ।
 ते परियसां पुढां मातु । ह्यणे ज्ञानदे३० निवृत्तिचा ॥ २६९ ॥

अंशतत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
 योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे परब्रह्मयोगो नाम
 अष्टमोऽध्यायः ॥

॥ श्रीसर्वात्मकहरिगुरुरशिवापर्णमस्तु ॥



ज्ञानेश्वरी

अध्याय नववा

श्रीगणेशायनमः ॥

तरि अवधान एकलें देइजे । मग सर्वसुखांसि पत्र घेइजे ।
हें प्रतिज्ञोत्तर माझे । उघड आइकां ॥ १ ॥
परि प्रौढि न बोलें हो जी । तुह्मां सर्वज्ञाचां समाजीं ।
देयां अवधान ह्मणे हे माझी । विनवणी सलगी ॥ २ ॥
कां जे ललेयाचे लले सरति । मनोरथाचे मनौरे पुरति ।
जारि माहेरें श्रीमतें होंति । तुह्मा ऐसीं ॥ ३ ॥
तुमचेया दीठिवेयाचिये खोले । सांसिनले प्रसन्नतेचें मले ।
ते साउली देखौनि लोले । श्रांतु जी मी ॥ ४ ॥
तुह्मीं सुखामृताचे डोहो । ह्मणौनि आपुलियासवें वोल्हावों लाहों ।
आणि एथ ही सलगि करं जरि बीहों । तारि निवों केंपां ॥ ५ ॥
आणि वालक बोवडां वोलें । कां वांकुडां विचुकीं पाउलीं ।
चोज करुनि माउली । रिद्धवी । जेवि ॥ ६ ॥
तेवि तुह्मां संतांचा पढियो । कैसेनि तन्हें आह्मावारि हो ।
इया बहुवा अलुकी जी आहों । सलगि करित ॥ ७ ॥
घांचूनि माझिये बोलतिये योम्यते । सर्वज्ञ भवाद्दश श्रोते ।
काइ धडेयावारि सारस्वते । पढों सिकिजे ॥ ८ ॥

अवधारां आवडे तेसणा धुंधुरु । परि महातेजीं न मिरवे काइ करुं ।
 अमृताचां ताटीं बोगरुं । ऐसिं रसोयें कैचीं ॥ ९ ॥
 हां हो हिमकरा बीजणे । किं नादापुढां आइकवणें ।
 लेणेयांसि हें लेणें । केहीं आहे ॥ १० ॥
 सांघां परिमलें काइ तुरुत्रावें । सागरें कवणीं ठांडं नाहावें ।
 हें गगन चि अडे आववें । ऐसा पवाडु कैचा ॥ ११ ॥
 तैसें तुमचें अवधान धाए । आणि ह्यणो हें देखों होथे ।
 ऐसें वक्तृत्व कवणातें आहे । विचारिजो ॥ १२ ॥
 तन्हीं विश्व प्रकटितेचा गभस्ती । हाथिवेनि किजे काइ आरति ।
 कीं चूलेदकें अपांपती । अर्घ्यु न दीजे ॥ १३ ॥
 प्रभू तुझी महेशाचिया मूर्ती । आणि मीं दुबळा अर्चितसें भक्ति ।
 ह्यणौनि बोलु जन्हीं गंगावती । तन्हीं स्वीकराल ॥ १४ ॥
 बाल बापाचां ताटीं रिगे ।
 रिघौनि बापातें चि जेवउं लागे ।
 किं तो संतोपाचेनि वेगें ।
 मुख ओडवी ॥ १५ ॥
 तैसा मीं जन्हीं तुझाप्रति । चावटें करितसें बालमती ।
 तन्हीं तुझीं संतोपिजे ऐसी चि जाति । स्नेहाचि एया ॥ १६ ॥
 आणि तेणें आपुळेपणाचेनि मोहें ।
 तुझीं संत घेतले आहा बाहें ।
 ह्यणौनि केलिये सलगिचा नोहे ।
 भार तुझां ॥ १७ ॥
 आहो तान्हेयांची लागे झटे ।
 तारि तेणें अधिकें चि पान्हा फूटे ।
 रोसें प्रेम दूणावटे ।
 पाढियतेयाचेनि ॥ १८ ॥

झणौनि मज लेंकुरुवाचेनि बोलें । तुमचें कृपालुपण निदेलें ।
 चेइलें हें जी जाणावलें । एया लागि बोलिलां ॥ १९ ॥
 यन्हविं चांदिणें पिकविजत आहे काइ चेंपर्णी ।
 किं वारेया घापत आहाति वार्णी ।
 हां हो गगना गवसणी ।
 गुंफिजतसे ॥ २० ॥
 आइकां पाणीं बोधिजवावें न लगे ।
 नवनीतीं माथुला न लगे ।
 लाजिल्लें वाखाणुं न निगे ।
 देखौनि जेयातें ॥ २१ ॥
 हें असो शब्दब्रह्म जिये बाजे । शब्दु मावल्लेयां निवांत मिदिजे ।
 तो गीतार्थु मन्हाटिया बोलिजे । हा पाडु काइ ॥ २२ ॥
 पारि ऐसा ही मज धिवंसा । तो पुडुतीं एया चि एकी आशा ।
 जें धीटीवं करुनि भवादृशां । पढियतेयां होआवें ॥ २३ ॥
 तारि आतां चंद्रापासौनि निववितें । जें अमृता ही हूनि जिववितें ।
 तेणें अवधानें कीजो वाढतें । मनोरथां माझेया ॥ २४ ॥
 कां जें दीठिवा तुमचा वर्षे । तैं सकलार्थसिद्धी मति पीके ।
 एन्हविं कोंभैला उन्मेखु सुके । जरि उदास तुह्नीं ॥ २५ ॥
 साहाजें तन्हीं अवधारा । वक्तृत्वा अवधानाचा होये चारा ।
 तैं दोंदें पेलति अक्षरां । प्रमेयाचिं ॥ २६ ॥
 अर्थु बोलाची वाट न पाहे । तेथ अभप्रा० चि अभिप्रायातें विये ।
 भावांचा फुल्लौरा होंतु जाये । मती वारि ॥ २७ ॥
 झणौनि संवादाचा सुवा० ढले । तारि हृदयाकाश सारस्वतें ००ले ।
 भ्रोता दुचिता तारि वितुले । मांडला रसु ॥ २८ ॥
 आहो चंद्रकांतु द्रवता फिरु होये । पारि ते हातवटी चंद्रिं किं आहे ।
 झणौनि वक्ता चि वक्ता न्हवे । श्रोतेनि विण ॥ २९ ॥

परि आतां आमुतें गोडां करावें ।

ऐसें तांदुळिं काइसेयां विनवावें ।

साईखेडेनि कां प्रार्थीवें ।

सूत्रधारातें ॥ ३० ॥

तो काइ बाउलेयांचां काजा नाचवी ।

किं आपुलिये जाणिवेची कला वाढवी ।

ह्मणौनि आह्मां येया ठेवाठेवी ।

काइ काज ॥ ३१ ॥

तवं गुरु ह्मणति काइ जालें । हे समस्त ही आह्मां पातलें ।

परि आतां सांघें जें बोलिलें । नारायणें ॥ ३२ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

इंद तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥

एथ संतोखेंसीं निवृत्तिदासें । जी ह्मणौनि उल्हासें

अवधारां कृष्णु ऐसें । बोलते जाले ॥ ३३ ॥

अर्जुना हें चि बीज । पुढुतीं सांघिजैल तूज ।

जें अतष्करणिचें गुज । जिवाचिये ॥ ३४ ॥

एणें मानें जिवाचें हियें फोडावें ।

मग गुज कां पां मज सांघावें ।

ऐसें काहीं स्वभावें ।

कल्पिसि जारि ॥ ३५ ॥

तरि परियसैं प्राज्ञा । तूं आस्थेची संज्ञा ।

बोलिलिये गोठी अवज्ञा । नेणासि करं ॥ ३६ ॥

ह्मणौनि गूढपण आपुलें मोडो । वारि बोलणें हीं बोलुवें घडो ।

परि आमचिये जीविचें पडो । तूज्ञां जीविं ॥ ३७ ॥

आगा थानीं कीरु दूध गूढ ।
 परि थानासी चि न्हवे किं गोड ।
 ह्यणौनि सरो कां सेवितेयाची चाड ।
 जरि अनन्यु मिले ॥ ३८ ॥
 मूडांहूनि विं काढिलें । मग निरोळिलिये भुइं पाखिरिलें ।
 तारि तें सांडीविखुरी गेलें । ह्यणों ये काइ ॥ ३९ ॥
 पया लागि सुमनु आणि शुद्धमति ।
 जो अनिंदकु आणि अनन्यगति ।
 पै गोप्य परि तेया प्रति ।
 चावल्लिजे ॥ ४० ॥
 तारि प्रस्तुत आतां गुणीं इहीं । तुज वांचूनि आनु नाहीं ।
 ह्यणौनि गुज तन्हीं तुझां ठांइ । लपौं नैए ॥ ४१ ॥
 आतां केती नावां नावां गूज ।
 ह्यणतां कानडें हान आवडैल तुज ।
 तारि सांघौनि ज्ञान सहज ।
 विज्ञानेसीं ॥ ४२ ॥
 परि तें चि ऐसेनि निवाडें । जैसें भांसललें खरें कुडें ।
 मग काढिजति फाडे । वरि पारिखौनियां ॥ ४३ ॥
 वां चांचोडाचेनि सांडसें । खांडिजे पयपाणी राजहंसें ।
 तुज ज्ञानविज्ञान तैसें । वांटूनि देउं ॥ ४४ ॥
 मग वारेयाचां धारसां । पडिला कोंडा नुरे चि जैसा ।
 आणि अवकणाचा आपैसा । राशि जोडे ॥ ४५ ॥
 तैसी जे विवंचना जाणितलेया चि साठिं ।
 संसारू चि संसाराचिया गांठी ।
 लाउनि वैसवी पाटिं ।
 मोक्षश्रियेचां ॥ ४६ ॥

जेयां जाणणेया विद्यांचां गावीं । गुरुत्वाची आचार्यपदवी ।
 जें सकल गुह्यां गोसांविं । पवित्रां रा३० ॥ ४७ ॥
 आणि धर्माचें निजधाम । तेविं चि उत्तमाचें उत्तम ।
 जेया येतां नाहीं काम । जन्मांतराचें ॥ ४८ ॥
 मोठकें गुरुमुखिं उदैजत दीसे ।
 आणि हृदयीं स्वयंभ चि असे जैसें ।
 प्रत्यक्ष फावों लागे तैसें ।
 आपैसेया ॥ ४९ ॥
 तेविं चि पै गा सुखाचां पाउटीं । चडतां येइजे एया भेटी ।
 मग भेटलेयां कीर मीठी । भोगणेयां हीं पडे ॥ ५० ॥
 परि भोगाचिये अइली कडे मेरे ।
 चित्त उभें ठेलें चि सुखा भरे ।
 ऐसें सुलभ आणि सोपारें ।
 वरि परब्रह्म ॥ ५१ ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।

प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

तेविं चि पै गा आणिक ही एक येयाचें ।
 जें हातां आलें तारि न वचे ।
 आणि अनुभवितां कहीं न वेचे ।
 वरि वीटे ही नां ॥ ५२ ॥
 एथ जरि तार्किका । ऐसी हान घेंसी शंका ।
 नां येवढी वस्तु हे लोका । उरली केवि पां ॥ ५३ ॥
 तारि पवित्र होये आणि रम्य ।
 तेविं चि सुखोपायें चि अवगम्य ।
 आणि स्वयं सुख परि धर्म्य ।
 वरि आपणपां जोडे ॥ ५४ ॥

ऐसा आघवा चि सुखाडु आहे । तरि जना केवि पां उरो लाहे ।
हा शंकेचा ठाउं किर होये । परि ते न करावी आइकै ॥ ५५ ॥

अश्रद्धधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।

अप्राप्य मां निवर्तते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

पाहे पां दूध पवित्र आणि गोड ।

पासिं चि त्वचेचिया पदरासि आड ।

परि ते अन्हेरूनि ते मूड ।

अशुद्ध काइ नेघति ॥ ५६ ॥

कां कमलकंदा आणि दर्दुरीं । नांदणुक तरि येका चि घरीं ।

परि पराग सेविजे भ्रमरीं । एरीं चिखळू चि उरे ॥ ५७ ॥

ना तरि निदेवांचां परिवरीं । लोहीरुतलिया आहाति सहस्रवेरी ।

परि ते तेथें असौनि उपवास चि करी अथवा दरिद्रें जिये ॥ ५८ ॥

तैसा हृदयीं आंतु मीं धर्मु । असतां सर्व सुखांचा आरामु ।

किं भ्रांतांसि कामु । विषयां वरि ॥ ५९ ॥

बहू मृगजळ देखौनि डोलां । थूंकिला अमृताचा गोलितां गळाला ।

तोडिला परिसु बांधला गलां । शुक्तिलाभें ॥ ६० ॥

तैसीं अहंमतेचिया लंहिदवडी । मातें न पवति चि बापुडीं ।

झणौनि जन्ममरणाची दूधडी । डहुलतें ठेलीं ॥ ६१ ॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाऽहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥

यन्हवि मी तरि कैसा । मुख प्रति भानु कां जैसा ।

कोहिं न दिसें नसें ऐसा । वाणिचा नोहे ॥ ६२ ॥

माझेया विस्तारपणें नावें । हें जग चि नव्हे आघवें ।

जैसें दूध मुरालें स्वभावें । तरि तें चि दधि ॥ ६३ ॥

कां बीज चि जालें तरु । अथवा भांगार तें अलंकार ।

तैसा मज एकाचा विस्तार । तें हें जग ॥ ६४ ॥

हैं असो अव्यक्तपण थिनलें ।
 मग तें चि विश्वाकारें उ०थिजलें ।
 तैसैं अमूर्त्त मूर्त्त मियां विस्तारलें ।
 त्रैलोक्य जाणैं ॥ ६५ ॥
 महदादि देहांतें । इयें अशेषें हीं भूतें ।
 पै माझां ठांडं बिंबतें । जैसे जळि फेन ॥ ६६ ॥
 परि तेया फेना आंतु पांतां । जेवि जळ न दिसे पांडुसुता ।
 ना तारि स्वमिची अनेकता । चेइलेयां नोहिजे ॥ ६७ ॥
 तैसीं जियें भूतें माझां ठांडं । बिंब तें तेया माझि मीं नाहिं ।
 इया चि उपपत्ती तुज पाई । सांघितलिया मागां ॥ ६८ ॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।

भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥

हणौनि बोलिलिया बोलाचा अतिशो ।

न कीजे येया लागि हें असो ।

तन्हीं मज आंतु पैसो ।

दीठि तूझी ॥ ६९ ॥

आमचा प्रकृती पैलीकडालु भाउ० ।

जारी कल्पना विण लागसी पाउ० ।

तारि मज माझि भूतें हें ही वाउ० ।

जें सर्व मी हणौनि ॥ ७० ॥

यन्हांविं तन्हीं संकल्पाचिये सांजवेले ।

नावेक तिमिरैजति बुद्धिचे डोळे ।

हणौनि अखंडित चि परि झांवले ।

भूत भिन्न ऐसैं देखे ॥ ७१ ॥

ते चि संकल्पाची सांज जैं वीपे ।
 तैं अखंडित चि आहे स्वरूपें ।
 जैसी शंका जात खेओ लोपे ।
 सर्पपण मालेचें ॥ ७२ ॥
 यन्हविं तन्हीं भुइं आंतौनि स्वयंभ ।
 काइ घडेगाडुआंचे निगताति कौंभ ।
 पुडुतीं ते कुल्लालमतिचे गर्भ ।
 उमटले किं ॥ ७३ ॥
 ना तारि सागराचां पाणीं ।
 काइ तरंगाचिया आहाति खाणी ।
 ते अवांतर करणी ।
 वारेयाची नव्हे ॥ ७४ ॥
 पाहे पां कापुसाचां पोटीं । कापडाचीं होंति काये पेटी ।
 तो वेढि तेयाचिया दीठी । कापड जाला किं ॥ ७५ ॥
 जारि सोनें लेणें होउनि घडे । तन्हीं तेयाचें सोनेपण न मोडे ।
 एरु अलंकारु तो वरिंचिली कडे । लेंतेयाचेनि भावें ॥ ७६ ॥
 सावें पडिसादेयाचीं प्रत्युत्तरें ।
 कां आरिसां हान जें आविष्करे ।
 तें आपुलें कां साचोकारें ।
 तेथिचें होंतें ॥ ७७ ॥
 तैसिये निर्मले माझां स्वरूपीं । जो भूतभावना आरोपी ।
 तेयासि तेयाचां चि संकरपीं । भूताभासु आहे ॥ ७८ ॥
 ते चि कल्पिति प्रवृत्ति पुरे । आणि भूताभासु आदिं च सरें ।
 मग स्वरूप उरे एकसरें । निखल माझे ॥ ७९ ॥
 हें असो आंगीं भरलियां भवंडी । जैसियां भवती दीसति आदिं ।
 तैसिया आपुळिया कल्पना अखंडीं । गमति भूतें ॥ ८० ॥

ते चि कल्पना सांझनि पाइं । तारि मीं भूतीं भूतें माझां ठाईं ।
 हें स्वप्नि हिं परि नाहिं । कल्पावेया जोगें ॥ ८१ ॥
 आतां मी एकु भूतांतें धरिता । अथवा भूतां माझि असता ।
 इया संकल्पसन्निपाता । आंतुली बोलिया ॥ ८२ ॥
 ह्मणौनि परियसैं गा प्रियोत्तमा । मीं विश्वेंसीं विश्वात्मा ।
 जो एया लटकेया भूतग्रामां । भाव्यु सदा ॥ ८३ ॥
 रश्मिचेनि आधारे जैसैं । नाहिं तें चि मृगजल असे ।
 माझां ठाईं भूतजात तैसैं । आणि मातें भावी ॥ ८४ ॥
 मी इये परिचा भूतभावनु । परि सर्व भूतेंसीं अभिन्दु ।
 जैसैं प्रभा आणि भानु । एक चि तें ॥ ८५ ॥
 हा ऐश्वर्यु आमन्ना योगु । तुवां देखिला कि चांगु ।
 आतां साचें एथ काहीं लागु । भूतभेदाचा असे ॥ ८६ ॥
 एया लागि मजपासौनि भूतें । आनें न्हवति हें निरुतें ।
 आणि भूतां वेगलेयां मातें । कहीं चि न मनीं हो ॥ ८७ ॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।

तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

पै गगन जेव्हडें जैसैं । पवनु हि तेवडा चि असे ।
 हा साहाजें हालवलेयां वेगला दीसे । यन्हविं गगन तें तो ॥ ८८ ॥
 तैसैं भूतजात माझां ठाईं । कल्पिजे तारि आभासे काहीं ।
 निर्विकल्पीं मग नाहिं । तेथ मीं आघवें ॥ ८९ ॥
 ह्मणौनि नाहिं आणि असे । हें कल्पनेचेनि सोरसैं ।
 जें कल्पनालोपीं भ्रंशे । आणि कल्पने सर्वे होये ॥ ९० ॥
 तें चि कल्पितें मुदल जाये । तें कें असे नाहिं हें आहे ।
 ह्मणौनि पुडुतीं तूं पाहे । हा ऐश्वर्ययोगु ॥ ९१ ॥
 ऐसिया प्रतीतिबोधसागरीं । तूं आपणपेयांतें कल्लोल एकु करीं ।
 मग एन्हविं पाहंसि तव चराचरीं । तूं चि असासि ॥ ९२ ॥

एया जाणणेयांचा चेउम । तूज आला नां हणति देओ ।
 तारि आतां द्वैतस्वप्न वाओ । जालें किं ना ॥ ९३ ॥
 तन्हीं पुडुतां जारि त्रिपायें । बुद्धी कल्पनेची झोंप ही नैये ।
 तारि अभेदबोधु जाए । जें स्वप्नीं पाडिजे ॥ ९४ ॥
 ह्यणौनि इये नीदेची वाट मोडे ।
 निखल उद्धोधाचें चि आपणपें घडे ।
 ऐसैं सुवर्म जें आहे फुडे ।
 तें दाउनि पाइं ॥ ९५ ॥

सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृतिं यांति मामिकाम् ।
 कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

तारि धनुर्द्वरा धौरेया । नीकें अवधान देयीं धनंजया ।
 पैं सर्वभूतांतें माया । करी हरी ॥ ९६ ॥
 जियें नावं कां प्रकृति ।
 जे द्विविधा सांघितली तुजप्रति ।
 येकि अष्टभेदव्यक्ति ।
 आणि जीवरूपा ॥ ९७ ॥
 हा प्रकृतिविषो आघवा ।
 तुवां मागां परिसिला असे पांडवा ।
 ह्यणौनि असो काये सांघावा ।
 तन्हीं प्रकृति ते हे ॥ ९८ ॥
 तारि इये माक्षिये प्रकृती । महाकल्पांचां अंतीं ।
 सर्वभूतव्यक्ती । ऐक्यासि येति ॥ ९९ ॥
 प्रीध्मांचां अतिरसीं । सर्बाजें तृणें जैसीं ।
 मार्घातीं भूमीसी । मुलीं होंति ॥ १०० ॥

कां वार्षिये देदें फीटे ।

जेव्हां शारदियेचा अनुवाडु फुटे ।

तें घनजात आटे ।

गगनिचां गगनीं ॥ १ ॥

ना तरि आकाशाचिये खोंपे । वायु निवांतू चि लोपे ।

आणि तरंगता हारपे । जलिं जेविं ॥ २ ॥

अथवा जागिनलेये वेले । स्वप्न मनिचें मनीं चि मावळे ।

तैसें प्राकृत प्रकृती मिले । कल्पक्षयीं ॥ ३ ॥

मग कल्पादि पुडुतीं । मीं चि सृजीं ऐसी वदंती ।

तरि तिये विधिं निरुती । उपपत्ति आइकें ॥ ४ ॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।

भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशान् ॥ ८ ॥

तरि हे चि प्रकृति फिरीटी । मीं स्वकीय साहजें अधिष्ठीं ।

तेथ तंतुसमवायें पटीं । जेविं विणावणि दीसे ॥ ५ ॥

मग तिथे विणावणिचेनि आधारे ।

लाहाना चौकडियां पटत्व भरे ।

तैसीं पंचात्मकें आकारें ।

प्रकृति चि होए ॥ ६ ॥

जैसें विरजेयाचेनि संगें । दूध आटलिजों लागे ।

तैसी प्रकृति आंगा रिगे । सृष्टिपणाचिया ॥ ७ ॥

बीज जलाची जवळीक लाहे ।

आणि तें चि शाखोपशाखा होये ।

तैसें मज करणें आहे ।

भूतांचें हेंट ॥ ८ ॥

आगा हे नगर रायें केलें ।
 एया ह्यणणेया किर साचपण आले ।
 पारि निरुतें पांतां काइ सिणले ।
 रायाचे हात ॥ ९ ॥
 आणि मीं प्रकृति अधिष्ठीं तें कैसें । जैसा स्वप्नीं जो असे ।
 मग तो चि प्रवेशे । जाप्रदवस्थे ॥ ११० ॥
 तरि स्वप्नौनि जाप्रति येतां । काये पाये दूखति पांडुसुता ।
 कीं जाप्रते माझि असतां । प्रवासु होए ॥ ११ ॥
 एया आघवेयाचा अभिप्रा^३ काइ ।
 जें हें भूतसृष्टिचें कांहीं ।
 मज एक ही करणें नाहीं ।
 ऐसा अर्थ ॥ १२ ॥
 जैसी रायें अधिष्ठिली प्रजा । व्यापारें आपुलालेया काजा ।
 तैसा प्रकृतिसंगु माझा । एर करणें तें इयेचें ॥ १३ ॥
 पाहे पां पूर्णचंद्राचिया भेटी । समुद्रिं भरतें अपार दाटी ।
 तेथ चंद्रासि काइ किरिटी । उपखा पडिला ॥ १४ ॥
 जडपण जवळिका । लोह चाले तरि चाले कां ।
 कोणु सीणु भ्रामका । सन्निधानाचा ॥ १५ ॥
 किंवहुना इया परीं । मीं निजप्रकृतितें आंगिकरीं ।
 आणि भूतसृष्टि एकसरी । प्रसरों चि लागे ॥ १६ ॥
 जें हा भूतग्रामु आघवा । असे प्रकृती अंधीनु पांडवा ।
 जैसी वीजाचेया वेळा पालवा । समर्थ भूमि ॥ १७ ॥
 नां तरि वाल्यादिकां वयसां । गोसांविं देहसंयोगु जैसा ।
 अथवा घनावली आकाशा । वार्धियें जेवि ॥ १८ ॥
 का स्वप्नासि कारण निद्रा । तैसी प्रकृति हे नरेंद्रा ।
 एया अशेषा ही भूतसमुद्रा । गोसांविणि गा ॥ १९ ॥

स्थावरां जंगमां । स्थूलां अथवा सूक्ष्मां ।

हैं बहू असो भूतग्रामां । प्रकृती चि मूल ॥ १२० ॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।

उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

ह्यणौनि भूतै हान सृजावीं । कां सृजिलीं प्रतिपालावीं ।

इयें करणीं नैयन्ति आघवीं । आमचेया आंगा ॥ २१ ॥

जलीं चंद्रिकेचिया पसरति वेली ।

ते वाडि चंद्रें नाहिं जेवि केली ।

तेवि मावें पाउनि ठेलीं ।

दूरि कर्म ॥ २२ ॥

आणि सूटलेयां सिंधुजलाचा लोटु ।

न शके धरुं सैधवाचा घोटु ।

तेवि सकल कर्मां मी चि सेवटु ।

काइ बांधीति मातें ॥ २३ ॥

धूमरजाची पिंजरी । वाजतेया वायुतें होंकरी जरि ।

कां सूर्यबिंबा माझारि । आंधारें रिगे ॥ २४ ॥

हैं असो पर्वतांचिये हृदइचें । पर्जन्यधारीं ने विखोंचे ।

तेवि कर्मजात प्रकृतिचें । न लगे मज ॥ २५ ॥

अन्हविं इये प्रकृतिविकारीं । येकु मीं चि असे अवधारीं ।

उदासीनाचिया परीं । करी ना करवीं ॥ २६ ॥

दीपु ठेविला परि वरीं । कवणातें नियमी ना निवारी ।

आणि कवण कवणी परी । राहाटे तें असे नेगे ॥ २७ ॥

तो जैसा कां साक्षिभूतु । गृह्न्यापारप्रवृत्तिरहितु ।

तैसा भूतकार्मि अनासक्तु । मीं भूतीं असें ॥ २८ ॥

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः स्रूयते सचराचरम् ।

हेतुनाऽनेन काँतेय जगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥

एथ एकू चि अभिप्रा३० पुडुती । काइ सांघों यया उपपत्ती ।

तारि एकी हेला सुभद्रापती । एतुलें जाण ॥ २९ ॥

जैसा लोकचेष्टां समस्तां । हा निमित्तमात्र कां सविता ।-

तैसा जगप्रभवीं मी पांडुमुता । हेतु होइं ॥ ३० ॥

कां जें मियां अधिष्ठिलेयां प्रकृती ।

होंताति चराचराचिया संभूती ।

ह्यणौनि मीं हे उपपत्ती ।

घडे इया ॥ ३१ ॥

आतां येणें चि उजियडें निरुतें । निहालिं पां एया योगातें ।

जें माझां ठांडं भूतें । परि मीं भूतीं नसें ॥ ३२ ॥

अथवा भूतें माझां ठांडं । आणि मीं भूतां माझि नाहीं ।

इया खुणा आंतु काहीं । चूकें ना किं ॥ ३३ ॥

हें सर्व आमचें गूढ । दाविलें मियां तुज उघड ।

तारि इंद्रियां देउनि कवाड । हृदयीं भोगीं ॥ ३४ ॥

हा डंसु जवं नये हाता । तवं माझे साचोकारण पार्था ।

न संपडे गा सर्वथा । जेवि भुषिं कणु ॥ ३५ ॥

यन्हविं अनुमानाचेनि पैसें । आवडे किरु कललें ऐसें ।

परि मृगजलाचेनि उल्हासें । काइ भूमि तीमे ॥ ३६ ॥

जें जाल जलीं पांगिलें । तेथ प्रतिबिंब दीसे कीरु आंतुडलें ।

मग थडिये काटूनि झाडिलें । तेव्हलिं विंब कें सावै ॥ ३७ ॥

तैसें बोलवारि वाचावळें ।

वायां चि झांकवीति प्रतीतीचे डोले ।

मग साचोकारे यया बोधा वेले ।

आथि ना होइजे ॥ ३८ ॥

अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।

परं भावमजानंतो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

किं बहुना भवा भिया । आणि साचें चाड जरि मियां ।
 तरि तुह्मी गा उपपत्ती इयां । जतन करां ॥ ३९ ॥
 यन्हविं वेधली दीठि कवले । ते चांदिणेंयांतें हणो पीवळें ।
 तेवि माझां स्वरूपीं निर्मलें । देखति दोषु ॥ १४० ॥
 ना तारि जरें विटाललें मुख । मग दूधातें हणति विख ।
 तेवि अमानुषा मानुष । मानीति मातें ॥ ४१ ॥
 हणौनि पुढुतीं धनंजया । ज्ञनें विसरसी यया अभिप्राया ।
 जें एरी स्थूलदृष्टी वायां । जाईल गा ॥ ४२ ॥
 पै स्थूलदृष्टी देखिजे मातें । तें नेदखणें जाणति निरुतें ।
 जैसें स्वप्निचेनि अमृतें । अमरां न्हविजे ॥ ४३ ॥
 यन्हविं स्थूलदृष्टी मूढ । मातें जाणति कीरु दृढ ।
 पारि तें जाणणें चि जाणणेयां आड । रिगौनि ठाके ॥ ४४ ॥
 जैसें नक्षत्राचेया आभासा । साठिं घातु जाला तेया हंसा ।
 माझि रत्नबुद्धिचिया आशा । हणौनियां ॥ ४५ ॥
 सांधें गा मृगजल टाकूनि गेल्याचें कवण फल ।
 काइ सुरतरु हणौनि बाबुल । सेविलें करी ॥ ४६ ॥
 हा निलेयाचा दुसरा । यया बुद्धी हातु घालिजे विखारा ।
 कां रत्नें हणौनि गारा । वेंचिजति पै ॥ ४७ ॥
 अथवा निधान हें प्रकटलें । हणौनि खदिरांगार खोले भरिले ।
 कां साउळी न पातां घातलें । कुहां सिहें ॥ ४८ ॥
 तेवि मीं हणौनि प्रपंचीं ।
 जिहीं बुडी दिधली कृतनिश्चयाची ।
 तिहीं चंद्रासाठिं जलिची ।
 प्रतिमा धरिली ॥ ४९ ॥
 तैसा कृतनिश्चयो वायां गेला । जैसा कोण्ह येकु कांजी पियाळा ।
 मग परिणामु पाहों लागला । अमृताचा ॥ १५० ॥

तैसैं स्थूलाकरौं नाशवंते । भरवसा बांधौनि चित्तैं ।
 पाहांति मज अविनाशातें । तरि कैसेनि दीसैं ॥ ५१ ॥
 आगा पश्चिमसमुद्रिचिया तटा । निगिजत आहे पूर्वेची वाटा ।
 किं कोंडा कांडितां सूभटा । कणु आंतुडे ॥ ५२ ॥
 तैसैं विकरलें हें स्थूल । जाणितलेयां मीं जाणावें केवल ।
 काये फेणु पीतां जल । सेविलें होये ॥ ५३ ॥
 ह्यणौनि मोहबलें मनोधर्में । हें चि मानूनि संध्रमैं ।
 येथिचीं जियें जन्मकर्में । तियें मज चि ह्यणति ॥ ५४ ॥
 एतुलेनि अनामा नाम । मज अक्रियासि कर्म ।
 विदेहा देहधर्म । आरोपिति ॥ ५५ ॥
 मज आकारशून्या आकार । निरुपाधिका उपचार ।
 विधिविवाजिता व्यवहार । आचारादिकु ॥ ५६ ॥
 मज वर्णहीना वर्णु । गुणार्तातासि गुणु ।
 मज अचरणा चरणु । अपाणी पाणि ॥ ५७ ॥
 मज अमेया मान । सर्वगतासि स्थान ।
 जैसैं सेजें चि माझि वन । निदेल्ल देखे ॥ ५८ ॥
 तैसैं अश्रवणा श्रोत्र । मज अक्षुका नेत्र ।
 अगोत्रा गोत्र । अरूपा रूप ॥ ५९ ॥
 मज अव्यक्ता व्यक्ति । अनार्त्तासि आर्त्तैं ।
 स्वयंतृप्ता तृप्ति । भाविति गा ॥ १६० ॥
 मज अनावरणा आवरण । अभूषणा भूषण ।
 मज सकलकारणासि कारण । मानाति ते ॥ ६१ ॥
 मज सहजातें कारिति । स्वयंभातें प्रतिष्ठिति ।
 निरंतरातें आवाहांति । विसार्जिति पै ॥ ६२ ॥
 मीं सर्वदा स्वतःसिद्धु । मीं बालु तरुणु वृद्धु ।
 मज एकरूपा समधु । जाणति ऐसैं ॥ ६३ ॥

मज अद्वैतासि दूजे । मज अक्रियासि काजे ।
 मीं अभोक्ता किं भुंजे । ऐसें हणति ॥ ६४ ॥
 मज अकुलाचें कुल वानिति । मज नित्याचेनि निधनें सीणति ।
 मज सर्वत्रातें कल्पिति अरिमित्र गा ॥ ६५ ॥
 मीं स्वानंदाभिरामु । तेया मज आणि सुखाचा कामु ।
 मीं आघवा चि असें समु । किं हणति एकदेशी ॥ ६६ ॥
 मीं आत्मा एकु चराचरीं । किं हणति एकाचा आडलु करी ।
 आणि कापौनि एकां मारीं । हें चि रूढवीति ॥ ६७ ॥
 किंबहुना ऐसें समस्त । जे हे मनुष्यधर्म प्राकृत ।
 तेया चि नावं ऐसें विपरीत । ज्ञान तेयांचें ॥ ६८ ॥
 जवं आकारु येकु देखति । तवं हा देवो ऐसें हणति ।
 मग तो चि विघडलेयां ठकति । नाहिं हणौनियां ॥ ६९ ॥
 मातें एणें एणें प्रकारें । जाणति मनुष्य ऐसेनि आकारें ।
 हणौनि ज्ञान तें चि आंधारें । ज्ञानासि कारिति ॥ ७० ॥

मोबाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।

राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥

एया लागि जन्मले ते मोघ । जैसे वार्थी विण मेव ।
 ना तारि मृगजलिचे तरंग । दुरौनि पाहावे ॥ ७१ ॥
 अथवा कोल्हैरिचे असिवार । ना तारि वोडंबारिचे अलंकार ॥
 किं गंधर्वनगरिचे आवार । आभासति ॥ ७२ ॥
 सावेरी वाढिनलेया सरला । वरि फल नाहिं आंतु पोकला ।
 कां स्तन जाले गलां । सैलिये जैसे ॥ ७३ ॥
 तैसें मूर्खांचें तेयां जियालें ।
 आणि धिगि कर्म हीं तेयांचें निफनलें ।
 जैसें सोवेरी फल आलें ।
 घेये ना दीजे ॥ ७४ ॥

मग जें काहिं ते पढिनले । तें माकडें नारियल तोडिलें ।
कां आंधलेया हातीं पाडिलें । मोतीं जैसें ॥ ७५ ॥
किंबहुना तेयां शास्त्रें । जैसें कुमारीहातीं बांधलीं शस्त्रें ।
कां अशौची मंत्रें । बीजें कथिलीं ॥ ७६ ॥
तैसें ज्ञानजात तेयां । आणि काहिं आचरले गा धनंजया ।
तें आवें चि गेलें वायां । जे चित्तहीन ॥ ७७ ॥
पै तमोगुणिची राक्षसी । जे सद्बुद्धितें प्रसी ।
मनाचा ठाउ चि पूसी । निशाचरि जे ॥ ७८ ॥
तिये प्रकृती वरिपडे जाले । ह्यगौनि चित्ताचेनि कपोलें गेले ।
वरि तामसियेचां पडिले । मुखा माजि ॥ ७९ ॥
जेथ आशोचिये लाले । आंतु हिंसा जीभ लोले ।
तेविं चि संतोखाचे चाकले । अखंड चवली ॥ १८० ॥
जेथ अनार्त्तांचे कानवेन्हीं ।
आवालुएं चाटिति निगे वाहिरि ।
जे प्रमादपर्वतिची दरी ।
सदा चि मातली ॥ ८१ ॥
जेथ द्वेषाचिया दाढा । कसासां ज्ञानाचा करिती रगडा ।
जे अगस्तिगौवण मूढां । स्थूलबुद्धि ॥ ८२ ॥
ऐसे आसुरिये प्रकृतिचां तोंडीं । ते जाले गा भूतौंडी ।
जे बुडौनि गेले कुंडीं । व्यामोहाचां ॥ ८३ ॥
एवं तमाचिये पडिले गर्ते ।
न पवती चि विचाराचेनि हातें ।
हें असो ते गेले जेथें ।
ते शुद्धि ही नाहिं ॥ ८४ ॥
ह्यगौनि असतु इयें वायाणीं । काइसीं तेयां मूर्खांचीं बोलणीं ।
वायां वाढवितां काहाणी । सिणैल हान ॥ ८५ ॥

ऐसें बोलिलें देवें । तेथ जी ह्यणितलें पांडवें ।
आइकें वाचा जेथ विसंवे । ते साधुकथा ॥ ८६ ॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।

भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

तारि जेयांचिये चोखटे मानसीं । मीं होउनि असे क्षेत्रसंन्यासी ।

जेयां निदैलेयांतें उपासी । वैराग्य गा ॥ ८७ ॥

जेयांचिया आस्थेचिया सद्भावा । आंतु धर्मु करी राणिवा ।

जेयांचिये मती ओलावा । विवेकाचा ॥ ८८ ॥

जे ज्ञानगंगे न्हाले । जे पूर्णता जेउनि धाले ।

जे शांतीसि जाले । पालव नवे ॥ ८९ ॥

जे परिणामा निघाले कोंभ । जे धैर्यमंडपाचे खांभ ।

जे आनंदसमुद्रीं कुंभ । चुभळ्ळनि भरिले ॥ १९० ॥

जेयां भक्तिची येतुली प्रीति । जे कैवल्यातें पन्हां सर ह्यणति ।

जियांचिये लीले माक्षि नीति । जियाली दीसे ॥ ९१ ॥

जे आघवां चि करणीं । लेइले संयतिचीं लेणीं ।

जेयांचें चित्त गवसणीं । व्यापका मज ॥ ९२ ॥

ऐसे जे महानुभाव । जे दैविये प्रकृतिचे दैवं ।

जे जाणौनियां सर्व । स्वरूप माझे ॥ ९३ ॥

मग वाढतेनि प्रेमें । मातें भजताति जे महात्मे ।

परि दूजेपण मनोधर्में । सीतले नाहिं ॥ ९४ ॥

ऐसे मीं चि होउनि पांडवा । करीत माझी सेवा ।

परि नवलाओ तो सांवावा । असे आइकें ॥ ९५ ॥

सततं कीर्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः ।

नमस्यंतश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥

तारि कीर्तनाचेनि नडनाचें । नाशिले व्यवसाय प्रायश्चिताचे ।

जे नावं चि नाहिं पापाचें । ऐमें केलें ॥ ९६ ॥

यमदमा अवकला आणिली । तीर्थे ठायावरौनि उठविलीं ।
 यमलोकिचीं ठाकविलीं । राहाटि आघवी ॥ ९७ ॥
 यमु हणणे काइ यमावें । दमु हणणे कोणातें शोषावें ।
 तीर्थे हणति काइ खावें । दोखु उ०षधा नाहिं ॥ ९८ ॥
 ऐसेनि माझेनि नामघोषें । नाहिं करित विश्वाचीं दुःखें ।
 आघवें जग चि महासुखें । दुमुदुमीत भरलें ॥ ९९ ॥
 ते पाहाटेविण पांहाटवित । अमृतेविण जिववित ।
 योगेविण दावित । कैवल्य डोलां ॥ २०० ॥
 पारि राया रंका पाडु धरं । नेणति सानेया थोरा कडसणी करं ।
 एकरसें आनंदाचें आवारं । होत जगा ॥ १ ॥
 काहिं येकाधेन वैकुंठा जावें । तेंतिहिं वैकुंठ चि केलें हे आघवें ।
 ऐसें नामघोषगौरवें । धवलें विश्व ॥ २ ॥
 तेजें सूर्यु तैसे उजल । पारि तो अस्तवे हें कीडाळ ।
 चंद्र संपूर्ण एकाधी वेल । ते सदा पुरते ॥ ३ ॥
 मेघु उदारु पारि ओसरे । हणौनि उपमोसि नुपकरे ।
 ते निःशंकपणें सपांखरे । पंचानन ॥ ४ ॥
 तेयांचिये वाचेपुढां भोजें । नाम नाचे माझे ।
 जें जन्मशतीं उ०लगिजे । एकोल यावेया ॥ ५ ॥
 पै वैकुंठीं मीं गा नसें । वेलु एकु ही भानुबिंबि हिं न दिसें ।
 वर योगियांची हीं मानसें । सांडूनि जायें ॥ ६ ॥
 पारि तेयांपासि पांडवा । मीं हारतला गिवसावां ।
 जेथ नामचोषु वरवा । करिति ते माझा ॥ ७ ॥
 कैसे माझां गुणीं भरले । देशकालातें विसरले ।
 कीर्त्तनसुख जाले । आपणपां चि ॥ ८ ॥
 कृष्णविष्णुगोविंद । एयां नामाचे निखिल प्रबंध ।
 माझि आत्मचर्चा विशद । उदंड गांति ॥ ९ ॥

हैं षड् असो इया परीं । कीर्त्तितमाते अवधारीं ।
 एक विचरति चराचरीं । पांडुकुमरा ॥ २१० ॥
 मग आणिक ते अर्जुना । सावियां चि बहुवां जतना ।
 पंचप्राणमना । पाढाउ घेति ॥ ११ ॥
 बाहिरि यमनियमाची कांठि लाविली ।
 आंतु वज्रासनाची पौलि पानासिली ।
 चारि प्राणायामाची मांडिलीं ।
 वांहांती यंत्रें ॥ १२ ॥
 तेथ-उल्हाटशक्तिचेनि उजियेडें । मनपवनाचेनि सुरवाडें ।
 सतरावियेचेनि पानियेडें । बलियावीले ॥ १३ ॥
 तेहां प्रत्याहारें ख्याति केली । विकारांची सापिलें बोहिली ।
 इंद्रियें बांधौनि आणिलीं । हृदया आंतु ॥ १४ ॥
 तवं धारणावारू दाटिले । महाभूतांतें येकिं आटिलें ।
 मग चतुरंग निवटिलें । संकल्पाचें ॥ १५ ॥
 तेयावारि जैत रे जैत । ह्यणौनि ध्यानाचें निसाण वाजत ।
 दीसे तन्मयतेचें झलकत । एकलत्र ॥ १६ ॥
 पाठि समाधिश्रियेचेया अशेषा । आत्मानुभवु—राज्यसुखा ।
 पट्टाभिषेकु देखां । समरसें जाला ॥ १७ ॥
 ऐसें हें गहन । अर्जुना माझे भजन ।
 आतां आइक सांवो आन । जें करिति येक ॥ १८ ॥
 तरि दोन्हीं पालववेन्हीं । जैसा एकु तंतु अंबरीं ।
 तैसा मी वांचूनि चराचरीं । जाणति नां ॥ १९ ॥
 आदिब्रह्मा करुनि । सेवटीं मशकु धरुनि ।
 माझि समस्त हें जाणौनि । स्वरूप माझे ॥ २२० ॥
 मग वाड धाकुटें न ह्यणति । साजीव निर्जाव नेणति ।
 देखिलिये वस्तू छंठति । मी चि ह्यणौनि ॥ २१ ॥

आपुलें उक्तमत्व नाठवे । पुढैल योग्यायोग्य ही नेणवे ।
 एकसरें व्यक्तिमात्रेचेनि नावें । नमूं चि आवडे ॥ २२ ॥
 जैसैं ऊंचीं उदक पडिलें । तारि तलवट्टुवारि ये उगेलें ।
 तैसें नमिजे भूत देखिलें । ऐसा स्वभाओ तेयांचा ॥ २३ ॥
 कां फललेया तरुचीं शाखा । साहाजें भूमीसि उतरलीं देखां ।
 तैसें जीवमात्रा अशेषा । खालतिले ॥ २४ ॥
 अखंड अगर्वता होउनि अंसति । तेयांते विनयो हे चि संपत्ति ।
 ते जयजपमंत्रें अर्पिति । माझां ठांडें ॥ २५ ॥
 नमितां मानाभिमान गलले । हणौनि अवचिते मीं चि जाले ।
 ऐसे निरंतर मिसलले । उपासिति ॥ २६ ॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते ।

एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

अर्जुना हे गरुड भक्ति । सांधितली तुज प्रति ।
 आतां ज्ञानयज्ञें यजिति । ते भक्त आइकें ॥ २७ ॥
 परि भजन करिती हातवटी । तूं जाणतु आहासि किरीटी ।
 जें मागां इया गोठी । केलिया आझीं ॥ २८ ॥
 तवं आथि जी अर्जुनु हणे । तें दैविकिया प्रसादाचें किं करणें ।
 तन्हीं अमृताचिये आरोगणे । काइ पुरे हणवे ॥ २९ ॥
 एया बोला आंतु अनतें । लागणेयां देखिलें तेयातें ।
 किं मुखावलेनि चित्तें । डोलतसे ॥ ३० ॥
 हणे भलें केलें पार्था । यन्हविं हा अनवसरु सर्वथा ।
 परि बोलवीतसे आस्था । तूझीं आमते ॥ ३१ ॥
 तवं अर्जुनु हणें हें काइ । चकोरें विण चांदणें चि नाहिं ।
 जग निवविजे हा तेयाचां ठांडें । स्वभाओ चि कीं जी ॥ ३२ ॥
 एरें चकोरें तियें आपुलिये चाडे । चांचू करिति चंद्राचिये कडे ।
 तेवि आझीं विनउं तें थोडें । देओ कृपासिंधु ॥ ३३ ॥

जें मेघु आपुलिया प्रौढी । जगाची आर्ति किं दवडी ।
 बांचूनि चातकाची तान्ह केवढी । तो वर्षाओ पाहुनि ॥ ३४ ॥
 पारि चूला हीं येकाचिये चाडे । जेवि गंगेतें चि टाकावें पडे ।
 तेवि आर्त्त बहू कां थोडें । तन्हीं सांघावें देवा ॥ ३५ ॥
 तेथ देवें ह्यणितलें राहे । जो संतोषु आह्ला जाला आहे ।
 तेयावारि स्तुति साहे । ऐसैं उरलें नाहिं ॥ ३६ ॥
 पै परियसु तुं आहासिं निक्कियापरी ।
 ते चिं वक्तृत्वा वन्हाडिक करीं ।
 ऐसैं पोखुनु तेयातें हरी ।
 आदरिलें बोलों ॥ ३७ ॥
 तारि ज्ञानयज्ञु तो एवरूपु । तेथ आदिसंकल्प हा यूपु ।
 महाभूतें तो मंडपु । भेदु तो पशु ॥ ३८ ॥
 मग पांचांचे जे विशेष गुण । अथवा इंद्रियें आणि प्राण ।
 हें चि यज्ञोपचारभरण । अज्ञानघृत ॥ ३९ ॥
 तेथ मनबुद्धि एयां कुडां । आंतु ज्ञान हा अग्नि फुडा ।
 साम्य ते सुहाडा । वेदी जाणें ॥ ४० ॥
 सविवेकमतिपाटव । तें चि विद्यागौरव ।
 संयति चि सृक्सृव । जीउ यज्वा ॥ ४१ ॥
 तो प्रतीतीचेनि पात्रें । विवेकें महामंत्रें ।
 ज्ञानाग्निहोत्रें । भेदु नाशी ॥ ४२ ॥
 तेथ अज्ञान सरौनि जाये । आणि यजिता यजन हे ठाये ।
 आत्मसमरसें न्हाये । अवभृत जेन्हां ॥ ४३ ॥
 तेन्हां भूतें त्रिषय करणें । हें वेगलालें काहीं न ह्यणे ।
 आघवें एक चि ऐसैं जाणे । आत्मबुद्धी ॥ ४४ ॥
 जैसा चेइला तो अर्जुना । ह्यणे स्वप्निची हे सेना ।
 मी चि जाला होंतां ना । निद्रावशें ॥ ४५ ॥

आतां सेना ते सेना नोहे । हें मीं चि एकु आघवें ।
 ऐसैं एकत्वे मानवे । विश्व तेया ॥ ४६ ॥
 मग तो जीउ हे भाष सरें । आब्रह्म परमात्मबोधें भरे ।
 ऐसे भजति ज्ञानाधरें । एकत्वे एणें ॥ ४७ ॥
 अथवा अनादि हें अनेक । जें असारखें येकायेक ।
 आणि नामरूपादिक । तें हीं विषम ॥ ४८ ॥
 ह्यणौनि विश्व भिन्न । परि न भेदे तेयाचें ज्ञान ।
 जैसे अवयव तारि आनान । परि एकि चि देहिंचे ॥ ४९ ॥
 कां शाखा सानिया थोरा । परि आहाति येका चि तरवरा ।
 बहू रश्मि परि दिनकरा । एकाचे जेवि ॥ २५० ॥
 तेवि नाना विधा व्यक्ती । आनानें नावें आनानी वृत्ती ।
 ऐसैं जाणति भेदलां भूतीं । अभेदा मातें ॥ ५१ ॥
 एणें वेगळालेपणें पांडवा । करिति ज्ञानयजु बरवा ।
 जें न भेदति या जाणिवा । जाणति ह्यणौनि ॥ ५२ ॥
 ना तारि जेधवां जिये ठांडें । देखति जें काहीं ।
 तें मीं वांचूनि नाहीं । ऐसा चि बोवु ॥ ५३ ॥
 पाहे पां बुडडा जेउता जाये । तेउतें जळ एक तेया आहे ।
 मग वीरे अथवा रीहे । तन्हीं जळा चि माशि ॥ ५४ ॥
 कां पवनें परमाणु उचलले । ते पृथ्वीचे हें नाहीं गेलें ।
 आणि माघौते जन्हीं पाडिले । तन्हीं पृथ्वी चि वरि ॥ ५५ ॥
 तैसें भले तेथ भलेतेणें भावें । भले तें हीं हो अथवा नोहावें ।
 परि तें मीं चि आघवें । होउनि ठेलें ॥ ५६ ॥
 आगा हे जेवढी माझी व्याप्ति । तेव्हढी चि तेयांची प्रतीती ।
 ऐसे वहुधाकारीं वर्तति । बहू चि होउनि ॥ ५७ ॥
 हें भानुबिंब आवडे तेया । सदमुख जैसें धनंजया ।
 तैसे ते विश्वा येर्या । समोर सदा ॥ ५८ ॥

आगा तेयांचेया ज्ञाना । पाठि नाहिं पै अर्जुना ।
वायु जैसा गगना । सर्वांगीं असे ॥ ५९ ॥
तैसा मी जेतुला आघवा । तें चि तूक तेयांचेया सद्भावा ।
तारि न करितां पांडवा । भजन जालें ॥ ६० ॥
यन्हविं तन्हीं सकल मीं चि आहें । तारि कोणें कै उपासिलां नोहें ।
एथ एकें जाणणेनि विण किं ठायें । अप्राप्तां ॥ ६१ ॥
परि तें असो एणें उचितें । ज्ञानयज्ञें यजित सांते ।
जे उपासित मातें । ते सांगितले ॥ ६२ ॥

अहं ऋतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।

मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥

अखंड सकल हें सकलीं मुखीं । साहाजें अर्पतसे मज एकीं ।
किं नेणणेया साठीं मूखीं । न पविजे चि मातें ॥ ६३ ॥
तो चि जाणिवेचा उदो जरि होये । तारि मुदलु वेदु तो मीं चि आहें ।
आणि तो विधानातें जिया विये । तो ऋतु हीं मीं ॥ ६४ ॥
मग तेया कर्मापासौनि वरवा । जो सांगोपांगु आघवा ।
यज्ञु प्रकटे पांडवा । तो हीं मीं गा ॥ ६५ ॥
स्वाहा मीं स्वधा । सोमादि ओषधी विविधा ।
आज्य मीं समिधा । मंत्रु मीं हवि ॥ ६६ ॥
होता मीं हवन कीजे । जेथ तो अग्निरूप माझें ।
आणि हुत वस्तु कां जे जे । ते हीं मीं चि ॥ ६७ ॥

पितामहस्य जगतो माता धाता पितामहः ।

वेद्यं पवित्रमौकार ऋक् साम यजुरेव च ॥ १७ ॥

पै जेयाचेनि अंगसंगें । इये प्रकृतीतव अष्टांगें ।
जन्म पाविजतसे जगें । तो पिता मीं गा ॥ ६८ ॥
अर्धनारीनटेश्वरीं । जो पुरुष तो चि नारी ।
तेवि मीं चराचरीं । माता हीं होयें ॥ ६९ ॥

आणि जाळें जग जेथ रोहे । जेणें जीत वाढत आहे ।
 तें मिं वांचूनि नोहें । आना निरुतें ॥ ७० ॥
 इयें प्रकृतिपुरुषु दोन्हीं । उपनलीं जेयाचां मनीं ।
 तो पितामहो त्रिभुवनीं । विश्वाचा मीं ॥ ७१ ॥
 आणि आववेया जाणण्यांचिया वाटा । जेया गावां यंति सूभटा ।
 जें वेदांचा चौहटा । वेद्य ह्यणिजे ॥ ७२ ॥
 जेथ नाना मतां बुद्धावणी जाली ।
 येकमेका शास्त्रांची अनोलखि फीटली ।
 चूकलीं ज्ञानें जेथ मिलें आलीं ।
 जें पवित्र ह्यणिजे ॥ ७३ ॥
 पै ब्रह्मबीजाचा जाला अंकुर । घोषध्वनि नादाकार ।
 तयाचे गा भवन जें अकार । तें हीं मीं चि गा ॥ ७४ ॥
 जेया अकाराचिये कुंसी । आखरें ह्योति अकारां ऐसीं ।
 जियें उपजत वेदेंसीं । उठिलीं तीन्हीं ॥ ७५ ॥ -
 ह्यणानि ऋग्यजुसामु । हे तीन्हीं ह्यणे मी रामु ।
 एवं मीं चि कुलाक्रमु । शब्दब्रह्माचा ॥ ७६ ॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।

प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८ ॥

हें चराचर आववें । जिये प्रकृती आंतु सांठवे ।
 ते सिणली जेथ विसवे । ते परम गति मीं ॥ ७७ ॥
 आणि जेयाचेनि प्रकृति जिये । जेणे अधिष्टिली विश्व विये ।
 जो एऊनि प्रकृती इयें । गुणातें भोगी ॥ ७८ ॥
 तो विश्वश्रियेचा भर्ता । मीं चि गा पांडुमुता ।
 मीं गोसांविं समस्ता । त्रैलोक्याचा ॥ ७९ ॥
 आकाशें सर्वत्र वसावें । वायू नांभरि उमेयां नसावें ।
 पावकें दाहावें । वर्षावें जळें ॥ २८० ॥

पर्वती बैसक न संडावी । समुद्रीं रेघ नोलंडावी ।
 पृथ्विया भूतें वाहावीं । हे आज्ञा माझी ॥ ८१ ॥
 मियां बोलविला वेदु बोले । मियां चालविला सूर्यु चाले ।
 मियां हालविला प्राणु हाले । जो जगा चालिता ॥ ८२ ॥
 मियां चि नियमिला सांता । कालु ग्रासु करितसे भूतां ।
 इयें ह्यणियागते पांडुसुता । सकलें जेयाचीं ॥ ८३ ॥
 ऐसा जो समर्थु । तो मीं जगाचा नाथु ।
 आणि गगन ऐसा साक्षिभूतु । तो ही मीं चि ॥ ८४ ॥
 इहीं नामरूपीं आघवां । जो भरला असे पांडवा ।
 आणि नामरूपां ही उल्लावा । आपण चि जो ॥ ८५ ॥
 जैसे जलाचे कळोळ । आणि कळोळीं आथि जल ।
 ऐसेनि वसवीतु असे सकल । तो निवासु मीं ॥ ८६ ॥
 मीं एकु अनेकपणें । वेगलालेनि प्रकृतिगुणें ।
 जांतु जगाचेनि प्राणें । वर्ततु असें ॥ ८७ ॥
 जैसा समुद्रु थिळ्हर न ह्यणतां । भले तेथ विंबे साविता ।
 तैसा ब्रह्मादि सर्वा हीं भूतां । मुह्दु तो मीं ॥ ८८ ॥
 मीं चि गा पांडवा । एया त्रिभुवनासि उल्लावा ।
 सृष्टिक्षयप्रभवा । मूल तें मीं ॥ ८९ ॥
 बीज शाखातें प्रसवे । मग तें रूखपण बीजीं चि सामावे ।
 तैसें संकल्पें होथे आघवें । पाठिं संकर्षीं मिले ॥ ९० ॥
 ऐसा जगाचें बीज संकल्पु । अव्यक्तु वासनारूपु ।
 तेयासि कल्पातीं जेथ निक्षेपु । होथे तें मीं ॥ ९१ ॥
 इयें नामरूपें लोटती । वर्णव्यक्ती आटती ।
 जातींचे भेद फीटती । जें आकारा नाहीं ॥ ९२ ॥
 तें सकलवासनासंस्कार । मावौते रचावेया आकार ॥
 जेथ राहूनि असति अमर । तें निधान मीं ॥ ९३ ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृहाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

मीं सूर्याचेनि वेखें । तपें तैं हें शोषे ।
पाठिं इंद्रु होउनि वर्षें । तैं पुढुतीं भरे ॥ १४ ॥
आगा मृत्युचां भागीं जें जें । तैं हिं पै रूप माझें ।
आणि न मरतें तवं साहाजें । अविनाश मीं ॥ १५ ॥
आतां बहू बोलौनि सांघावें । तैं एक हेला घे पां आघवें ।
तरि संतासंत ही जाणावें । मीं चि हें गा ॥ १६ ॥
ह्यणौनि अर्जुना मी नसें । ऐसा कोणहीं ठाउ असे ।
पारि प्राणियांचें दैवं कैसें । जें नेदखति मातें ॥ १७ ॥
हें आंतु बाहिरि मियां कोंदलें ।
जग निखिळ माझें चि ओतलें ।
किं कैसें कर्म तेयां आलें ।
जें मीं चि नाहिं ॥ १८ ॥
तरंग पाणियें विण सूकति । रदिम वाती उणें नेदखति ।
तैसे मीं चि ते मीं न्हवति । त्रिस्मयो देखें ॥ १९ ॥
पारि अमृतीं कुहा पाहिजे । कां आपणेयांतें चि गिवसूं जाइजे ।
ऐसें आथि हें काइ कीजे । अप्राप्तां ॥ २०० ॥
प्रासा येका अन्नासाठिं । अंधु धांवतां पायें किरीटी ।
आडलला चिंतामणि लोटी । आंधलेपणें ॥ १ ॥
तैसें ज्ञान जें सांडुनि जाए । तैं ऐसी हे दशा आहे ।
ह्यणौनि कांजे तें केलें नोहे । ज्ञानें विण ॥ २ ॥
आंधलेया गरुडाचे पांख आहाति । ते कोणहा हिं उपेगा जांति ।
तैसे सत्कर्माचे उपखे ठांति । अज्ञानां तेवी ॥ ३ ॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गात्तिं पार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेंद्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥

देख पां किरीटी । आश्रमधर्माचिया राहाटी ।
 विधिमागं कसवटी । जे आपण चि होंत ॥ ४ ॥
 यजन कारितां कवातिकें । तिहि वेदांचा माथा तूकें ।
 क्रिया फलेंसीं उभो ठाके । पुढां जेयां ॥ ५ ॥
 ऐसे दीक्षित जे सोमप । जे आपण चि यज्ञाचें रूप ।
 तिहिं तेया पुण्याचेनि नावें पाप । जोडिलें देखें ॥ ६ ॥
 जे श्रुतित्रयीतें जाणौनि । शतवेऱ्हां यज्ञां करूनि ।
 यजिलेया हीं मातें चुकउनि । स्वर्गु वशांति ॥ ७ ॥
 जैसें कल्पतरू तळवटीं । बैसौनि झोलिये पाडी गांठी ।
 मग निर्देउ^{३०} निगे किरीटी । दैन्य करं ॥ ८ ॥
 तैसें शतक्रतू यजिलें मातें । किं इच्छिताति स्वर्गादिसुखातें ।
 आतां हें पुण्य किं निरुतें । पाप नोहे ॥ ९ ॥
 ह्यणौनि मज वीण पाविजे स्वर्गु । तो अज्ञानांचा गा पुण्यमार्गु ।
 ज्ञानिये तेयातें उपसर्गु । हाणि हणति ॥ १० ॥
 एन्हविं तन्हीं नराकिचें दुःख । पाहूनि स्वर्गा नावं किं सुख ।
 वांचूनि नित्यानंद निर्दोष । तें स्वरूप माझें ॥ ११ ॥
 मज येतां पैं सूभटा । हा द्विविधु गा अब्हांटा ।
 स्वर्ग नरक इया वाटा । चोरांचिया ॥ १२ ॥
 स्वर्गा पुण्यात्मकें येइजे । पापें चि पापात्मकें नरका जाइजे ।
 मग मातें चि जेणें पाविजे । तें शुद्ध पुण्य ॥ १३ ॥
 आणि मज चि माझि असतां ।
 जेणें मीं दूरि होये पांडुसुता ।
 तें पुण्य ऐसें हणतां ।
 जामि न झडे ॥ १४ ॥
 पारि हें असो आतां प्रस्तुत । आइकें यया पारि ते दीक्षित ।
 यजूनि मातें याचित । स्वर्गभोग ॥ १५ ॥

मग मीं न पविजे ऐसैं । जें पापरूप पुण्य असे ।
तेणें लाधलेनि सौरसैं । स्वर्गा येती ॥ १६ ॥
जेथ अमरत्व हें चि सीहांसन । ऐरावता सारिखें वाहान ।
राजधानीभवन । अमरावती ॥ १७ ॥
जेथ महासिद्धिचीं भांडारें । अमृताचीं कोठारें ।
जिये गावीं क्षीरारें । कामधेनुचीं ॥ १८ ॥
जेथ उल्लिगे देवां पाइकां । सैध चिंतामणिचेया भूमिका ।
विनोदवनवाटिका । सुरतरूचिया ॥ १९ ॥
गंधर्व—गान—गाणी । जेथ रंभे ऐसिया नाचणी ।
उर्वशी मुख्य विलासिनी । आंतौरिया ॥ ३२० ॥
मदनु ओलगे सेजारें । जेथ चंद्रु सिंघे सावरें ।
पवना ऐसे ह्यणियारे । धावणे जेथ ॥ २१ ॥
पै बृहस्पति मुख्य आपण । स्वस्तिश्रियेचे ब्राह्मण ।
भाटियेचे सुरगण । विकर जेथें ॥ २२ ॥
लोकपाल रामेचे । राउत जिये पदिचे ।
उच्चैश्रवा खांचे । मागिलीकडे ॥ २३ ॥
हें बहू असो जे ऐसे । भोग ब्रह्मसुखा सारिसे ।
ते भोगीत जवं असे । पुण्यलेशु ॥ २४ ॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ २१ ॥

मग तेया पुण्याची पाहूती सरे ।
सवें चि इंद्रपणाची ऊठि उतरे ।
आणि येओं लागति माघारे ।
मृत्य लोका ॥ २५ ॥

जैसा भाडिचा कवडा वेचे ।
 मग दार ही चेंबू नैये तेयाचें ।
 ऐसैं लाजिरवाणें दीक्षिताचें ।
 काइ सांघों ॥ २६ ॥
 एवं तिथेया मातें चूकले । जिहिं पुण्यें स्वर्ग कामिले ।
 तेयां अमरपण तें वाउ जाळें । आतां मृत्युलोकु ॥ २७ ॥
 आगा स्वर्मी निधान फावे । परि ते चेइलेयां राहांत पावें ।
 तैसैं स्वर्गमुख जाणावें । वेदज्ञाचें ॥ २८ ॥
 अर्जुना वेदु जन्हीं जाला । तन्हीं मीं नेणतां वायां गेला ।
 कणु सांडौनि उपणिला । कोंडा जैसा ॥ २९ ॥
 हणौनि मज एकें विण । हें त्रयीधर्म अकारण ।
 मातें जाणौनि काहीं चि नेण । तूं मुखिया होंसी ॥ ३३० ॥

अनन्याश्चितयंतो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥

पैं सर्वभाविसिं उखितें । जे उण्ले माझिये चित्तें ।
 जैसा गर्भगोळु उद्यमातें । कोणहा हीं नेणे ॥ ३१ ॥
 तैसैं मीं वांचूनि काहीं । आणिक गोमटें चि नाही ।
 मज चि नावें पाइ । जीणें ठेविलें ॥ ३२ ॥
 ऐसे अनन्यगतिकें चित्तें । चिंतीत सांते मातें ।
 जे उपासीति तेयातें । मीं चि सेविं ॥ ३३ ॥
 ते एकवट्टुनि जिये क्षणीं । अनुसरले गा माझिया वाहाणीं ।
 तेन्हां चि तेयां चितवणी । फांटळीं आपुळीं ॥ ३४ ॥
 मग तिहिं जें जें करावें । तें मज चि पडिलें आवें ।
 जैसैं अजातपश्चाचेनि जावें । पक्षिणी जिये ॥ ३५ ॥
 कां आपुळी तान्हभूक नेणे । तेयां नीकें तें तांयेसी चि करणें ।
 तैसैं अनुसरले मज प्राणें । तेयांचें मिं काइसेनि न लजें ॥३६॥

तेयां माझेयां सायुज्याची चाड । तारि तें चि पुरविं कोड ।
 कां सेवा हणति आड । प्रेम सुएं ॥ ३७ ॥
 ऐसा मनीं धरिति जो भाओ । तो पुढपुढां लागें तेयां देऊं ।
 आणि दिधलेयाचा निर्वाहो । तो ही मीं चि करीं ॥ ३८ ॥
 हा योगक्षेमु आघवा । तेयांचा मज चि गा पांडवा ।
 जेयांचेया सर्वभावां । आश्रयो मीं ॥ ३९ ॥

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजंते श्रद्धयान्विताः ।

तेऽपि मामेव कौंतेय यजंत्यविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥

आतां आणीक संप्रदायें । परि मातें नेणति समवाए ।
 जे अग्रये इंद्राय अर्यमणे सोमाय । हणौनि भजिति ॥ ३४० ॥
 तें हिं किर मातें चि होये । कां जें हें आघवें मीं चि आहें ।
 परि ते भजती उजिरी नोहे । विखम पडे ॥ ४१ ॥
 पाहे पां शाखापल्लव वृक्षाचे । हे न्हवति येका चि बीजाचे ।
 परि पाणी घेणें मुलांचें । तें मुलीं चि घापे ॥ ४२ ॥
 कां दाही इंद्रियें आधि । इयें जन्हीं एकी चि देहिचिं होंति ।
 आणि इहीं सेविले विखय जांति । एका चि ठाया ॥ ४३ ॥
 तन्हीं करुनि रसोये बरवी । कांनिं केवि भरावी ।
 फुलें आणुनु बांधावीं । डोलां केवि ॥ ४४ ॥
 तेथ रसु तो मुखें चि सेवावा । परिमलु तो घ्राणें चि घेयावा ।
 तैसा मीं तो यजावां । मी चि हणौनि ॥ ४५ ॥
 येर मातें नेणौनि भजन । तें वायां चि गा आनीआन ।
 हणौनि कर्माचे डोले ज्ञान । तें निर्दोष होआवें ॥ ४६ ॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेष च ।

न तु मामभिजानंति तत्त्वेनातश्चयवंति ते ॥ २४ ॥

एन्हविं पाहे पां पांडुमुता । एयां यज्ञोपचारां समस्तां ।
 मीं वांचूनि भोक्ता । कवणु आहे ॥ ४७ ॥

मी सकल यज्ञाची आदि । आणि यजना या मीं चि अवधि ।
 किं मातें चूकौनि दुर्बुद्धी । देवां भजले ॥ ४८ ॥
 गंगेचे उदक गंगे जैसें । अर्पिजे देवपितरोदेशें ।
 माझे मज देति तैसें । परी आनानी भावीं ॥ ४९ ॥
 हाणौनि ते पार्था । मातें न पवती चि सर्वथा ।
 मग मनीं जे वाहिली आस्था । तेथ आले ॥ ३५० ॥

यांति देवव्रता देवान् पितृन्यांति पितृव्रताः ।

भूतानि यांति भूतेज्या यांति मद्याजिनोऽपि माम् ॥२५॥

मनें वाचा करणीं । जेयांचीं भजनें देवांचिया वाहाणी ।
 ते शरीर जांत क्षणीं । देव चि जाले ॥ ५१ ॥
 अथवा पितरांचीं हान व्रतें । वाहांति जेयांचीं चित्तें ।
 जीवित सरतां तेयांतें । पितृत्व चि वरि ॥ ५२ ॥
 कां क्षुद्र देवतादि भूतें । तियें चि जेयांचीं परमदेवतें ।
 जिहिं अभिचारुकिं तेयांतें । उपासिलें ॥ ५३ ॥
 तेया देहाची जवनीक फीटली । आणि भूतत्वाची प्राप्ति जाली ।
 एवं संकल्पवशें फललीं । कमें तेयां ॥ ५४ ॥
 मग मीं चि डोलां देखिलां । जिहिं कानिं मीं चि आइकिलां ।
 मनीं मीं भाविलां । वानिलां वाचा ॥ ५५ ॥
 सर्वांगें सर्वे ठांड । नमस्कारिलां मीं चि जिहीं ।
 दानपुण्यादि जें काहीं । तें माशिया मोहरा ॥ ५६ ॥
 जिहिं मातें अध्ययन केलें । जे आंतु बाहिरि मियां जि धाले ।
 जेयांतें जीवित जोडलें । मज चि लागि ॥ ५७ ॥
 जे अहंकार वाहांत आंगीं । आह्नि हरिचे हें भूषावेया लागि ।
 जे लोभिण्ये एक चि जर्गीं । माझेनि लोभें ॥ ५८ ॥
 जे माझेनि कामें सकाम । जे माझेनि प्रेमें सप्रेम ।
 जे माझिये भूली सभ्रम । नेणति लोकु ॥ ५९ ॥

जेयांचीं मातें चि जाणति शास्त्रें । मी जोडें जेयाचेनि मंत्रें ।
 ऐसेनि चेष्टामात्रें । भजले मज ॥ ६० ॥
 ते मरणा ऐलीकडे । मज मीलौनि गेले फुडे ।
 मग मरणीं आनीकडे । जांतील केवि ॥ ६१ ॥
 ह्यणौनि मद्याजी जाले । ते सायुज्या माझेया आले ।
 जिहीं उपचारामिसें दीधलें । आपणपें मज ॥ ६२ ॥
 पै अर्जुना माझां ठांड । आपणपेंनि विण सौरसु नाही ।
 मी उपचारीं कव्हणी हीं । ना कलें गा ॥ ६३ ॥
 एथ जाणीव करी तें चि नेणे । आधिलेपण मिरवी तें चि उणें ।
 आहीं जालें ऐसें ह्यणे । तें कहीं चि नोहे ॥ ६४ ॥
 अथवा यज्ञदानादि किरीटी । कां तपें हान जें हुटहुटी ।
 तें तृणा एका साठीं । न सरे एथ ॥ ६५ ॥
 पाहे पां जाणिवेचेनि बलें । कोण्हीं वेदापासूनि असे आगलें ।
 किं शेषाहूनि तोंडागलें । बोलिकें आथि ६६ ॥
 तो ही आंधुरणा खालि दडे । येरु नेति ह्यणौनि बाहुडे ।
 एथ सनकादिक वेडे । पिसे जाले ॥ ६७ ॥
 कारितां तापसांसि कडेसणीं । कवणु जवला ठेविजैल शूलपाणी ।
 तो ही अभिमानु सांडूनि पायेवणी । माथां वाहे ॥ ६८ ॥
 नां तारि आधिलेपणें सरिसी । कोण्हीं आहे लक्ष्मियां ऐसी ।
 श्रिये सारिखिया दासी । घरीं जियेतें ॥ ६९ ॥
 तिया खेळतां कारिति घरकुलीं ।
 तेया नावें अमरपुरें जरि ठेविलीं ।
 तारि नव्हों नैयति बाउलीं ।
 इंद्र तियांचें ॥ ३७० ॥
 जे नावडौनि जेव्हां मोडिति । तेव्हां महेंद्राचे ही रंक होंति ।
 तियां झाडा एउतें जेयां पाहांति । ते कल्पवृक्ष ॥ ७१ ॥

ऐसीं जियेचिया जवळिका । सदर्थें घारिचेयां पाडकां ।
 ते लक्ष्मी मुख्य नायका । नमने चि एथ ॥ ७२ ॥
 मग सर्वस्वें करी सेवा । मानु सांडूनि पांडवा ।
 ते पाये धुआवेयाचेया दैवां । पात्र जाली ॥ ७३ ॥
 ह्यर्णानि थोरपण पन्हां सांडिजे ।
 एथ विपत्ति अवधी चि विसरिजे ।
 जें जगा धाकुटेयां होइजे ।
 तें जवलीक माझी ॥ ७४ ॥
 अगा सहस्रकराचिये दीठी । पुढां चंद्रु ही लोपे किरिटी ।
 तेथ खयोतु कां हुटहुटी । आपुलेनि तेजें ॥ ७५ ॥
 तैसें लक्ष्मीयेचें थोरपण सरे । जेथ शंभूचें हीं तप नुपकरे ।
 तेथ येर प्राकृत हेंदारें । जाउं काइ लाहे ॥ ७६ ॥
 एया लागि शरीर—सांडोवा कीजे ।
 सकल गुणांचे लोण उतरिजे ।
 संपत्तिमदु सांडिजे ।
 कुरींठी करूनि ॥ ७७ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमश्रामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

मग निःसीमु भाउ उल्हासें । मज अर्पावेयाचेनि मीसें ।
 फल एक आवडे तैसें । भले तेयाचें ॥ ७८ ॥
 मग भक्तु माझेयाकडे अलुमालु दाखवी ।
 आणि मीं दोन्हीं हात उडवीं ।
 मग देतु न संडितां सेवीं ।
 आदरेंसीं ॥ ७९ ॥
 पैं गा भक्तीचेनि नावें । फूल मज येक देयावें ।
 तें लेखें तरि मियां तुरुवावें । परि मुखीं चि घालीं ॥ ३८० ॥

हैं असो काइसीं फुलें । पान चि एक आवडतें जालें ।
 तें साजुक ही न्हवे सूकलें । भले तैसें ॥ ८१ ॥
 परि सर्व भावें भरलें देखें । आणि भूकैला ऐसा अमृतें तोजे ।
 तें पत्र चि परि तेंणें सुखें । आरोगुं लागें ॥ ८२ ॥
 अथवा ऐसैं हीं एक घडे । जें पाला ही पारि न जोडे ।
 तारि उदकाचें सांकडें । नन्हैल कीं ॥ ८३ ॥
 तें भले तेथ निमोलें । न जोडितां असे जोडलें ।
 तें चि सर्वस्व करूनि अर्पिलें । जेणें मज ॥ ८४ ॥
 तेंणें वैकुंठापासौनि विशालें । मज लागि केलीं राउलें ।
 कौस्तुभाहूनि निर्मलें । लेणीं दीधलीं ॥ ८५ ॥
 दूधाचीं सेजारे । क्षीराब्धी ऐसीं मनोहरें ।
 मज लागि अपारें । स्रजिलीं तेंणें । ८६ ॥
 कर्पूरु चंदनु अगरु । ऐसेया सुगंधांचा मनोहरु ।
 मज हातीं लाविला दिनकरु । दीपमाले ॥ ८७ ॥
 गरुडा सारिखीं वाहनें । सुरतरुचीं उद्यानें ।
 कामधेनूचीं गोधनें । अर्पिलीं तेंणें ॥ ८८ ॥
 मज अमृताहूनि सुरसें । ब्रोनीं वोगरिळीं बहुवसें ।
 ऐसा भक्ताचेनि उदकलेशें । परितोषें गा ॥ ८९ ॥
 हें सांधावें काइ किरिटी । तुहीं देखिलें आपुलिया' दीठी ।
 मीं सुदामेयांचिया सोडीं गांठी । पट्टवेयां लागि ॥ ३९० ॥
 पै गा भक्ति एकि मीं जाणें । तेथ सानें थोर न हणें ।
 आह्मीं भावांचे पाट्टणे । भलेतेया ॥ ९१ ॥
 एर पत्र पुष्प फल । तें भजावेया मीस केवल ।
 आमचा लागु निखल । भक्तितत्व ॥ ९२ ॥

यत्करोषि यद्भ्रासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कांतेय तत्कुदृष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥

ह्यणौनि अर्जुना अवधारीं । तूं बुद्धि एकि सोपारी ।
 तरि साहाजे आपुलां मंदिरीं । अवसरोचित ॥ ९३ ॥
 जे जे काहीं व्यापार करिसी । कां भोग हान जे भोगिसि ।
 अथवा यज्ञीं यजिसी । नाना विधीं ॥ ९४ ॥
 ना तरि पात्रविशेषे दानें । कां सेवकांसि जीवणें ।
 तपादि साधनें । व्रतें करिसी ॥ ९५ ॥
 तें क्रियाजात आघवें । जें जैसें निफजैल स्वभावें ।
 तें भावना करुनि करावें । माझेया मोहरा ॥ ९६ ॥
 पारि सर्वथा आपुलां जिंवीं । केलेयाची से काहीं नुरावी ।
 ऐसीं धूनि कर्म देयावीं । माझां हातीं ॥ ९७ ॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबंधनैः ।

संन्यासयोगमुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८ ॥

मग अप्रिकुंडीं बीजे घातलीं । तियें अंकुरदशे जेवि मूकलीं ।
 तेवि न फलती चि मज अर्पिलीं । शुभाशुभें ॥ ९८ ॥
 आगा कर्मिं जें उरावें । तें तिहीं सुखदुःखीं फलावें ।
 आणि तेयातें भोगावेया यावें । देहा एका ॥ ९९ ॥
 तें उगणिलें मज कर्म । तेव्हां चि वूसलें जन्म ।
 जन्मासवें श्रम । वरिचिल ही गेले ॥ १०० ॥
 ह्यणौनि अर्जुना एया परीं । पाहिचा वेलु नव्हैल भारी ।
 हे सन्यासयुक्ति सोपारी । दीधली तुज ॥ १ ॥
 ऐया देहाचिये बांधवडी न पाडिजे ।
 सुखदुःखाचां सागरीं न बुडिजे ।
 सुखें मुखरूपां घडिजे ।
 माझेया चि आंगा ॥ २ ॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ २९ ॥

तो मीं घूससी कैसा । तारि जो सर्वभूतीं कां सरिसा ।
 जेथ आप परु ऐसा । विभागु नाहीं ॥ ३ ॥
 जें एया मातें जाणौनि । अहंकाराचा कुरुठा मोडूनि ।
 जीवें कर्म करूनि । भजत मातें ॥ ४ ॥
 ते वर्त्तत ही असति देहीं । परि देहीं ना ते माझां ठाई ।
 आणि मीं तेयांचां हृदयीं । समग्रु असें ॥ ५ ॥
 सविस्तर वटत्व जैसें । बीज कणिके माझि असे ।
 आणि बीजकणु वसे । वटीं जेवि ॥ ६ ॥
 तेवि आह्वा तेयां परस्परें । बाहीरि नावांची चि अंतरें ।
 वांचूनि आंतुवटे वस्तुविचारें । मीं ते चि ते ॥ ७ ॥
 आतां जाइयांचें जैसें लेणें । आंगावारि आहाच वाणें ।
 तैसें देहधरणें । उदास तेयांचें ॥ ८ ॥
 परिमलु निगालेयां पवनापाठीं । मागां उ०स फूल देंटीं ।
 तैसें आयुष्याचिये मुठी । केवल देह ॥ ९ ॥
 एरु अवष्टंभु जो आघवा । तो आरूढौनि मद्गावा ।
 मज चि आंतु पांडवा । पैठा जाला ॥ ४१० ॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३० ॥

ऐसेनि भजतेनि प्रेमभावे । जेया शरीर ही पाठि न पवे ।
 तेणें भलेतिये होआवें । जातिचेयां ॥ ११ ॥
 आणि आचरण पांतां सूभटा । तो दुष्कृतांचा चि कीरु सेलवांटा ।
 परि जीवित वेचिलें चौहटां । भक्तिचां किं ॥ १२ ॥
 आगा अंतिचीया मती । साचपण पुढिली गती ।
 ह्यणौनि जीवित जेणें भक्ती । दीन्हलें शेपीं १३ ॥
 तो आदीं जन्हीं अनाचारी । तन्हीं सर्वोत्तमू चि अवधारीं ।
 जैसा बुडाला महापुरीं । नमरु निगाला ॥ १४ ॥

तेयांचें जीवित ऐली थडिये आलें ।
 ह्यणौनि बुडालेंपण वायां जेवि गेलें ।
 तेवि नुरे चि पाप केलें ।
 सेवटिचिये भक्ती ॥ १५ ॥
 एया लागि दुष्कृती जन्हीं जाला । तन्हीं अनुतापतीर्थी न्हाला ।
 न्हाउनियां मज आंतु आला । सर्वभावें ॥ १६ ॥
 तारि आतां पवित्र तेयाचें कुल । अभिजात्य तें चि निर्मल ।
 जन्मलेयाचें फल । तेयाचेया चि जालें ॥ १७ ॥
 तो चि सकल पढिनला । तपें तो चि तपिनला ।
 अष्टांगु अभ्यासिला । योगु तेणें ॥ १८ ॥
 हें बहुत असो पार्था । तो उतरला कर्में सर्वथा ।
 जेयाची अखंड आस्था । मज चि लागि ॥ १९ ॥
 अवघेया चि मनोबुद्धिचिया राहाटी ।
 भरौनि एकनिष्ठतेची पेटी ।
 मज माझि किरीटी ।
 निक्षेपिली जेणें ॥ ४२० ॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति ।
 कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

तो आतां अवसरें मजसारिखा होईल ।
 ऐसा हान भाउ तूज जाईल ।
 हां गा अमृतांतु राहिल ।
 मरण केवि ॥ २१ ॥
 पै सूर्यु जो वेळु नुदैजे ।
 तेया वेला चि नावं रात्रि किं ह्यणिजे ।
 तेवि माझेये भक्तीविण कीजे ।
 तें महापाप न्हेवे ॥ २२ ॥

ह्यौनि तेयाचेया चित्ता । माझी जवलीक जाली पांडुसुता ।
 तेव्हां चि तो तत्वता । माझे रूप ॥ २३ ॥
 जैसा दीपें दीपु लाविजे । तेथ चि आदिल्लु कोणु हें नेणजे ।
 तैसा सर्वस्वें मज भजे । तो मीं चि होउनि ठाके ॥ २४ ॥
 मग माझी नित्य शांति । तेया ते दशा ते चि कांति ।
 किंबहुना माझे जीति । माझेनि जीवें ॥ २५ ॥
 एथ पार्था पुडुतीं पुडुतीं । तें चि तें सांघों केती ।
 तन्हीं मियां चाड तारि भक्ती । नविसंभिजे ॥ २६ ॥
 आगा कुलाचेया चोखटपणा नलगा ।
 आभिजात्यें ज्ञनें श्लाघा ।
 व्युत्पत्तीचा ही वाउगा ।
 सोसु कां वाहा ॥ २७ ॥
 कां रूपें वयसा माजा । आथिलेपणें काह्या गाजा ।
 एकु भाउ^३ नाहिं माझा । तारि पालाल तें ॥ २८ ॥
 कणें विण सोपटें । कणिसें लागलीं आथि एक दाटें ।
 काइ कराल गोमटें । वोस नगर ॥ २९ ॥
 नां तारि सरोवर आटलें । रानीं दुःखिया दुःखियें भेटलें ।
 कां वांझां फूलें फूललें । झाड जैसें ॥ ४३० ॥
 तैसें सकल तें विभव । अथवा कुलज्ञानगौरव ।
 जैसें शरीर आहे साव्यव । परि सीस चि नाहिं ॥ ३१ ॥
 तैसें माझेया भक्तीविण । जले तें जियालेपण ।
 आगा पृथ्वीवारि पाखाण । नसति काइ ॥ ३२ ॥
 पैं हीं वरांची दाट साउली । सजनीं जैसी वालिली ।
 तैसिं पुण्यें डावदुनि गेलीं । अभक्तांतें ॥ ३३ ॥
 नींबु नींबोलीं मोडौनि आला । तारि काउलेयांसि सुकाळु जाला ।
 तैसा भक्तिहीनु बाढिनळा । दोषां चि लागि ॥ ३४ ॥

कां खंडरसीं खापरीं वाडिलें । वाटूनि राति चौहटां सांडिलें ।
 तेथ सुणेयांचां ऐसें जालें । जेया परीं ॥ ३५ ॥
 तैसें भक्तिहीनाचें जीणें । कां संपत्ति ही न सुकृत जाणणें ।
 तें सवंसारदुःखासि अवंतणें । उग्नरिलें गा ॥ ३६ ॥
 ह्यगौनि कुल उत्तम नोहावें । जाती अंत्यां हीं होआवें ।
 वारि देहाचेनि नावें । पशु ही लाभो ॥ ३७ ॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिम् ॥३२॥

पाहें पां सावजें हातिरुं धरिलें ।

तेणें तिया काकुळती मातें स्मरिलें ।

किं तियाचें पशुत्व वावो जालें ।

पातलें मातें ॥ ३८ ॥

आगा नावं घेतां ओखटी । जे आवविया अधमाचां सेवटी ।

तिये पापयोनीं हीं किरीटी । जन्मले जे ॥ ३९ ॥

ते पापयोनि मूढ । मूर्ख जैसे दगड ।

परि माझां ठांडं दृढ । सर्वभावें ॥ ४० ॥

जेयांचिये वाचे माझे आलाप । दीठि भोगी माझे चि रूप ।

जेयांचें मनसंकल्प । माझे चि वाहे ॥ ४१ ॥

माझेया कीर्त्तविण । जेयांचे रीते नाहीं श्रवण ।

जेयां सर्वांगा भूषण । माझी सेवा ॥ ४२ ॥

जेयांचें ज्ञान विप्रो नेणे । जाणिव्वा मज चि एकातें जाणे ।

जेयांसि ऐसें लाभें तरि जीणें । यन्हविं मरण ॥४३ ॥

ऐसां आववां चि परीं पांडवा । जिहिं आपुळेयां सर्वभावां ।

जियावेया लागि ओलावा । मां चि केला । ४४ ॥

ते पापयोनी हीं होंतु कां । ते श्रुताधीत न्हवतु कां ।

परि मासिं तूंकितां तूका । तूटि नाहिं ॥ ४५ ॥

पाहे पां भक्तिचिनि आधिलेपणें । दैत्यें देवां आणिलें उणें ।
 माझे नृसिंहत्व लेणें । जेयाचिये महिमे ॥ ४६ ॥
 तो प्रन्हादु गा मजसाठीं । घेंतां वौहें सदा किराटी ।
 कां जें मियां देयावें तें गोठी । तेयाचिया जोडे ॥ ४७ ॥
 येन्हां दि दैत्यकुल साचोकारें । परि इंद्रु ही सारि न लाहे उपरें ।
 ह्यर्णानि भक्ति गा एथ सरें । जाति अप्रमाण ॥ ४८ ॥
 राजाज्ञेचीं अक्षरें आथि । तियें चर्मा एका जेया पडति ।
 तेया चर्मा साठीं जोडति । सकला ही वस्तू ॥ ४९ ॥
 वांचूनि सोनें रूपें प्रमाण नोहे । एथ राजाज्ञा समर्थ आहे ।
 तें चर्म चि एक जें लाहे । तेणें वीकेति आघवीं ॥ ४५० ॥
 तैसें उक्तमत्व तें तरे । तें चि सर्वज्ञता सरें ।
 जें मनोबुद्धि भरे । माझेनि प्रेमें ॥ ५१ ॥
 ह्यर्णानि कुलें जाती वर्ण । हे आवघें चि गा अकारण ।
 एथ अर्जुना माझेपण । सार्थक एक ॥ ५२ ॥
 तें चि भलेतेणें भावें । मना मज आंतु एणें होआवें ।
 आले तारि आवघें । मागील तें वाओ ॥ ५३ ॥
 तैसें तवं चि वाहला वोहल । जवं न पवति गंगाजल ।
 मग होउनि टाकति केवल । गंगारूप ॥ ५४ ॥
 कां खरचंदन काष्ठें । हे विवंचना तवं चि घटे ।
 जवं नेवपति येकावटें । अग्नी माझि ॥ ५५ ॥
 तैसें क्षत्री वैश्य स्त्रिया । कां शूद्र अंत्यादि इया ।
 जाती तवं चि वेगलालिया । जवं न भजति मातें ५६ ॥
 मग जाती व्यक्ती पडे विंदुलें । जेव्हां भाव होंति मज मीनले ।
 जैसे लवणकण घातलें । सागरावरि ॥ ५७ ॥
 तवं चि नदानदीचीं नावें । तवं चि पूर्वपार्थिमें तेयां धावे ।
 जवं नैयति आवघे । समुद्रापारि ॥ ५८ ॥

हे चि कव्हणें येकें मिसें । चित्त माझां ठांड प्रवेशे ।
 एतुलें हो मग आपसें । मी होणें असें ॥ ५९ ॥
 आगा वर फोडावेया चि लागि ।
 लोह मीलो कां परिसाचां आंगीं ।
 कां जें मिलैल इये प्रसंगीं ।
 सोनें होईल ॥ ४६० ॥
 पाहे पां बालभाचेनि व्याजें । तियां वज्रांगनाचिं नीजें ।
 मज मीनलेयां काइ माझें । स्वरूप नो होंती चि ॥६१ ॥
 ना तारि भियाचेनि मीसें । मातें न पविजे चि काइ कसें ।
 किं अखंडें वैरावेशें । चैद्यादिकिं ॥ ६२ ॥
 आगा सोइरेपणें चि पांडवा । माझें सायुज्य एयां यादवां ।
 पै ममत्वें वसुदेवा— । दिकां सकलां ॥ ६३ ॥
 नारदा ध्रुवा अक्रूरा । शुका हान सनत्कुमारा ।
 एयां भक्ती मी धनुर्द्वरा । प्राप्यु जैसा ॥ ६४ ॥
 तैसा चि गोपीसीं सकामें । तेया कंसा भयसंभ्रमें ।
 एरां घातकें मनोधमें । शिशुपालां ॥ ६५ ॥
 आगा मी एकु लाणिचें खागें । मज एउ० ये भलेतेणें मार्गें ।
 भक्ती कां विषयवैरागें । अथवा वैरें ॥ ६६ ॥
 ह्यणौनि पाई । प्रवेशावेया माझां ठांड ।
 उपायांची नाहिं । केणि एथें ॥ ६७ ॥
 आणि भलेतिये जाती जन्मावें । मग भजिजे अथवा विरोधावें ।
 परि भक्तां कां वैरियां होआवें । माझेयां चि ॥ ६८ ॥
 आगा कव्हणें येकें बोलें । माझेपण जरि जालें ।
 तरि मीं होणें आलें । हाता निरुतें ॥ ६९ ॥
 एया लागि पापयेनी अर्जुना । कां वैश्य शुद्र अंगना ।
 येणें मातें भजतां सद्ना । माझेयां येति ॥ ७० ॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यममुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३३ ॥

मग वर्णां माझि छत्रचामर । स्वर्गु जेयाचें अप्रहार ।
मंतविद्येसि माखेर । ब्राह्मण जे ॥ ७१ ॥
जे पृथ्वीतल्लिचे देव । जे तपावतार सावयव ।
सकल तीर्थासि दैव । उदैलें जे ॥ ७२ ॥
जेथ अखंड वसिजे यागिं । वेदांची जे वज्रांगी ।
जेयांचिये दीटिचां उत्संगीं । मंगल वाढे ॥ ७३ ॥
जेयांचिये आस्थेचेनि बोलें । सत्कर्म पाहालिं गेलें ।
संकल्पें सत्य जियालें । जेयांचेनि ॥ ७४ ॥
जेयांचेनि गा बोलें । आगिसि आयुष्य जालें ।
हणौनि समुद्रें पाणी आपुलें । दीघलें प्रीती ॥ ७५ ॥
मियां लक्ष्मी हीं केली परौति ।
फेड्ढनि कौस्तुभु घेतला हातीं ।
मग बोडवली वक्षस्थलाची वाखती ।
चरणरजा जेयाचेया ॥ ७६ ॥
आझूं पाउलांची मुद्रा । मीं उरीं वाहें जे मुभद्रा ।
आपुलेया दैव समुद्रा । जतने लागि ॥ ७७ ॥
जेयांचा कोपु सूभटा । कालाग्निरुद्राचा वसैठा ।
जेयांचां प्रसादीं फ्रुकटा । जोडति सिद्धी ॥ ७८ ॥
ऐसे पुण्यपुंज ब्राह्मण । आणि माझां ठाईं अतिनिषण्ण ।
आतां मातें पावति कवण । समर्थणें ॥ ७९ ॥
पाहे पां चंदनाचेनि अंगानीलें । सीतलें निव्र होंते जे जवले ।
तिहिं निजीवीं हीं देवांचिं निडलें । बैसणीं केलीं ॥ ४८० ॥
मग तो चंदनु तेथ न पवे । एसें मनीं चि कैसेनि धरावें ।
अथवा पातला हें समर्थविं । तेव्हां काइ साच्च ॥ ८१ ॥

तेथ निववील ऐसिया आशा । हरे चंद्रमा आधा ऐसा ।
 वाहिजत असे शिरसा । निरंतर ॥ ८२ ॥
 तेथ निवविता आणि सगला । परिमलें चंद्राहूनि आगला ।
 तो चंदनु काइ स्वलीला । सर्वांगिं न बैसे ॥ ८३ ॥
 कां रथ्योदकें जिये जिये कासे ।
 लागलेयां समुद्रु जालीं अनायासें ।
 तियें गंगेसि काहीं अनारिसें ।
 गत्यंतर असे ॥ ८४ ॥
 ह्यगौनि राजर्षी हान ब्राह्मण । जेयां गती मती मीं चि शरण ।
 तेयां त्रिशुद्धी मीं चि निर्वाण । स्थिति ही मीं ॥ ८५ ॥
 एया लागि शतजर्जरे नावे । रिगौनि निश्चंता होआवें ।
 कैसेनि उबडलेयां असावें । शस्त्रवर्षि ॥ ८६ ॥
 आगा वरिपडतां पापाण । न सुवावें केवि ओडण ।
 रोगिं दाटिला आणि उदासपण । उषधेंसीं ॥ ८७ ॥
 जेथ चहूंकडे जलतसे वणवा ।
 तेथौनि कैसेनि न निगिजे पांडवा ।
 नेवि लोका एउनि एया सोपद्रवा ।
 केविं न भजिजे मातें ॥ ८८ ॥
 आगा मातें न भजावेया लागि । कवण बल पां आपुले आंगिं ।
 काइ वरि किं भोगिं । निश्चंत केलें ॥ ८९ ॥
 ना तारि विद्या किं वयसा । एया प्राणियांसि हा ऐसा ।
 मज न मजतां भवसा । सुखाचा जाला ॥ ९० ॥
 तारि भोग्यजात जितुलें । तें एकाचि देहाचेया नीके लागलें ।
 आणि एथ देह तव असे पडिलें । कालाचां तोंडीं ॥ ९१ ॥
 वापा दुःखाचें केणें सूटलें । जेथ मरणांचें भरें लोटलें ।
 तिये मृत्युलोकाचिये असे घडलें । हाटवेले एणें ॥ ९२ ॥

आतां मुखेंसि जीविता । कैसी प्राहकै कीजैल पांडुमुता ।

काइ राखोंडिया फूंकितां । दीपु लागे ॥ ९३ ॥

आगा विपाचे कांदे वाटूनि । गोरमु घेइजे पीडूनि ।

तेया नावं अमृत ठेउनि । जैसे अमरां होणें ॥ ९४ ॥

कां सीस खांडूनि आपुलें । पायांचां खतीं बांधलें ।

तैसें मृत्युलोकिकें भलें । आहे आघवें ॥ ९५ ॥

ह्यणौनि मृत्युलोकिकि मुखाची काहाणी ।

आइकैजैल कवणाचां श्रवणीं ।

कैची मुखनिद्रा आंधुरणीं ।

इंगलांचां ॥ ९६ ॥

जिये लोकिका चंद्रु क्षयरोगी ।

जेथ उदो होये अस्तवावेया चि लागि ।

दुःख छेउनि मुखाची आंगी ।

सलित जगातें ॥ ९७ ॥

जेथ मंगलाचां अंकुरीं । सवें चि अमंगलांची आहे पोहोरी ।

मृत्यु उदयाचां परिवरीं । गर्भ गिवसी ॥ ९८ ॥

जातें नाहिं तेयाचें चिंतवी । तव तें चि नेइजे गंधर्वीं ।

गेलेयाची कन्हणी गावीं । शुद्धि न लभे ॥ ९९ ॥

आगा गिवसितां आघवां वाटीं ।

परतलें पाउल चि नाहिं किरीटी ।

सैद्य निमालेयांचिया गोठी ।

तियें पुराणें जेथिचीं ॥ ५०० ॥

जेथिचिये अनित्यतेची धोरो । करितेया ब्रह्मेयाचें आयुष्यवेन्हीं ।

कैसें होणें नाहिं अवधारीं । निपटूनियां ॥ १ ॥

ऐसी लोकिका इये नांदणुक । तेथ जन्मले आहाति जे लोक ।

तेयांचिये निश्चर्तयेचे कें कवतिक । दीमतसे ॥ २ ॥

पैं दृष्टादृष्टिचिये जोडी । भांडवला न सुटे कवडी ।
 जेथ सर्वस्वें हाणि तेथ कोडी । वेचितील ॥ ३ ॥
 जो बहू इयें विषयविलासीं गूंपे ।
 तो ह्मणे उवाईं पडिलां सांपें ।
 जो अभिलाषाभारें दडपे ।
 तेयातें सज्ञानु ह्मणति ॥ ४ ॥
 जेयाचें आयुष्य धाकुटें होए । बल प्रज्ञा जिरौनि जाए ।
 तेयाचे नमस्कारजति पाए । वडील ह्मणौनि ॥ ५ ॥
 जवं जवं श्वान बलिया वाढे । तवं तवं भोजें नाचति कोडें ।
 आयुष्य निमालें आंतुलीकडे । ते ग्लानि नाहिं ॥ ६ ॥
 जन्मलेया दिहें दिवसें । हों लागे कालाचेया ऐसें ।
 किं वाढतीं कारिति उल्हासें । उभिति गुढिया ॥ ७ ॥
 भगा मर हा बोलु न सांहांति । आणि मेलेयां तरि रडति ।
 पारि असतें जींत न गणिति । गैसासै पैं ॥ ८ ॥
 दर्दुरु सापें गील्लिजतु उभा । तो मासिया वेंटाली जीभा ।
 तैसे प्राणिये कवणा लोभा । वाढविति तृष्णा ॥ ९ ॥
 आहा कटा उखटें । हें मृत्युलोकिकें उपराटें ।
 एथ अर्जुना जन्हें अवचटें । जन्मलासि ॥ ५१० ॥
 तन्हें झडझडौनि वहिला निग । इये भक्तीचिये वाटे लाग ।
 जीया पावसी अव्यंग । निजद्वाम माझें ॥ ११ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुह ।

मामेवैष्यासि युक्तस्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४ ॥

तूं मन हें मां चि करीं । माझां भजनीं प्रेम धरीं ।
 सर्वत्र नमस्करिं । मज एकातें ॥ १२ ॥
 माझेनि अनुसंधानें देख । संकल्प जालणें अशेख ।
 मद्याजी ह्मणिये चोख । तें यया नाव ॥ १३ ॥

ऐसा मियां आथिला होंसी । तेथ माझिया चि स्वरूपा येंसी ।
 हें अंतष्कराणिचें तुसीं । बोलिजत असे ॥ १४ ॥
 आगा आघवेया चोरिया आपुलें ।
 जें सर्वस्व आलि असे ठेविलें ।
 तें पावौनि मुख सांचलें ।
 होउनि ठांसी ॥ १५ ॥
 ऐसेनि सावलेनि परब्रह्म । तेणें भक्तकामकल्पद्रुमें ।
 बोलिलें आत्मारामें । संजयो ह्मणे ॥ १६ ॥
 अहो आइकत असा अवधारा ।
 तव एया बोला निवातु ह्मांतारा ।
 जैसी हेंसी नुठी कां पुरा ।
 तैसा उगळा चि असे ॥ १७ ॥
 तेथें संजयें माथा तूकिला । आहा अमृताचा पाउमु वरिषला ।
 हा एथ चि असतु गेला । सेजेया गावां ॥ १८ ॥
 तहें दातारु हा आमचा । ह्मणौनि ऐसें बोलतां मेल्ले वाचा ।
 काइ जालें एयाचा । भोगू चि ऐसा ॥ १९ ॥
 परि बापु भाग्य माझे । जें वृत्त सांघावेयाचेनि व्याजें ।
 कैसा रक्षिला मुनिराजें । व्यासदेवें ॥ ५२० ॥
 एतुलें हें वाडें सायासें । जव बोलतसे दृढें मानसें ।
 तव न धरे चि आपुलेया ऐसें । सात्विकि केलें ॥ २१ ॥
 चित्त बावटेळें आठौ घेंत । वाचा पांगुलैली जेथिची तेथ ।
 आपादकंचुकित । रोमांचीं जालें ॥ २२ ॥
 अघोन्मौलित डोले । वरिषताति आनंदजलें ।
 आंतुला सुखोर्माचेनि बळें । बाहिरि कांपे ॥ २३ ॥
 पें आघवां चि रोममूर्ती । आळां स्वेदकर्णीं निर्मळीं ।
 लेइया मोतियांची कडियाली । आवडे तैसा ॥ २४ ॥

ऐसा महासुखाचेनि अतिरसें । जेथ आटणी होईल जीवदसें ।
 तेथ निरोविलें व्यासें । तें नेंदी चि हों ॥ २५ ॥
 आणि कृष्णार्जुनांचें बोलणें । घोकारि आलें श्रवणें ।
 किं देहस्मृतिचा तेणें । वापसा केला ॥ २६ ॥
 तेव्हां नेत्रिचें जल विसर्जी । मग सर्वांगिचा स्वेदु परिमार्जी ।
 तेवि च ह्मणे अवधारा हो जा । धृतराष्ट्रातें ॥ २७ ॥
 आतां कृष्णवाक्यत्रीजा निवाडु । आणि संजयो सात्विकाचा विवडु ।
 ह्मणौनि सवयां चि होइल सुरवाडु । प्रमेयपिकाचा ॥ २८ ॥
 अहो अलुमालु अवधान देआवें । इतुलेनि आनंदरासिर्वार बैसावें ।
 बापु श्रवणेंद्रियांचेनि दैवें । घातली माल ॥ २९ ॥
 ह्मणौनि विभूतिचा ठाओ । अर्जुना दावील सिद्धांचा राओ ।
 तो आइकां ह्मणे ज्ञानदेउ ॥ निवृत्तिचा ॥ ५३० ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां

योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्यावर्णनं

नाम नवमोऽध्यायः ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



ज्ञानेश्वरी

अध्याय दहावा

ॐ नमो भगवते गणेशाय ॥

ॐ नमो विशदबोधविदग्धा । विद्यारविंदप्रबोधा ।
परापरमप्रमदा । विलासिया ॥ १ ॥

नमो संसारतमसूर्या । अप्रमिता परमवीर्या ।
तरुणतमतूर्या । ललनलीला ॥ २ ॥

नमो जगदखीलपालणा । मंगलमर्णानिधाना ।
सज्जनवनचंदना । आराध्यलिंगा ॥ ३ ॥

नमो चतुरचकोरचंद्रा । स्वानुभावनरेन्द्रा ।
श्रुतिसागरसमुद्रा । मन्मथमन्मथा ॥ ४ ॥

नमो सुभावभजनभाजना । भवेभकुंभभंजना ।
विश्वोद्भवभुवना । गुरुराया ॥ ५ ॥

तुमचा अनुग्रहो गणेशु । जैसा आपुला दे सौरसु ।
तैं सारस्वतीं प्रवेशु । बालका आथि ॥ ६ ॥

जी दैविकी उदारा वाचा । जैं राजादेशु दे नाभिकाराचा ।
तारि नवरसदीधिचा । पाउडु लाभे ॥ ७ ॥

आपुलें स्नेह ते चि वागीश्वरी । जेया मुकेयातें अंगिकरी ।
तो वाचस्पतितीं करी । प्रवंचहोडा ॥ ८ ॥

हे असो दीठि जेयावारि झलके । हा पन्नकर जिये माथां पारुखे ।
 तो जीउ चि पारि तूके । महेशैसीं ॥ ९ ॥
 एवडें जिये महिमेचें करणें । तें वाचाबलें वानावें कवणें ।
 काइ सूर्याचेया आंगा उठणें । लागतसे ॥ १० ॥
 केउता कल्पतरूवारि फुल्लैरा । काइसेनि पाहुणोरु क्षीरसागरा ।
 कवणें इछावें कापुरा । वासु देउं ॥ ११ ॥
 चंदनातें काइसेनि चर्चावें । अमृत केंउतें रांधावें ।
 गगनावारि उभावें । घडे केवि ॥ १२ ॥
 तैसें श्रीगुरुचें महिमान । अकलतें कें असे साधन ।
 हें जाणौनियां नमन । निवांतां चि केलें ॥ १३ ॥
 तन्हें प्रज्ञेचेनि आथिलेपणें । गुरुसामर्थ्या रूप करु हणें ।
 तारि मोतियां भिंग देणें । तैसें होइल ॥ १४ ॥
 आतां असतु इयें बोलणीं । साडपंधरेया आणि कसवटणी ।
 उगेयां चि माथा ठेविजे चरणीं । हें चि भले ॥ १५ ॥
 मग ह्यणितलें स्वामीं । भलेनि ममत्वे देखिलां तुहीं ।
 ह्यणौनि कृष्णार्जुनसंगमीं । प्रयागवटु जालां ॥ १६ ॥
 दूध मागितलेया साटीं । उपमन्यूपुढां धूर्जटी ।
 क्षीरसागराची चि वाटी । करुनि ठेविली ॥ १७ ॥
 ना तरि वैकुण्ठपीठनायके । रुसला ध्रुव कवतिकें ।
 बुझाविला देउनि भातुकें । ध्रुवपदाचें ॥ १८ ॥
 तैसी जो ब्रह्मविद्यां राउं । जो सकलशास्त्रां विसंवता ठाओ ।
 ते भगवद्गीता वोविं गाउं । ऐसें केलें ॥ १९ ॥
 जें बोलणेयांचां रानीं हींडतां । नाइकिजे फललेया अक्षराची वार्त्ता ।
 ते वाचा केली कल्पलता । विवेकावारि ॥ २० ॥
 होंती देहबुद्धि एकसरी । आनंदभांडारा केली वोवरी ।
 मन गीतार्थसागरीं । जलशयनु जालें ॥ २१ ॥

आतां आपुलेन प्रसादें । भगवद्गीता वोर्वीप्रबंधें ।
 पूर्वकांड विनोदें । वाखाणिलें ॥ २२ ॥
 प्रथमिं अर्जुनाचा विषादु । दूजा ह्यणितला योग विशदु ।
 जें सांख्यबुद्धि भेदु । दाउनियां ॥ २३ ॥
 तीजां केवल कर्म प्रतिष्ठिलें । तें चि चौथां ज्ञानेंसीं प्रकटिलें ।
 मग पंचमी गंहरिलें योगतत्व ॥ २४ ॥
 तें चि षष्टमामाझि स्पष्ट । आसना लागौनिं प्रकट ।
 जीवपरमात्माभाव एकवट । होंति जेयापरीं ॥ २५ ॥
 तैसी जे योगस्थिति । आणि योगभ्रष्टासि जे गति ।
 ते आघवी चि उपपत्ती । दाखविली ॥ २६ ॥
 मग यावरि सप्तमीं । प्रकृतिपरिहार उपक्रमीं ।
 करुनि भजति जे पुरुषोत्तमीं । ते ह्यणितले च्यान्ही ॥ २७ ॥
 पाठि सप्तप्रश्नसिद्धि । बोलौनि प्रयाणसमयबुद्धि ।
 एवं सकलवाक्यअवधि । अष्टमाध्याइं ॥ २८ ॥
 मग शद्व्रह्मीं असंख्याकें । जेतुला काहीं अभिप्रा३ पीके ।
 तेतुला महाभारतीं एकें । लक्षें जोडे ॥ २९ ॥
 तिये आघविये चि महाभारतीं । तें लाभे कृष्णवचोक्तीं ।
 आणि गीतार्थु सातेंसतीं । तें येकलां नवमीं ॥ ३० ॥
 ह्यणौनि नवमीचेया अभिप्राया । सहसा मुद्रा लावावेया ।
 भियाला मां वायां । गरुवती बोलों ॥ ३१ ॥
 हां हो गूल साखरे मालेयाचे । बांधे एका चि रसाचे ।
 परि पाहतां गोडियेचे । विशेष नाहिं ॥ ३२ ॥
 एक जाणौनि बोलति । एक ठायें ठा३ जाणति ।
 एक जाणौनियां हारपति । सिहाणेपणें पै ॥ ३३ ॥
 तैसे अध्याय हे गीतेचे । परि अनिर्वाच्य नवमांचें ।
 तन्ही वाखाणिलें एतुलें तुमचें । सामर्थ्य प्रभू ॥ ३४ ॥

हां हो एकांची घाठी चि तपनली । एकिं शृष्टिवरि शृष्टि केली ।
 एकिं पाखाणि वाउनि उहरविलि । समुद्रीं कटकें ॥ ३५ ॥
 एकिं आकाशीं सूर्यातें धरिलें । एकिं चूलीं चि समुद्रा शोखिलें ।
 तैसें तुह्मीं मजकरविं बोलविलें । अवधारि जो ॥ ३६ ॥
 परि असो हें एथ ऐसें । रामु रावणु जूझिनले कैसे ।
 ना रामु रावणु जैसे । मीनले समरीं ॥ ३७ ॥
 तैसें नवमींचें श्रीकृष्णाचें बोलणें ।
 आणि नवमींचेया चि ऐसें मी ना हणें ।
 यया निवाडु तत्वज्ञु जाणें ।
 जेया गीतार्थु आधि ॥ ३८ ॥
 एवं नवै अध्याय पहिले । मियां मतींसारिखे बोलिले ।
 आतां उत्तरखंड आदरिलें । ग्रंथिचें आइकां ॥ ३९ ॥
 तेथ विभूति प्रतिविभूति । प्रस्तुत अर्जुनां सांघिजती ।
 ते विदग्धा रसवृत्ती । ह्यणिपैल कथा ॥ ४० ॥
 देशियेचेनि नागरपणें । शांतु शृंगारातें जीणें ।
 वोविया कीं होंति लेणें । साहिल्यासि ॥ ४१ ॥
 मूलग्रंथिचेया संस्कृता । सर्वें नीट मन्हाटी पढतां ।
 अभिप्रायें मानलेया उचिता । कवणि भूमिका ते नेणवे ॥ ४२ ॥
 जैसें आंगिचेनि सौंदर्यपणें । लेणेयांसि आंग चि होये लेणें ।
 तेथ अलंकरलें कवण कवणें । हें निवर्चेना ॥ ४३ ॥
 ऐसी देशी आणि संस्कृत वाणी । एकां भावाचां मुखासनीं ।
 शोभती ते आणि । चोखटा अइकां ॥ ४४ ॥
 उदेंलेयां भावा रूप । करितां लागे रसवृत्तिचें वडप ।
 चातुर्य हणें हें पडप । जोडलें आह्मां ॥ ४५ ॥
 तैसें देशियेचें लावण्य । हरौनि रसां आणिजैल तारुण्य ।
 मग ह्यणिपैल अगण्य । गीतातत्व ॥ ४६ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।

यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

ते वि चराचरपरमगुरु । चतुराचित्तचमत्कार ।

तो आइकां यादवेश्वरु । काइ बोलता जाला ॥ ४७ ॥

ज्ञानदे३ निवृत्तिचा ह्यणे । ऐसें बोलिलें हरी तेणें ।

आइकें अर्जुना अंतःकरणें । नीकेया परीं ॥ ४८ ॥

आह्नि मागां जें निरूपण केलें । अवधान चि गा तूजें तूकलें ।

परि टांचें न्हवे भले । पुरतें आहे ॥ ४९ ॥

घटिं थोडें ऐसें द्रव घालीजे । न गळिजे तरि मागुता भरिजे ।

तैसा पाहिलासि तवं परिसविजे । ऐसें होंतसे ॥ ५० ॥

पहिलें अवाचितेयावारि सर्वस्व सांडिजे ।

मग चोखु तरि भांडारी कीजे ।

तैसा आतां किरीटी माझें ।

निजधाम पै गा ॥ ५१ ॥

ऐसें अर्जुना एउतें सर्वेश्वरें । पाहूनि बोलिलें आदरें ।

गिरि देखौनि मुभरें । मेघु जैसा ॥ ५२ ॥

तैसा कृपालुवांचा राओ । ह्यणे आइकें गा महाबाहो ।

सांधितला चि अभिप्रा३ । लांघिजैल पुडुतीं ॥ ५३ ॥

प्रतिवारिपिं क्षेत्र पेरिजे । जवं जवं पीकाची वाढि देखिजे ।

यालागि नुभगिजे । बाहो करितां ॥ ५४ ॥

पुडुतीं पुडुतीं पुटें । भांगारा देतां ऊटे ।

तरि तें उणवटें । ह्यणों नैये किं ॥ ५५ ॥

तैसा एथ पार्था । तुज आभारु नाहिं सर्वथा ।

आह्नि आपुलेया चि स्वार्था । बोलौनु पुडुतीं ॥ ५६ ॥

आंगिं वाढक लेवविजे लेणें । तें श्रिंगारातें काइ जाणे ।

ते सुखाचे सोहले करणें । आपुलिये दीठी ॥ ५७ ॥
 ऐसें तूझे हीं सांगावें । जवं जवं तुज फावे ।
 तवं तवं आमचें दुणावे । प्रेम देखें ॥ ५८ ॥
 आतां अर्जुना असो हे विकडी । मज तूशी चि आवडि ।
 ह्यगौनि तृतिची सेवडी । बोलतां न पवे ॥ ५९ ॥
 आहां येतुलेया कारणें । तें चि तें बोलणें ।
 हें असो अंतःकरणें । अवधारिजो ॥ ६० ॥
 आइकै सुवर्म । माझे वाक्य परम ।
 जियें अक्षरें लेउनि परब्रह्म । तुज खेवां एतसे ॥ ६१ ॥

न मे विदुःसुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।

अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥

पारि किरीटी मातें । तूं नेणासि ना निरुतें ।
 तारि तो चि मीं जेथें । विश्व हें स्वप्न ॥ ६२ ॥
 जेथ वेद मूकें जाले । मन पवन पांगुलेंले ।
 रात्रीवीण मावळले । रविशाशि जेथें ॥ ६३ ॥
 उदरिचा गर्भुं जैसा । न देखे आपुलिये मातेची वयसा ।
 मीं आववेयां देवां तैसा । नेणवें चि गा ॥ ६४ ॥
 आणि जळचरां उदवीचें मान । मशका नोळांडावे चि गगन ।
 तेवि महारिखीचें ज्ञान । ने देखे चि मातें ॥ ६५ ॥
 मीं कवणु केतुळा । कवणाचा कै जन्मळा ।
 हे निरुति करितां बोळा । कल्प गेले ॥ ६६ ॥
 कां रिखि आणि देशं । येरां भूतजातां सर्वां ।
 मीं चि आदि गा पांडश । ह्यगौनि जाणतां अवबहु ॥ ६७ ॥
 उतरलें उदक पर्वतु वळवे । तारि झाड सेंडाहूनि मुलासि लागे ।
 तारि मियां जालेनि जगें । जागिजे मातें ॥ ६८ ॥
 गाभे वने वडु झांकवे । नां तारि तरंगी सागरु सांमावे ।

कां परमाणूमास्त्रि सांठवे । भूगोलु हा ॥ ६९ ॥
 तरि मियां जालेया जीवां । रिखीं अथवा देवां ।
 मातें जाणावेया होआवा । अवकाशु गा ॥ ७० ॥
 ऐसेनि जरि विपाएं । सांडूनि पुढील पाये ।
 सर्वइंद्रियेंसिं होये । पाठिमोरा जो ॥ ७१ ॥
 प्रवर्तलाही वेगीं वहुडे । झडकारि देह घाटूनि मागिंलीकडे ।
 महाभूतांचेया चढे । माथेयावरि ॥ ७२ ॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।

असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

जथ राहौनि ठाके विवेके । स्वयंप्रकाशें चोखें ।
 अजत्व माझे देखे । आपुला डोलां ॥ ७३ ॥
 तो पाखाणामास्त्रि परिसु । जैसा रसाआंतु सिद्धरसु ।
 मनुष्याआंतु अंशु । माझा जाणें ॥ ७४ ॥
 तें चालतें ज्ञानाचें विव । तेयाचे अवेव ते मुखाचे कोंभ ।
 परि माणूसपणाची भांभ । लौकिका भागु ॥ ७५ ॥
 अवचटें कापुरा । मास्त्रि सांपडे हीरा ।
 तन्हीं उदकीं पडलेयां नीरा । नांगवे तो ॥ ७६ ॥
 तैसा मनुष्य लौकिकाआंतु । जन्हीं जाला प्राकृतु ।
 तन्हीं प्रकृतिदोखांची मातु । नेणजे तेथ ॥ ७७ ॥
 तो आपभयें चि सांडिजे पापीं । जैसा चंदनु जलतां सर्पीं ।
 तेवि मातें जाणे तो संकल्पीं । वर्जुनि घाली ॥ ७८ ॥
 तें चि कैसें मातें जाणिजे । ऐसें कल्पी जरि चित्त तूझे ।
 तरि मी ऐसा जे माझे । भाव आइक ॥ ७९ ॥
 जें वेगलालां भूतीं । सारिखें हाउनि प्रकृती ।
 विकरलें असे विजगतीं । आवविष्य पै ॥ ८० ॥

बुद्धिज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।

सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥

प्रथम जाण बुद्धि । मग ज्ञान जें निरवधी ।

असंमोहो सहनसिद्धी । क्षमा सत्य ॥ ८१ ॥

मग शम दम दोन्हीं । सुखदुःख वर्ते जें जनीं ।

जन्मविनाशु मानीं । भावांमाक्षि ॥ ८२ ॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।

भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥

पैं भय आणि निर्भयता । अहिंसा हान समता ।

तुष्टि तप पांडुसुता । दान जें गा ॥ ८३ ॥

आगा येश कां अपकीर्त्ति । हे भाव जे वर्त्तति ।

ते मज चि पासान्न होंति । भूतांचां ठाई ॥ ८४ ॥

जैसीं भूतें आहाति सिनानीं । तैसैं हें वेगलालें मानीं ।

एक उपजत माझां ज्ञानीं एक नेणति मातें ॥ ८५ ॥

प्रकाशु आणि कडवसैं । हें सूर्या चि पासौनि जैसैं ।

प्रकाशु उदर्यां दीसे । तम अस्तुसर्वें ॥ ८६ ॥

आणि मातें जाणणें नेणणें । तें भूतांचेया देवांचें करणें ।

ह्यणौनि भूतें भावांचें होणें । विपम पडे ॥ ८७ ॥

इयापरीं माझां भाविं । हे जीवसृष्टि आवची ।

गुंतली असे जाणावी पांडुकुमरा ॥ ८८ ॥

आणि इये सृष्टिचे पालक । जेयां आवीन वर्त्तति लोक ।

ते अकरा भाव आणिक । सांघेन आइक ॥ ८९ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वं चत्वारो मनवस्तथा ।

मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६ ॥

तार आववेयांसि वृद्ध । महर्षीमाक्षि प्रवुद्ध ।

कंस्यपादि प्रसिद्ध । सतारपि ॥ ९० ॥

आणिक ही सांगिजतील । चांदाआंतु मुदल ।
 स्वयंभु मुख्य वडिल । च्यारि मनु ॥ ९१ ॥
 ऐसे हे अकरा । माझां मनीं झाले धनुर्धरा ।
 सृष्टिचेया व्यापारा । लागौनियां ॥ ९२ ॥
 जें लोकाचें व्यवस्थे न पडे । अहंभावाचा पैकु न मोडे ।
 जें महाभूताचें दलवाडे । अचुंबित आहे ॥ ९३ ॥
 तैं चि हे आले । मग इहीं लोक केले ।
 तेथ अक्षय होउनि ठेले । तेयांचे जन ॥ ९४ ॥
 ह्यगौनि अकरा हीं राजां । एर जग यांचिया प्रजा ।
 एवं विश्वविस्तारु माझा । ऐसा जाण ॥ ९५ ॥
 पाहे पां आरंभीं बीज एकलें । तें चि विरुढलेयां बूढ जालें ।
 बुढीं कोंभ फूटले । खांदियांचे ॥ ९६ ॥
 खांदियांपासौनि देखां । फूटलिया शाखा ।
 शाखातव देखां । पल्लव पानें ॥ ९७ ॥
 पालवीं फूल फल । ऐसा वृक्षु होये सकल ।
 तें निर्द्धारिजे जवं केवल । तवं बीज चि आघवें ॥ ९८ ॥
 तैसें मी पहिलें । मग माझें मन तें वियालें ।
 तेथ सत्तारखी जाले । आणि च्याही मनु ॥ ९९ ॥
 तिहिं विविध लोक सृजिले । लोकीं लोकपाल वेगलाले ।
 लोकपालें उपजविलें । प्रजाजात ॥ १०० ॥
 ऐसेनि विश्व हें एथें । मीं विस्तारलां हें निरुतें ।
 भावांचेनि हातें । मानसाचेया ॥ १ ॥

एतां विभूर्ति योगं च मम यो वंत्ति तत्त्वतः ।

सोऽविकंपन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

यालागि पै मुभद्रापती । हे भाव माक्षिया विभूर्ती ।

आणि येया व्यार्ता । व्यापलें जग ॥ २ ॥

ह्यर्णानि गा यापरीं । मज्ज लागौनि पिपीलिकावेन्ही ।
 मीवांचूनि दूसरी । गोठि नाहिं ॥ ३ ॥
 ऐसैं जाणे जो साचें । तेया चेइरें जालें ज्ञानाचें ।
 ह्यर्णौनि उत्तमाधमभेदाचें । स्वप्न हिं न देखे ॥ ४ ॥
 मी माक्षिया विभूती । आणि विभूती अविष्टिलिया व्यक्ती ।
 हें आवचें योगप्रतीती । इयेची मानी ॥ ५ ॥
 ह्यर्णौनि निःशकें योगें । मज्ज मीनला मनाचेनि आंगें ।
 तेथ संशयो करणें न लगे । त्रिशुद्धा जाण ॥ ६ ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।

इति मत्वा भजते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

जैसें सूर्यें सूर्यातें बोवालिलें । कां चंद्रें चंद्रेमेयांसि खेवं दीधळें ।
 ना तरि सरिसेन पाडें मीनले । दोन्ही बोव ॥ ७ ॥
 तैसें प्रयाग होंत सामरस्याचें । वरि ॐसाण तरंगत आहे सात्विकाचें ।
 ते संवादचतुःपथिचे । गणेश जाले ॥ ८ ॥

मच्चिता मद्रतप्राणा बोधयंतः परस्परम् ।

कथयंतश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ९ ॥

तेव्हां तेया महासुखाचेनि भरे । धाउनि निगति बोधें ब्राह्मिरे ।
 मिया धाले तेंपें उद्गरे । लागति गर्जो ॥ ९ ॥
 पै गुरुशिष्यसंबंधु येकांती । जेया अक्षरा एकाची वदती ।
 ते मेघाचेयापरीं त्रीजगती । गर्जत असे ॥ ११० ॥
 जैसी कमलकलिका जालेपणें । हृदयीचेया मकरंदातें राहौं नेणें ।
 ते राया रंका करी पारणें । आमोदाचें ॥ ११ ॥
 तैसें मातें विश्वि कथित । कथितेनें तोखें कथू विसरत ।
 मग तेया विसरलेयामाक्षि विरत । आंगें जीवें ॥ १२ ॥
 ऐसैं प्रेमाचेनि बौहवसपणें । नाहिं रात्रि दियो जाणणें ।
 केठें माझ चि मुख आवडणें । आपणपेंयांसि जिहिं ॥ १३ ॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति ते ॥ १० ॥

तेयां मग आह्मीं काहीं । अर्जुना देयावें पाई ।

तें ठांडांचिं चि तिहिं । सेल घेतली ॥ १४ ॥

कां ते जिया वाटा । निगाले गा सूभटा ।

ते सोये पां येउनि अव्हांटा । स्वर्गापवर्ग ॥ १५ ॥

हणौनि तिहिं प्रेम धरिलें । तें चि देणें येयां उपाइलें ।

परि यां देआवें तें इहीं चि केलें । आपणपें चि पै ॥ १६ ॥

एयावरि एतुलें घडे । जें तें चि प्रेम आगळें वाढे ।

आणि कालाची दीठि न पडे । हें साम्य करणें ॥ १७ ॥

ललेयाचिया बालका किरिटी ।

गवसणी घाट्टनु आपलेया स्नेहाची दीटी ।

जैसी खेळतां पाठोवाटी ।

माता निहाळी ॥ १८ ॥

तें जो जो खेळु दावी । तो तो सोनेयाचा करूनि ठेवी ।

तैसी उपास्तीची पदवी । मी पोरवीतु जायें ॥ १९ ॥

जिये पदवियेचेनि पोरवकें । ते मातें पावति मुखें ।

हे पाळति मज विशेषें । करुं आवडे ॥ २० ॥

आगा या विश्वासि मी माझें कोड ।

मज तेयां अनन्यगतीची चाड ।

कां जें प्रेमलांचें सांकड ।

आमचां घरीं ॥ २१ ॥

पाहे पां स्वर्ग मोक्ष उपाइले ।

दोन्हीं मार्ग तेयाचिया चि वाहाणी आहाति ठेविले ।

आह्मीं आंग शोपा वेचिलें ।

लक्ष्मीयोसिं ॥ २२ ॥

परि आपणपें जें एक । तें सवियां वरवें साजूक ।
 प्रेमलांलागि देख । ठेविलें जतने ॥ २३ ॥
 हा ठायो वेन्हीं किरिटी । आह्नि प्रेमल घेअों आपणपेयांसाठीं ।
 इया बोलिं या बोलिजति गोठी । तैसिया न्हवति ॥ २४ ॥

तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः ।

नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥

हणौनि मज आत्मेयांचा भाउ । जिहिं जियात्रिया केला ठाउ ।
 एकु मीवांचूनि एरु वाउ । केळें जिहीं ॥ २५ ॥
 तेया तत्वज्ञाना चोखटा । दिवी पोतासाची सूभटा ।
 मग मी चि होउनि दीवटा । पुढां चालें ॥ २६ ॥
 अज्ञानाचिये राती । माजि तमाची मेहुडों दाटती ।
 तियें नाशौनि घालीं परौती । ऐसा उदो करीं ॥ २७ ॥
 ऐसें प्रेमलांचेनि प्रियोत्तमें । बोलिलें पुरुपोत्तमें ।
 तेथ अर्जुनु मनोधर्में । निवालां हणें ॥ २८ ॥

अर्जुन उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्र परमं भवान् ।

पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२ ॥

अहो जी अवधारां । भला केरु फोटला सवंसारा ।
 जालां जननीजठरा । वेगला मी ॥ २९ ॥
 जी जन्मलेपण आपुलें । आजि मिया डोलां देखिलें ।
 आतां जी जीवित हातु चडलें । आवडे तैसें ॥ १३० ॥
 आजि सुविद्ये सुवण जालीं । माझेया दैवांसि दशा उदैलीं ।
 जें वाक्यकृपा लावलीं । दैविकेनि मुखें ॥ ३१ ॥
 ऐणें वचनतेजकरें । फिटलें आंतु वाहीरीळ आंधारें ।
 हणौनि देखतसें साचोकारें । स्वरूप तूजें ॥ ३२ ॥
 तरि होंसि गा तूं परब्रह्म । जेयां महाभूतांसि विश्राम ।

तें निजद्वाम पवित्र परम । जगन्नाथा ॥ ३३ ॥
 तूं परमदैवत तीहीं देवां । तूं पुरुषु जी पंचविसांवां ।
 दिव्य तूं प्रकृतिभावां । पैलीकडीलु ॥ ३४ ॥
 अनादि सिद्ध तूं स्वामी । नाकलिजमि जन्मकर्मी ।
 तो तूं हें अजि आर्ही । जाणांतलासी ॥ ३५ ॥
 तूं कालयंत्रा सूत्री । तूं इये जीवकले अधिष्ठात्री ।
 तूं ब्रह्मकटाहयात्री । हें कल्लें फुडें ॥ ३६ ॥

आहुस्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।

असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥ १३ ॥

पैं आणिकि ही एकीपरी । इयाची प्रतीति एतसे थोरी ।
 जें मागां ऐसें चि रिपीश्वरीं । सांघितलें तूतें ॥ ३७ ॥
 तें सांघितलेयाचें साचपण । हें देखत असे अंतष्करण ।
 जें कृपा केली आपण । हणौनियां ॥ ३८ ॥
 यन्हविं नारदु अखंड जवला आहे ।
 तो ऐसीं चि वचनें गाये ।
 परि अर्थु न बुझों टाये ।
 गीत चि आइकों ॥ ३९ ॥
 जी आंघलेयाचां गावीं । जन्हीं आपणपें प्रकटलें रवीं ।
 तर्हिह वोतपली चि तेयां होआवी । वांचूनि प्रकाशु नाहीं ॥ ४० ॥
 यन्हविं देवारिपि अध्यात्म गांतां । आहाच रागेंसि उमटतां ।
 तें चि परिसवे येर चित्ता । नैये काहीं ॥ ४१ ॥
 पैं असिता देवलाचेनि मुखें । मीं येवविशु तूतें आइकों ।
 परि तें बुद्धि विषयविपें । धारळीं होंतां ॥ ४२ ॥
 आतां आणिकाचें नावें काइ घेयावें । आपण एउनि व्यासदेवें ।
 तूजें स्वरूप आयवें । सर्वत्र सांघिजे ॥ ४३ ॥
 देवा आंशरीं चिंतामणि देखिटा । जेवि न्हवे हणौनि उपेक्षिला ।

पाठिं दीनउदो मोटका जाला । मग होये हणो ॥ ४४ ॥
 तौसिं व्यासादिकांचीं बोलणीं । तिया मजपासीं रत्नाचिया खार्णीं ।
 परि उपेखया जांति वायाणी । तुजवीण देवा ॥ ४५ ॥
 आतां वाक्यसूर्यकर फांकलें । आणि रिखिं मार्ग होंति जे कथिले ।
 तेयां आघवेयांचें फीटलें अनोलखपण ॥ ४६ ॥
 जीवनाचें बीं जेयांचे बोल । परि माझियेठांइं पडिले खोल ।
 तें इये कृपेची जाली बोल । हणौनि संवादफलेसिं उठिलें ॥ ४७ ॥
 कृष्णसंवादें । फूलीं आलें मकरंदें ।
 तें फूल विनोदें । दीन्हलें मज ॥ ४८ ॥
 आहो नारदादिकां संतां । तेयांचिया जुतीस्वरूप सारिता ।
 मीं महोदधि जालां अनंता । संवादसुखाचा ॥ ४९ ॥
 प्रभू आघवेनिं जन्में । जियें पुण्यें केलीं मियां उत्तमें ।
 तेयां न टकती चि कामें । सद्गुरू तुवां ॥ १५० ॥
 एन्हविं वडिलांचेनि मुखें ।
 एवंविधु तूतें आइकें ।
 परि कृपा न कीजे चि तुवां एकें ।
 तंव नेणिजे चि काहीं ॥ ५१ ॥
 हणौनि भाग्य जैसें सानुकुल । जालेयां जैसे उद्यम सफल ।
 तैसें श्रुतादि सकल । गुरुकृपा साच ॥ ५२ ॥
 जी बनकर झाडांसाठीं । पाहूनि जन्में काढी आटी ।
 परि फलेसीं तें भेटीं । जें वसंतु पावे ॥ ५३ ॥
 आहो जें विपयां वोहट्टु पडे । जें माधूर्य आवडे ।
 रसायनें तेन्हलि होंति गोडें । जेंहलि आरोग्यता होये ॥ ५४ ॥
 कां इन्द्रियें वाचा प्राण । यांचें जालेयां सार्थकपण ।
 जें चैतन्य एउनि आपण । संचरे माझि ॥ ५५ ॥
 ऐसें शद्धजात आलोडिलें । अथवा योगादिक अभ्यासिलें ।

तै तै चि ह्यणों ये आपुलें । जै आजा देति गुरु ॥ ५६ ॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।

नाहि ते भगवन्वर्यकिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ १४ ॥

ऐसिये जालिये प्रतीतीचेनि माजें । अर्जुनु निश्चयाचि नाचतु भोजें ।

तेविं चि ह्यणे देवा तूजें । वाक्य मज मानलें ॥ ५७ ॥

तारि साच चि गा कैवल्यपती । मज त्रिशुद्धी आलें प्रतीती ।

जें तूं देवांदानवांचिया युक्ती । जो गा न्हवसि ॥ ५८ ॥

तूझीं वाक्यें न लगति देवा । जैसे आपुलेया जाणिजसि जाणिवा ।

तें काहिं नाहिं हें सद्गावा । भर्वसेनि आलें ॥ ५९ ॥

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।

भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥

एथ आपुलें वाडपण जैसे । आपण चि जाणिजे आकाशें ।

मीं येतुली घनवट ऐसे । पृथ्वी नेणे ॥ ६० ॥

तैसा आपुलियां सर्वशक्ती । तूं जाणसि लक्ष्मीपती ।

एर वेदादिक मती । मिरवती प्रज्ञा वायां ॥ ६१ ॥

हां गा मनातें मागें सांडावें । पवनातें वावीं मवावें ।

आदिशून्य तें उतरांनि जावें । केउतें वाहीं ॥ ६२ ॥

तैसें तुजें जाणणें आहे । ह्यणानि कोण्हा हीं टाकतें नोहे ।

आतां तूजें ज्ञान होये । तुज चि जागें ॥ ६३ ॥

जी आपणेंयातें तूं चि जाणसि । आणि सांवावेया समर्थु होंसि ।

तारि एकु वेळु घामु पूसीं । आर्त निडलिचा ॥ ६४ ॥

हें आइकिलेया किं भूतभावनना । त्रिभुवनपंचानना ।

सकलदेवदेवताचरना । जगन्नाथा ॥ ६५ ॥

जारि थोरा तूझी पांत आहे । तरि पांसि उभे टाकावेया योग्यु नोहें ।

इया शोच्यता जारि भियें । तरि उपाउ नारीं आनु ॥ ६६ ॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।

याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥

भरले सरिता समुद्र चहूंकडे । परि बापैयांसि गा कोरडे ।
जै मेघौनि धेंबटा पडे । तै पारणें तेया ॥ ६७ ॥
तैसे गुरु सर्वत्र असति । परि कृष्णा तूं चि आह्वासि गति ।
विभूती सांवे ॥ ६८ ॥

जी तूक्षिया चि विभूती । तिया चि परिव्यक्ती ।
दिव्या जिया आहाति । तिया दाविं मातें ॥ ६९ ॥
जिहिं विभूतिं समस्तां । लोकांतें व्यापूनि अससि अनंता ।
तिया ब्रह्मनामांकिता । प्रकटा करीं ॥ १७० ॥

कथं चिद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिंतयन् ।

केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥ १६ ॥

जी मियां कैसें तूतें जाणावें । काइ हणौनि सदा चिंतावें ।
जरि चिंतू हणों आववें । तरि चिंतणें न घडे ॥ ७१ ॥
तरि मागां भाव जैसे । सांघितले तुवां उदेशें ।
आतां विस्ताखनि तैसें । येकु वेळु सांवे ॥ ७२ ॥
जेयां भावांचां ठांड । तूतें चिंतितां मज सायास नाहिं ।
तो विवंचूनि देई । योगु आपुला ॥ ७३ ॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।

भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८ ॥

आणिक आपुलिया जिया विभूती ।

तिया ही बोलाविया भूतप्रती ।

एथ हणसी पुडुतीं पुडुतीं ।

काइ सांवे ॥ ७४ ॥

तारि हा भावां मना । ज्ञनें हों देसि जनार्दना ।

जैसें करितां अमृतपाना । न ह्यणवे पुरे ॥ ७५ ॥
 जें कालकुटाचें सहोदर । मरणाभेण पियाले अमर ।
 तन्हीं देहाचे पुरंदर । चौदा जांति ॥ ७६ ॥
 ऐसा एकु क्षीराब्धिचा वासु । जेयासि अमृतपणांचा आन्हासु ।
 तेयाचा हा ठावोवेरि विश्वासु । जें पुरे ह्यणों नेंदी ॥ ७७ ॥
 जें मंदराचल न ढळितां । क्षीरसागर न डहुळितां ।
 अनादि स्वभावता । आइतें चि आहे ॥ ७८ ॥
 जें द्रवित नां बद्ध । जेथ नेणजति रसभेद ।
 भलेतेया ही सिद्ध । आठवळें चि फावे ॥ ७९ ॥
 जेयाची गोडी आवडत खेओ । आघवाचि संसार होये वाओ ।
 बलियां नित्यता लागे एओ । आपणपेयां ॥ १८० ॥
 जन्ममृत्यूची भाष । हारपोनि जाये निःशेष ।
 आंतु बाहिरि महासुख । वाढों चि लागे ॥ ८१ ॥
 मग दैवंगल्या जरि सेविजे ।
 तारि तें आपण चि घेउनि टाकिजे ।
 तुज ही देतां चित्त माझें ।
 पुरे ह्यणों न शके ॥ ८२ ॥
 तारि तूझें नावं चि जी आह्वां आवडे ।
 वरि भेटि होये आणि जवलीक जोडे ।
 पाठिं गोठि सांवसी मुरवाडे ।
 मुखाचेनि ॥ ८३ ॥
 आतां हें मुख काइसेया सारिखें । काहिं निर्वचेनां परितोखें ।
 परि येतुळें होये जें येणें मुखें । पुनरावृत्ति नाही ॥ ८४ ॥
 आगा सूर्यु कीं सीला । चंद्रु ह्यणों पांतां आंकुचला ।
 नीच वाहांतां गंगाजला । काइ पारिसेपण आहे ॥ ८५ ॥

ययावारी तुहीं बोलिलें । हें आहीं नादासि किं रूप देखिलें ।
आजि चंदनतरुचीं फुलें । तुरंबिलीं आहीं ॥ ८६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

हंत ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यतो विस्तरस्य मे ॥ १९ ॥

एया पार्थचेया बोला । सर्वांगि कुष्णु डोलला ।
हणो भक्तिज्ञानासि जाला । आधार हा ॥ ८७ ॥
ऐसेया प्रीतिकराचेया तोपा आंतु । प्रेमाचा वेगु उपजतु ।
तो सायासें सावरितु अनंतु । काइ बोले ॥ ८८ ॥
जिया जाणितलेया चि साठीं । आवचें जाणितलें होये किरिटी ।
जें बीज आलेयां मुठी । तंरं आला चि आहे ॥ ८९ ॥
कां उदाणें हातिं पडिलें । तरि आपैसेया चि सांपडलीं फुलें ।
तेवि देखिलेयां जें देखिलें । विश्व सकळ ॥ १९० ॥
मी पितामहाचा पिता । आठवितां नाठवें चित्ता ।
किं हणतसें पांडुमुता । भलें केलें ॥ ९१ ॥
अर्जुनातें हणो येथ काहीं । आह्ना विस्मो करावेया कारण नाहिं ।
तो आंगें लेंकुरं काइ । न्हवे चि नंदाचें ॥ ९२ ॥
पारि प्रस्तुत हें असो । ऐसें करवी आवडिचा अतिसो ।
मग हणो आइकें गा सांघितसों । धनुंधरा ॥ ९३ ॥
तरि तुवां प्रसिलिया जिया विभूति । तेयांचें अपारपण सुभद्रापती ।
जें माझिया चि माझिये मती । आकळति ना ॥ ९४ ॥
हणौनि कैसा आहें मीं केवढा ।
पाहातां आपणपेया न्हवे चि फुडा ।
एयाळानि प्रधान जिना मढा ।
तिया विभूति आइके ॥ ९५ ॥

यन्हविं साच चि गा धनुर्द्वरा । नाहिं अंतु माज्ञेया विस्तारा ।
पै गगना ऐसिया अपारा । मज चि माज्ञि असणें ॥ ९६ ॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।

अहमादिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च ॥ २० ॥

आइकै कुटिलालकमस्तका । धनुर्वेद व्यंक्ता ।

मी आत्मा असें एकैका । भूतमात्राचां ठांडें ॥ ९७ ॥

आंतुलीकडे मी चि आहे अंतष्करणीं ।

बाहीरि माझी चि गवसणीं ।

आदि मीं निर्वाणीं ।

मध्ये हीं मीं ॥ ९८ ॥

जैसें मेघांसि तळिवरि । एक आकाश चि आंतु बाहिरि ।

आणि आकाश चि जालें अवधारिं । असणेंयासि ॥ ९९ ॥

पाठिं लया जेव्हलि जांति । तेव्हलि आकाश चि होउनि ठांति ।

तेवि आदिस्थितिगति । भूतांसि मीं ॥ २०० ॥

ऐसें ब्रह्मवस व्यापकपण । माझे विभूतियोगें जाण ।

तारिं जीवाचे करुनि श्रवण । सर्व हीं आइक ॥ १ ॥

हें बोलौनि तो कृपावंतु । हणें विष्णु मी आदित्या आंतु ।

रवि मियां रश्मिवंतु । मुप्रभा जो ॥ २ ॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।

मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१ ॥

मरुद्रणाचां भागिं । मरीचि हणें मीं शाईं ।

चंद्रु मी गगन रंगीं । तारांमाझि ॥ ३ ॥

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।

वसुनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ २२ ॥

अशेषां हिं रुद्रगणांमाझारिं । शंकरु जो मी मदनारि ।

तो मीं गा एथ न करीं । भ्रांति काहीं ॥ ४ ॥

यक्षरक्षणगांआंतु । शंभूचा जो धनवंतु ।
 तो कुबेर मी अनंतु । ह्यणता जाला ॥ ९ ॥
 आठां वसूमाझारि । पावकु तो मीं अवधारीं ।
 शिखराथिलियां सर्वां उपरि । मेरु तो मीं ॥ ६ ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।

इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २३ ॥

वेदांमाझि सामवेदु । तो मी ह्यणे गोविंदु ।
 देवांमाझि प्रसिद्धु । महेंद्रु तो मीं ॥ ७ ॥
 इंद्रियांमाझि अकरावें । मन तें मीं जाणावें ।
 भूतांमाझि स्वभावें । चेतना ते मीं ॥ ८ ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।

सेनानीनामहं स्कंदः सरसामस्मि सागरः ॥ २४ ॥

जो स्वर्गसिंहासना साहो । सर्वज्ञते आदिचा ठाओ ।
 पुरोहितांमाझि राओ । बृहस्पति मीं ॥ ९ ॥
 त्रिभुवानिचेया सेनापती । आंतु स्कंदु तो मी महामती ।
 जो हरवीर्ये अग्निसंगति । कृत्तिकां आंतु जाला ॥ २१० ॥
 सकलां सरोवरां माझारि जाणसि । समुद्रु तो मीं जलराशि ।
 महारिखीं माझि तपोराशि । भृगु तो मीं ॥ ११ ॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्येकमक्षरम् ।

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५ ॥

अशेषां हीं वाचां । आंतु नडनाचु जेथ सत्याचा ।
 तें अक्षर मी वैकुंठिचा । वेल्हाळु ह्यणे ॥ १२ ॥
 समस्तां हिं यज्ञाचां पैकिं । जपयज्ञु तो मीं इथे लोकिं ।
 जो कर्मत्यागी कर्मादिकीं । निफजविजे ॥ १३ ॥
 स्थावरां गिरिं आंतु । पुण्यपूज्यु जो हिमवंतु ।
 तो मीं ह्यणे कांतु । लक्ष्मीयेचा ॥ १४ ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।

गंधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६ ॥

कल्पद्रुमु हान पारिजातु । गुणै चंदनु पै विख्यातु ।

तन्है वृक्षजातां आंतु । अश्वत्थु तो मीं ॥ १५ ॥

देवर्षीं आंतु पांडवा । नारदु तो मी जाणावां ।

चित्ररथु तो मीं गंधर्वा । सकलां माझि ॥ १६ ॥

अशेषां हीं सिद्धां । माझि कपिलाचार्यु प्रबुद्धा ।

तुरंगमां प्रसिद्धां । माझि उच्चैश्रवा तो मीं ॥ १७ ॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।

ऐरावतं गजेंद्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ २७ ॥

राज्यभूषणगजा आंतु । अर्जुना मीं गा ऐरावतु ।

पयोराशि सुमथितु । वियाला जेयातें ॥ १८ ॥

येयां नरा माझि राजा । तो विभूतिविशेषु माझा ।

जेयातें सकललोक प्रजा । होउनि सेविति ॥ १९ ॥

आयुधानामहं वज्र धेनूनामस्मि कामधुक् ।

प्रजनश्चास्मि कंदर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ २८ ॥

पै अशेषां हिं हातियरां । माझि वज्र तें मिं धनुर्दरा ।

जे शतमखोत्तीर्णकरा । हातीं असे ॥ २२० ॥

धेनू मध्ये कामधेनु । ते मीं ह्यणे विश्वेशानु ।

जन्मवितेयां आंतु मदनु । तो मीं चि जाण ॥ २१ ॥

सर्पकुला आंतु अधिष्ठाता । वासुकी तो मीं कुंतीसुता ।

नागां माझि समस्तां । अनंतु तो मीं ॥ २२ ॥

अनंतश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।

पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ २९ ॥

आगा यादसां आंतु । जो पश्चिमदिशेचा कांतु ।

तो मी ह्यणे अनंतु । वरुणु तो मीं ॥ २३ ॥

आगा पितृगणां समस्तां । अर्यमा जो पितृदेवता ।
 तो मीं हे तत्वता । पांडुकुमरा ॥ २४ ॥
 आगा जगाचीं शुभाशुभे लिहिति । प्राणांचा उगणां घेंति ।
 मग केलेया अनुरूप देंती । स्वर्गमोक्षु जे ॥ २५ ॥
 तेयां नियमितेयांतु यमु । जो कर्मसाक्षि धर्मु ।
 तो मीं हणणे रामु । अर्जुनातें ॥ २६ ॥

प्रन्हादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।

मृगाणां च मृगेंद्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ३० ॥

आगा दैत्यांचां कुलीं । प्रह्लादु तो मी निहालीं ।
 हणौनि द्वेष्यभावादिमलीं । लींपे चि ना ॥ २७ ॥
 पैं कळितेयां माक्षि महाकालु । तो मीं हणणे गोपालु ।
 स्वापदां आंतु शार्दूलु । तो माक्षें चि रूप ॥ २८ ॥
 आगा पक्षजातीं माझारि । गरुडु तो मीं अवधारिं ।
 हणौनि निभियाचिये पाठीवरी । वाहवें मीं ॥ २९ ॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।

शषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामास्मि जान्हवी ॥ ३१ ॥

पृथ्वीचेया पैसारा । माक्षि टाकितेया धर्नुद्वरा ।
 येकें चि उडाणें स्वर्गातरा । करिति जें कां ॥ २३० ॥
 तेयां वहिलेयां आणि गतिमंतां ।
 आंतु पवनु तो मीं पांडुमुता ।
 शस्त्रधरां समस्तां ।
 माक्षि रामु तो मी ॥ ३१ ॥
 सांकडलेया धर्माचेनि कैवारें । आपणपेयां धनुष करुनि दुसरें ।
 विजयलक्ष्मी एक मोहरें । केलें वेंती ॥ ३२ ॥
 पृष्टिं उभें ठाकौनि मुवेलीं । प्रतापें लंकेश्वराचां सिसालीं ।
 गगनीं उदो हणतयां बलि । दीधली भूतां ॥ ३३ ॥

जेणें देवांचा मानु साधिला । धर्मासि जीणोंद्वारु केला ।
सूर्यवंशीं उदेलाला । सूर्यो जो कां ॥ ३४ ॥

तो हातियेरप्रजितेयां आंतु । रामचंद्रु जानकीयेचा कांतु ।
आणि मकर मीं + त्तिवंतु । जलचरां माझि ॥ ३५ ॥

पैं समस्तां वोघां । आंतु भागीरथी गंगा ।

ते जेव्हां गीलिली मग जांघा । फाड्नि दीन्हली ॥ ३६ ॥

जे त्रिभुवनैकसरिता । जान्हवी मीं पांडुसुता ।

जलप्रवाहां समस्तां । माझि जाण ॥ ३७ ॥

सर्गाणामादिरंतश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।

अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ ३२ ॥

ऐसां वेगलालां सृष्टि पैकि । विभूति नाम स्तुति एकैकिं ।

सगलेनि जन्मसहस्रीं अवलोकीं । परि आर्धिया न्हवति गा ॥ ३८ ॥

आगा आघवीं चि नक्षत्रें वेंचारीं ।

ऐसी चाड उपजे जीवीं ।

तैं गगनाची बांधावी ।

लोथ जेवि ॥ ३९ ॥

कां पृथ्वीचेयां परमाणू उगाणा घेयावा । भूगोलु काखे मुआवा ।

तैसा हा विस्तारु माझा । तारि जाणावें मातें ॥ २४० ॥

जैं शाखा फूल फल । वेअ पाहिजे सकल ।

तैं उपडूनु मूल । हाति घेपे ॥ ४१ ॥

तेवि माझे विभूतिविशेष । जाणों पाडजेति अशेष ।

तारि स्वरूप हें निर्दोष । जाणावें माझे ॥ ४२ ॥

यन्हविं वेगलालां विभूतीं । काइएक परियससी केती ।

झणौनि एकीहेला महामती । सर्व मीं जाण ॥ ४३ ॥

मीं आघविया सृष्टि ! आदिमध्यअंतीं किराटी ।

अंतप्रोत पटी । तंतु जैसा ॥ ४४ ॥

एसेया व्यापका माते जाणवें । तरि विभूतिभेदी काइ करावें ।
 पारि हें तुज योग्य न्हवे । हणौनि असो ॥ ४५ ॥
 कां जें तूं माझेया विभूती । हणौनि तिया आइकें सुभद्रापती ।
 तरि विद्यां माझि प्रस्तुतीं । अध्यात्मविद्या मीं ॥ ४६ ॥
 आगा बोलतेयाचां ठाईं । वादु तो मी पाहीं ।
 सकलें शास्त्रसमेत काहीं । सेरेचिना ॥ ४७ ॥
 जो निर्वचु करितां वाढे । आइकिलेयां उत्प्रेक्षे सल चढे ।
 जेयावारि बोलतेयांचीं गोढें । बोलणीं होति ॥ ४८ ॥
 तैसें पां प्रतिपादितेयां माझि वादु । तो मीं हणणे मुकुंदु ।
 अक्षरां माझि विशदु । अकार तो मीं ॥ ४९ ॥

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वंद्वः सामासिकस्य च ।

अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

समासा माझारि । द्वंदु तो मीं अवधारीं ।
 जो मशका लगौनि ब्रह्मावेर्हीं । ग्रासी तो मीं ॥ २५० ॥
 जो प्रलयतेजा देतां मीठी । सगलेया पवनातें गीलीं किरीटी ।
 आकाश जेयाचां पोटीं । सामावलें ॥ ५१ ॥
 एसा अपारु जो कां कालु । तीं मीं हणणे लक्ष्मीलीलु ।
 एया वारि सृष्टिचा मेलु । सज्जी तो मीं ॥ ५२ ॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भाविष्यताम् ।

कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृति क्षमा ॥ ३४ ॥

आणि सजिलेयां भूतातें मीं चि धरीं ।
 सकलां हीं जीवन मीं चि अवधारीं ।
 शेपिं सकलातें संहारीं ।
 तेव्हलि मृत्यु हीं मीं चि ॥ ६३ ॥
 आतां स्त्रीगणाचां पैकीं । माझिया विभूति सात येकि ।
 तेतीं आइक कवतिकीं । सांघिजति ॥ ५४ ॥

तारि सदा नवी जे कीर्त्ति । ते अर्जुना माझी मूर्ति ।
 आणि औदार्याची संपत्ति । ते ही मी त्वि जाण ॥ ५५ ॥
 पै स्थैर्यताअनुजिनी । मेधा ते मीं ये जनीं ।
 धृति मीं त्रिभुवनीं । क्षमा ते मीं ॥ ५६ ॥
 एवं नारी माझारि । इया सात शक्ती मीं अवधारीं ।
 एसें संसारगजकेसरी । हणता जाला ॥ ५७ ॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छंदसामहम् ।

मासानां मार्गशीर्षोहमृत्नूनां कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

वेदराशिचेया सामां । आंतु बृहत्साम प्रियोत्तमा ।
 तो मीं हणणे रमा— । प्राणेश्वरु ॥ ५८ ॥
 आया गायत्रीछंद जें हणिजे । सकल छंदांमाझि जें ।
 तें स्वरूप माझें । जाण निभ्रांत ॥ ५९ ॥
 मासां आंतु मार्गशीरु । तो मीं हणणे सारंगधरु ।
 रतूं आंतु कुसुमाकरु । वसंतु तो मीं ॥ २६० ॥

द्यूतं छल्यतामस्मि तेजतेजस्विनामहम् ।

जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥३६॥

यां खेलतेयां विंदाणां । माझि द्यूत मीं विचक्षणा ।
 हणौनि चोहटां चोन्नारा कवणां । वारं नैथे ॥ ६१ ॥
 आगा सकलां हिं तेजसां । माझि तेज तें मीं भवसा ।
 मीं कार्य उद्देशां । सकलां माझि ॥ ६२ ॥
 जेणे चांखालुती सन्या३० । तो व्यवसाया आंतु व्यवसा३० ।
 माझे रूप हे हणणे रा३० । मुरवरांचा ॥ ६३ ॥
 सत्त्वाधिलंयां आंतु । सत्व तें मीं हणणे अनंतु ।
 यां यादवां आंतु श्रीमंतु । तो मीं जाण पै ॥ ६४ ॥

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पांडवानां धनंजयः ।

मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुद्दना कविः ॥ ३७ ॥

जो देवकिये वसुदेवातव जाला । कुमारीसाठिं गोकुला नेला ।
 प्राणु सकटुनि आटिला । पूतनेचा ॥ ६५ ॥
 नुमटतां बालपणाची फूली । जेणें मियां अदानवी सृष्टि केली ।
 कारें गिरिवरु धरुनि उमाणिली । महेंद्रमहिमा ॥ ६६ ॥
 कालिंदियेचें हृदयशल्यु फेडिलें ।
 जेणें मियां जलतें गोकुल राखिलें ।
 वांसुरुवां साठिं लाविलें ।
 विरिंची पिसें ॥ ६७ ॥

प्रथमदशेचिये अटाटे । माझि कंसा ऐसीं अचाटे ।
 महा ढेंढीं अवचटें । लीला चि नाशिलीं ॥ ६८ ॥
 हें काइ एक केती सांवावें । तुवां हिं देखिलें आइकिलें आघवें ।
 तरि यादवां माझि जाणावें । हें चि रूप माझे ॥ ६९ ॥
 आणि सोमवंसिचेयां पांडवां । माझि अर्जुनु तो मीं जाणावा ।
 ह्यणौनि येकमेकाचेयां प्रेमभावां । सल चडतसे ॥ ७० ॥
 मुनी आंतु व्यासु देउ । तो ह्यणे मीं यादवराउ ।
 कवि आंतु धैर्यां ठाउ । उशना कवि तो मीं ॥ ७१ ॥

दंडो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।

मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ३८ ॥

आगा नियमितेयां माझारि । दंडु मीं अवधारिं ।
 जो मुंगिये लागौनि ब्रह्मवेन्हीं । नीयमीतु असे ॥ ७२ ॥
 पै सारासार निर्द्धारितेयां । धर्मज्ञतेचा पशु धरीतेयां ।
 सकलां शास्त्रां माझि येयां । नीतिशास्त्र तें मीं ॥ ७३ ॥
 आघवेयां गूढां । माझि मौन मीं मुहाडा ।
 ह्यणौनि बोलतेया पुढां । स्रष्टा ही नेणु होये ॥ ७४ ॥
 आगा ज्ञानियांचां टांडें । ज्ञान तें मीं पाहीं ।
 आतां असो हें काहीं । पार नेदखों ॥ ७५ ॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तद्दहमर्जुन ।

न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९ ॥

पाहिं पर्जन्याचिया धारां । लेख होईळ धनुर्द्वरा ।

कां पृथ्वीचेया तृणांकुरां । होईळ ठी ॥ ७६ ॥

नां तारि महोदाधिचेयां तरंगां । व्यवस्था जेविकरुं नैये पै गा ।

तेवि माझेयां वेखां गा । लेख नाहिं ॥ ७७ ॥

ऐसिया पांचसात प्रधाना । विभूती सांघितलिया अर्जुना ।

तो उदेशु गा मना । आहाचु गमला ॥ ७८ ॥

नांतोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।

एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥

एहविं विभूति-विस्तारा काहिं । एथ सर्वथा लेख नाहिं ।

हणौनि तूं परियससी काई । आहौं सांघों केती ॥ ७९ ॥

एया लागि येकी हेला तुज । दाऊं आतां वर्म निज ।

तारि सर्व भूतांकुरें बीज । विरूढतसे तें मीं ॥ २८० ॥

हणौनि सानें थोर न हणारें । उंच नीच भार सांडावे ।

एकु मी चि ऐसें जाणारें । वस्तुजात तें ॥ ८१ ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसंभवम् ॥ ४१ ॥

आतां एया ही वरि साधारण ।

आइक पां आणिकि ही एक खूण ।

तारि अर्जुना तें जाण ।

विभूति माझी ॥ ८२ ॥

जेथ संपत्ति आणि दया । दोन्हीं आळि असति एका चि ठाया ।

ते ते जाण धनंजया । अंश माझे ॥ ८३ ॥

अथवा एकळे विव गगनीं । परि प्रभा फांके जेवि त्रिभुवनीं ।

तैमि मज येकाचीं मकळ जनीं । आज्ञा पाळिजे ॥ ८४ ॥

तेयातें एकलें हें झनं हणा । तो निर्द्वनु या भाषा नेणां ।
 काइ कामधेनु सवें उगाणा । चालतसे ॥ ८५ ॥
 तियेतें जेधवां जें जो मागे । तें ते एकसरें प्रसवों लागे ।
 तेवि विभव तेया आंगें । होउनि आलें ॥ ८६ ॥
 तेयातें ओलखावेयाची संज्ञा । जे नमस्कारिजेति आज्ञा ।
 ऐसे ते आहाति प्राज्ञा । अवतार आमचे ॥ ८७ ॥
 आणि एक सामान्य विशेष । हें जें जाणणें सदीष ।
 जें मीं चि येकु अशेष । विश्व हें हणौनि ॥ ८८ ॥
 तारि आतां साधारणु आणि चांगु ।
 ऐसा कैसा कल्पावा पां विभागु ।
 बायां चि आपुलिये दीठी वंगु ।
 भेदाचा लावावा ॥ ८९ ॥
 एन्हविं तन्हीं तूप काइसेया गुसलावें ।
 अमृत कां गालुनु आर्थे करावें ।
 हां गा पाउसीं काइ डावे ।
 जेवणें आंग होये ॥ ९० ॥
 पैं सूर्यांबिबासि पोटपाठि । देखतां नाशे आपुली दृष्टि ।
 तेवि माझां स्वरूपिं गोठि । सामान्यविशेष चि ॥ ९१ ॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवाजुन ।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ ४२ ॥

आणि सिनानां विभूर्तीं । मज अपारातें मविशी केती ।
 हणौनि सुभद्रापती । असो हें जाणणें ॥ ९२ ॥
 आतां पैं माझेनि येंकें अंशें । जें हें जग चि व्यापलें असे ।
 एंया लागि भेटु सांडी सरिसें । साम्यें भज ॥ ९३ ॥
 ऐसें बुधवनवसतें । तेंणें विरक्तांचेन कातें ।
 बोलिलें श्रीमंतें । ऋष्यदेवें ॥ ९४ ॥

तथ अर्जुनु ह्यणे स्वामी । येतुलें रहस्यें बोलिलें तुझीं ।
 जें भेदु येकु आणिकु आहि । सांडावा तरिं ॥ ९५ ॥
 आहो सूर्यु ह्यणे जगातें । हें आंधरें दवडा कां परौतें ।
 तेवि धसालु ह्यणे देवातें । तरि अधिकु जी बोलु ॥ ९६ ॥
 तूझें नाम चि कोणही वेले । जेयांचेया मुखाकानासि मिले ।
 तेयांचेया हृदयातें सांडूनि पवले । भेदु जी हा ॥ ९७ ॥
 चंद्रविवाचां गाभारां । रिगालेयां जरि उवारा ।
 तैसें राभस्यें सारंगधरा । बोला तुझीं ॥ ९८ ॥
 तेथ सवियां चि परि तोखौनि देवें ।
 अर्जुनातें आळिगिलें जीवें ।
 मग ह्यणे तुवां न कोपावें ।
 आमचेया बोला ॥ ९९ ॥
 आहीं तुज भेदाचिया वाहाणीं ।
 सांघीतली जे विभूतीची काहाणी ।
 ते अभेदें अंतष्करणीं ।
 मानली कीं न मने ॥ ३०० ॥
 हें चि पाहावेया लागि । बोलिलें बाहिर सवडिया भंगीं ।
 तव विभूति तुज चांगी । आली बोधा ॥ १ ॥
 तेथ अर्जुनु ह्यणे देवें । हें आपुलें आपण जाणावें ।
 परि देखतसे आववें । तुवां आरंभलें ॥ २ ॥
 पै राया तो पांडुमुतु । ऐसिये प्रतीतीचा जाला वरैतु ।
 एया संजयाचेया बोला निवातु । श्रुतराष्टु राहे ॥ ३ ॥
 किं संजयो दुखवलेनि अंतष्करणें । ह्यणे नवल नाहें देवें दवडणें ।
 हा आंतु मीं धडसा ह्यणे । तव आंतु ही आंधला ॥ ४ ॥
 परि हें असो आतां तो अर्जुनु । अद्वैताचा वाटवीतसे मानु ।
 किं तेया वरि आनु । धिवंमा मांडला ॥ ५ ॥

ह्मणे हे चि हृदया आंतुली प्रतीती ।
 बाहिरि अवतरो कां डोलेया प्रति ।
 यया चित्ताचां पाउली मती ।
 उठिती जाली ॥ ६ ॥
 मियां इहीं चि दोहीं डोलां । शोंबावें विश्वरूपा सकला ।
 येवढी हावं देंवांगला । ह्मणौनि करी ॥ ७ ॥
 आजि तो कल्पतरूची शाखा । ह्मणौनि वांझौलें न लागति देखां ।
 जें जें येईल तेयाचेया मुखा । तें साच कारितसे एरु ॥ ८ ॥
 जो प्रन्हादाचेया बोला । विषयो ही सकळ आपण जाला ।
 तो सद्गुरु असे जोडला । किरीटी तेया ॥ ९ ॥
 ह्मणौनि विश्वरूप पूसावेया लागि ।
 पार्थु रिगता होईल कवणी भंगी ।
 तें सांघिजैल पुढिल्लिये कथाप्रसंगी ।
 ह्मणे ज्ञानदे३० निवृत्तिचा दासु ॥ ३१० ॥

ॐ ॥ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां

योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो

नाम दशमोऽध्यायः ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



ज्ञानेश्वरी

अध्याय अकरावा

श्रीगणेशायनमः ॥

आतां एयावारि एकादशीं । कथा आहे दोहों रसिं ।
जेथ पार्था विश्वरूपेसीं । भेटि होइल ॥ १ ॥
जेथ शांताचेया घरा । अद्भुतु आला आहे पाहुणोरा ।
आणि येरां हिं रसां पांतिकरां । जाला मानु ॥ २ ॥
वधुवरांचिये मीलणीं । जैसे वन्हडियां हिं लुगडीं लेणीं ।
तैसे देशिचिये मुखासनीं । मिरवले रस ॥ ३ ॥
परि शांताद्भुत बरवें । जेथ डोलेयांचा अंजुलिं घेयावें ।
जैसे हरिहर प्रेमभावें । आले खेवां ॥ ४ ॥
नातारि अवसेचां दिसीं । भेटलीं दोन्हीं त्रिवें जैसीं ।
तेवि येकवला रसीं । केला जेथ ॥ ५ ॥
मीनले गंगेयमुनेचे उध्व । तैसें यां रसांचें जालें प्रयाग ।
हणौनि मुस्नात होंत जग । आववें एथ ॥ ६ ॥
मध्ये गीतासरस्वती गुपित । आणि दोन्ही रस बोध मूर्त्त ।
या लागि त्रिवेणी होये उचित । फावली बापा ॥ ७ ॥
एथ श्रवणाचेनि द्वारें । तीर्थिं रिगतां सोपारें ।
ज्ञानदेह हणें दातारें । माझेनि केलें ॥ ८ ॥

तीरें संस्कृताचीं गहनें । तोडूनि मन्हाटिया केलीं शब्दसोपानें ।
 रचिलीं धर्मनिधानें । निवृत्तिदेवें ॥ ९ ॥
 ह्मणौनि भलेतेणें एथ न्हावें । प्रयागीं माधवीं विश्वरूपातें पाहावें ।
 एतुलेनि संसारा देयावें । तिलोदक ॥ १० ॥
 हें असो ऐसें सावेव । जेथ सांसिनले आधि रसभाव ।
 जेथ श्रवणसुखाचीं राणिव । जोडली जगा ॥ ११ ॥
 जेथ शांताद्भुत रोकडे । आणि एरां रसां पडप जोडे ।
 हें अल्प चि परि उघडें । कैवल्य जेथ ॥ १२ ॥
 तो हा अकरावां अध्या३० । देवांचें आपणपें ठेविता ठा३० ।
 परि कैसा सदैवांचा रा३० । जें एथ हि पातला ॥ १३ ॥
 आदिं अर्जुनु चि काइ ह्मणों पातला ।
 आजि हा आवडतेया हि सुकालु जाला ।
 जें गीतार्थु हा आला ।
 मन्हाटिया ॥ १४ ॥
 एया चि लागि आतां माझें । विनविलें तें आइकिजे ।
 तरि अवधान आतां दीजे । सज्जनीं तुझीं ॥ १५ ॥
 आहो तेवि चि तुझां संतांचिये सभे ।
 ऐसी सलगि करुं न लभें ।
 परि मानावें जी लोभें ।
 अपत्या मातें ॥ १६ ॥
 आहो घुंसा आपण चि पढविजं ।
 मग बोलें तवें तवें माथा तूकिजे ।
 कां करविलेनि चोजें न रिजे ।
 बालका माए ॥ १७ ॥
 तेवि मी जें जें बोलें । तें प्रभू तुमचें चि केलें ।
 ह्मणौनि अवधारिजो आपुलें । आपण देवा ॥ १८ ॥

हें सारस्वताचें गोड । तुझीं चि लाविलें जी झाड ।
 तारि अवधानामृतें वाड । सिंपौनि कीजो ॥ १९ ॥
 मग हें रसभावफूलीं फुलैल । नाना फलभारें भरैल ।
 तुमचेनि प्रसादें होइल । उपयोगु जगा ॥ २० ॥
 येया बोला संत रिझले । ह्यणति तोखलों गा भलें केलें ।
 आतां साधें जें बोलिलें । अर्जुनें तेथ ॥ २१ ॥
 तवं निवृत्तिदासु ह्यणे । कृष्णा अर्जुनाचें बोलणें ।
 मीं प्राकृतु काइ सांघों जाणें । परि बोलवाल तुझीं ॥ २२ ॥
 आहो रानिचेयां पालेखाइरां । नेवाणें करविलें लंकेधरा ।
 एकला अर्जुनु परि अकरा । न जीणे क्षौणी ॥ २३ ॥
 ह्यणौनि समर्थु होये साहाकारी । मान्हवे कैसें सचराचारीं ।
 तुझीं संत तियापरीं । बोलवां मातें ॥ २४ ॥
 तारि आतां बोलतसें आइकां । हा गीताअभिप्राअ नीका ।
 जो वैकुंठनायका । मुखौनि निगाला ॥ २५ ॥
 बापु ग्रंथु गीता । जो वेदीं प्रतिपाद्य देवता ।
 तो श्रीकृष्णु वक्ता । जिये ग्रंथीं ॥ २६ ॥
 तेथिचें गौरव कैसें वानावें । जें शंभूचिये मतीसि नांगवे ।
 तें आतां नमस्कारिजे जीवें । हें चि भलें ॥ २७ ॥

अर्जुन उवाच ।

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
 यत्स्वयोक्तं वचस्तेन मोहोयं विगतो मम ॥ १ ॥

मग आइकां तो किरिटी । घाट्टनि विश्वरूपीं दीठि ।
 पहिली कैसें गोठि । करिता जाला ॥ २८ ॥
 हें सर्व ही सर्वेश्वरु । ऐसा प्रतीतिगतु जो पतिकरु ।
 तो बाहिरि हांआवा गोचरु । लोचनांसि ॥ २९ ॥

हे जीवाआंतुली चाड । परि देवा सांगतां सांकड ।
 जें विश्वरूप गूढ । कैसेनि पूसावें ॥ ३० ॥
 हणगे मागां कन्हणें काहीं । जें पढियंतेन पूसिलें नाहिं ।
 तें सहसा कैसें पाहिं । सांघा हणों ॥ ३१ ॥
 मीं जन्हीं सलग्नीचा चांगु । तन्हीं काइ आयिसांहूनि अंतरंगु ।
 परि तियें हीं हा प्रसंगु । पूसों भियालीं ॥ ३२ ॥
 मजसिं स्नेहें कारिति बोली । परि नाहिं गरुडाचेया येतुली ।
 तो ही सकट हे बोली । करुं न शके ॥ ३३ ॥
 मी काये सनकांदिकांहूनि आगला ।
 परि ते ही न करिती चि हा चाला ।
 आणि आवडैन काइ प्रेमला ।
 गोकुलिचेयांहूनि ॥ ३४ ॥
 तेयातें लेंकुरुपणें ज्ञांकविलें । एकांचे गर्भवास साहिले ।
 परि विश्वरूप हें राहविळें । दावि चि ना ॥ ३५ ॥
 हा ठावावेन्हीं गुज । याचिये अंतरिचें निज ।
 केवि उराउरीं मज । पूसों येईल ॥ ३६ ॥
 आणि न पुसों जरि हणें । तरि मुख न्हवैल अंतष्करणें ।
 मग काइ करावें जीणें । जीउनि आर्क्षीं ॥ ३७ ॥
 हणौनि पूसों आतां अलुमालु ऐसें । मग करुं दैवां ठाके तैसें ।
 एणें प्रवृत्तला साध्वसें । पार्थु बोळों ॥ ३८ ॥
 परि तें चि ऐसेनि भावें । जें येकां दो उत्तरांसवें ।
 दावी विश्वरूप आघवें । झाडा देउनि ॥ ३९ ॥
 जैसें वांसरुं देखिलेयां दीठी । धेनु खडपडौनि मोहें उठी ।
 मग स्तनामुखाचिये भेटी । काइ पान्हा धरे ॥ ४० ॥
 तैसा पांडवाचेनि नावें । जो कृष्णु रानी येका धांवें ।
 तेयातें जवं अर्जुनें पूसावें । तवं साहील काई ॥ ४१ ॥

तो साहाजें स्नेहाचें अवतरण । आणि येरु स्नेहा घातलें माजवण ।

ऐसिये मिलणी वेगलेपण । उरे हें चि बड्ड ॥ ४२ ॥

हणौनि अर्जुनाचेया बोला सारिंसा ।

दे३० विश्वरूप होईल आपैसा ।

तो चि पहिला प्रसंगु कैसा ।

आइकिजो तरि ॥ ४३ ॥

मग पार्थु देवातें हणो । जें तुहीं मजकारणें ।

वाच्य केलें बोलणें । कृपानिधी ॥ ४४ ॥

जें महाभूतें ब्रह्मीं आटति । जीव महदादिचे ठाये फीटति ।

तें दे३० होउनि जें ठांति । तें त्रिसंवणें शेषिचें ॥ ४५ ॥

होतें हृदयाचां परीवरीं । रोविलें कृपणाचिया परीं ।

शब्दब्रह्मासीं चोरी । जेयाची केली ॥ ४६ ॥

तें तुहीं जी आपुलें । मज पुढां हियें फोडिलें ।

जें अध्यात्म बोवाळिलें । ऐश्वर्य हरे ॥ ४७ ॥

ते वस्तु मज स्वामीं । एकाहेला दीधली तुहीं ।

हें बोलों हणतां तरि आहीं । तूं पाहूनि कैचें ॥ ४८ ॥

परि साच चि मोहाचां महापुरीं । बुडालेयां देखौनि सीसवेन्हीं ।

तूं आपणपें घातलें हरीं । मग काढिलें मातें ॥ ४९ ॥

एकु तूवांचूनि काहिं । विश्वि दूजेयाची भाष नाहिं ।

किं आमचें कर्म पाहीं । जें आक्षिं आथि हणों ॥ ५० ॥

मीं जगीं येकु अर्जुनु । ऐसा देहिं वांधें अभिमानु ।

आणि कौरवांतें यां स्वजनु । आपुला हणें ॥ ५१ ॥

या ही वारि यांतें मीं मारीन । तणें पापें फांड करीन ।

ऐसें देखतु होतां दुस्वप्न । तो चेवविळां तुहीं ॥ ५२ ॥

देवा गंधर्वनगरां वसती । टाकुनु गेलेयां लक्ष्मीपती ।

होतां उदकाचिया आर्तीं । रोहिणी पांनु ॥ ५३ ॥

जी कीडरं तरि कापडाचें । पारि लाहरी येत होती साचें ।
 ऐसेनि वायां मरतेया जीविताचें । श्रेय तुवां घेतलें ॥ ५४ ॥
 आपुलें बिब नेदखतां । सिंहु कुहां घालील देखों आतां ।
 ऐसा धरिजे तेवि अनंता । राखिलें मातें ॥ ५५ ॥
 यन्हविं तरि माझा एतुले वेन्हीं । येथ निश्चयो होता अवधारीं ।
 जें आतां चि सातें सागरीं । एकवाट मिलिजो ॥ ५६ ॥
 हें युग चि आघवें बुडावें । वारि आकाश ही तूटौनि पडावें ।
 पारि जूझणें मज नोहावें । गोत्रेंसिं पै ॥ ५७ ॥
 ऐसिया अहंकाराचिया वाढी । मियां आप्रहजलिं दिघली बुडी ।
 चांग चि जवला तूं यन्हविं काढी । कोण मातें ॥ ५८ ॥
 नाथिलें आपणपें येक मानिलें ।
 आणि न्हवतेया नावं गोत्र ठेविलें ।
 धोर पिसें होतें लागलें ।
 पारि राक्षलां तुहीं ॥ ५९ ॥
 मागां जलत काढिलों जौहरीं ।
 तैं तें देहासी चि भय अवधारीं ।
 आतां हे जौहरवाहर दुसरी ।
 चैतन्या सकट ॥ ६० ॥
 दुराप्रहे हिरण्याक्षें । माझि बुद्धि सूदली कक्षे ।
 मग मोहार्णवगवाक्षें । रिगौनि ठेला ॥ ६१ ॥
 एथ तूझेनि गोसांविपणें । येकोल बुद्धीचेया ठाया येणें ।
 हें दुसरें वराहो होणें । पडिलें तुज ॥ ६२ ॥
 ऐसें ऐसें अपार तूजें केलें । एकी वाचा मीं काइ बोलें ।
 पारि जें पांचे पालव मोकलिले । मजप्रति ॥ ६३ ॥
 तें काहीं न वचे चि वायां । भलें यश फावलें देवराया ।
 जें साद्यंतां माया । निरसिली आजी ॥ ६४ ॥

जी आनंदसरोवरिचीं कमलें । तैसे हे तूझे डोले ।
 आपुलेया प्रसादाचीं राउलें । जेया लागि करिति ॥ ६५ ॥
 हां हो तेया ही आणि मोहाची भेटी ।
 हे काइसी जी पावली गोटी ।
 केउति मृगजलें वृष्टि ।
 वडवानलेंसीं ॥ ६६ ॥
 आणि मी तवं दातारा । इये कृपेचां रिघौनि गाभारां ।
 घेतसें चारा । ब्रह्मरसाचा ॥ ६७ ॥
 तेणें मात्रा जी मोहो जाए । एथ विस्मो काइ आहे ।
 परि उद्धरलं तूझे पाए । सितले आधि ॥ ६८ ॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।

त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यपपि चाव्ययम् ॥ २ ॥

पैं कमलायतन डोलसा । सूर्यकोटितेजसा ।
 मियां तुज पासौनि महेशा । परिसिलें आजि ॥ ६९ ॥
 इयें भूतें जेया परीं होंति । अथवा लया हान जांति ।
 ते मज पुढें प्रकृति । विवंचिली देवें ॥ ७० ॥
 आणि प्रकृती कौरु उगाणा दीन्हला ।
 परि पुरुषाचा ही ठाउ फेडिला ।
 जेयाचा महिमा पांगुरौनि जाळा ।
 धडौता वेदु ॥ ७१ ॥
 कां शब्दराशि वाढे जिये । कां धर्मा ऐसेयां रत्नातें विये ।
 तें तेथिचिये प्रमेचे पाए । उलगे ह्यणौनि ॥ ७२ ॥
 ऐसें अगाध माहात्म । जें सकल मार्गा एकगम्य ।
 जें स्वयं आत्मानुभवम्य । तें इयापरीं दाविलें ॥ ७३ ॥
 जैसा केरु फीटलेयां अमालीं । दांठि रिगे सूर्यमंडलीं ।
 कां हातें सारुनि बाबुची । जल देखिजे ॥ ७४ ॥

नां तरि उकलतेयां सापांचा वेढे । जैसें चंदना खेवं देणें घडे ।
 अथवा विवसी पले मग चडे । निधान हाता ॥ ७५ ॥
 तैसी प्रकृति हे आड होंती । ते देवें चि सारुनि केली परौती ।
 मग परतत्व माझिये मती । सेजार केलें ॥ ७६ ॥
 ह्मणौनि इयें विखिंचा मज देवा । प्रत्यो घडला माझेया जीवा ।
 परि आणिकु येकु हेवा । उपजतु असे ॥ ७७ ॥
 तो भिडा जारि ह्मणों राहों । तरि आणिक कवणा सांघों जाउं ।
 काइ तुज वांचूनि ठाउं । आणिकु असे ॥ ७८ ॥
 जलचर जलाचा आभारु धरी ।
 बालक स्तनपानीं उपरोशी करी ।
 तरि तेयासि जियावेया हरी ।
 उपाउं आणिकु असे ॥ ७९ ॥
 ह्मणौनि भिड सांकडि न धरवे । आवडे ते तुज पुढां बोलवें ।
 तव राहे ह्मणितलें देवें । चाड सांघें ॥ ८० ॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।

द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमेश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

मग बोलिला तो किरिटी । ह्मणे तुहीं जे केली गोठि ।
 तिये प्रतीति दिठी । निवाली माझी ॥ ८१ ॥
 आतां जेयाचेनि संकल्पें । हे लोकपरंपरा आरोपे ।
 जेया ठायतें आपणपें । मीं गा ह्मणसी ॥ ८२ ॥
 जें मूलस्वरूप तूजें । जेथौनि इयें द्विभुजें चतुर्भुजें ।
 सोआंगें मुरकार्याचेनि व्याजें । घेउं घेउं येसि ॥ ८३ ॥
 जलसेनाचिया गवसणियां । मछ कूर्मु इया मिरवणियां ।
 खेळु सरलेयां तुं गुणियां । सांटविसि जेथें ॥ ८४ ॥
 उपनिषदें जें गाति । योगिये ह्दइं रिगौनि पांति ।
 जेयातें सनकादिक आहाति । पोडवूनियां ॥ ८५ ॥

ऐसें अगाध जें तूझे । विश्वरूप कानीं आइकिजे ।
 तें देखावेया चित्त माझे । उताविल देवा ॥ ८६ ॥
 देवें फेडूनियां सांकड । लोभें पूसिली जरि चाड ।
 तरि हें चि एक वाड । आर्त्त जी मज ॥ ८७ ॥
 तूझे विश्वरूप आघवें । माझिये दीठीसि गोचर होआवें ।
 ऐसी थोर आश जीवें । घेतली असे ॥ ८८ ॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
 योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

पण एथ आणिक एक शारंगी ।
 तुज विश्वरूपातें देखावेया लागि ।
 योग्यता माझां आंगीं ।
 असे किं नाहिं ॥ ८९ ॥
 हें आपुलें आपण मीं नेणें । तें कां नेणासि जरि देऊ हणें ।
 तरि सरोगु काड जाणे । निदान रोगाचें ॥ ९० ॥
 आणि आर्त्तिचेंनि पडिभरें । आर्त्तु आपुली टाकि पां विसरे ।
 जैसा तान्हैला हणें न पुरे । समुद्र हा मज ॥ ९१ ॥
 ऐसी सचाडपणाचिया भूली ।
 न संभाली सवियां समस्या आपुली ।
 यया लागि योग्यता माउली ।
 बालाची जाणे ॥ ९२ ॥
 तेया पारि जनार्दना । विचारिजो माझी संभावना ।
 मग विश्वरूपदर्शना । उपक्रमु किजो ॥ ९३ ॥
 तारे तैसी ते कृपा करा । एन्हविं न्हवे हणां अवधारां ।
 वायां चि पंचमालापें वधिरा । मुख केरतें देणें ॥ ९४ ॥

एन्हविं एकलेया बापैयाचिये तृषे ।
 मेघु जगा पुरतें काइ न वरिखे ।
 परि ते ही वृष्टि उपखे ।
 जरि खडकां वरि होए ॥ ९५ ॥
 चकोरां चंद्रामृत फावलें । एरां आणवाउनि काइ वारिलें ।
 परि डोलां विण पाहालें । वायां चि जाए ॥ ९६ ॥
 ह्यणौनु विश्वरूप तूं सहसा । दाविसी किरु भरवसा ।
 जें कां कडाडां आणि गहिंसासा । नीच नवा तूं किं ॥ ९७ ॥
 तूझे औदार्य जाणों स्वतंत्र । देतां न ह्यणसि पात्रापात्र ।
 न्हवे कैवल्य ऐसें प्रवित्र । वैरियां दीन्हलें ॥ ९८ ॥
 मोक्षु दुराराध्यु किरु होये । परि तो ही आराधी तूझे पाये ।
 ह्यणौनि धाडिसी तेथ जाये । पाइकु जैसा ॥ ९९ ॥
 तुवां सनकादिकांचेनि मानें । सायुर्जी सौरसु केला वृत्तने ।
 जें विषाचेनि स्तनपानें । रुसली तुज ॥ १०० ॥
 हां गा राजसूयाचां सभासदीं । देखतां त्रिभुवनिची मांदी ।
 कैसा शतधा दुर्वादीं । निस्तेजिलासि ॥ १ ॥
 कि तुवां तेया शिशुपाला । आपणपां ठाउ दीधला गोपाळा ।
 आणि उतानचरणाचेया बाला । काइ ध्रुवपदें चाड ॥ २ ॥
 तो वना आला या चि लागी । जें बैसावें पितेयाचां उत्संगीं ।
 किं सूर्यादिकां लागीं । परि लिंगु जाला ॥ ३ ॥
 ऐसा वनवासियां वश्यु जाला । देतां कवतिकिं तूं चि बेल्हाला ।
 पुत्र पाहातां अजमीला । परत्वानेसी मां ॥ ४ ॥
 जेणें उरीं हालासि पांपरा । तेयाचे विनट वाहासि दातारा ।
 अद्भुनि वैरियाचिया कळेवरा । विसंबसि ना ॥ ५ ॥
 ऐसा अपकारियां तूझा उपकार । तूं अपात्रीं हीं उदार ।
 दे दान ह्यणौनि दारवठेकार । जालासि बलिचा ॥ ६ ॥

तूतें आराधितां नाइकें । होंती राउवें बोलाविति कवतिकें ।
 तिये वैकुंठीं तुवां गणिके । सुरवाडु केला ॥ ७ ॥
 ऐसी पाहों पाहों वायाणी मीसैं ।
 लागसि आपणपें देउं वानिवसैं ।
 तो तूं कां अनारिसैं ।
 मज लागीं करिसी ॥ ८ ॥
 हां गा दुभतेयाचेनि पवाडें । जे जगाचे फेडी सांकडें ।
 तिये कामधेनूचे पाडे । भूखेंले टांति ॥ ९ ॥
 ह्यणौनि विनविलें मियां काहीं ।
 तें देउं न दखविति हें किरु नाहिं ।
 पारि देखावेंया पाहीं ।
 पात्रता मज ॥ ११० ॥
 तूजें विश्वरूप आकले । ऐसैं करावें गोपालें ।
 तरी चि आर्त्तिचे डोहोले । पुरती देवा ॥ ११ ॥
 ऐसी ठायेंटाउं विनती । जवं करुं सरैली सुभद्रापती ।
 तवं तेया पद्मगुणचक्रवर्त्ती । साहवे चि ना ॥ १२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पदय मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।

नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतानि च ॥ ५ ॥

तो कृपार्थीवृष सजलु । आणि येरु जवलां आला वरिपाकालु ।
 नाना कृष्णु तो कोकिलु । अर्जुनु वसंतु होए ॥ १३ ॥
 ह्यणौनि चंद्रविंव वाटुलें । देखौनि क्षीरसागरु उचुंबले ।
 तैसा दुणे ही वरि प्रेमवलें । उल्हासितु जाला ॥ १४ ॥
 मग तिये प्रसन्नतेचेनि आटोपें । गाजौनि ह्यणितलें सङ्घपें ।
 पार्था देख उमपें । रूपें माझीं ॥ १५ ॥

एकं चि विश्वरूप देखावें । ऐसां मनोरथु केला पांडवें ।
 किं विश्वरूपमय आववें । करुनि घातलें ॥ १६ ॥
 बापु उदारु देउ अपरिमितु । याचक सवे सदोदितु ।
 आहंसें सहस्र वरि देंतु । सर्वस्व आपुलें ॥ १७ ॥
 आहो शेषाचे डोले चोरिले । वेद जेया लागिं झांकविले ।
 लक्ष्मीये ही परि राहिलें । जिन्हार जें ॥ १८ ॥
 तें आतां प्रकटूनियां अनेकधा । करीत विश्वरूपदर्शनांचा धोंधा ।
 बापु भाग्या अगाधा । पार्थाचेया ॥ १९ ॥
 जो जागतां स्वप्नावस्थे जाए । तो जेवि स्वप्निचें आववेंचि होए ।
 तें चि अनंत ब्रह्मकटाहो आहे । जें आपण जाला ॥ १२० ॥
 ते चि सहसा मुद्रा सोडिली ।
 आणि हे स्थूल दृष्टिची जवनीक फेडिली ।
 किं बहुना उघडिली ।
 योगनिधि ॥ २१ ॥
 परि हा देखैल किं नाहिं । ऐसां से चि न करी काहिं ।
 एकसरा ह्यणतसे पाही । स्नेहातुरु ॥ २२ ॥
 अर्जुना तुवां एक दाया ह्यणितलें ।
 आणि तें चि दाउं तरि काइ दाविलें ।
 आतां देखैं आववें भरलें ।
 माझां चि रूपीं ॥ २३ ॥
 एकें कुरों एकें स्थूलें । एकें ह्रस्वें एकें विशालें ।
 एकें खुर्जीं एकें सरलें । अप्रातें एकें ॥ २४ ॥
 एकें अनावरें प्रांजलें । सव्यापारें येकें निश्चलें ।
 उदासिनें स्नेहालें । तीत्रें एकें ॥ २५ ॥
 एकें घूर्णितें सावधें । आसलगें एकें अगाधें ।
 उदारें अतिवद्वें । क्रुद्धें येकें ॥ २६ ॥

एकें शांतें सदमदें । स्तब्धें एकें सानंदें ।
 गर्जतें एकें निःशब्दें । सौम्यें एकें ॥ २७ ॥
 एकें साभिलाषें विरक्तें । उन्निदें एकें निद्रितें ।
 परि तुष्टें आत्तें । प्रसन्नें एकें ॥ २८ ॥
 एकें मुपूजितें सशास्त्रें । संग्गाथिलीं स्वतंत्रें ।
 रौद्रें अति मैत्रें । लयस्थें एकें ॥ २९ ॥
 एकें जनलीलाविलासें । एकें पालनशीलें लाळसें ।
 एकें संहारकें सावेशें । साक्षिभूतें ॥ ३० ॥
 एवं नानाविधें परि बहुवसें । आणि दिव्यतेजप्रकाशें ।
 तैत्रिं चि येक येका ऐसें । वर्णिं हिं नव्हे ॥ ३१ ॥
 एकें तातलें साडपन्हरें । तैसिं कापिलवणें अपारें ।
 एकें सरागें जैसिं सेंदुरें । डवरलें नभ ॥ ३२ ॥
 एकें सवियां चि चुलकिं ।
 जैसें ब्रह्मकटाह खेवणिलें माणिकिं ।
 एकें अरुणोदया सारखीं ।
 कुंकुमवणें ॥ ३३ ॥
 एकें शुद्ध स्फटिकें सहोजलें । एकें इंद्रनीलसुनीलें ।
 एकें अंजनवर्ण सकालें । कृष्णवर्णें एकें ॥ ३४ ॥
 ल्हासत कांचन पीवलें । एकें नवजलदश्यामलें ।
 एकें चापेगोरिं केवलें । हरितें एकें ॥ ३५ ॥
 एकें तप्तताम्रतांबडीं । एकें श्वेतचंद्रचोखडीं ।
 ऐसीं नाना वर्णें रूपडीं । देख माझिं ॥ ३६ ॥
 हे जैसे कां नाना वर्ण । तैसें प्रकृतीं अनारिसेंपण ।
 लाजा कंदर्पु रिगाला शरण । तैसिं मुंदरें रूपें ॥ ३७ ॥
 एकें आयें लावण्यसाकारें । एकें देख अति मनोहरें ।
 श्रिगारश्रियेचीं भांडारें । उघडिन्नीं जैसीं ॥ ३८ ॥

एकें पीनावयव मांसले । एकें सुघोरें अति करालें ।
 एके दीर्घे कांतिविमलें । विकटें एकें ॥ ३९ ॥
 एवं नाना विधा आकृती । या पांहातां पार नाहिं सुभद्रापती ।
 यांचां एकीं आंगप्रांतीं । देख पां जग ॥ १४० ॥

पश्यादित्यान्वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।

यहन्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥

जेथ उन्मीलन होतसे दीठी । तेथ पसरत आदित्यांचिया शृष्टी ।
 पुंडुतीं निमिलिणी मीठी । देत आहाति ॥ ४१ ॥
 वदनाचिये वाफे सवें । होत ज्वालामय आघवें ।
 तेथ पावकादिक पावे । समूह वस्तूचें ॥ ४२ ॥
 आणि भ्रूलतांचे सेवट । कोपें मीळें पांत येकवट ।
 तेथ रुद्रगणाचे संघाट । अवतरत देखां ॥ ४३ ॥
 पै सौम्यतेचा बोलावा । मीति नेणिजे अश्विनौ देवां ।
 श्रोत्रिं होत पांडवा । अनेक वायु ॥ ४४ ॥
 या परीं एकैकाचिये लीले । जन्मते मुरसिद्धांचि कुलें ।
 ऐसि अपारें आणि विशालें । रूपें ये पाहे ॥ ४५ ॥
 जेयातें सांवावेया वेद ब्रौवडे । पाहावेया कालाचें आयुष्य तोकडें ।
 धात्रेया ही परि न संपडे । ठावो जेयांचा ॥ ४६ ॥
 जेयातें देवत्रयी कहिं नाइके । तियें इयें देख अनेकें ।
 भोगिं आश्चर्याची कवतिकें । महासिद्धी ॥ ४७ ॥

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।

मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्दृष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

इयां मूर्त्तिचां किरीटी । रोममूलीं देख पां श्रुष्टि ।
 पर्वति तरुतलवटीं । तृणांकुर जैसे ॥ ४८ ॥
 आणि वातायनीं आकाशें । उडत परमाणु दीसति जैसे ।
 भ्रमत ब्रह्मकटाह तैसे । अवेवसंधी ॥ ४९ ॥

एथ एकी चि प्रदेशीं । विश्व देख पां विस्तरेंसिं ।
 आणि विश्वा परौते मानसिं । देखावें वर्ते ॥ १५० ॥
 परि ते ही विपिचें काहिं । एथ सर्वथा सांकडें नाहिं ।
 सुखें आवडे तें माझां देहीं । देखसील तूं ॥ ५१ ॥
 ऐसें विश्वमूर्तीं तेंणें । बोलिलें कारुण्यपूर्णें ।
 तव देखतु आहे कां न ह्मणे । निवांतू चि एरु ॥ ५२ ॥
 एथ तें काइ पां हा उगला । ऐसा कृष्णें येवि पाहिला ।
 तव आर्त्तिचें लेणें लेइला । तैसा चि आहे ॥ ५३ ॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

मग ह्मणे उत्कंठें उहटु न पडे ।
 आझुई सुखाचि सोय न संपडे ।
 परि दाविलें तें फुडें ।
 नाकले चि येया ॥ ५४ ॥
 ऐसें बोलौनि देउ हांसिले । कां गा देखणेयां ह्मणितलें ।
 आह्मीं विश्वरूप तारि दाखविलें । परि नेदखसि तूं ॥ ५५ ॥
 यया बोला एरें विचक्षणें । ह्मणितलें हां जी तें कवणासि उणें ।
 तुह्मीं बकाकरवि चादिणें । । चरौं पाहा ॥ ५६ ॥
 हां हो उटूनिया आरिसा । आंधलेया पुढें दाखउं बैसा ।
 ना बहिरीसि ह्मणिकेसा । गाणें केउतें ॥ ५७ ॥
 मकरंदकणाचा चारा । घालुं जातां दर्दूरा ।
 वायां धाडा मग सारंगधरा । कोपा कवणां ॥ ५८ ॥
 जें अतींद्रिय ह्मणौनि व्यवस्थलें । केवळ ज्ञानें दिष्टिचेया भागा फीटलें ।
 ते तुह्मीं चर्मचक्षू पुढां मूदलें । मग कैसेनि देखों ॥ ५९ ॥
 परि तें तुमचें उणें न बोलवें । मीं चि साहें तें बरवें ।
 एथ आधि ह्मणितलें देवें । मानू बापा ॥ १६० ॥

साच चि विश्वरूप आह्मीं दावावें ।
 तरि आधिं देखावेया सामर्थ्य देयावें ।
 पारि तुज बोवांतां हिं प्रेमभावे ।
 धसाल गेलों ॥ ६१ ॥
 काइ जालें न व्हातां भूमि पेरिजे ।
 तरि तो वेलु किर सिक्किलेयां जाइजे ।
 आतां माझे निज देखिजे ।
 ते दृष्टि देउं ॥ ६२ ॥
 मग तेया दृष्टी पांडवा । आमचा ऐश्वर्ययोगु आघवा ।
 देखौनियां अनुभवा । माक्षिवडा करीं ॥ ६३ ॥
 ऐसें वेदांतवेचें । सकललोकआघें ।
 बोलिलें आराध्यें । जगाचेनि ॥ ६४ ॥

संजय उवाच ॥

एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः ।
 दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥
 पै कौरवकुलचक्रवर्ती । मज हा चि विस्मो पुडुतीं पुडुतीं ।
 जें श्रियेहूनि त्रिजगतीं । सदैवं असे कवण ॥ ६५ ॥
 ना तरि खुणेचें वानावेया लागि ।
 श्रुती वांचूनि दावा पां जगीं ।
 ना तरि सेवकपण आंगीं ।
 शेपाचां असे ॥ ६६ ॥
 हां हो याचेनि हिं सोसें । सीणति आठे पाहार योगिये जैसें ।
 अनुसरलें गरुडा ऐसें । कोणहीं आहे ॥ ६७ ॥
 पारि तें आघवें चि एकीकडे ठेलें । सापें ऋण्यसुखा एकंदरें जालें ।
 जियें देउनि कां जन्मले । पांडव हे ॥ ६८ ॥

पारि पांचां हिं आंतु अर्जुनां । कृष्णु सवियां चि जाला अधीना ।
 कानिकु जैसा अंगना । आपैता कीजे ॥ ६९ ॥
 पढविलें पाखिरुं ऐसें न वोलें ।
 या परीं क्रीडामृगु हि संदे न चले ।
 कैसें देव एथ सुरवाडलें ।
 तें जाणवेना ॥ १७० ॥
 आजि परब्रह्म हें सावलें । भोगावया सदैवाचे डोले ।
 कां वाचेचे हान लळे । पालित कैसें ॥ ७१ ॥
 हा कोपे तरि निवांतु साहे । हा रुसे तरि बुझावितु जाये ।
 नवल पीसें लागलें आहे । पार्थाचें कृष्णां ॥ ७२ ॥
 येन्हविं विमो जीणौनि जन्मले । जे शुक्रदेवादिक दादुले ।
 ते विमो चि वाणिते जाले । भाट येयाचे ॥ ७३ ॥
 हा योगियांचें समाधिधन । किं होउनि ठेल्य पार्थाधीन ।
 यया लागि विस्मो माझे मन । करितसे राया ॥ ७४ ॥
 तेविं चि संजयो ह्यणे काइसा । विस्मो एथ कौरवेशा ।
 कृष्णें स्वीकारिजे तेया आपैसा । भाग्यउदो होए ॥ ७५ ॥
 मग ह्यणे देवांचा राउ । आतां पार्था नुज ते दृष्टि देउ ।
 जिया विश्वरूपाचा टाउ । देखसी तूं ॥ ७६ ॥
 ऐसिं श्रीमुखौनि अक्षरें । निगति ना जवं एकसरें ।
 तवं अविद्येचें आंधरें । निगौनि गेलें ॥ ७७ ॥
 मग दिव्य चक्षु प्रकटला । तें ज्ञानदृष्टी पाटा फूटला ।
 या परीं दाखविता जाला । ऐश्वर्य आपुलें ॥ ७८ ॥
 हे अवतार जे सकल । ते जिये समुद्रिचे कां कल्लोळ ।
 विश्व हें मृगजल । जेयां रश्मीतव दीसे ॥ ७९ ॥
 जिये अनादि भूमिके नीटे । चराचर हें चित्र उमटे ।
 तणें आपणपें वैकुण्ठें । दाविलें तेया ॥ १८० ॥

मागां बालपणें एणें श्रीपती । जे वेलु एकु खादली माती ।
 तें कोपौनियां हातीं । यशोदा धारला ॥ ८१ ॥
 मग भेण भेण जैसें । मुर्खीचा झाडा देयोवेयाचेनि मीसें ।
 चौदा हीं भुवनें अवकाशें । दाविलीं तियें ॥ ८२ ॥
 नां तरि मधुवनीं धृवासि केलें । जैसें कपोल शकें सितलें ।
 आणि वेदांचिये ही मती ठेलें । तें लागला बोलें ॥ ८३ ॥
 तैसा अनुग्रहो पै राधा । श्रीहूरी केला धनंजया ।
 आतां कवणी कडे माया । ऐसी भाप नेणे तो ॥ ८४ ॥
 एकसरें ऐश्वर्यतेजें पाहलें । तेया चमत्कारातव एकार्णव जालें ।
 चित्त समर्जा बुडालें । विस्मयाचां ॥ ८५ ॥
 जैसा आत्रह्यपूर्णादिकि । पव्हे मार्कडेया एकाएकी ।
 तैसा विश्वरूपी कवतिकीं । पार्थु लोले ॥ ८६ ॥
 ह्मणे केवढें गगन एथें होतें । तें कवणें नेलें पां परांतें ।
 तियें चराचरें महाभूतें । काइ पां जालीं ॥ ८७ ॥
 दिशांचे टापे हारपले । अबोध्व काइ नेणां जालें ।
 चंडलेयां स्वप्न गेलें । लोकाकार ॥ ८८ ॥
 नाना सूर्यतेजप्रतापें । चंद्र तारांगण जैसिं लेंपे ।
 तैसिं गीलिलीं विश्वरूपें । प्रपंचानि ॥ ८९ ॥
 तेव्हलि मनासि मनपण न स्फुरे । बुद्धिसि आपणपें न संवरे ।
 इंद्रियांचे रश्मि माघारे । हृदय वेन्हीं भरले ॥ ९० ॥
 तेथ तटस्थ तटस्थ पडिलें । ठकासि ठक मांडलें ।
 जैसें मोहनाख्र घातलें । विचारजातां ॥ ९१ ॥
 तैसा विस्मितु पाहे कोडें । तव पुढां चतुर्भुज होतें रूपडें ।
 तें चि नानारूप चौही कडे । मांडानि ठेलें ॥ ९२ ॥

अनेकवक्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।

अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

जैसे वरिखाकालिचें मेहुडें । कां महाप्रलङ्घें तेज जंभुडें ।
 तैसें आपणेनि विण कव्हणी कडे । नेंदी चि उरों ॥ ९३ ॥
 मग देखे तेथ सेंघ वदनें । जैसे रमणिकाचीं राजभुवनें ।
 नाना प्रकटलीं निधानें । लावण्यांचीं ॥ ९४ ॥
 किं आनंदाचि वनें सांसिनलीं । जैसी सौंदर्या राणीव जोडली ।
 तैसें मनोहरें देखिलीं । हरिवक्त्रें तेंगे ॥ ९५ ॥
 तेया हि माजि एकैके । सवियां चि भयानके ।
 कालरात्रीचीं कटके । उठावलीं जैसीं ॥ ९६ ॥
 किं तियें मरणासी चि मुखें जालीं ।
 नां तारि भयाचि दुर्गे पानासिलीं ।
 महाकुंडें उघडिलीं ।
 प्रलयानलाचीं ॥ ९७ ॥
 तैसें अद्भुतें भयासुरें । तेथ वदनें देखिलीं वीरें ।
 आणिकें हीं साधारणें साकारें । सौम्यें हिं बहुतें ॥ ९८ ॥
 पै ज्ञानदृष्टीचेनि अवलोकें । परि वदनाचा सेवटु न टके ।
 मग लोचन ते कवतिकें । लागला पाहों ॥ ९९ ॥
 तत्रं नानावर्णे कमलवनें । विकाशलिं तैसें अर्जुनें ।
 डोलां देखिलीं पालिंगणें । भादित्यांचिं जैसिं ॥ २०० ॥
 तेथ कृष्णमेवांचिया झांटी । माक्षि कल्पांतविज्जुंचिया फूटी ।
 तैसिया वन्हीं पिंगला दीठी । भुवां तलीं ॥ १ ॥
 एकैक आश्चर्य पाहतां । तिये येकी चि रूपिं पांडुसुता ।
 दर्शनाची अनेकता । प्रतिस्फालिली ॥ २ ॥
 मग ह्मणे चरण ते कवणी कडे । केउते मुकुट दोडेंडे ।
 ऐसिं वाढविताहे कोडें । चाडा देखावेया ॥ ३ ॥
 तेथ भाग्यनिर्धी पार्था । कां विफल होईल मनोरथा ।
 काइ पिनाकपाणिचां भातां । वायकांडें आधि ॥ ४ ॥

ना तारि चतुराननाचिये वाचे । आहाति लटेक्यां अक्षरांचे सांचे ।

हणौनि सायंतपण अपाराचें । देखिलें तें ॥ ५ ॥

जेयाची सोये वेदां न कले । तेयाचे अवयव एके वेलें ।

अर्जुनाचे दोन्ही डोळे । भोगिते जाळे ॥ ६ ॥

चरणौनि मुगुटु वेन्हीं । देखतु विश्वरूपाची थोरी ।

जे नाना रत्न अलंकारीं । मिरवतसे ॥ ७ ॥

परब्रह्म आपुलेनि आंगें ।

लेयाविया आपण चि जाळा जियें अनेगें ।

तियें लेणीं मी सांचें ।

काइसेया सारिलिं ॥ ८ ॥

जिये प्रभेचिया झळाला । उजालु चंद्रा आदियमंडला ।

जें महातेजाचा जिवाला । जेणें विश्व प्रकटे ॥ ९ ॥

तें दिव्य तेज श्रिगार । तो कवणाचिये मतीं होईल गोचर ।

देऊ आपणपें लेइला तें वीर । देखतसे ॥ २१० ॥

मग तो चि विज्ञानाचां डोळां । घाली करपळ्यां जव सरलां ।

तव तौडिति कल्पातिचिया ज्वाला । तैसिं शस्त्रें देखिलीं ॥ ११ ॥

जेयाचेयानि किरणाचेनि खरेपणें । नक्षत्रांचे होंति फुटाणे ।

तेजें खिरडला वन्हि हणें । समुद्रि रिगों ॥ १२ ॥

कालकूटकळोलीं कवलिलें । नाना महा अविद्यांचें दांग उमटलें ।

तैसे अपार कर देखिले । उचतायुधीं ॥ १३ ॥

दिव्यामाल्यांवरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ।

सर्वाश्चर्यमयं देवमनंतं विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

किं भेणें तैथौनि काढिली दीठी । मग कंठमुगुट पांतसे किराटी ।

तव मुरतरुंचिया शृष्टी । जेया पातौनि जालिया ॥ १४ ॥

जियें महासिद्धिचीं मूलार्थें । सीणली कमथ जेथ वाचेट ।

तियें कुमुमें अति चोखटें । तुरंविळीं देखिलीं ॥ १५ ॥

मुकुटां वारं स्तवक । ठांइं ठांइं पूजाबंध अनेक ।
कांठिं खलताति अलौकिक । मालादंड ॥ १६ ॥
स्वर्गे सूर्यतेज वेदिलें । जैसें पन्हरेनि मेरुतें मढिलें ।
तैसें तें वारि गाढिलें । पीतांबर झलके ॥ १७ ॥
श्रीमहादेउ कर्पुर्ने उटिला । कां कैलामु पारजें डवारिला ।
नाना क्षीराब्धि पांगुरयिला । क्षीरोदकें ॥ १८ ॥
कां तरि चंद्र मेघाची घडी उकलली ।
मग गगना करवि ब्रूथि घेवविली ।
तैसी चंद्रनर्पिजरी देखिली ।
सर्वांगीं तेणें ॥ १९ ॥
जेणें प्रकाशा कांति चढे । ब्रह्मानंदाचा दाघु मोडे ।
जें ब्रह्माचेनि जीवन सौरभ्यें जोडे । वेधवतिये ॥ २२० ॥
जेयांचें निर्लेपु अनुलेपन करी । जे निर्लेपु ही सर्वांगिं धरी ।
तेया मुगंधाची थोरी । कवण पां वानीं ॥ २१ ॥
ऐसी एकैक श्रिंगारशोभा । पाहातां अर्जुनु जांतसे क्षोभा ।
तेविं चि देउ वैसला कीं उभा । शयानु हें नेणे ॥ २२ ॥
वाहिरि दीठि उघडूनि पाहे ।
तत्रं आघवें मूर्तिमय देखतु आहे ।
आणि न पाहों ह्यणौनि उगा चि राहे ।
तरि आंतु ही तैसें चि ॥ २३ ॥
विशाल रूपें समोर देखे । तेया येण पाठिमोरा जवं ठाकें ।
तत्रं तिकडें हीं श्रीमुखें । कर चरण तैसें चि ॥ २४ ॥
आहे! पांतां किर प्रतिभासे । येथ नवल सांवो पां कांइ असे ।
परि न पांतां हिं दीसे । चोज आइका ॥ २५ ॥
कैसें अनुग्रहाचें करणें । पार्थाचें पाहणें आणि न पाहणें ।
नेया हीं सकट नागयणें । व्याघ्रनि घातलें ॥ २६ ॥

ह्यपौनि आश्रयांचां पुरीं एकीं । पडिला ठायें ठा३० थडीं टाकी ।
 तवं चमत्काराचां आणिकिं । महार्णविं पडे ॥ २७ ॥
 ऐसा अर्जुनु असाधारणें । आपुलेया दर्शनाचेनि विंदाणें ।
 कबलौनि घेतला तेणें । अनंत रूपें ॥ २८ ॥
 तो विश्वतोमुख स्वभावे । आणि तें चि दाखवावेया पांडवें ।
 प्रार्थिला आतां आघवें । होउनि ठेला ॥ २९ ॥
 आणि दीपें कां सूर्यें प्रकटे । अथवा निमुटिलेयां देखावें कुंठे ।
 तैसी दीठि नव्हे जे वैकुंठें । दीधली आहे ॥ २३० ॥
 ह्यपौनि किरीटीसि दोहिं परीं । देखावें पडतसे अवधारीं ।
 हें संजयो हस्तिनापुरीं । सांघतसे राया ॥ ३१ ॥
 ह्यणें किंबहुना अवधारिलें । पार्थें विश्वरूप देखिलें ।
 नाना आभरणीं भरलें । विश्वतोमुख ॥ ३२ ॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।

यदि भाः सदाशे सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ १२ ॥

तिये अंगप्रभेचा हेवा । नवला३० काइसेया सारिखा सांघावा ।
 कल्यांतिं येकु चि मेलवा । द्वादशादित्यांचा ॥ ३३ ॥
 तैसे ते दिवि सूर्य सहस्र वेन्हीं ।
 जरि उदैजते कां येकिं अवतारिं ।
 तारि तेया तेजाची थोरी ।
 उपमूं येती ॥ ३४ ॥
 आववेयां विजूंचा मेलवा कीजे ।
 आणि प्रलयाग्नीची सर्व सांघणी सांधिजे ।
 तेविं चि हेशकु ही मेलविजे ।
 महातेजाचा ॥ ३५ ॥
 तन्हीं तिये अंगप्रभेचेनि पाडें । हें तेजादि पै थोडें ।
 आणिक तेया ऐसें चोखडें । आन नाहिं ॥ ३६ ॥

ऐसें माहात्म्यां हरिचें साहाज । फांकत असे सर्वांगिचें तेज ।
तें मुनिकृपा जी मज । दृष्ट जालें ॥ ३७ ॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।

अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पांडवस्तदा ॥ १३ ॥

आणि तिये विश्वरूपिं येकि कडे । जग आघवें आपुलेनि पवाडें ।
जैसे समुद्रा माझि बुडडे । साने दीसति ॥ ३८ ॥
कां आकाशीं गंधर्वनगर । भूतलिं पिपीलिका बांधलें घर ।
नातारिं मेरुवरि सपूर । परमाणु बैसले ॥ ३९ ॥
विश्व आघवें चि तिया परीं । तेया देवचक्रवर्तिचां शरीरीं ।
अर्जुनु तिये अवसरीं । देखता जाला ॥ २४० ॥

ततः स विस्मया विष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ।

प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत ॥ १४ ॥

तेथ विश्वा एक आपण । ऐसें अलुमालु होंतें दूजेपण ।
तें आटौनि गेलें अंतष्करण । विरालें सहसा ॥ ४१ ॥
आंतु महानंदा चेडरें जालें ।
बाहीरि गात्रांचें बल हारपौनि गेलें ।
आपाद पां गुंतलें ।

पुलकांचलें ॥ ४२ ॥

वारिष्यैचिये प्रथम दशे । वोहललेया शैलाचें सर्वांग जैसें ।

विरुढे कोवळां अंकुरीं तैसे । रोमांच आले ॥ ४३ ॥

सितला चंद्रकरीं । जैसा सोमकांतु पाल्हालु धरी ।

तैसिया स्वेदकणिका शरीरीं । दाटती असति ॥ ४४ ॥

माझि सांपडलेनि अलिउलें । जला वरि कलिका जेवि आंदोले ।

ते विश्वासोर्मांचेनि बलें । कांपतसे ॥ ४५ ॥

कर्पूरकदलिचीं गर्भपूटें । उकलति कर्पुराचेनि कोंधाटें ।

पुलिका गळति तेवि धेंवेंदे । नेत्रांनि पडति ॥ ४६ ॥

ऐसा सात्विका आठों हिं भावां । परस्परें वर्ततसे हेवा ।
 तेथ ब्रह्मानंदाची जीवा । राणीव फावली ॥ ४७ ॥
 उदलेनि सुधाकरें । जैसा भरला चि समुद्रु भरे ।
 तैसा वेळवेळां उर्मीभारें । उचंबलतसे ॥ ४८ ॥
 तैसा तेया मुखानुभवा पाठिं । केळा द्वैताचा सांभालु दीठी ।
 मग उससौनि किरीटी । वास पाहिली ॥ ४९ ॥
 तेथ बैसला होंता जेया सवा ।
 तेया चि कडें मस्तक खालविलें देवा ।
 जोडुनु करसंपुटु वरवां ।
 उत्तरीं बोले ॥ २५० ॥

अर्जुन उवाच ।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
 ब्रह्माणमीदां कमलासनस्थं ऋषींश्चसर्वांनुरगांश्च दिव्यान् ॥१५॥
 मग ह्यणे जय जय स्वामीं । नवल कृपा केली तुझीं ।
 जें विश्वरूप आर्हीं । प्राकृतें देखों ॥ ११ ॥
 परि साच भलें केलें स्वामियां । मज परितोखु जाळा गा सांविद्यां ।
 जो देखिलासि मियां । इये श्रृष्टीसि आश्रो ॥ ५२ ॥
 देवा मंदराचलाचेनि आंगलगे । ठांइं ठांइं स्वापदाचे थोगे ।
 तौसिं तूझां देहीं अनेगे । देखतसें भुवनें ॥ ५३ ॥
 आहो आकाशाचिये खोले । दीसति प्रहृगगाचिं कुलें ।
 कां महावृक्षांवरि आंविंसालें । पक्षजातींचीं ॥ ५४ ॥
 तिया परीं श्रीहरी । तूझां विश्वात्मके इये शरीरीं ।
 स्वर्ग देखतसे अवधारीं । मुरगणोंसि ॥ ५५ ॥
 प्रभूतांचें पंचक । एथ देखतसें मीं अनेक ।
 वांत अमे भूतग्रामक । भूतश्रृष्टींचे ॥ ५६ ॥

जी सत्यलोक तुज माजि आहे । देखिला चतुराननु हा नोहे ।
 आणि एक जवं पाहे । तवं कविलासु एथ आहे ॥ ५७ ॥
 श्रीमहादेउ भवानि ऐसी । तूझां देखत असे एकीं अंशीं ।
 आणि तूतें गा रिखीकेशी । तुच माजि देखें ॥ ५८ ॥
 पै कश्यपादि ऋषिकुलें । ये तूझां स्वरूपीं सकलें ।
 देखत असें पातालें । पन्नगोंसि ॥ ५९ ॥
 किंवाहुना कैवल्यपती । तूझेया अवयवा एकाचिये भीती ।
 इयें चतुर्दश भुवनें तिये असती । आश्राइलीं जाणें ॥ ६० ॥
 आणि तेथिचे जे जे लोक । ते चिरत्रचना अनेक ।
 ऐसें देखतसें अलौकिक । गांभीर्य तूझे ॥ ६१ ॥

अनेकवाहूदरवकलनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनंतरूपम् ।

नांतं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपम् ॥ १६ ॥

यां दिव्यचक्षुचेनि पैसे । चौहींकडे जवं पाहांत असे ।
 तवं दोर्दडीं जैसें । आकाश कोंभैलें ॥ ६२ ॥
 तैसें एक निरंतर । देखतसें तूझे कर ।
 करीति आवचे चि व्यापार । येकीं कालीं ॥ ६३ ॥
 मग महामुखाचेनि पैसारे । उतरलीं ब्रह्मकटाहाचि भांडारें ।
 तैसि देखतसें अपारें । उदरें तूझीं ॥ ६४ ॥
 जी सहस्र शीर्षि याचे डाखले । कोडिवरि होंताति येकें वेलें ।
 कां परब्रह्म चि वदनफलें । मोडौनि आलें ॥ ६५ ॥
 तैसि वक्त्रें ज्येहुतीं तेउतीं । तूझीं देखतसें विश्वमूर्ती ।
 आणि तेया चि परी नेत्रपंक्ती । अनेका सैव ॥ ६६ ॥
 हें असो स्वर्गपाताळ । कां भूमि दिशा अंतराळ ।
 हे विवक्षा ठेली सकळ । मूर्तिमय देखतसें ॥ ६७ ॥
 तुवां विण कोण्हीं कडे । परमाणु हिं एतुदा कोडें ।
 अवकाशु पाहांत असे परे न संपडे । व्यापिलें ऐसें तुवां ॥ ६८ ॥

इयें नाना अपरिमितें । सांठविलीं होंतीं महाभूतें ।
 तेतुला ही पवाडु तुवां अनंतें । कोंदला देखें ॥ ६९ ॥
 ऐसा कवणी ठाउनि तूं आलासि ।
 येथ वेठा कां उभा आहासि ।
 आणि तूं कवणाचां पोटीं होंतासि ।
 तूझे ठाण केवढे ॥ २७० ॥
 तूझे रूप अवयव कैसे । तुज पैलीकडे काइ असे ।
 तूं काइसेयावार आहासि ऐसें । जवं पाहिलें मियां ॥ ७१ ॥
 तवं देवा तूं चि । जाला अससि आववें चि ।
 तूं कोण्हाचा ही न्हवसि ! अनादिसिद्ध ॥ ७२ ॥
 तूं उभा ना बैठा । दांघु ना खुजटा ।
 तुज तलीवार वैकुंठा । तूं चि आहासि ॥ ७३ ॥
 तूं रूपें आपणपेयां आपणेयां चि ऐसा ।
 देवा तूं चि तूझी वयासा ।
 पाठि पोटा परेशा ।
 तूझे चि तूं ॥ ७४ ॥
 किं बहुना आतां । तुज तूं चि अनंता ।
 हें पुडुतीं पुडुतीं पाहांतां । देखिलें मियां ॥ ७५ ॥
 परि तूझेया रूपा आंतु । जी उर्णाव एकि असें देखतु ।
 जें आदि मध्य अंतु । ये तांन्हों नाहिं ॥ ७६ ॥
 येन्हांत्रिं गिवसलेयां आववां चि टांइं ।
 परि सोय नेदखें चि केहीं ।
 ह्यणौनि त्रिशुद्धी हें नाहिं ।
 तींन्हों एथ ॥ ७७ ॥
 एवं आदिमच्यांतरहिता । विश्वेश्वर अपरिमिता ।
 तूं देखिलासि जी तत्वता । विश्वरूपा ॥ ७८ ॥

तुज महामूर्त्तिचां आंगीं । उमटलियां मूर्त्तीं अनेगीं ।
 लेइलासि वाणे परिची आंगीं । ऐसा आवडतु आहासि ॥७९॥
 हों काज महोदधीं तूं दया । जालासि तरंगमूर्त्तीं हेलावा ।
 किं तूं वृक्षु येकु वरवा । मूर्त्तिफलीं फललासि ॥ २८० ॥
 जी भूतल भूरुहिं मांडलें । जैसें नक्षत्रीं गगन गूढलें ।
 तैसें मूर्त्तिमय भरलें । तूजें देखतसें रूप ॥ ८१ ॥
 जी येकैकाचां आंगप्रांतीं । हों जाअं पुरतसे त्रिजगती ।
 एवाडिया तूज्ञां आंगीं मूर्त्तीं । रोमा जालिया ॥ ८२ ॥
 ऐसा पवाडु मोडौनि विश्वाचा । तूं कोणु पां एथ कैचा ।
 ऐसें पाहे तवं आमचा । सारथी तो तूं ॥ ८३ ॥
 तारि मज पांतां मुकुंदा । तूं ऐसा चि व्यापकु सर्वदा ।
 मग भक्तानुग्रहे तेयां मुग्धां । रूपांतें धरीसि ॥ ८४ ॥
 कैसें चौं भुजांचें सावलें । पाहातां वोल्हावति मनडोले ।
 खेअं देअं जाइजे तारि आकले । दों चि भुजीं ॥ ८५ ॥
 ऐसा कोडिसवाणा तूं वापा । होंसि पै विश्वरूपा ।
 किं आमचेया दीठी स्वल्पा । जें तुतेयां धाकुटें देखों ॥ ८६ ॥
 तारि आतां दीटिचा विटालु गेला ।
 तुवां साहाजें दिव्य ज्ञानीं सौरसु केला ।
 ह्यर्णानि महिमा देखता जालां ।
 रूपांचा तूज्ञा ॥ ८७ ॥
 पारि मकरतोडा मागिलीकडे । होंतासि तो तूं चि येवडें ।
 रूप जालासि हें फुडें । अळखिलें मियां ॥ ८८ ॥
 किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोरत्नं सर्वतो दीप्तिमंतम् ।
 पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समंताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥
 नोहे तो चि हा शिरीं । मुकुटु लेइलासि हरी ।
 पुणु आतां चि तेज आणि थोरी । नवलकिरु बहुवेंस ॥ ८९ ॥

तें चि हें वरिली हातीं । चक्र परिजितेया आइती ।
 संव्रितासि विश्वमूर्त्ती । ते न मोडे खुण ॥ २९० ॥
 एरीकडे ते चि हे न्हवे गदा ।
 आणि तळिली दोन्हीं भुजा निरायुधा ।
 वागारे संसारावेया गोविंदा ।
 सवंसारिलिया ॥ ९१ ॥
 आणि तेणें चि वेगें सहसा । माझेया मनोरथा सरिसा ।
 जालासि विश्वरूप विश्वेशा । ह्यणौनि जाणें ॥ ९२ ॥
 परि काइसैं बापा हें चोज । विस्मो करावेया मज ।
 चित्त होउनि जात निर्वृज । आश्रयपणें ॥ ९३ ॥
 एथ आधि कां नाहिं । ऐसैं विवरू नैथे पाहिं ।
 नवल अंगप्रभेची नवलाई । कोंदली सैव ॥ ९४ ॥
 एथ अग्निची दीठि करपत । सूर्य कोडि एक हारपत ।
 एसणें तीव्रपण अद्भूत । तेजाचें येया ॥ ९५ ॥
 हों काज प्रकाशाचां महार्णवीं । बुडौनि गेली सृष्टि आघवीं ।
 किं युगांतविद्यूचां पालवीं । झाकोळलें गगन ॥ ९६ ॥
 नाना संहारतेजाचिया ज्वाला । तोड्ढनि मांचु वांधला अंतराला ।
 आतां दिव्य ज्ञानाचां हिं डोलां । पाहावे ना ॥ ९७ ॥
 उजालु अधिका अधिकु बहुवसु । धडाडितु असे अतिद्रामु ।
 पडतु दिव्य चक्षूसि त्रामु । निहालितं ॥ ९८ ॥
 नातारि महातेजाचा भडाडु । होंता कालाग्निरुद्राचां ठांडं गूडु ।
 तो तृतीय नेत्राचा मडु । फूटला जैसा ॥ ९९ ॥
 तैसैं पसरलेनि प्रकाशें । पांचवनेया ज्वालांचे वलसें ।
 पडतां ब्रह्मकटाह कोलिसें । होंत दीसति ॥ ३०० ॥
 ऐसा अद्भूतु तेजोगशि । जन्मा नवलु मियां देखिलासि ।
 नेणवे व्याप्ति जी कैसी । पार तूजें ॥ १ ॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

देवा तू अक्षर । आउठाविये मात्रेसि पर ।
श्रुती जेयचे घर । गिबसिती आहाति ॥ २ ॥
जें आकाराचें आयतन । जें विश्वनिक्षेपैकनिधान ।
तें अव्यक्त तू गहन । अविनाश जी ॥ ३ ॥
तू धर्माचा बोलावा । अनादिसिद्धु तू नीच नवा ।
मीं जाणें सततीसावां । पुरुषुविशेषु पुडा ॥ ४ ॥

अनादिमध्यांतमनंतद्वोर्यमनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवत्क्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपंतम् ॥ १९ ॥

तू आदिमध्यरहितु । स्वसामर्थ्ये तू अनंतु ।
विश्वबाहु अपरिमितु । विश्वचरणु ॥ ५ ॥
पै चंद्रचंडाशु डोलां । दावितासि कोपप्रसादलीला ।
एका रुससि गोपाला । एकें पालीसि तूकें ॥ ६ ॥
जी एवंविधु तूतें । मीं देखतसे हें निरुते ।
पेटलें प्रलयाग्निचें उजितें । तैसें वक्त्र हें तूझे ॥ ७ ॥
निहेटले पर्वत । कवट्टनि ज्वालाचे उभट्टु ऊठित ।
तैसे चाटित दाढ दांत । जीम लले ॥ ८ ॥
इये वदनिचिया उवा । आणि सर्वा आंगकांतिचिया प्रभा ।
विश्व तातलें अतिक्षोभा । जांत असे ॥ ९ ॥

द्यावापृथिव्योरिदमंतरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपपुत्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥

जें कां चौलोकपाताळ । पृथिवी हान अंतराल ।
अथवा दिशा विदिशा समाकुळ । दिशाचक्र ॥ ३१० ॥
हें आवघें चि तुवां एकें । भरलें देखतुमें कवतुकें ।
परि गगन हीं सकट भयानकें । आणुविजे जेवि ॥ ११ ॥

नातरि अद्भुतरसाचां कल्लोलीं । जाली चौदा भुवनासि कडियाली ।
 तैसें आश्चर्य हें कलीं । कैसेनि मीं ॥ १२ ॥
 जी नावरे व्याप्ति असाधारण । न साहे तेजाचें उग्रपण ।
 सुख दूरि गेलें पारि प्राण । विपायें धरी जग ॥ १३ ॥

अमी हि त्वा सुरसंघा विशंति
 केचिद्भीताः प्रांजलयो गृणन्ति ।

स्वस्तीत्युक्त्वा महार्षिसिद्धसंघाः

स्तुवंति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

देवा देखौनिया तूतें । नेणों कैसें भयासि आळें भारितें ।
 आतां दुःखकल्लोलीं झळवतें । तीन्हीं भुवनें ॥ १४ ॥
 यन्हविं तुज महात्म्यांचें देखणें ।
 तारि भयदुःखा होआवें मेह्हावणें ।
 पारि हें नव्हैल जेणें गुणें ।
 तें जाणवळें मज ॥ १५ ॥
 जव तूजें रूप नोहे दीठें ।
 तव जगा संसारिक गोमटें ।
 मग आतां देखिल्यासि तारि विषय—विटें ।
 उपनला त्रासु ॥ १६ ॥

तेविं चि तूतें देखिलेयां साठीं । काड सहसा देउं येईल मीठी ।
 आणि नेदी तारि संकटीं । राहों केवि ॥ १७ ॥
 ह्यणौनि मागां तव संवसारु । काढत येतसे अनिवारु ।
 आणि पुढां तव अपारु । नयेसि घेउं ॥ १८ ॥
 ऐसा माझारिळी सांकडां । सांपडलेयां त्रैलोक्याचा होंतु डुरडा ।
 हा वन्हि जी फुडा । चोजवला मज ॥ १९ ॥
 जैसा आरंवळला आगी । समुद्रासि ये निवावेया लागि ।
 तव पाणियांचां तरंगीं । अधिका भिये ॥ ३२० ॥

तैसें जगासि जी जालें । तूतें देखौनि तलमलीत ठेलें ।
यां माझि पैल भलें । हे ज्ञानियांचे मेलवे ॥ २१ ॥
हे तूझेनि चि अंगिकें तेजें । जादनु सकल कर्माचीं बीजें ।
मिलति तुज आंतु नीजें । सद्भावेंसि ॥ २२ ॥
आणि हें सवियां चि भयभीर । सर्वस्वें धरूनि तूझी मोहर ।
पार्थिताति कर । जोडूनियां ॥ २३ ॥
देवा थोरी मोहार्णवीं पडिलें । विषयत्रागुरें आंतुडलें ।
स्वर्गसंसाराचां सांपडलें । दोहिं आंगि ॥ २४ ॥
ऐसें आमचें सोडवणें । तुज वांचौनि कीजेल कवणें ।
तुज शरण आलों सर्वप्राणें । ह्यणत देवा ॥ २५ ॥
आणि महारिखी अथवा सिद्ध । कां विद्याधरसमूह विविध ।
हे तुज बोलस्वस्तिवाद । करिताति स्तुती ॥ २६ ॥

**रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वोक्षते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥**

हे रुद्रादित्यांचे मेलवे । वसु हान साध्ये विश्वे ।
अश्विनौ देव आघवे । वायु हे जी ॥ २७ ॥
अवधारां अग्नि हान गंधर्व । पैल रक्षोगण सर्व ।
जी महेंद्र—मुख्य देव । कां सिद्धादिक ॥ २८ ॥
हे आघवे चि आपुलात्रां लोकां । सौम्यांगि अवलोकां ।
महामूर्ति दैविकी । पाहांत असति ॥ २९ ॥
ऐसें पाहांत पाहांता तूतें प्रतिक्षणीं ।
विस्मित होंत अंतष्करणीं ।
करिति निज मुगुटीं बोवाळणीं ।
प्रभू तुज ॥ ३३० ॥
तेथ जयजयवोपकळरवें । स्वर्ग गाजताति आघवे ।
देवित ललाटांवरि वरवे । करसंपुट ॥ ३१ ॥

तिये विनयद्रुमाचिये आरवीं । मुरवाडली सात्विकां माधवी ।
 हणौनि करसंपुष्टपालवी । तूं होंतासि फल ॥ ३२ ॥
 जी लोचनभाग्य उदैले । जीवीं सुखाचें सुयाण पाहलें ।
 जें अगाध तूझे देखिलें । विश्वरूप इहीं ॥ ३३ ॥
 हें लोकव्यापक रूपडें । पाहांतां देवां हिं चवक पडे ।
 एयाचें सदमुखपण जोडे । भलेतेया कडौनि ॥ ३४ ॥

रूपं महत्ते बहुवक्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहुरूपादम् ।
 बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

एसें एक चि परि विचित्रें । आणि भयानकें तें चि बहुवक्रें ।
 बहूलोचन तियें शस्त्रें । अनंतभुजा ॥ ३५ ॥
 हे अनंत चरण । बहूदरें आणि नाना वर्ण ।
 कैसें प्रतिवदनीं मातलेपण । आवेशाचें ॥ ३६ ॥
 हों काज महाकल्पांचां अंतीं ।
 मुखें पसरलीं आहाति जेउततेउतीं ।
 आगियलावारि उजितीं ।
 आवुधिळीं जैसीं ॥ ३७ ॥
 नातारि संहारत्रिपुरेचि यंत्रें । किं प्रलयभैरवांचि क्षेत्रें ।
 नाना युगांतचक्रिं पात्रें । भूतपिचां बोडविळीं ॥ ३८ ॥
 तैसीं जीउतीतिउतीं कडे । तूझीं वक्रें जी प्रचंडें ।
 उफाडति दारिये माझि सिंहाडे । तैसे दांत दीसति रागीठ ॥३९॥
 जैसें कालरात्रिचें आंधारें । उसपतां निगति संहारखेचरें ।
 तैसिया वदनीं प्रलयरुधिरें । काटलिया दाढा ॥ ३४० ॥
 हें असो कालें आवतिलें रण । कां सर्वसंहारें मातलें मरण ।
 तैसें अति भिंगुलवाणेपण । वदनाचें तूझे ॥ ४१ ॥
 हे बापुडी भूतश्रुटी । मोटके येवि करीं पाहिले दीठी ।
 आणि दुःखकालिदीचां तटीं । झाड होउनि ठेली ॥ ४२ ॥

तुज महामृत्युचां सागरीं । आतां हें त्रैलोक्य अवधारिं ।
 शोकदुःखलहरीं । आंदोलत असे ॥ ४३ ॥
 एथ कोपौनि जरि वैकुण्ठें । ऐसें हान ह्यणिपैल अवचटें ।
 जें तुज काइ लोकाचें वाटे । तूं ध्यानीं चि भोगीं ॥ ४४ ॥
 तारि लोकांचे फिर साधारण । वायां आपण करितसें वोडण ।
 केवि सहसा ह्यणों प्राण । माझे चि कांपताति ॥ ४५ ॥
 आणि रुद्रु जेया वासिपे । मज भेण मृत्यु लपे ।
 तो मीं एथ थरथरां कांपें । ऐसें केहिं नाहिं ॥ ४६ ॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं

व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रं ।

दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितांतरात्मा
 व

धृतिं न विंदामि शमं च विष्णो ॥ २४ ॥

परि नवल हे महामारि । एया विश्वरूपाची पारि ।
 जें भयासुरपण हरी । आणितसे ॥ ४७ ॥
 करुनि महाकालेंसि तठें । तैसिं तोंडें जालीं रागिठें ।
 तीं वाढांनियां धाकुटें । स्वर्ग केलें ॥ ४८ ॥
 हें गगनाचेनि वाडपणें नाकले ।
 त्रिभुवनिचेया ही वारेया न वेंटाले ।
 ययाचिये वाफेचिया आगी जले ।
 सचराचर हें ॥ ४९ ॥
 तेविं चि येकसारिखें नोहे । एथ वर्णाचा वानिभेटु आहे ।
 हों काज सवा३० प्रलयीं लाहे । वन्हि याचा ॥ ३५० ॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
 दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥

जेयाचिये आगिची दीप्ति एवढी । हें त्रैलोक्य करी राखौंडी ।
 किं तेया ही तोंडें पारि तोंडीं । आणि दांतदाढा ॥ ५१ ॥

कैसे वारेयासि वायु चलला । समुद्रासि किं महापूर आला ।
 नातारि विखाग्रीसि प्रवर्त्तला । वडवानलु ॥ ५२ ॥
 हलाहल आगी पियालें । किं मरणासि मरण पेटलें ।
 तैसें संहारतेज जालें । वदनीं देखां ॥ ५३ ॥
 पारि कोणें मानें विशाल । जैसें तुटलें होये अंतराल ।
 नांतारि आकाशासि कव्हाल । पडौनि ठेलें ॥ ५४ ॥
 कां काखे सूनि वसुंधरी । जै हिरण्याक्षु रिगाला विवरीं ।
 तैं उघडलें हटकेश्वरु वेन्हीं । जेवि पातालकुहर ॥ ५५ ॥
 तैसा वक्ताचा या विकाशु । माझि जीभे वेगला चि आवेशु ।
 विश्व न पुरे ह्यणौनि घांसु । न भरी आवडे ॥ ५६ ॥
 आणि पातालव्याळांचां फुत्कारीं । गरलजाला लागति अंबरीं ।
 तैसी पसरलिये वदनदरी । माझि जिब्हा दीसे ॥ ५७ ॥
 काढूनि प्रलयविजूचीं जुंवाडें । मग पानासिले गगनाचे हुडे ।
 तैसे आवालुवां वरि आंकुडे । दीसति दाढांचे ॥ ५८ ॥
 आणि ललाटपटाचिये खोले । कैसे भयातें भेडविति डोले ।
 नातारि महामृत्युंचे उमाले । कडवसां राहिले ॥ ५९ ॥
 ऐसें दाउनियां महाभयाभोज । एथ काइ निफजउं पांतासि काज ।
 तें नेणों पारि भद्र मज । रोकडे आलें ॥ ३६० ॥
 देवा विश्वरूप पाहावेयाचे डोहले ।
 केले तियें पातलों गा प्रतिफलें ।
 जी देखिलासि आतां डोले ।
 निवाले योगे ॥ ६१ ॥
 आहो देह पार्थिव किर जाए ।
 आणि यार्ची काकुलति कोण्हां आहे ।
 पारि आतां त्रैतन्य माझें विपायें ।
 वांचे एथ ॥ ६२ ॥

यन्हविं भयातव आंग कांपे । नावेक आगलें तारि मन तापे ।
 अथवा बुद्धि वासिपे । अभिमानु विसरिजे ॥ ६३ ॥
 परि येतुलेया वेगला । जो केवल आनंदैककला ।
 तेया अंतरात्मेयां निश्चला । सेयारी आली ॥ ६४ ॥
 बापु साक्षात्कारें वेधु । कैसा देशधडी केला बोधु ।
 हा गुरुशिष्यसंबंधु । विपायें नांदे ॥ ६५ ॥
 देवा तूझां इये दर्शनीं । जें वैकल्प उपनलें आहे अंतष्करणीं ।
 तें संवरावेया गिवसणी । करीतसें धैर्याची ॥ ६६ ॥
 तव माझेनि नावें धैर्य चि हारपलें ।
 किं तेया विश्वरूपदर्शन तेणें जालें ।
 हें असो परि भलें ।
 आंतुडलें उपदेशा ॥ ६७ ॥
 जीउ त्रिसंवावेयाचिया चाडा । सैघ धांवांधांविं कारितसे बापुडा ।
 परि सोये किं कव्हणी कडां । आधि हो कां ॥ ६८ ॥
 ऐसें विश्वरूपाचिया महामारी । तरासिं गेलें आहे चराचरीं ।
 जी न बोलें तारि काये करीं । महाविष्णू ॥ ६९ ॥
 पै अखंड डोलेयां पुढें । फूटलें जैसें महाभयाचें भांडें ।
 तैसि तूझि मुखें वितंडें । पसरलिं देखें ॥ ७० ॥
 असो दाढादातांचिया दाटी । न पांगुरवे दोहीं वोंठि ।
 सैघ प्रसयशस्त्रांची कांटी । लागली जैसी ॥ ७१ ॥
 जैसें तक्षका विष भरलें । कां कालरात्री मुख पसरलें ।
 कि अग्रयस्त्र परजिलें । वज्राग्नी जेवि ॥ ७२ ॥
 तैसि तूझीं वक्त्रें प्रचंडें । वारि आवेशु वाहि बोसडे ।
 आले मरणरसाचे लोंढे । आह्वावारि ॥ ७३ ॥
 संहारसमैचा चंडानीलु । आणि महाकल्पांतीं प्रलयानलु ।
 यां दोहिं होये जै मेलु । तै काय एक न जले ॥ ७४ ॥

तैसिं संहारं तूष्णीं मुखे । देव्यानि धीरु के आह्नां पारुखे ।
 आतां मुखलां दिशा मीं नेदखे । आपणपे जी ॥ ७५ ॥
 मोटकें विश्वरूप डोलां देखिले । आणि मुख तें हातांनि पडिले ।
 आतां जांपाणिजांपाणीं आपुले । अस्तोव्यस्तं हे ॥ ७६ ॥
 एथ ऐसें करिसीं ह्यणौनि जरि जाणे ।
 तरि हो गोठी चि कां करणे ।
 आतां थेकोळ वाचिजे प्राणे ।
 ऐसें जाळें ॥ ७७ ॥
 जरि गोसांविं माझा अनंता ।
 तरि मुई वोडण माझेया जीविता ।
 सांटविं पसारा मगौता ।
 महामारिचा ये ॥७८ ॥
 आइकें सकल देवांचिये देवते । तूझेनि चंतन्यें गा विश्व वसतें ।
 तें विसरलासि हे उपरतें । मांडिले एथ ॥ ७९ ॥
 ह्यणौनि प्रसन्न होई वेगीं राया । संहारीं आपुली माया ।
 काढीं मातें महाभया । पासौनियां ॥ ३८० ॥
 हा ठावोवेन्हीं पुडुतीपुडुती । तूतें ह्यणिजे बहुवा काकुलती ।
 ऐसा मी विश्वमूर्ती । भेडु कां जी ॥ ८१ ॥
 जें अनरावतिये आला धाडा । तें मिया येकलेनि केला उवेढा ।
 जो मीं काल्यचेया ही तोंडा । वासिपु न धरिं ॥ ८२ ॥

अमीच त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः

सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।

भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ

सहास्मदीयैरपि योध्मनुष्यैः ॥ २६ ॥

परि तेया आंतुळ हे न्हेवे देवा । एथ मृत्यु हो करुनि चढावा ।
 नुवां आतां चि धोंटु भरावा । ऐसी सूचना ॥ ८३ ॥

कैसा न्हवता प्रलयाचा वेळु । गोखां तूं चि मांडला काळु ।
 वापुडा हा त्रिभुवनगोलु । अल्पायु जाला ॥ ८४ ॥
 आहा भाग्या विपरीता । विघ्न उठिल्लें शांति करितां ।
 कटा विश्व गेलें आतां । तूं लागलासि ग्रासूं ॥ ८५ ॥
 हें नव्हे मां रोकडें । सैध पसरूनियां तोंडें ।
 कवलितासि चौहींकडे । सैन्ये इयें ॥ ८६ ॥
 नव्हे कोरवकुलीचे अंकुर । आंधलेया धृतराष्ट्राचे कुमर ।
 हे गील्लिले सपरिवार । वदनीं इहीं ॥ ८७ ॥
 आणि जे जे यांचेनि सावाये ।
 आले असति देशोदेशिचे राये ।
 तेयांचे सांवावेया जावो न ल्हाये ।
 ऐसें सरकटितु आहासि ॥ ८८ ॥
 मदमुखांचिया घटा । घेंतु आहासि घटघटां ।
 आरणीं हान धाटां । देंतासि मिठि गा ॥ ८९ ॥
 जंत्रांवारि चि मार । पदतींचे मोगर ।
 मुखा आंतु भार । हारपति मां ॥ ९० ॥
 क्रिदांताचे जावलीं । जें एकैक विश्वातें गीली ।
 तियें कोडिवरि सगलीं । घेताति शस्त्रें ॥ ९१ ॥
 चातुरंगपरिवारा । सजोडियां राहंवरां ।
 दांत न लवीसि परमेश्वरा । कैसा तुष्टलासि ॥ ९२ ॥
 हां गा भीष्मा ऐसा ब्राह्मणु । सत्ये शौर्ये आहे निपुणु ।
 तो ही गील्लिला आणि द्रोणु । प्रासिला सकटा ॥ ९३ ॥
 आगा सहस्रकराचा कुमरु । एथ गेला गेला कर्णवीरु ।
 आणि आमचेयां आववेयांचा केरु । फेडिला देखों ॥ ९४ ॥
 कटाकटा धात्रेया । कैसें जालें अनुग्रहां या ।
 मियां मागौनि जगा वापुडेया । आणिल्लें कर्म ॥ ९५ ॥

मार्गे धोडिया बहुवा उपपत्ती ।
 येणें सांघितलेया निकेयानि विभूती ।
 तैसा नसें चि मा पुडुतीं पुडुतीं ।
 वैसलां मरों ॥ ९६ ॥
 ह्यणौनि भोग्य तें त्रिशुद्धी न चुके ।
 आणि बुद्धि होणियेरा सारिखी ठाके ।
 माझां कपालिं पीटावें लोके ।
 तें लोपैल काइसेया ॥ ९७ ॥
 पूर्वीं अमृत ही हाता आलें । परि देव नसती चि उगले ।
 मग कालकूट उठिलें । जिया परीं ॥ ९८ ॥
 परि तें येक बग थोडें । केलेयां प्रतिकारा माझिवडें ।
 आणि तिये अवसरिचें सांकडें । निंस्तरला शंभु ॥ ९९ ॥
 आतां हा जलतु वारा वेंटाले । कवणां विखा भरलें गगन गिले ।
 महाकाळेंसिं फलें । कवण करी ॥ १०० ॥
 ऐसा दुःखें अर्जुनु सीणतु । शोचीतु असे जीवा आंतु ।
 परि नेदखे तो प्रस्तुतु । अभिप्रा० देवाचा ॥ १ ॥
 जें मीं मारिता कौरव मरते । ऐसेनि वेंटालिला असे भ्रातें ।
 तें फेडावया चि लागि अनतें । दाविलें निज ॥ २ ॥
 अरे कोण्ही कव्हणातें न मरी । एथ मीं चि हो सर्वसंहारीं ।
 तें विश्वरूप व्याजें श्रीहरी । प्रकटितसे ॥ ३ ॥
 ऐसेया देवाचेया मनोगता । तें न चोजवे चि पांडुमुता ।
 मग आहा कंपु नव्हता । वाढवितसे ॥ ४ ॥

वक्राणि ते त्वरमरणा विशंति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
 केचिद्विलमा दशानंतरेषु संदृश्यंते चूर्णितैरुत्तमांगैः ॥ २७ ॥

तेथ ह्यणे हा एकें वेळें । असकी गवर्सी दोन्हीं दलें ।
 वरनिं ऊभालें । मगनीं जैसिं ॥ ५ ॥

कां महाकल्पाचां सेवटीं । जैं कृदांतु कोपला होये शृष्टी ।
 तैं एकविसां स्वर्गा ही मीठी । पाताळासि दे जैवि ॥ ६ ॥
 नातारि उदासीनें दैवें । संचकाचीं विभवे ।
 जेथिचा तेथ स्वभावे । वायां जांति ॥ ७ ॥
 तैसि सांचलीं सैन्यें एकावटें । इये मुखि जालिं प्रविष्टें ।
 परि एक ही तोंडा न सुटे । कैसें कर्म देखां ॥ ८ ॥
 अशोकाचे आगसे । चवळिले कन्हेनि जैसे ।
 लोकवक्रा माझि तैसे । वायां चि गेले ॥ ९ ॥
 परि सिसालें मुगुटेंसि । पडिलिं दाढाचां सांडसिं ।
 पीठ होंतां कैसीं । दीसताति ॥ ११० ॥
 तियें रत्नें दांतांचा व्याडिं । कूट लागलें जीभे वूडी ।
 काहिं काहिं आगरडीं । दंष्ट्रीचीं माखलीं ॥ ११ ॥
 हों काज विश्वरूपें कालें । ग्रासिलिं लोकाचिं बालें ।
 परि गिवसीत देहिचिं सिसालें । पैसें इयें राखिचीं ॥ १२ ॥
 तैसीं शरीरा माझि चोखडीं । होंतीं उत्तमांगिं रोकडीं ।
 ह्यणौनि महाकालाचां तोंडीं । परि उरलें शोपीं ॥ १३ ॥
 मग ह्यणे जी हें काइ । जन्मलेयानि मोहर नाहिं ।
 जग आपैसें चि वदनडोहीं । संचरतसे मां ॥ १४ ॥
 इया आघविया चि शृष्टी ।
 लागलिया आहाति वदनाचां वाटिं ।
 आणि हा जेथिचा तेथ मीठी ।
 दैत असे उगा ॥ १५ ॥
 ब्रह्मादिक समस्त । ऊंचा मुखा माजि धावंत ।
 येर सामान्य हे भरत । ऐली वदनीं ॥ १६ ॥
 आणिक ही भूतजात । तें उपनलां चि ठाईं प्रासित ।
 परि याचेया मुखा निभ्रांत । न सुटे चि काहिं ॥ १७ ॥

यथा नदीनां बहवोऽनुवेगाः
 समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ॥
 तथा तवामी नरलोकवीरा
 विशन्ति वक्राण्यभिविज्वलन्ति ॥ २८ ॥

जैसे महानदीचे ओघ । वेल्हे टाकीति समुद्राचें आंग ।
 तैसें आववां चि कडौनि जग । प्रवेशे एथ ॥ १८ ॥
 आयुष्यपथें प्राणिगर्णी । करूनि अहोरात्रांची सुअर्णी ।
 वेगें वक्रत्रमिलणी । साधिजत आहाति ॥ १९ ॥

यथा प्रदीप्तज्वलनं पतंगा
 विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ॥
 तथैव नाशाय विशन्ति लोका
 स्तथापि वक्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

जलतेया गिरिचेया आंगवखां ।
 माक्षि घालिति पतंगाचिया झांका ।
 तैसे लोक देखां ।
 इये वदर्नी पडत ॥ ४२० ॥
 परि जेतुळें एथ प्रवेशळें । तें जाणां लोहें पाणिं गीळिलें ।
 आणि बहिवटीं पूसळें । नात्रं तेयाचें ॥ २१ ॥

लेलिह्यसे प्रसमानाः संमता
 ह्योक्रान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ॥
 तेजोभिरापूर्यजगत्समग्रं
 भासस्तत्रोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३० ॥

आणि येतुळी हे आरोगज । करितां भूखे नाहिं उणेपण ।
 कैसें दीपन असाधारण । उदैलें एथ ॥ २२ ॥
 जैसा रोगिया ज्वराहूनि उठिला । कां भगगा दुक्कालु पाहला ।
 तैसा जीमेचा नवऱ्या३० देखिला । आवाळुवें चाटितां ॥ २३ ॥

जैसे आहाराचेनि नावे काहीं ।
 तोंडाचिया वाटा न वचे चि नाहिं ।
 कैसी शमशमिते पाहा नवाई ।
 भूखैलेपणांची ॥ २४ ॥
 काइ सागराचा घोंटु भरावा । किं पर्वताचा घांसु करावा ।
 ब्रह्मकटाहो घालावा । असका दाढे ॥ २५ ॥
 दिशा सगळिया गिलाविया । चांदण्यां चाटूनु घेयाविया ।
 ऐसें वर्ततसे नां सवियां । लोलुपता बा तुज ॥ २६ ॥
 जैसा भोगें कामु वाढे । इंधनें आगीसि वळ चढे ।
 तैसि खांतखांतां तोंडे । खांखांतें टेलीं ॥ २७ ॥
 कैसें एक चि केवढें पसरलें । त्रिभुवन जिऱ्हाप्रीं टेंकलें ।
 जैसे कविठ घातलें । वडवानलीं ॥ २८ ॥
 तैसि अपारें वदनें । आतां एतुलीं कैचि त्रिभुवनें ।
 कां आहार न मेलवितां एणें मानें । वाढविलिं असातिं ॥ २९ ॥
 आगा लोकु हा वापुडा । जाला वदनज्वालां वरिपडा ।
 जैसे वणवेयाचां वेढां । सांपडलीं मृगें ॥ ४३० ॥
 आहा तैसें या विश्वा जालें । देउ न्हवे हें कर्म आलें ।
 किं जग जलचरीं पांगिलें । जालकालें पै ॥ ३१ ॥
 आतां इये अंगप्रभेचिये वागुरे ।
 कोणीकडौनि निगिजैळ चराचरें ।
 वक्रें न्हवति जैसीं जौहरें ।
 वोडवलें जगा ॥ ३२ ॥
 आगि आपुलेनि दाहकपणें । न पांले चि ह्मणौनि तो नेणे ।
 परि जेया लागे तेयां प्राणें । सूटिका नाहिं ॥ ३३ ॥
 माझेनि तिखटपणें । कैसें निवटे हें शस्त्र काइ जाणें ।
 कां आपुलेया मारातें नेणे । विख जैसें ॥ ३४ ॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
 नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
 विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यं
 न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

तैसी तुज काहिं । आपुलेया उग्रपणाची सें चि नाहिं ।
 पारि अइलीकडे खाई । सरली जगाची ॥ ३५ ॥
 आगा आत्मा तूं चि एकु । संकलविश्वव्यापकु ।
 तारि आह्मासि कां अंतुक । वोडवलासि ॥ ३६ ॥
 तरि भिया सांडिली जीविताची चाड ।
 आणि तुवां हिं न धरावी भीड ।
 मनीं आहे तें उघंड ।
 बोल पां सुखें ॥ ३७ ॥
 केती त्राय करिंसी या उग्ररूपा ।
 आंगिचें भगवंतपण आठविं बापा ।
 नाहिं तन्हि कृपा ।
 मज पुरती पाहीं ॥ ३८ ॥
 तरि एकु वेलु वेदवेद्या । त्रिभुवनाचेया आद्या ।
 त्रिनवणी विश्ववंद्या । आइक माझी ॥ ३९ ॥
 ऐसें बोलौनियां वीरें । चरण नमस्कारिलें शिरें ।
 मग हाणे जी सर्वेश्वरें । अवधारिजो ॥ ४० ॥
 मिया होआवेया समाधान । पूसिलें विश्वरूप ध्यान ।
 तवं येकें चि वेलें त्रिभुवन । गीळितू चि उटिलासि ॥ ४१ ॥
 तरि तूं कोणु काये येतुडीं । इयें भयानकें मेलविलीं ।
 आववां चि करिं घेतलीं । शखें काह्या ॥ ४२ ॥
 तुवां देखें रागिउपगें । वाढौनि गगन केठें ठेंगगें ।
 डोळे करुनि भिगुउवाणे । भेडवितु आहासि ॥ ४३ ॥

एथ कृदांतसिं देवा । काइसेया कीजतसे हेवा ।
हा आपुला तुवां सांघावा । अभिप्रा३ मज ॥ ४४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥

या बोला ह्यणतसे अनंतु । मीं कोणु हें अससि प्रसतु ।
आणि काइसेया लागि असें वाढतु । हे चलवल काइसी ॥ ४५ ॥
तारे मीं कालु गा हें फुडें । लोकु संहारवेया वाढें ।
सैघ पसरिलीं असति तोंडें । तरि प्रासूं आववां ॥ ४६ ॥
तेथ अर्जुनु ह्यणे कटा । उभगला मागिलां संकटां ।
आलविला तवं बोखटा । उधाइला हा ॥ ४७ ॥
तेविं चि कठिनें बोलें आशतूटि । अर्जुनु होईल हिंपुटी ।
ह्यणौनि सर्वे चि ह्यणे किरीटी । पारि आन एक असे ॥ ४८ ॥
जें आतां चि इये संहारवाहारे । तुह्नीं पांडव बाहिरे ।
तेथ जांत जांत धनुर्द्धरें । संवारिले प्राण ॥ ४९ ॥
होंता मरणमहामारी गेला । तो माघौता सावदु जाला ।
मग चित्त दे३ लागला । बोला तेया ॥ ४५० ॥
तवं ऐसें ह्यणितलें देवें । तुह्नीं माझ जाणावें ।
एर मज आववे । सरलें प्रासुं ॥ ५१ ॥
वडवानलीं प्रचंडीं । जैसी टाकूनि घापे कुरौंडी ।
तैसें जग माझां तोंडीं । तुवां देखिलें जें जें ॥ ५२ ॥
पारि तेया माझारि काहीं । भरवसेनि उणें नाहिं ।
इयें वायां चि सैन्यें पाहिं । बरवतें आहाति ॥ ५३ ॥

जे हे मेलैनियां मेले । फूगत वीरवृत्तीचेनि वलें ।
 जमावारि जगदलें । वाखाणिताति ॥ ५४ ॥
 ह्यणति श्रृष्टिवारि श्रृष्टि करुं । आण वाउनि मृत्युतें धरुं ।
 जगाचा भरुं । घोंटु आतां ॥ ५५ ॥
 पृथिवी सगळी चि गीळू । पारि हें आकाश वरिचा वारि जाळुं ।
 काइ बाणवारि खीळू । वारेयातें ॥ ५६ ॥
 चतुरंगाचिया संपदा । कारिति महाकालेंसिं स्पर्धा ।
 वांठिवेचिया मदा । वलवले जे ॥ ५७ ॥
 बोळ हातीयेरांहुनि तीखट । दीसति आगीपासौनि दासट ।
 मारकपणें कालकूट । मडुर ह्यणति ॥ ५८ ॥
 ते हे लेपाचे गमले । जाण पोकलिचे उमाले ।
 आगा चांदांचीं फलें । वीर हे देखें ॥ ५९ ॥
 जैसा मृगजलाचा पूर आला । दल नव्हे कापडाचा सांपु केला ।
 इया श्रिंगारुनि खाला । मांडिलिया पै ॥ ४६० ॥
 येर चेष्टवितें जें बल । तें भियां मागां चि ग्रासिलें सकल ।
 आतां कोल्हैरिचे वेताळ । तैसे निर्जीव हे ॥ ६१ ॥
 हालविती दोरी तूटली । तारि तियें खांबावरिलें बाउलीं ।
 आवडेतेणें लोटिलीं । उलथौगि पडति ॥ ६२ ॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व ।

जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ।

मयैवैते निहताः पूर्वमेव ।

निमित्तमात्रं भव सव्यसावित्र् ॥ ३३ ॥

तैसा सेन्याचा एया वगा । मोडता वेळु न लगे पै गा ।
 ह्यणौनि उठिं उठिं वेगां । सिहाणा हाइ ॥ ६३ ॥
 तुवां चि गोप्रहणींचेनि अवसरें । घातलें मोहनाछ एकसरें ।
 मग वाराचेनि वापें उत्तरें । आमुडुनि वस्त्रें नेलिं ॥ ६४ ॥

आतां हे तेयां निपेटारे जाले । निवटि वहिला रणि सांपडलें ।
 घेइं यश रिपु जीतले । एकलेनि पै ॥ ६५ ॥
 आणि कोरडें यश गा नोहे । समग्र राज्य हाता येत आहे ।
 तूं निमित्तमात्र होए । सब्यसाची ॥ ६६ ॥

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च ।
 कर्णं तथान्यानपि योध्वीरान् ।
 मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा ।
 युद्धयस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ३४ ॥

द्रोणाचा पाडु न करीं । भीष्माचें भय न धरीं ।
 कैसेनि कर्णावरि । परजूं हें न हण ॥ ६७ ॥
 कवणु उपाउ जयद्रथा कीजे । हें तुवां चित्ति न धरिजे ।
 आणिक ही आयि जेजे । नावणिगे ॥ ६८ ॥
 ते हे येकें येकु आघवे । चित्रिचे सिंहाडे मानावे ।
 वालेनि हातें धेयावे । प्रसूनियां ॥ ६९ ॥
 एयां वरि पांडवां । काइसा जूझाचा मेलवा ।
 हा आभामु गा आघवा । येर आकर्षिलें मियां ॥ ७० ॥
 जेव्हलि तुवां देखिले । माझां वदनीं पडिले ।
 तेव्हां चि एयांचें सरलें । आतां रिति सोपें ॥ ७१ ॥
 ह्यगौनि वहेला उठीं । मिमां आहाले तूं निवटीं ।
 न रिग शोकसंकटीं । नाथिलिये ॥ ७२ ॥
 आपण चि आडखला कीजे । कवतिकें जैसा विधिजे ।
 तैतें देखें तूझें । निमित्त आहे ॥ ७३ ॥
 आगा उखटें जें उदैलें । तें तवं परतें गेलें ।
 आतां राजेंसि संचटें । यश तूं भोगि ॥ ७४ ॥
 जेव्हलि उतत होंते दायद । आणि वलिये जगि दुर्मद ।
 ते वधिले रिपु विशद । शौर्य यांचें ॥ ७५ ॥

ऐसिया इया गोठी । विश्वाचां वाक्पटिं ।
लिह्नुनि घालीं किरीटी । विजया होइ ॥ ७६ ॥

संजय उवाच ॥

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिवेषमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भोतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

ऐसी अवघी चि हे कथा । तेया पूर्ण मनोरथा ।
संजयो सांघे कौरवनाथा । ज्ञानदेउ छणे ॥ ७७ ॥
मग स्वर्गलोकानि गंगाजल । सूटलेयां वाजति खलाल ।
तैसी वाचा विशाल । बोलतां तेया ॥ ७८ ॥
नातरि महामेवांचे उमाले । बडबडीत एके वेले ।
कां घुमघुमी मंदराचले । क्षीराब्धि जैसा ॥ ७९ ॥
तैसें गंभीरें महानादें । हें वाक्य विश्वकंदें ।
बोलिलें अगाधें । अनंतरूपें ॥ ८० ॥
तें अर्जुनें मोटकें आइकिलें । आणि मुख किं भय चि दुणावलें ।
हें नेणों परि कांपिनलें । सर्वांग तेयाचें ॥ ८१ ॥
सकरुगपणें वडला मोट । मग जोडिछे करसंपुट ।
बेलबेलां ललाट । चरणीं ठेवी ॥ ८२ ॥
तेविं चि काहिं बोलें जाए । तारि गळा बुजाला टाए ।
मुख किं भय होये । तें विचारा तुळीं ॥ ८३ ॥
पारि तेव्हलि देवाचेनि बोलें । अर्जुना ऐसें हें जालें ।
भियां पदांवारि देखिलें । श्लोकंचेयां ॥ ८४ ॥
मग तैसा चि भेणभेण । पुढुतीं जुहारी चरण ।
ह्मणे जी आपण । ऐसें बोलिलें ॥ ८५ ॥

अर्जुन उवाच ।

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ॥
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

नां अर्जुनां मीं कालु । आणि विश्व ग्रासिं तो माझा खेळु ।
हा बोलु किर अढळु । मानुं आर्क्षीं ॥ ८६ ॥
पारि जी तुवां कालें । आजि स्थितिचिये वेळे ।
प्रासिजे हें न मिले । विचारासि ॥ ८७ ॥
कैसेनि आंगिचें तारुण्य मोडावें । कैचें वृद्धाप्य काढावें ।
हणौनि करुं हणसि तें न्हेवे । बहुत करुनि ॥ ८८ ॥
आगा चौपाहारी न भरतां । कर्हि चि देखैं अनंता ।
मध्यान्हीं चि सविता । मालवत नाहीं ॥ ८९ ॥
पैं तुज अखंडिता काला । तीनि आहाति वेळा ।
या तीन्ही पारि सवळा । आपुलाळां समैं ॥ ९० ॥
जेव्हलि हों लागे उत्पत्ति । तेव्हळि स्थितिप्रलयो हारपति।
स्थितिकालां न मिरवति । उत्पत्तिप्रलयो ॥ ९१ ॥
पाठिं प्रलयाचिये वेळे । उत्पत्तिस्थिति मावळे ।
हें काइसेनि हिं न ढले । अनादि ऐसें ॥ ९२ ॥
हणौनि आजि भरें भोगें । स्थिती वर्त्तिजत आदे जगें ।
येथ ग्रासिसि हें न लगे । माझां जीवीं ॥ ९३ ॥
तवं संकेतें देउ बोलें । आगा या सैन्या भरण पूरलें ।
तें प्रलक्ष तुज दावलें । येरां यथाकालें जाण ॥ ९४ ॥
हा संकेतु जवं अनंता । वेळु लागला बोलतां ।
तवं अर्जुनें लोकु मागौता । स्थिती देखिला ॥ ९५ ॥

मग अर्जुनु ह्मणे देवा । तूं सूत्री विश्वलाघवा ।
 जगु आला जी आघवा । स्थिती पुढुतीं ॥ ९६ ॥
 परि पडिलेयां दुःखसागरीं । तूं काहिसि कां जिया परीं ।
 ते कीर्त्ति तूझी हरी । आठवीतसें ॥ ९७ ॥
 आठवितां वेळोवेळां । भोगिजत महासुखाचा सोहला ।
 तेथ हर्षामृतकल्लोलां । वारि लोलत असें ॥ ९८ ॥
 देवा जियालेपणें जगु । धारति तूझां ठांडं अनुरागु ।
 आणि दृष्टांतियां भंगु । अधिका अधिकु ॥ ९९ ॥
 पै त्रिभुवनिचेयां राक्षसां । महाभय तूं र्षाकेशा ।
 पलताति यां दिशां । पैलीकडे ॥ ५०० ॥
 येर सुरसिद्धकिनर । किं बहुना चराचर ।
 तूतें हर्षनिर्भर । नमित असे ॥ १ ॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् ।
 गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
 अनंत देवेश जगन्निवास ।
 त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७ ॥

एथ हां गा कवणा कारणां । राक्षस होत नारायणां ।
 न लगती चि चरणा । पलते जाले ॥ २ ॥
 आणि तूतें हें काइ पूसावें । एतुळें आह्मासि पै जाणवें ।
 हां गा सूर्योदयीं राहावें । कैसेनि तमें ॥ ३ ॥
 तूं स्वयंप्रकाशाचा आगरु । आजि जाळा अससि गोचरु ।
 ह्मणौनि येयां केरु । फीटला सहजें ॥ ४ ॥
 हें एतुले दिवस आह्मां । काहिं नेगवे चिं श्रीरामां ।
 आतां देखतसे महिमा । गंभीर तूझी ॥ ५ ॥
 जेथौनि नाना सृष्टीचिया वोलें । पसरति भूतग्रामांचिया वेळी ।
 तेया ब्रह्मातें व्याली । दैविकी इछा ॥ ६ ॥

दे३० निःसीमगुण अनंतु । दे३० निःसीमतत्व सदोदितु ।
 दे३० निःसीमसाम्य सतंतु । चौ हि वांचा ॥ ७ ॥
 जी तूं त्रिजगती ॐलावा । अक्षर तूं सदाशिवा ।
 तूं संतासंत देवा । तेयां ही अतीत तें तूं ॥ ८ ॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण
 स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
 वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
 त्वया ततं विश्वमनंतरूपम् ॥ ३८ ॥

तूं प्रकृतिपुरुषांची आदि । जी महातत्वांची अवधी ।
 स्वयें तूं अनादि । पुरातनु ॥ ९ ॥
 सकल विश्वासि जीवन । जीवांसि तूं निधान ।
 भूतभव्याचें ज्ञान । तूझां चि हार्ति ॥ ५१० ॥
 जी श्रुतीचेया लोचना । स्वरूपसुख तूं अभिन्ना ।
 तूं त्रिभुवनिचिया आयतना । आयतन तूं ॥ ११ ॥
 ह्यणौनि जी परम । तूंते ह्यणिजे महाधाम ।
 कल्पांती महद्ब्रह्म । तूझां अंकीं रिगे ॥ १२ ॥
 किंबहुना देवें । विश्व विस्तारलें आवचें ।
 आतां अनंतरूप वानावें । कवणें तूझें ॥ १३ ॥
 जी काइ एक तूं न्हवसि । तूं कवणीं ठाईं गा नससि ।
 हें असो जैसा आहासि । तैसेया नमो ॥ १४ ॥

वायुर्यमोऽग्निर्वहणः शशांकः
 प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
 नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वा
 पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ३९ ॥

वायु तूं अनंता । यमू तूं नियमिता ।
 प्राणिगणीं वसता । अग्नि जी तूं ॥ १५ ॥

वरुणु तू सोमु । स्रष्टा तू ब्रह्म ।
 पितामहाचा परमु । आदिजनकु तू ॥ १६ ॥
 आणिक ही जें जें काहिं । रूप अथवा नाहिं ।
 तेया नमो तुज पाहीं । जगन्नाथा ॥ १७ ॥
 ऐसें सानुरागें चित्तें । स्तवन केलें पांडुसुतें ।
 मग पुडुतीं ह्मणे नमस्ते । नमो प्रभू ॥ १८ ॥
 पाठिं तिये साद्यंतें । निहाली मूर्त्तितें ।
 पुडुतीं ह्मणे नमस्ते । नमो प्रभू ॥ १९ ॥
 इयें चराचरीं समस्तें । अखंडित देखें तेयातें ।
 आणि पुडुतीं ह्मणे नमस्ते । नमो प्रभू ॥ ५२० ॥
 ऐसिं देखौनि अद्भुतें । आश्चर्य होतसे मातें ।
 तवं तवं ह्मणे नमस्ते । नमो प्रभू ॥ २१ ॥

नमः पुरस्तादथ पृष्टतस्ते

नमोस्तु ते सर्वत एव सर्व ॥

अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वं

सर्वं समाप्नोषि ततोसि सर्वः ॥ ४० ॥

आणिकि स्तुति नाठवे । आणि निवांत हिं न न्हां
 नेणों कैसा प्रेमभावें । गाजों चि लागे ॥ २२ ॥
 किंबहुना इया परीं । ननम केलें सहस्र वेन्हीं ।
 पुडुतीं ह्मणे श्रीहरी । तुज सन्मुखा नमो ॥ २३ ॥
 देवासि पाठि आधि कां नाहिं । येणें आह्मां उपेगु काइ ।
 तरि तुज पाठिमोरयासि हीं । नमो स्वामी ॥ २४ ॥
 आतां वेगलालेयां हिं अवेवां । नेणें रूप करूं देवा ।
 ह्मणौनि नमो तुज सर्वा । सर्वव्यापका ॥ २५ ॥
 जी अनंतवलसंभ्रमा । तुज नमो अनंतविक्रमा ।
 सकलकाळिं समा । सर्वदेशा ॥ २६ ॥

आघवां अवकाशि जैसें । अवकाशु होउनि आकाश असे ।
 तूं सर्वपणें तैसें ॥ पातलासि सर्व ॥ २७ ॥
 किंबहुना केवल । सर्व हें तूं चि निखल ।
 आगा क्षीरार्णवीं कळोल । पयाचे जैसे ॥ २८ ॥
 ह्यगौनियां देवा । तूं वेगला न्हवसि सर्वा ।
 हें आलें मज सद्गावां । आतां तूं चि सर्व ॥ २९ ॥

सखेति मत्वा प्रसभं यंदुक्तं

हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।

अजानता महिमानं तवेदं

मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ ४१ ॥

पारि ऐसेया तूतें स्वामीं । काहीं नेणों चि जी आक्षीं ।
 ह्यगौनि सबंधधर्मीं । राहाटलों तुसीं ॥ ३० ॥
 आहा थोर वाउर जालें । अमृतें संमार्जन केलें ।
 वृषभु घेउनि दीधलें । कामधेनूतें ॥ ३१ ॥
 परिसु हाता आला । तो नेणौनि गा डौरां घातला ।
 कल्पतरूचा केला । कूपु सेता ॥ ३२ ॥
 चिंतामणिची खाणि देखिली ।
 पारि नोळखे चि ह्यगौनि अन्हेरिली ।
 तैसी तूझी जवलीक धाडिली ।
 सांघातीपणें ॥ ३३ ॥
 हें आजिचें चि पाहे पां रोकडें । कवण जूझ हें केवडें ।
 एथ परब्रह्म तूं उघडें । सारथी केलासि ॥ ३४ ॥
 एयां कौरवांचेया घरा । शिष्टाइये धाडिलासि दातारा ।
 ऐसा वणेसाठिं जागेश्वरा । वीकिलासि जी ॥ ३५ ॥
 तूं योगियांचें समाधिसुख । कैसें जाणों चि ना मूर्ख ।
 उरोधु तुसीं सदमुख । करूं देवा ॥ ३६ ॥

यच्चापि हासार्थमसत्कृतोऽसि
 विहारशय्यासनभोजनेषु ॥
 एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
 तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

तुज ऐसेयाचां आदिं । बैसिजे उभयबंधीं ।
 तेथ सोयारीकीं करुनि आधीं । रलीं बोलों ॥ ३७ ॥
 विपायें राउला ए३० । तारिं तूझेनि आंगें मानु पाहों ।
 न मनीसि तारिं जा३० । रुसौनियां ॥ ३८ ॥
 पायां लागौनि बुझावणी । तूझां ठांइं सारंगपाणी ।
 आणिकें हीं करणीं । बहुतें असति ॥ ३९ ॥
 स्वजनपणाचिया वाटा । पाहों लागलों उपराठा ।
 ऐसेया परीं वैकुंठा । चूकलों आह्मीं ॥ ५४० ॥
 देवा तुजसिं आह्मिं कोलु धरं । अखंड लोंब्रीझोंब्री करं ।
 ऐसा सरिपाडु धरं असकरं । निकरें तंडों ॥ ४१ ॥
 चांग तें उराउरीं मार्गों । आणि तुज चि किं बुद्धि सांगों ।
 तेविं चि हणों काइ लागों । तूझे आह्मीं ॥ ४२ ॥
 ऐसा अपराधु एतुला आहे । जो त्रिभुवनीं परि न समाए ।
 जी नेणों चि आह्मीं पाए । स्वीकारिले तूझे ॥ ४३ ॥
 दे३० भोजनाचां अँवसरीं । लोभें किर आठवण करी ।
 पै माझी निमुगै अवधारीं । किं उगा चि बैसें ॥ ४४ ॥
 देवाचां भोगायतनीं । खेलतां शंका न धरीं मनीं ।
 आणि रिगौनियां शयनीं । सरिसा पडुडें ॥ ४५ ॥
 कृष्णा हणौनि हाकारिजे । यादवपणें तूतें लेखिजे ।
 आपुली आण वाइजे । जातां तुज ॥ ४६ ॥
 मज एकासनीं बैसणें । कां तूझा वोटु न मनणें ।
 हें प्रीतिचेनि दाटणें । बहुत घडलें ॥ ४७ ॥

ह्यणौनि काइ एक आतां । केती निवेदिजैल अनंता ।
 मी राशि आहे समस्ता । अपराधांचा ॥ ४८ ॥
 एया लागि पुढां अथवा पाठिं । जियें राहटलां विरुद्धें गोमटीं ।
 तियें मायेचिया परी पोटीं । सामावी प्रभू ॥ ४९ ॥
 जी कन्हणी एके वेले । सरिता घेउनि येति खडुलें ।
 तियें सामाविजति समुद्रें जलें । किं वोसांडिजे सांघें ॥ ५० ॥
 तैसें प्रीती कां प्रमादें । देवेंसिं बोलिलां विरुद्धें ।
 तियें मज मुकुंदें । उपसहार्वां ॥ ५१ ॥
 आणि देवाचेनि क्षमलें क्षमा । आधार जाली आहे भूतप्रामां ।
 ह्यणौनि ते पुरुपोत्तमा । कैसें व ह्यणों ॥ ५२ ॥
 परि तन्हीं अप्रमेया । मज शरणागता आपुल्लेया ।
 क्षमा कीजो यया । अपराधांसि ॥ ५३ ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य ।

त्वमस्य पूज्यस्य गुरुर्गरीयान् ॥

न त्वत्समोऽस्त्यभ्याधिकः कुतोऽन्यो

लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥ ४३ ॥

जी जाणितलें मियां साचें । महिमान आतां देवाचें ।
 देवो होये चराचराचें । जन्मस्थान ॥ ५४ ॥
 हारिहरादि समस्तां । देवा तूं परदेवता ।
 वेदातें हिं पढविता । आदिगुरु तूं ॥ ५५ ॥
 गर्भारु तूं श्रीरामा । नानाभूतैकशामा ।
 सकलगुणीं प्रतिमा । अद्वितीया ॥ ५६ ॥
 तुजसिं नाहिं सरिसें । हें प्रतिपादन काइसें ।
 तुवां जालेनि आकाशें । आण वाइली ॥ ५७ ॥
 तेया तूजेनि पाडें दूजें । ऐसें बोलतां चि जी लाजिजे ।
 तेथ अधिकाची कीजे । गोठि केवि ॥ ५८ ॥

हणौनि त्रिभुवनीं तूं एकु । तुज सारिसा ना अधिकु ।
तूज्ञा महिमा अलोलिकु । नेणिजे वानुं ॥ ५९ ॥

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं

प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः

प्रियः प्रियायार्हासि हेव सोढुम् ॥ ४४ ॥

ऐसें अर्जुनें हणितलें । मग पुडुतीं दंडवत घातलें ।
तेथ सात्विकाचें आलें । भारितें तेया ॥ ५६० ॥
हणतां प्रसीद प्रसीद । वाचा होंतसे सद्गद ।
काढीं जी अपराध— । समुद्रौनियां ॥ ६१ ॥
तुज विश्वसुद्धदातें कहीं । सोइरेपणें न मनुं चि पाही ।
तुज ईश्वरेश्वराचां ठाईं । ऐश्वर्य केलें ॥ ६२ ॥
तूं वर्णनीयु पारि लोभें । मातें वानितां सभे ।
तें मियां साहिजे खोबे । निवातां चि ॥ ६३ ॥
आतां ऐसेसेयां अपराधां । मर्यादा नाहिं मुकुंदा ।
हणौनि रक्ष प्रमादा । पसाउ० हणवीं ॥ ६४ ॥
जी हें चि विनवावेया लागि । कैची योग्यता माझां आंगीं ।
पारि अपत्य जैसें सलगी । बापेंसि बोले ॥ ६५ ॥
नातारि प्राणाचें सोयरें भेटे । मग जिवें जिये भूतळि संकटें ।
तिर्ये निवेदितां न वटे । संकोचु कांहीं ॥ ६६ ॥
कां उखितें आंगें जीवें । आपणपें दीधळें जिया आवयें ।
तिये कांतु मीनलेयां न न्हावें । हृदय जेवि ॥ ६७ ॥
तिया परीं जी मियां । तुमतें त्रिनत्रिलें गोसावियां ।
परि आणिक ही एक हणावेया । कारण असे ॥ ६८ ॥

भद्रप्रपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
व

भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।

तदेव मे दर्शय देव रूपं

प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥

तरि देवेंसिं सलगि केली । जे विश्वरूपाची आलि घेतली ।

ते मायेबापें पुरविली । स्नेहालपणें ॥ ६९ ॥

सुरतरूचिं झाडें । आंगणिं लाविसि कोडें ।

देसि कामधेनूचे पाडे । खेलावेया ॥ ५७० ॥

मियां नक्षत्रीं डाउं पाडावा ।

मग चंद्रु चेंडुवा लागि मागावा ।

हा संदु सिद्धी नेला आघवा ।

माउलिया तुवां ॥ ७१ ॥

जेया अमृतलेसा लागि सायास ।

तेयाचा पाउसाला केल्य च्यान्ही मास ।

पृथिविये लेउनियां तास ।

चिंतामणि पेरिले ॥ ७२ ॥

ऐसा कृतकृत्यु केलं स्वामीं । बहू लयं लालिलां तुहां ।

दाविलें जें हरब्रह्मीं । नाइकिजे कार्नीं ॥ ७३ ॥

मज देखावेयाची केउती गोठि ।

जेयाची उपनिषदां नाहिं भेटि ।

ते जिन्हारिची गांठि ।

मज लागिं सोडिली ॥ ७४ ॥

जी कल्पदि लागौनि । आजिची घडी धरुनि ।

माझिं जेतुलीं होउनि । गेलीं जन्में ॥ ७५ ॥

तेया आघवेया आंतु । घरड हुळि घेउनि असें पांतु ।

परि देखिजे आइकिजे हे मातु । आंतुडे चि ना ॥ ७६ ॥

मुद्दिचें जाणणें । काहिं चि न वचे जेयाचेनि आंगणें ।
 साद हि अंतःकरणें । करवे चि ना ॥ ७७ ॥
 तेथ डोलेयां देखि होआवी । हे गोठि काइसेया करावी ।
 किंवहुना पूर्वी । दृष्ट ना श्रुत ॥ ७८ ॥
 तें हें विश्वरूप आपुलें । तुम्हीं मज जी दाविलें ।
 तरि माझे मन जाळें । दृष्ट देवा ॥ ७९ ॥
 पारि आतां ऐसी चाड जीवि । जे तुजसिं गोठि करावी ।
 जवळिक हे भोगावी । आळिगुनि तूतें ॥ ५८० ॥
 तें इथे चि रूपिं करूं म्हणिजे ।
 तरि कवणें एकें मुखेंसि चावलिजे ।
 आणि कोणा खेवं देइजे ।
 तुज लेख नाहिं ॥ ८१ ॥
 म्हणौनि वारेया सवें धावणें । न घडे गगना खेवं देणें ।
 जळक्रेळि खेळणें । समुद्रीं केउती ॥ ८२ ॥
 एया लागि देवा । येथ भय उपजतसे जीवा ।
 म्हणौनि येतुला लला पालवा । तरि पुरे हें आतां ॥ ८३ ॥
 पै चराचर विनोदें पाहिजे । मग तेणें मुखें घरीं राहिजे ।
 तैसें चतुर्भुजरूप तूजें । तो विसावां आळां ॥ ८४ ॥
 आझीं योगजात अन्यासावें । तेणें यया चि अनुभवा यावें ।
 शास्त्रातें ओलाडावें । पारि सिद्धांतु तो हा चि ॥ ८५ ॥
 आळि यजनें कांजतु सकलें । पारि तियें फळाविं येणें चि फळें ।
 तीर्थें होतु केवलें । यया चि लागि ॥ ८६ ॥
 आणिक ही काहिं जे जे । दानपुण्य आझीं कांजे ।
 तेया फलरूप तूजें । चतुर्भुजां चि होआवें ॥ ८७ ॥
 ऐसी तेथिची जी आवडी । तें देखावेया वावडी ।
 वर्तत असे सांकडी । फेडीं वेगां ॥ ८८ ॥

आगा जीविचें जाणतेया । सकल विश्व वसवितेया ।
प्रसन्न होई पूजितेया । देवांचिया देवा ॥ ८९ ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त

मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।

तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन

सहस्रबाहो मव विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

कैसीं नीलोत्पलाते रावित । आकाशा रंगु लावित ।

तेजाची वोज दावित । इंद्रनील ॥ ५९० ॥

जैसा परिमलु जाला मरगजा ।

कां आनंदासि निगालिया दोनि भुजा ।

एणें आघवेनि मकरध्वजा ।

जोडली बरव ॥ ९१ ॥

मस्ताकें मुकुटा ठेविलें । किं मस्तक मुगुटु जालें ।

श्रिगारें लेणें लाधलें । आंगाचें जेया ॥ ९२ ॥

इंद्रधनुखाचिये आडणी । माझि मेघ गगनरंगणी ।

तैसें आवरलें सारंगपाणी । वैजयंतिया ॥ ९३ ॥

कवणि ते उदार गदा । करी असुरां कैवल्याचा धोंदा ।

कैसें चक्र हान गोविंदा । सौम्य तें ॥ ९४ ॥

किंबहुना स्वामी । तें देखोवेया उत्कंठ मी ।

हणौनि झडकरुनि तुह्मीं । तैसें चि होआवें ॥ ९५ ॥

हे विश्वरूपाचे सोहले । भोगूनियां निवाले डोले ।

आतां होताति आंधले । कृष्णालागि ॥ ९६ ॥

तें साकार कृष्णरूपडें । वांचूनि पाहों आन नावडे ।

तें नेदखतां थोडें । मानिताति हे ॥ ९७ ॥

आह्मां भोग मोक्षाचां टांडें । ते श्रीमूर्ति वांचूनि नाहीं ।

हणौनि तैसा चि साकार होई । हें संहारीं आतां ॥ ९८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
 रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
 तेजोमयं विश्वमनंतमाद्यं
 यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

एया अर्जुनाचेया बोला । विश्वरूपा विस्मो जाला ।
 ह्मणे ऐसा नाहिं देखिला । घसाल कोणही ॥ ९९ ॥
 कोणि हे वस्तु लाधलासि ।
 तेया लाभाचा तोषु नेवसि ।
 मां भेणें काइ बोलसि ।
 हेकाडु ऐसा ॥ ६०० ॥
 आह्मीं सवियां चि जें प्रसन्न होणें ।
 तैं आंग चि वरि ह्मणे देणें ।
 वांचूनि जीउ असे वेचणें ।
 कऱ्हाणा लागि ॥ १ ॥
 तें हें तूक्षिये चाडे । आजि जीवाचें चि दलवाडें ।
 कालौनियां एवडें । रचिलें ध्यान ॥ २ ॥
 ऐसी पै तूक्षिया आवडी । जाली प्रसन्नता आमची एवडी ।
 ह्मणौनि गौप्याची ही गुढी । उभिली जर्गी ॥ ३ ॥
 तें हें देख अपार । स्वरूप माझें पर ।
 एथौनि ते अवतार । कृष्णादिकांचे ॥ ४ ॥
 हें ज्ञानतेजाचें निखल । विश्वात्मक केवल ।
 अनंत हें अढल । आद्य हें ॥ ५ ॥
 आणि हें तुज वांचूनि अर्जुनां । पूर्वीं दृढ नाहिं आना ।
 जें न्हवे जोगें साधना । ह्मणौनियां ॥ ६ ॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै
 न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
 एवंप्रकारः शक्य अहं नृलोके ।
 द्रष्टुं त्वदन्येन कूरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

एयाची सोय पातले । आणि वेदीं मौन चि घेतलें ।
 यज्ञ किर माघौते आले । स्वर्गौनि चि ॥ ७ ॥
 साधकिं देखिला आयामु । म्हणौनि निर्वाळिला योगाभ्यासु ।
 आणि अध्ययनासि सोरसु । नाहिं एथ ॥ ८ ॥
 सिधेचिं सत्कर्म । धाविनलीं संभ्रमें ।
 तिहिं बहुतें एकें श्रमें । सत्यलोकु टाकिला ॥ ९ ॥
 तिहिं स्वर्ग देखिलें । आणि उग्रपणें उगेयां चि सांडिलें ।
 एवं साधना जें ठेलें । अपटांतरिं ॥ ६१० ॥
 हें तुवां अनायासें । विश्वरूप देखिलें जैसें ।
 इये मनुष्यलोकिं तैसें । न फवे चि कोणहां ॥ ११ ॥
 आजि ध्यानसंपती लागि । तूं चि एकु आथि जर्गी ।
 हें भाग्य देखें आंगीं । विरिंची ही नाहिं ॥ १२ ॥

मा ते व्यथा मा च विरूढभावो
 दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्गमेदम् ।
 व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं ।
 तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥

म्हणौनि विश्वरूपिं श्लाघ । एथिचें भय नेव ।
 हें वांचूनि चांग । न मनी काहिं ॥ १३ ॥
 समुद्र अमृता भरला । आणि अवसांत वरिपडा जाला ।
 मग कव्हणीं आथि वोसंडिला । बुडिजैल म्हणौनि ॥ १४ ॥
 नातरि सोनेयाचा डोंगर । काड करावा हा थोर ।
 ऐसें म्हणौनि अब्हेरु । करी कोणही ॥ १५ ॥

दैवें चिंतामणि लेइजे । किं तेयातें बोझें ह्यणौनि ॐसंडिजे ।
 ना तरि कामधेनु दवडिजे । न पोसवे ह्यणौनि ॥ १६ ॥
 हां गा चंद्रमा आलेयां घरा ।
 तेयातें ह्यणिजे निगैं न करिं उवारा ।
 पडिसाई पाडितासि दिनकरा ।
 परता सरैं ॥ १७ ॥
 तैसैं ऐश्वर्य हें महातेज । दृष्ट जालें गा तुज ।
 परि वायां चि गजवज । करितासि कां ॥ १८ ॥
 परि नेणसि गा धनंजया । काइ कोपों गावंढेया ।
 आंग सांडुनि छाया । आळगिती कां ॥ १९ ॥
 हें नव्हे जो मी साचें । ऐसैं मन करिसी हो काचें ।
 प्रेम धरूनि आवगणिचें । निहाळिसी कां ॥ ६२० ॥
 तरि आझू वेन्हीं पार्था । सांडि थाया हो आतां ।
 इये विधिं आस्था । चोरिसि झनें ॥ २१ ॥
 हें रूप जन्हीं घोर । विकृत आणि थोर ।
 तन्हीं कृतनिश्चयासि घर । हें चि करीं ॥ २२ ॥
 कृपणाची चित्तवृत्ति जैसी । राउनि घातली ठेवेया पासिं ।
 मग नमुधेनि देहेंसि । आपणपां असे ॥ २३ ॥
 कां अजातपक्षा जवळ । जीउ वैसौनि तिया आविसाला ।
 पक्षिणी अंतराला । उडौनि जाये ॥ २४ ॥
 ना गाय चरे डोंगरीं । परि चित्त बांधलें वस्सें घरीं ।
 तैसैं प्रेम येथ करीं । पार्था तूं ॥ २५ ॥
 एरें उवाइलेनि चित्तें । ब्राह्म सख्य यया मुखा पुरतें ।
 भोगि जो कां तिये श्रीमूर्त्तितें । चतुर्भुजे इये ॥ २६ ॥
 परि पुडुतीं पुडुतीं पांडवा । हा येकु बोळु न विसरावा ।
 जें इये रूपौनि सद्गावा । नेशवें निगों ॥ २७ ॥

हें काहिं चि नव्हतें देखिलें । ह्यणौनि तुज भय उपनलें ।
 तें साडिं एथ संचलें । असों दे प्रेम ॥ ६२८ ॥
 आतां करूं तूझेया सारिखें । ह्यणितलें विश्वतोमुखें ।
 तारि मागील रूप मुखें । दाउं तुज ॥ २९ ॥
 ऐसें वाक्य बोलत खे३० । मागुता मनुष्य जाला दे३० ।
 ऐसा देखां नवला३० । आवडिचा तिये ॥ ६३० ॥
 कृष्णु कैवल्य उवडें । वरि सर्वस्व विश्वरूपा येवडें ।
 हातिं दीधळें किं नावडे । अर्जुनासि ॥ ३१ ॥
 वारुकां वारुणु वारिजे । जैसें रत्नासि दूषण ठेविजे ।
 ना तारि कन्या पाहुनु ह्यणिजे । मना नये ॥ ३२ ॥
 तेया विश्वरूपा येवडी दशा । कारितां प्रीतिचा वाडु कैसा ।
 सेळ दीधली असे उपदेशा । किरीटांसि देवें ॥ ३३ ॥
 मोडूनि भांगाराचा रवा । लेणीं घडिजति आपुलेया सवा ।
 मना नावडे जरि जीवा । तारि आटिजे पुडुतीं ॥ ३४ ॥
 तैसें शिष्याचिये प्रतीतीं जालें । कृष्णत्व होतें तें विश्वरूप केलें ।
 तें मना नये चि तेव्हलें आणिलें । कृष्णपण मागुतें ॥ ३५ ॥

संजय उवाच ॥

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
 स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
 आश्वासयामास च भीतमेनं
 भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

हा ठावो वेन्हीं शिष्याची निती ।
 साहाते गुरु काइ आहाति देशी ।
 परि नेणिजे आवडि कैसी ।
 संजयो ह्यणे ॥ ३६ ॥

मग विश्व व्यापूनि भवतें । जें योगतेज प्रकटलें होंतें ।
 तें हारतलें आइतें । रूपिं तिये ॥ ३७ ॥
 जैसें त्वंपद हें आघवें । तत्पदार्थीं सामावे ।
 अथवा दृमाकारु सांटवे । ब्रीजकणिके ॥ ३८ ॥
 ना तारि स्वप्नसंभ्रमु जैसा । गिळी चेइली जीवदशा ।
 श्रीकृष्णें योगु तैसा । संहारिला तो ॥ ३९ ॥
 जैसी हारतली प्रभा विंविं । कां जलदसंपति नभीं ।
 भरितें सिंधुगभीं । रिगालें राया ॥ ६४० ॥
 हों काज कृष्णाकृतिचिया मोडी । होती विश्वरूपाची घडी ।
 ते अर्जुनाचिया आवडी । उपलविली देवें ॥ ४१ ॥
 तव प्रमाण आणि रंगु । देखिला सवियां चांगु ।
 तेथ ग्राहकैये जाला लागु । म्हणौनि केली पुढुतीं ॥ ४२ ॥
 तैसें वाडिचेनि बहुवसपणें । रूपें विश्व जितलें जेणें ।
 तें सौम्य कोडिसवाणें । साकार जालें ॥ ४३ ॥
 किंवहुना अनंतें । धाकुटेपण धरलें माघौतें ।
 परि आश्वासिलें पार्थातें । भियालेयातें ॥ ४४ ॥
 तेथ स्वप्नीं स्वर्गां गेला । तो अवसांत जैसा चेइला ।
 तैसा विस्मयो जाला । किरीटीसी ॥ ४५ ॥
 नातारि गुरुकृपे सवें । उसरलें प्रपंचजात आघवें ।
 स्फुरे तत्व तेवि पांडवें । मूर्ति देखिली ॥ ४६ ॥
 तेया पांडवा ऐसें चित्तीं । आड विश्वरूपाची जवनीक होती ।
 ते फिटौनि गेली परौती । हें भलें जालें ॥ ४७ ॥
 काइ कालातें जीणौनि आलां ।
 किं मियां महावातु मागां सांडिला ।
 नातारि आपुलां वाहिं उतरलां ।
 सिंधु सातै ॥ ४८ ॥

ऐसा संतोपु बहू चित्तें ष्ठेइजत असे पांडुमुतें ।
 विश्वरूपा पाठिं कृष्णातें । देखौनियां ॥ ४९ ॥
 मग सूर्याचां अस्तमानीं । माधुतिया तारा उघडती गगनीं ।
 तैसा देखों त्रागला वयनीं । दोन्हीं सैन्यें ॥ ६९० ॥
 पाहे तवं तें चि कुरुक्षेत्र । आणि दों भागीं जालें असे गोत्र ।
 वारि वारिपताति शस्त्र । संघाट वेन्हीं ॥ ५१ ॥
 तेया वाणाचेया मांडवा आंतु । तैसा चि रथु आहे निवांतु ।
 धूरे बैसला लक्ष्मीकांतु । आपणपें तलीं ॥ ९२ ॥
 तवं मागील जैसें तैसें । तेषें देखिले वीर विलासे ।
 मग ह्मणे जी आतां मानसें । साच घेतलें ॥ ५३ ॥
 बुद्धितें सांडूनि ज्ञान । भेण वलघले रान ।
 अहंकारेंसि मन । कां देशीक जालें ॥ ५४ ॥
 इंद्रियें प्रकृति भूललीं । वाचा प्राणासि चूकली ।
 ऐसी अपांपारि होती जाली । शरीरग्रामिं ॥ ५५ ॥
 तियें आवचीं चि माघौतीं । जीवें भेटलीं प्रकृती ।
 आतां जीताणें श्रीमूर्ती । जालें इया ॥ ५६ ॥

अर्जुन उवाच ।

दृष्टेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।

इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥

ऐसें मुख जीवीं घेतलें । मग कृष्णातें जी ह्मणितलें ।
 मियां तुमचें रूप देखिलें । मानुष हें ॥ ९७ ॥
 हें रूप दाखवणें राया । किं अपत्या मज चूकलेया ।
 बुझाउनि तुवां माया । स्तन्य दीवळें ॥ ५८ ॥
 जी विश्वरूपाचां सागरीं । होंतां तरंग मवीतु वांव वेन्हीं ।
 तो इये मूर्तीचां तीरीं । निगाळा आतां ॥ ५९ ॥

आइकै द्वारकापुरसुहडा । मज सुकतेया जी झाडा ।
 हे भेटि नव्हे हुडा । मेघांचा जाला ॥ ६० ॥
 सावियां तृपा फूटला । तेया मज अमृतसिंधु भेटला ।
 आतां भरवंसा जाला । जाणेयांचा ॥ ६१ ॥
 माझां हृदयरंगणीं । होंतसे हरिषलतांची लावणी ।
 सुखेंसि बुझावणी । जाली मज ॥ ६२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।

देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥

या पार्थाचेया बोला सवें । हें काइ गा ह्मणितलें देवें ।
 तुवां प्रेम ठेउनि यावें । विश्वरूपीं किं ॥ ६३ ॥
 मग इये श्रीमूर्ती । भेटावे सडिया आइती ।
 हें सिखवणें सुभद्रापती । विसरलासि पै ॥ ६४ ॥
 पै लाधलेयां अर्जुना । मेरु ही आवडे साना ।
 ऐसा आधि मना । दुःस्वप्नभावो ॥ ६५ ॥
 तें हें विश्वात्मक रूपडें । जें दाविलें गा तुजपुडें ।
 तें शंभू ही न जोडे । तप कारितां ॥ ६६ ॥
 अष्टांगादि संकटीं । योगी सीणताति किरीटी ।
 पारि अवसर नाहिं भेटी । जेयाचिये ॥ ६७ ॥
 तें विश्वरूप एकधा वेलु । देखौनि काये अलुमाळु ।
 ऐसें कारितां कालु । जांतसे देवां ॥ ६८ ॥
 आशेचिया आंजुली । ठेउनि हृदयाचां निडलीं ।
 चातक निरालीं । लागलें जैसें ॥ ६९ ॥
 तैसे उत्कंठानिर्भर । होउनियां मुरवर ।
 घोक्ति आठे पाहार । भेटि जेयाची ॥ ६७० ॥

पैं विश्वरूपा सारिखें । स्वप्नीं हिं कव्हणीं नेदखे ।

जें प्रत्यक्ष तुवां सुखें । देखिलें हें ॥ ७१ ॥

नाहं वेदैनं तपसा न दानेन न चेज्यया ।

शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥

पैं उपायांसि वाटा । नव्हति एथ सूभटा ।

सावाइं वोहटा । वाहिला वेदें ॥ ७२ ॥

मज विश्वरूपाचिया मोहरा । चालावेया धनुर्द्वारा ।

तपाचिया ही सर्वभारा । न्हवे चि लाडु ॥ ७३ ॥

आणि दान किरु हें कानडें । मीं यज्ञीं हीं तैसा न संपडे ।

जैसेनि कां सुरवाडें । देखिलें तुवां ॥ ७४ ॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४ ॥

तैसा मी एकी चि परी । आंतुडें गा अवधारिं ।

जरि भक्ति एउनु वरी । चित्त माझें ॥ ७५ ॥

ते चि भक्ति ऐसी । पर्जन्याची सूटिका जैसी ।

धारा वांचूनि अनारिसी । गोठि नेणे ॥ ७६ ॥

कां सकल जळसंपत्ती । घेउनि समुद्रातें गिवसिती ।

गंगा जैसी अनन्यगती । मीनली चि मिले ॥ ७७ ॥

तैसें गा सर्वभावभारें । न धरत प्रेम एकसरें ।

मज माझि संचरे । मी चि होउनि ॥ ७८ ॥

आणि तेविं चि मीं ऐसा । थडिये माझारी सरिसा ।

क्षीराब्धि कां जैसा । क्षीराचा चि ॥ ७९ ॥

तैसें मज लागूनि मुंगी वेन्हीं । किंवहुना चराचरीं ।

भजनासि गा दुसरी । भ्रांति पैं नाहिं ॥ ८० ॥

तैं तेया चि क्षणा सर्वें । येवंविधु मीं जाणवें ।

जाणितलां तरि स्वभावें । द्रिष्टु होये ॥ ८१ ॥

मग इंधनि आगि उदिपे । आगि इंधन हें भाप हारपे ।
 तें अग्नी चि होउनि आरोपे । मूर्त जेवि ॥ ८२ ॥
 कां उदो न करिजे तेजकरें ।
 तवं गगन चि होउनि असे आंधारें ।
 मग उदैलेयां एकसरें ।
 प्रकाशु होए ॥ ८३ ॥
 तैसें माझां साक्षात्कारी । सरे अहंकाराची वारी ।
 अहंकारलोपीं अवधारीं । द्वैत जाए ॥ ८४ ॥
 मग मीं तो हें आघवें । एकु मीं चि आधि स्वभावें ।
 किंबहुना सामावे । समरसें तो ॥ ८५ ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ।

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥ ५५ ॥

जो मज चि एका लागि । कमें वाहांतसे आंगीं ।
 जेया मज वांचूनि जगीं । गोमटें नाहिं ॥ ८६ ॥
 दृष्टादृष्ट सकल । जेयासि मीं चि केवल ।
 जेणें जियावेयाचें फल । मज चि नावें ठेविलें ॥ ८७ ॥
 भूतें हें भाप विसरला । जें दीठी मीं चि आहे वांधला ।
 ह्यणौनि निर्वैर जाला । सर्वत्र भजे ॥ ८८ ॥
 ऐसा जो भक्तु होये । तेयाचें त्रैधातुक जें आहे ।
 तें मीं चि होउनि ठायें । पांडवा गा ॥ ८९ ॥
 ऐसें जगदुदरदोदिलें । तेणें करुणारसकळोळें ।
 संजयो ह्यणे वोलिलें । कृष्णदेवें ॥ ६९० ॥
 आतां यावार तो पांडुकुमर । जाला असे आनंदसंपदा थोर ।
 आणि कृष्णचरणचतुर । एकु चि तो जगीं ॥ ९१ ॥
 तेणें देवाचिया दोन्हीं मूर्तीं । नीकिया निहाळिलिया चित्तीं ।
 तवं विश्वरूपा पाहूनि कृष्णमूर्ती । देखिला लासु ॥ ९२ ॥

परि तेयाचिये जाणिवे । मानु न करिजे चि देवें ।
 जें व्यापक पाहूनि न्हवे । एकदेशिय ॥ ९३ ॥
 आणि हें चि सामर्थ्यावेया लागि । येकि दोनि चांगी ।
 उपपत्ती शारंगी । दाविता जाला ॥ ९४ ॥
 तिया आइकौनि सुभद्राकांतु । चित्ति असे ह्यणतु ।
 पारि होये जे दोन्ही आंतु । तें पुडुतीं पुसों ॥ ९५ ॥
 ऐसा आलो चुकरूनि जीवीं । आतां पूसती बोज बरवी ।
 आदरील ते परिसावी । पुढील कथा ॥ ६९६ ॥
 प्रांजल बोवीप्रबंधें । गोठि सांविजैल विनोदें ।
 निवृत्तिपादप्रसादें । ज्ञानदेउ ह्यणे ॥ ९७ ॥
 भरूनि सद्भावचिया आंजुली । मियां बोवीफुलें मोकलीं ।
 अर्पिलीं अंग्रियुगुलीं । विश्वरूपाचां ॥ ६९८ ॥

ॐ ॥ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
 योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शन-
 योगो नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



ज्ञानेश्वरी

अध्याय बारावा

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

जय जय सिद्धे । उदारे प्रसिद्धे ।
अनव्रत आनंदे । वर्त्तितिये ॥ १ ॥
विषयव्यालें मीठी । दीधलेयां उठणें नाहिं ताठि ।
तूझेनि वो गुरुद्रिष्टी । होये माए ॥ २ ॥
तारि ताप कोणातें पोली । कैसेनि सोसु जाली ।
जरि प्रसादरसकळोलीं । पूर्वे येसि तूं ॥ ३ ॥
योगमुखाचे सोहले । सेवकां दावीसि स्नेहाले ।
सोहंसिद्धीचे लले । पालीसि तूं ॥ ४ ॥
आधारशक्तीचां अंकिं । वाढविसि तूं कौतुकिं ।
हृदयकोशपालकीं । हालवीसि पै ॥ ५ ॥
प्रत्यग्ज्योतीची बोवाळणी । करिसि मनपवनाचिं खेलणिं ।
रिद्धीसिद्धीचिं बाललेणीं । लेववीसि माये ॥ ६ ॥
सतराविधेचें स्तन्य देसी । अनाहताचा हळरु गासी ।
समाधिबोधें निजविसी । वुझाउनि ॥ ७ ॥
म्हणौनि साधकां तूं माउली । । पीके सारस्वत तूझां पाउलीं ।
या कारणें साउली । न संडीं तूझी ॥ ८ ॥
आवो सद्गुरुचिये दीठी । तूझें कारुण्य जेयातें आधिष्टी ।
तो सकलविद्याचिये श्रुष्टी । धात्रा होए ॥ ९ ॥

म्हणौनि अंत्रे श्रीमंते । निजजनकल्पलते ।
 आज्ञा दे पां मातें । निरूपणीं ॥ १० ॥
 नवरसां भरविं सागर । करविं उचितरत्नाचे आगर ।
 भावार्थाचे गिरिवर । निफजविं माये ॥ ११ ॥
 साहित्यसोनेयांचिया खाणी । उघडविं देशीचिया अक्षोणी ।
 विवेका वेलीची लावणी । होंदे सैध ॥ १२ ॥
 संवादफलनिधानें । प्रमेयाचिं उद्यानें ।
 लावीं म्हणे गहनें । निरंतर ॥ १३ ॥
 पाखांडाचे दरकुटे । मोडीं वाग्वाद अन्हांटे ।
 कुतर्काचिं दुष्टें । सावजें दवडीं ॥ १४ ॥
 श्रीकृष्णचरणिं मातें । सर्वत्र करिं वसतें ।
 राणिवे बैसवीं श्रोते । श्रवणाचिये ॥ १५ ॥
 मन्हाटियेचां नगरीं । ब्रह्मविद्येचा सुकालु करीं ।
 घेणें देणें मुखचि वेन्हीं । जगा होंदेइं ॥ १६ ॥
 तूं आपुलेनि स्नेहपल्लवें । मातें पांगुरवीसि सदैवें ।
 तरि आतां चि हें आववें । निर्मीन मीं ॥ १७ ॥
 इथे विनवणिये साठिं । अवलोकिलें गुरुद्विष्टी ।
 ह्मणे गीतार्थेसिं उठीं । न बोल बहू ॥ १८ ॥
 येथ जी जी महाप्रसादु । ह्मणौनि सवियां जाला आनंदु ।
 आतां निरोपिजैल प्रबंधु । अवधान दीजो ॥ १९ ॥

अर्जुन उवाच ।

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
 ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥

तरि सकलवीराधिराजु । तो सोमवंशु विजयध्वजु ।
 बोलता जाला आत्मजु । पांडुनृपाचा ॥ २० ॥

कृष्णातें हणो अवधारिलें । आपण विश्वरूप मज दाविलें ।
 तव नवल हणौनि भ्यालें । चित्त माझें ॥ २१ ॥
 आणि ये कृष्णमूर्त्तीची सवे । हणौनि सोये धरिली जीवें ।
 तव नको हणौनि देवें । वारिलें मातें ॥ २२ ॥
 तरि व्यक्त आणि अव्यक्त । तूंचि एक निभ्रांत ।
 भक्ती पाविजे व्यक्त । अव्यक्त योगें ॥ २३ ॥
 या दोनी चि जी वाटा । तूतें ठाकावेया वैकुंठा ।
 व्यक्तअव्यक्ताचां दारवठां । रिगिजे येथ ॥ २४ ॥
 पै जे वानी झेया तूकां । ते चि वेगली वाला येका ।
 हणौनि येकदेशी व्यापका । पाडु नेदखें ॥ २५ ॥
 अमृताचां सागरिं । जे लाभे सामर्थ्याची थोरी ।
 ते चि दे अमृतलहरी । चुळि घेतलेयां ॥ २६ ॥
 हे किर माझां चित्तीं । प्रतीति आथि जी निरुती ।
 परी पूसणें योगपती । याचिलागि ॥ २७ ॥
 जें देवा तूझीं नावेक । अंगिकारिलें व्यापक ।
 तें साच किं कवतिक । हें जाणावेया ॥ २८ ॥
 तरि तुजलागि सर्वर्म । तूं जेयांचें परम ।
 भक्तीसि मनोधर्म । विकूनि घातले ॥ २९ ॥
 इत्यादि सर्वे परीं । जे भक्त तूतें हरी ।
 वांधौनियां जिन्हारीं । उपासिती ॥ ३० ॥
 आणि प्रणवापैलीकडे । वैखरीसि जें कानडें ।
 काइसेया ही सांवडें । नव्हे जे वस्तु ॥ ३१ ॥
 तें अक्षर जी अव्यक्त । निर्देशदेशरहित ।
 सोहंभावे उपासित । योगिये जे ॥ ३२ ॥
 तेयां आणि जी भक्तां । येयां येरयेरां अनंता ।
 कवणें योगें तत्त्वता । जाणीतला सांवे ॥ ३३ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥

या किरीटिचिया बोल । तो विश्वव्यापकु संतोखला ।
 म्हणे प्रभु पै भला । केला तुवां ॥ ३४ ॥
 तारि अस्तगिरिचां उपकंठीं । रिगालेया रवित्रिवापाठीं ।
 रश्मि जैसे किरीटी । संचरति गा ॥ ३५ ॥
 तैसे सर्व इंद्रियें सहित । मजमाझि सूनि चित्त ।
 रातिदीनु न म्हणत । उपासिति जे ॥ ३६ ॥
 परि टाकिलेयांहि सागरु । जैसा मागील यावा अनिवारु ।
 तिथे गंगेचिया ऐसा पडिभरु । प्रेमभावां ॥ ३७ ॥
 वरुषाकालिं सारिता । जैसी चढों लागे पांडुसुता ।
 तैसी दूणे वारि भजतां । श्रद्धा दीसे ॥ ३८ ॥
 येयापरि जे भक्त । आपणपें मज देंत ।
 ते मी योगयुक्त । परम मानीं ॥ ३९ ॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।

सर्वगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥

आणि येर ते पांडवा । जे आरुढौनि सोहंभावा ।
 झोंबति निरयवां । अक्षरासि ॥ ४० ॥
 जेथ मनाची नाखि न लगे । तेथ बुद्धीची ही दीठि न रिगे ।
 इंद्रियां किर जोगें । होईल कायि ॥ ४१ ॥
 परि ध्याना हि कुवाडें । हणौनि येके ठांई न संपडे ।
 व्यक्तीसि माझिवडें । होईल कायि ॥ ४२ ॥
 जेया सर्वत्र सर्वपणें । सर्विहिं कालि असणें ।
 जें पाहूनि चितणें । हिंपुटी जालें ॥ ४३ ॥

जें होये ना नव्हे । जें नाहिं ना आहे ।
 जें पाहुनु उपाये । उपजति ना ॥ ४४ ॥
 जें चले ना ढले । सरे ना मैले ।
 तें आपुलेनि बलें । आंगविलें ॥ ४५ ॥

सन्नियम्येंद्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।

ते प्राप्नुवंति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥

वैराग्यमहापावकें । जाळुनि विपयांचिं कटकें ।
 भाधपलिपिं तवकें । इंद्रियें धरिलीं ॥ ४६ ॥
 मग संयमाची धाटी । सूनु मुरुडिलिं यालवटीं ।
 कोंडियलीं कपाटीं । हृदयाचां ॥ ४७ ॥
 अपानाचिया कवाडा । लाउनि आसनमुद्रा सुहाडा ।
 मूलबंधाचा हुडा । पानासिला ॥ ४८ ॥
 आसेचे त्याग तोडिले । धैर्याचे कडे झाडिले ।
 निद्रेचें शोधिलें । कालवंखें पै ॥ ४९ ॥
 वज्राग्नीचां ज्वालीं । करुनु अपारां धातूंची होली ।
 व्याधिचां सीसालीं । पूजिलीं यंत्रें ॥ ५० ॥
 मग कुंडलगियेचा टेंभा । आंधारीं करुनि उभा ।
 तिया चोजविलिया प्रभा । निमथावेन्हीं ॥ ५१ ॥
 नवद्वाराचां चौकीं । बाणूनि संयतेचां आडवंकी ।
 उघडिली खिडकी । ककारांतीची ॥ ५२ ॥
 प्राणशक्ती चामुंडे । प्रहारुनि संकरुणमंडे ।
 मनोहोषाचेनि मुंडें । बलि दीन्हली ॥ ५३ ॥
 मग चंद्रसूर्या बुझावणी । करुनि अनाहताची मुडावणी ।
 सत्रावियेचें पाणीं । जितलें वेगां ॥ ५४ ॥
 मग मव्यमामव्यविवरें । तेणें कोरवें दादरें ।
 टाकिलें चवरें । ब्रह्मरंघ्रिचें ॥ ५५ ॥

वारि मकारांत सोपान । तें सांडूनियां गहन ।
 काखे सूनि गगन । भरले ब्रह्मीं ॥ ५६ ॥
 ऐसेनि जे समबुद्धी । गिलावेया सोहंसिद्धी ।
 आंगिवीति निरखची । योगदुर्गे ॥ ५७ ॥
 आपुलिया साटोवाटी । घेंति शून्य उठाउठी ।
 तेही मातें किरीटी । पावति गा ॥ ५८ ॥

क्लेशोधिकतरस्तेपामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

वांचूनि योगाचेनि बलें । अधिक काहिं मिले ।
 ऐसें नाहिं आगले । कष्टचि तेयां ॥ ५९ ॥
 जिहिं सकलभूताचां हितिं । निराळव अव्यक्तीं ।
 पसरिलिया मती । भक्तीवीण ॥ ६० ॥
 तेया महेंद्रादिपदें । करीति वाटवधें ।
 रिद्धीसिद्धीसिं द्वंद्वें । पाडौनि ठांति ॥ ६१ ॥
 कामक्रोधांचे विलग । उठावती अनेग ।
 आणि शून्येंसिं आंग । जूंज्ञावें किं ॥ ६२ ॥
 ताहाना ताहान चि पियावी । भूकैलेयां भूक चि खावी ।
 अहोरात्रि वारिं । मवावा वारा ॥ ६३ ॥
 उनीदेयाचें पड्डणें । निरोधाचें वेल्हावणें ।
 झाडेंसिं साजणें । चालावें गा ॥ ६४ ॥
 सीत वेढावें । उष्ण पांघुरावें ।
 वृष्टीचेया असावें । घरा आंतु ॥ ६५ ॥
 किं बहुना पांडवा । हा अग्निप्रवेशु नीच नवा ।
 भातारेंविण करावा । तो हा योगु ॥ ६६ ॥
 स्वामिचें काज । ना बापिकें व्याज ।
 परि यमोंसिं जूझ । नीच नवें ॥ ६७ ॥

ऐसे मृत्यूहूनि तिख । कां घोंटे जलते विख ।
 डोंगर गीलितां मुख । न फटे काई ॥ ६८ ॥
 हणौनि योगाचिया वाटा । जे निगाले गा. सूभटा ।
 त्यासि दुःखाचा वाटा । भागासि आला ॥ ६९ ॥
 पाहे पां लोहाचे चणे । बोचरां पडती खाणें ।
 तें पोट भरणें किं प्राणें । शुद्धि हणों ॥ ७० ॥
 हणौनि समुद्र बाहीं । तरणें आथि केहीं ।
 गगनामाजि पाई । खोलिजत असे ॥ ७१ ॥
 बलघलेयां थाटी । आंगिं न भरतां काठी ।
 सूर्याची पाउट्टी । होववे काइ गा ॥ ७२ ॥
 यालागि पांगुलां हेवा । नव्हे वायूसि पांडवा ।
 तेवि देहवंतां जीवां । अब्यक्ति गति ॥ ७३ ॥
 ऐसा ही जन्हीं धिवंसा । बांधौनियां आकाशा ।
 झोंबति तारि हेदा । पात्र होती ॥ ७४ ॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।

अनन्येनैव योगेन मां ध्यायंत उपासते ॥ ६ ॥

हणौनि येर तयांची वार्ता । परिसैं गा पार्था ।
 जे कां भक्तिपंथा । वोटंगले ॥ ७५ ॥
 कमें इंद्रियें मुखें । करीति कमें अशेषें ।
 जियें कां वर्णविशेषें । भोगासि आलीं ॥ ७६ ॥
 विधितें पालीत । निषेधातें गालीत ।
 मज देउनि जालीत । कर्मफलें ॥ ७७ ॥
 ऐसिया पारि पाहिं । अर्जुना माझां ठांड ।
 संन्यासूनि नाहिं । करिति कमें ॥ ७८ ॥
 आणिक जें जें सर्व । काहिं एक मानसीक भाव ।
 तेयां मीं वांचूनि धाव । आनौती नाहिं ॥ ७९ ॥

ऐसे जे मत्पर । उपासिति निरंतर ।
 ध्यानमीसें घर । माझेचि जाले ॥ ८० ॥
 जेयाचिया आवडी । केली मासिं कुलवाडी ।
 भोग मोक्ष बापुडीं । त्यजिलिं कुलें ॥ ८१ ॥
 ऐसे अनन्ययोगें । विकले जिवें आंगें ।
 तेयां काइयेक सांगें । जें मीं करिं ॥ ८२ ॥
 किंबहुना धनुर्धरा । जो मातेचेया ये उदरा ।
 तिये मातेचा सवंसारा । केतुळा पां ॥ ८३ ॥
 तेवि मिं तेयां । जैसे असति तैसेयां ।
 कृत तें धनंजया । घेतला पाटा ॥ ८४ ॥
 माझेया आणि भक्तां । सवंसारिची चिंता ।
 काइ समर्थाची कांता । भूकेतें शोची ॥ ८५ ॥
 तैसे ते माझे । कलत्र ऐसें जाणिजे ।
 काइसेनि हिं न लजें । तेयाचेनि मीं ॥ ८६ ॥
 तेयां जन्मृत्युचां लाटीं । झळंबली हे सृष्टी ।
 देखौनियां पोटीं । ऐसें जालें ॥ ८७ ॥
 तारि या सिंधूचेनि माजें । कवणासि धाकु नुपजे ।
 येथ झनें माझे । भितिल हान ॥ ८८ ॥
 म्हणौनि गा पांडवा । मूर्तिचा मेलावा ।
 करूनियां गावां । धावतु आलों ॥ ८९ ॥
 सडे जे देखिले । ते ध्यानाचिये कासे लाविले ।
 मुहीं घातले । क्रियांतरिं ॥ ९० ॥
 नामाचां सहस्रवेन्हीं । नावा इया अवधारि ।
 सज्जुनि सवंसारिं । तारूं जालां ॥ ९१ ॥
 प्रेमाचिं पेटिं । बांधलिं येकाचां पोटीं ।
 मग नीणिले तटीं । सायुज्याचां ॥ ९२ ॥

परि भक्तांचेनि नावें । चतुष्पदादीक आववे ।

वैकुण्ठिचिये राणिवे । योग्य केले ॥ ९३ ॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसगरात् ।

भवामि न चिरात्यार्थं मय्यावेशितचेतसां ॥ ७ ॥

म्हणौनि गा भक्तां । नाहिं येकिही चिता ।

तेयांतें समुद्धर्ता । मीं सदा आथि ॥ ९४ ॥

आणि जेधवां चि भक्तीं । दीधलिया मज मती ।

तेन्हां चि मज सूती । तेयाचां हितिं ॥ ९५ ॥

मध्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।

निवासिष्यसि मध्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥

एया कारणें तुवां । हा मंत्र धनंजया ।

कीजे जें येया । मार्गा भजिजे ॥ ९६ ॥

तारि मन हें येक । माझां स्वरूपीं वृत्तिक ।

करूनि घालीं आणिक । बुद्धी ही हे ॥ ९७ ॥

इयें दोन्हीं सारिसिं । मजमाजि प्रेमेंसिं ।

रिगालीं तारि पावसी । मातें चि तूं गा ॥ ९८ ॥

जारि मनें बुद्धि इहिं । घर केलें माझां ठाईं ।

तारि सांघें मग काड् । तूंपण ऊरे ॥ ९९ ॥

म्हणौनि दिवा पालवे । सर्वें चि तेज माल्हेवे ।

कां रवित्रिंवासवें । प्रकाशु जाये ॥ १०० ॥

उचललेया प्राणासरिसिं । इंद्रियें निगति जैसीं ।

तैसा मनबुद्धीप्रासिं । अहंकारु ये ॥ १ ॥

हणौनि माझां स्वरूपीं । मनबुद्धि हे निक्षेपी ।

एतुलेनि सर्वव्यापीं । मी चि होंसि ॥ २ ॥

येया बोला काहिं । अनारिसें नाहिं ।

आपुली आण पाहिं । वांतु असें ॥ ३ ॥

अथ चित्तं समाध्यातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥ ९ ॥

अथवा हें चित्त । मनबुद्धीसहित ।
माझां हातिं अचुंबित । न शकसि देवों ॥ ४ ॥
तरि गा येतुकें करीं । यां आठां पाहारां भीतरी ।
एक निमिपभरी देंतु । जाये ॥ ५ ॥
मग जें जें निमिप । देखैल माझें सुख ।
तेतुलालें आरोचक । विपइं येईल ॥ ६ ॥
जैसा शरत्कालु निगे । आणि सरिता वोहटों लागे ।
तैसें काडैल वेगें । प्रपंचौनि ॥ ७ ॥
मग पुनिवेद्दोनि जैसें । शशिर्विवा दिहें दीसें ।
हारपत अवसे । नाहिं चि होए ॥ ८ ॥
तैसें भोगाआंतूनि निगतां । चित्त मजमाझि रिगतां ।
हृदहृद पांडुमुता । मी चि होंसि ॥ ९ ॥
आगा अभ्यासयोगु ह्मणिजे । तो हा येकु जाणिजे ।
येणें कांड्येक न निफजे । ऐसें नाहिं ॥ ११० ॥
येयाचेनि वलें । येकां गती अंतरालें ।
व्याघ्रसर्प प्रांजलें । केले एकीं ॥ ११ ॥
विप किं आहारिं पडे । समुद्रीं मध्ये वाट जोडे ।
एकिं वाग्रह्न थोडें । अभ्यासें केळें ॥ १२ ॥
ह्मणौनि अभ्यासासि काहिं । सर्वथा दुष्कर नाहिं ।
याटागि माझां टांडं । अभ्यासें मीळ ॥ १३ ॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् लिङ्गिभवाप्स्यसि ॥ १० ॥

कां अभ्यासाहीलागि । नाहिं कमु तूझां आंगि ।
तरि आहासि जिया भंगीं । तियाचि अस ॥ १४ ॥

इंद्रिये न कोडिं । भोग न तोडिं ।
 अभिमानु न संडी । स्वजातीचा ॥ १५ ॥
 कुलधर्मु चालिं । विधिनिषेधु पालिं ।
 सुखें तुज सरली । दीन्हली असे ॥ १६ ॥
 पण मने वाचा देहे । जैसा जो व्यापारु होए ।
 तो मी कारितु आहे । ऐसें न ह्यण ॥ १७ ॥
 करणें कां न करणें । आव्रें तो चि जाणे ।
 विश्व चलिजत असे जेणें । ऐसें जाण ॥ १८ ॥
 उणेया पुरेयाचें काहिं । उरों नेशीं आपुलां ठांइ ।
 संजात चि करुनि घेइं । जीवित हें ॥ १९ ॥
 मालियें जेउतें नेलें । तेउतें निवांत चि गेलें ।
 तेया पाणियां ऐसें जालें । नाठवे हें ॥ २० ॥
 तें यन्हविं तन्हीं सूमटा । हें उजू कां अन्हांटा ।
 या व्यर्थ खटपटा । करित आहे ॥ २१ ॥
 तारि प्रवृत्ति आणि निवृत्ति । यियें बोझिं नैघों मती ।
 अखंड चित्तवृत्ति । आठवों मी ॥ २२ ॥
 आणि जें जें कर्म निफजे । तें थोडें बहूत न ह्यणिजे ।
 निवांत चि अर्पिजे । माझां ठांइ ॥ २३ ॥
 ऐसिया मद्भावना । तनूत्यागिं अर्जुना ।
 तूं सायुज्यसिद्धसदना । त्रिशुद्धी एंसी ॥ २४ ॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं सद्योगमाश्रितः ।

सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यत्तत्त्ववान् ॥ ११ ॥

नातारि हें इं तुज । नेंदवे कर्म सहज ।
 तन्हीं गा तूं मज भज । पांडुमुता ॥ २५ ॥
 बुद्धीचिये पाठिं पोठिं । कर्मा आदिसेवटीं ।
 मातें बांधलें किराटीं । दुआड जरि ॥ २६ ॥

तारि हेंहि असो । सांडी माझा अतिसो ।
 पारि संयतिसीं वसो । बुद्धि भार्गी ॥ २७ ॥
 आगा वृक्षा कां वट्टी । छोटति फलें पीकलीं ।
 तौसिं सांडिं निफनळिं । कर्म सिद्धें ॥ २८ ॥
 पारि मातें मनिं धरावें । कां मजउदेशें करावें ।
 हें काहीं चि नोको आववें । जावों दे शून्य ॥ २९ ॥
 खडकिं जैसे वरिषलें । कां अग्नीमाजि पेरिळें ।
 कर्म मानीं देखिलें । स्वप्न जैसे ॥ ३० ॥
 आगा आत्मजेचां विखिं । जैसा जीउ निराभिलापी ।
 तैसा कर्मि अशेषिं । निष्कामु होये ॥ ३१ ॥
 बान्हिची ज्वाला जैसी । वायां जाये आकासिं ।
 क्रिया जिरो दे तैसी । शून्यामाजि ॥ ३२ ॥
 अर्जुना हा फलत्यागु । आवडे कीर आसलगु ।
 पारि योगामाजि योगु । धूरेचा हा ॥ ३३ ॥
 येणें फलत्यागें सांडे । तें तें कर्म न विरुढे ।
 येके चि वेळे झाडें । वांझें जैसिं ॥ ३४ ॥
 तैसें येणें शरीरें । शरीरा येणें सरे ।
 किंबहुना यरिझारे । चीरा पडे ॥ ३५ ॥

धेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।

ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ १२ ॥

पै अभ्यासाची पाउटी । करुनि टाकिजे किराटि ।
 ज्ञानें येइजे भेटी । ध्यानाचिये ॥ ३६ ॥
 मग ध्यानोंसिं खेवं । देंति आववे चि भाव ।
 तेधवां कर्मजात सर्व । दूरि ठाके ॥ ३७ ॥
 कर्म जेथ दुरावे । तेथ फलत्यागु संभवे ।
 त्यागातव आंगवे । शांति सकळ ॥ ३८ ॥

ह्यगौनि यावेया शांती । हा चि क्रमु गा सुभद्रापती ।
 अभ्यासू चि प्रस्तुति । कारण येथ ॥ ३९ ॥
 अभ्यासाहूनु गहन । पार्था मग ज्ञान ।
 ज्ञानापासूनि ध्यान । विशेषिजे ॥ १४० ॥
 मग कर्मफलत्यागु । तो ध्यानापासौनि चांगु ।
 त्यागातव भोगु । शांतिमुखाचा ॥ ४१ ॥
 ऐसिया एया वाटा । इहिं चि पेणा सूभटा ।
 शांतिचा माजिवटा । टाकिला जेणें ॥ ४२ ॥

अद्वेषा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।

निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥

जो सर्व भूताचा ठांड । द्वेषातें नेणे काहिं ।
 आप पर नाहिं । चैतन्या जैसा ॥ ४३ ॥
 उत्तमातें धरिजे । अधमातें अवेरिजे ।
 हें काहिं चि नेणिजे । वसुधा जेवि ॥ ४४ ॥
 रायाचें देह चाव्ह । रंकातें परउतें गाव्ह ।
 हें नेणे चि कृपाव्ह । प्राणु पै गा ॥ ४५ ॥
 गाइची तृषा हरं । व्यात्रा विष होउनि मारं ।
 हें नेणे चि करं । तोय जैसें ॥ ४६ ॥
 घरिचिया उजियेड करावा । पारखेया आंधार होआवा ।
 हें न म्हणे चि पांडवा । दीपु जैसा ॥ ४७ ॥
 ऐसी सर्व भूतमात्रिं । एकपणाची मैत्री ।
 कृपेची धात्री । आपण जो ॥ ४८ ॥
 आणि मी हे भाष नेणे । माझे काहिं चि न म्हणे ।
 सुख दुःख जाणणें । नाहिं जेया ॥ ४९ ॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।

मर्यापंतमनोबुद्धिर्योमद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥

तेविं चि क्षमे लागि । पृथ्वीचा पवाडु आंगिं ।
 संतोपा उत्संगिं । घर दीन्हले ॥ १५० ॥
 वरिपायें वीण सागरु । जलें जैसा निर्भरु ।
 तैसा निरउपचारु । संतोपिया जो ॥ ५१ ॥
 वाउनि आपुली आण । धरी अंतष्करण ।
 निश्चया साचपण । जेयाचेनि ॥ ५२ ॥
 जीउ परमात्मा दोन्हीं । वैसौनि एका आसनिं ।
 जेयाचां हृदयभुवनीं । विराजति ॥ ५३ ॥
 ऐसा योगसमृद्धी । होउनि जो निरवर्षीं ।
 अर्पिति मनोबुद्धि । माझां ठांड ॥ ५४ ॥
 आंतु बाहिरि योगु । निर्वाळल चांगु ।
 माझा अनुरागु । सप्रेसु जेया ॥ ५५ ॥
 अर्जुना तो चि भक्तु । तो चि योगी मुक्तु ।
 तो बल्लभा मी कांतु । ऐसा पढियें ॥ ५६ ॥
 हें नां तो आवडे । जीवाचेनि पाडें ।
 हें इं येथ थोडें । रूप करणें ॥ ५७ ॥
 पढियंतेयाची काहाणी । हें भूळिची भारणी ।
 येथौनि बोलणीं । बोलवती ॥ ५८ ॥
 हणौनि गा आह्वां । वेगिं आली उपमा ।
 यन्हविं काइ प्रेमा । उपमा असे ॥ ५९ ॥
 आतां असो हें किरीटि । प्रियाचिया गोठी ।
 दूणा थाउं ऊटी । आवडि गा ॥ १६० ॥
 तेया ही वरि विपायें । प्रेमळ संवादियें होये ।
 तरि तिये गोडिये काय आहे । कांटालें गा ॥ ६१ ॥
 हणौनि गा पार्था । तूं चि प्रियु आणि श्रोता ।
 वरि प्रियाची वार्त्ता । प्रसंगें आली ॥ ६२ ॥

तारि आतां वोलें । भलेया सुखा मीनलों ।

ऐसें हणौनि डोलें । लागले देउ ॥ ६३ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥

मग हणे जाण । तेयाचें लक्षण ।

जेया मीं अंतष्करण । बैसों घाली ॥ ६४ ॥

तारि सिंधूचेनि भाजें । जलचरां भय नुपजे ।

आणि जलचारिं नु बुजे । समुद्रु-जैसा ॥ ६५ ॥

तेवि उन्मत्तें जगें । जेयासि खंति न लगे ।

आणि जेयाचेनि आंगें । न सिणें लोकु ॥ ६६ ॥

किंबहुना पांडवा । शरीर जैसें अवयवां ।

तैसा नुभगे जीवा । जिवपणें जो ॥ ६७ ॥

हें जग चि देह जालें । म्हणौनि प्रियाप्रीय गेलें ।

हर्षामर्ष ठेले । दूरि जेया ॥ ६८ ॥

ऐसा जो द्वंद्वमुक्तु । भयोद्वेगरहितु ।

एया ही वरि भक्तु । माझां ठांइ ॥ ६९ ॥

तारि तेयाचा गा मज भोहो । काय सांधों तो पढियो ।

हें असो जिवें जीवो । माझेनि तो ॥ १७० ॥

जो निजानंदें धाला । परिणामां आयुष्य आला ।

पूर्ण तेजाला । वल्लभु तो ॥ ७१ ॥

जेयाचां ठांइ पांडवा । अपेक्षे नाहिं रिगावां ।

सुखासि चढावा । जेयाचें असणें ॥ ७२ ॥

गंगा शुचि होये । पाप ताप जाये ।

परि तेथ आहे । बुडणें येक ॥ ७३ ॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।

सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

मोक्ष देउनि उदार । कासी होये किर सधर ।
 पारि वेचावें लागे शरीर । तिथे गाविं ॥ ७४ ॥
 हिमवर्ति दोष जाये । पारि तेथ जीविताची हाणि होए ।
 तैसें सुचित्त नव्हे । सज्जनाचें ॥ ७५ ॥
 खोलिये पारु नेणजे । तन्हीं संतीं न बुडिजे ।
 रोकडेया आणि लाहिजे । मोक्षु फुका ॥ ७६ ॥
 संतांचेनि आंगलगें । पापातें जिणणें गंगे ।
 तेयांचें मिं सांगें । सुचित्त कैसें ॥ ७७ ॥
 ह्यगुनु असो जो ऐसा । शुचित्वें तीर्था कुवांसा ।
 जेणें लंघविलें दिशा । मनोमल ॥ ७८ ॥
 आंतु बाहिरि चोखाळु । सूर्यु जैसा निर्मळु ।
 आणि तत्वार्थांचा पायळु । देखणा जो ॥ ७९ ॥
 व्यापक आणि उदास । जैसें हें आकाश ।
 तैसें जेयाचें मानस । सर्वगत ॥ १८० ॥
 जो संवसारव्यथा फीटला । निरास्यें निवडला ।
 फांसाडूनि सूटला । विहंगु जैसा ॥ ८१ ॥
 तैसा संततु स्वमुखें । कव्हणी चटवंच ने दखे ।
 नेणजे गतायुष्यें । लज्जा जैसी ॥ ८२ ॥
 आणि कर्मरंभा लागि । जेया अहंकाति नाहि आंगि ।
 जैसा निरंधनि त्रिण आगी । विज्ञणें चि उरे ॥ ८३ ॥
 तैसा उपशमू चि भागा । जेयासि आला पै गा ।
 जो मोक्षाचिया आंगा । लिहिला जैसा ॥ ८४ ॥
 अर्जुना हा टावो वेन्हीं । सोहंभावसरोवरी ।
 द्वैताचां पडली तीरी । उतरों सरला ॥ ८५ ॥
 किं भक्तिमुखा लागि । आपण चि जाला दों भागी ।
 बांटूनियां आंगी । सेवकें वाणी ॥ ८६ ॥

येरा नावं मीं ठेंवी । मज भजतेया वोज बरवी ।
 न भजतेया दावी । योगियां जो ॥ ८७ ॥
 तेया आम्हां वेसन । आमचें तो निधान ।
 किंवहुना समाधान । तो मिले तैं ॥ ८८ ॥
 तेया लागि रूपा येणें । तेयाचेनि एथ असणें ।
 तेया लोण कीजे प्राणें । ऐसा पढियें ॥ ८९ ॥
 जो आत्मलाभा सारिखें । गोमटें काहिं चि ने दखे ।
 आणि भोगविशेषें । हरिपैजेना ॥ १९० ॥
 आपण चि विश्व जाला । तारि भेदभाउ गेला ।
 हणौनि द्वेष दूरि ठेला । जेया पुरुषा ॥ ९१ ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
 शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ १७ ॥

पैं आपुलें जें साचें । तें कल्पति हिं न वचे ।
 हें जाणूनि गतांचें । न शोची जो ॥ ९२ ॥
 जेया परौतें नाहिं । तें जाला आपुलां ठांड ।
 या लागि काहिं । आकांक्षी ना ॥ ९३ ॥
 बोखटें ना गोमटें । या काइसेया ही न भेटे ।
 राति देउ न घटे । सूर्यु जैसा ॥ ९४ ॥
 ऐसा बोधू चि केवळ । होउनियां निश्चळ ।
 यावरि भजनशीलु । माझां ठांड ॥ ९५ ॥
 तारि तेया ऐसें दुसरें । आम्हां पढियतें सोयरें ।
 नाहिं गा साचोकरें । तूझी आण ॥ ९६ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः
 शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ १८ ॥

पार्था जेयाचां ठांड । वैपम्याची पारि नाहिं ।
 रिपुमित्रां दोन्हीं । सरिसा पाडु ॥ ९७ ॥

जो खांडवेया घाउ घाली । कां लावणी जेणें केली ।
या दोघां येकि चि साउली । वृक्ष जैसा ॥ ९८ ॥
नातारि इक्षुदंडु । पाळितेया गोडु ।
गाळितेया ही तो चि पाडु । येकु चि गा ॥ ९९ ॥
अरिमित्रासि तैसा । अर्जुना जेया भाव ऐसा ।
मानापमानीं सरिसा । होतु जाए ॥ २०० ॥
साइं रितुं समान । जैमें कां हें गगन ।
तैसें येक जि मान । शीतोष्णीं जेया ॥ १ ॥
दक्षिणोत्तर मारुता । मेरु जैसा पांडुसुता ।
तैसा सुखदुःखां प्राप्तां । मध्यस्तु जो ॥ २ ॥
माधुर्ये चंद्रिका । सरिसी चि राया रंका ।
तैसा जो सकलिकां । भूतां समु ॥ ३ ॥
आघवेयां येक । सेव्य जैसें उदक ।
तैसें जेयातें लोक । आसंसीति ॥ ४ ॥

तुल्यनिंदास्तुतिमौनी संतुष्टो येनकेनाचित् ।

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥

जो सवाहें संगु । सांडूनियां लागु ।
येकाकी असंगु । आंगिं सूनि ॥ ५ ॥
जो निंदेतें नेवे । स्तुतितें न श्वावे ।
आकाशा न लगे । लेपु जैसा ॥ ६ ॥
तैसा निंदे आणि स्तुती । मानु करुनु येका पांती ।
विचारें प्राणप्रवृत्ती । जनिं मौनीं ॥ ७ ॥
साच लटिकें दोन्हीं । न बोलैल मौनिं ।
भोगितां उन्मनीं । आराय ना ॥ ८ ॥
जो यथालाभें तोखे । अलाभें हिं न पारुखे ।
पाउसें विण न सुके । समुद्र जैसा ॥ ९ ॥

अणि वायुसि येके ठांडं । त्रिढार जैसें नाहिं ।
 तैसा न धरी चि केहीं । आश्रयो जो ॥ २१० ॥
 हें विश्व चि माझे घर । ऐसी मति जेयाची स्थिर ।
 किंवहुना चराचर । आपण जाला ॥ ११ ॥
 एया वरि पार्था । माझां भजनीं आस्था ।
 तारि तेयातें मीं माथां । मुगुटु करीं ॥ १२ ॥
 उत्तमासि मस्तक । खालविजे हें काये कवतिक ।
 हा मानु करिति लोक । पायवणियां ॥ १३ ॥
 तारि श्रद्धावस्तूसि आदर । करितां जाणिजे प्रकार ।
 जारि होये श्रीगुरु । सदाशिव ॥ १४ ॥
 तारि हें असो आतां । महेशातें वानितां ।
 आत्मस्तुति करितां । संचारु असे ॥ १५ ॥
 येयालागि हें । म्हणितलें रमानाहें ।
 अर्जुना मीं वाहें । सिरिं जेयातें ॥ १६ ॥
 जो पुरुषार्थसिद्धि चौधी । घेउनि आपुलां हातिं ।
 रिगाला भक्तिपंथीं । जगा देंत ॥ १७ ॥
 कैवल्याचा अधिकारी । सोडि बांधि मोक्षाची करी ।
 किं जलाचिया परीं । तळवट घे ॥ १८ ॥
 ह्यणौनि तो नमस्कारं । तेयातें मुगुटु करूं ।
 तेयाचे टांक धरूं । कंठिं आहिं ॥ १९ ॥
 तेयाचेया गुणाचीं छेणीं । लेवउं आपुलां वाणीं ।
 तेयाची कीर्ति श्रवणीं । आइकों आहीं ॥ २२० ॥
 तो पाहावा हे डोहले । ह्यणूनि अचक्षू मज डोले ।
 हातिचेनि करकमलें । पूजीं जेयातें ॥ २१ ॥
 दो वरि दोनि । भुजा आलों घेउनि ।
 आळिगावेया लागौनि । तेयाचें आंग ॥ २२ ॥

तेया संग्वाचेनि सुरवाडे । आह्वां देहधरणे घडे ।
 किंवहुना आवडे । निरोपमु ॥ २३ ॥
 तेया आह्वां मैत्र । येथ काइसें पां चित्र ।
 परि तेयाचे हिं चरित्र । आयिकति जे ॥ २४ ॥
 ते ही प्राणा परोते । आवडति हें निरुते ।
 जे भक्तिचरित्राते । आसंसीति २५ ॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।

श्रद्धाना मत्परमा भक्तास्ते तीव मे प्रियाः ॥ २० ॥

जे हे साद्यंत । सांघितले तुज प्रस्तुत ।
 भक्तियोगसंमत । योगरूप ॥ २६ ॥
 मी प्रीतीते करी । कां मनीं सिरसा धरीं ।
 येवढी धोरी । जेया स्थिती ॥ २७ ॥
 ते हे गोठि रम्य । अमृताधारधर्म्य ।
 प्रेरीति प्रतीतिगम्य । आइकौनि जे ॥ २८ ॥
 परि निरोपिली जैसी । तिया स्थिति रमत मानसि ।
 मग सुक्षेत्रिं जैसी । पेरणी जाली ॥ २९ ॥
 तारि श्रद्धा करुनि आदरे । जेयांचा ठांडे विस्तारे ।
 जीविं जेयां थारे । अनुष्टिती ॥ २३० ॥
 पार्था गा जगीं । भक्तु तो चि योगी ।
 उत्कंठा तेयां लागि । सदा मज ॥ ३१ ॥
 तो तीर्थ तो क्षेत्र । जगीं तो चि पवित्र ।
 भक्तिकथेसि मैत्र । जेयां पुरुषां ॥ ३२ ॥
 जो सुरसाहे सील । लोकललनलील ।
 प्रणतिप्रतिपाल । खेलु जेयाचा ॥ ३३ ॥
 जो भक्तवत्सल । प्रेमलप्रांजल ।
 सत्यसेतुसकल । कलानिधी ॥ ३४ ॥

आह्निं कुरुं तेयाचें ध्यान । तो आमचें देवतार्चन ।
 तें बांचूनि आन । गोमटें न मनुं ॥ ३५ ॥
 तेयां आह्ला बेसन । आमचें तो निधान ।
 किंबहुना समाधान । तो मिलें तो ॥ ३६ ॥
 प्रेमलाचेया वार्त्ता । जे अनुमोदिती पांडुसुता ।
 ते देखों परदेवता । आपुली जैसी ॥ ३७ ॥
 ऐसें निजजनानंदें । तेणें जगदादिकदें ।
 बोलिलें मुकुंदें । संजयो ह्यणे ॥ ३८ ॥
 राया जो निजनिर्मलु । निष्कलु लोककृपालु ।
 शरणगतां स्नेहालु । शरण्य जो ॥ ३९ ॥
 जो धर्मकीर्त्तिदवलु । अगाध दातृत्वे सरलु ।
 अतिबलु प्रबलु । बलिबंधनु ॥ ४० ॥
 तो कृष्णुजी वैकुंठीचा । चक्रवर्ती निजाचा ।
 सांवे एरु दैवांचा । आइकतु असे ॥ ४१ ॥
 आतां एया वरी । निरोपिती परी ।
 संजयो ह्यणे अवधारी । धृतराष्ट्रतें ॥ ४२ ॥
 ते चि रसालकथा । मन्हाटिया प्रतीतीपंथा ।
 आणिजैल आस्था । अवधारिजो ॥ ४३ ॥
 ज्ञानदेउ ह्यणे तुह्णीं । संत बोलगावेति हें मीं ।
 पढविलां स्वामीं । निवृत्तिनाथें ॥ २४४ ॥

ॐ ॥ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां

योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्ति-

योगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

ज्ञानेश्वरी

अध्याय तेरावा

श्रीगणेशायनमः ॥

केलेयां स्मरण । सकळ विद्यांचें अधिकरण ।

ते वंदूं चरण । श्रीगुरूचे ॥ १ ॥

जेयांचेनि आठवे । शब्दसृष्टि आंगवे ।

सारस्वत आघवें । जीभेसि ये ॥ २ ॥

वक्तृत्व गोडपणें । अमृतातें पारु हणें ।

रस होंति उल्लगणें । अक्षरांचे ॥ ३ ॥

भावांचें अवतरण । अवतरवीति खुण ।

हाता चढे संपूर्ण । तत्वभेदु ॥ ४ ॥

श्रीगुरूचे पाए । हृदय गवसूनि ठाए ।

तैं एवढें भाग्य होए । उन्मेपासि ॥ ५ ॥

अर्जुन उवाच ॥

प्रकृति पुरुषं चैत्र क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च

एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं क्षेत्रं च केशव ॥ १ ॥

तेथ अर्जुनु हणें प्रकृतिपुरुष । क्षेत्रज्ञ आणि क्षेत्रविशेष ।

हें तुज पासाव अज्ञेय । इच्छितु असें जाणों ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥

एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञमिति तद्विदुः ॥ २ ॥

तो नमस्कारं आतां । पितामहाचा पिता ।

लक्ष्मीयेचा भर्ता । ऐसें ह्यणे ॥ ७ ॥

पार्था परिसिजे । देह हें क्षेत्र ह्यणिजे ।

हें जाणें तो बोलिजे । क्षेत्रज्ञु गा ॥ ८ ॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयो ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ ३ ॥

तरि क्षेत्रज्ञु येथें । तो मी चि निरुतें ।

जो सर्व क्षेत्रांतें । संगोपुनु असे ॥ ९ ॥

आणि क्षेत्रक्षेत्रज्ञातें । जाणणें जें निरुतें ।

ज्ञान ऐसें तेयातें । मानूं आह्मीं ॥ १० ॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ॥

स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ४ ॥

तरि क्षेत्र एणें नावें । शरीर जेणें भावें ।

ह्यणितलें तें आववें । सांवों आतां ॥ ११ ॥

हें क्षेत्र कां ह्यणिजे । कैसें हें कें उपजे ।

कवण कवणीं वाहिजे । विकारीं एथ ॥ १२ ॥

हें आंठु हात मोटकें । किं केवडें पां केतुकें ।

बरड किं पीकें । कवणाचें हें ॥ १३ ॥

इत्यादि सर्व । जे एयाचे प्रभाव ।

ते बोलिजति साजीव । अवधान दीजो ॥ १४ ॥

ऋषिभि बंधुधा गीतं छंदोभि विविधैः पृथक् ॥

ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भि विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

पै या चि स्थला कारणे । श्रुतीं सदा बोवाणें ।
 तर्कु एणें चि ठीकरणें । तोंडौता केला ॥ १५ ॥
 चालितां हे चि बोली । दर्शनें सेवटा आलिं ।
 तें चि नाहिं बुझावलिं । अझुइं द्वंद्वें ॥ १६ ॥
 शास्त्रांचिये सोइरिके । विचारिलीं एणें चि एकें ।
 एयाचेनि एकवकें । जगासि वादू ॥ १७ ॥
 तोंडेंसि तोंडा न पडे । बोळेंसि बोला न घडे ।
 एया गुंती बडवडे । त्राये जाली ॥ १८ ॥
 नेणों कोणाचें हें स्थल । पारि कैसें अभिलाखाचें बल ।
 जें घोरोघरीं कपाल । पीटवीतसे ॥ १९ ॥
 नास्तिकां देयावेया तोंड । वेदांचें गाढें बंड ।
 तें देखौनि पाखंड । आन चि वाजे ॥ २० ॥
 ह्यणे तूं निर्मूल । लटकें वाग्जाल ।
 ना ह्यगसी तारि पोफल । घातलें असे ॥ २१ ॥
 पाखंडाचेया कडे । नागिंविं लुंचिति मुंडें ।
 नियोजिलीं वितडें । ताला येति ॥ २२ ॥
 मृत्युबलाचेनि माजें । हें जाइल विण काजें ।
 तें देखौनि व्याजें । निगाले योगी ॥ २३ ॥
 मृत्यूंसि आधाइलें । तिहिं निरंजन सेविलें ।
 यमदमाचे केले । मेले पुरे ॥ २४ ॥
 येणें चि क्षेत्राभिमानें । राज्य त्यजिलें ईशानें ।
 गुंति जाणौनि स्मशानें । वसों आदरिलीं ॥ २५ ॥
 पेंसिया पैजा महेशा । पांगुरणें दाही दिशा ।
 लांचकरु ह्यणौनि कोलिसा । कामु केला ॥ २६ ॥
 पै सत्यलोकनाथा । वदनं आलीं बलार्था ।
 तःहीं तो सर्वथा । जाणें चि ना ॥ २७ ॥

एक ह्यणति हें स्थल । जीवाचें चि समूल ।
 मग प्राणु हें कुल । तेयाचें एथें ॥ २८ ॥
 जें प्राणाचां घरिं । आंगें रावते भाऊ च्यारी ।
 आणि मना ऐसा आवरी । कुलयाडिकारु ॥ २९ ॥
 तेयातें इंद्रियबैलांची पेटी । न ह्यणे अवसिपाहाटि ।
 विषयक्षेत्रीं आटि । काढी भली ॥ ३० ॥
 मग विधिची वाप चुकवी । अन्याइं विं वाहवी ।
 कुकर्माचा करवी । राबु जरि ॥ ३१ ॥
 तरि तेया चि सारिखें । असंभड पाप पीके ।
 जन्मकोडी दुःखें । भोगवी जीउ ॥ ३२ ॥
 नातारि विधिचेये वापे । सत्क्रिया विं आरोपे ।
 जन्मशतमापें । सुख चि मविजे ॥ ३३ ॥
 तवं एक ह्यणति हें न्हये । हें जीवाचें न ह्यणावें ।
 आमर्ते पूसावें । क्षेत्राचें श्या ॥ ३४ ॥
 जीव एथ उखिता । वस्तिकरु वांटे जाता ।
 आणि प्राणु हा बलौता । ह्यणौनि जागे ॥ ३५ ॥
 अनादि जे प्रकृति । सांख्य जीतें गांति ।
 क्षेत्र हे वृत्ति । तियेची जाण ॥ ३६ ॥
 आणि तियेतें चि आवया । आधि घरमेलावा ।
 ह्यणौनि वाहिवां । घरीं वाहे ॥ ३७ ॥
 बाह्यांचिये राहाटी । मुदल तीव श्रुटी ।
 ते तियेचां पोटीं । जाले गुण ॥ ३८ ॥
 रजोगुणु पेरी । तेतुलें सत्व सोंकरी ।
 एकलें तम करी । सावगणी ॥ ३९ ॥
 रचूनु महत्त्वाचें खलें । मली एके चि कालुगेनि पोलें ।
 तेथ अव्यक्ताचीं मिले । सांजे भळी ॥ ४० ॥

अध्याय १३ वा

तव एकि मतिवन्ती । या बोलाचिया खती ।
 हणितलें एया चांधी । अर्वाचीना ॥ ४१ ॥
 हां हो परतत्वा आंतु । केउती प्रकृतीची मातु ।
 हा क्षेत्रवृत्तांतु । उगेयां आडकां ॥ ४२ ॥
 शून्यसेजसालिये । सुलीनतेचिये तूलिये ।
 नीद केडी होंती वलिये । संकल्पे येणें ॥ ४३ ॥
 तो अवसांत चेडला । उयमीं सदैउं भला ।
 हणौनि ठेवा जोडला । इछे सवें ॥ ४४ ॥
 निराळंबिची वाडी । त्रिभुवना एवडी ।
 हे तियेचिया जोडी । रूपा आली ॥ ४५ ॥
 महामूतांचे एकावट । सैरा बेंटाळु उमाट ।
 भूतप्रामाचे आवाट । चिरिले च्यान्ही ॥ ४६ ॥
 यावरि आदिं । पंचवटिकांची वांधी ।
 वांधली होती प्रमेदिं । पांचभूतिकिं ॥ ४७ ॥
 कर्मा अकर्माचे गुढे । वातले दोहिं कडे ।
 नपुंसकें वरडें । रानें केळिं ॥ ४८ ॥
 तेथ येरिझारि लागि । जन्ममृत्यूंची मुरंगी ।
 सुवाळली चांगी । संकल्पे एणें ॥ ४९ ॥
 मग अहंकारेंसिं एकावदी । करुनि जीविता अवधी ।
 वाहिलें बुद्धी । चराचर ॥ ५० ॥
 इया परिं निराधीं । वाडे संकल्पाची डाली ।
 हणौनि तो मूठी । प्रपंचा इया ॥ ५१ ॥
 ये मतमुगुतकिं । पडिगाडलें आणिकिं ।
 हणति हां हो धियेकी । तन्हीं तुळिं ॥ ५२ ॥
 परतत्वाचां गाथीं । संकल्पाची सेज देखावी ।
 तरि कां पां न मनाची । प्रकृति तेयाची ॥ ५३ ॥

परि असो हें नव्हे । तुहीं येया न लगवें ।
 आइकां आघवें । सांधिजैल ॥ ५४ ॥
 तरि आकाशिं कवणें । केलिं मेघांचिं भरणें ।
 अंतरिक्ष तारागणें । धरी कोण ॥ ५५ ॥
 गगनाचा तडवा । उभिला कोणें ह्मणावा ।
 वारा हिंडतु असावा । हें कोणाचें मत ॥ ५६ ॥
 रंख कवण पेरी । कोण समुद्र भरी ।
 पर्जन्याचिया करी । धारा कवण ॥ ५७ ॥
 तैसें क्षेत्र हें स्वभावे । अव्हांत्रीक कव्हणाचें न्दवे ।
 एथ वाहे तेया फावे । येरा तूटि ॥ ५८ ॥
 तवं आणिकें एकें । खोदें ह्मणितलें नीकें ।
 तरि भोगिजे एकें । कालें जेवि ॥ ५९ ॥
 हें जाणों मृत्यु रागिठा । सिंहाडेयाचा दरकुटा ।
 परि काइ वाजटां । पूरिजतसे ॥ ६० ॥
 जन्हीं एयाचा मारु । देखताति अनिवारु ।
 परि स्वमतिं भरु । अभिमानियां ॥ ६१ ॥
 महाकल्पा परौती । कव घाळ्नि अवचिती ।
 सत्यलोकभद्रजाती । आंगीं वाजे ॥ ६२ ॥
 लोकपाल नीचनेवे । दिग्गजमेलावे ।
 स्वर्गिचिये अडवे । रिगौनि मोडी ॥ ६३ ॥
 येरें एयाचेन आंग्वातें । जन्ममृत्यूचिये गर्ते ।
 निर्जीवें होउनि भ्रमितें । जीवंमृगें ॥ ६४ ॥
 निहाला पां केवडा । पसरुनियां चवडा ।
 करितसे माजिवडा । आकारगजु ॥ ६५ ॥
 ह्मणौनि काळाची सत्ता । हा वोलु निरुता ।
 ऐसेसे वाढु पांडुमुता । क्षेत्रा लगि ॥ ६६ ॥

हे बहू उर्खाविर्खा । रिखां केळी नैमिषिं ।
पुराणें इये विर्खां । मतपत्रिका ॥ ६७ ॥
अनुष्टुभादि छंदें । प्रबंधिं जियें विविधें ।
तें पत्रालंबनमदें । करीत आञ्जुई ॥ ६८ ॥
वेदिचें ब्रह्मसूत्र । देखणेपणें पवित्र ।
परि तेया ही हें क्षेत्र । नेणवे चि ॥ ६९ ॥
आणिकिं आणिकिं बहुतिं । महाकवी हेतुमंतीं ।
एया लागि मती । वेचिलिया ॥ ७० ॥
परि ऐसें हें एवडें । कां अमुकेयाचें चि फुडें ।
हें कोणहा हिं वरिपडें । होये चि ना ॥ ७१ ॥
आतां एयावरि जैसें । क्षेत्र हें असे ।
तुज सांगों तैसें । साद्यंत गा ॥ ७२ ॥

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ॥

इंद्रियाणि दशैकं च पंच चैन्द्रियगोचराः ॥ ५ ॥

तरि महाभूतपंचकु । आणि अहंकार एकु ।
बुद्धि अव्यक्त दशकु । इंद्रियांचा ॥ ७३ ॥
आणि मन हिं एकु । विषयांचा दशकु ।
मुखदुःखद्वेखु । संवातु इछा ॥ ७४ ॥
आणि चेतना धृति । एवं क्षेत्रव्यक्ति ।
सांघितली तुज प्रति । आघंवी चि हे ॥ ७५ ॥
आतां महाभूतें कवणें । कवण विषय कैसें करणें ।
हे वेगळालेपणें । एकैक सांघों ॥ ७६ ॥
तरि पृथ्वी आप तेज । वायु व्योम गा बुझ ।
सांघितलें वा तुज । महातत्त्वे ॥ ७७ ॥
आणि जागतिये दशे । स्वप्न लपालें असे ।
नातरि अवंसे । चंद्र गूढ ॥ ७८ ॥

नातरि अप्रौढें बालकिं । तारुण्य राहे थोकिं ।
 कां न फुलतां कालकिं । आमोदु जैसा ॥ ७९ ॥
 किंबहुना काष्टिं । वन्हि जेवि किरीटी ।
 तेवि प्रकृतिचां पोटीं । गोप्यु जो असे ॥ ८० ॥
 जैसा ज्वरु धातुगतु । कुपथ्याचें मीस पांतु ।
 मग जालेयां आंतु । बाहिरि व्यापी ॥ ८१ ॥
 तैसी पांचां हिं गांठि पडे । जें देहाकारु घडे ।
 तें नाचवी चडूंकडे । तो अहंकारु गा ॥ ८२ ॥
 आतां बुद्धि जे क्षणिजे । ते ऐसां चिन्हि जाणिजे ।
 बोलिलें यदुराजें । आइकूं सांवों ॥ ८३ ॥
 तरि कंदर्पाचेनि वलें । इंद्रियवृत्तिचेनि मेलें ।
 विभांडुनि येति पाले । विषयांचे ॥ ८४ ॥
 तो सुखदुःखाचा नागोवा । जेथ उगाणों लागे जीवा ।
 तेथ दोहीसि बरवा । पाडु जे धरा ॥ ८५ ॥
 हें सुख हें दुःख । हें पुण्य हें दोख ।
 हें मैल हें चोख । ऐसें जें निवाडी ॥ ८६ ॥
 जिये अधमोत्तम सूजे । सानें थोर वृशे ।
 जिया दीटी पारखिजे । विखो जावें ॥ ८७ ॥
 जे तेजतत्वाची वृद्धि । जे सत्त्वगुणाची निधि ।
 जे आत्मेयां जीवाची संधि । वसव्रीतसे ॥ ८८ ॥
 अर्जुना ते जाण । बुद्धि गा संपूर्ण ।
 आतां आइकू तूं अलखण । अव्यक्ताचें ॥ ८९ ॥
 पें सांख्याचां सिद्धांतिं । प्रकृति जे महामतीं ।
 ते चि वेथ प्रस्तुतिं । अव्यक्त ना ॥ ९० ॥
 आणि सांख्ययोगनतें । प्रकृति परिसविडी तूतें ।
 दोहों परि ची जेथें । विचिरी ॥ ९१ ॥

तेथ दूजी जे जीवदशा । तिये नावें वीरेशा ।
 येथ अव्यक्त ऐसा । पर्या३० हा ॥ ९२ ॥
 तन्हीं पाहालेयां रजनी । तारा लोपति गगनीं ।
 कां हारपति अस्तमानीं । भूतक्रिया ॥ ९३ ॥
 कां देह गेल्यां पाठि । देहादिक किरीटी ।
 उपाधि लोपे पोटीं । कृतकर्माचां ॥ ९४ ॥
 कां बीजमुद्रे आंतु । थोंके तरु समस्तु ।
 कां वस्त्रपणें तंतु । दशे राहे ॥ ९५ ॥
 तैसं सांडुनु स्थूलधर्म । महाभूतें भूतग्राम ।
 लया जांति सूक्ष्म । होउनि जेथ ॥ ९६ ॥
 अर्जुना तेया नावें । अव्यक्त हें जाणावें ।
 आतां आइक आवें । इंद्रियभेद ॥ ९७ ॥
 तरि श्रवण नयन । त्वचा घ्राण रसन ।
 इयें जाणें ज्ञान । करणें पांचै ॥ ९८ ॥
 इये तत्वमेलापकिं । सुखदुःखाची उखीविखी ।
 बुद्धि करितसे मुखिं । पांचै इहिं ॥ ९९ ॥
 मग वाचा आणि कर । चरण अधोद्वार ।
 अपायु हे प्रकार । पांचै आणिक ॥ १०० ॥
 कर्मांद्रिय ह्यणिपति । तियें इयें जाणिजति ।
 आइकें कैवल्यपति । सांघत असे ॥ १ ॥
 पै प्राणाची आंतोरी । क्रियाशक्ति जे शरीरीं ।
 तियेची रिमिनिगि द्वारीं । पांचै इहीं ॥ २ ॥
 एवं दाही करणें । सांघितलीं दे३० ह्यणे ।
 आतां परियस फुडेपणें । मन तें हें ॥ ३ ॥
 जें इंद्रियां आणि बुद्धी । माझारिलिये संधी ।
 रजोगुणाचां खांदीं । तरलत असे ॥ ४ ॥

नीलिमा अंबरी । कां मृगनृष्णालहरी ।
 तैसा वायां चि फाउरी । वात्रो जालें ॥ ५ ॥
 आणि शुक्लशोणिताचा सांधा । मिलतां पांचाचा बांधा ।
 वायुतत्व दशधा । एक चि जालें ॥ ६ ॥
 मग तें हीं दाहें भार्गी । देहधर्माचां खैवंगीं ।
 अधिष्ठितें आंगीं । आपुललां ॥ ७ ॥
 तेथ चांचल्य निखिल । एकलें ठेलें निढाल ।
 ह्यणौनि रजाचें बल । धरिलें तेणें ॥ ८ ॥
 तेथ बुद्धीसि बाहिरि । अहंकारावरि ।
 ऐसां ठाईं माझारि । बलियाविलें ॥ ९ ॥
 वायां हें नावं । यन्हर्वि कल्पना हे चि सावेव ।
 जेयाचेनि संगें जीव । दशा वस्तू ॥ ११० ॥
 जें प्रवृत्तीसि मूल । कामा जेयाचें बल ।
 जें अखंड सुए सल । अहंकारासिं ॥ ११ ॥
 जें इछेतें वाढवी । आशेतें चडावी ।
 जें पाठि पुरवी । जगासि येया ॥ १२ ॥
 द्वैत जेणें उठी । अविद्या जेणें लाठी ।
 जें इंद्रियांतें लोटी । विषयां माझि ॥ १३ ॥
 संकल्पित शृष्टि घडी । सर्वें चि विकल्पूनि मोडी ।
 मनोरथाचिया उतरडी । उतरी रची ॥ १४ ॥
 जें भूलिचें कुल्हार । वायुतत्वाचें अंतर ।
 बुद्धिचें द्वार । ज्ञांकललें जेणें ॥ १५ ॥
 तें गा किरीटी मन । एया बोला नाहिं आन ।
 आतां विषयाभिधान । भेदु आइक ॥ १६ ॥
 तरि स्परिमु आणि शब्दु । रूप रमु गंधु ।
 हा विवेकु पंचविधु । ज्ञानेंद्रियाचा ॥ १७ ॥

इहीं चि पांचै द्वारि । ज्ञानासि धावें बाहिरि ।
 जैसें कां हिरव चारि । मांभावे पशु ॥ १८ ॥
 मग स्वर वर्ण विसर्गु । अथवा स्वीकारु लागु ।
 चंक्रमण उत्सर्गु । मलमूत्रांचा ॥ १९ ॥
 हे कर्मेंद्रियांचे पाच । विषय गा साच ।
 जें बांधौनि मांच । क्रिया जे उठी ॥ १२० ॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ॥

एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतं ॥ ६ ॥

ऐसे हे दाही । विषय इये देहीं ।
 आतां इछा ते ही । सांविजैल ॥ २१ ॥
 तारि भूतललें आठवे । कां बोलें कानु झांकेवे ।
 ऐसिया वरि चेतवे । जे वृत्ति गा ॥ २२ ॥
 इंद्रियां विषयांचिये भेटी । सरिसी चि वेगें उठी ।
 कामाचिया वाहुटी । धरुनियां ॥ २३ ॥
 जियेचेनि उठिलेपणें । मना सैव धावणें ।
 ना रिगावें तेथ करणें । तोंडें सूति ॥ २४ ॥
 जिये वृत्तिचिया वाढी । बुद्धि होये वेडी ।
 विषइं जेया गोडी । ते हे इछा ॥ २५ ॥
 आणि इडिलेया सांगडे । इंद्रियां आमिप न जोडे ।
 ऐसेयां डाउ जो पडे । तो चि द्वेषु ॥ २६ ॥
 आतां या वरि सुख । तें एवविध देख ।
 जेणें एकें चि अशेख । विसरे जीउ ॥ २७ ॥
 मनें वाचा कायें । जें आपुली आण वायें ।
 देहस्मृतिची त्राये । मोडित जाये ॥ २८ ॥
 जेयाचेनि जालेपणें । पांगुला होणें प्राणे ।
 सात्विकां दुणे । वरि हि लामु ॥ २९ ॥

आघवियाचि इंद्रियवृत्ती । हृदयाचां एकांति ।
 थापटूनि सुशुती । आणि जें गा ॥ १३० ॥
 किंबहुना सोए । जीउ-आत्मेयांची लाहे ।
 तेथ जें होये । तेया नावं सुख ॥ ३१ ॥
 आणि ऐसी हे अवस्था । न जोडतां पार्था ।
 जीजे तेया नावं सर्वथा । दुःख जाणें ॥ ३२ ॥
 तें मनोरथभंगें होये । येर सिद्धी गेलें जाए ।
 हें दोनी चि उपाये । सुखदुःखासि गा ॥ ३३ ॥
 आतां असंगा साक्षिभूता । देहिं चैतन्याची सत्ता ।
 तिये नावं पांडुसुता । चेतना एथ ॥ ३४ ॥
 जे नखौनि केंसवेहीं । उभी लागे शरीरी ।
 जे तिहिं अवस्थांतरि । पालटे ना ॥ ३५ ॥
 मनबुध्यादि आघवी । जियेचेनि टवटवी ।
 प्रकृतिवनमाधवी । सदा चि जे ॥ ३६ ॥
 जडाजडीं अंशीं । जे राहाटि सरिसी ।
 ते चेतना गा तुजसीं । लटकें नाहिं ॥ ३७ ॥
 पै राउ परिवाण नेणे । आज्ञा चि परचक्र जीणे ।
 कां चंद्राचेनि परिपूर्णें । सिंधु भरति ॥ ३८ ॥
 नाना भ्रमकाचेनि सन्निधानें । लोह करी सचेतनें ।
 कां सूर्यसंगु जनें । चेष्टविजे ॥ ३९ ॥
 आगा मुखमेलेविण । पीलियाचें पोखण ।
 करी जेवि निरीक्षण । कूर्मिचें ॥ १४० ॥
 पार्था तिया परि । आत्मसंगति इये शरीरी
 सजीवत्वाचा करी । उपेगु जडा ॥ ४१ ॥
 मग तियेतें चेतना । ह्यणिपे अर्जुना ।
 धृतिची विवंचना । आतां आइक ॥ ४२ ॥

तत्वां परस्परें । उघड जातिवैरें ।
 नव्हे पृथिवीयेतें नीरें । निनासिजे ॥ ४३ ॥
 नीरातें आठी तेज । तेजा वायुसि जूझ ।
 गगन तवं साहाज । वायु भक्षी ॥ ४४ ॥
 तेविं चि कन्हणी वेले । आपण काइसेया ही न
 आंतु रिगौनु वेगलें । आकाश हें ॥ ४५ ॥
 ऐसिं पांचै भूतें । न साहांति एकमेकातें ।
 किं ल्यें हिं ऐक्यातें । देहां यंति ॥ ४६ ॥
 द्वंद्वाची उखीविखी । सांडूनि वस्ती एकी ।
 एकातें पोखी । निजगुणें ॥ ४७ ॥
 ऐसें मिलतेयां साजणें । चले धैर्यें जेणें ।
 तेया नावं ह्यणे । धृति पै गा ॥ ४८ ॥
 आणि जीवोंसि पांडवा । यां सतिसां सतिसांचा मेलावा ।
 तो पै येथ, जाणावा । सांघातु गा ॥ ४९ ॥
 एवं सतीस भेद । सांघितले तुत्र विशद ।
 एयां एतुलेयांतें प्रसिद्ध । क्षेत्र ह्यणिजे ॥ १५० ॥
 रथांगाचा मेलावा । रथु ह्यणिजे पांडवा ।
 कां अधोर्ध्व अवयवां । नावं देह ॥ ५१ ॥
 करी-चातुरंग-समाजें । सेना नावं निफजे ।
 वाक्यें ह्यणिपति पुंजे । अक्षरांचे ॥ ५२ ॥
 जलधरांचा मेला । वाच्य होये अभाळा ।
 नाना लोक सकला । नावं जगु ॥ ५३ ॥
 कां स्नेह-सूत्र-वन्दि । मेलु एकी स्थानी ।
 धरिजे तो जनी । दीपु होये ॥ ५४ ॥
 तौसि सतीस हीं तत्वं । मिलति एकत्वं ।
 तणें समूहपरत्वं । क्षेत्र ह्यणिजे ॥ ५५ ॥

आणि वाहंतेनि भौतिकें । पापपुण्य एध पीके ।
 ह्यगौनि आक्षि कवतिकें । क्षेत्र ह्यणों ॥ ५६ ॥
 एकाचेनि मते । देह ह्यणति एयातें ।
 परि असो हें अनंतें । नावें एयासि ॥ ५७ ॥
 सुरनरउरगीं । घडत आहे योनिविभागि ।
 ते गुणकर्मसंगीं । पडिलें सातें ॥ ५८ ॥
 पै परतत्वा आरौतें । आणि स्थावरंता आंतौतें ।
 जें काहिं होतें जातें । क्षेत्र चि हें ॥ ५९ ॥
 हे चि गुणविचचना । पुढां ह्यणिएल अर्जुना ।
 प्रस्तुत आतां ज्ञाना । रूप दाउं ॥ १६० ॥
 क्षेत्र तव सविस्तर । सांघितलें सविकार ।
 ह्यगौनि आतां उदार । ज्ञान आइक ॥ ६१ ॥

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवं ॥

आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

जेया ज्ञाना लागि । गगन गीलिताति योगी ।
 स्वर्गिची आडवंगी । उमरुडूनि ॥ ६२ ॥
 न करीति सिद्धिचे पाड । न धरीति रिद्धीची भीड ।
 योगा ऐसें दुवाड । हेलासति ॥ ६३ ॥
 तपोदुर्गे वोलांडिति । क्रतुकोडी वोवांडिति ।
 उलथौनि सांडिति । कर्मवेली ॥ ६४ ॥
 नाना भजनमार्गि । धावंतु उघडां आंगीं ।
 एक रिगति सुरंगीं । सूक्ष्मतेचिये ॥ ६५ ॥
 ऐसी जिये ज्ञानीं । मुनीश्वरां उतान्दी ।
 वेदतरुचां पानोवानीं । हींडताति ॥ ६६ ॥
 देईल गुरुसेवा । इया बुद्धी पांडवा ।
 जन्माचा सांडोवा । टाकिति जे ॥ ६७ ॥

जेयाची रिगवणी । अविद्ये उणें आणी ।
 जीवात्मेयां बुझावणी । मांडूनि दे ॥ ६८ ॥
 जें इंद्रियांचीं दारें अडी । प्रवृत्तिचे पाये मोडी ।
 जें दैन्य चि फेडी । मानसाचें ॥ ६९ ॥
 द्वैताचा दुकळ पाहे । साम्याचें सुवाण होये ।
 जेया ज्ञानाची सोये । ऐसें करी ॥ १७० ॥
 मदाचा ठाअ पूसी । जें महामोहातें गिवसी ।
 नेंदी आपपरु ऐसी । भाख उरों ॥ ७१ ॥
 जें संसारातें उन्मूली । संकल्पपंकु पाखाली ।
 अनावरातें वेंटाली । ज्ञानतेजें ॥ ७२ ॥
 जेयाचेनि उजालें । उघडति बुद्धिचे डोले ।
 जीउ दोंदावरि लोले । आनंदाचेया ॥ ७३ ॥
 ऐसें जें ज्ञान । पवित्रैकनिधान ।
 जेथ विटालें मन । चोख कीजे ॥ ७४ ॥
 आत्मेयां जीवबुद्धि । जे हे लागली क्षयव्याधि ।
 ते जेयाचेया सन्निधी । बलि कीजे ॥ ७५ ॥
 तें अनिरूप्य किं निरूपिजे । आइकतां बुद्धी आणिजे ।
 वांचौनि डोलां देखिजे । ऐसें नाहिं ॥ ७६ ॥
 मग एकीं शरीरीं । आपुली प्राची करी ।
 तें इंद्रियां व्यापारीं । दीठी ही दीसे ॥ ७७ ॥
 पै वसंताचें रिगवणें । झाडांचेनि साजेपणें ।
 जाणिजे तेवि करणें । सांवति ज्ञान ॥ ७८ ॥
 आगा वृक्षासि पातालीं । जळ सांपडे मुलिं ।
 तें शाखांचिया बाहालीं । दीसे वरि ॥ ७९ ॥
 कां भूमिचें माईव । रावे कोंभाची लवलव ।
 नाना आचर गौरव । मुकुलीचें ॥ १८० ॥

अथवा संभ्रमाचिया आयती । स्नेहो जैसा ए व्यक्ती ।
 कां दर्शनाचिया प्रशस्ती । पुण्यपुरुषु ॥ ८१ ॥
 नातरि कोलि कापुरु जाला । तो पारिमलें जाणों आला ।
 कां भिंगारां दीपु ठेविला । बाहिरि फांके ॥ ८२ ॥
 तैसिं हृदइंचेनि ज्ञानें । जियें उमटति देहिं चिन्हें ।
 तियें सांघों अवधानें । चांगें आइक ॥ ८३ ॥
 तरि कव्हणी विखिचे । जीवा साम्य होणें न रुचे ।
 संभावितपणाचें । उ०३ जेया ॥ ८४ ॥
 आथिले चि गुण वानितां । कां मान्यपणें मानितां ।
 योग्यतेचें येतां । रूप आंगा ॥ ८५ ॥
 गजबजों लागे कैसा । व्याघ्रें रुंधला मृगु जैसा ।
 कां बाहिं उतरलां वलसां । दाटला जेवि ॥ ८६ ॥
 पार्था तेणें पाडें । सन्मानें जो सांकडे ।
 गरिमेतें आंगा कडे । येउं नेंदी ॥ ८७ ॥
 पूज्यता डोलां नेदखावी । स्वकींतिं कानिं नाइकावी ।
 हा अमुका ऐसी न व्हावी । से चि लोका ॥ ८८ ॥
 तेथ सत्काराची कें गोठी । कें आदरा होईल भेटि ।
 मरणेंसिं साठि । नमस्कारितां ॥ ८९ ॥
 वाचस्पतिचेनि पाडें । सर्वज्ञता तरि जोडे ।
 पारि वेडिवे माजि दडे । महिमे भेण ॥ १९० ॥
 चातुर्थ लपवी । महत्व हारवी ।
 पांसेपण मिरवी । आवडौनि ॥ ९१ ॥
 लौकिकाचा उद्वेगु । शास्त्रांवारि उभगु ।
 उगेपणिं चांगु । आधि भरु ॥ ९२ ॥
 जगें अवज्ञा चि वरावी । संबधिं सोये न धरावी ।
 ऐसी ऐसी जीविं । चाड बडूं ॥ ९३ ॥

तलैटेपण बाणे । आंगीं हीणा३ खेवणें ।
 तें तें चि करणें । बहुतकरनु ॥ ९४ ॥
 हा जीतु ना नव्हे । लोकु कल्पी येणें भावें ।
 तैसें जीणें होआवें । ऐसी आश ॥ ९५ ॥
 पैल चालत कां आहे । किं वारेनि जांत नोहे ।
 जना ऐसा भ्रमु जाए । ऐसेयां होइजे ॥ ९६ ॥
 माझें असतेपण लोपो । नामरूप हारपो ।
 मज्झनें वासिपो । भूतजात ॥ ९७ ॥
 ऐसिं जेयाचि नवसियें । एकांता जात जाए ।
 नावें चि जो जिये । रानाचेनि ॥ ९८ ॥
 वायू आणि जेया पडे । गगनेंसिं बोलें आवडे ।
 जीउ प्राणु झाडें । पढियति गा ॥ ९९ ॥
 किंबहुना ऐसिं ऐसिं । चिन्हें जेया देखसी ।
 जाण तेया ज्ञानेंसिं । सेस जालें ॥ २०० ॥
 पै अमानित्व पुरुषीं । जाणावें इहिं मिखिं ।
 आतां अदंभित्वाचिये ३०० लखी । सौरसु करुं ॥ १ ॥
 तारे अदंभित्व तें ऐसें । लोभियाचें मन जैसें ।
 जीउ जा३० परि नुमसे । ठेविला ठा३० ॥ २ ॥
 तेया परी किरीटी । पडिला ही प्राणसंकटी ।
 परि सुकृत न प्रकटी । आंगें बोलें ॥ ३ ॥
 खडाणे आला पान्हा । पलवी जेवि अर्जुना ।
 कां राहे पण्यांगना । वडीलपणें ॥ ४ ॥
 आढ्यु आंतुडे अडविं । मग आढ्यता जेवि हारवी ।
 कां कुलवधू लपवी । अवेवातें ॥ ५ ॥
 नाना कृपिवलु आपुलें । पांपुरवी पेरिलें ।
 तैसें झांकी निफनलें । दानपुण्य ॥ ६ ॥

वरि देह न पूजा । लोकातें न रंजी ।
 स्वधर्मु वाग्बीजि । बांधों नेणें ॥ ७ ॥
 परोपकारु नोबोले । न मिरवी अभ्यासिलें ।
 न शके विकू जोडिलें । स्फीतीसाठि ॥ ८ ॥
 आंगभोगा कडे । पाहांतां कृपणु आवडे ।
 यन्हविं धर्मविखीं थोडें । बहू न हाणे ॥ ९ ॥
 घारिं दीसैल सांकड । देहिची ही आइति रोड ।
 पारि दानिं जेया होड । सुरतरूसिं ॥ २१० ॥
 किंवहुना धर्मि थोरु । अवसारिं उदारु ।
 आत्मचर्चे चतुरु । यन्हविं वेडा ॥ ११ ॥
 केलिचें दलवाडें । हळू पोकळ आवडे ।
 पारि फलौनियां गाडें । रसाल जैसें ॥ १२ ॥
 कां मेघाचें आंगझील । दीसे वारेनि जैसें जाइल ।
 पारि वरिखती नवल । घनवटीतें ॥ २१३ ॥
 तैसा जो पुण्यां । पातां धांति आणी ।
 यन्हविं तरि वाणी । तो चि ठाउ ॥ १४ ॥
 हें असो एया चिन्हांचा । नडनाचु ठांडं जेयाचा ।
 जाण ज्ञान तेयाचा । हातु चढलें ॥ १५ ॥
 पै गा अदंभपण । हाणितलें तें हें जाण ।
 आतां आइक खूण । अहिंसेची ॥ १६ ॥
 तरि अहिंसा बहुवे परीं । बोलिली असे अवधारीं ।
 आपुलाळं मतांतारिं । निरोपितां ॥ १७ ॥
 पारि ते ऐसीं देखां । जैसिया खांडूनियां शाखा ।
 मग तेया चि बुडुखा । कूपु कांजे ॥ १८ ॥
 वाहे तोडूनि विकिजे । मग भूखेची पीठा राखिजे ।
 नाना देउलें मोडूनि कांजे । पौलि देवा ॥ १९ ॥

तैसी चि हिंसा करुनि अहिंसा । कर्मकांडि हा ऐसा ।
 पूर्वमीमांसा । निर्णो केला ॥ २२० ॥
 जें अदृष्टिचेनि उपद्रवें । गादेल विश्व चि आघवें ।
 ह्यणौनि पर्जन्ययष्टि करावे । नाना याग ॥ २१ ॥
 तिये इष्टिचां बुडीं । पशुहिंसा तवं रोकडी ।
 मम अहिंसेची थडी । लेसां दीसे ॥ २२ ॥
 पेरिजे नुसदी हिंसा । तेथ आवैल काय अहिंसा ।
 परि नवलु बा धिवंसा । याज्ञिकांचा ॥ २३ ॥
 आणि आयुर्वेदु ही आघवा । एया चि मोहरा पांडवां ।
 जें जीवां कारणे करावा । जीवां घातु ॥ २४ ॥
 नव्हे रोगीं आहाललीं । लोलतीं भूतें देखिलीं ।
 ते हिंसा निवारावेया केली । चिकित्सिका ॥ २५ ॥
 तवं चिकित्सा पहिलें । एकांचे कंद खणविले ।
 एकां उपडविलें । समूळांतें ॥ २६ ॥
 एकें आडमोडीं केलीं । अजंगमाची खाल काढविली ।
 गाभिणीं उकढलीं । पुटां माझि ॥ २७ ॥
 अजातशत्रुतरुवरां । सर्वांगिं देवविलिया सिरा ।
 ऐसे जीव घेउनि वीरा । कोरडे केले ॥ २८ ॥
 आणि जंगमा हिं हात । लाउनि काढिलें पित्त ।
 मग राविले सीणत । आणिक जीव ॥ २९ ॥
 आहावसुवारें । मोडुनि केले देव्हारे ।
 नागवूनु वेव्हारे । गवांदि घातली ॥ ३० ॥
 मस्तक पांगुरविलें । तवं तलवटीं उघडें ठेलें ।
 मागां मोडुनु केलें । पुढें धड ॥ ३१ ॥
 नाना पांगुरणें । जादूनि जैसें तापणें ।
 नातरि जालें आंगधुणें । कुंजराचें ॥ ३२ ॥

बैलु वीकूनि कोठा । पूंस लाउनि गांठा ।
 इये करणी कीं चेष्टा । काथि हांसों ॥ ३३ ॥
 एकिं धर्माचिया वाहाणी । गाद्धं आदरिलें पाणी ।
 तेथ गालितेयाचिया आहलणी । जीव मेले ॥ ३४ ॥
 एक न पचिति चि कण । इये हिंसे चि भेण ।
 तेथ कदर्थले प्राण । ते चि हिंसा ॥ ३५ ॥
 एवं हिंसा चि अहिंसा । कर्मकांडिं हा ऐसा ।
 सिद्धांतु सुमनसा । उल्लख तूं ॥ ३६ ॥
 पहिलें अहिंसेचें नांव । केलें आहिं जवं ।
 तवं स्फूर्ति बांधली हावं । इये मतीं ॥ ३७ ॥
 तरि कैसेनि इयेतें गाळावें । हणौनि पडिलें बोळावें ।
 तेविं चि तुवां जाणावें । ऐसा भाऊ ॥ ३८ ॥
 बहूकरुनि किरीटी । हा चि विषो इये गोठी ।
 यन्हर्विं कां आडवाटीं । धांविजैल ॥ ३९ ॥
 आणि स्वमताचिया निर्द्वारा । लागौनियां धनुर्द्वरा ।
 प्राप्ता मतांतरा । निर्वचु कीजे ॥ २४० ॥
 ऐसी हे अवधारीं । निरोपिती परी ।
 आतां यावरी । मुख्य जें गा ॥ ४१ ॥
 तें स्वमत बोलिजैल । अहिंसे रूप कीजैल ।
 जेया उठविलेयां आंतुल । ज्ञान दीसे ॥ ४२ ॥
 परि तें चि अधिष्ठिलेनि आंगें । जाणिजे आचरतेनि बागें ।
 जैसी कसवटी सांघे । वानियेतें ॥ ४३ ॥
 तैसें ज्ञानामनाचिये भेटी । अहिंसेचें त्रिंब उठी
 तें चि ऐसें किरीटी । परिस आतां ॥ ४४ ॥
 तरि तरंग नोलांडितु । लहरी पायें न फेडितु ।
 संचलु न मोडितु । पाणिशांचा ॥ ४५ ॥

वेगें आणि लेसां । दीठि घाल्नि आर्विसा ।
 जळिं बकु जैसा । सोंए ॥ ४६ ॥
 कां कमलावारि भवर । पाये ठेविति हलुवार ।
 कुचुंबैल केसर । इया शंका ॥ ४७ ॥
 तैसे परिमाणु पांगुतले । जाणौनि जीउ सानुले ।
 कारुण्या माझि पाउलें । लपौनि चाले ॥ ४८ ॥
 ते वाट कृपेची करितु । ते दिशा चि स्नेहें भारतु ।
 जीवा तळिं आंथुरितु । आपुला जीउ ॥ ४९ ॥
 ऐसिया जतना । चालणें जेया अर्जुना ।
 हें अनिर्वाच्य परि मना । प्रीजे ना ॥ २५० ॥
 पै मोहाचेनि सांगडें । लांसि पीलें धरी तोंडें ।
 तेथ दातांचें आगरडें । जैसें लागे ॥ ५१ ॥
 कां स्नेहाल माए । तान्हेयांची वास पाहे ।
 तिये दीठी आहे । हलुवार जें ॥ ५२ ॥
 नाना कमलदलें । डोलवीजिजति ढालें ।
 तो जेणें पाडें बुवुलें । वारा घेपे ॥ ५३ ॥
 तैसेनि माईवें पाए । भूमी ठेवीतु जाये ।
 लागति तेथ होये । जना सुख ॥ ५४ ॥
 ऐसिया लघिमा चालता । क्रिमिकीटक पांडुसुता ।
 देखे तारि माघौता । हलू चि निगे ॥ ५५ ॥
 हाणे पाउं दडफडील । निद्रा स्वामिची मोडैल ।
 रचलेपणा पडैल । ज्ञोति हान ॥ ५६ ॥
 इया काकुलती । वाहाणि घे माघौति ।
 कोणही हिं व्यक्ती । न वचवे वारि ॥ ५७ ॥
 जीवाचेनि नावें । तृण हिं नोलांडावें ।
 मग नलेखितां जावें । हें कें गोठि ॥ ५८ ॥

मुंगिये मेरु नोलांडवे । मशका सिंधु नुतरवे ।
 तैसें भेटलें न करवे । अतिक्रमूं ॥ ५९ ॥
 ऐसी जेयाची चालिं । क्रियाफलासि आली ।
 देखसी जियाली । दया वाचे ॥ २६० ॥
 स्वसणें चि तें सकुमार । मुख मोहाचें माहियेर ।
 माधुर्या जाले अंकुर । दशन तैसे ॥ ६१ ॥
 पुढां स्नेह पांझरे । मागां चालति अक्षरें ।
 शब्दु पाठिं अवतरे । कृपा आधीं ॥ ६२ ॥
 तवं बोलणें चि नाहीं । भिये हणजे जरी काहिं ।
 बोलु कोणहा हिं । खुपैल कां ॥ ६३ ॥
 बोलतां अधिकु ही निगे । तारि कोणहां वर्मी हान लागे ।
 कोणहासि रिगे । शंका नमीं ॥ ६४ ॥
 मांडली गोठि हान मोडैल । वासिपैल कन्हणी उडैल ।
 आइकों चि वोवांडिल । कोणहीं जरी ॥ ६५ ॥
 तारि दुवालि कोणहा न न्हावी । कोणहाची भंवै नुचलावी ।
 ऐसा भाउ जीविं । हणौनि उगा ॥ ६६ ॥
 मग प्रार्थिला विपाएं । जरि लोभें बोलें जाए ।
 तारि परियस तेयां होए । मायबापु ॥ ६७ ॥
 नादब्रह्म मूर्छलें । गंगापय आसललें ।
 पतिव्रते आलें । वृद्धाप्य कां ॥ ६८ ॥
 तैसी साच आणि मौवाल । सीतली आणि रसाल ।
 बोल जैसे कल्लोल । अमृताचे ॥ ६९ ॥
 उरोधु वाडुवल्लु । प्राणुपापता ढाल्लु ।
 उपहासु चाल्लु । वर्मस्पर्शु ॥ २७० ॥
 आंवु वेगु विंदाण । आश शंका प्रतारण ।
 हे संन्यासिले अवगुण । जेया वाचा ॥ ७१ ॥

आणि तेया चि परी किरिटी । थाउं जियाचिया दीठी ।
 सांडिलिया भृकुटी । मोकलिया ॥ ७२ ॥
 भूति वस्तु आहे । तिये रूपों सके विपायें ।
 हणौनि वास ना पाहे । बहुत करुनि ॥ ७३ ॥
 ऐसा ही कोण्ही एकी वेळे । आंतुली कृपेचेनि बलें ।
 उचढनियां डोळे । दीठी घाली ॥ ७४ ॥
 तरि चंद्रविबौनि धारा । सूटति नव्हंति गोचरा ।
 परि एकसरि चकोरां । निगति दोंदें ॥ ७५ ॥
 तैसें प्राणियांसि होए । जरि तो वास पाहे ।
 तेया अवलोकनाची सोए । कूर्मी हीं नोहे ॥ ७६ ॥
 किंबहुना ऐसी । दीठि जेया भूतांसि ।
 कर ही देखसी । तैसे चि गा ॥ ७७ ॥
 होउनियां कृतार्थ । राहिले सिद्धांचे मनोरथ ।
 तैसे जेयाचे हात । निर्व्यापार ॥ ७८ ॥
 अक्षम आणि सन्यासिलें । निरंधन आणि विज्ञालें ।
 मूकेनि घेतलें । मौन जैसें ॥ ७९ ॥
 तिया परिं काहिं । जियां करां करणें नाहिं ।
 जें अकसेयाचां ठांडं । बैसउं एंती ॥ २८० ॥
 आसुडैल हान वारा । नख लागैल अंबरा ।
 इया बुद्धी करां । चलें नेंदी ॥ ८१ ॥
 तेथ आंगावरिलें उडाविं । कां डोलां रिगतें झाडाविं ।
 पशुपक्षां दावावी । त्रासमुद्रा ॥ ८२ ॥
 इया केउतिया गोठी । नावडे दंडुकाठी ।
 मग शस्त्रांचें किरिटी । बोलणें कें ॥ ८३ ॥
 लीलाकमलें खेलणें । पुष्पमाला झेलणें ।
 न करी हण्णे गोफणें । ऐसें होइल ॥ ८४ ॥

हालवती रोमावली । या लागि आंग न कुरुवाली ।
 नखांची गुंडालिं । बोटां वरि ॥ ८५ ॥
 तवं करणेयांचा चि विपा३० । जरि ऐसा ही पडे ठा३० ।
 तरि हातां हा चि स्वभा३० । जें जोडिजति ॥ ८६ ॥
 कां नाभिकारा उभिजे । हातु पडिलेयां दीजे ।
 आर्तातें परिसिजे । अलुमालु ॥ ८७ ॥
 हें इं उपरोधें करणें । आर्त्ति भय हरणें ।
 नेणति चंद्रकिरणें । जीवाला तो ॥ ८८ ॥
 पाहूनि तो स्पर्शु । मलयानीलु खरपुसु ।
 एणें मानें पशु । कुरुवालणें ॥ ८९ ॥
 जियें सदा रीतिं पोकलें । जैसिं चंदनांगें शीतलें ।
 न फलतां हिं निष्फलें । होंति चि ना ॥ ९० ॥
 असो हें वाग्जाल । जाणिजे करतल ।
 सज्जनाचें सीतल । स्वभावें जैसें ॥ ९१ ॥
 आतां मन तेयाचें । सांघों हणगे साचें ।
 तरि सांघितलें कोणाचे । विलास हे ॥ ९२ ॥
 काइ शाखा नव्हे तरु । जलें विण असे सागरु ।
 तेज आणि तेजकरु । सिनानी आधि ॥ ९३ ॥
 अवेव आणि शरीर । हें वेगलालें जर ।
 किं रसु आणि नीर । सिनानीं आधि ॥ ९४ ॥
 हणौनि जे हे सर्व । सांघितले बाह्य भाव ।
 तें मन चि गा सावेव । ऐसें जाण ॥ ९५ ॥
 जें त्रिं भुइं खोविलें । तें चि वरि रुख जाले ।
 तैसें इंद्रियद्वारीं फांकलें । अंतरिचें ॥ ९६ ॥
 पैं मानांसिं जरि । अहिंसेची अवसरी ।
 तरि कैची बाहिरि । बोसंडैल ॥ ९७ ॥

आवडे ते वृत्ति किरीटी । आधि मनौनि उठी ।
 मग वाचे दीठी । करांसि ये ॥ ९८ ॥
 वांचूनि मनीं नाहिं । तें आंगि उमटैल काइ ।
 बीजें विण भुइं । अंकुर असे ॥ ९९ ॥
 उगविं चि वालौनि जाए । तें अश्विं कैचें वाहे ।
 जीउ गेलेयां आहे । चेष्टा देहिं ॥ ३०० ॥
 तैसें मनपण जें मोडे । तें इंद्रियां आधीं चि उबडे ।
 सूत्रें विण साईखडें । वाअ जैसें ॥ १ ॥
 हणौनि मन पांडवा । मूल एयां इंद्रियभावां ।
 हें चि राहाटे आघवां । द्वारिं इहिं ॥ २ ॥
 परि जिथे वेले जैसें । जें होउनि आतुं असे ।
 बाहिरि ये तैसें । व्यापाररूपें ॥ ३ ॥
 यालागि साचोकारें । मनीं अहिंसा थावे धोरें ।
 पै कलि जैसी द्वारिं । बोबांत निगे ॥ ४ ॥
 हणौनि इंद्रियें ते संपदा । वेंचितां हिं उदावादा ।
 अहिंसेचा बांधा । करितें आहाति ॥ ५ ॥
 समुद्र दाटी भरितें । तें समुद्र चि करी खारियांतें ।
 तैसें स्वसंपत्ति चित्तें । इंद्रियां केलें ॥ ६ ॥
 हें बहु असो पंडितु । धरुनु बालकाचा हातु ।
 बोलि लेहे वेगवंतु । आपण चि ॥ ७ ॥
 तैसें दयालुत्व आपुलें । मनें हातां पायां आणिलें ।
 मग तेथ उपजविलें । अहिंसेतें ॥ ८ ॥
 याकारणें किरीटी । इंद्रियांचिया गोठी ।
 मनाचिये चि राहाटी । रूप केलें ॥ ९ ॥
 ऐसा मनें देहें वाचा । सर्व संन्यामु दंडाचा ।
 जाला ठाई जेयाचां । देखसील ॥ ३१० ॥

तो जाण वेल्हाळ । ज्ञानाचें वेळाउळ ।
 हें असो निखळ । ज्ञान चि तो ॥ ११ ॥
 जे अहिंसा कानि आइकिजे । ग्रंथाधार निरोपिजे ।
 ते पाहावी हें उपजे । तें तो चि पाहावा ॥ १२ ॥
 ऐसें ह्यणितलें देवें । तें बोलें एके सांवावें ।
 परि फांकला हें उपसाहावें । तुझीं मज ॥ १३ ॥
 ह्यणाल हिरव चारिवें गोरं । विसरे मोहर धरं ।
 कां वारेलगें पाखिरं । गगनीं भरे ॥ १४ ॥
 तैसा प्रमेयाचिया स्फूर्ती । फावळिया रसवृत्ती ।
 वाहविलां मती । अलुमालु ॥ १५ ॥
 तरि तैसें नव्हे अवधारां । कारण असे विस्तारा ।
 एन्हविं पद तरि अक्षरां । तिहिंचें चि ॥ १६ ॥
 अहिंसा ह्यणतां थोडी । परि तें चि होये उघडी ।
 जें आलोडिजति कोडी । मतांचिया ॥ १७ ॥
 यन्हविं प्राप्तें मतांतरें । थायंत्रुनि आंगभरें ।
 बोलिजैल तें न सरे । तुह्या पासिं ॥ १८ ॥
 रत्नपारिखियाचां गाविं । जाईल गंडी तरि सोडावी ।
 काश्मिरीं न करावीं । मढंगणें ॥ १९ ॥
 इच्छा वासु कापुरा । मंद जेथ अवधारां ।
 पिठाचा विकिरा । तिये सांते ॥ २० ॥
 ह्यणौनि इये सभे । बोलिकेपणाचेनि क्षोभें ।
 लागसर न लभें । बोलें प्रभू ॥ २१ ॥
 सामान्य आणि विशेषा । सकलत्र कीजैल देखां ।
 तरि कानाचेया ही मुखा । कडे नेनां तुझीं ॥ २२ ॥
 शंकेचेनि गदलपणें । जें शुद्ध प्रमेय मैलणें ।
 मागुत वाउलीं पलवणें । अवधान यंतें ॥ २३ ॥

करुनि बाबुलियेची बूधि । जलें जियें ठाति ।
 तेयांची वांस पाहाती । हंस काई ॥ २४ ॥
 कां अंभ्रा पैलीकडे । येत चांदिणें कोंडे ।
 तैं चकोर चांचुवडे । पसरीति ना ॥ २५ ॥
 तैसें तुळिं वास न पाहाल । ग्रंथु नेघा वरि कोपाल ।
 जरि निर्वेवादां नव्हेल । निरोपण ॥ २६ ॥
 न बुझावति मते । न फीटे आक्षेपाचें लागतें ।
 तें वाखाणें जी तुमते । जोडुनु नेंदीं ॥ २७ ॥
 आणि माझे तव आववें । ग्रंथायंत एणें विभावें ।
 जें तुळिं संति होआवें । सन्मुखां सदा ॥ २८ ॥
 यन्हविं तन्हीं साचोकारें । तुळिं गीतार्थाचे सोयरे ।
 जाणौनि गीता जीवसरें । धरिली मियां ॥ २९ ॥
 जें आपुलें सर्वस्व देयाल । मग इयेतें सोडवूनु नेयाल ।
 ह्यणौनि ग्रंथु नव्हे वोल । साच चि हे ॥ ३३० ॥
 कां सर्वस्वाचा लोभु धरा । वोलेंचा अव्हेरु करा ।
 तरि गीते मज अवधारां । एकी चि गति ॥ ३१ ॥
 किं बहुना मज । तुमचिया कृपा काज ।
 तिये लागौनि व्याज । ग्रंथाचें केलें ॥ ३२ ॥
 तरि तुझां रसिकां जोगें । वाखाण शोधावें लागे ।
 ह्यणौनि मतांगें । बोलें ठेलां ॥ ३३ ॥
 तव कथे पसरु जाला । श्लोकार्थु दूरि ठेला ।
 कीजो क्षमा या बोला । अपत्या मज ॥ ३४ ॥
 आणि घांसांतूडु हरलु । फेडितां लागे वेळु ।
 तें दूषण नव्हे आडलु । सांडावा किं ॥ ३५ ॥
 सवंचोर चूकवितां । दीस टागलेयां माता ।
 कोपावें किं जीविता । जीताणें कीजे ॥ ३६ ॥

परि या वरिल हें नव्हे । तुझिं उपसाहिलें तें बरवें ।
 आतां अवधारां जी देवें । बोलिलें ऐसें ॥ ३७ ॥
 ह्मणे उन्मेखसुलोचना । सावधु होइं अर्जुना ।
 करूं तुज ज्ञाना । बोलखि पाडूं ॥ ३८ ॥
 परि ज्ञान गा तैथें । बोलख तूं निरतें ।
 आक्रोशें विण जेथें । क्षमा आथि ॥ ३९ ॥
 अगाधें सरोवरिं । कमळिनी जेया परीं ।
 कां सदैवांचां घरीं । संपती जैसी ॥ ३४० ॥
 पार्था तेंणें पाडें । क्षमा जेयातें वाढे ।
 तें हिं लक्ष फुडें । लक्षण सांगों ॥ ४१ ॥
 तरि पढियतें लेणें । आंगिं भावे जेणें ।
 धरिजे तेवि साहाणें । सर्व चि जेया ॥ ४२ ॥
 त्रिविध मुख्य आवेवे । उपद्रवांचे मेलवे ।
 वरिपाडिलेयां न्हेवे । वांकुटा जो ॥ ४३ ॥
 अपेक्षित पावे । तो जेणें तोखें मानवे ।
 अनपेक्षिता हीं करावें । तो चि मानु ॥ ४४ ॥
 जो मानापमानातें साहे । सुखदुःख जेथ माये ।
 निंदास्तुती नोहे । दुखंडु जो ॥ ४५ ॥
 उन्हालेनि जो न तपे । हेमवंतीं न कंपे ।
 काइसेया हीं न वासिपे । पातलेयां ॥ ४६ ॥
 स्वशरीराचा भारु । नेणे जैसा मेरु ।
 कां धरा इया सूकरू । वोडें न ह्मणे ॥ ४७ ॥
 नाना चराचरीं भूतीं । दाटणी नव्हे इये क्षितीं ।
 तैसा नाना द्वंद्वप्रातीं । घामेजे ना ॥ ४८ ॥
 घेउनु जळाचे संघाट । आलेयां नदीचे छोट ।
 करी वाट पोट । सिंधु जेवि ॥ ४९ ॥

तैसैं जेयाचां ठांइं । न साहणें काहीं चि नाहिं ।
 आणि सात असे ऐसैं हिं । स्मरे ना जो ॥ ३५० ॥
 आंगा जें पातलें । तें करूनि घाली आपुलें ।
 तेथ साहंतेनि नवलें । घेपिजे ना ॥ ५१ ॥
 हे अनाक्रोश क्षमा । जेयातें आधि प्रियोत्तमा ।
 जाण तेणें महिमा । ज्ञानासि गा ॥ ५२ ॥
 तो पुरुषु पांडवा । ज्ञानाचा उल्लावा ।
 आतां परियस आर्जवा । रूप करुं ॥ ५३ ॥
 तारि आर्जव तें ऐसैं । प्राणाचें सौजन्य जैसैं ।
 आवडतेया हीं दोसैं । एक चि गा ॥ ५४ ॥
 कां तोंड पाहूनि प्रकाशु । न करी जेवि चंडांशु ।
 जगा एकू चि अवकाशु । आकाशातें ॥ ५५ ॥
 तैसैं जेयाचें मन । मानुषप्रति आनान ।
 नाहिं आणि वर्तन । ऐसैं पै तें ॥ ५६ ॥
 जें जग चि सनोलख । जगेंसिं चि सोयेरिक ।
 आपपरु हे भाष । जाणणें चि नाहिं ॥ ५७ ॥
 भलेतेणेंसिं मेलु । पाणियां ऐसा ढालु ।
 कौणही हिं विखीं आडलु । नेवे चित्त ॥ ५८ ॥
 वारेयाची धावं । तैसे सरल भाव ।
 शंका आणि हावं । नाहिं जेया ॥ ५९ ॥
 माये पुढां बालका । रिगतां न पडे चि आवांका ।
 तैसैं मन देतां लोका । नालोची जो ॥ ३६० ॥
 प्रकटलेया इंदीवरा । परिवरु नाहिं धनुर्द्वरा ।
 तैसा कोनकोंपरा । नेणे जीउ ॥ ६१ ॥
 चोखालपण रत्नाचें । रत्नावरि नाचे ।
 तैसैं पुढां मन जेयाचें । करणें पाठि ॥ ६२ ॥

आंलोंचु जो नेणे । अनभिडु जोगावणें ।
 धरी मेलीसि करणें । नाहिं जेया ॥ ६३ ॥
 दीठि नोहे मिणधी । देखणा नाहिं संधी ।
 कोणहासि ही बुद्धी । राहाटों नेणे ॥ ६४ ॥
 दाही इंद्रियें प्रांजलें । निःप्रपंचें उवलें ।
 पांचै पालव मोकले । आठै पाहार ॥ ६५ ॥
 अमृताची धार । तैसैं उजू अंतर ।
 किंबहुना माहेर । यां चिन्हांचें ॥ ६६ ॥
 तो पुरुषु सूभटा । आर्जवाचा आंगवटा ।
 जाण तेथ चि घरटा । ज्ञानें केला ॥ ६७ ॥
 आतां या वरि । गुरुभक्तिची परी ।
 सांघों अवधारीं । चतुरनाथा ॥ ६८ ॥
 आघवेया चि दैवां । जन्मभूमि जे सेवा ।
 जे ब्रह्म करी जीवा । शोच्यते ही ॥ ६९ ॥
 ते आचार्यउपासित । सांघिजैळ तुज प्रति ।
 बैसो सहस्रा एका ची पांती । अवधानाची ॥ ७० ॥
 तरि सकलजलसमृद्धी । गंगा रिगाली उदधी ।
 कां श्रुति हे महापदीं । पैठी जाली ॥ ७१ ॥
 नाना वेंटाळनु जीवितें । गुणावगुण उखिते ।
 प्राणनाथा उचितें । दीन्हलें प्रिया ॥ ७२ ॥
 तैसैं सबाह्य आपुलें । जेणें गुरुभक्ती दीधलें ।
 आपणपें केलें । भक्तिचें घर ॥ ७३ ॥
 गुरुगृह जिये देशीं । तो देशु चि आहे मानसिं ।
 विरहिणी जैसी । वल्लभातें ॥ ७४ ॥
 तिये कडौनु येंतु वारा । देखौनु धावे सामोरा ।
 आडपडे हाणे घरा । वीजें कीजे ॥ ७५ ॥

साच प्रेमाचिया भूली । तिया दिशा चि बोवाली ।
 जीउ थानापति करनु घाली । गुरुगृहिं जो ॥ ७६ ॥
 गुरुआज्ञा धरलें । देह गाविं असे एकलें ।
 वांसुरुवां लाविलें । दावें जैसें ॥ ७७ ॥
 हाणे कै हें बिरडें फाटैल । कै तो स्वामि भटैल ।
 युगा ही होन वडिल । निमिष मानी ॥ ७८ ॥
 ऐसें गुरुग्रामिचें आलें । कां स्वयं गुरु चि धाडिलें ।
 तरि गतायुषा जोडलें । आयुष्य जैसें ॥ ७९ ॥
 कां सुकतेया अंकुरा । वरि पडिलेयां पीयूखधारा ।
 कां निर्जलिचा सागरा । आला मछु ॥ ३८० ॥
 नातरि रकें निधान देखिलें । आंधलेया डोले उघडले ।
 भणगाचेया आंगा आलें । इंद्रपद ॥ ८१ ॥
 तैसें गुरुकुलिचेनि नावें । महासुखें थोरावे ।
 जें कोडिं हिं न पोटलवे । आकाशाचां ॥ ८२ ॥
 पैं गुरुकुलिं ऐसी । भक्ति जेया देखसी ।
 जाण ज्ञान तेया पासिं । पाइक्या असे ॥ ८३ ॥
 आणि अभ्यंतरिली कडे । प्रेमाचेनि पवाडें ।
 श्रीगुरुचें रूपडें । उपासी ध्यानीं ॥ ८४ ॥
 हृदयशुद्धिचां आवारीं । आराध्य तें धूर करी ।
 मग सर्वभावेंसिं परिवारीं । आपण होए ॥ ८५ ॥
 कां चैतन्याचिया पवली । माझि आनंदाचां राडलिं ।
 गुरुलिंगा ढाली । ध्यानामृत ॥ ८६ ॥
 उदैजतां बोधाकां । बुद्धिची डाल सात्विका ।
 भरौनि दे त्र्यंबका । लाखौली तेया ॥ ८७ ॥
 शुद्धि त्रिकांलिं । जीवदशा धूपु जाली ।
 ज्ञेयदीपें उज्वाली । निरंतर ॥ ८८ ॥

समरस्ताची रससोय । अखंड अर्पीतु जाए ।
 आपण भराडा होए । गुरुतें लिंगा ॥ ८९ ॥
 नातरि जिवाचिये सेजे । गुरु कांतु करुनु भुंजे ।
 ऐसिं प्रेमाचिं भोजें । बुद्धि वाहे ॥ ३९० ॥
 कोणही एकीं अवसरिं । अनुरागु भरें अंतरीं ।
 किं तेया नावें करी । क्षीराब्धि ॥ ९१ ॥
 तेथ ध्यान बहुमुख । ते शेष तुळई निर्दोष ।
 वरि जलसेनु देख । भावी गुरु ॥ ९२ ॥
 वोलगती पाए । लक्ष्मी आपण होए ।
 गरुड होउनु राहे । आपण चि ॥ ९३ ॥
 नाभी आपण जन्मे । ऐसी गुरुमूर्ति प्रेमें ।
 अनुभवी मनोधर्में । ध्यानसुखें ॥ ९४ ॥
 एकोधिये वेले । गुरु माये करी भाववळें ।
 मग स्तन्य उत्सांगिं लोले । अंका वरि ॥ ९५ ॥
 नातरि गा किरिटी । चैतन्यतरूतलवटीं ।
 गुरुधेनु आपण पाठिं । वत्स होए ॥ ९६ ॥
 गुरुस्नेहसलीलीं । आपण होये मासलीं ।
 कोणही एकीं वेळीं । हें चि भावी ॥ ९७ ॥
 गुरु आमृताचें वडप । आपण होये लाहालाहात रोप
 ऐसेसे संकल्प । विये मन ॥ ९८ ॥
 चक्षुपक्षि विण । पीलु होये आपण ।
 ऐसैं पै अपारपण । आवडिचें ॥ ९९ ॥
 गुरुतें पक्षिणी करी । चाराचारीं चांचु वेऱ्हीं ।
 गुरु तारुं कास धरी । आपण जलीं ॥ ४०० ॥
 ऐसैं प्रेमाचेनि थावें । ध्यान चि ध्यानातें प्रसवे ।
 पूर्ण सिंधू हेलावे । सूटति जैसे ॥ १ ॥

किंवहुना इया परीं । गुरुमूर्ति अंतरिं ।
 भोगी आतां अवधारीं । बाह्य सेवा ॥ २ ॥
 तारि जीवीं ऐसे आवांके । हणने दास्य करी न नीके ।
 जवं गुरु कवतिके । माग हणति ॥ ३ ॥
 तैसिया साचा उपास्ती । गोसांविं प्रसन्न होंति ।
 तेथ मी धिनती । ऐसी करीन ॥ ४ ॥
 हणौनु तुमचा देवा । परिवारु आघवा ।
 तेतुलीं रूपें होआवा । मीं चि एकु ॥ ५ ॥
 आणि देव्हाराचिं आपुलीं । उपकरणें जेतुलीं ।
 माझिं रूपें तेतुलीं । होआवीं जी ॥ ६ ॥
 ऐसा मागैन वरु । तेथ हो हणति श्रीगुरु ।
 मग तो परिवारु । मीं चि होइन ॥ ७ ॥
 उपकरणजात सकलैक । तें हिं होईन एकैक ।
 मग उपास्तिकें कवतिक । देखिजैल ॥ ८ ॥
 श्रीगुरु बहुतांची माए । परि एकलौती होउनि ठाए ।
 तैसें करुनु आण वाए । कृपे तिथे ॥ ९ ॥
 तेया अनुरागा वेधु लावी । एकपत्नीव्रत घेववी ।
 क्षेत्रसन्यासु करवी । लोभा करवि ॥ ११० ॥
 चतुर्दिक्षु वारा । न लहाये निर्गो वाहिरा ।
 तैसा गुरुकृपे पांजरा । आपण चि होईन ॥ ११ ॥
 आपुलेया गुणाचीं लेणीं । करीन गुरुसेवे स्वामिणी ।
 हें असो होईन गवसणी । गुरुभगतीसि ॥ १२ ॥
 गुरुस्नेहाची वृष्टि । मी पृथ्वी होईन तलवटीं ।
 ऐसिया मनोरथांचिया श्रृष्टी । रची अनंता ॥ १३ ॥
 हणने श्रीगुरुचें भवन । मी आपण होईन ।
 आणिं दामु होउनु करीन । दास्य तेथिकें ॥ १४ ॥

रिगतां निगतां दातारें । उ०लाडिजति उंवरें ।
 ते मी होईन आणि द्वारें । द्वारपाल ॥ १५ ॥
 मी पाउवा होइन । तेया मीं चि मेलवीन ।
 छत्री मी होईन । बारी मी चि ॥ १६ ॥
 मी तलु उपरु ह्यणता । चवरधरु हातुदेता ।
 स्वामी पुढां बोलता । होईन मी ॥ १७ ॥
 हडपु मीं बोलगैन । उगालु मी चि घेईन ।
 उलिंग मी करीन । आंगोळिचें ॥ १८ ॥
 होईन गुरुचें आसन । अलंकार परिधान ।
 चंदनादि होईन । उपचार मीं ॥ १९ ॥
 मी चि होईन सुआरु । बोगरीन उपहार ।
 आपणपें श्रीगुरु । बोवाळिन ॥ ४२० ॥
 मग दे० आरोगिति । तेधवां पांतिकरु पांती ।
 मीं चि होईन पुडुती । देईन वीडा ॥ २१ ॥
 मग मी ताट काढीन । सेज मी झाडीन ।
 चरणसेवा करीन । मी चि देखैं ॥ २२ ॥
 सिंहासन होईन आपण । वरि श्रीगुरु करिति आरोहण ।
 करीन खरेपण । उ०लगेचें ॥ २३ ॥
 श्रीगुरुचें मन । जेया देईल अवधान ।
 तो मी पुढां होईन । चमत्कार ॥ २४ ॥
 तेया श्रवणाचां आंगणीं । होईन शब्दाचिया क्षोणी ।
 स्पर्श होईन घसणी । आंगिचिये ॥ २५ ॥
 श्रीगुरुचे डोले । अवलोकन स्नेहाळें ।
 पाहांती तियें सकळें । रूपें होइन ॥ २६ ॥
 तिये रसने जो रसु रुचैल । तो आपण चि होइजैल ।
 गंधरूपें कीजैल । त्राणसेवा ॥ २७ ॥

एवं बाह्यमनोगत । गुरुसेवा समस्त ।
 वेंटाळनु वस्तुजात । होउनियां ॥ २८ ॥
 जवं देह असैल । तवं ऐसी सेवा कीजैल ।
 मग देहांति नवल । बुद्धि असे ॥ २९ ॥
 इये शरीरिची माती । मेलवीन तिणे क्षिती ।
 जेथ श्रीचरण ठांति । श्रीगुरुचे ॥ ४३० ॥
 माझा स्वामी कवतिकें । स्पशैल जियें उदकें ।
 तेथ लया नीकें । नेईन आप ॥ ३१ ॥
 श्रीगुरु बोवालिजति । कां भवनीं जिये उजलिजति ।
 तेयां दीपाचेया दीती । ठेवीन तेज ॥ ३२ ॥
 चवरिं हान वीजणा । तेथ लयो करीन प्राणा ।
 मग आंगाचा वीजणा । करीन तेथ ॥ ३३ ॥
 जिये जिये अवकाशीं । श्रीगुरु असति परिवारेंसिं ।
 आकाश लयाकाशीं । नेईन तिणे ॥ ३४ ॥
 परिं जीतु मेळा न संडीं । निमिषु वायां न धडीं ।
 ऐसेन गणात्रिया कोडीं । कल्पांचिया ॥ ३५ ॥
 एतुळे वे-हीं धिवंसा । जेयाचेया मानसा ।
 आणि करूनि हीं तैसा । अपारु चि ॥ ३६ ॥
 राति दियो नेणे । थोडें बहू न हणने ।
 ह्यणियांचेनि दासपणें । साजा होए ॥ ३७ ॥
 तो व्यापारु एणें नावें । गगना होउनु थोरावे ।
 एकला करी आघवें । एकी चि कालिं ॥ ३८ ॥
 हृदयवृत्ती पुढां । आंग चि घे दवडा ।
 काज करी होडा । मानसेंसीं ॥ ३९ ॥
 एकाधेया वेला । श्रीगुरुचेया खेला ।
 लोण करी सकला । जीविताचें ॥ ४४० ॥

गुरुदास्ये कृशु । जो गुरुप्रेमें सपोसु ।
 गुरुआज्ञे आवासु । आपण जो ॥ ४१ ॥
 जो गुरुकुलें सकुलीनु । जो गुरुबंधुसौजन्यें सौजनु ।
 जो गुरुदास्यें सव्यसनु । निरंतर ॥ ४२ ॥
 गुरुसंप्रदायधर्म । ते जेया वर्णाश्रम ।
 गुरुचर्चा नित्यकर्म । जेयासि गा ॥ ४३ ॥
 गुरु क्षेत्र गुरु देवता । गुरु माये गुरु पिता ।
 जो गुरु परौता । मार्गु नेणे ॥ ४४ ॥
 श्रीगुरुचें द्वार । तें जेया सर्वस्व सार ।
 गुरुसेवकां सहोदर । प्रेमें भजे ॥ ४५ ॥
 जेयाचें वक्त्र । वाहे गुरुनामाचे मंत्र ।
 गुरुवचना वांचूनि शास्त्र । हाति न शिवे ॥ ४६ ॥
 सीतले गुरुचरणीं । भलेतें जें पाणीं ।
 तेया तीर्थें यात्रे आणीं । त्रैलोकिकीं ॥ ४७ ॥
 श्रीगुरुचें उसिटें । लाहे जें अवचटें ।
 तें तेणें लाभें वीटे । समाधीसि ॥ ४८ ॥
 कैवल्यमुखा साठि । परमाणु वे किरीटी ।
 उधळति पायां पाठि । चालतां जे ॥ ४९ ॥
 हें असो सांघों कैती । नाहिं पार गुरुभक्ती ।
 तन्हीं गा क्रांतमती । कारण हें ॥ ४५० ॥
 जेयां इये भक्ती चाड । जेयां इये चि त्रिखिचें कोड ।
 जो सेवे वांचूनु गोड । न मनी काहिं ॥ ५१ ॥
 तो तत्त्वज्ञानासि ठाऊ । ज्ञाना तेणें चि आवो ।
 हें असो तो देऊ । ज्ञानभक्तु ॥ ५२ ॥
 हें जाण पां साचोकारें । तेथ ज्ञान उधडेनि द्वारें ।
 नांदतमे जगा पुरे । या रीती ॥ ५३ ॥

जिये गुरुसेवा विपीं । माझा जीउ अभिलाखी ।
हणौनि सोये चूकी । बोली केली ॥ ५४ ॥
एन्हविं असतां हातिं खुला । भजनअवधानीं आंधला ।
आणि चर्ये लागि पांगुला । पासौनि मंदु ॥ ५५ ॥
गुरुवर्णानिं मूका । आडसी पोसिजे फूका ।
पारि आधि नीका । सानुरागु ॥ ५६ ॥
तेणें चि कारणें । हें स्थूल पोखणें ।
पडिलें मज हणणे । ज्ञानदेउ ॥ ५७ ॥
तारि तो बोलु उपसाहावा । बोलगे अवसरु देयावा ।
आतां हणैन बरवा । ग्रंथार्थु चि ॥ ५८ ॥
तारि परियसां श्रीकृष्णु । जो भूतभारसहिष्णु ।
तो बोलतसे वितृष्णु । पार्थु आइके ॥ ५९ ॥
हणगे शुचित्व गा ऐसैं । जेया पासिं दीसे ।
आंग मन जैसैं । कापुराचें ॥ ६० ॥
कां रत्नाचें दलवाडें । तैसैं सबाह्य चोखडें ।
आंतु बाहिरि एकें पाडें । सूर्यु जैसा ॥ ६१ ॥
बाहिरि कमें क्षालला । भीतरि ज्ञानें उजलला ।
इहिं दोहिं परिं आला । शुचित्वासि ॥ ६२ ॥
मातिया आणि जलें । बाह्य एणें मेलें ।
निर्मलां होइजे बलें । वेदांचेनि ॥ ६३ ॥
भले तेथ बुद्धि बलीं । पै रज आरिसा उजलीं ।
सौंदणि फेडी थिगलीं । वस्त्राचि गा ॥ ६४ ॥
किंबहुना इया परीं । बाह्य चोख अवधारीं ।
ज्ञानदीपु अंतरीं । हणौनि शुद्ध ॥ ६५ ॥
यन्हविं तन्हीं पांडुमुता । आंतु शुद्ध नव्हतां ।
बाह्य कर्म तत्वता । विटंबु गा ॥ ६६ ॥

मृत्यु जैसा श्रिंगारिला । गर्दमु तीर्थ न्हाणिला ।
 कडू दूधिया माखिला । गुलें जैसा ॥ ६७ ॥
 वोसिं तोरण बांधलें । उपवासियें अन्नें माखिलें ।
 कुंकुसेंदुर केलें । कांतहीनें ॥ ६८ ॥
 कलस ढिवांचे पोकल । जलो वरिचील झलाल ।
 काइ करिसी चित्रफल । आंतु सेण ॥ ६९ ॥
 तैसें कर्म वरिचिली कडां । न सरे थोर मोला कूडा ।
 नव्हे मदिरेचा घडा । पवितृ गंगा ॥ ७० ॥
 ह्यणौनि अंतरिं ज्ञान होआवें । मग बाह्य लाभैल स्वभावें
 वारि ज्ञान कर्म संभवें । ऐसें कै जोडे ॥ ७१ ॥
 या लागि बाह्यविभागु । कर्म धूतला चांगु ।
 ज्ञानें फेडिला वंगु । अंतरिचा ॥ ७२ ॥
 तेथ अंतरबाह्य गेलें । निर्मलत्व एक जालें ।
 किंबहुना निर्वाळलें । शुचित्व चि ॥ ७३ ॥
 ह्यणौनि सद्भाव जीवगत । बाहिरि दीसताति फांकत ।
 स्फटिकगृहिचे डोलत । दीप जैसे ॥ ७४ ॥
 विकल्पु जेणें जेणें उपजे । नाथिली विकृति निफजे ।
 अन्यायवृत्तिचीं बीजें । अंकुर घेंति ॥ ७५ ॥
 तें आयिके अथवा भेटे । पारि मनीं काहिं नुमटे ।
 मेघरगें न घटे । व्योम जैसें ॥ ७६ ॥
 यन्हविं इंद्रियांचेनि मेलें । विषयां वरि लेले ।
 पारि विकाराचेनि विटालें । सिंपिजे ना ॥ ७७ ॥
 भेटळिया नारी । चोखी अथवा माहारी ।
 तेथ नातलती परी । राहाटों जाणे ॥ ७८ ॥
 कां पति-पुत्रातें आलंगी । एके चित्तें तन्वंगी ।
 तेथ पुत्रभावाचां आंगीं । न लगे चि कामु ॥ ७९ ॥

तैसें हृदय चोख । संकल्पविकल्पीं सनोळख ।
 कृत्याकृत्य विशेष । फुडें जेया ॥ ४८० ॥
 पाणियें ही रान भीजे । आधणिं हरळु न सिजे ।
 तैसी विकल्पजातीं न सिंपिजे । मनोवृत्ती ॥ ८१ ॥
 तेया नावं शुचिपण । पार्था गा संपूर्ण ।
 हें देखसी तेथ जाण । ज्ञान असे ॥ ८२ ॥
 आणि स्थिरता साचे । घर रिगाली जेयाचें ।
 तो पुरुषु ज्ञानाचें । आयुष्य गा ॥ ८३ ॥
 देह तारि वरिचिली कडे । आपुलेया पारि हींडे ।
 पारि वैसिक न मोडे । मानसार्ची ॥ ८४ ॥
 वत्सा वरौनि धेनुचें । स्नेह राना न वचे ।
 न येति भोगुं सतियांचें । प्रेमभोग ॥ ८५ ॥
 कां लेभिया दूरि जाये । पारि जीउ ठेवां चि आहे ।
 तैसा देह चालितां नोहे । चळु चित्ता ॥ ८६ ॥
 धावंतेया अभ्रा सवें । आकाश जैसें न धवे ।
 भ्रमण—चक्रीं न भंवे । जैसा ध्रुवु ॥ ८७ ॥
 पथिकांचिया एरिझारा । सवें एणेंजाणें धनुर्दरा ।
 नाहिं जेवि तरुवरां । पथीचियां ॥ ८८ ॥
 तैसा चलनवलनात्मकिं । असौनि इये पंचभौतिकिं ।
 भूतउर्मी एकी । चालिजे ना ॥ ८९ ॥
 वांहुंटलिचेनि वलें । पृथ्वी जैसी न ढळे ।
 तैसा उपद्रवधुमालें । न लोटे जो ॥ ९० ॥
 दैन्यदुःखें न तपे । भयशोकें न कंपे ।
 देहमृत्यु न वासिपे । पातलेयां ॥ ९१ ॥
 मार्तिआशपडिभं । विविधव्याधिगजरें ।
 उजू असतां पारि मोरें । नव्हे चित्त ॥ ९२ ॥

निंदा निस्तेज दंडी । कामलोभ वरिपडी ।
 लोम नव्हे वांकुडी । मानसाची ॥ ९३ ॥
 आकाश हें ओसरो । पृथिवी वर वीरो ।
 परि नेणे मोहरो । चित्तवृत्ती ॥ ९४ ॥
 हाथि हाला फुलिं । पासिवणें जेवि न घळी ।
 तैसा नोहोटे दुर्वाक्यसेलीं । सेलिया सांता ॥ ९५ ॥
 क्षीरार्णवाचां कळोलिं । नाहिं कंपु मंदराचलिं ।
 आकाश न जले जालिं । वणवेयाचां ॥ ९६ ॥
 तैसा आला गेला उर्मी । नाहिं गजवज मनोधर्मिं ।
 किंबहुना धीरु क्षमिं । कल्पांति हिं ॥ ९७ ॥
 पैं स्थैर्य ऐसी भाप । बोलिजे सविशेष ।
 ते हे दशा देख । देखणेयां ॥ ९८ ॥
 हें स्थैर्य निजगडें । जेथ आंगें जीवें जोडे ।
 तो ज्ञानाचें उघडें । निधान जाण ॥ ९९ ॥
 आणि इसालु जैसा घरा । कां दंदि्या हातियरा ।
 न विसंवे भांडारा । बद्धकु गा ॥ ५०० ॥
 एकलौतेया बालका । वरिपडौनि असे अंबिका ।
 कां मधुविषिं मधुमक्षिका । लोभिणि जैसी ॥ १ ॥
 अर्जुना तिया पारिं । अंतःकरणा जतन करिं ।
 नेदि उभें ठाकों द्वारीं । इंद्रियाचां ॥ २ ॥
 हणो कामु हा आइकैल । हे आशसेयाचि देखेंल ।
 तारि जीवा कडे दूकैल । हणुनि भेटु ॥ ३ ॥
 बाहिरि धिटे जैसी । दाटुगा पति कलासी ।
 करी टेहणी तैसी । प्रवृत्तीसि ॥ ४ ॥
 सतेचेनि वाणिपणें । देहा सकट आटणें ।
 संयमा वरि करणें । बुजुनु घाली ॥ ५ ॥

मनाचां महाद्वारिं । प्रत्याहाराचे ठाणांतरिं ।
 यमदम शरीरीं । जागवी उभे ॥ ६ ॥
 आधारिं नाभिकठिं । बंधत्रयाची घरटी ।
 चंद्रसूर्यसंपुटीं । सुये चित्त ॥ ७ ॥
 समाधिचिये सेजेपासिं । बांधौनि घाली ध्यानैसिं ।
 समरासिं करणासिं । अंतरातें ॥ ८ ॥
 आगा अंतष्करणनिग्रहो जो । तो हा पै जाणिजो ।
 हा आधि तेथ उदोजो । ज्ञानाचा पै ॥ ९ ॥
 जेयाची आज्ञा आपण । सिरिं वाहे अंतष्करण ।
 मनुष्याकारें जाण । ज्ञान चि तो ॥ ५१० ॥

इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनं ॥ ८ ॥

आधि विषयविखिं । वैराग्याची नीकी ।
 पुरवणी मानसिकिं । जेयातें आधि ॥ ११ ॥
 वमिलेया अन्ना । लाल न घोंटी रसना ।
 आंग न सुवे आळिंगना । प्रेताचिया ॥ १२ ॥
 विष खाणें नांगवे । जलतां घारिं न रिगवे ।
 व्याघ्रविवरा न वचवे । वस्ती जेवि ॥ १३ ॥
 धडाडिते लोहरासिं । उडी न घलवे जैसी ।
 न करवे उसिसी । अजगराची ॥ १४ ॥
 अर्जुना तें पाडें । विषया वार्त्ता नावडे ।
 नेंदी इंद्रियांचेनि तोंडें । काहिं चि जाऊं ॥ १५ ॥
 जेयाचां मनिं आलस्य । देहिं अतिकारिष्य ।
 यमदमैसिं समरस्य । जेयासि ॥ १६ ॥
 तपोव्रतांचा मेलावा । जेयाचां ठांडें पांडवा ।
 युगांतु जेया गावां । आंतु एतां ॥ १७ ॥

बहु योगाभ्यासिं हाव । राना कडे धाव ।
 न साहे जो नाव । सांघाताचें ॥ १८ ॥
 नाराजाचिं आंथुरणें । पूयपंकि लोळणें ।
 तैसी लेखी भोगणें । इहिकिचें ॥ १९ ॥
 स्वर्गांतें मानसें । आइकौनि मानी ऐसें ।
 कुहिलें पिशित जैसें । श्वानाचें ॥ ५२० ॥
 ह तें विषयदैराग्य । जें आत्मलाभाचें भाग्य ।
 येणें ब्रह्मानंदा योग्य । होति जीव ॥ २१ ॥
 ऐसा उभयभोगुत्रासु । देखसी जेथ बहुवसु ।
 तेथ जाण रहिवांसु । ज्ञानाचा असे ॥ २२ ॥
 आणि सचाडाचिया परी । इष्टापूर्त करी ।
 परि केलपण शरीरी । उरों नेंदी ॥ २३ ॥
 वर्णाश्रमपोषकें । कर्में नित्यनैमित्तिकें ।
 तेयां माझि काहिं न ठके । आचरतां ॥ २४ ॥
 परि हें मियां केलें । कां हें माझेनि जालें ।
 ऐसें नाहिं ठेविलें । वासने माझि ॥ २५ ॥
 जैसें अवचितेपणें । वायूसि विचरणें ।
 निराभिमानीं उदैजणें । सूर्याचें ॥ २६ ॥
 कां श्रुति सदा बोले । गंगा काजें विण चाले ।
 तैसें अवष्टंभहीन भलें । वर्तन जेयाचें ॥ २७ ॥
 रतुकाळिं तारि फळति । परि फळलों हें नेणति ।
 तेया वृक्षांचिया ऐसी वृत्ती । कर्मि सदा ॥ २८ ॥
 एवं मनि कर्में बोलिलिं । जेथ अहंकारा उखी जाली ।
 एकात्रलिएची काढिली । दोरी जैसी । २९ ॥
 संबंधें विण आकाशीं । अभ्रें असति आपैसिं ।
 देहिं कर्में तैसीं । जेयासि गा ॥ ५३० ॥

मद्यपा आंगिचें वस्त्र । कां लेपा हातिचें शस्त्र ।
नातारि बैला वारि शास्त्र । बांधलें असे ॥ ३१ ॥
तेणें पाढें देहीं । आहें हे से चि नाहिं ।
निरहंकारता पाहिं । तेया नावं ॥ ३२ ॥
हें संपूर्ण जेथ दीसे । तेथ गा ज्ञान असे ।
इये विखि अनारिसें । बोलों न ये ॥ ३३ ॥
आणि जन्म मृत्यु दुःखें । व्याधि वार्धक्य कळुषें ।
यें आंगा न यंतां देखे । दूरौनि जो ॥ ३४ ॥
साधकु विवंसिया । कां उपसर्गे योगिया ।
पात्रे उणेया पुरेयां । बोधंबा जेवि ॥ ३५ ॥
वैर जन्मांतरिचें । सापा मनौनि न वचे ।
तेवि अतीतां जन्मांचें । उणें वाहे ॥ ३६ ॥
डोलां हरल्लु न थरे । घाई शास्त्र न जिरे ।
तैसें कालिचें न विसरे । जन्मदुःख ॥ ३७ ॥
ह्मणे पूयगर्ते रिगालां । मूत्ररंध्रौनि निगालां ।
कटारे मियां चाटिला । कुचस्वेदु ॥ ३८ ॥
ऐसिया ऐसिया परीं । जन्माचा कांटाळा धरी ।
आतां तें करीं । जेणें नोहे ॥ ३९ ॥
हारि उमचावेया । जुंवारु ये ढाया ।
कां वैरा बापिकेया । पुत्रु जचे ॥ ५४० ॥
मारिलेयाचेनि रागें । पाठिचा सूड मागे ।
तेणें आक्षेपें लागे । जन्मा पाठिं ॥ ४१ ॥
परि जन्मांतिं जे लाज । न संडी तेयाचें निज ।
संभाविता निस्तेज । न साहे जैसें ॥ ४२ ॥
आणि मृत्यु पुढां आहे । तो चि कल्पार्तिं कां पाहे ।
परि आजिचि होये । सावधुं जो ॥ ४३ ॥

माझि अथाउं हणतां । थडिये चि पांडुसुता ।
 पन्हणारु आइता । कार्शि जेवि ॥ ४४ ॥
 कां न पवतां रणाचा ठाउ । सांभालिजे जैसा आवो ।
 बोडण सूयिजे जैसा घावो । न लगतां चि ॥ ४५ ॥
 पाहेचा पेणा वाटबंधां । तवं आजि चि होइजे सावधां ।
 जीउ न निगतां ओखदा । धांविजे जेवि ॥ ४६ ॥
 यन्हविं ऐसें केवि घडे । जो जलतां घरिं सांपडे ।
 तो न पवाडे । कुहां खणों ॥ ४७ ॥
 चोंढिये पाथरु गेला । तैसेनि जो बुडाला ।
 तो बोंवे सकट मूकला । कोण सांवे ॥ ४८ ॥
 ह्युनु समर्थेंसिं वैर । जेया पडे हाडकाइर ।
 तो जैसा आठै पाहार । परजुनु चि असे ॥ ४९ ॥
 नातरि केलवली नोवरी । संन्यासी कां जेया परिं ।
 तैसी न मरतां करी । मृत्युसूचना ॥ ५० ॥
 पै गा जो इया परिं । जन्में चि जन्म निवारी ।
 मरणें चि मृत्यु मारी । आपण उरे ॥ ५१ ॥
 तेयातें घरिं ज्ञानाचें । सांकडे नाहिं साचें ।
 जेया जन्ममृत्युचें । ह्दइं शल्य ॥ ५२ ॥
 आणि तेया चि परीं जरा । न टेंकतां शरीरा ।
 तारण्याचिया भरा । माझि देखे ॥ ५३ ॥
 ह्यणे आजिचां अवसरिं । पुष्टि जे हे शरीरिं ।
 ते पाहे होईल काचरी । सिजली जैसी ॥ ५४ ॥
 निदैवांचे व्यवसाये । तैसे ठाकति हातपाए ।
 अमंत्रिया राज्याची परिं होये । बलासिया ॥ ५५ ॥
 फुलाचेया भोगा । लागि प्रेम दांगा ।
 तें कन्हेयाचा गुडगा । तैसें होईल ॥ ५६ ॥

बोढालाचां खुरिं । आखरु आते बुरी ।
 तैसी दशा माथें श्रवण वरि । सब छेहें ॥ ५७ ॥
 पद्मदलेंसि इसालें । भांडताति हे डोले ।
 ते होतील पडवलें । पीकलीं तैसीं ॥ ५८ ॥
 भवैचिं पडलें । वोमथती सिनसालें ।
 उरु कुहिले जलें । आंसुवांचेनि ॥ ५९ ॥
 जैसें बाबुलेंचें खोड । गिरबड्ढनि जाति सरड ।
 तैसें पिचडिं तोंड । सरांडैल ॥ ५६० ॥
 रांश्रवण बोलि पुढें । पन्हवे वाहाति खाताडें ।
 तैसिं होति नाकाडें । विडिविडितील ॥ ६१ ॥
 तांबोलें वोंठ राउं । हांसतां दांत दाउं ।
 सनागर मिरउं । दोली जेणें ॥ ६२ ॥
 तेयाचिया तोंडा । येर जलंवाचा लेंढा ।
 हरडी उमलैल दाढा । दांतेंसि जाण ॥ ६३ ॥
 कुलवाडि जैसी खेटली । कां वाकडिया ढोरें बैठलि ।
 तैसी नूठील काहिं केली । जीभ हें ॥ ६४ ॥
 कुसलें कोरडिं । वारेनि जाति बरडी ।
 तैसी आपत्य तोडी । दाढियेसि ॥ ६५ ॥
 आशादिचेनि जलें । जैसें शिरपांति मौलें ।
 तैसें खाडेहूनि लाले । पेटति पुर ॥ ६६ ॥
 वाचेसि अपवाडु । कानासि अनुघाडु ।
 पिंडु गरुवा मांकडु । होईल हा ॥ ६७ ॥
 तणाचें बुजवणें । आंदोले वारे गुणें ।
 तैसें येईल कांपणें । सर्वांगासि ॥ ६८ ॥
 पायां पडति वेंगडीं । हात होंति मुरुकुंडी ।
 बरवेपण बागडीं । नाचवील हे ॥ ६९ ॥

मलमूत्रद्वारें । होउनि ठांति खोंकरें ।
 नवसियें सूंति येरें । माझां निधनिं ॥ ५७० ॥
 देखौनि थूंकील जगु । मरणाचा पडैल प्रांगु ।
 सोइरियां उभगु । होईल माझा ॥ ७१ ॥
 छिया ह्मणति विंवंसी । बालें जाति मुसिं ।
 किंबहुना चिलसी । पात्र होइन ॥ ७२ ॥
 उभलिचा उजगरा । सेजियां साइलेयां घरा ।
 सिणवी ह्मांतारा । बहुतांतें हा ॥ ७३ ॥
 ऐसी वृद्धाप्याची खोंचणी । आपणेया तरुणपणिं ।
 देखों देखों आणि । मग जो वीटे ॥ ७४ ॥
 ह्मणे पाहे हें होइल । आतांचि भोगितां जाइल ।
 मग काइ उरैल । हितालागि ॥ ७५ ॥
 ह्मणुनि नाइकर्णें पावे । तवं आइकौनि घाली आघवें ।
 पंगु नव्हतां जावें । नीकिया स्थाना ७६ ॥
 दीठि जवं जाये । तवं पाहावें तेतुलें पाहे ।
 मूकत्वा आधि धाये । सुभाषितिं ॥ ७७ ॥
 हात होतील खुलें । हें पुढैल मोटकें कले ।
 तवं करुनि घाली सकलें । दयादिकें ॥ ७८ ॥
 मन होइल वेडें । ऐसिये दशे पुढें ।
 चितौनि ठेवी चोखडें । अदृष्ट जो ॥ ७९ ॥
 जैसे चोर पाहे झोंबती । तवं आजी चि रुसिजे संपत्ती ।
 ज्ञांकाज्ञांकि कीजे वाति । न वचतांचि ॥ ५८० ॥
 तैसें वृद्धाप्यें थावें । मग जें वायां जावें ।
 तें आपणेयां आघवें । सोवतें करी ॥ ८१ ॥
 आतां मोडुनु वसविलिं दुर्गें । कां वलित धरिलें खंगें ।
 तेथ उफकेन जो रिगे । तो नांगवला ॥ ८२ ॥

तैसें वृद्धाप्य होये । आलेपणें वायां जाये ।
 जें तो शतवृद्ध आहे । नेणों कैचा ॥ ८३ ॥
 झाडिलि कोलें झाडी । तेया न फले चि जेवि बोंडि ।
 जाला आणि तरि राखौडी । जालील काइ ॥ ८४ ॥
 ह्यणुनि वृद्धाप्याचेनि आठवें । वृद्धाप्यें जो न नगवे ।
 तेयाचां ठाई जाणावें । ज्ञान आहे ॥ ८५ ॥
 तैसेचि नाना रोग । पडिघांति पुढां आंग ।
 तवं आरोग्यतेचे उपेग । करुनि घाली ॥ ८६ ॥
 सांपाचां तोंडि । जे पडिलें सकूडी ।
 ते लाउनियां सांडी । बुद्धिवंत ॥ ८७ ॥
 तैसा वियोगु जेणें दुःखें । विपत्ति शोकु पोखे ।
 तें स्नेह सांडौनि सुखें । उदासु जो होए ॥ ८८ ॥
 आणि जेणें जेणें कडें । दोष सूतील तोंडें ।
 तिये कर्मरंध्रीं गुंडे । नियमाचे दाटी ॥ ८९ ॥
 ऐसीऐसीया आइती । जेयाची परि असती ।
 तो ज्ञानसंपत्ती । गोसांविं गा ॥ ५९० ॥

असक्तिरनभिष्वंगःपुत्रदारगृहादिषु ।

नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

आतां आणिक ही एक । लक्षण अलौलिक ।
 सांघैन आइक । धनंजया ॥ ९१ ॥
 तरि गृहपरिग्रहावरि । उदासु इया परिं ।
 उखिता जैसा विठारों । वैसविला असे ॥ ९२ ॥
 कां झाडांची साउली । वाटे जांतां मिनली ।
 घरावरि तेतुली । आस्था जेया ॥ ९३ ॥
 साउली सरिसी चि असे । परि असो हें नेणिजे जैसें ।
 स्त्रियेचें तैसें । आगतें जेया ॥ ९४ ॥

आणि प्रजा जे जाली । ते वसती चि कीर आली ।
 कां गोरुवें बैसलीं । रंखातलिं ॥ ९५ ॥
 जो संपती माजि असतां । ऐसा गमे पांडुसुता ।
 जैसा कां वाटे जाता । साक्षी ठेविला ॥ ९६ ॥
 किंबहुना पूसा । पांजरेया माझि जैसा ।
 वेदाज्ञेसि तैसा । भीउनु असे ॥ ९७ ॥
 यन्हविं दारां गृहपुत्रीं । नाहिं जेयाची मैत्री ।
 तो जाण धात्री । ज्ञानाची गा ॥ ९८ ॥
 आणि माहासिंधु जैसा । ग्रीष्मवर्षा सरिमा ।
 इष्टानिष्टां तैसां । जेयाचां ठांडं ॥ ९९ ॥
 कां तीन्ही काल होतां । त्रिधा न्हेवे चि सविता ।
 तैसा सुखदुःखि चित्ता । भेदु नाहिं ॥ ६०० ॥
 जेथ नभाचेनि पाडें । समत्वा उणें न पडे ।
 तेथ गा ज्ञान जोडें । जातखेउं ॥ १ ॥

मथि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।

विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

आणि मी वांचुनु काहिं । गोमटें जेया नाहिं ।
 ऐसा समो तिहिं । निश्चयाचा केल ॥ २ ॥
 शरीर वाचा मानस । पियार्लो कृतनिश्चयाचे कोश ।
 एक मी वांचूनि वास । न पाहवेया ॥ ३ ॥
 किंबहुना निजं । जेयाचें जालें मज ।
 जेणें आपणेयां आहां सेज । येकि केलि ॥ ४ ॥
 रिगतां वल्लभापुडें । नाहिं जीविं सांकडें ।
 तिये कांतेचेनि पाडे । एकसरे जो ॥ ५ ॥
 मित्रौनि मिउत चि दासे । समुद्रिं गंगापय जैसें ।
 मी होउनि मातें तैसें । सर्वस्व दे ॥ ६ ॥

सूर्याचां होणां होइजे । सूर्यासवें जाइजे ।
 हें दिकलेण साजे । प्रभे जेवि ॥ ७ ॥
 पै पणियांचिने भूमिके । पाणी चि तलपे कवतिकें ।
 ते लहरी हणति लोकिकें । यन्हविं पाणी चि तें ॥ ८ ॥
 जो अनन्यु तियापरी । मां जाळां हिं मातें वरी ।
 तो ते मूर्ति धरीं । ज्ञानाची येथ ॥ ९ ॥
 अणि तीर्थें तटें । तपोवनें चोखटें ।
 आवडति कपाटें । वसों जिया ॥ ६१० ॥
 शैलकक्षाचीं कंदरें । जलाशय परिकरें ।
 अधिष्ठी जो आदरें । नगरा न ए ॥ ११ ॥
 बहू ऐकांतावारि प्रीति । जेया जनपदाची खंती ।
 जाण मानुषी मूर्ति । ज्ञान चि तो ॥ १२ ॥
 आणिक ही पुढुतीं । चिन्ह गा सुमती ।
 ज्ञानाचिये निरुती । लागी सांघों ॥ १३ ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं ।

एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोन्वया ॥ ११ ॥

तारि परमात्मा ऐसें । जें एकि वस्तु असे ।
 तें जेया असे । ज्ञानातव ॥ १४ ॥
 तें एक वांचूनि आनें । जियें भवस्वर्गादि ज्ञानें ।
 तें अज्ञान ऐसें मनें । निश्चयो करी ॥ १५ ॥
 स्वर्गु जीणावा हें सांडी । भवविषिं काम अडीं ।
 दे अध्यात्मज्ञानिं बुडी । सद्भावेंसिं ॥ १६ ॥
 भंगलिये वाटे । शोधूनियां अग्हांटे ।
 निगिजे जेवि नीटें । राजपथें ॥ १७ ॥
 तैसें अज्ञानजात करी । पण आववेंचि एकीकडे सारी ।
 मग मन बुद्धि मीहरी । अध्यात्मज्ञानिं ॥ १८ ॥

ह्यणे हें चि एक आधि । एर जाणणें ते भ्रांति ।
 ऐसा निष्कर्षी मति । मेरु होये ॥ १९ ॥
 येवं निश्चयो जेयाचा । द्वारिं अध्यात्मज्ञानाचां ।
 ध्रुवो देवो गगनिचा । तैसा राहला ॥ ६२० ॥
 तेयाचां ठांडें ज्ञान । या बोला ह्यणसी व्यवधान ।
 जें ज्ञानिं बैसलें मन । तेव्हां चि तो तें ॥ २१ ॥
 तरि बैसलेपणें जें होये । तें बैसतां चि वेळि नोहे ।
 तन्हीं ज्ञाना तेया आहे । सरिसा पाडु ॥ २२ ॥
 आणि तत्वज्ञान निर्मळ । विये जें एक फल ।
 ते ज्ञेय हिं वारि सरल । दीठि जेयाची ॥ २३ ॥
 यन्हविं बोधा आलेनि ज्ञानें । जरि ज्ञेय न दिसे चि मनें ।
 तरि ज्ञानलाभु ही न मने । जाला सांता ॥ २४ ॥
 आंधलेनि हातिं दिवा । घेउनि काये करावा ।
 तैसा ज्ञाननिश्चयो आघवा । वायां जाए ॥ २५ ॥
 परि ज्ञानाचेनि प्रकारें । परतत्विं दीठि जें बैसे ।
 ते स्फूर्तिं असे । अंध होउनि ॥ २६ ॥
 ह्यणुनि ज्ञान जेतुलें दावी । तेतुळी वस्तु अघवी ।
 देखे ऐसी होआवी । बुद्धि चोख ॥ २७ ॥
 या लागि ज्ञानें निर्दोषें । दाविलें ज्ञेय देखे ।
 तैसेनि उन्मेखें । आथिला जो ॥ २८ ॥
 जेवढी ज्ञानाची उधि । तेव्हडी चि तेयाची बुद्धि ।
 तो ज्ञान हे शाद्धि । करणें न लगे ॥ २९ ॥
 पै ज्ञानाचिये प्रभे सर्वें । जेयाची मति पावे ।
 हातधरणियां सीवे । परतत्वातें ॥ ६३० ॥
 तो चि ज्ञान हे बोलतां । विस्मो कोणु पांडु सुता ।
 कां सवितेयातें सविता । ह्यणात्रें असें ॥ ३१ ॥

तत्र श्रोतां ह्यणितलें असो । न संघै देवाचा अतिसो ।
 ग्रंथउत्कटे आडसो । घालिसी कां ॥ ३२ ॥
 तूझा हा चि आह्नां थोरु । वगतृत्वाचा उपकार ।
 जे ज्ञानविषो फारु । उपदेशिला ॥ ३३ ॥
 रसु न व्हावा अतिमात्रु । हा घेतासि केवि मंत्रु ।
 तारि अवंतुनु शत्रु । करितासि गा ॥ ३४ ॥
 ठांइ बैसतिये वेले । जे रससोये घेउनि पले ।
 तियेचा येरु वोडौ मिले । कोणा अर्था ॥ ३५ ॥
 आघवा चि विषिं भादि । पारि सांजवणी टेंको नेंदी ।
 ते खुरधोडी नसुधी । पोसी कवण ॥ ३६ ॥
 तैसी ज्ञानिं मति न फांके । येरें जल्पति नेणों केतुके ।
 पारि तें असो नीके । केलें तुवां ॥ ३७ ॥
 जेया ज्ञानलेसादोसैं । कीजति योगातिसायासैं ।
 तें धणिचें आणि तूझेया ऐसैं । केलें निरोपण ॥ ३८ ॥
 अमृताची सातवाकडी । लागो कां अनुघाडी ।
 सुखाचे दीस कोडी । गणिजतु कां ॥ ३९ ॥
 पूर्णचंद्रेंसिं राति । युग एक असौनि पांति ।
 तारि काय पाहाताति । चकोर ते ॥ ४० ॥
 तैसैं ज्ञानाचें बालणें । आणि येणें रसालपणें ।
 आतां पुरे कोण ह्यणे । आकर्णितां ॥ ४१ ॥
 आणि सभाग्यु पाहुणा ये । सुभगाची वाढती होये ।
 तैं सरों न ये रससोए । ऐसैं आधि ॥ ४२ ॥
 तैसा घडला प्रसंगु । ज्ञानिं आह्नां लागु ।
 आणि तुज ही अनुरागु । आधि येथ ॥ ४३ ॥
 ह्यणौनि यया वाखाणा । पाठि सेइली चौगुणा ।
 ना ह्यणों न येसि देखणा । होंसि ज्ञानी ॥ ४४ ॥

तारि आतां या वारि । प्रज्ञेचा माजु धरिं ।
 पद साहसिं करी । निरोपण ॥ ४५ ॥
 या संतवाक्या सरिसें । जी ह्याणितलें निवृत्तिदासें ।
 माझे हीं जी ऐसें । मनोगत ॥ ४६ ॥
 या वारि आतां तुह्मीं । आज्ञापिलां स्वामी ।
 तारि वायां चि वाग्मी । वाढों नेंदी ॥ ४७ ॥
 एवं ये अवधारा । ज्ञानलक्षणें अठरा ।
 श्रीकृष्णें धनुर्धरा । निरोपिलिं ॥ ४८ ॥
 मग ह्याणे या नावें । ज्ञान येथ जाणावें ।
 हें स्वमतें आघवे । ज्ञानिये ह्याणति ॥ ४९ ॥
 करतला वारि वाटुला । डोलत देखिजे जेवि आवला ।
 तैसें ज्ञानें डोलां । आक्षिं दाविलें तुज ॥ ६५० ॥
 आतां जें महामती । अज्ञान ऐसी वदंती ।
 ते ही सांघों व्यक्ती । लक्षणीं गा ॥ ५१ ॥
 यन्हाविं ज्ञान फुडें जालेयां । अज्ञान जाणवें धनंजया ।
 जें ज्ञान नव्हे तें आपैसेया । अज्ञान चि ॥ ५२ ॥
 पाहे पां देऊ आघवा चि भरे । मग रात्री चि वोवि उरे ।
 वांचूनु काहिं तिसरें । नाहिं जेवि ॥ ५३ ॥
 तैसें ज्ञान जेथ नाहिं । तें चि अज्ञान पाहिं ।
 तारि सांघों काहिं काहिं । चिन्हें तियें ॥ ५४ ॥
 तारि संभावने जिये । जो मानाची वाट पाहे ।
 सत्कारें होये । तोषु जेया ॥ ५५ ॥
 गवें पर्वताचिं सिखरें । तैसा महत्वा वरौनि नुतरे ।
 तेयाचां ठांडं पुरें । अज्ञान असे ॥ ५६ ॥
 आणि स्वधर्माची मागवेलि । बांधे वाचेचा पिंपलिं ।
 उभिला जैसा देउलिं । जाणौनि कुंचा ॥ ५७ ॥

घाली वियेचा पसारा । सुये सुकृताचा डांगोरा ।
 करी तेतुलें मोहरा । स्फीतीचेया ॥ ५८ ॥
 भांग वारि चर्ची । जनांतें वंची ।
 तो जाण अज्ञानाची । खाणी येथ ॥ ५९ ॥
 आणि वन्हि वनि विचरे । तेथ जलति जैसिं स्थावरें ।
 तैसैं जेयाचेनि आचारें । जगा दुःख ॥ ६६० ॥
 कवतिकें जें जल्पे । तें साबलाहुनु रूपे ।
 विषाहुनु संकल्पें । मारकु जो ॥ ६६१ ॥
 तेयातें बहू अज्ञान । अज्ञानाचें चि निधान ।
 हिंसेसि आयतन । जेयाचें जीणें ॥ ६२ ॥
 आणि फूंकें भाति फुगे । रेचिली सर्वें चि उफगे ।
 तैसा संयोगवियोगें । चढे वोहटे ॥ ६३ ॥
 पडिली वारेयाचा वलसां । धूलि चढे आकाशा ।
 हरिषा वलघे तैसा । स्तुतिवेले ॥ ६४ ॥
 निंदा मोटकी आइके । आणि कपाल धरूनि ठाके ।
 धेंबें विरे वारेनि शोके । चिखलु जैसा ॥ ६५ ॥
 तैसा मानापमानिं होये । जो कोण्ही उर्भी न साहे ।
 तेयाचां ठांडं आहे । अज्ञान पुरें ॥ ६६ ॥
 आणि जेयाचां मनिं गांठि । वारि मोकली वाचा दीठि ।
 आंगें मीतलें जीवें पाठि । भलेतेया दे ॥ ६७ ॥
 व्याधाचें चारा घालणें । तैसैं प्रांजल जोगावणें ।
 चांगाचें अंतष्करणें । वीरू करी ॥ ६८ ॥
 गार सेवालें गुंडालली । कां निंबोली जैसी पीकली ।
 तैसी जेयाची भली । बाह्य क्रिया ॥ ६९ ॥
 अज्ञान तेयाचां ठांडं । ठेविलें असे पाहिं ।
 या बोला आन नाहिं । सत्य माझें ॥ ६७० ॥

आणि गुरुकुलें जो लाजे । गुरुभक्ती उभजे ।
 विद्या घेउनु माजे । गुरुसी चि ॥ ७१ ॥
 तेयाचें नावं घेणें । तें वाचेसि शूद्रान्न होणें ।
 पारि घडलें लक्षणें । बोलतां इयें ॥ ७२ ॥
 आतां गुरुभक्ताचें नावं घेउं । तें चि वाचेसि प्रायश्चित्त देउं ।
 गुरुसेवकु पाहों । सूर्य हा ॥ ७३ ॥
 एतुलेनि लागु पापाचा । निस्तारैल हे वाचा ।
 जो गुरुलोपकाचा । पापि घडला ॥ ७४ ॥
 हा ठाउं वरि । तेया नावांचें भय हरी ।
 मग हणगे अवधारीं । आणिकें चिन्हें ॥ ७५ ॥
 आंगें कर्मा ढीला । जो मनें विकल्पें भरला ।
 अडविचा अवगलला । कुहा जैसा ॥ ७६ ॥
 तेया तोंडिं कांठियडें । आंतु नमुदि हाडें ।
 अशुचि तेणें पाडें । सवाद्यु जो ॥ ७७ ॥
 जैसें पोट पोसी सुणें । उवडें झांकलें न हणगे ।
 तैसें आपुलें परावें नेणे । द्रव्या लागि ॥ ७८ ॥
 या ग्रामकोलाचां ठाडें । जैसा मिलणी ठाउं नाहिं ।
 तैसा स्त्रीविषडें कांहिं । विचारीना ॥ ७९ ॥
 कर्माचा वेलु चूके । कां निल्यनैमित्यक ठाके ।
 तें जेया न दूखे । जीवा माझि ॥ ६८० ॥
 पापि जो निसुगु । पुण्यि अति निलागु ।
 जेयाचा मनिं वेगु । विकल्पाचा ॥ ८१ ॥
 तो जाण निखला । अज्ञानाचा पूतला ।
 जो बांधौनि असे डोलां । विन्यासातें ॥ ८२ ॥
 आणि स्वार्थें अलुमालें । जो धीरापासौनि चले ।
 जैसें तृणबीज बलें । मुंगियेचेनि ॥ ८३ ॥

पावो सूदलेया सवें । थिल्लर जैसे कालवे ।
 तैसें भयाचेनि नावें । गजबजे जो ८४ ॥
 वायुचेनि अनुवायें । धूँ दिगंत वेन्हीं जाये ।
 दुःखवार्त्ता होये । तैसें जेया ॥ ८५ ॥
 मनोरथांचा धारसां । वाहवणें जेयाचेया मानसा ।
 पुरीं पडला जैसा । दूधिया कां ॥ ८६ ॥
 वाउधणाचिया परी । जो आश्रयो केहीं न धरी ।
 क्षेत्रिं तीर्थीं पुरीं । धारों नेणे ॥ ८७ ॥
 मातलेया सरडा । पुड्डति बूढ पुडुतीं सेंडा ।
 हिंडणवारा कोरडा । तैसा जेया ॥ ८८ ॥
 जैसा रोत्रिलेयां उणें । रांजणु बैसों नेणे ।
 तैसा पडे तरि राहाणें । यन्हविं हींडे ॥ ८९ ॥
 तेयाचां ठांई उदंड । अज्ञान असे उघड ।
 जो चांचल्यें भावंड । मर्कटाचें ॥ ९० ॥
 आणि पै धनुर्द्वारा । जेयाचेया अंतरा ।
 नाहिं वोढा वारा । संयमाचा ॥ ९१ ॥
 लेंडिये आला लोंढा । न मनी वालुवेचा वरंडा ।
 तैसा निपेधाचेया तोंडा । भिये ना जो ॥ ९२ ॥
 व्रतातें आडमोडी । धर्माचे पाये उपडी ।
 नियमाची आश तोडी । जेयाची क्रिया ॥ ९३ ॥
 नाहिं पापाचा कांटाला । नेंदी पुण्यासि जीवाला ।
 लाजेचा पेंडवला । खणौनि घाली ॥ ९४ ॥
 कुलेंसि पाठिमोरा । वेदाज्ञेसि दुन्हा ।
 वृत्त्याकृत्यव्यापारा । निवाडु नेणे ॥ ९५ ॥
 व प्रो जैसा मोकटु । वारा जैसा अफाटु ।
 पूटला जैसा पाटु । निरंजनीं ॥ ९६ ॥

आंधलें हातिरु मातलें । कां डोंगरिं जैसें पेटलें ।
 तैसें विषइं लागलें । चित्त जेयाचें ॥ ९७ ॥
 पै उघडा काय न पडे । मोकाटु कोणां नांतुडे ।
 गावंदारिचें आडें । नोलांडी कवण ॥ ९८ ॥
 जैसें सत्रीं अन्न जालें । कां सामान्या बीक आलें ।
 वाणसिये उभलें । कोण न रिगे ॥ ९९ ॥
 तैसें जेयाचें अंतःकरण । तेयाचां ठांडें संपूर्ण ।
 अज्ञानाची जाण । रिद्धि असे ॥ १०० ॥
 आणि विषयांची गोंडी । जो जीत मेला न, संडी ।
 स्वर्गिं हिं खावेया जोडि । येथौनि चि ॥ १ ॥
 जो अखंड भोगा जचे । जेया व्यसन कामक्रियेचें ।
 मुख देखौनि विरक्ताचें । सचैल करी ॥ २ ॥
 विषो शीणौनि जाए । पारि न सिणे सावधु नोहे ।
 जेणें कुहिला हातें चि खाये । कोढी जैसा ॥ ३ ॥
 खरी टेंकों नेंदी उडे । लातौनि फोडी नाकाडें ।
 तन्हीं जैसा न कडे । माघौता खर ॥ ४ ॥
 तैसा जो विषयां लागि । घाली जलतिये आगी ।
 व्यसनाचिं आंगिं । लेणिं मिरवी ॥ ५ ॥
 फूटौनि पडे तवं । मृगु वाढवी हांव ।
 पारि न हणने माव । रोहिणीची ॥ ६ ॥
 तैसा जन्मौनि मृत्यु वेन्हीं । विषइं त्रासितां बहु इं परीं ।
 पारि त्रासु नेवे धरी । अधिक प्रेम ॥ ७ ॥
 पाहिलिये बालदशे । आई बा हें चि पिसें ।
 तें सरे मग स्त्रीमांसें । भुलौनि ठाके ॥ ८ ॥
 मग स्त्री भोगितां थावों । वृद्धाप्यें लागे नेउं ।
 मग तो चि प्रेमभाउं । बालकां आणी ॥ ९ ॥

आंधलें वियालें जैसें । तैसिं बालकें परिवसे ।
 पारि जिये तवं न त्रासे । त्रिषयांसि जो ॥ ७१० ॥
 जाण तेयाचां ठांडे । अज्ञानासि पारु नाहिं ।
 आतां आणिकें हिं । चिन्हें सांघों ॥ ११ ॥
 तारि देह हें आत्मा । ऐसेया जो मनोधर्मा ।
 बलबौनियां कर्मा । रंभ करी ॥ १२ ॥
 आणि उणें कां पुरें । जें जें काहिं आचरे ।
 तेयाचेनि आविष्कारें । कुंथों लागे ॥ १३ ॥
 डोड्ये ठेविलेनि भोजें । देवलविसें फुंजे ।
 तैसा विद्यावयमाजें । उताणा चाले ॥ १४ ॥
 ह्मणे मीं चिं येकु आथि । माझां चिं धारें संपत्ति ।
 माझी आचरती रीती । कोणहासि नाहि ॥ १५ ॥
 नाहिं माझेनि पाडें वाडु । मीं चिं सर्वहु एकु रूडु ।
 ऐसा शिवमुष्टिगंडु । घेउनु ठाके ॥ १६ ॥
 व्याधिलेया माणसा । न ये भंगु दाखउं जैसा ।
 नीके न साहे तैसा । पुढिल्याचें ॥ १७ ॥
 पैं गुण तेतुला खाए । स्त्रहें किं जळतु जाए ।
 जेथ ठेविजे तेथ हांए । मसीं एमा ॥ १८ ॥
 जीवनें तिडिपिडि । वांजिला प्राणु फेडां ।
 टागला तारि काडी । उरों नेंदी ॥ १९ ॥
 अलुमालु प्रकाशु करी । तेतुत्रेनि उवारा धरी ।
 तेया दीपाचेया परी । सुविशु जं ॥ ७२० ॥
 बोखदाचेनि नावें अमृतें । जैसा नवज्वरु आवुथें ।
 कां त्रिख चिं होउनि परतें । सापा दूध ॥ २१ ॥
 तैसा सद्गुणें मत्सरु । विपत्तिअहंकारु ।
 तपें ज्ञानें अपारु । ताठा चढे ॥ २२ ॥

अंत्यु राणिवे बैसला । कां आरें धारणु गील्लि ।
 तैसा गर्वे फूगला । देखसी जो ॥ २३ ॥
 जो लाठी ऐसा न लवे । पाथरु तैसा न द्रवे ।
 गुणियांसि नांगवे । फोडसें जेवि ॥ २४ ॥
 किंबहुना तेया पासि । अज्ञान आहे वाढिसि ।
 हें निकरें गा तुजसि । बोलत असों ॥ २५ ॥
 आणि पै धनंजया । जो देहगेहसामग्रिया ।
 नेदखे चि कालिचेया । जन्मातें गा ॥ २६ ॥
 कृतघ्ना उपेगु केला । चोरा वेव्हारु दीधला ।
 निसुगु अस्ताविला । विसरे जेवि ॥ २७ ॥
 वोढालिवां लाडलें । तैसें कान पूंस वोलें ।
 पुडुति वोढाळं आलें । सुणें जेवि ॥ २८ ॥
 बेडुकु सापाचां तोंडिं । जातसे सबडबुडी ।
 तो मशकाचिया जोडी । स्मरे चि ना ॥ २९ ॥
 तैसीं नवै द्वारे श्रवति । देहाची लुति जीति ।
 जेणें जाली तें चित्तीं । सले ना जेया ॥ ७३० ॥
 मातृकोदरकुहरि । सूनि विष्टिचां दारि ।
 जठारें नव मास वेव्हरी । उकढला जै ॥ ३१ ॥
 ते गर्भिची व्यथा । कां जे जाली उपजतां ।
 तें काहिं चि सर्वथा । नाठवीं जो ॥ ३२ ॥
 मलमूत्रपांकिं । लोलतें बालकें अंकिं ।
 देखौनि जो न थूकी । त्रासु नेंघे ॥ ३३ ॥
 कले चि ना जन्म गेलें । पाहे चि ना पुडुति आलें ।
 ऐसेसें वाटलें । नाहिं जेया ॥ ३४ ॥
 आणि पै तिया चि परी । जीविनाची फरारी ।
 देखौनि जो न करी । मृत्युचिंता ॥ ३५ ॥

जीणेयाचेनि विश्वासें । मृत्यु येकु असे ।
 हें जेयाचेनि मानसें । मानिजे ना ॥ ३६ ॥
 अल्पोदकिचा मासा । नाटे ऐसिया आंशा ।
 न वचे चि कां जैसा । अगाधा डोहा ॥ ३७ ॥
 कां गोरिचिया भूळी । मृग व्याधा दीठि न घळी ।
 गल्लु न पाहतां गीली । उंडी मीनु ॥ ३८ ॥
 दीपाचेया झगमगा । जालीळ हें पतंगा ।
 नेणवे चि पै गा । जिया परी ॥ ३९ ॥
 कां गांधार निद्रासुखें । घर जळत नेदखे ।
 नेणतां जेवि विषें । रांधिलें अन्न ॥ ७४० ॥
 तैसा जीविताचेनि मीसें । हा मृत्यु चि ना आला असे ।
 हें नेदखे चि राजसें । सुखें जाणा ॥ ४१ ॥
 शरीरिची वाढि । अहोरात्रिची जोडि ।
 विषयसुखें प्रौढि । साच चि मानी ॥ ४२ ॥
 पारि बापुडा ऐसा नेणे । जें वेश्येसि सर्वस्व देणें ।
 तें चि नांगवणें । रूप पथ ॥ ४३ ॥
 सबंचोराचें साजणें । तें चि तें प्राणु घेणें ।
 लेपासि स्नपन करणें । तो चि नाशु ॥ ४४ ॥
 पांडू आंग सूटलें । तेया चि नावं खुंटलें ।
 तैसें नेणे जें भूललें । आहारनिद्रा ॥ ४५ ॥
 सन्मुखा सूला । धावंतेया पायला ।
 प्रतिपदि जचला । मृत्यु जेवि ॥ ४६ ॥
 तेवि देहा जवं जवं वाडु । जवं दीसांचा पवाडु ।
 जवं जवं सुरवाडु । भोगाचा हा ॥ ४७ ॥
 तवं तवं अधिकें । मरण आयुष्यातें जीके ।
 मीठ जैसें उदकें । ग्रासिजतसें ॥ ४८ ॥

तैसैं जीवित जाये । तेया अस्तत्रे काला पाहे ।
 हें हातोहातीं नोहे । ठाउवें जेया ॥ ४९ ॥
 किंबहुना पांडवा । हा आंगिचा मृत्यु नीच नवा ।
 नेदखे चि जो मात्रा । जीवितासाया ॥ ७५० ॥
 तो अज्ञानदेशिचा राउ । या बोला महाबाहो ।
 न पडे गा वंठाउ । आणिचा हा ॥ ५१ ॥
 पैं जीविताचेनि सुखें । जैसा कां मृत्युतें नेदखे ।
 तैसा चि तारुण्याचेनि तोषें । जरेतें न गर्णी ॥ ५२ ॥
 कडाडिं लोटिला गाडा । शिखरौनि सूटला ढोंडा ।
 तैसैं नेदखे पुढां । वृद्धाप्य आहे ॥ ५३ ॥
 कां आडवोहला पाणी आलें । हैसेयाचें जूझ मातलें ।
 तैसैं तारुण्याचें चढलें । भुररें जेया ॥ ५४ ॥
 पुष्टि लागे विघरों । कांति पाहे निसरों ।
 माथा आदरी सिरों । बागीबल ॥ ५५ ॥
 दाढी साउल धरी । मान हालउनि वारी ।
 तन्हीं जो करी । प्रायेचा आवेशु ॥ ५६ ॥
 पुढील उरीं आदले । नेदखे जैसैं आंधलें ।
 कां डोलेया वरिलें निगलें । आलसी तोखे ॥ ५७ ॥
 तैसैं तरुणेपण आजिचें । भोगितां वृद्धाप्य पाहिचें ।
 नेदखे चि तो साचें । अज्ञानु गा ॥ ५८ ॥
 देख अक्षमें कुबुजें । किं विपलावों लागे फुंजे ।
 पारि नेणे पाहे माझे । हे चि भावे ॥ ५९ ॥
 आंगि वृद्धाप्याची । संज्ञा एउनि मरावें चि ।
 पारि जेया तारुण्याची । भूलि न फिटे ॥ ७६० ॥
 तो अज्ञानाचें घर । हें साच चि घे उत्तर ।
 तेवि चि परियसैं थोर । चिन्ह आणिक ॥ ६१ ॥

तारि वाघाचिये अडवे । येकोल चरौनि आला दैवें ।
 तेणें विश्वासें पुढुतिं धावें । वसो जैसा ॥ ६२ ॥
 कां सर्प घरा आंतु । अवचटें देवो गेला स्वस्थु ।
 येतुलिया साठिं निश्रंतु । नास्तिकु होए ॥ ६३ ॥
 तैसेनि टंवच दियें । येक दोनि चि वेळ लाहे ।
 येथ लागु एकु आहे । हें मानी ना जो ॥ ६४ ॥
 वैरियां नीद आली । आणि दंदें माझि सरलिं ।
 हें मानी तो सपीली । मूकला जेवि ॥ ६५ ॥
 तैसी आहारनिद्रेचीं उजिरी । रोग निवांत जवं वेन्हीं ।
 तवं जो न करी । व्याधिचिंता ॥ ६६ ॥
 आणि स्त्रीपुत्रादिमेलें । संपति जवं फले ।
 तेणें रजें डोले । जाति जेयाचे ॥ ६७ ॥
 सवले चि वियोगु पडेल । विलौनि विपत्ति होइल ।
 हें दुःख पुढेल । नेदखे जो ॥ ६८ ॥
 तो अज्ञानु गा पांडवा । तो ही तो चि जाणावा ।
 जो इंद्रियें अन्हासन्हा । चारी एथ ॥ ६९ ॥
 वयसेचेनि उवायें । संपत्तिचेनि सावायें ।
 सेव्यासव्य जाये । सरकटीतु ॥ ७० ॥
 न करावें तें करी । असंभाव्य मनी धरी ।
 चित्तूं नये तें विवरी । जेयाची मति ॥ ७१ ॥
 रिगे तेथ न रिगावें । मागे जें नेघावें ।
 स्परिसें जेथ न लगावें । भांग मन ॥ ७२ ॥
 न वचावें तेथ जाये । न पाहावें तें पाहे ।
 न खावें तें खाये । तेविं चि तोखे ॥ ७३ ॥
 न धरावा तो संगु । न लगावा तेथ लागु ।
 न चरावा जो मार्गु । आचरे जो ॥ ७४ ॥

नाइकावें तें आइके । न बोळावें तें भाखे ।
 पारि दोष्टु होईल हें नेदखे । प्रवर्त्ततां ॥ ७५ ॥
 आंगा मना रुची येयावें । येतुलें कृत्याकृत्य नाठवे ।
 जो करणेयांचेनि नावें । भलेतें करी ॥ ७६ ॥
 पारि पाप मज होईल । कां नरकयातना येइल ।
 हें काहिं चि पुढील । देखे ना जो ॥ ७७ ॥
 तेयाचेनि आंगलगें । अज्ञान जगिं दाटुगें ।
 जें सज्ञानासि हि संगें । ज्ञौबों शके ॥ ७८ ॥
 पारि असो हें आइक । अज्ञानचिन्ह आणिक ।
 कां तुज सम्यक । जाणवें जें ॥ ७९ ॥
 तरि जेयाची प्रीति पुरी । गुंतली देखसी घरिं ।
 नवगंधकेसरी । भ्रमरी जैसी ॥ ७८० ॥
 साकरेचिये रासी । बैसली नुडे मासी ।
 तैसें निषण्ण आवासिं । जेयाचें मन ॥ ८१ ॥
 वेळामेड बेडकु अडिं । मशकु गुंपला सेंबुडीं ।
 ढोर सबडबुडी । पांकि गेला ॥ ८२ ॥
 तैसें घरौनि निगणें । नाहिं जीतेनि मरणें ।
 जेया सापां होउनि असणें । भाटिं तिये ॥ ८३ ॥
 प्रियोत्तमाचां कांठिं । प्रमदा घे आंटी ।
 तैसा जीवेंसि कोंपटी । धरुनि जो ठाके ॥ ८४ ॥
 मधुरसादोषें । मधुकारि जचें जैसें ।
 गृहसंगोतन तैसें । करी जो गा ॥ ८५ ॥
 ह्यांतारपाणिं जालें । माणिक एक उपाइलें ।
 तेयाचें कां जेतुलें । मातापितरां ॥ ८६ ॥
 तेतुलेनि पाडें पार्था । घरिं जेयाची आस्था ।
 आणि स्त्री वांचौनि सर्वथा । जाणे ना जो ॥ ८७ ॥

महापुरुषाचें चित्त । जालेयां वस्तुगत ।
ठाके व्यग्रहारजात । जेया परीं ॥ ८८ ॥
तैसा स्त्रीदेहीं जो जीवें । पडौनियां सर्वभावें ।
कोणु मी काय करावें । हें काहिं नेणे ॥ ८९ ॥
हाणि लाभ नदेखे । लोकापवादु नाइके ।
जेयाचें इंद्रियें एकमुखें । स्त्रिया केलीं ॥ ७९० ॥
चित्त आराधी स्त्रियेचें । स्त्रियेचेनि संदे नाचे ।
मर्कट गारुडियाचें । जैसें होए ॥ ९१ ॥
आपण चि पासिं दावी । इष्टा मैत्रा दुरावी ।
मग कवडा चि वाढवी । लोभी जैसा ॥ ९२ ॥
तैसें दानपुण्य खांची । गोत्रकुटुंबा वंची ।
परि बायणी स्त्रियेची । उणी हो न ये ॥ ९३ ॥
पूजितें दैवतें जोगावी । गुरुतें बोलें झांकवी ।
मायेवापा दावी । निदारपण ॥ ९४ ॥
स्त्रियेचां तारि विधिं । भोगसंपत्ति अनेकां ।
आणिकि वस्तु नीकी । जे जे देखे ॥ ९५ ॥
प्रेमाधिलेनि भगतें । भजिजे कुलदेवतेतें ।
तैसा एकाग्रचित्तें । स्त्रि जो उपासी ॥ ९६ ॥
इयेंतें कोण्ही देखैल । इयेंसि वेखासें जाइल ।
तरि युग चि बुडैल । ऐसें जेया ॥ ९७ ॥
साच आणि चोख । तें स्त्रियेसी चि अशेष ।
एरी विधिं जोगावणुक । ते ही नाहिं ॥ ९८ ॥
नाइटेयां भेण । न मोडीं नागाची आण ।
तैसी पाली उणखुण । स्त्रियेची जो ॥ ९९ ॥
किंवाहुना धनंजया । स्त्री चि सर्वस्व जेया ।
आणि तियेचेया जाळेया । लागि प्रेम ॥ १०० ॥

आणिक ही जें समस्त । तेथिचें संपत्तिजात ।
 तें जीवाहूनु आत । मानी जो गा ॥ १ ॥
 तो अज्ञानासि मूल । अज्ञाना तें बळ ।
 हें असो केवळ । तें चि तो रूप ॥ २ ॥
 मातळिये सागरिं । फोकलियां तरि ।
 लाटाचां थेरझारिं । आंदोळे जेवि ॥ ३ ॥
 तैसी प्रिय वस्तु पावे । आणि सुखें जो उंचावे ।
 तैसा अप्रिया सर्वे । तळु खाए ॥ ४ ॥
 ऐसी जेयाचां चिंति । वैषम्यसाम्याची वोखती ।
 वाहे तो महामती । अज्ञानु गा ॥ ५ ॥
 आणि माझां ठाईं भगति । फळा लागि जेया आथि ।
 धना दोसैं विरगति । नटणें जेवि ॥ ६ ॥
 कां कांताचां मानसिं । रिगौनु स्वैरिणी जैसी ।
 राहाटे आणिकेंसिं । जावेया लागि ॥ ७ ॥
 तैसें मातें किरीटी । भजती गा पाउटी ।
 करूनि जो दीठी । विपो सुये ॥ ८ ॥
 आणि भजिनलेया वरि । तो विषयो न पवे जरि ।
 सांडि हणें तरि । आघर्षें टवाळ हें ॥ ९ ॥
 कुणवटु कुलवःडी । तैसा आनु देउ मांडी ।
 आदिलाची पिडी । करी तेयातें ॥ ८१० ॥
 तेया गुरुमार्गा टेंके । जेयाचा सुगुरुवां देखे ।
 तारि तेयाचा मंत्रु सीखे । एर नेवे ॥ ११ ॥
 प्राणिजातेंसि निष्ठुर । स्थावारिं बहुत भर ।
 तत्रि चि नाहिं एकसर । निर्वाहो जेया ॥ १२ ॥
 माझी मूर्ति आपजवी । घराचां कोनि वैसवी ।
 आणि देवादेवी । यात्रे जाए ॥ १३ ॥

नीच आराधन माझे । काजीं कुलदेवतिं भजे ।
 पर्वविशेषे भोजे । पूजा आन ॥ १४ ॥
 माझे अधिष्ठान घरीं । आणि वैसे आनाचे करी ।
 पितरकार्यअवसरिं । पितरांचा होए ॥ १५ ॥
 एकादशिचां दिशिं । जेतुला पाडु आमसिं ।
 तेतुला चि नागांसि । पंचमीसि ॥ १६ ॥
 चौथि मोटकी पाहे । आणि गणेशाचा चि होए ।
 चाउदासिं ह्मणे माए । तूझा चि वो दुर्गे ॥ १७ ॥
 नवमीतें मांडी । आणि बैसे नवचंडी ।
 आदित्यवारिं वाढी । भैरवां भरिं ॥ १८ ॥
 पाठिं सोमवारु पावे । आणि बेलेंसिं लिंगा धांवे ।
 ऐसें एकला चि आघवे । जोगावी जो ॥ १९ ॥
 अखंड भजन करी । उगा न राहे क्षणभरी ।
 आघवेनि गांवदारी । ऐहेव जैसी ॥ ८२० ॥
 तैसेनि जो गा भगतु । वेखांसि सैरा धावंतु ।
 जाण अज्ञानाचा भूर्तु । अवतारु तो ॥ २१ ॥
 आणि एकांतें चोखटें । तपोवनें तीर्थें तटें ।
 देखौनि जो वीटे । तो ही तो चि ॥ २२ ॥
 आणि आत्मा गोचरु होए । ऐसी जे विद्या आहे ।
 तें आइकौनु डौरु वाहे । विद्वांसु जो ॥ २३ ॥
 उपनिषदांकडे न वचे । योगशास्त्र न रुचे ।
 अध्यात्मज्ञानाचे । मनीं चि नाहं ॥ २४ ॥
 आत्मचर्चा एकि आथि । ऐसिये बुद्धीची भीति ।
 पाडूनि जेयाची मति । वोढाल जाळी ॥ २५ ॥
 कर्मकांड तारि जाणे । मुखोदरें पुराणें ।
 ज्योतिषिं तो ह्मणे । तैसे चि होए ॥ २६ ॥
 ५७

शिल्पि अतिनिपुण । सूत्रशास्त्रि प्रवीणु ।
 विधि अथर्वणु । हाति जेया ॥ २७ ॥
 कोकिं नाहिं ठेलें । भरतु करी ह्यणितलें ।
 आगम उपासिले । मूर्त्त होंति ॥ २८ ॥
 नीति सुज्ञे । वैदिक बुज्ञे ।
 काव्यनाटकिं दूजें । चतुर नाहिं ॥ २९ ॥
 स्मृतिची चर्चा । डंभु जाणे गारुडाचा ।
 निघंटु प्रज्ञेचा । पाइकु करी ॥ ८३० ॥
 व्याकरणिं चोखडा । तर्की अतिगाढा ।
 एकिं अध्यात्मीं चि फुडा । जात्यंधु ॥ ३१ ॥
 तें वांचूनु आघवां शास्त्रिं । सिद्धान्तनिर्वाणसूत्री ।
 पारि जलो तें नक्षत्री । न पाहे गा ॥ ३२ ॥
 मोराचां आंगिं असोसैं । पिसैं आहाति डोलसैं ।
 आणि एकली दीठि नसे । तैसैं तें गा ॥ ३३ ॥
 जारि परमाणू एवडें । संजीवनीमूल जोडे ।
 तारिं बहू गाडे । भरणें केवि ॥ ३४ ॥
 तैसैं शास्त्रजात जाण । आघवें चि अप्रमाण ।
 अध्यात्मज्ञानें विण । एकलेनि ॥ ३५ ॥
 या लागि अर्जुना पाहिं । अध्यात्मज्ञानाचां ठांड ।
 जेया निश्चयबुद्धि नाहिं । शास्त्रमूढां ॥ ३६ ॥
 तेया शरीर जें जालें । तें अज्ञानाचें विं विरुढलें ।
 जेयाचिये वित्पती गेलें । अज्ञानवेलीं ॥ ३७ ॥
 तो जें जें बोले । तें अज्ञान चि फूडलें ।
 तेयाचें पुण्य तें फळलें । अज्ञान चि ॥ ३८ ॥
 अध्यात्मज्ञान कहिं । जेणें मानिलें चि नाहिं ।
 तो ज्ञानार्थु न देखे काहीं । हें बोलावें असे ॥ ३९ ॥

ऐली चि थडी न पवतां । पले जो माघौता ।
 तेया पैली तीरिची वार्ता । केवि जाणवे ॥ ८४० ॥
 कां दाखठां चि जेयाचें । पाये बांधले साचे ।
 तो केवि परिवरिचें । ठेविलें जाणे ॥ ४१ ॥
 तेवि अध्यात्मज्ञान जेया । अनोलख धनंजया ।
 तेया ज्ञानार्थु देखावेया । काइ काज ॥ ४२ ॥
 ह्यणौनि आतां विशेषें । तो ज्ञानाचें सार न देखे ।
 हें सांगावें आंखें लेखें । न लगे तुज ॥ ४३ ॥
 जेधवां सगभें वाढिलें । तेधवां चि पोटिचें घालें ।
 तैसें मागिलें पदें बोलिलें । तें चि होए ॥ ४४ ॥
 वांचूनु या वेगलें । रूप करणें हें न मिले ।
 घेइ आवंतिलें आंधलें । तैसें जालें ॥ ४५ ॥
 एवं इये उपरती । ज्ञानचिन्हें माघौती ।
 अमानित्वादिप्रभृती । वाखाणिलीं ॥ ४६ ॥
 जियें ज्ञानपदें अठरा । केलियां एरी मोहरा ।
 अज्ञान ऐसें आकारा । येथ आहे ॥ ४७ ॥
 मागां श्लोकाचेनि अर्द्धाद्वै । ऐसें सांधितलें मुकुंदें ।
 ना उपराठि ज्ञानपदें । तें चि अज्ञान ॥ ४८ ॥
 ह्यणौनि इया वाहाणी । मियां केली उपलवणी ।
 वांचौनि दूधा मेलउनि पाणी । फार कीजे ॥ ४९ ॥
 तैसें जी न बडवडीं । पदाची कोर न संडी ।
 मूलध्वनिचिये वाढी । निमित्त जालां ॥ ८५० ॥
 तवं श्रोते ह्यणति राहे । कें पारिहारा ठाऊ आहे ।
 भीसि कां वायां हें । कविपोषका ॥ ५१ ॥
 तूतें श्रीमुरारी । ह्यणितलें प्रकटें करीं ।
 जे अभिप्राय गव्हरीं । ज्ञांकिले आर्झीं ॥ ५२ ॥

तें देवाचें मनोगत । दावितु आहासि मूर्त ।
 हें इं हणतां चित्त । दाटैल तूजें ॥ ५३ ॥
 हणौनि असो हें न बोलें । परि सवियां चि गा तोखलें ।
 जें लोकत्रया मेलविलें । श्रवणमुखा ॥ ५४ ॥
 आतां या वारि । जें तो श्रीहारि ।
 बोलिळा तें करीं । कथन वेगा ॥ ५५ ॥
 या संतवाक्या सरिसें । हणितलें निवृत्तिदासें ।
 जी अवधारां ऐसें । बोलिळे देउ ॥ ५६ ॥
 हणो तुवां पांडवा । हा चिन्हसमुच्चयो आघवा ।
 आइकिला तो जाणावा । अज्ञानभागु ॥ ५७ ॥
 येया अज्ञानविभागा । पाठि देउनियां पै गा ।
 मग ज्ञानविधिं चांगा । दृढां होइजे ॥ ५८ ॥
 मग निर्वाललेनि ज्ञानें । ज्ञेय भेटैल मनें ।
 तें जाणावेया अर्जुनें । आश केली ॥ ५९ ॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥

अनादि मत्परं ब्रह्म न सत्तं नासदुच्यते ॥ १२ ॥

तव सवज्ञांचा राउ ॥ हणो जाणौनि तेयाचा भाउ ॥
 परिसैं गा ज्ञेयअभिप्राउ ॥ सांघों आतां ॥ ८६ = ॥
 तरि ज्ञेय ऐसें हणणें । वस्तूतें येणें चि कारणें ।
 जें ज्ञानें वांचूनि कव्हणें । उपाया न ये ॥ ६१ ॥
 आणि जाणितलेया वरौतें । जाणणें नाहिं जेथें ।
 जें जाणणें चि तन्मयते । आणी जेयाचें ॥ ६२ ॥
 जें जाणितलेया साठिं । संसारा काढूनि कांठीं ।
 जिरौनि जाइजे पोटीं । नित्यानंदाचा ॥ ६३ ॥
 तें ज्ञेय गा ऐसें । आदि चि जेया नसे ।
 परब्रह्म आपैसैं । नावें जेया ॥ ६४ ॥

नाहिं हणों जाइजे । तवं विश्वाकारें देखिजे ।
 विश्व ऐसें हणिजे । तरि हे माया ॥ ६५ ॥
 रूप वर्णु व्यक्ति । नाहिं दृश्यदृष्टस्थिति ।
 तरि कोणें कैसें आधि । हणारवें पां ॥ ६६ ॥
 आणि साच चि जारि नाहिं । तरि महदादि कवणी ठांडं ।
 स्फुरत कैचें काइ । तेणें विण ॥ ६७ ॥
 हणौनि आधि नाहिं हे बोली । जें देखौनि मूंकें जालिं ।
 विचाराची मोडली । वाट जेथ ॥ ६८ ॥
 भांडवटशराविं । जैसी तदाकार असे पृथवी ।
 तैसें सर्व होउनि सर्वीं । असे जें वस्तु ॥ ६९ ॥
 आघवां चि देशिं कालिं । नोहे चि देशकाला वेगली ।
 जे क्रिया स्थूलास्थूलीं । ते चि हात जेया ॥ ८७० ॥
 सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखं ।
 सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥
 तेयातें एया कारणें । विश्वबाहु हें हणणें ।
 जें सर्व चि सर्वपणें । सदा करी ॥ ७१ ॥
 आणि समस्ता ही ठाया । एकी चि कालिं धनंजया ।
 आलें असे हणौनियां । विश्वांग्रि नावं ॥ ७२ ॥
 पैं सवितेया आंग डोलें । हें नाहिं वेगलवेगलें ।
 तैसें सर्वदृष्टें सकलें । स्वरूपें जें ॥ ७३ ॥
 हणौनि विश्वतश्चक्षु । हा अचक्षुचा ठांडं पक्षु ।
 बोलवेया दक्षु । जाला वेदु ॥ ७४ ॥
 पैं गा मूर्ति तें चि मुख । हुताशना देख ।
 तैसें सर्वत्र अशेष । भोक्तें जें ॥ ७५ ॥
 एया लागि तेथ पार्था । विश्वतोमुख हे व्यवस्था ।
 आली वाक्पथा । श्रुतीचेया ॥ ७६ ॥

आणि वस्तुमात्रिं गगन । जैसें असे संलग्न ।
 तैसें शब्दजातिं कान । सर्वत्र जेया ॥ ७७ ॥
 ह्यणौनि आर्क्षीं तेयाते । ह्यणों सर्वत्र आइकर्ते ।
 एवं जें सर्वाते । आवरुनि असे ॥ ७८ ॥
 यन्हविं तन्हीं महामती । विश्वतश्चक्षु या श्रुती ।
 तेयाचिये व्याप्ती । रूप केळें ॥ ७९ ॥
 धांचूनि हस्तनेत्रपाए । हे भाक काय तेथ आहे ।
 सर्व शून्याचा साहे । निष्कर्ष जें ॥ ८० ॥
 पै कल्लोलते कल्लोलें । प्रसिजतसें ऐसें केलें ।
 परि प्रसितें प्रासा वेगळें । असे काइ ॥ ८१ ॥
 तैसें सर्वादि जें एक । तेथ कें व्याप्यव्यापक ।
 परि बोलावेया नांव एक । करावें लागे ॥ ८२ ॥
 पै शून्य जें दावावें जालें । तें बिंदुलें एक केलें ।
 तैसें अद्वैत दावावें बोलें । द्वैत चि कीजे ॥ ८३ ॥
 ह्यणौनि गा पार्था । गुरुशिष्यसत्पथा ।
 आडळ पडे सर्वथा । बोलु खुटे ॥ ८४ ॥
 ह्यणौनि गा श्रुती । द्वैतभावे अद्वैती ।
 निरोपणा वाहाती । वाट केली ॥ ८५ ॥
 तें चि आतां अवधारीं । ये नेत्रगोचरे आकारिं ।
 तें ज्ञेय जेया परीं । व्यापूनि असे ॥ ८६ ॥
 तारि तें गा ऐसें । अवकाशिं आकाश जैसें ।
 पटीं पटु होउनि असे । तंतु जेवि ॥ ८७ ॥
 उदक होउनि उदकिं । रसु जैसा अवलोकीं ।
 दीपपणें दीपकीं । तेज जैसें ॥ ८८ ॥
 कपूरत्वे कापुरीं । सौरभ्य असे जिया परीं ।
 शरीर होउनि शरीरीं । कर्म जेवि ॥ ८९ ॥

किंबहुना ऐसैं पांडवा । सोनें सोनयांचा रवा ।
 तैसैं जें या सर्वा । सर्वांगीं असे ॥ ८९० ॥
 पारि रवेपणा माझिबडें । तवं रवा ऐसैं आवडे ।
 वांचूनि सोनें सोनेयां सांगडे । सोनें चि जेवि ९१ ॥
 पै गा वोघू चि वांकुडा । पारि पाणी उजू सुहाडा ।
 वन्हि आला लोखंडा । लोह नव्हे ॥ ९२ ॥
 घटाकारें वेंटाळलें । तें नभ गमे वाटुलें ।
 मठिं तारि चौफलें । आयें दीसे ॥ ९३ ॥
 पारि ते आकार जैसे । नोहिजती चि आकाशें ।
 तेवि विकारु होउनि तैसैं । विकारी नोहे ॥ ९४ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितं ।

असक्तं सर्वभुक्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥

मन मुख्य इंद्रियां । सत्वादि गुणा येया ।
 सारिखें ऐसैं धनंजया । आवडे कीर ॥ ९५ ॥
 पै गुलाची गोडी । नव्हे बांधेया सांगडी ।
 तैसीं गुणेंद्रियें फुडी । नाहिं तेथ ॥ ९६ ॥
 आगा क्षीराचिये दशे । घृत चि क्षीराकारें असे ।
 पारि क्षीर चि नव्हे जैसें । कपिध्वजा ॥ ९७ ॥
 तैसैं जें इये विकारिं । विकारु नव्हे अवधारिं ।
 पारि आकारु नावं भवरी । सोनें तें सोनें ॥ ९८ ॥
 या उघड मन्हाटिया । तें वेगलेपणें धनंजया ।
 जाण गुणेंद्रियां । पासौनियां ॥ ९९ ॥
 नामरूपसंबंधु । जातिक्रियाभेदु ।
 हा आकारासि चि प्रवादु । वस्तुसि नाहिं ॥ १०० ॥
 जें गुण नोहे कहिं । गुणा तेया पाडु नाहिं ।
 पारि तेयाचां चि ठांडं । आभासति ॥ १ ॥

एतुल्लिया साठिं । सभ्रांताचां पोटीं ।
 ना, ऐसैं गमे किराटी । जें हें धरी ॥ २ ॥
 तारि तें गा धरणें ऐसैं । अभ्रातें जेवि आकाशें ।
 कां प्रतिवदन जैसैं । आरिसेनि ॥ ३ ॥
 नातारि सूर्यप्रतिमंडल । जैसैं धरी सलील ।
 रश्मिकरें मृगजल । धरिजे जेवि ॥ ४ ॥
 तैसैं गा संबंधें विण । यां सर्वातें निर्गुण ।
 परि तें वायां जाण । मिथ्या दृष्टी ॥ ५ ॥
 आणि इयांपरी निर्गुणें । गुणातें भोगणें ।
 रंका राज्य करणें । स्वप्नि जेवि ॥ ६ ॥
 ह्यगौनि गुणाचा संगु । अथवा गुणभोगु ।
 हा निर्गुणिं लागु । बोलों चि न ये ॥ ७ ॥
 बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
 सूक्ष्मत्वात्तद्विज्ञेयं दूरस्थं चांतिके च तत् ॥ १५ ॥
 जें चराचर भूतां । माझि असे पांडुसुता ।
 नाना वन्दि उष्णता । अभेद जेवि ॥ ८ ॥
 तैसेनि अविनाभावें । सूक्ष्मदशे आघवें ।
 व्यापूनि असे तें जाणावें । ज्ञेय एथ ॥ ९ ॥
 जें एक आंतु बाहिरि । जें एक जवलें दूरी ।
 जें एक वांचूनि परि । दुसरी नाहिं ॥ ९१० ॥
 अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितं ।
 भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं त्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥
 क्षीरसागरिची गोडी । माजि बहुत थडिये थोडी ।
 हें नाहिं तेया परवडी । पूर्ण जें गा ॥ ११ ॥
 स्वेदजादिप्रभृती । वेगलालां भूतिं ।
 जेयाचिये अनस्यूती । खोमणें नाहिं ॥ १२ ॥

पै श्रोतेमुखटिलका । घटसहस्रां अनेकां ।
 बिंबौनियां चंद्रिका । न भेदे जेवि ॥ १३ ॥
 नानां लवणकणाचिया रासी । क्षारता एकि जैसी ।
 कां कोडी एके उंसीं । एकु चि रसु ॥ १४ ॥
 तैसी अनेकिं भूतजाति । असे एक चि व्याप्ति ।
 विश्वकार्या सुमती । कारण जें ॥ १५ ॥
 ह्यणौनि हा भूताकार । जेथौनि तें चि आधार ।
 कल्लोलि सागर । जेया परीं ॥ १६ ॥
 पै बालादि तिहि वयसिं । काया एकी चि जैसी ।
 तैसें आदिस्थितिग्रासिं । अखंड जें ॥ १७ ॥
 सायंप्रातमध्यान्हीं । हांत जांत दिनिदिनीं ।
 जैसें कां गगनीं । पालटु नाहिं ॥ १८ ॥
 आगा शृष्टिवेले प्रियोत्तमा । जेया नावं ब्रह्मा ।
 व्याप्ति जें नामा । पात्र जालें ॥ १९ ॥
 मग आकार हा हारपे । तेधवां रुद्र जें ह्यणिपे ।
 तें हि गुणत्रयलोपे । तै जें शून्य ॥ २० ॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसःपरमुच्यते ।
 ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य तिष्ठति ॥ १७ ॥

जें अग्निचें दीपन । जें चंद्राचें जीवन ।
 सूर्याचे नयन । देखति जेणें ॥ २१ ॥
 आदीसि जे आदि । जे वृद्धीसि वृद्धि ।
 बुद्धिसि बुद्धि । जीवाचा जीउ ॥ २२ ॥
 जेयाचेनि उजियेडें । तारागण उघडे ।
 महातेज सुरवाडें । जेणें राहाटे ॥ २३ ॥
 मनाचें मन । जें नेत्राचे नयन ।
 जें प्राणाचे प्राण । वाचेची वाचा ॥ २४ ॥

जें प्राणाचे प्राण । जें गतिचे चरण ।
 क्रियोसि कर्त्तव्यण । जेयाचेनि ॥ २५ ॥
 आकार जेणें आकारे । विस्तार जेणें विस्तारे ।
 संहार जेणें संहारे । पांडुकुमरा ॥ २६ ॥
 जें मेदिनियेची मेदिनी । जें पाणी पीडनि असे पाणी ।
 तेजा दिवेलवणी । जेणें तेजें ॥ २७ ॥
 जें वायुचा श्वासोश्वासु । जें गगनाचा अवकाशु ।
 आघवा चि आभासु । आभासे जेणें ॥ २८ ॥
 किंबहुना पांडवा । जें आघवें चि इये आघवां ।
 जेथ नाहिं रिगावां । द्वैतभावां ॥ २९ ॥
 जें देखिलेया चि सवें । दृष्टादृश्य आघवें ।
 एकवाट कालवे । सामरस्यें ॥ ३० ॥
 भग तें चि होये ज्ञान । ज्ञाता ज्ञेय हान ।
 ज्ञानें गमिजे स्थान । तें हि तें चि ॥ ३१ ॥
 सरलेयां लेख । जैसैं आंख होंति एक ।
 तैसैं साध्यसाधनादिक । ऐक्यते ये ॥ ३२ ॥
 अर्जुना जिये ठांड । सरे द्वैताची लिही ।
 हें असो हृदयीं । सर्वांचां असे ॥ ३३ ॥
 इति क्षेत्र तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
 मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥
 एवं तुज पुढां । आदि क्षेत्र सुहाडा ।
 दाविलें फाडोवाडां । विवंचूनि ॥ ३४ ॥
 तैसैं चि क्षेत्रपाठिं । जैसैं देखिलें दीठी ।
 तैसैं चि ज्ञान किरीटी । सांघितलें ॥ ३५ ॥
 अज्ञाना हि कषातिकें । रूप केलें नीकें ।
 जवं आणि टेंके । पुरे हणसी ॥ ३६ ॥

आणि आतां हें रोकडें । उपपत्तिचेनि सुरवाडें ।
 निरोपिलें उघडें । ज्ञेय पै गा ॥ ३७ ॥
 हे आघवी चि विवंचना । बुद्धी भरुनि अर्जुना ।
 मग सिद्धिभुवना । माझे येति ॥ ३८ ॥
 देहादि परिग्रहीं । सन्यासु घेउनि जिहिं ।
 जीउ माझां ठांडं । वृत्तिकु केला ॥ ३९ ॥
 ते गा माझे किरीटी । हें जाणौनि सेवटीं ।
 आपणपेया साठीं । मी चि होंति ॥ ९४० ॥
 तारि मी होती परी । हे मुख्य अवधारिं ।
 सोहपी सर्वा परीं । रचिली आक्षिं ॥ ४१ ॥
 कडां पायेरी काजे । निरालिं मांचु बांधिजे ।
 अथाविं सूयिजे । तारितें जेवि ॥ ४२ ॥
 यन्हविं आघवें चि आत्मां । हें सांघौनु वीरोत्तमा ।
 तें तूझेया मनोधर्मा । मीलैल ना ॥ ४३ ॥
 ह्यणौनि एक चि संभलें । आक्षिं चतुर्धा केलें ।
 जें अदलपण देखिलें । तूक्षिये प्रज्ञे ॥ ४४ ॥
 पै बालक जें जेवविजे । तें घांसु विसें ठांडं काजे ।
 तैसें एक चतुर्व्याजें । कथिलें आक्षिं ॥ ४५ ॥
 एक क्षेत्र एक ज्ञान । एक ज्ञेय एक अज्ञान ।
 हे भाग केले अवधान । जाणौनि तूजें ॥ ४६ ॥
 आणि ऐसेन हिं पार्था । जरि हा अभिप्रा३ तुज हाता ।
 न ये चि तारि हे वेवस्था । पुढुति सांघों ॥ ४७ ॥
 आतां चौं ठांडं न करुं । एक चि ह्यणौनि न सरुं ।
 आत्मियां अनात्मियां धरुं सरिसा पाडु ॥ ४८ ॥
 परि तुवां एतुलें करावें । मागौनि तें आह्वां देयावें ।
 जें काना चि नाचं ठेवावें । आपणयातें ॥ ४९ ॥

एया श्रीकृष्णाचेया बोला । पार्थु रोमांचितु जाला ।
तेथ दे३० हणति उगला । उचंबल ना ॥ ९५० ॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥ १९ ॥

ऐसेनि तो एता वेगु । धरूनि हणने श्रीरंगु ।
प्रकृतिपुरुषां विभागु । परियस सांघों ॥ ५१ ॥
जेया मार्गातें जर्गी । सांख्य हणति योगी ।
जेयाचिये भाटिवे लागि । मी कपिलु जालां ॥ ५२ ॥
तो आइक निर्दोषु । प्रकृतिपुरुषविवेकु ।
हणतसे आदिपुरुखु । अर्जुनातें ॥ ५३ ॥
तारि पुरुषु अनादि आधि । आणि तैं चि लागौनि प्रकृति ।
समरसिं जैसीं दिवोराति । दोन्हीं असति ॥ ५४ ॥
का रूप नव्हे वायां । रूपा लागली छाया ।
निकण वाढे धनंजया । कर्णोसिं कोंडा ॥ ५५ ॥
तौसिं जाण लवलटें । दोन्ही जियें एकवटें ।
प्रकृतिपुरुषु प्रकटें । अनादिसिद्धें ॥ ५६ ॥
पैं क्षेत्र एणें नावें । जें सांघितलें आववें ।
तें चि येथ जाणावें । प्रकृति पैं गा ॥ ५७ ॥
क्षेत्रञ्चु ऐसें । जेयातें हणितलें असे ।
तो पुरुषु अनारिसें । न बोलों घेइ ॥ ५८ ॥
इयें अनानें नावें । पारि नित्य आन नव्हे ।
हें लक्ष्य न चुकावें । पुढुतिं पुढुतिं ॥ ५९ ॥
तारि केवल जे सत्ता । तो पुरुषु पांडुसुता ।
प्रकृति ते समस्ता । क्रिये नावें ॥ ९६० ॥
बुद्धि इंद्रियें अंतःकरण । इत्यादि विकारभरण ।
आधि तांन्ही गुण । सत्वादिक ॥ ६१ ॥

हा आघवा चि मेलवा । प्रकृती जाला जाणावा ।
हे चि हेतु संभवा । कर्माचेया ॥ ६२ ॥
तेथ इच्छा आणि बुद्धि । घडवी अहंकारोंसिं आदी ।
मग तिया लावीति वेधीं । कारणाचा ॥ ६३ ॥
तें चि कारण टाकावेया । जें सूत्र धरणें उपाया ।
तेया नावं धनंजया । कार्यकारण ॥ ६४ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।

पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

आणि इच्छामदांचां धाविं । लागली मनातें उठवी ।
जें इंद्रिय राहाटवी । तें कर्तृत्व गा ॥ ६५ ॥
ह्यगौनि तीनही इयें जाणा । कार्यकर्तृत्वकारणा ।
प्रकृति मूल हें राणा । सिद्धांचा ह्यणे ॥ ६६ ॥
एवं तिहिंचेनि समवायें । प्रकृति कर्मरूप होये ।
परि जेया गुणां तराये । तेयां चि सारिखें ॥ ६७ ॥
जें सत्वां अधिष्ठिजे । तें सत्कर्म ह्यणिजे ।
रजोगुणें निफजे । मध्यम तें ॥ ६८ ॥
केवल जरि तमें । जियें निफजति कर्म ।
निषिद्धें अधमें । जाणाविं तियें ॥ ६९ ॥
ऐसिं संतासतें । कर्म प्रकृति होतें ।
तेया तव निफजतें । सुखदुःखें गा ॥ ९७० ॥
असतिं दुःख निफजे । सत्कार्मिं सुख उपजे ।
तेयां दोहिंचा बोलिजे । भोगु पुरुषा ॥ ७१ ॥

पुरुषः प्रकृतिस्थोहि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।

कारणं गुणसंगोस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

प्रकृतिपुरुषांची कुलवाडी । सांवतां देखें असंघडी ।
जे आबुली जोडी । आमुला खाये ॥ ७२ ॥

सुखदुःखे जषं वेन्हीं । निफजति साचोकारिं ।
 तवं प्रकृति उद्यमु करी । मग पुरुषु भोगी ॥ ७३ ॥
 आमुलेया आबुलिये । संगति ना सोये ।
 कां आबुलि जग विये । चोज आइकां ॥ ७४ ॥
 अनंगु हा पेंधा । निकवडा नमुधा ।
 जीर्णु अतिवृद्धा । पासौनि वृद्धु ॥ ७५ ॥
 तेया अडिनावं पुरुषु । एन्हविं स्त्री ना नपुंसकु ।
 हें एक ही न्हवे लोकु । प्रकृती तव ॥ ७६ ॥
 अचक्षु अश्रवणु । अहस्तु अचरणु ।
 रूप ना वर्णु । नावं आधि ॥ ७७ ॥
 आगा जेथ काहिं चि नाहिं । प्रकृतिचा भर्ता पाहिं ।
 किं भोगणें ऐसेया ही । सुखदुःखाचें ॥ ७८ ॥
 तो तारि अकर्ता । उदासु अभोक्ता ।
 परि इया चि पतिव्रता । भोगविजे ॥ ७९ ॥
 जियेतें अलुमालु । रूपागुणाचा ढालु ।
 ते भलेतैसा खेलु । लेखा आणी ॥ ९८० ॥
 मा इये प्रकृती तव । गुणमई हें चि नावं ।
 किंनहुना सावेव । गुण ते चि हे ॥ ८१ ॥
 हे प्रकृति क्षणीं नवी । रूपागुणाची आषवी ।
 जडातें ही माजवी । इयेचा माजु ॥ ८२ ॥
 नावें इया प्रसिद्धें । सखेहें इया सखिग्धें ।
 इंद्रियें प्रबुद्धें । इयेचेनि ॥ ८३ ॥
 काइ मन नपुंसक । किं ते भोगी तीन्ही लोक ।
 ऐसेसैं अलौलिक । करणें इयेचें ॥ ८४ ॥
 हे भ्रमाचें महाद्वीप । हे व्यासिचें चि रूप ।
 विकार उमप । इया केले ॥ ८५ ॥

हे कामाची मांडवी । मोहवनिची माधवी ।
 जे प्रसिद्ध दैवी । माया ऐसी ॥ ८६ ॥
 हे वाङ्मयाची वाढि । हे साकारपणा जोडि ।
 प्रपंचाची धाडि । अभंग हे ॥ ८७ ॥
 कला येथौनि जालिया । विद्या इया चि केलिया ।
 इछा ज्ञान क्रिया । वियाली हे ॥ ८८ ॥
 हे नादाची टांकसाल । हे चमत्काराचें वेलाउल ।
 किंबहुना सकल । खेळु इयेचा ॥ ८९ ॥
 हे उत्पत्ति प्रलयो होंत । ते इयेचे सायं प्रात ।
 हें असो आतां बहुत । मोहन हे ॥ ९० ॥
 हे अद्वयाचे दूसरें । हे निःसंगाचें सोयरें ।
 हे निरालोस घरें । नांदति असे ॥ ९१ ॥
 इयेतें एतुले वेऱ्हीं । सौभाग्याची व्याप्ति थोरी ।
 ह्यणौनि तेया आवरी । अनावरातें ॥ ९२ ॥
 तेयाचां तवं ठांड । निपटौनि काहिं चि नाहिं ।
 किं तेया आववें हिं । आपण होये ॥ ९३ ॥
 तेया स्वयंभाची संभूति । तेया अमूर्त्ताची मूर्त्ति ।
 आपण होये स्थिति । ठाउ तेया ॥ ९४ ॥
 तेया अनर्त्ताची आर्त्ति । तेया पूर्णाची तृति ।
 तेया अकुलाची जाति । आपण होये ॥ ९५ ॥
 तेया अचर्चाचिन्ह । तेया अपाराचें मान ।
 तेया अमनस्थाचें मन । बुद्धि होये ॥ ९६ ॥
 तेया निराकाराचा आकार । तेया निर्व्यापाराचा व्यापार ।
 निरहंकाराचा हंकार । होउनि ठाके ॥ ९७ ॥
 तेया अनामाचें नाम । तेया अजन्माचें जन्म ।
 आपण होये कर्म । अक्रिया तेया ॥ ९८ ॥

तेया निर्गुणाचे गुण । तेया अचरणाचे चरण ।
 तेया अश्रवणाचे श्रवण । चक्षु ही होये ॥ ९९ ॥
 तेया भावातीताचे भाव । तेया निरवयवाचे अवयव ।
 किंबहुना होये सर्व । पुरुषाचें हे ॥ १००० ॥
 ऐसें इया प्रकृती । आपुलिया सर्वव्याप्ती ।
 तेया अविकृतातें विकृती । माजि कीजे ॥ १ ॥
 तेथ पुरुषत्व जें असे । तें ये इये प्रकृतिदशे ।
 चंद्रमा अवंसे । पडिला जैसा ॥ २ ॥
 विदल बहू चोखा । मीनलेया वाला एका ।
 कसु होये पांचिका । जिया परीं ॥ ३ ॥
 कां साधुतें गोंदलिं । संचरौनि सुये मेलिं ।
 नाना मुदिनाचां आभालिं । दुर्दिनु कीजे ॥ ४ ॥
 तेथ पय पशुचां पोटीं । कां वन्हि जैसा काधीं ।
 गूड्ढनि घेतला पटीं । रत्नदीपु ॥ ५ ॥
 राजा पराधीनु जाला । सिद्धं रोगें रंधला ।
 तैसा पुरुषु प्रकृती आला । स्वतेजा मुके ॥ ६ ॥
 जागता नरु सहसा । निद्रा पाडौनि जैसा ।
 स्वमिचिया ही सोसा । वश्यु कीजे ॥ ७ ॥
 तैसें प्रकृति जालेपणें । पुरुषा गुण भोगणें ।
 उदासु अंतौरिगुणें । आंतुडविजे ॥ ८ ॥
 तैसें अजा निया होए । आंगिं जन्ममृत्युचे घाए ।
 वाजति जें लाहे । गुणसंगु हा ॥ ९ ॥
 पारि तें ऐसें पांडुसुता । तातलें लोह पीटितां ।
 जेवि वन्हीसी चि घाता । बोलिजति ॥ १०१० ॥
 कां आंदोललेया उदक । प्रतिभा होये अनेक ।
 तें नानात्व ह्यणाति लोकां । चंद्रिं जेवि ॥ ११ ॥

दर्पणाचिया जवळिका । दूजेपण जैसें मुखा ।
 कुंकुमें स्फटिका । लोहित्व होए ॥ १२ ॥
 तैसा गुणसंगमें । हा अजन्मा जन्में ।
 पावतु ऐसा गमे । यन्हविं नाहिं ॥ १३ ॥
 अधमोत्तमा योनी । या ऐसिया मानी ।
 जैसा संन्यासी स्वर्गी । अंत्यु होये ॥ १४ ॥
 ह्यणौनि केवल पुरुषां । नाहिं होणें भोगणें देखां ।
 एथ गुणसंगू चि अशेषा । लागां मूळ ॥ १५ ॥

उपद्रष्टानुमंता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।

परमात्मेति चाप्युक्तो देहेस्मिन्पुरुषः परः ॥ २२ ॥

हा प्रकृती माझि उभा । परि जुइं जैसा बोधंवा ।
 प्रकृति पृथ्वी नभा । तेतुला पाडू ॥ १६ ॥
 प्रकृतिचां तटीं । मेरु हा किरीटी ।
 मांजि विंबे परि लोटीं । लोटों नेणे ॥ १७ ॥
 आणि प्रकृति होये जाये । हा तों असतू चि आहे ।
 ह्यणौनि आब्रह्माचें होए । शासन हा ॥ १८ ॥
 प्रकृति येणें जिये । या सत्ता जग विधे ।
 या लागि इये । वरैतु हा ॥ १९ ॥
 अनंत काल किरीटी । जिया मिलति इया श्रृष्टि ।
 तिया रिगति एयाचां पोटी । कल्पान्तसमई ॥ १०२० ॥
 हा महद्ब्रह्मा गोसांविं । हा ब्रह्मगोल लाववी ।
 अपारपणें मवी । प्रपंचातें ॥ २१ ॥
 पै या देहा माझारि । परमात्मा ऐसी जे परि ।
 बोलिजे ते अवधारिं । एयातें चि ॥ २२ ॥
 अगा प्रकृती परौता । एकु आधि पांडुमुता ।
 ऐसा प्रत्नाडु तो तत्वता । पुरुतु हा पै ॥ २३ ॥

यएवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोपि न स भूयोभिजायते ॥ २३ ॥

जो निखलपणें येणें । पुरुषा तेया जाणे ।
आणि गुणाचें करणें । प्रकृतिचें जें ॥ २४ ॥
हें रूप हे छाया । पैल जल हे माया ।
ऐसें जो धनंजया । निवाडु करी ॥ २५ ॥
तेणें पाडें अर्जुना । प्रकृतिपुरुषविवंचना ।
जेयाचआ मना । गोचर जाली ॥ २६ ॥
तो शरीराचेनि मेलें । करू कां कमें सकलें ।
परि आकाश धूमें न मैले । तैसा असे ॥ २७ ॥
आथिलेनि देहें । नेघेपे देहमोहें ।
देहं गेल्यां नोहे । पुनरपि तो ॥ २८ ॥
ऐसा तेया एकु । उपकार अलौलिकु ।
प्रकृतिपुरुषविवेकु । करी पैं गा ॥ २९ ॥

ध्यानेनात्मनि पश्यति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४ ॥

परि हा चि अंतरिं । विवेकु भानुचिया परी ।
उदैजे ते अवधारीं । उपाये बहुत ॥ १०३० ॥
कोणही एक सूभटा । विचाराचां आगिठां ।
आत्मानात्मकीटा । पुट देउनि ॥ ३१ ॥
सतीस ही वानी भेद । तोडूनियां निर्विवाद ।
निवडीति शुद्ध । आत्मतत्व ॥ ३२ ॥
तेया आपणपेयाचां पोटीं । आत्मध्यानाचेया दीठीं ।
देखति गा किरीटीं । आपणवें ॥ ३३ ॥
आणिक पैं दैवत्रगें । देखति सांख्ययोगें ।
एक ते आंगलगें । कर्माचेनि ॥ ३४ ॥

अन्ये त्वेवमजानंतः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।

ते पि चात्रितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

येणें येणें प्रकारें । निस्तरति साचोकारें ।

हैं भय भाउरें । आघवें चि ॥ ३५ ॥

परि ते करिंति ऐसैं । अभिमानु दवडूनि देसैं ।

एकांचेया विश्वासैं । टेंकति बोला ॥ ३६ ॥

जे हिताहित देखति । हाणि कणवा घेपति ।

पूसौनि सीणु हरिति । देंति सुख ॥ ३७ ॥

तेयांचेनि मुखें निगे । तेतुलें आदरें चांगें ।

आडकौनियां आंगें । मनें होंति ॥ ३८ ॥

तेयां आधिकणेयां चि नावें । ठेविति गा आघवें ।

तेयां आखरांसि जीवें । करिति लोण ॥ ३९ ॥

तेया परीं कपिध्वजा । या मरणार्णवा समजा ।

पासौनि निगति वोजा । गोमटिया ॥ १०४० ॥

ऐसे हे उपाये । बहुवस एथ पाहे ।

जाणावेया होये । एकि वस्तु ॥ ४१ ॥

आतां असो हें बहुत । पैं सर्वार्थांचें मथित ।

सिद्धांतनवनीत । दे३० तुज ॥ ४२ ॥

ऐतुलेनि पांडुमुता । अनुभवु लाहणा आइता ।

येर तवं तुज होंतां । सायास नाहिं ॥ ४३ ॥

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमं ।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥

ह्यणौनि ते बुद्धि रचूं । मतवाद हे खांचूं ।

सोलीवं निर्वचूं । फलितार्थु चि ॥ ४४ ॥

परि क्षेत्रज्ञ एणें बोलें । तुज आपणपें जें दाखविलें ।

आणि क्षेत्र सांधितलें । आववें चि ॥ ४५ ॥

तेषां येरयेरांचां मेलीं । होइजे भूतीं सकळिं ।
 अनिलसंगें सलीलीं । कळोल जैसे ॥ ४६ ॥
 कां तेजा आणि उखरा । भेटि जालेयां वीरा ।
 मृगजलाचेया पूरा । रूप होये ॥ ४७ ॥
 नाना धाराधरधारीं । झलंजली वसुंधरी ।
 उठी जेवि अंकुरीं । नाना विधीं ॥ ४८ ॥
 तैसें चलाचल आघवें । जें काहिं जीउ नावें ।
 तें तो उभययोगें संभवें । ऐसें जाण ॥ ४९ ॥
 एया लागि अर्जुना । क्षेत्रज्ञा प्रधाना ।
 पासौनि न्हवति भिन्ना । भूतव्यक्ती ॥ १०५० ॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठंतं परमेश्वरं ।

विनश्यत्स्वविनश्यंत यः पश्यति स पश्यति ॥२७॥

पै पटुत्व तंतु नोहे । तन्हीं तंतुवें चि तें आहे ।
 ऐसां खोळि डोळां पाहे । ऐक्य हें गा ॥ ५१ ॥
 भूतें आघविं चि होंति । एकाचि एकिं आहाति ।
 पै भूतपतीति । वेगलीक असे ॥ ५२ ॥
 याचि नावें आनानें । अनारिसिं वर्त्तनें ।
 वेख ही सिनाने । आघवेयांचे ॥ ५३ ॥
 ऐसें देखौनि किरीटी । भेदु हान सूंसि पोटी ।
 तरि जन्माचिये आटी । न लाहासि निगों ॥ ५४ ॥
 पै नानाप्रयोजनशीलें । दीघे वक्रें वर्तुलें ।
 होंति येकिचियें फलें । तुंविणिये ॥ ५५ ॥
 होंतु कां उजू वांकुडे । परि वेळिचें हें न मोडे ।
 तैसिं भूतें अवघडें । वस्तू उजू ॥ ५६ ॥
 अंगारकणीं बहुवासिं । उष्णता समान जैसी ।
 तैसा जीवराशी । परेशु असे ॥ ५७ ॥

गगनभीरं धारा । परि पाणी एक वीरा ।
 तैसा या भूताकारा । सर्वांगी तो ॥ ५८ ॥
 हे भूतग्राम विषम । वस्तु येथ सम ।
 घटमठी व्योम । जिया परीं ॥ ५९ ॥
 हा नासतां भूताभासु । एथ आत्मा अविनाशु ।
 जैसा केयूरादिकि कसु । सोनेयांचा ॥ १०६० ॥
 एवं जीवधर्महीनु । जीवांसि अभिनु ।
 जो देखे सुनयनु । ज्ञानियां माझि ॥ ६१ ॥
 ज्ञानाचां डोलां डोलसां । माझि डोलसु तो वीरेशा ।
 हे स्तुति नोहे बहुवसा । भाग्याचा तो ॥ ६२ ॥

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरं ।
 न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिं ॥ २८ ॥
 जें इंद्रियबोकौटी । देहधातुची त्रिकुटी ।
 पांचमेलवेयाची वोखटी । दारुण हे ॥ ६३ ॥
 हे उघडी पांचवेउली । हे पंचधा आंगिं लागली ।
 जीवपंचानना सांपडली । हरिणिकुटी ॥ ६४ ॥
 ऐसां असौनि इये शरीरी । कोणु अनन्यबुद्धीची सूरी ।
 अनित्यभावाचां उदरीं । दाटी चि ना ॥ ६५ ॥
 परि इये देहीं असतां । तो नैये चि आपणपेयां घाता ।
 आणि शोषि पांडुसुता । तेथ मिले ॥ ६६ ॥
 जेथ योगज्ञानाचिया प्रौढी । बोलांझुनि जन्मकोडी ।
 न निगों या भासा बुडी । दैति योगी ॥ ६७ ॥
 जें आकाराचें पैल तीर । तुर्येचें माजिघर ।
 जे नादाची पैल मेर । परब्रह्म जें ॥ ६८ ॥
 मोक्षा सगट गती । जेथें एंति विश्रांती ।
 गंगादि अपांपती । सरिता जेवि ॥ ६९ ॥

तें सुख येणें चि देहें । पाये पाखालणियां लहे ।
 जो भूतवैषम्य नोहे । विषमबुद्धी ॥ १०७० ॥
 दीपाचेया कोडी जैसें । एक चि तेज प्रकाशे ।
 तैसा जो असतू चि असे । सर्वत्र ईशु ॥ ७१ ॥
 तेया समातें पांडुसुता । जीवें जो देखे समता ।
 तो मरणा आणि जीविता । नांगवे फुडा ॥ ७२ ॥
 ह्यणौनि तो दैवांगला । वानित असो वेळेवेलां ।
 साम्यसेजे डोला । लागला जेया ॥ ७३ ॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।

यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ २९ ॥

आणि मनोबुद्धिप्रमुखें । कर्में जियें अशेखें ।
 करी प्रकृति चि जो देखे । साचें जो गा ॥ ७४ ॥
 धरिर्चां चि राहाटति धरीं । घर काहिं न करी ।
 अन्न धावे अंबरीं । अंबर उगें ॥ ७५ ॥
 तैसी प्रकृति आत्मप्रभा । खेले गुणविधा शोभा ।
 येथ आत्मा तो बोथंबा । नेणों कोणु ॥ ७६ ॥
 ऐसेनि एणें निवाडें । जेयाचां जीविं उजिवडे ।
 अकर्तेयातें फुडें । देखिलें तेणें ॥ ७७ ॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।

तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३० ॥

यन्हविं तैं चि अर्जुना । होइजे ब्रह्मसंपन्ना ।
 जैं इया भूताकृती भिन्ना । दासति एकिं ॥ ७८ ॥
 लहरिया जैसिया जालें । परमाणु-कणिका स्थलीं ।
 रश्मिकर मंडळिं । सूर्याचां ॥ ७९ ॥
 नातारि देहिं अवयव । मनिं आघवे भाव ।
 विस्फूर्तिंगि सर्व । वन्हि एकि ॥ १०८० ॥

तैसे भूताकार एकाचे । एथ दृष्टि रिगे जै साचें ।
 तें चि ब्रह्मसंपत्तिचें । तारं लागे ॥ ८१ ॥
 मग जिये तिये कडे । ब्रह्माची दृष्टि उघडे ।
 किंबहुना जोडे । अपार सुख ॥ ८२ ॥
 एतुलेनि तुज पार्था । प्रकृतिपुरुषवेवस्था ।
 ठायें ठाउं प्रतीतिपंथा । माजि जाली ॥ ८३ ॥
 अमृत जैसें ये चूला । निधान जैसें देखिजे डोलां ।
 तेतुला जीवाला । मानावा हा ॥ ८४ ॥
 वांचूनि जालिये प्रतिती । घर बांधणें चिंति ।
 तें आतां ना सुभद्रापति । या वरि ॥ ८५ ॥
 तरि एक दोनि ते बोल । बोलिजति सखोल ।
 देइं मनाची बोल । मग तें घेइं ॥ ८६ ॥
 ऐसें देवें ह्यणितलें । मग बोलें आदरिलें ।
 तेथ अवधानाचें केलें । सर्वांग एरें ॥ ८७ ॥

अनादित्वाच्चिर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।

शरीरस्थोग्नि कौंतेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥

ह्यणे परमात्मा ह्यणिपे । तो ऐसा जाण सरूपें ।
 जलें जलें न सिपे । सूर्यु जैसा ॥ ८८ ॥
 कां जला आधि पाठि । सूर्यु असतू चि किरीटी ।
 माजि बिंबे ते दीठी । आणिकाचिये ॥ ८९ ॥
 तैसा आत्मा देहि । आधि ह्यणिपे हें काहि ।
 साचें तरि नाहि । तो जेथिचा तेथ ॥ १०९० ॥
 आरिसां मुख जैसें । बिंबलेया नावं असे ।
 देहि वसणें तैसें । आत्मतत्व ॥ ९१ ॥
 तेया देहा ह्यणति भेटि । हे सपाइ नीजाव गोठि ।
 वारेयानि बालुवे गांठि । केहि आहे ॥ ९२ ॥

आगि आणि पाँसा । दोरा सुयी जैसा ।
 केउता सांदा आकाशा । पाखारोंसि ॥ ९३ ॥
 एक निगे पूर्वा कडे । एक तें पश्चिमें पडे ।
 तिये भेटिचेनि पाडें । संबंधु हा ॥ ९४ ॥
 उजियडा आंधोरया । जो पाडु मृता उभेया ।
 तो चि गा आत्मेयां । देहा जाण ॥ ९५ ॥
 रात्रि आणि दिवसा । कनका आणि कापुसा ।
 पाडु कां जैसा । तैसा चि हा ॥ ९६ ॥
 हें तवं पांचाचें जालें । कर्माचां गुणिं गुंतलें ।
 भवंतसे चार्किं सूदलें । जन्ममृत्युचां ॥ ९७ ॥
 हे कालानलाचां कुंडीं । घातली लोणियांची उंडी ।
 मासी पांख पाखडी । तवं हे सरे ॥ ९८ ॥
 हें विपाएं आगी पडे । तरि भस्म होनि उडे ।
 जालें श्वाना वरिपडें । तरि ते चि विष्टा ॥ ९९ ॥
 यां चूके दोन्हीं काजां । तरि होये क्रिमिचा पुंजा ।
 ऐसा परिणामु कपिध्वजा । कश्मलु गा ॥ ११०० ॥
 या देहाची हे दशा । आणि आत्मा तो ऐसा ।
 पै सिद्धु नित्यु आपैसा । अनादिपणें ॥ १ ॥
 सकलु ना निष्कलु । अक्रियु ना क्रियाशीलु ।
 कृशु ना स्थूलु । निर्गुणपणें ॥ २ ॥
 आभासु ना निराभासु । प्रकाशु ना अप्रकाशु ।
 अल्पु ना बहुवसु । अरूपपणें ॥ ३ ॥
 रीता ना भरितु । रहितु ना सहितु ।
 मूर्त्तु ना अमूर्त्तु । शून्यपणें ॥ ४ ॥
 आनंदु ना निरानंदु । एकु ना विविधु ।
 मोकला ना वद्दु । अत्मेपणें ॥ ५ ॥

एतुला ना तेतुला । आयिता ना रचला ।
 बोलता ना उगला । अलक्षपणें ॥ ६ ॥
 सृष्टिचां होणां न रचे । सर्वसंहारें न वेचे ।
 आधिनाथि यां दोहीचें । पंचत्व तो ॥ ७ ॥
 मवे ना चर्चे । वाढे ना खांचे ।
 वीढे ना वेचे । अव्ययपणें ॥ ८ ॥
 एवरूपु पै आत्मा । देहिं जे ह्यणति प्रियोत्तमा ।
 तें मठाकारिं व्योमा । नावं जैसैं ॥ ९ ॥
 तैसैं तियाचिये आनाभूती । होंती जाती देहाकृती ।
 तो घे ना सांडी सुमती । जैसा तैसा ॥ १११० ॥
 अहोरात्रें जैसीं । होंति जाति आकाशीं ।
 आत्मसत्ते तैसीं । देहें जाण ॥ ११ ॥
 ह्यणौनि इये शरीरीं । काहिं करवी नां करी ।
 आयितां हिं व्यापारिं । सज्जु नोहे ॥ १२ ॥
 या लागि स्वरूपें । उणा पुरा नेघेपे ।
 हें असो तो न लिपे । देहीं देहें ॥ १३ ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
 सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ ३२ ॥

आगा आकाश कें नाहिं । हें न रिगे चि कव्हणिये ठांड ।
 परि काइसेनि हिं काहिं । गादे चि ना ॥ १४ ॥
 तैसा सर्वत्र सर्वदेहीं । आत्मा असतू चि असे पाहीं ।
 परि संगदोषें एकें हिं । लितु नोहे ॥ १५ ॥
 पुडुतिं पुडुतिं एथें । हें चि लक्षण निरुतें ।
 जें जाणावें क्षेत्रज्ञातें । क्षेत्रविहीना ॥ १६ ॥
 संसर्गें चेतविजे लोहें । परि लोह चि आमक नोहे ।
 क्षेत्रज्ञा आहे । तैसा पाडु ॥ १७ ॥

दीपकाचां अर्चा । राहाटि वाहे घरींची ।
 तन्हीं वेगलीक कोडीची । दीपा घरा ॥ १८ ॥
 असें काष्टाचां पोटीं । वन्हि जैसा किरीटी ।
 काष्ट नोहे या दीठी । पाहिजे जेवि ॥ १९ ॥
 अपाडु नभा आभाला । रवी आणि मृगजला ।
 तैसा चि हा ई डोला । देखावा पै ॥ ११२० ॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ॥
 क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥

हें आघवें चि असो एकु । गगनौनि जैसा अर्कु ।
 प्रकटवी लोकु । नावें नावें ॥ २१ ॥

एथ क्षेत्रञ्चु तैसा । प्रकाशकु क्षेत्राभासा ।
 या वरौतें हें न पुसा । शंका नेषां ॥ २२ ॥
 शब्दतत्त्वसारज्ञा । पै ते चि देखणी प्रज्ञा ।
 जे क्षेत्रा क्षेत्रज्ञा । अपाडु देखे ॥ २३ ॥
 एयां दोहिंचें अंतर । देखावेया चतुर ।
 ज्ञानियांचें दार । आराधिति ॥ २४ ॥
 या चि लागि सुमती । जोडीति तपसंपत्ती ।
 शास्त्रांचीं दुभतीं । पोसिति घरीं ॥ २५ ॥
 योगाचेया आकाशा । बलविजे येवढा विवंसा ।
 याचिया चि आशा । पुरुषासि गा ॥ २६ ॥
 शरीरादि समस्त । मानिताति अंतवंत ।
 जीव संतांचे करित । वाहाणधर ॥ २७ ॥
 ऐसिया ऐसिया परी । ज्ञानाचिया भरोवरी ।
 करूनियां अंतरीं । निरुते होंति ॥ २८ ॥
 मग क्षेत्रक्षेत्रज्ञांचें । ते अंतर देखति साचें ।
 ज्ञानें उन्मेष तेयांचे । वोवाळूं आह्मीं ॥ २९ ॥

आणि महाभूतादिकिं । प्रभेदवेलिं अनेकिं ।
 पसरली असे लटकी । प्रकृति जे हे ॥ ११३० ॥
 ते शुक्नलिकान्यायें । न लगती लागली आहे ।
 हे जैसी तैसी होए । ठाउवें जेया ॥ ३१ ॥
 जैसी माला ते माला । ऐसैं चि देखिजे डोलां ।
 सर्पबुद्धि तवं टवाला । उखी होउनि ॥ ३२ ॥
 कां शुक्तिते शुक्ति । हें साच हे प्रतीति ।
 रूपेयाची भ्रांति । जाउनियां ॥ ३३ ॥
 तैसी वेगली वेगलेपणें । प्रकृति जै अंतष्करणें ।
 देखति ते मी ह्यणें । ब्रह्म होंति ॥ ३४ ॥
 जें आकाश होउनि वाड । जें अव्यक्ताची पैली कड ।
 जें भेटलेयां आहाडबाहाड । पडों नेंदी । ३५ ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा ।

भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदु र्यांति ते परं ॥ ३४ ॥

आकार जेथ सरे । जीवत्व जेथ वीरे ।
 द्वैत जेथ नुरे । अद्वय जें ॥ ३६ ॥
 तें परत्व पार्था । होंति ते सर्वथा ।
 जें आत्मानात्मवेवस्था- । राजहंस ॥ ३७ ॥
 ऐसा जी हा आघवा । श्रीकृष्णें तेया पांडवा ।
 उगाणा दीधला जीवा । जीवाचेया ॥ ३८ ॥
 एरी कलशिचें एरीं । रिचविलें जेया परी ।
 आपणपें तेया हरी । दीधलें तैसैं ॥ ३९ ॥
 आणि कोणा देता कोणु । तो नरु तैसा नारायणु ।
 वारी अर्जुनातें कृष्णु । हा मी ह्यणे ॥ ११४० ॥
 परि असो हें नाथिलें । न पुसतां कां बोलें ।
 किंबहुना दीधलें । सर्वस्व देवें ॥ ४१ ॥

किं तो पार्थु मनीं । आञ्जुइं धणि न मनी ।
 अधिकाधिक उतान्ही । वाढवितु असे ॥ ४२ ॥
 स्नेहाचिया भरोवरी । आबुथिला दीपु घे थोरी ।
 चाड अर्जुनाचां अंतरिं । परिसतां तैसी ॥ ४३ ॥
 येथ सुगरणि उदारें । रसज्ञें जेवण्हारें ।
 मिलति मग अवतरे । हातु जैसा ॥ ४४ ॥
 तैसें जी होंतसे देवा । तेया अवधानाचेया लवलवा ।
 वाखाण चढलें थावां । चौगुणे वेन्हीं ॥ ४५ ॥
 सुवायें मेघु सांवेरे । जैसा चंद्रें सिंधु भरे ।
 तैसा मातला रसु आदरें । श्रोतेयाचेनि ॥ ४६ ॥
 आतां आनंदमय आववें । विश्व चि कीजेल देवें ।
 तें रायें परिसावें । संजयो ह्मणे ॥ ४७ ॥
 एवं जें महाभारतीं । व्यासें अप्रांतमती ।
 भीष्मपार्थि शांतिं । ह्मणितली कथा ॥ ४८ ॥
 तो कृष्णार्जुनसंवादु । नागारिं बोलिं विशदु ।
 सांघों दाउं बंधु । वोवियेचा ॥ ४९ ॥
 नसुदी चि शांतीकथा । आणिले किर वाक्यपथा ।
 परि श्रिंगाराचां माथां । पावो ठेविति ॥ ११९० ॥
 दाउं वेल्हाल देशी नवी । जैसी साहित्यातें वोजावी ।
 अमृता ही चूकि ठेवी । गोडिसेपणें ॥ ५१ ॥
 बोलु वेल्हावितेनि गुणें । चंद्रासि घे उमाणें ।
 रसुभंगु भुलवणें । नादु लोपी ॥ ५२ ॥
 खेचरांचेया ही मना । आणि सात्त्विकाचा पान्हा ।
 श्रवणा सवें सुमना । समाधि जोडे ॥ ५३ ॥
 तैसा वाग्विलासु विस्तारं । गीतार्था विश्व भरं ।
 आनंदाचें आवारं । मांडू जगा ॥ ५४ ॥

फीटो विवेकाची वाणि । हो काना मना जीणि ।
 देखो आवडे ते खाणि । ब्रह्मविद्येची ॥ ५५ ॥
 दीसो परतत्व डोलां । पाहो सुखाचा सोहला ।
 रिगो महाबोधु सुकाला । माजि विश्व ॥ ५६ ॥
 हें निफजे आतां आघवें । ऐसैं बोलिजैल बरवें ।
 जें अधिष्ठली असैं परदेवें । निवृत्ती मीं ॥ ५७ ॥
 ह्यणौनि आखरीं सुभेदिं । उपमाश्लेषकोंदाकोंदी ।
 झाडा देईन प्रतिपदीं । प्रंथार्थासि ॥ ५८ ॥
 हा ठाउ वेरि मातें । पुरतेयां आहे सारस्वतें ।
 केलें असे श्रीमते । गुरुरायें ॥ ५९ ॥
 तेणें जी कृपासावायें । मी बोलें तेतुलें सामाये ।
 आणि तुमचिये सभे लाहें । गीतार्थु ह्यणों ॥ ११६० ॥
 वरि तुह्मां संतांचे पाये । आजि मी पातलां आहे ।
 ह्यणौनि जी नोहे । अटक काहिं ॥ ६१ ॥
 प्रभू काश्मिरिं मूकें । नुपजे जी कवतुकें ।
 नाहिं गुणिं सामुद्रिकें । लक्ष्मीयेसि ॥ ६२ ॥
 तैसी तुह्मां संतां पासिं । अज्ञानाची गोठि काइसी ।
 या लागि नवरसिं । वरिखैन मीं ॥ ६३ ॥
 किंबहुना आघवां । मज अवसरु देयावा ।
 ज्ञानदेउ ह्यणे बरवा । सांघैन प्रंथु ॥ ६४ ॥
 ॐ तत्सदितिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
 योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोगो

नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥

॥ सर्वात्मकश्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



ज्ञानेश्वरी

अध्याय चौदावा

श्रीगणेशायनमः ॥

जय जय आचार्या । समस्तसुरवर्या ।
प्रज्ञाप्रभातसूर्या । सुखोदया ॥ १ ॥
जय जय सर्ववितांबेया । सोहंभावसुहावेया ।
नानालोकहेलावेया । समुद्रा तूं ॥ २ ॥
आइकैं गा आर्त्तबंधू । निरंतरकरुणासिंधू ।
विशदविद्यावधू-। वल्लभा जी ॥ ३ ॥
तूं जेया प्रतिलपसि । तेया जग हें दाविसि ।
प्रकट तैं करिसी । आघवें तूं ॥ ४ ॥
पुढैलां तरि चोरिजे । हा दृष्टिवंधु निफजे ।
नवल लाघव तूजें । घरिचां घरें ॥ ५ ॥
जें तूं चि तूं सर्वां एया । कवणा बोधु कवणा माया ।
ऐसें आपें आपु लाघविया । नमो तूज ॥ ६ ॥
जाणों जर्गी आप वोलें । हें रस जी तुवां केलें ।
तूझेनि क्षेमत्व आलें । पृथिव्येसि ॥ ७ ॥
रविचंद्रादिशक्ति । उदो कारितां त्रीजगती ।
तें तूझिया दीती । तेज तेजां ॥ ८ ॥

चलबलिजे अनिलें । तें देविकेनि जी बलें ।
 नभ तुज माजि खेले । लपीं थपीं ॥ ९ ॥
 किंबहुना माया असोस । ज्ञान तूझेनि डोलस ।
 असो वानणें सायास । श्रुतिसि हे ॥ १० ॥
 वेद जें वानूनि चांग । जवं न दिसे तूजें आंग ।
 मग आह्मा तेया मूग । एकी पांती ॥ ११ ॥
 जी एकार्णवाचां ठांइ । बुडडेयांचा पाडु नाहीं ।
 मग महानदी काई । जाणिजती ॥ १२ ॥
 कां उदैलेयां भास्वतु । चंद्र जैसा खद्योतु ।
 आह्मा श्रुती तुज आंतु । तेतुला पाडु ॥ १३ ॥
 आणि दूजेया थाउ मोडे । जेथ परेसिं वैखरी बुडे ।
 तो तूं मां कवणें तोंडें । वानावासि ॥ १४ ॥
 येया लागि आतां । स्तुति सांडुनि निवांतां ।
 चरणीं ठेविजे माथा । हें चि भलें ॥ १५ ॥
 तरि तूं जो होसि तेया । नमो श्रीगुरुराया ।
 मज ग्रंथउद्यमु फलवेया । वेव्हारा होई ॥ १६ ॥
 आतां कृपाभांडवल सोडीं । भारिं मति माझी पोतडी ।
 करीं ज्ञानपदजोडी । थोर मातें ॥ १७ ॥
 मी सवंसरेनि तेणें । संतांसि करीं कर्णभूषणें ।
 लेववीन सुलक्षणें । विवेकाचीं ॥ १८ ॥
 जी गीतार्थनिधान । काडू माझें मन ।
 सुईं स्नेहांजन । आपुलें तूं ॥ १९ ॥
 हे वागश्रुष्टि येकें वेलें । देखति बुद्धीचे डोले ।
 तैसा उदैजो निर्मलें । कारुण्यबिबें ॥ २० ॥
 माझी प्रज्ञावेलिवें वेल्हाल । काव्यें होंति सुफल ।
 तो वसंतु होई स्नेहाल । शिरोमणी ॥ २१ ॥

प्रमेयमहापुरे । हे मतिगंगा भरे ।
 तैसा वरिष उदारें । दीठिवेनि ॥ २२ ॥
 आगा विश्वैकधामा । तूझा प्रसादु चंद्रमा ।
 करू मज पूर्णिमा । स्फूर्तिची जी ॥ २३ ॥
 जिया पाहिलें मातें । उन्मेखसागरिचें भरितें ।
 वोसंडेल तें । रस-वृत्तिचें ॥ २४ ॥
 तवं तोखौनि गुरुराजें । ह्यणितलें विनतिव्याजें ।
 मांडिलें देखों दुजें । स्तवुं तुवां ॥ २५ ॥
 हें असो आतां वाजटा । तो ज्ञानकर्पूर गोमटा ।
 ग्रंथु दाविं उत्कंठा । भंगों नेंदीं ॥ २६ ॥
 हो कां जी जी स्वामी । हें चि पाहांतु असें मीं ।
 जें श्रीमुखें ह्यणां तुहीं । ग्रंथु सांघें ॥ २७ ॥
 जी दूर्वेचा हीरु । आंगें चि तवं अमरु ।
 वरि आला महापूरु । पीयुषाचा ॥ २८ ॥
 तरि आतां एणें प्रसादें । विन्यासें विदग्धें ।
 मूलशास्त्रपदें । वाखाणीन ॥ २९ ॥
 परि जीवा आंतुली कडे । जैसी संदेहडोणी बुडे ।
 मग श्रवणचाडे । आवाडि दीसे ॥ ३० ॥
 तैसां बोलीं साचारिं । अवतरो माझी माधुरी ।
 मालें मागैन घरीं । गुरुकृपेचां ॥ ३१ ॥
 तरि मागां त्रयोदर्शीं । अध्याइं गोठि ऐसीं
 जें श्रीकृष्णु अर्जुनेंसीं । संवादले ॥ ३२ ॥
 जें क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोगें । होइजे यें जगें ।
 आत्मा गुणसंगें । संसारिया ॥ ३३ ॥
 आणि हा चि प्रकृतिगतु । सुखदुःखभोगीं हेतु ।
 अथवा गुणातीतु । केवळु हा ॥ ३४ ॥

तरि कैसा यां असंगा संगु । कोणु तो क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोग ।
 मुखदुःखादि भोगुं । केवि तेया ॥ ३५ ॥
 गुण ते कैसे केती । बाधति कवणां रीती ।
 नातरि गुणातीतीं । चिन्हु काई ॥ ३६ ॥
 एवं येया आघवेया । अर्था रूप करावेया ।
 विषो एथ चौदावेया । अध्यायासि ॥ ३७ ॥
 तरि तो चि आतां ऐसा । प्रस्तुतु परियसां ।
 अभिप्रा३० विश्वेशा । वैकुंठाचा ॥ ३८ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमं ॥

यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥

तो हणो गा अर्जुना । अवधानांची सर्व सेना ।
 मेलउनियां ज्ञाना । झोंबावें हो ॥ ३९ ॥
 आर्क्षिं मागां बहृतिं । दाविलें तुज उपपतीं ।
 आहुइं प्रतीती । कुंसि न निगे ॥ ४० ॥
 हणौनि गा पुढुतीं । सांघिजैल प्रतिपत्ती ।
 परि हणहणों श्रुती । डाहारिजे जें ॥ ४१ ॥
 एन्हांवें ज्ञान हें आपुलें । परि पर हें ऐसें जालें ।
 जें अवर घेतलें । स्वर्गादि एणें ॥ ४२ ॥
 एणें चि गा कारणें । हें सर्वां उपरि मीं हणें ।
 तें वन्हि यें तृणें । एरें ज्ञानें ॥ ४३ ॥
 जियें स्वर्गादि तें जाणति । याग चि चांग हणति ।
 पारखि फुडी आधि । भेदीं जेयां ॥ ४४ ॥
 तियें आघवीं चि ज्ञानें । केलीं एणें स्वप्नें ।
 जैसे वातोर्मि गगनें । गीलिले आधि ॥ ४५ ॥

कां उदितै रश्मिराजै । लोपतीं चंद्रादि तेजै ।
 नाना प्रलयांबुमाजै । नदीनद ॥ ४६ ॥
 तैसै हें पाहालेयां । अज्ञानजात जाये लया ।
 ह्यणौनि धनंजया । उत्तम हें ॥ ४७ ॥
 अनादि जे मुक्तता । आपुली जे पांडुसुता ।
 तो मोक्षु हाताड्गता । होये जेणें ॥ ४८ ॥
 येयाचिया प्रतीती । विचारविरिं समस्तीं ।
 नैदिजे चि संश्रुती । माथा उधों ॥ ४९ ॥
 मनं मन घाळूनियां मागें । विश्रांति जालेयां आंगें ।
 देहीं देहा जोगे । होती चि ना ॥ ५० ॥
 मग देहाचें वेलें । उळांडूनि येकें वेलें ।
 समतूर्कां काटालें । मसीं जाले ॥ ५१ ॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ॥
 सर्गोपि नोपजायंते प्रलये न व्यथंति च ॥ २ ॥

जे माक्षिया नित्यता । नित्य ते पांडुसुता ।
 परिपूर्ण पूर्णता । माक्षिया चि ॥ ५२ ॥
 मी जैसा अनंतानंदु । जैसा चि सत्वसिद्धु ।
 तैसा चि तेया भेदु । उरे चि ना ॥ ५३ ॥
 जें मीं जेवडें जैसैं । तें चि ते जाले तैसैं ।
 घटभंगीं घटाभासैं । आकाश जेवि ॥ ५४ ॥
 नातरि दिवा मुकुलिकीं । दीपशिखा अनेकीं ।
 मीनलेयां अवलोकीं । जैसैं होये ॥ ५५ ॥
 अर्जुना तिया परीं । सरळीं द्वैताची वारी ।
 नांदो नामार्थ एकाहारी । आर्ही ते ही ॥ ५६ ॥
 एणें चि पै कारणें । जें पहिलें शृष्टिजुंणें ।
 तें तेयां होणें । पडे चि ना ॥ ५७ ॥

सृष्टिचिये सर्वादी । जेयां देहाची नाहिं बाधी ।
 तें कैचे प्रलयाधी । निमतील पां ॥ ५८ ॥
 ह्यणौनि जन्मक्षयां । अतीत ते धनंजया ।
 मी जालां ज्ञाना येया । अनुसरौनि ॥ ५९ ॥
 ऐसी ज्ञानाची गोडी । वानिली देवें आवडी ।
 तेविं चि पार्था सिचडी । लावावेया ॥ ६० ॥
 तवं तेया जालें आन । सर्वांगिं निगाले कान ।
 सपाई अवधान । पातला तो ॥ ६१ ॥
 आतां देवाचेया ऐसें । जाकलिजत वोरसें ।
 निरूपण आकाशें । वेंटाले ना ॥ ६२ ॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहं ॥

संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

तो ह्यणे गा प्रज्ञाकांता । आजि उजळेली वागतृता ।
 जें बोला एवडा श्रोता । जोडलासि ॥ ६३ ॥
 तरि एकु मीं अनेकां । गोविजे देहपाशकां ।
 त्रिगुणलुब्धकां । कवणी परीं ॥ ६४ ॥
 कैसा क्षेत्रयोगें । विद्ये येणें जगें ।
 तें परियस सांघों वेगें । कोण आतां ॥ ६५ ॥
 पै क्षेत्र येणें व्याजें । हें या चि लागि बोलिजे ।
 जें मत्संगवीजें । भूतीं पिके ॥ ६६ ॥
 आणि महद्ब्रह्म । हें इये ऐसें नाम ।
 जें महदादिविश्राम— शालिका हे ॥ ६७ ॥
 विकारां बहुसै थोरी । अर्जुना हे चि करी ।
 ह्यणौनि अवधारीं । हें महद्ब्रह्म ॥ ६८ ॥
 अव्यक्तवादमती । अव्यक्त ऐसी वदती ।
 सांख्याचिया प्रतीती । प्रकृति हे चि ॥ ६९ ॥

वेदांतीं यातें माया । ह्यणिजे प्रज्ञाराया ।
 केती बोलों वायां । अज्ञान हें गा ॥ ७० ॥
 भ्रापुला आपणेयां । विसरु जो धनंजया ।
 तें गा रूप येया । अज्ञानांसि ॥ ७१ ॥
 आणिक ही येक असे । जें विचारा वेगलें न दिसे ।
 वाती पाहातां जैसें । आंधारों कां ॥ ७२ ॥
 हालविलेयां जाये । निश्चल तरि राहे ।
 दूधीं जैसी साये । दूधा चि तत्र ॥ ७३ ॥
 पै जागरु ना स्वप्न । स्वरूप ना अवस्थान ।
 ते सुश्रुति घन । जैसी होये ॥ ७४ ॥
 कां न वियतां वायुतें । वांझें आकाश रीतें ।
 तेया ऐसें निरुतें । अज्ञान गा ॥ ७५ ॥
 पैलु खांबु कां पुरुषु । ऐसा निश्चयो नाहिं येकु ।
 काइ नेणों अवलोकु । देखतसे ॥ ७६ ॥
 तेवि वस्तु जैसें असे । तैसें किर न दिसे ।
 पारि काहिं अनारिसें । देखिजे ना ॥ ७७ ॥
 नां राति ना तेज । तिये संधी जैसी सांज ।
 तेवि विरुद्ध ना नीज । ज्ञाना आथि ॥ ७८ ॥
 ऐसी कोण्ही येकि दशा । तिये वादु अज्ञान ऐसा ।
 तिया गुंडाललिया प्रकारा । क्षेत्रबु नावं ॥ ७९ ॥
 अज्ञान थोरिये आणिजे । आपणपें तरि नेणिजे ।
 तें रूप जाणिजे । क्षेत्रज्ञाचें ॥ ८० ॥
 हा चि उभययोगु । बुझैं बाण चांगु ।
 सत्तेचा नैसर्गु । स्वभाउ हा ॥ ८१ ॥
 भातां अज्ञानां सारिखें । वस्तु आपणपेयातें देखे ।
 परि रूपें अनेकें । नेणों कोणें ॥ ८२ ॥

जैसा रंकु भ्रमला । हणो जा रे मी रा३० आलां ।
 कां मूर्छीतु गेला । स्वर्गलोका ॥ ८३ ॥
 तेवि लचकलिया दीठी । देखणें जें जें उठी ।
 तेयां नावं श्रृष्टी । मी वियें गा ॥ ८४ ॥
 हे चि आनी भ्रांती । प्रमेय उपलउं पुडुतीं ।
 तारि तूं प्रतीती । इयाचि घेइं ॥ ८५ ॥

सर्वयोनिषु काँतेय मूर्त्तयः संभवन्ति याः ॥
 तासां ब्रह्म महद्योनि रहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

तारि माझी घरणी । अनादि तरुणी ।
 अर्वाच्य गुणी । अविद्या पै ॥ ८६ ॥
 माझेनि चि आंगें । पड्डल्यां हे जागे ।
 आणि सत्तासंभोगें । गुर्विणी होये ॥ ८७ ॥
 महद्ब्रह्मउदरीं । प्राकृतें आठें विकारीं ।
 गर्भाची करी । पेलोवेली ॥ ८८ ॥
 इये नाहिं हें चि रूप । ठाणें हें उमप ।
 निद्रितां समीप । चेंतां दूर ॥ ८९ ॥
 पै उभयसंगु पहिलें । बुद्धित्वें उमले ।
 बुद्धित्वें भारेलें । होये मन ॥ ९० ॥
 तारुण्यता मनाची । अहंकारत्व रची ।
 तेणें महाभूतांची । अभिव्यक्ति होये ॥ ९१ ॥
 आणि विषयइंद्रियां गोसी । स्वभावे तरि भूतांसि ।
 हणौनि येंति सरिसीं । त्यें हीं रूपा ॥ ९२ ॥
 जालेनि विकारक्षोभें । पाठिं गुणाचेनि उभे ।
 येवं संपूर्ण जे गर्भें । वायें ठा३० ॥ ९३ ॥
 रुखाचा ये वांका । जैसी कां बीजकणिका ।
 जीविं बांधे उदका । भेटतखे३० ॥ ९४ ॥

तैसी माझेनि संगें । अविद्या नाना जगें ।
 आरवों लागे । आपणपां चि ॥ ९५ ॥
 मग गर्भगोला तेया । कैसी रूपसै ये आया ।
 परियसैं राया । सजनाचेया ॥ ९६ ॥
 पै अंडज स्वेदज । जारज उद्धीज ।
 उमटति सहजं । अवेव हे ॥ ९७ ॥
 व्योमवायुवसैं । वांटलेनि गर्भरसैं ।
 मणिजु उससे । अवेवु तो ॥ ९८ ॥
 पोटीं सूनि तमरजें । आगलिका तोय तेजें ।
 उठितां निफजे । स्वेदज गा ॥ ९९ ॥
 आपपृथ्वीउत्कटें । आणि तमोमात्रें निक्कटें ।
 स्थावरु उमटे । उद्धीजु हा ॥ १०० ॥
 पांचां पांच विरजीं । होंति मनवुध्यादि सहजीं ।
 आणि इये चि जारजीं । ऐसैं जाणें ॥ १ ॥
 ऐसे हे सरल । करचरणतल ।
 महाप्रकृति स्थूल । तें चि शिर ॥ २ ॥
 प्रवृत्ती पेललें पोटा । निवृत्ति ते पाठि नीटा ।
 सुरयोनि आंगें आठ । ऊर्ध्वाचीं ॥ ३ ॥
 कंडु उल्हासता स्वर्गु । मृत्युलोकु मध्यभागु ।
 अधोदेशु चांगु । नितंबु तो ॥ ४ ॥
 ऐसैं लेंकरुं एक । प्रसवली हे देख ।
 जेयाचे तीन्ही लोक । बालसैं गा ॥ ५ ॥
 चौरासी लक्ष योनी । तियें कांडीं पेरी संधानी ।
 वाढे प्रतिदीनी । बालक हें ॥ ६ ॥
 नाना देह अवेवीं । नामाचीं लेणीं लेववी ।
 मोहो स्तनें वाढवी । नीचनवेनि ॥ ७ ॥

सृष्टी वेगलवेगलिया । त्या चि करां आंगुलिया ।
 भिन्ना अभिमाना सूदलिया । मुदिया तेथ ॥ ८ ॥
 हें एकलौतें चराचर । अविचारतें सुंदर ।
 प्रसवौनि थोर । थोरावली ॥ ९ ॥
 पै ब्रह्मा प्रातःकाल । विष्णु तो मध्यान्हवेळु ।
 सदाशिव उवीळु । बालका येया ॥ ११० ॥
 महाप्रलयसेजें । खेलौनि आलें नीजे ।
 विषमज्ञानें उमजे । कल्पोदई ॥ ११ ॥
 अर्जुना इया परीं । मिथ्यादृष्टिचां घरीं ।
 युगावृत्तिचीं करी । चोजवाउलें ॥ १२ ॥
 संकल्पु याचा इष्टु । अहंकारु तो नीकटु ।
 जें होये तें सेवटु । ज्ञानें येया ॥ १३ ॥
 आतां असो बहू बोली । ऐसें विश्व माया व्याली ।
 तेथ चांग जाली । माझी सत्ता ॥ १४ ॥
 येया कारणें मी पिता । महद्ब्रह्म माता ।
 अपत्य हा पांडुसुता । जगडंबरु ॥ १५ ॥
 आतां शरीरे बहुतें । देखौनि न भेदें हो चित्तें ।
 जें मनबुद्धिभूतें । एकें ययां ॥ १६ ॥
 हांगा एकी चि देहीं । काइ आनारिसे अवेव नाहिं ।
 तेवि विचित्र विश्व पाहीं । एक चि हें ॥ १७ ॥
 पै उंचा नीचा डाहालिया । विषमा वेगळालिया ।
 एका चि जेवि जालिया । बीजाचिया ॥ १८ ॥
 आणि संबंधु तो ही ऐसा । मृन्मयो घटु कां जैसा ।
 कां पटत्व कापुसा । आंतु होये ॥ १९ ॥
 नाना कळोलपरंपरा । संतति जैसी सागरा ।
 आत्मा आणि चराचरां । तैसा पाडु ॥ १२० ॥

ह्यगौनि वन्हि ज्वाल । दोन्ही वन्ही चि केवल ।
 तेवि मी गा हें सकल । समंधु वाउ ॥ २१ ॥
 जालेनि जगें मी झाकें । तारि जगत्वं कोणु फाकें ।
 कीलेवारि माणिकें । लोपिजे काइ ॥ २२ ॥
 कां अलंकारत्व आलें । आणि सोनेपण काइ गेलें ।
 किं कमलत्व फांकले— । पणें जाये ॥ २३ ॥
 सांघ पां धनंजया । अवेवी अवेवीया ।
 आछादिजे किं तेया । तें चि रूप ॥ २४ ॥
 विरूढलेयां जोन्हला । कणिसांचां निर्वाला ।
 वेचला कां आगला । दीसतसे ॥ २५ ॥
 ह्यगौनि जग परौतें । साखुनि पाहिजे मातें ।
 तैसा न्हवे उखितें । आघवें चि मीं ॥ २६ ॥
 हा तूं साचोकारा । निश्चयाचा खरा ।
 गांठि बांध पां वीरा । जीवाचिये ॥ २७ ॥
 आतां मियां मज दाविलां । शरीरीं वेगलालां ।
 गुणीं मीं चि बांधलां । एसा आवडें ॥ २८ ॥
 जैसें स्वप्नीं आपण । उठौनि आत्ममरण ।
 भोगिजे गा जाण । कपिध्वजा ॥ २९ ॥
 कां कवलातें डोले । प्रकाशुनि पीवलें ।
 देखति तें हीं कले । तेयांसी चि ॥ १३० ॥
 नाना सूर्य प्रकारें । प्रकटी तें अन्न भासे ।
 तो लोपला हें इं दीसे । सूर्ये चि ॥ ३१ ॥
 पै आपणपेनि जालियां । छाया गा आपुलिया ।
 भीउनि मियालियां । आवडिजे ॥ ३२ ॥
 तैसीं इयें नाना देहें । दाउनि मीं नाना होयें ।
 एथ ऐसा वंध आहें । तें हीं देखें ॥ ३३ ॥

बद्ध कां न बंधिजे । जाणणें मज माझें ।

हैं नेणणेनिउपजे । आपुलेनि ॥ १३४ ॥

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥

निबध्नति महाबाहो देहे देहिनमव्ययं ॥ ५ ॥

तरि कोणें गुणें कैसा । मज चि मीं बद्ध ऐसा ।

आवडे तें परियसां । अर्जुनदेवा ॥ ३५ ॥

गुण ते किधर्म । काइ येया नाम ।

कें जाले हें वर्म । अवधारिजो ॥ ३६ ॥

तरि सत्वरजतम । तीवासि हें चि नाम ।

आणि प्रकृति जन्म- । भूमि येयां ॥ ३७ ॥

तत्र सत्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयं ॥

सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥ ६ ॥

तेथ सत्व तें उत्तम । रज तें मध्यम ।

तिहिं माझि तम । सवियां धारें ॥ ३८ ॥

हैं एकी चि वृत्तिचां ठाईं । त्रिगुणत्व आलें पाहीं ।

वयसात्रय देहीं । एकिं जेवि ॥ ३९ ॥

कां मीनलेनि कीडें । जवं जवं तूंक वाढे ।

तवं तवं सोनें पडे । पांचिकां कसीं ॥ १४० ॥

पें सावधपणें जैसें । वाहविलें आलसें ।

सुशुप्ति बैसे । घणावौनि ॥ ४१ ॥

तैसी अज्ञानांगिकारें । निगाली वृत्ति विस्तारे ।

तें सत्वरजद्वारें । तम हीं होए ॥ ४२ ॥

अर्जुना गा जाण । येया नावं गुण ।

आतां दाउं खुण । बांधती ते ॥ ४३ ॥

तरि क्षेत्रज्ञदशे । आत्मा मोटका प्रवेशे ।

हैं देह मी ऐसें । मुहूर्त्त करी ॥ ४४ ॥

आजन्ममरणातीं । देहधर्मसमस्तीं ।
 ममत्वाची सूती । घे ना जवं ॥ ४५ ॥
 जैसे मीनाचां तोंडीं । पडे ना जवं उंडी ।
 तवं गलु आसुडी । जलवारधी ॥ ४६ ॥
 तेवि सत्वं लुब्धकें । सुखज्ञानाचीं पाशिकें ।
 बोद्धिजतां खुडुके । जैसा मृगु ॥ ४७ ॥
 मग ज्ञानें चडफडी । सुख वरिं खुरखोडी ।
 स्वयंसुख हें धाडी । हातिचें गा ॥ ४८ ॥
 तेव्हलि विद्यामानें तोखे । लाभमात्रें हरिखे ।
 मी संतुष्टु हें इं देखे । श्लाघों लागे ॥ ४९ ॥
 ह्यणे भाग्य ना माझे । आजि सुखियें नाहिं दूजें ।
 विकारें फुंजे । सात्त्विकाचेनि ॥ १५० ॥
 आणि येणें हिं न सरे । लांकण लागे दुसरें ।
 जें विद्वत्तेचें भरे । भूत आंगीं ॥ ५१ ॥
 आपण चि ज्ञान आहे । तें गेलें हें दुःख नोहे ।
 किं त्रिषयज्ञानें होये । गगना एवडा ॥ ५२ ॥
 रा३० जैसा स्वप्नीं । रंकपणें रिगाला धानी ।
 तो गोमटेनि एकें मानी । इंद्र ना मीं ॥ ५३ ॥
 तैसें गा देहातीता । जालेयां देहवतां ।
 हों लागे पांडुसुता । बाह्यज्ञानें ॥ ५४ ॥
 प्रवृत्तिशास्त्रें बुझे । यज्ञविद्या उमजे ।
 किंबहुना मुजे । स्वर्गु वेंरीं ॥ ५५ ॥
 आणि ह्यणे आजि आन । मी वांचूनि नाहिं सज्ञान ।
 चातुर्यचंद्रगगन । माझे चित्त ॥ ५६ ॥
 ऐसें सत्व सुखज्ञानीं । जीवांसि लाउनि कान्ही ।
 बैलाची करी वानी । पांगुलाचेया ॥ ५७ ॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवं ॥
तन्निबध्नाति कौंतेय कर्मसंगेन देहिनं ॥ ७ ॥

आतां हा चि शरीरीं । रजें जिया परीं ।
बांधिजे तें अवधारीं । सांधिजैल ॥ ५८ ॥
हें जीवीं मोटकें रिगे । आणि कामाचां मार्गीं लागे ।
मग वारेया वलघे । तृष्णेचिया ॥ ५९ ॥
हें रज यया चि कारणें । जें जीवातें रंजों जाणे ।
अभिलाखाचें तरुणें । सबाह्य गा ॥ १६० ॥
आबुथुनि आगियालें । वज्राग्नीतें सांदुकिलें ।
आतां बहू धेकुलें । आहे तेथ ॥ ६१ ॥
तैसी खवलली चाड । होये दुःखा सकट गोड ।
इंद्रश्री ही सांकड । गमों लागे ॥ ६२ ॥
तिया तृष्णा वाढिनलिया । मेरु ही हाता आलेयां ।
ह्मणे वलघों एकादेया । दारुणा हीं ॥ ६३ ॥
आजि असतें वेचिजैल । तारि पाहे काइ कीजैल ।
ऐसा पांगीं वडील । व्यवसाय गा ॥ ६४ ॥
जीविताची कुरवंडी । वोवाळुं लागे कवडी ।
मानी तृणाचिया जोडी । कृतकृत्यता ॥ ६५ ॥
ह्मणे स्वर्गा हान जावें । तारि काइ तेथ खावें ।
यया लागि धांवे । याग करूं ॥ ६६ ॥
व्रता पाठिं व्रतें । आचरे इष्टापूर्तें ।
काम्यें वांचूनि हातें । सीवे चि ना ॥ ६७ ॥
ग्रीष्मांतिचा वारा । विसर्वां नेणे वीरा ।
तैसा न ह्मणे व्यापारां । राति दि३० ॥ ६८ ॥
काइ चंचलु मासा । कामिनीकटाक्षु काइसा ।
वलढा होये तैसा । बीजु नाहिं ॥ ६९ ॥

तेतुलेनि गा वेगें । स्वर्गसंसारुपांगें ।
 आगी माजि रिगे । क्रियेचिया ॥ १७० ॥
 ऐसा देहीं देहा वेगला । ले तृष्णेचिया सांखला ।
 टोपु वाहे गलां । व्यापाराचा ॥ ७१ ॥
 हें रजोगुणाचें दारुण । देहिं देहियासि धारण ।
 परियसां विंदाण । तमाचें तें ॥ ७२ ॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनां ॥
 प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निवध्नाति भारत ॥ ८ ॥

व्यवहाराचे ही डोले । मंद जेणें पडलें ।
 मायारात्रिचें कालें । मेहुडें जें ॥ ७३ ॥
 अज्ञानाचें जियालें । जेया येका लागलें ।
 जेणें विश्व मुळलें । नाचत असे ॥ ७४ ॥
 अविवेकमहामंत्र । जें मौढ्यमयाचें पात्र ।
 हें असो मोहनास्त्र । जीवासि जें ॥ ७५ ॥
 पार्था तें गा तम । रचूनि ऐसें वर्म ।
 चौखुरी देहात्म । मानीयातें ॥ ७६ ॥
 हें ये विकारि शरीरीं । माजों लागे चराचरीं ।
 आणि तेथ दुसरी । गोठी नाहिं ॥ ७७ ॥
 सर्वेद्रियां जाड्य । मना माझि मौढ्य ।
 माल्हांत दाढ्य । आलस्याचें ॥ ७८ ॥
 आंगमोडामोडी । कार्यजातां अनावडी ।
 नुसंते परिवडी । जाभैयांची ॥ ७९ ॥
 उघडिया चि दीठी । देखणें नाहि किरीटी ।
 नालवितां उठी । ओह्वा हणौनि ॥ १८० ॥
 पडिलिये ढोंडी । कोण कानी मुरडी ।
 तिया चि परिवडी । टलों नेणें ॥ ८१ ॥

पृथ्वी पाताला जा३० । कां आकाश वारि ए३० ।
 परि उठावें ऐसा भा३० । मनी नाहिं ॥ ८२ ॥
 उचितानुचित आववें । ज्ञासुरतां हिं जीवें ।
 तेथिचा तेथ लोलावें । ऐसी मेघा ॥ ८३ ॥
 उभूनि करतलें । पडिघाये कपोलें ।
 पायांचें सिरालें । मांडूं लागे ॥ ८४ ॥
 आणि निद्राविषिं चांगु । जीवीं आथि लागु ।
 झोंपिं जातां स्वर्गु । वा३० झणे ॥ ८५ ॥
 ब्रह्मायुषां होइजे । मग निजैलेयां चि असिजे ।
 हें वांचूनि दूजें । व्यसन नाहीं ॥ ८६ ॥
 वाटे जातां वुगें । कल्हातां हीं डोलें लागे ।
 अमृत ही परि नेघे । जरि नीद ए ॥ ८७ ॥
 तेविं चि आक्रोशबलें । व्यापारें कोणहीं वेले ।
 तरि निगालें आंघळें । रोसैं जैसैं ॥ ८८ ॥
 केधवां कैसैं राहाटावें । कोणेंसिं काड् बोलवें ।
 हें टाकतें किं नांगवे । काहिं चि नेणे ॥ ८९ ॥
 वणवा मियां आववा । पाखें चि पूसूनु नेयावा ।
 पतंगु इया हावां । घाली जेवि ॥ १९० ॥
 तैसा बळघे सहसा । अकारणीं धिवंसा ।
 किंबहुना ऐसा । प्रमादु रुचे ॥ ९१ ॥
 एवंच निद्राबालस्यप्रमादीं । तम इहिं त्रिविधिं ।
 देहिं बांधे निरुपाधी । चोखटातें ॥ ९२ ॥

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ॥

ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥

जैसा बन्दि काठीं भरे । तै दीसे काष्टाकारें ।

ब्योम घटें आवरे । तें घटाकारा ॥ ९३ ॥

नाना सरोवर भरलें । तेथ चंद्रत्व बिबलें ।
 गुणाभासि बांधलें । ऐसें गमे ॥ ९४ ॥
 परिहरौनि कफवात । जें देहीं आटोपे पित्त ।
 तैं करी संतप्त । देह जेवि ॥ ९५ ॥
 कां वर्षातिं जैसे । जीणौनि शीत चि दीसे ।
 तेव्हलि होये हींवा ऐसें । आकाश हें ॥ ९६ ॥
 नाना स्वप्न जाग्रती । लोपूनि ये सुषुप्ती ।
 तै क्षणु येकु धृती । तें चि होये ॥ ९७ ॥
 तैसीं रजतमें हारवी । जें सत्व माजु मिरवी ।
 तैं जीवा करवि. क्षणवी । सुखिया नार्मी ॥ ९८ ॥
 तैसैं चि सत्व रज । लोपूनि तमा भोज ।
 वलघे तैं सहज । प्रमादिए होए ॥ ९९ ॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत ॥

रजस्सत्वंतमश्चैव तमः सत्वं रजस्तथा ॥ १० ॥

तिया चि गा परिपाटी । सत्वतमातें पोटी ।
 घालूनि जेव्हां उठी । रजोगुणु ॥ २०० ॥
 तेव्हलां कमें वांचूनि काहीं । आन सौंदर चि नाहीं ।
 ऐसें मानी देहीं । देहराजु ॥ १ ॥
 पै रजतमविजैयें । सत्व गा देहीं इये ।
 वाढतां चिन्ह तिंयें । ऐसीं होंति ॥ २ ॥

सर्वद्वारेषु देहेस्मिन्प्रकाश उपजायते ॥

ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्वमित्युत ॥ ११ ॥

जें प्रज्ञा आंतुलीकडे । न समांत बाहिरि वीसंडे ।
 वसंतिं पद्मखंडें । द्रुति जेवि ॥ ३ ॥
 सर्वेद्रियां आंगणीं । विवेकु करी रावणी ।
 साच चि करचरणीं । होंति डोले ॥ ४ ॥

राजहंसा पुढें । चांचु वेंची आगरडे ।
 तोडी जेवि झगडे । क्षीरानिराचे ॥ ५ ॥
 तेवि दोषादोषविवेकीं । इंद्रियें चि होंति पारखीं ।
 नियमु बा रे पाइकी । उलगे तें ॥ ६ ॥
 नाइकर्णें तें कानू चि वाली । न पाहाणें तें दीढी चि गाली ।
 अवाच्य तें तें टाली । जीभ चि गा ॥ ७ ॥
 वाती पुढां जैसैं । पलों लागे कालवखें ।
 निषिद्ध इंद्रियां तैसैं । समोर नोहे ॥ ८ ॥
 धाराधरकालें । महानदी उचंबले ।
 तैसी बुद्धि पघले । शास्त्रजातीं ॥ ९ ॥
 आगा पूर्णमेचा दिसिं । चंद्रप्रभा आकाशिं ।
 ज्ञानवृत्ति तैसी । फांके सैव ॥ १० ॥
 वासना एकावटे । प्रवृत्ति वोहटे ।
 मन वावटे । सुखा वरि ॥ ११ ॥
 एवं सत्व वाढे । तैं हें चिन्ह फुडें ।
 आणि निधन हीं घडे । तेव्हलां जारि ॥ १२ ॥
 तारि जैं चि घरि संपत्ति । तैं चि उदार मनोवृत्ति ।
 मां परत्र आणि कीर्त्ति । होये पै गा ॥ १३ ॥
 कां पाहालेनि सुयाणें । जालेयां परगुणें ।
 पढियतें ये पाहुणे । स्वर्गोनियां ॥ १४ ॥
 मग गोमटेया तेया । जावलि आशे धनंजया ।
 तेवि सत्वीं जाणें देहियां । कें आधि गा ॥ १५ ॥
 जें परगुणीं उद्भट । घेउनि सत्व चोखट ।
 नीगे सांडूनि कोंपट । भोगक्षाम हें ॥ १६ ॥
 अवचटें ऐसा जो जाये । तो सत्वाचा चि नत्रा होये ।
 किंवहुना जन्म लाहे । ज्ञानियां माझि ॥ १७ ॥

सांघ पां धनुर्द्धरा । रा३० रायेपर्णे डोंगरा ।
 गेल्या अपुरा । होये काइ ॥ १८ ॥
 नातारि एथिचा दीवा । नेला सेजेया गावां ।
 तो तेथ तरि पांडवा । दीपू चि किं ॥ १९ ॥
 तैसी तेथ सत्वशुद्धी । आगळें ज्ञानासि उधी ।
 तरंगा३० लागे बुद्धी । विवेका वारि ॥ २२० ॥
 पै महदादिपरिपाटी । विचारुनु सेवटीं ।
 विचारा सकट पोटीं । जिरे जेया ॥ २१ ॥
 सत्तिसां सत्ततिसांवे । चोविस पंचविसांवे ।
 तिहिं पुरौनि स्वभावें । चतुर्थ जें ॥ २२ ॥
 ऐसैं सर्व जें सर्वोत्तम । जाळें असे सुगम ।
 तेया सर्वें निरूपम । लाहे देह ॥ २३ ॥

लोभः प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमस्पृहा ॥

रजस्येतानि जायंते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥

मग इया चि परीं देख । तमसत्वा अधोमुख ।
 बैसौनि जें आगलीक । धरी रज ॥ २४ ॥
 आपुलेया कार्याचा । धुमाडु गाविं देहाचां ।
 माजवी तें चिन्हाचा । उदो ऐसा ॥ २५ ॥
 पांजरली कां वाडुटली । करी वेगळ वेटाली ।
 तैसी विषइ सरळी । इंद्रियां होये ॥ २६ ॥
 परदारादि करावें पडे । परि विरुद्ध ऐसैं नावडे ।
 मन सेलियेचेनि तोंडें । सैघ चारी ॥ २७ ॥
 हा ठावो वेन्हीं छोभु । करी स्वैरत्वाचा राबु ।
 वेटालितां अलाभु । तें तें उरे ॥ २८ ॥
 आणि आड पडिलेयां । उद्यमजातां भलेतेया ।
 प्रवृत्ति धनंजया । हातु न कढी ॥ २९ ॥

तेषां चि एकाधा प्रसादु । कां करावा अश्वमेधु ।
 ऐसा अचाटू चि संदू । घेउनि उठी ॥ २३० ॥
 नगरें चि रचावीं । महावनें चि लालावीं ।
 जलाशयें निर्मावीं । नानाविधें ॥ ३१ ॥
 ऐसैसां अफांटीं कर्मी । समारंभ-उपक्रमीं ।
 आणि दृष्टादृष्टकामीं । पुरें नाहीं ॥ ३२ ॥
 सागरु ही सांडी पडे । आंगिं न लाहे तीनि कवडे ।
 ऐसैं अभिलाषीं जोडे । दुर्भरत्व ॥ ३३ ॥
 स्पृहा मनां पुढपुढां । आशेचा घे दवडा ।
 विश्व घापे चाडा । पायां तळीं ॥ ३४ ॥
 इत्यादि वाढतां रजीं । इयें चिन्हें होंति सहजीं ।
 आणि ऐसेया माझि । वेचे जरि ॥ ३५ ॥
 तारि आघवां इहीं । परिवारला देहीं ।
 रिगे परिं योनी हीं । मानुषे चि ॥ ३६ ॥
 मुरुवाडेंसि भिखारी । वसो पां राजपुरीं ।
 तन्हीं तो काइ अवधारीं । राउ होईल ॥ ३७ ॥
 बैलासि कडबाडें । हें न चुके गा फुडें ।
 नेइजो पां वन्हडें । भले तैसां ॥ ३८ ॥
 हणौनि व्यापारा हातीं । उकळु दिहा ना राती ।
 तैसेयांचिये पांती । जुंपिजे तो ॥ ३९ ॥
 कर्मजडांचां टांडें । किंबहुना होये देहीं ।
 जो रजोवृद्धिचां डोही । बुडौनि निमे ॥ २४० ॥

अप्रकाशो प्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ॥
 तमस्येतानि जायंते विवृद्धे कुरुनंदन ॥ १३ ॥

मग तैसा चि पुडुती । रजा सत्ववृत्ती ।
 गीदनि जै ये उजनी । तमोगुणु ॥ ४१ ॥

तैं जियें लिंगें । देहाचें सबाह्य सांघे ।
 तें परियस चांगें । श्रोत्रबलें ॥ ४२ ॥
 तरि ऐसें होये मन । जैसें रविचंद्रें हीन ।
 रातिचें गा गगन । अवसेचिये ॥ ४३ ॥
 तैसें अंतर असोस । होये स्फूर्तिहीन उद्वस ।
 विचाराची भास । हारपे तैं ॥ ४४ ॥
 बुद्धि मेचुवे ना ढोंडी । हा ठाऊं मौवाले सांडी ।
 आठउ देशघडी । जाळा दीसे ॥ ४५ ॥
 अविवेकाचेनि माजें । सपाई शरीर गाजे ।
 एकलेनि घेपे दीजे । मौढ्यें तेथ ॥ ४६ ॥
 आचारभंगाचीं हाडें । रूपति इंद्रियां पुढें ।
 मरे जरि तेणें कडें । क्रिया जाये ॥ ४७ ॥
 पै आणिक ही एक दीसे । जे दुष्कृतीं चित्त उसासे ।
 आंधारीं देखणें जैसें । डुडुळांचें ॥ ४८ ॥
 निषिद्धाचेनि नावें । भलेतें हीं भरें हांवे ।
 तिये विधिं धावे । घेंति करणें ॥ ४९ ॥
 मदिरा नेघतां द्रुले । सन्निपातें विण बोले ।
 निःप्रेमें चि भूले । पीसैं जैसें ॥ २५० ॥
 चित्त तरि गेलें आहे । परि उन्मनी ते नोहे ।
 ऐसें माह्वांथिलें मोहें । माजिरेनि ॥ ५१ ॥
 किंबहुना ऐसींऐसीं । चिन्हें गा तमा पासीं ।
 जें वाढे आइतिसिं । आपुलिया ॥ ५२ ॥
 आणि हें चि वायप्रसंगें । मरणाचें जरि खागें ।
 तरि तेतुलेन हीं निगे । तमेंसिं तो ॥ ५३ ॥
 राई रायिपण बीजीं । सांटौनि आंग ल्यजी ।
 मग विरूढे तैं दूजी । गोठि आहे ॥ ५४ ॥

पैं होउनि दीपकलिका । एरु आगि विज्ञो कां ।
 ते लागैल तेथ असिका । तो चि आहे ॥ ५५ ॥
 ह्यणौनि तमाचिथे लोथे । बांधौनियां संकल्पार्ते ।
 देह जाये मागुते । तमाचें होये ॥ ५६ ॥
 आतां काइ येणें बहुवें । तो तमोवृद्धी मृत्यु लाहे ।
 तो पशु कां पक्षा होये । झाड क्रिमि ॥ ५७ ॥

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ॥
 तदोत्तमविदाल्लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

येणें चि कारणें । जें निफजे सत्वगुणें ।
 तें सुकृत ऐसें ह्यणे । श्रौतसमो ॥ ५८ ॥
 ह्यणौनि तेया निर्मळ । सुखज्ञानीं सरळ ।
 अपूर्व एक फल । सात्विक तें ॥ ५९ ॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ॥
 तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

मग राजसा क्रिया । तिया इंद्रावणी सांसिनलिया ।
 जें सुखें चितारूनियां । फलति दुःखें ॥ २६० ॥
 कां निबोलियेचें पीक । वरि गोड आंतु विष ।
 तैसें राजस देख । क्रियाफल ॥ ६१ ॥
 तामस कर्म तेतुकें । अज्ञानफलें चि पीके ।
 विपांकुर विषें । जिया परीं ॥ ६२ ॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्विकं निर्मलं फलं ॥
 रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलं ॥ १६ ॥

ह्यणौनि वा रे अर्जुना । एथ सत्व चि हेतु ज्ञाना ।
 जैसा कां दिना । सूर्य हा ॥ ६३ ॥
 आणि तैसें चि हें जाण । लोभासि रज कारण ।
 आपुलें विस्मरण । द्वैता जेवि ॥ ६४ ॥

मोहो अज्ञाना प्रमादा । एयां मिलालेयां दोषवृंदां ।
 पुडुतीं पुडुतीं प्रबुद्धा । तम चि मूल ॥ ६५ ॥
 ऐसें विचाराचां डोलां । तीन्हीं गुण हे वेलोवेलं ।
 पाहिजे जैसा आवला । तलहातिचा ॥ ६६ ॥

सत्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ॥
 प्रमादमोहौ तमसो भवतोज्ञानमेवच ॥ १७ ॥

तवं रजतमें दोन्हीं । देखिलीं प्रौढें पतनीं ।
 आणि सत्व वांचूनि नेनीं । ज्ञानाकडे ॥ ६७ ॥
 ह्यणौनि सात्विकी चि वृत्तीं । एक जाले जन्मव्रतीं ।
 सर्वत्यागें चतुर्थीं । भागवत जैसे ॥ ६८ ॥
 तैसे सत्वाचेनि नडनाचें । असणें जाणें तेयांचें ।
 ते तनूत्यागीं स्वर्गिचे । राये होंति ॥ ६९ ॥
 इया चि परी पै रजें । जिहिं कां जीजे मरिजे ।
 तिहिं मनुष्यां होइजे । मृत्युलोकिं ॥ ७० ॥
 तेथ सुखदुःखाचें खिचटें । जेविजे येकें चि ताटें ।
 जेथ इये मरणवटे । पडिलें नूठीं ॥ ७१ ॥
 आणि तिया चि स्थिती तमीं । जे वाढौनि मोडौनि क्षमीं ।
 ते घेंति नरकभूमी । मूलपत्र ॥ ७२ ॥
 एवं वस्तुचिया सत्ता । त्रिगुणासि पांडुसुता ।
 दाविली साकार्यता । आघवी चि हे ॥ ७३ ॥

ऊर्ध्वं गच्छति सत्वस्था मध्ये तिष्ठति राजसाः ॥

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छति तामसाः ॥ १८ ॥

पैं वस्तु वस्तुत्वे असिकें । तें आपण चि गुणां सारिखें ।
 देखौनि कार्यविशेषें । अनुकरे गा ॥ ७४ ॥
 जैसें कां स्वर्गीं पारिवाजें । जें रा३० मी हें देखिजे ।
 तें हारि जैत होइजे । आपण चि ॥ ७५ ॥

तैसैं मध्य ऊर्ध्व अध । हे जे गुणत्रिभेद ।
 ते वृत्ती वांचूनि शुद्ध । वस्तु चि असे ॥ ७६ ॥
 पारि हे वाहणी असो । तर्हीं तुज आन न दीसो ।
 परियसैं ते सांघतसों । मागिलि गोठि ॥ ७७ ॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ॥

गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽग्निगच्छति ॥ १९ ॥

तारि ऐसैं निजनिजें । सामर्थ्ये तीन्हों सहजें ।
 होंति देहन्याजें । गुण चि हे गा ॥ ७८ ॥
 इंधनाचेनि आकारें । अग्नि जैसा अवतारे ।
 कां आवगे तरवरें । भूमिरसु ॥ ७९ ॥
 नाना दहियांचेनि मीसैं । परिणामे दूध जैसैं ।
 कां मूर्त्त होये ऊंसैं । गोडी जेवि ॥ ८० ॥
 तैसैं हें सांतष्करण । देह चि होंति गुण ।
 ह्यणौनि बंधा कारण । घडे किर ॥ ८१ ॥
 पारि चोज हें धनुर्द्धरा । जें येवडां इये गुंपिरां ।
 मोक्षाचा संवसारा । गुणा न्हेवे ॥ ८२ ॥
 गुण आपुलालेनि धर्में । देहिचें माधुतसाउमैं ।
 चालितां न खोमे । गुणातीतता ॥ ८३ ॥
 ऐसी मुक्ति असे सहज । आतां परियसों तुज ।
 तें तूं ज्ञाना बुझ । द्विरेफु किं ॥ ८४ ॥
 आणि गुणीं गुणां जोगें । चैतन्य नोहे हें मागें ।
 बोलिलें तें खागें । तेवि चि हें ॥ ८५ ॥
 तारि पार्थतें ऐसैं । बोधलेनि जीवें दीसे ।
 स्वप्न कां जैसैं । चेइलेनि ॥ ८६ ॥
 नातारि आपणपें जलीं । बिंबलें तीरींहुनि कली ।
 चटन होंत कल्लोलीं । अनेकधा ॥ ८७ ॥

कां नटलेनि लाघवें । नटु जैसा न झंकवे ।
 तैसे गुणजात देखवे । न्हवौनियां ॥ ८८ ॥
 रितुत्रय आकाशें । धरुनियां जैसैं ।
 नेंदिजे चि येॐ वासैं । वेगलेपणें ॥ ८९ ॥
 तैसे गुणं गुणां परौतें । जें आपणपें असे आइतें ।
 तिये अहं बैसे अहंते । मूलिके चि जैं ॥ २९० ॥
 तैं तेथौनि मग पांतां । ह्यणे साक्षी मी अकर्ता ।
 हे गुण चि क्रियाजाता । नियोगी ना ॥ ९१ ॥
 सत्वरजतमाचां । भेदीं पसरु कर्माचा ।
 होंतसे तो गुणाचा । विकारु हा ॥ ९२ ॥
 एया माझि मीं ऐसा । वनीं कां वसंतु जैसा ।
 वनलक्ष्मीविलासा । हेतुभूत ॥ ९३ ॥
 कां तारागणीं लोपावें । सूर्यकांतें उद्दीपावें ।
 कमलीं विकाशावें । जावें तमें ॥ ९४ ॥
 इयें कोण्हाचीं काजें कहीं । सविता जैसीं नाहीं ।
 तैसा अकर्ता मीं देहीं । सत्तारूपु ॥ ९५ ॥
 मी दाउनि गुण देखें । गुणता हे मियां पोखे ।
 एयाचेनि निःशेषें । उरे तें मीं ॥ ९६ ॥
 ऐसेनि विवेकें जेया । उदौ होये धनंजया ।
 ये गुणातीतत्व तेया । ऊर्ध्वपथें ॥ ९७ ॥
 आतां निर्गुण असे आणिक । तें तो जाणे हें अचूक ।
 जें ज्ञान केलें ठीक । तेया चि वारि ॥ ९८ ॥
 किंबहुना पांडुमुता । ऐसा तो माझिया सत्ता ।
 पावे जैसी सरिता । सिंधुत्व गा ॥ ९९ ॥
 नालिके वरौनु उठिला । जैसा शुक्रु शाखे बैसला ।
 तैसा मूलअहंते ठेला । तो ह्यणौनि ॥ ३०० ॥

आगा अज्ञानांचिया नीदा । घोरतु होंता तत्वधा ।
 तो सस्वरूपिं प्रबोधा । चेइला किं ॥ १ ॥
 पै बुद्धिभेदाचा आरिसा । तेया हातूनि पडिला वीरेशा ।
 ह्यणौनि प्रतिमुखाभासा । मूकला तो ॥ २ ॥
 देहाभिमानाचा वारा । आतां वाजों ठेला वीरा ।
 तें एक्यवीचिसागरा । जीवेशा होये ॥ ३ ॥
 ह्यणौनि मद्भावेंसिं । पाविजे तेणें सारिसिं ।
 वरिषांतिं आकाशीं । घनें जेवि ॥ ४ ॥
 तेवि मी होउनि निरुता । मग देहीं चि इये असतां ।
 नांगवे देहसंभूतां । गुणासि तो ॥ ५ ॥
 जैसा भिंगाचेनि घरें । दीपप्रकाशु नावरे ।
 कां न विझे चि सागरें । वडवानलु ॥ ६ ॥
 तैसा आलां गेलां गुणांचा । बोधु न मैले तेयाचा ।
 तो देहीं जैसा व्योमिचा । चंद्र जळीं ॥ ७ ॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ॥

जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोमृतमश्नुते ॥ २० ॥

तीन्ही आपुलिया प्रौढी । देह नाचवीति बागडी ।
 तो पाहों न धडी । अहंतेतें ॥ ८ ॥
 हा ठाऊ वेन्हीं । निहटौनि गेला अंतरीं ।
 आतां काइ वर्ते शरीरीं । कांहीं नेणे ॥ ९ ॥
 सांडूनि आंगिची खोली । सर्पु रिगालेयां पाताळीं ।
 ते त्वचा कोण सांभाली । तैसें जालें ॥ ३१० ॥
 कां सोरभ्यजीर्णु जैसा । आमोदु मीळौनियां आकाशा ।
 माघारा कमळकोशा । ऐ चि ना ॥ ११ ॥
 पै सस्वरूपसमरसें । तेया ही गा जालें तैसें ।
 तेथ किंधर्म हें ऐसें । नेणे देह ॥ १२ ॥

ह्यणौनि जन्मजरामरण । इत्यादि साई गुण ।
 ते देहीं चि ठेले कारण । नाहीं तेया ॥ १३ ॥
 घटाचिया खापरिया । घटाचां भार्गीं फोडिलेयां ।
 मा आकाश आपैसेया । जालें चि असे ॥ १४ ॥
 तैसी देहबुद्धि जाये । जें आपणपें आठौ होये ।
 तें आन काहिं आहे । तें वांचूनि ॥ १५ ॥
 येणें थोरें बोधलेपणें । तेया गा देहीं असणें ।
 ह्यणौनि तो मी ह्यणें । गुणातीतु ॥ १६ ॥
 येया देवाचेया बोला । पार्थु अति सुखावला ।
 मेवें संबोखिला । मयूरु जैसा ॥ १७ ॥

अर्जुन उवाच ॥

कैलिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ॥

किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्त्तते ॥ २१ ॥

तेणें तोषें वीरु पूसे । जी कोणी चिन्ह तो दीसे ।
 जेया माझि वसे । ऐसा बोधु ॥ १८ ॥
 तो निर्गुणु काइ आचरे । कैसेनि गुण निस्तरे ।
 सांधिजो हें माखेरें । कृपेचेनि ॥ १९ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पांडव ॥

न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥ २२ ॥

येया अर्जुनाचेया प्रश्ना । तो पड्डुणाचा राणा ।
 परिहार आकर्णा । बोलतु असे ॥ २२० ॥
 ह्यणे हे पार्था तूझी नवाई । येतुलें चि पूससी काई ।
 वें नावं चि तेया पाई । साचळ टकें ॥ २१ ॥

गुणातीतु जेया नावं । तो गुणाधीनु तरि न्हवे ।
 मा होये तरि नांगवे । गुणा येयां ॥ २२ ॥
 परि आधीनु कां नांगवे । हे चि कैसेनि जाणावें ।
 गुणाचिये उरवरेवे । माझि असतां ॥ २३ ॥
 हा संदेहो जरि वाहांसी । तरि सुखें प्रसों लाहासि ।
 परियस आतां तेयासि । रूप करुं ॥ २४ ॥
 तरि रजाचेनि माजें । देहिं कर्माचें आणोजें ।
 प्रवृत्ती जें घेइजे । वेंटाद्धनि ॥ २५ ॥
 तें मीं चि ना कर्मठु । ऐसा नैये श्रीमाठु ।
 कां दरिद्रबुद्धी वीटु । तो ही नाहिं ॥ २६ ॥
 अथवा सत्वे चि अधिकें । जें सर्वेद्रीं ज्ञान फांके ।
 तें सुविद्यता न तोखे । उभजे ही ना ॥ २७ ॥
 कां वाढिनलेनि तमें । गीलेजे मोहभ्रमें ।
 तें अज्ञानत्वे श्रमे । घेणें हिं नाहिं ॥ २८ ॥
 पै मोहाचां अवसरीं । ज्ञानाची चाड न धरी ।
 ज्ञानों कमें नादरी । होंतां ना दुःखी ॥ २९ ॥
 सायंप्रातमध्यान्ह । येयां तीहीं कालांची गणना ।
 नाहिं जेवि तपना । तैसा असे ॥ ३० ॥
 तेया वेगळें चि काइ प्रकाशे । ज्ञानित्व येयावें असे ।
 काइ जळार्णउ पाउसैं । साजा होए ॥ ३१ ॥
 नां प्रवर्तलेनि कमें । कर्मित्व तेया कां गमे ।
 साचें हिमवंतु हीमें । कांपे काइ ॥ ३२ ॥
 नातरि मोहो आलेयां । काइ पां रुसिजैळ तेया ।
 हांगा आगितें उन्हालेया । जालवतसे ॥ ३३ ॥
 तैसैं गुणकार्य हें । आघवें आपण चि आहे ।
 झणौनि येकैक नोहे । ताडातांडि ॥ ३४ ॥

येवढिया गा प्रतीती । तो देहा आळा असे वस्ती ।
वाटे जातां गुंती । माझि जैसा ॥ ३५ ॥

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ॥
गुणा वर्त्तत इत्येवं योवतिष्ठति नैंगते ॥ २३ ॥

तो जीणता ना हारवी । तैसा गुण न्हवे ना करवी ।
जैसी कां सोणवी । संग्रामीं तैसा ॥ ३६ ॥
आणि गुणाचां यावाजावा । टले चले ना पांडवा ।
मृगजलाचा हेलावा । मेरु जैसा ॥ ३७ ॥
हें बहू काड बोलिजे । व्योमें वारेनि न वचिजे ।
कां सूर्यु न गिलिजे । अंधकारें ॥ ३८ ॥
स्वप्न गा जेया परीं । जागतेयातें न सिंतरी ।
गुणिं तैसा अवधारीं । न चलिजे तो ॥ ३९ ॥
गुणा फिर नातुडे । परिं दूरौनि पाहे जें कोडें ।
तैं गुण देखे सांघडे । सभ्यु जैसा ॥ ३४० ॥
सत्वधर्म सात्विकीं । रज तें रजोविशेषीं ।
तम मोहादिकीं । वर्त्तत असे ॥ ४१ ॥
परिं माक्षिया सत्ता । इया गुणक्रिया समस्ता ।
हें फुडें जाणे सविता । लौकिका जेवि ॥ ४२ ॥
समुद्र चि भरति । सोमकांत चि द्रवति ।
कुमुदें पसरति । चंद्रु तो उगा ॥ ४३ ॥
कां वारा चि वाजे वीझे । गगनें निश्चलां असिजे ।
तैसा गुणान्निये गजबजे । डोले ना जो ॥ ४४ ॥

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्रमकांचनः ॥

तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥

अर्जुना येणें लक्षणें । तो गुणातीतु गा जाणणें ।
परिस आतां आचरणें । तेयाचिं तियें ॥ ४५ ॥

तरि बल्लासि पाठीपोटी । नाहिं सूत वांचूनि किरीटी ।
 तैसेनि सुये दीठी । चराचरां ॥ ४६ ॥
 झणौनि सुखदुःखा सरिसं । कांटाळें आचरे ऐसें ।
 रिपुभक्तां जैसें । हरिचें देणें ॥ ४७ ॥
 यन्हविं तन्हीं साहाजें । सुखदुःख तें चि व्यंजे ।
 देहजलीं होइजे । मासली जैसी ॥ ४८ ॥
 आतां तें तवं तेणें सांडिलें । आहे सस्वरूपें चि मांडिलें ।
 सस्यांतीं निवडिलें । बीज जैसें ॥ ४९ ॥
 कां ॐघु सांडूनि गंगा । रिगाली समुद्राचेया आंगा ।
 ते निस्तरे लगबगा । खलालांची ॥ ३५० ॥
 तेवि आपणपें चि जेया । वास्ति जाली गा धनंजया ।
 तेया देहीं आपैसेया । सुख तैसें दुःख ॥ ५१ ॥
 रात्रि तैसें पाहाळें । हें धारणा जेवि एक जालें ।
 आत्मारामा देहा आळें । द्वंद्व तैसें ॥ ५२ ॥
 पैं निद्रिताचेनि आंगेंसि । सांपु तैसी उर्वशी ।
 तेवि स्वरूपस्था सरिसीं । देहीं द्वंद्वें ॥ ५३ ॥
 झणौनि तेयाचां ठांडं । सेणां सोनेयां विशेषु नाहिं ।
 रत्ना गुंडेया काहिं । नेणिजे भेदु ॥ ५४ ॥
 घरा येॐ पां स्वर्गु । कां वरिपडो वाधु ।
 परि आत्मबुद्धिसंभोगु । विरसु नोहे ॥ ५५ ॥
 निवटलें नुपडुडे । जलिनलें न विरुढे ।
 साम्यबुद्धि न मोडे । तिया परीं ॥ ५६ ॥
 हा ब्रह्मा ऐसेनि स्तुतिजो । कां नीचु झणौनि निंदिजो ।
 परि नेणे जलों विज्ञों । राख जैसी ॥ ५७ ॥
 तैसा निंदा आणि स्तुती । नैये कोणही चि व्यक्ती ।
 नाहिं आंधारेया वाती । सूर्या रूप ॥ ५८ ॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ॥

सर्वारंभपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

ईश्वरबुद्धी पूजिला । चोर हणौनि गाजिला ।
 वृषगर्जा वेशिला । केला रा३० ॥ ५९ ॥
 मुद्दद पासिं आले । अथवा वैरी वर जाले ।
 परि नेणे रात्रि पाहलें ॥ तेज जेवि ॥ ३६० ॥
 षडरितू येतां आकाशें । लिंपिजे चि ना जैसैं ।
 तेवि वैषम्य मानसैं । जाणिजे चि नां ॥ ६१ ॥
 आणिकु ही येकु पाहीं । आचार तेयाचां ठांड ।
 तारे व्यापारां नाहीं । जालें दीसे ॥ ६२ ॥
 सर्वारंभा उटकलें । प्रवृत्तिचें तेथ मावले ।
 जलति कां कर्मफलें । तें तें चि योजी ॥ ६३ ॥
 दृष्टदृष्टचेनि नावें । भा३० चि जीविं नुगवे ।
 सेविजे स्वभावें । पै तें होये ॥ ६४ ॥
 सुखा ना सीणु नेणे । पाखाणु जेणें मानें ।
 तैसी सांडिमांडि मनें । वर्जिली असे ॥ ६५ ॥
 आतां केती हा चि विस्तार । जाणें ऐसा आचार ।
 तेयातें तो चि साचार । गुणातीतु ॥ ६६ ॥
 गुणातें अतिक्रमणें । घडे उपायें जेणें ।
 तो आतां आइक हणें । कृष्णनाथु ॥ ६७ ॥

मां च योव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ॥

स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥

तारं व्यभिचाररहितें । भक्तियोगें मातें ।
 सेवी तो गुणातें । जाकलूं सके ॥ ६८ ॥
 परि कोणु मी कैसी भक्ति । व्यभिचारा काइ व्यक्ति ।
 हे आववी चि निरुति । होआवी लागे ॥ ६९ ॥

तरि पार्था परियसां । मीं तवं एथ ऐसा ।
 रत्नीं कीलाउ० जैसा । रत्न चि तो ॥ ३७० ॥
 कां द्रवपण चि नीर । अवकाशू चि अंबर ।
 गोडी ते चि साकर । दोनि नाहिं ॥ ७१ ॥
 बन्दि ते चि जाल । दला चि नावं कमल ।
 रूंसु ते चि डाहाल- । फलादिक ॥ ७२ ॥
 आगा हीं आलिखलें । तें हिमवंतु जेवि जालें ।
 नाना दूध मुरालें । दध्याकारें ॥ ७३ ॥
 तैसें विश्व एणें नावें । हें मिं चि पै आघवें ।
 आतां चंद्रबिंब सोलावें । न लगे जेवि ॥ ७४ ॥
 घृताचें थिनलेपण । न मोडितां घृत चि जाण ।
 कां नाटितां कांकण । सोनें चि तें ॥ ७५ ॥
 नुकळितां पट्ट । तंतू चि आहे स्पष्ट ।
 नवा विरचता घट्ट । पृथ्वी न्हवे ॥ ७६ ॥
 झणौनि विश्वपण जावें । मग मातें घेयावें ।
 तैसा न्हवे आघवें । सकट चि मीं ॥ ७७ ॥
 ऐसेनि मातें जाणजे । तें जाणीवभक्ति हाणजे ।
 एथ भेट्टु काहिं देखिजे । व्यभिचारु तो ॥ ७८ ॥
 येया कारणें भेदातें । सांडूनि अखंडें चित्तें ।
 आपणेयां सकट मातें । जाणावें गा ॥ ७९ ॥
 पार्था सोनेयां टीक । सोनां चि लागली देख ।
 तैसें आपणपें आणिक । मानावें ना ॥ ३८० ॥
 तेजाचा तेजौनि निगाला । परि तेजो असे लागला ।
 तेया रस्मी ऐसा भला । बोधु होआवा ॥ ८१ ॥
 पै परिमाणु भूतलीं । हिमकणु हिमाचलीं ।
 मज माक्षि निहालीं । आहे तैसें ॥ ८२ ॥

हो कां तरंगु लाहानु । परि सिंधुसिं नाहिं भिन्नु ।
 तैसा ईश्वरीं मां आनु । नोहें चि नां ॥ ८३ ॥
 ऐसेनि गा समरसें । दृष्टि जैं उल्हासे ।
 ते पै भक्ति ऐसें । आक्षिं ह्यणों ॥ ८४ ॥
 आणि ज्ञानाचें चांगावें । इये चि दृष्टी नावें ।
 योगाचें हिं आघवें । सर्वस्व हें ॥ ८५ ॥
 सिंधू आणि जलधरा । माक्षि लागलिया जेवि धारा ।
 तैसी वृत्ति वीरा । प्रवर्त्ते ते ॥ ८६ ॥
 कां कुहेंसिं आकाशा । तोंडिं सांदा नाहिं जैसा ।
 तो परमरसु तैसा । एकवटे ॥ ८७ ॥
 पै प्रतिबिंबौनि बिंब वेरीं । प्रभेची जैसी उजिरी ।
 ते सोहंदृत्ति अवधारीं । तैसी होये ॥ ८८ ॥
 ऐसेनि मग परस्परें । ते सोहंदृष्टि जैं अवतरे ।
 तैं तिये ही सकट सरे । आपैसेया ॥ ८९ ॥
 जैसा सेंधवाचा रवा । सिंधू माक्षि पांडवा ।
 विरालेयां विरावा । हें इं ठाके ॥ ९० ॥
 नातरिं जाळनि तृण । वन्हि वीझे आपण ।
 तैसें भेदु नासूनि जाण । ज्ञान घडे ॥ ९१ ॥
 माझे पैलपण जाये । भक्तु हें अइळ ठाए ॥
 अनादि ऐक्य जें आहे । तें चि निवडे ॥ ९२ ॥
 आतां गुणातीतु तें किरीटी । जाण इया न्हवति गोठी ।
 जें एकपणा ही मीठी । पडों सरली ॥ ९३ ॥
 किंबहुना ऐसी दशा । तें ब्रह्मत्व गा सुदंसा ।
 हें तो पावे जो ऐसा । मातें भजे ॥ ९४ ॥
 पुडुतीं इहीं लिंगीं । भक्तु जो माझा जर्गी ।
 हे ब्रह्मता तेया लागि । पतिव्रता ॥ ९५ ॥

जैसें गंगेचेनि उभें । ढलमलीत जें निगे ।
 सिंधुपद तेया जोगें । आन नाहीं ॥ ९६ ॥
 तैसा ज्ञानाचिये दीठी । जो मातें सेवी किरीटी ।
 इये ब्रह्मतेचां मुगुटीं । चूडारत्न तो ॥ ९७ ॥
 येया ब्रह्मत्वासी चि पार्था । सायुज्य ऐसी व्यवस्था ।
 येया चि नावं चौथा । पुरुषार्थु गा ॥ ९८ ॥
 परि माझे आराधन । ब्रह्मत्वीं होये सोपान ।
 येथ मीं हान साधन । गमैल हें ॥ ९९ ॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ॥
 शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य च ॥ २७ ॥

तरि ज्ञनें ऐसें । तूझां चित्तीं प्रवेशे ।
 पै ब्रह्म आन असे । मीं वांचूनि ॥ ४०० ॥
 पै मंडल आणि चंद्रमा । दोनि न्हवति सुवर्मा ।
 तैसा मज आणि ब्रह्मा । भेदु नाहीं ॥ १ ॥
 आगा नित्य जें निष्कंप । अनत्रत धर्मरूप ।
 मुख जें उमप । अद्वैत जें ॥ २ ॥
 विवेकु आपुलें काम । सांडूनि ठाकिजे धाम ।
 तें निकर्षाचें निःसीम । किंबहुना मीं ॥ ३ ॥
 ऐसेंऐसें हें अवधारां । अनन्याचा तो सोयरा ।
 सांघतसे धनुर्द्धरा । पार्थासि ॥ ४ ॥
 तेथ धृतराष्ट्र ह्मणे । संजया हें तूतें कवणें ।
 पूसिलें पै वायाणें । कां गा बोलिल्लासि ॥ ५ ॥
 माझी अवसरार्चिता फेडीं । साधें विजयाची गुढी ।
 तवं येरु ह्मणे सांडीं । हे गोठि आतां ॥ ६ ॥
 संजया विस्मयो मानसीं । मग आहा करुनि स्वशरीरेंसि ।
 ह्मणे कैसा पै देवेंसां । द्वेषु एया ॥ ७ ॥

तन्हीं कृपालु तो तुष्टो । विवेकु यया घोटो ।
 मोहाचा फीटो । माहारोगु ॥ ८ ॥
 संजया ऐसें चिंतितां । संवादु तो चि भावितां ।
 हर्षाचा येतु चित्ता । महापूरु ॥ ९ ॥
 ह्यणौनि आतां तेणें । उत्साहाचेनि अवतरणें ।
 श्रीकृष्णाचें बोलणें । सांघिजैल तेया ॥ ४१० ॥
 तेयां अक्षरां आंतूलु भाउ । पाववीन मी तुमचा ठाउ ।
 आइकां ह्यणे ज्ञानदेउ । निवृत्तिचा ॥ ४११ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां

योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभाग-

योगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

श्रीकृष्णे सर्वात्मनीश्वरेर्पणमस्तु ॥



ज्ञानेश्वरी

अध्याय पंधरावा

श्रीगणेशायनमः ॥

आतां हृदय हें आपुलें । चौफळौनि भलें ।
वरि बैसउं पाउलें । श्रीगुरुचीं ॥ १ ॥
ऐक्यभावाची आंजुळि । सर्वेद्रियकुडूमळि ।
भरौनि पुण्यांजलि । अर्घ्य देउं ॥ २ ॥
अनन्योदकधुवट । वासना जे तनिष्ठ ।
तें लागलेंसे अबोट । चंदनाचें ॥ ३ ॥
प्रेमाचेनि भांगारें । निर्वाद्यनि नेपुरें ।
लेवउं सुकुमारें । पदें तियें ॥ ४ ॥
घनावलि आवडी । अव्यभिचारें चौखडीं ।
तियें घाळं जोडीं । आंगुळिया ॥ ५ ॥
आनंदमोदबहल । सात्विकाचें मुकुल ।
तें उमळलें अष्टदल । ठेउं वरि ॥ ६ ॥
तेथ अहंधूपु जाळूं । सोहंतेजें उवाळूं ।
सामरस्य पोटाळूं । निरंतर ॥ ७ ॥
माझि तनु आणि प्राण । इया दोन्ही पाउवां लेवउं श्रीचरण ।
करूं भोगमोक्षीं निब्रलोन । पायां तयां ॥ ८ ॥

इया गुरुचरणसेवा । हों पात्र तेया दैवा ।
 जें सकलार्थाचा मेलावा । पाटु बांधों ॥ ९ ॥
 ब्रह्मिचें विसवणें वेहीं । उन्मेखु लाहे उंजरि ।
 जें वाचेतें इयें करि । सुधासिंधु ॥ १० ॥
 पूर्णचंद्राचां कोडि । वक्तृत्वा घापे कुरौडी ।
 तैसी आणी गोडी । अक्षरांतें ॥ ११ ॥
 सूर्ये अधिष्ठिली प्राची । जगा राणिवं दे प्रकाशाची ।
 तैसी वाचा श्रोतेयां ज्ञानाची । दिवालि करी ॥ १२ ॥
 नादब्रह्म खुजें । कैवल्य हिं तैसें न सजे ।
 ऐसा बोलु देखिजे । जेणें दैवें ॥ १३ ॥
 श्रवणसुखाचां मांडविं । विश्व भोगवी माधवी ।
 तैसी सांसिनली बरवी । वाचावेली ॥ १४ ॥
 ठाउ न पवतां जेयाचा । मनेसिं मुरडली वाचा ।
 तो देउ होये शब्दाचा । चमत्कार ॥ १५ ॥
 जें ज्ञानासि न चोजवें । ध्यानासि हिं नागवे ।
 तें अगोचर फांवे । वोवी माझि ॥ १६ ॥
 एव्हडें एक सौभग । बलघे वाचेचें आंग ।
 गुरुपदपद्मपराग । लाहे जें कां ॥ १७ ॥
 तारि बहू बोलों काइ । आजि तें अना ठांइ ।
 मातें घांचूनि नाहिं । ज्ञानदेउ हणें ॥ १८ ॥
 जें तान्हेनि मियां अपर्यें । आणि माझें गुरु एकलौतें ।
 हणौनि कृपेसिं एकहातें । जालें तिये ॥ १९ ॥
 पाहा पां भरोवरी आघवी । मेहु चातकासि रिचवी ।
 मज लागि गोसांवीं । तैसें केलें ॥ २० ॥
 । हणौनि रिक्तें तोंड । करुं गेलें बडवड ।
 किं गीत । ऐसें गोड । आंतुडटें ॥ २१ ॥

होए अदृष्ट आपैतें । तैं वाद्ध चि रत्नें परौतें ।
 उजू आउख तैं मारितें । लोभु करी ॥ २२ ॥
 आधणिं घातले हरल । होंति अमृताचे तांदुल ।
 जरि भुकेची राखे वेल । जगन्नाथु ॥ २३ ॥
 तिया परी गुरु । करिति जैं अंगीकार ।
 तैं होउनि ठाके सवंसार । मोक्षमयु ॥ २४ ॥
 पाहा पां काइ नारायणें । तेषां पांडवांचें ऊणें ।
 कीजे चि ना पुराणें । विश्ववंचें ॥ २५ ॥
 तैसें श्रीनिवृत्तिराजें । अज्ञानपण हें माझें ।
 आणिलें वोजे । ज्ञानाचिये ॥ २६ ॥
 पारि असो हें आतां । प्रेम रुलतसे बोलतां ।
 कें गुरुगौरवु वर्णितां । उन्मेखु आधि ॥ २७ ॥
 आतां तेषें चि पसायें । तुह्मां संताचे पाये ।
 बोलगैन मीं अभिप्रायें । गीतेचेनि ॥ २८ ॥
 तारि तो चि प्रस्तुतिं । चौदावेया अध्यायाचां अंतीं ।
 निर्णयो कैवल्यपती । ऐसा केला ॥ २९ ॥
 जें ज्ञान जेयाचां हातिं । तो चि समर्थु मुक्ती ।
 जैसा शतमखु संपत्ती । स्वर्गीचिये ॥ ३० ॥
 कां शत एक जन्मां । जो जन्मौनि बाह्यकर्मां ।
 करी तो चि ब्रह्मा । आनु नोहे ॥ ३१ ॥
 नाना सूर्यांत्रा प्रकाशु । लोहे जेविं डोलसु ।
 तैं ज्ञानें चि सौरसु । मोक्षाचा तो ॥ ३२ ॥
 तरि यया चि ज्ञाना लागि । कव्हणी पां योग्यता आगिं ।
 हें पांतां जागिं । देखिला एकु ॥ ३३ ॥
 जेविं पाताल्लिचें धन । दावी किर अंजन ।
 पारि होआवे लोचन । पायलाचे ॥ ३४ ॥

तैसैं मोक्षु देईल ज्ञान । एथ किर नाहिं आन ।
 पारि तें चि थारे ऐसैं मन । शुद्ध होआवें ॥ ३५ ॥
 तारि विरक्तु वांचूनि कें हीं । ज्ञानासि तगणें नाहिं ।
 हें विचारुनि ठांड । ठेविलें देवें ॥ ३६ ॥
 आतां विरक्तिची कव्हणी परी । जे एउनि मनातें बरी ।
 हें इं सर्वज्ञें श्रीहरी । देखिलें असे ॥ ३७ ॥
 जैं विषें रांधिली रसोये । जेवणारा ठाउवें होए ।
 तें ताट सांडूनि जाए । जिया परी ॥ ३८ ॥
 तैसी संसारा एया समस्त- । जाणत्रे जैं अनित्यता ।
 तें वैराग्य दवडितां । पाठी लागे ॥ ३९ ॥
 आतां अनित्यत्व कैसैं । तें चि रुखाकारें मिसैं ।
 साधिजत असे विश्वेशें । पंचदशीं ॥ ४० ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

ऊर्ध्वमूलमधः शास्त्रमभ्वत्थं प्राहुरव्ययं ॥

छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स सर्ववित् ॥ १ ॥

उपडिलें कवतिकें । झाड येरी मोहरा ठाके ।
 तें वेगें जैसैं सूके । तैसैं हें न्हवे ॥ ४१ ॥
 इया एकी परी । रूपकाचिया कुसरी ।
 सारितसे वारी । संसाराची ॥ ४२ ॥
 करुनु संसारु वाउ । स्वरूपिं अहंते ठाउ ।
 होआवेआ अध्यायो । पंधरावा हा ॥ ४३ ॥
 आतां हें चि आघवें । ग्रंथगर्भिचें सांघावें ।
 उपलविलें जीवें । आकर्णजो ॥ ४४ ॥
 तन्हि महानंदसमुद्रु । जो पूर्णु पूर्णिमाचंद्रु ।
 तो द्वारकेचा नरेंद्रु । ऐसैं झणे ॥ ४५ ॥

भागा पै पांडुकुवंरा । एतां स्वरूपाचआ घरा ।
 करीतुसे आडवारा । विश्वाभासु जो ॥ ४६ ॥
 तो हा जगडंबरु । न्हवे एथ संवसारु ।
 हा जाणै महातरु । थांवला असे ॥ ४७ ॥
 परि एरां सुखां सारिखा । तळिं मूळें वारीं शाखा ।
 तैसा न्हवे झणौनु लेखा । नैए कव्हणा ॥ ४८ ॥
 आगी कां कुन्हाडी । होए रिगावा जरि बुडिं ।
 तारि हो कां भले तेव्हडी । वरिचिली वाडि ॥ ४९ ॥
 जे तूटलेया मूला पासिं । उलंडैल शाकांसिं ।
 तारि तैसी गोठि काइसी । हा सोहपा नोहे ॥ ५० ॥
 अर्जुना हें कवतिक । सांघतां असे अलौलिक ।
 जे वाडि अधोमुख । रुखा एया ॥ ५१ ॥
 जैसा भानु उंची नेणों कें । रश्मिजाल तळिं फांके ।
 संवसारु हें कावरुखें । झाड तैसें ॥ ५२ ॥
 आणि आथिनाथि तेतुकें । रुंधळें एणें चि एकें ।
 कल्पान्तिचेन उदकें । व्योमं जैसें ॥ ५३ ॥
 कां रविचां अस्तमानीं । अंधारेन कोंदें रजनी ।
 तैसा हा चि गगनीं । मांडला असे ॥ ५४ ॥
 एया फल ना चुंबितां । फुल ना तुरुंबितां ।
 जे काहिं पांडुसुता । तें रुख चि हा ॥ ५५ ॥
 हा ऊर्ध्वमूल आहे । परि उन्मलला नोहे ।
 एणें चि हा होये । शाड्डु गा ॥ ५६ ॥
 आणि ऊर्ध्वमूल ऐसें । निगदिलें कीरु असे ।
 परि अधि हों असोसें । मूल यया ॥ ५७ ॥
 पै बल्बचेन महामारी । पिंपलावडाचिया परी ।
 जेवि पारंबियां माझारि । डाहाळिया ॥ ५८ ॥

तेवि गा धनंजया । संसारतरु यया ।
 अधीं चि आधि खांदिया । हें इं नाहिं ॥ ५९ ॥
 तरि ऊर्ध्वा हि कडे । शाखांचे मांदोडे ।
 दीसताति अपाडें । सांसिनले ॥ ६० ॥
 जालें गगन चि पां वेलिये । कां वारा मांडला रुखाचेनि आयें ।
 नाना अवस्थे त्राये । उदैला असे ॥ ६१ ॥
 ऐसा हा एकु । विश्वाकारु विटंकु ।
 उदैला जाणें रूखु । उर्धमूलु ॥ ६२ ॥
 आतां उर्ध येया कोण । तेथ मूल तें किलक्षण ।
 कां अधोमुखपणेन । शाखा कैसिया ॥ ६३ ॥
 अथवा द्रुमा एया । अधिं जिया मूलिया ।
 तिया कोणही कैसिया । उर्ध शाखा ॥ ६४ ॥
 आणि अश्वत्थु ऐसी । प्रसिद्धि काइसी ।
 आत्मविद्विलासीं । निर्णो केल ॥ ६५ ॥
 हें आघवें चि बरवें । तूक्षिये प्रतीती फावें ।
 तैसेनि सांघों सोलिवें । विन्यासें गा ॥ ६६ ॥
 पारि आइकें सूभगा । हा प्रसंगु तुज चि जोगा ।
 कान चि करीं सर्वांगां । हियें आयिलेयां ॥ ६७ ॥
 ऐसें प्रेमरसें सुरफुरें । बोलिलें जवं यादवेश्वरें ।
 तवं अवधान अर्जुनाकारें । मूर्त्त जालें ॥ ६८ ॥
 दे० निरोपीति तें थेकुलें । येसणें श्रोतेपण फांकलें ।
 जैसें आकाशें खेंव पसरिलें । दाहिं दिशि ॥ ६९ ॥
 श्रीकृष्णसूक्तिसागरा । तो अगस्ति चि पां दूसरा ।
 झणौनि घोंटु भरुं पाहे एकसरा । आघवेयाचा ॥ ७० ॥
 ऐसी सोये संडौनु खवलली । आवडि अर्जुनि देवें देखिदी ।
 तेथ जालेन मुखें केली । कुरौडि तेया ॥ ७१ ॥

मग ह्यणे धनंजया । तें उर्ध गा तरु येया ।
येणें रुखें चि कां जेया । ऊर्ध्वत्व गमे ॥ ७२ ॥
यन्हर्वि मध्योर्धअध । हे नाहिं जेथ भेद ।
अद्वयैसिं एकवद । जिये ठांइ ॥ ७३ ॥
जो नाइकिजता नादु । जो असौरभ्यमकरंदु ।
जो आंगाथिळा आनंदु । सुरतें विण ॥ ७४ ॥
जेया जें अन्हां परौतें । जेया जें पुढां माघौतें ।
दिसतेन विण दिसतें । अदृश्य जें ॥ ७५ ॥
उपाधिचा दूसरा । घालितां उपासिरा ।
नावां रूपा सवंसारा । नां होए जेया ॥ ७६ ॥
ज्ञातृज्ञेयविहीन । नसुधें चि जें ज्ञान ।
सुखा भरलें गगन । गांठिवं जें ॥ ७७ ॥
ऐसी वस्तु जे साचे । ते उर्ध गा एया तरुचें ।
तेथें आर घेणें मूलाचें । तें ऐसें असे ॥ ७८ ॥
तन्हीं माया ऐसी ख्याति । नसती च यया आधि ।
कां वांझेची संतती । वानों ए जैसी ॥ ७९ ॥
तैसी संत ना असंत होए । जे विचाराचें नावं न साहे ।
ऐसिया परी आहे । अनादि ह्यणति ॥ ८० ॥
जे भवद्गुमबीजिका । प्रपंचाची भूमिका ।
विपरीतज्ञानदीपिका । सांचली जे ॥ ८१ ॥
जे नानाशशक्तिची मांदुस । जे जगद्भ्रमाचें आकाश ।
जे आकारजाताचें दुस । घेडी केली ॥ ८२ ॥
ते माया वस्तुचां ठांइ । असे जैसेनि नाहिं ।
मग वस्तुप्रभा चि पाहिं । प्रकट होए ॥ ८३ ॥
जेव्हलें आपणयां आली नीद । करी आपणपें जेवि मुग्ध ।
कां काजलि आणि नंद । प्रभा दिवें ॥ ८४ ॥

स्वप्निं प्रिया पुढां तरुणांगी । निदौली चैवउनि वेगिं ।
 आलंगितेन विण अलंगी । सकाम करीं ॥ ८५ ॥
 तैसी स्वरूपिं जाली माया । आणि स्वरूप नेणणें धनंजया ।
 ते चि तरु यया । मूल पहिलें ॥ ८६ ॥
 वस्तूसि आपुला जो अबोधु । तो उधिं आडुलैजे कंदु ।
 वेदांतिं हिं हा प्रसिद्धु । बीजभाउ ॥ ८७ ॥
 धन अज्ञान सुश्रुति । तो बीजांकुरभाउ हणति ।
 एर स्वप्न हान जागृति । फलभावो तेयाचा ॥ ८८ ॥
 ऐसिया इया वेदांतिं । निरूपणभाषाप्रतीति ।
 परि ते असो प्रस्तुतिं । अज्ञान मूल ॥ ८९ ॥
 तें ऊर्द्धि आत्मा निर्मलें । अधोर्द्ध सूचीति मूलें ।
 बलिया बांधौनि आलें । मायायोगाचे ॥ ९० ॥
 मग अधमूलासि देहांतरें । उठति जियें अपारें ।
 तें चौपासिं घेउनु अगारें । खालाविति ॥ ९१ ॥
 ऐसें भवदुमाचें मूल । हें ऊर्द्धि करी बल ।
 मग अणियांचे बेंबल । अर्धीं चि दावी ॥ ९२ ॥
 तेथ चिद्रुत्ति पहिलें । महातत्व उमललें ।
 तें मान वारहेदुल्लें । एक निगे ॥ ९३ ॥
 मग सत्त्वरजतमात्सुकु । त्रिविधु अहंकारु जो एकु ।
 तो तिवना अधोमुखु । डिरु फुटे ॥ ९४ ॥
 तो बुद्धिची घेउनि आगारी । भेदची वृत्ति करी ।
 तेथ मनाची डाल धरी । साजेपणें ॥ ९५ ॥
 ऐसा मूलाचिया गाढिका । विकल्परस कौवलिका ।
 चित्तचतुष्टय डाहालिका । कौभैजे त्रौ ॥ ९६ ॥
 मग आकाश वायु द्यौतक । आप पृथ्वी हे पांचे फौक ।
 महाभूतांचें सारोक । सरले होंति ॥ ९७ ॥

तैसीं चि श्रोत्रादितन्मात्रे । तिये आंगवसा गर्भपत्रे ।
 लुल्लुलिते विचित्रे । उमलती गा ॥ ९८ ॥
 तेथ शद्रांकुर वरिपडी । श्रोत्रां वाढि देव्हडि ।
 हांता कारिती कांडीं । आकांक्षेचो ॥ ९९ ॥
 आंगत्वचेचे वेलपालव । स्पर्शांकुरिं घेंति धांव ।
 तेथ बांब्रल पडे अभिनव । विकाराचें ॥ १०० ॥
 पाठिं रूपपत्रपेलोवेलिं । चक्षु लांब तें कांडें बुद्धि घाली ।
 तेव्हलिं व्यामोहता भली । पाल्हेली जाए ॥ १ ॥
 आणि रसाचे आंगवसे । वाढतां वेगें बहुवसें ।
 जिव्हे आर्तिचीं असोसें । निगति बेचें ॥ २ ॥
 तौसिं चि कौमैलेन गंधें । घ्राणाची डिरि थांउं बांधे ।
 तेथ तलु घे सानंदें । प्रलोभाचा ॥ ३ ॥
 एवं महदहंबुद्धि । मनें महाभूतसमृद्धि ।
 इया संसाराचिया अवधी । सासन जें ॥ ४ ॥
 किंबहुना इहिं आठें । आंगि अधिक हा फांटे ।
 पारि सिंपी चि एव्हडें उमटे । रूपें जेवि ॥ ५ ॥
 कां समुद्राचेनि पैसारें । वरि तरंगता आसारें ।
 तैसें ब्रह्म चि होये वृक्षाकारें । अज्ञानमूल ॥ ६ ॥
 आतां ययाचा हा विस्तारु । हा चि यया पैसारु ।
 जैसा आपणपें स्वप्निं परिवारु । ऐकाकिया ॥ ७ ॥
 पारि तें असो हें ऐसें । कावरें झाड उससे ।
 यया महदादि हे आरवसें । अधोशाखा ॥ ८ ॥
 आणि अश्वत्थु ऐसें ययातें । ह्यणति जे जाणते ।
 तें हिं परिस हो येथें । सांविजैळ ॥ ९ ॥
 तारि अश्वत्थु ह्यणिजे उखा । तवं वरि एकसारिखा ।
 माहिं निर्वाहो यया रंखा । प्रपंचरूपासि ॥ ११० ॥

जैसा न लोटतां क्षणु । मेघु होए नानावर्णु ।
 कां विजु नसे संपूर्णु । निमेषु भरि ॥ ११ ॥
 ना कांपतेया पद्मदला । वरिला बैसका नाहिं जला ।
 कां चित्त जैसें व्याकुला । माणुसाचें ॥ १२ ॥
 तैसी ययाची स्थिती । नासत जाये क्षणा प्रति ।
 ह्यणौनि ययातें ह्यणति । अश्वत्थु गा ॥ १३ ॥
 आणि अश्वत्थु एणें नावें । पिंपल्लु ह्यणति स्वभावें ।
 परि तो अभिप्राउ नोहे । श्रीहारचा ॥ १४ ॥
 यन्हविं पिंपल्लु घडतां विखिं । भियां गति देखिली नीकीं ।
 परि तें असो काइ लौकिकिं । हेतु काज ॥ १५ ॥
 ह्यणौनु हा प्रस्तुतु । अलौकिकु परियसां ग्रंथु ।
 तरि क्षणिकत्वे चि अश्वत्थु । बोलिजे हा ॥ १६ ॥
 आणिक हिं एकु थोरु । यया अव्ययत्वाचा डगरु ।
 आधि परि तो भीतरु । ऐसा असे ॥ १७ ॥
 जैसा मेघांचेनिं तोंडें । सिंधु एकें आंगें धडे ॥
 आणि नदी एरी कडे । भरती चि असती ॥ १८ ॥
 एथ वोहटे ना चडे । ऐसा परिपूर्णु चि आवडे ।
 परि तें फुली जवं नुघडे । मेघांनदींचि ॥ १९ ॥
 तैसें यया रंखाचें होणें जाणें । तर्कें होंतेनि वहिलेपणें ।
 ह्यणौनि लोकु ययातें ह्यणे । अव्ययो हा ॥ १२० ॥
 यन्हविं दानसीलु पुरुषु । वेचकपणें संचकु ।
 तैसा व्ययें चि हा रंखु । अव्ययो हा ॥ २१ ॥
 जातां वेगें बहुवसें । न वचे कां भुइं रुतलें असे ।
 तें रथाचें चक्र दीसे । जिया परी ॥ २२ ॥
 तैसें कालातिक्रमीं जे वाले । ते भूतशाखा जेथ गले ।
 तेथ कोडिं वारि उमाले । उठिति आणिक ॥ २३ ॥

पारि एकि केधवां गेली । शाखाकोडि केधवां जाली ।
 हें नेणवे जेविं उमललीं । आखाडअभ्रें ॥ २४ ॥
 महाकल्पाचां सेवटिं । प्रकटिया उमलती सृष्टि ।
 तैसें चि आणिकिचें दांग उठि । सांसीनलें ॥ २५ ॥
 संहारवातें प्रचंडें । पडति प्रख्यातिचि सालडें ।
 तवं कल्पादिचि जुंबाडें । पाल्लैजति ॥ २६ ॥
 रिगे मन्वंतर मनु पुढें । वंशा वारि वंशाचे मांडें ।
 जैसी इक्षुवृद्धि कांडेनकांडें । जीके जेवि ॥ २७ ॥
 कलियुगांतीं कोरडीं । चहुं युगांचीं डालें सांडी ।
 तवं कृतयुगाची पेळी देव्हडी । पडे पुढुतीं ॥ २८ ॥
 वर्ततें वारिष जाए । तें पुढिलां मुल्हारि होए ।
 जैसा दिवसु जांतु किं एतु आहे । हें चोजवे नां ॥ २९ ॥
 जैसिया वारियाचिया झुलुका । सांदा ठाउवा नव्हे देखां ।
 तैसिया उठिति पडति शाखा । नेणां केति ॥ ३० ॥
 एकी देहाची डिरी तुटे । तवं देहांकुारि बहुविं फुटे ।
 ऐसेन भवतरु हा वाटे । अव्ययो ऐसा ॥ ३१ ॥
 जैसें वाहातें पाणीं जाए वेगें । तैसें चि आणिक भिले मार्गें ।
 तेविं असंत चि असिजे जगें । मानिजे ते ॥ ३२ ॥
 कां लागौनि डोला उघडे । तवं कोडि वारि घडे मोडे ।
 तें नेणतियां तरंगु आवडे । निल्य ऐसा ॥ ३३ ॥
 वायसा एकें बुबुलें दोहिं कडे । डोला चाळितां अपाडें ।
 दोन्ही आधि ऐसा पडे । भ्रमु जेवि ॥ ३४ ॥
 पारि भिंगोरि निधिये पडिली । गमे भूमीसि जडली ।
 ऐसा वेगातिसो भुली । हेतु होए ॥ ३५ ॥
 हें बहू असो झडती । आंधारिं भवंडितां कोळिती ।
 ते दीसे जैसी आइती । रेख सैभ ॥ ३६ ॥

हा संसारवृक्ष तैसा । मोडतु मांडतु सहसा ।
 नेदखौनि लोकु पीसा । अव्ययो मानी ॥ ३७ ॥
 परि एयाचा वेगु देखे । जो हा क्षणिकु ऐसा बोलखे ।
 जाणे कोडि वेल निमिखें । होंतु जांतु ॥ ३८ ॥
 नाहिं अज्ञान वांचूनि मूल । एयाचें असिलेपण हें टवाल ।
 ऐसें झाड चि सीनसाल । देखिले जेणें ॥ ३९ ॥
 तेयातें गा पांडुसुता । मी सर्वहु हिं हणगे जाणता ।
 पै वाग्महासिद्धांता । वेद्य तो चि ॥ १४० ॥
 योगजाताचें जोडलें । तेया एकासि चि उपेगा गेलें ।
 किंबहुना जिआलें । ज्ञान हिं तेणें ॥ ४१ ॥
 असो हें बहू बोलणें । वानिजैल तो कवणें ।
 जें भवरंखु हा जाणे । उशि ऐसी ॥ ४२ ॥

अधश्चोर्ध्वं प्रस्तास्तस्य शाखाः । गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ॥
 अधश्च मूलान्यनुसंततानि । कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥

मग यया चि प्रपंचरूपा । अधःशाखिया पादपा ।
 डाहालिया जाती उमपा । ऊर्धा हिं उजू ॥ ४३ ॥
 आणि अधिं फांकलीं डाले । ऊर्धिं हिं तिष्ठति मूलें ।
 तेया तलिं पघले । वेलु पालें ॥ ४४ ॥
 ऐसें जें आहीं । हाणितलें उपक्रमीं ।
 तें परियसैं सुगर्मीं । बोलिं सांगों ॥ ४५ ॥
 तारि बद्धमूलें अज्ञानें । महदादिकिं सासनें ।
 वेदाचिं थोरवणें । घेउनियां ॥ ४६ ॥
 परि अधिं तवं स्वेदज । जारजें उद्विज मणिज ।
 हे बुढौनि महाभुज । उठिति च्यान्हि ॥ ४७ ॥

एया एकएकांचेन अनगटें । चोरासी लक्ष धाकुटे ।
 तेव्हळि जीवशाखीं फांटे । सैघ चि होंति ॥ ४८ ॥
 प्रसवतु शाखा सरलिया । नानासृष्टि डाहालिया ।
 आडफांटाति मालिया । जातींचिया ॥ ४९ ॥
 स्त्रीपुरुषनपुंसकें । हे व्यक्तिभेदांचे टके ।
 आंदोलति आंगिकें । विकारभारें ॥ १५० ॥
 जैसा वर्षाकालु गगनीं । पल्हैजे नवघनिं ।
 तैसें आकारजात अज्ञानिं । वेळि जाए ॥ ५१ ॥
 मग शाखांचेनि आंगभरें । लवौनि गुंपति परस्परें ।
 गुणक्षोभाचें वारें । उदैजति ॥ ५२ ॥
 तेथ तेणें अचाटें । तिहिं टांडं हा फांटे ।
 गुणाचेन झडझडाटें । ऊर्ध्वमूलु ॥ ५३ ॥
 ऐसा रजाचिया झुलुका । झडाडितां आगलिका ।
 मनुष्यजातिशाखा । थोरावति ॥ ५४ ॥
 तिया ऊर्ध्व ना अधि । माझारि चि कोंदाकोंदि ।
 आडेफांटाति खांदिं । चतुर्वर्णांचां ॥ ५५ ॥
 तेथ विधिनिषेधीं सपलव । वेदवाक्यांचे अभिनव ।
 पालव डोलति बरव । आणिति तियां ॥ ५६ ॥
 अर्थकामपसरें । अग्रवणें घेंति थोरें ।
 तेथ क्षणिकें पदांतरें । इहभोगाची ॥ ५७ ॥
 तेथ प्रवृत्तिचेनि वृद्धिलोभें । खांखरैजति शुभाशुभें ।
 नाना कर्मांचे खांबे । नेणों केती ॥ ५८ ॥
 तेवि चि क्षणे भोग मागिलें । पडति देहांची बुडसलें ।
 तवं पुढां वाडु पेले । नवेयां देहांचा ॥ ५९ ॥
 आणि शब्दादिक सुहावे । साहाजें रंगें हवावें ।
 विषयपल्लव नवे । नीच होंति ॥ १६० ॥

ऐसैं रजोवातप्रचंडे । मनुष्यशाखांचे मांदोडे ।
 घाढति तो एथ रूढे । मनुष्यलोकु ॥ ६१ ॥
 तैसा रजाचा तो वारा । नावेक धरी वोसरा ।
 मग वाजों लागे घोरा । तमाचा जो ॥ ६२ ॥
 तैधवां इया चि मनुष्यशाखा । नीच वासना अधि देखां ।
 पाहैजति डालुका । कुकर्माचिया ॥ ६३ ॥
 अप्रवृत्तिचें खनुवाले । फोंक निगति सरले ।
 घेंत पान पालव डालें । प्रमादिचीं ॥ ६४ ॥
 बोलति निषेध नियमें । जिया रुग्यजुःसामे ।
 तो पाला तेयां धुमे । टकेयां वारि ॥ ६५ ॥
 प्रतिपादिति अधिचार । आगम जे परमार ।
 ते हिं पानिं घेंति पसर । वासनावेलि ॥ ६६ ॥
 तवं तवं होंति थोरांडें । अकर्माची तलबुडें ।
 आणि जन्मशाखा पुढपुढें । घेंति धांवा ॥ ६७ ॥
 तेथ चांडालादि निकृष्टां । दोषजातींचा थोर फांटा ।
 जाल पडों लागे कर्मभ्रष्टां । मुलौनियां ॥ ६८ ॥
 पशु पक्षी शूकर । व्याघ्र वृश्चिक विखार ।
 हे आडशाखानिकर । थोरावती ॥ ६९ ॥
 पंरि ऐसिया शाखा पांडवा । सर्वांगिं हिं नीच नवा ।
 नरकभोगु यावा । फलाचा तो ॥ १७० ॥
 आणि हिंसाविषय पुढारिं । कुकर्मसंगें धुरं धरी ।
 जन्म वरि अगारीं । वाढती चि असे ॥ ७१ ॥
 ऐसीं होंति तरु तृणें । लोह लोष्ट पाखाणें ।
 इया खांदिया तेविं जाणें । फळें हें चि ॥ ७२ ॥
 अर्जुना गा इया परीं । मनुष्यां लागौनि अवधारीं ।
 इदि स्थावरान्त वेन्हीं । अधोशाखांची ॥ ७३ ॥

ह्यणौनु जें माणुसें डालें । इयें चि जाणें अधों मूळें ।
 एथौनि मग पघले । संसारतरू ॥ ७४ ॥
 यन्हविं उर्ध्विचें पार्था । मुदल मूल पांतां ।
 अधिचिया मध्यस्था । शाखा इया ॥ ७५ ॥
 परि तामसीसात्विकीं । सुकृतदुष्कृतात्मिकीं ।
 विरूढति इया शाखिं । अधोर्धीचां ॥ ७६ ॥
 आणि वेदत्रयीचेया पाना । नैए अन्यत्र लागों अर्जुना ।
 जे मनुष्यें वांचौनु विधाना । विषो नाहिं ॥ ७७ ॥
 ह्यणौनि तनुमानुषां । इया उर्ध्वमूलैनि शाखा ।
 तर्हि कर्मवृद्धिसि देखां । इया चि मूळें ॥ ७८ ॥
 आणि आणिकां हिं झाडिं । शाखा वाढतां मूळें गाढिं ।
 मूळें गाढें तवं वाढि । पैसु आधि ॥ ७९ ॥
 तैसें चि यया शरीरा । कर्म देहसंसारा ।
 आणि देह तवं व्यापारा । नां ह्यणों नैए ॥ १८० ॥
 ह्यणौनि देहें मानुषें । इयें मूळें होंति न चुके ।
 ऐसें जगजनकें । बोलिलें तेणें ॥ ८१ ॥
 मग तमाचें तें दारुण । धिरावलेयां वाउधाण ।
 सत्वाची सूटे सत्राण । वाहुटली ॥ ८२ ॥
 तें इया मनुष्याकारा । मूळि सुवासना निगति आरा ।
 धेउनि सूटति कोंभारा । सुकृतांकुरीं ॥ ८३ ॥
 उकलतेन उन्मेखें । प्रज्ञाकुशलतेचां तिखें ।
 डिरिया रिगति निमिखें । बांवलैजौनि ॥ ८४ ॥
 तेथ मेघारसें सगर्भ । आस्थापत्रिं सवांब ।
 सरले निगति कोंभ । सद्वृत्तिचे ॥ ८५ ॥
 सदाचारांचिया सहसा । टके उठिती बहुवसा ।
 घुमघुमिति घोसां । वेदपक्षांचां ॥ ८६ ॥

शिष्टागमनविधाने । विविधयागविताने ।
 तिये पाना वरि पाने । पांजरति ॥ ८७ ॥
 ऐसां यमदमिं घोंसालियां । उठिति तपाचिया डाहालिया ।
 देंति वैराग्यशाखा कोंवलिया । वेल्हाळपणे ॥ ८८ ॥
 विशिष्टां व्रतांचे फोंक । धीराचां अणगटिं तीख ।
 जन्मवेगें उर्धमुख । उंचावती ॥ ८९ ॥
 माजि वेदांचा पाला दाट । तो करी विद्यांचा झडझडाट ।
 जवं वाजे अचाट । सत्वानिल्ल तो ॥ ९० ॥
 तेथ धर्मडाहाळबाहाळिं । दीसति जन्मशाखा पालवी ।
 तिया आडफुटती फलीं । स्वर्गादिकिं ॥ ९१ ॥
 पुढां उपरतिरागें लोहिविं । धर्ममोक्षाची शाखा सरली ।
 लाहातलाहात नीच नवी । वाढती चि असे ॥ ९२ ॥
 पै रविचंद्रादि ग्रहवर । पितृ ऋषि विद्याधर ।
 हे आडशाखाप्रसर । पैसु घेंति ॥ ९३ ॥
 एया हि हूनि उंचपडे । गूढले फलाचेनि बुडें ।
 इंद्रादिक ते मांदोडे । थोर शाखांचे ॥ ९४ ॥
 मग तेया हिं उपरिं डाहालिया । तपोज्ञानिं उंचावलिया ।
 मरीचिकश्यपादिया । उपरिशाखा ॥ ९५ ॥
 एवं पालोवालिं उत्तरोत्तर । उर्धशाखांचा हा पैसार ।
 बुडें साना अग्नि थोर । फलाढ्यपणे ॥ ९६ ॥
 वरि उपरिशाखा हिं पाठीं । एंति फळभार जे किराटी ।
 ते ब्रह्मेशान्तअणगटिं । कोंभ निगति ॥ ९७ ॥
 फलाचेनि अश्लेषणें । ऊर्ध्व अश्लेषणें दूणें ।
 जवं माघौतें वैसणें । मूलिं चि होए ॥ ९८ ॥
 प्राकृतां तन्हीं हंखां । जे फलें दाटिलीं होये शाखा
 ते अश्लेषणीं देखां । बूढासि ए ॥ ९९ ॥

तरि जेथौनि हा आघवा । संसारतरुचा उठावा ।
 तियें मूळिं टेंकति पांडवा । वाढतीं ज्ञानें ॥ २०० ॥
 ह्यणौनि ब्रह्मेशाना परौतें । वाढणें नाहिं जीवातें ।
 तेथौनि मग वरौतें । ब्रह्म चि किं ॥ १ ॥
 परि हें असो ऐसें । ब्रह्मादिक तें आंगवसें ।
 उर्धमूळा सरिसे । न तूकति गा ॥ २ ॥
 आणिक हिं शाखा उपरता । जिया सनकादि नामें विख्याता ।
 तिया फळिं मूळिं नाडलतां । भरलिया ब्रह्मिं ॥ ३ ॥
 ऐसीं मनुष्या लागौनि जाणावी । उर्ध्व ब्रह्मादि शेष पालवी ।
 शाखांची वाढि बरवी । उंचावे पै ॥ ४ ॥
 पार्था उर्ध्वचेया ब्रह्मादि । मनुष्यत्व चि होए आदिं ।
 ह्यणौनि इयें अधिं । ह्यणितलीं मूळें ॥ ५ ॥

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते । नान्तो न चादि न च संप्रविष्टः ॥
 अभ्रत्थमेनं सुविरूढमूलं । असंगशस्त्रेण दृढेन छित्वा ॥ ३ ॥

एवं तुज अलौलिकु । हा अधोर्धशाखु ।
 सांघितला भवरुंखु । उर्धमूल ॥ ६ ॥
 आणि अधिचीं हीं मूळें । उपरतिं दाविलीं सविवळें ।
 आतां परियसैं उन्मूळें । कैसेनि हा ॥ ७ ॥
 पारि तूज्ञा हान पोटी । ऐसें गमैल किरीटी ।
 जे एवढें झाड उत्पाटी । ऐसें काइ असे ॥ ८ ॥
 कें ब्रह्माचआ सेवट वेन्हीं । उर्ध शाखांची थोरी ।
 आणि मूळें तवें निराकारिं । उर्ध्व असे ॥ ९ ॥
 हा स्थावरां हिं तळिं । फांकतसे अधिचा ङालिं ।
 माजि धांवतसे दूजां मूळिं । मनुष्यरूपिं ॥ २१० ॥
 ऐसा गाढा आणि अफांटु । कोण करी यया सेवटु ।
 तरि ज्ञानें हा हलवटु । धरिती भा३० ॥ ११ ॥

पै हा उन्मलावेया दोखें । सायास चि काइसे ।
 काइ बाला बागुलु देशें । देव्हडा वाहे ॥ १२ ॥
 गंधर्वदुर्ग कां न पाडावे । काइ शशविषाण मोडावें ।
 होआवें मग तोडावें । खपुष्प किं ॥ १३ ॥
 तैसा संसार हा वीरा । रंखु नाहिं साचोकारा ।
 मा उन्मूलनिं दरारा । काइसा तन्हीं ॥ १४ ॥
 आहीं सांघितली जे परी । मूळडाहाळांची उजिरी ।
 ते बांझेचें घर भारें । लेंकुरुवें जैसीं ॥ १५ ॥
 कां कीजति चेइलेपणीं । स्वमिचिं तियें बोलणीं ।
 जैसी जाण ते काहाणी । दुवलेयाचीं ॥ १६ ॥
 हणौतु पै धनंजया । आहीं वानिली ते रूपगाया ।
 कासविएचेनि तूपें राया । उगारिलें ॥ १७ ॥
 मूळ अज्ञान तें चि लटिकें । मा तयाचें काज केतुकें ।
 हणौतु संसाररंखु सतिकें । वाउ चि पै ॥ १८ ॥
 आणि अंतु यया नाहिं । ऐसें वाखाणिजे जें काहिं ।
 ते हिं साच चि पाहिं । परी एकी ॥ १९ ॥
 तरि प्रबोध जवं नोहे । तवं नीदे काइ अंतु आहे ।
 किं राति सरैळ पाहे । तेया आरौतें ॥ २२० ॥
 तेवि जवं पार्था । विवेकु नुधवी माथा ।
 तवं अंतु नाहिं अश्वत्था । भवरूपा एया ॥ २१ ॥
 तैसें चि हा अनादि । ऐसी आहे शाब्दी ।
 ते आदुकी नोहे नुरोधिं । बोळतें एया ॥ २२ ॥
 जन्मे ना होए । ऐसेयां सांचों कव्हणीं माए ।
 एया लागि नाहिंपणें आहे । अनादि हा ॥ २३ ॥
 आदि ना अंतु स्थिति । ना रूप ययासि आधि ।
 काइसी कुंथाकुंथी । उन्मूळनीं गा ॥ २४ ॥

आपुलेया अज्ञाना साठि । नव्हतां थांवाला किरीटी ।
 तारि आत्मज्ञानाचेनि लोटि । खाडेनि गा ॥ २५ ॥
 वांचौनि ज्ञानेन विण एकें । उपाये कारिसि तेतुके ।
 तिहिं गुंपसि अधिकें । रंखि इयें ॥ २६ ॥
 मग केतिकं खांदोखांदि । येया हिंडावें उधिं अधिं ।
 ह्यणौनि मूल चि अज्ञान छेदीं । सम्यग्ज्ञानें ॥ २७ ॥
 यन्हविं दोरिएचेया उरगा । डांगा मेलवितां पै गा ।
 तो वा३० चि फारु गा । केला होए ॥ २८ ॥
 तरावेया मृगजलाची गंगा । डोणी लागि थांवातां दांगा ।
 माजि वाहलें बुडिजे पै गा । साचें जेविं ॥ २९ ॥
 तेविं नाथिलेयां संसारा । उपाइं जाचतेया वीरा ।
 आपणपें लोपें वारा । विकोपिं जाए ॥ ३० ॥
 ह्यणौनि स्वप्निचेया घाया । उ०खदें चे३० धनंजया ।
 तेविं अज्ञानमूला यया । ज्ञान चि खड्ग ॥ ३१ ॥
 परि तें चि लीला परजवें । तैसें वैराग्याचें नीच नवें ।
 अभंग बळ होआवें । बुद्धीसि गा ॥ ३२ ॥
 उठिलेनि वैराग्यें एणें । त्रिगुं हा कैसा संडणें ।
 जैसें वमौनियां सुणें । आतां चि गेलें ॥ ३३ ॥
 हा ठा३० पांडवा । पदार्थजार्तीं आषवा ।
 विटंबी तो होआवा । वैराग्यलोटु ॥ ३४ ॥
 मग देहअहंतेचें दलें । सांडुनि एकें वेलें ।
 प्रयगबुद्धिकरवालें । हातवसावें ॥ ३५ ॥
 निसले विवेकुसाहाणें । जें ब्रह्मास्मिबोधें सणाणे ।
 मग पुरतेन बोधें उठणें । एकलें चि ॥ ३६ ॥
 परि निश्चयाचिये मुठी बळ । होआविया एकि दोनि वळ ।
 मग तुलावै अतिचोखाल । मनन वेन्हीं ॥ ३७ ॥

पाठिं हातियरां आपणेयां । निदिध्यासें एक जालेयां ।
 पुढां नुरैल घाया । पुरतें गा ॥ ३८ ॥
 ते आत्मज्ञानाचे खाडे । अद्वैतप्रभेचेनि वाढे ।
 नेंदाल उरो कव्हणी कडे । भवरंखासि ॥ ३९ ॥
 तेव्हळि उर्ध कां उर्धि मूल । ना अधिचे हान शाखाजाल ।
 ते कहीं चि न दीसे मृगजल । चांदिणां जेवि ॥ २४० ॥
 ऐसेन गा वीरनाथा । आत्मज्ञानाचिया खड्गलता ।
 छेदौनियां भवाश्वत्था । उर्धमूलते ॥ ४१ ॥
 मग इदंतेसि वाल्ले । मीपणे विण डाहारले ।
 ते रूप पाहिजे आपुले । आपण चि ॥ ४२ ॥
 पारे दर्पणाचेनि आधारें । एक चि करुनि दूसरें ।
 मुख पांति गावारें । तैसें नका हो ॥ ४३ ॥
 आपण चि आपणेयाते । पाहिजे जें अद्वैते ।
 ते ऐसें होए निरुते । बोलिजतु असे ॥ ४४ ॥

ततः पदं तत्परिमाणितव्यं । यस्मिन्गता न निवर्त्तन्ति भूयः ॥
 तमेवचार्यं बुरुषं प्रपद्ये । यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

जें पाहिजेतेन विण पाहिजे । कांहीं नेणतां चि जाणिजे ।
 आद्यपुरुखु ह्यणिजे । जेया ठायते ॥ ४५ ॥
 तेथ उपाधिचा बोधंवा । घेउनि श्रुती धांवति जीभा ।
 मग नावारूपाचा वडंवा । करिती वायां ॥ ४६ ॥
 पै भवस्वर्गा उबगले । मुमुक्षु योगज्ञान वळघळे ।
 पुडुतीं नैयो इया निगाले । पैजा जेथ ॥ ४७ ॥
 संसाराचेयां पायां पुढां । पळती वीतराग होडां ।
 अलंडौनि ब्रह्मपदाचा कर्मकडा । घालति मार्गां ॥ ४८ ॥
 अहंतादिभावां आपुळेयां । झाडा देउनि आघवेयां ।
 पत्र घेंति ज्ञानिये जेया । मूलघरासि ॥ ४९ ॥

जिये कां वस्तुचें नेणणें । आणिलें जगा थोर जाणणें ।
 नाहिं तें चि नांदविलें जेणें । मी तूं जगिं ॥ २५० ॥
 पै जेथौनि हे एव्हडी । विश्वपरंपरेची वेळांडी ।
 वाढती आस जैसी कोरडी । निदैवाची ॥ ५१ ॥
 पार्था तें वस्तु पहिलें । आपणपें पै आपुलें ।
 पाहिजे जैसैं हिवलें । हिवं हिवें ॥ ५२ ॥
 आणिक हिं एक तेया । उलखणें असे धनंजया ।
 तरि जेया कां भेटलेयां । एणें चि नाहिं ॥ ५३ ॥
 परि तेया भेटति ऐसैं । जें ज्ञानें सर्वत्र सरिसैं ।
 महाप्रलयानुचें जैसैं । भरलेपण ॥ ५४ ॥

निर्मानमोहाजितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ॥
 द्वंद्वै विमुक्ताः सुखदुःखसंगै गच्छंत्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥

जेयां पुरुषांचें मन । संडौनि गेलें मोहमान ।
 वरिखा अंतिं जैसे धन । आकाशातें ॥ ५५ ॥
 निकवडेया निष्ठुरा । उबगिजे जेविं सोइरा ।
 तैसे नांगवति विकारां । वेटालें जे ॥ ५६ ॥
 फळती केलि उन्मले । तैसी आत्मलाभें प्रवळें ।
 तेयांची क्रिया ढालें ढालें । गळती आहे ॥ ५७ ॥
 आगि लागलेयां रंखि । दैखौनि सैरा पळति पक्षी ।
 तैसैं सांडिलें असेखिं । विकल्पि जे ॥ ५८ ॥
 आइकें सकलदोषतृणीं । अंकुरैजति मेदिनी ।
 तिये भेदबुद्धिची काहाणी । नाहिं जेयांतें ॥ ५९ ॥
 सूर्योदया सरिसी । राति पलौनि जाए आपैसी ।
 गेली देहाहंता तैसी । अविचे सवें ॥ २६० ॥
 आयुष्यहीना जीवातें । देह संढी जेविं अवचितें ।
 तेवि निदसुरें द्वैतें । संडिले जे ॥ ६१ ॥

लोहाचें सांकडें परिसा । न जोडे आंधारु रवि जैसा ।
 द्वैतबुद्धिचा तैसा । जेयां दुकलु ॥ ६२ ॥
 आगा सुखदुःखाकारें । द्वंद्वें देहियां जियें गोचरें ।
 तियें जेयां समोहरें । होंति चि ना ॥ ६३ ॥
 स्वप्निचेया राज्य कां मरण । नोहे हर्षशोकासि कारण ।
 प्रबोधलेयां जाण । जिया परी ॥ ६४ ॥
 तैसैं सुखदुःखरूपि । दंदिं जे पुण्यपापिं ।
 नेघपिजति सर्पिं । गरुडु जैसा ॥ ६५ ॥
 आणि अनात्मवर्गु नीर । संडूनि आत्मरसाचें क्षीर ।
 चरताति जे सविचार । राजहंस ॥ ६६ ॥
 जैसा वरिखौनु भूतलिं । आपुला रसु अंशुमाली ।
 माघुता आणी रश्मिजालिं । विंवासि चि ॥ ६७ ॥
 तैसैं आत्मभ्रांति साटिं । वस्तु विखुरली वारें वाटिं ।
 ते एकवटिति आत्मदृष्टि । अखंड जे ॥ ६८ ॥
 किंबहुना आत्मेयाचां निर्द्वारिं । जेयां विवेकु शुद्ध अंतरिं ।
 गंगेचा उभव सागरिं । बुडाला जैसा ॥ ६९ ॥
 पै आघवें चि जालेपणें । नुरे चि जेयां अभिलाखणें ।
 जैसैं एथौनि पन्हां जाणें । नाहिं आकाशासि ॥ ७० ॥
 जैसा आगिचा डोंगर । नेवे कोणहीं वीजें अंकुर ।
 तैसा मनिं जेयां विकार । उदैजे नां ॥ ७१ ॥
 हें केती बोलों असंघडें । जेविं परमाणु नुरे वायू पडें ।
 तैसैं विषयांचें नावडे । नावं जेयां ॥ ७२ ॥
 एव जे जे कोणहीं ऐसे । केले ज्ञानहुताशें ।
 तेथ मिलति ते तैसे । हेमिं हेम ॥ ७३ ॥
 तेथ ह्याणजे कोणहीं टांड । ऐसैं पूसशील जनिंहे कार्हिं ।
 तान्हें तें तें पद नाहिं । वेचु जेया ॥ ७४ ॥

दृश्यपणं देखिजे । कां ज्ञेयत्वं जाणिजे ।
 अमुकें ऐसें ह्मणिजे । तें जें नोहे ॥ ७५ ॥
 पै दीवियांचियां वंचालिं । कां चांदु हान उजली ।
 हें काइ बोलें अंशुमाली । प्रकाशी जें ॥ ७६ ॥
 तें आववें चि दीसणें । जेयातें कां नेदखणें ।
 विश्व आभासतसे जेणें । लपालेनि ॥ ७७ ॥
 जैसें सिंपीपण हारपे । तवं तवं खरें होए रूपें ।
 कां दोरी लोपतां सांपे । फारां होइजे ॥ ७८ ॥
 न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न च पावकः ॥
 यद्रत्वा न निवर्त्तते तद्भाम परमं मम ॥ ६ ॥
 तैसिं चंद्रसूर्यादि थोरें । इयें तेजें जियें फारें ।
 तियें जेयाचेनि आधारें । प्रकाशति ॥ ७९ ॥
 ते वस्तु किं तेजोराशि । सर्वभूतात्मक सरिसीं ।
 चंद्रसूर्याचां मानसीं । प्रकाशे जे ॥ २८० ॥
 क्षणौनि चंद्रसूर्य कडवसां । पडति वस्तुचेया प्रकाशा ।
 यया लागि तेज जें तेजसां । तें वस्तुचें आंग ॥ ८१ ॥
 आणि जेयाचेयां प्रकाशि । जग हारपे चंद्राकेंसिं ।
 चांदिं ऋत्वं जैसिं । दिनोदई ॥ ८२ ॥
 नातारिं प्रबोधलिं वळे । स्वप्नडिं व माळवे ।
 कां नुरे चि सांजोले । मृगतृष्णिका ॥ ८३ ॥
 तैसा जेया वस्तुचां टांडें । कोण्ही चि कां आभासु नाहिं ।
 तें माझें निजधाम पाई । पाटाचें गा ॥ ८४ ॥
 पुडुतीं जेथ गेले । नेवति चि कां माघौतीं वाउलें ।
 महोदधी मीनले । स्रोत जैसे ॥ ८५ ॥
 कां उवणाची कुंजरी । सूदली सात्री सागरीं ।
 होए ना मादारी । परतौनु गा ॥ ८६ ॥

नाना गेलिया अंतरालां । न एंति चि वन्हिज्वाला ।
 नाहिं तसलोहौनि जला । निगणें जैंसें ॥ ८७ ॥
 तेविं मजसि एकवट । जालेन ज्ञानें चोखट ।
 तेयां पुनरावृत्तिची वाट । मोडोनु ठेली ॥ ८८ ॥
 एथ प्रज्ञापृथिवियेचा राउ । पार्थु हणो जी जी पसाउ ।
 विनतिए एकिए देउ । चित्त देंतु ॥ ८९ ॥
 तारि देवोंसिं स्वयें एक होंति । माघौतें जे नैयंति ।
 ते देवोंसिं भिन्न आथि । अभिन्न वा ॥ ९० ॥
 जन्हां भिन्न चि अनादिसिद्ध । तन्हि नैयंति हें असंबद्ध ।
 जे फुलीं लागले षड्पद । काइ फुलें चि होंतु ॥ ९१ ॥
 पै लक्ष्याहूनि अनारिसे । बाण लक्ष्य सिवौनि जैसे ।
 माघौतें पडति तैसे । एंति चिं ते पै ॥ ९२ ॥
 ना तारि तूं चि ते स्वभावे । तारि कन्हणें कन्हणासिं मिलावें ।
 आपणेयांसिं चि रूपावें । शस्त्रें केविं ॥ ९३ ॥
 हणौनि तुजासिं अभिन्नां जीवां । तूझा संयोगु वियोगु देवा ।
 नैए बोलें अवेवां । शरीरोंसिं ॥ ९४ ॥
 आणि जे सदा वेगले तुजासिं । तेयां मिलणें नाहिं कोणहें देशि ।
 मा यंति नयंति हे कायिसी । वाया बुद्धि ॥ ९५ ॥
 तारि कोण गा ते तूतें । पावौनि नैएंति माघौतें ।
 हें विश्वतोमुखा मातें । बुझाविं जी ॥ ९६ ॥
 एसां आक्षेपीं अर्जुनाचां । तो शिरोमणि सर्वज्ञांचा ।
 तोखला बोधु शिष्याचा । देखौनियां ॥ ९७ ॥
 मग हणो गा महामती । मातें पावौनि नैयंति पुढुतीं ।
 ते भिन्न अभिन्न पैं रीती । दोनी आहाति ॥ ९८ ॥
 जे विवेकें खोलें पाहिजे । तारि मीं चि ते साहाजें ।
 ना आहाचवाहाच टूजे ॥ ऐसे गमति ॥ ९९ ॥

जैसे पाणियां हिं वेगले । आपजतां दीसति कल्लोले ।
 यन्हविं तारि निखलें । पाणीं चि तें ॥ ३०० ॥
 कां सुवर्णां होउनि आनें । लेणीं गमति भिन्नें ।
 मग पाहिजे तवं सोनें । आघवें चि तें ॥ १ ॥
 तैसें ज्ञानाचिये दीठी । माझि अभिन्न चि ते किरीटी ।
 एर भिन्नपणें ते उठी । अज्ञाना तव ॥ २ ॥
 साचोकारेनि वस्तुविचारें । कैचें एकासिं मज दूसरें ।
 जें भिन्नाभिन्नव्यवहारें । उमसिजैल ॥ ३ ॥
 आघवें चि आकाश सूनि पोटीं । बिंब चि जें आते खोटी ।
 तें प्रतिबिंब कै उठी । कै रश्मि सिरें ॥ ४ ॥

कां कल्पांतिचेया पाणियां । काइ उ०त् भरताति धनंजया ।
 ह्यणौनि कैचे अंश अविक्रिया । एका मज ॥ ५ ॥
 परि उ०घाचेनि मेलें । पाणीं उजू परि वांकुडें जालें ।
 खी दूजेपण आलें । तोयवगें ॥ ६ ॥
 व्योम किं चौफल वाटौलें । हें ऐसें काइसेया हिं मिले ।
 परि घटमठिं वेंटालें । तैसें हिं आधि ॥ ७ ॥
 हांगा नीदेचेनि आधारें । काइ एकलेनि जग न भरे ।
 स्वप्निचेनि जें अवतरे । रायेपणें ॥ ८ ॥
 कां मीनलेनि कीडालें । वानिभेदासि ए सोलें ।
 तैसा स्वमाया वेटालें । शुद्ध जै मीं ॥ ९ ॥
 तैं अज्ञान हें रूढे । तेणें कोहंनिकल्पाचें मांडे ।
 मग विवरौनि कीजे फुडें । देहो मीं ऐसें ॥ ३१० ॥

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥

मनःपष्ठानांद्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥

ऐसें शरीरा चि एवडें । आत्मज्ञान वेगलें पडे ।
 तो माझा अंशु ऐसें आवडे । थोडेपणें ॥ ११ ॥

समुद्र कां वायुवसें । तरंगाकार उल्हासे ।
 तो समुद्रांशु ऐसा दीसे । सानिवां जेविं ॥ १२ ॥
 तेविं जडातें जीवविता । देहअहंता उपजविता ।
 मीं जीउ गमे पांडुसुता । जीवलोकिं ॥ १३ ॥
 पैं जीवाचेया बोधा । गोचरु हा धांधा ।
 तो जीवलोकुशब्दा । अभिप्राउ ॥ १४ ॥
 आगा उपजणें निमणें । हें साच काइ मानणें ।
 तो जीवलोकु मीं ह्यणें । संसारु हान ॥ १५ ॥
 एवंविधिं जीवलोकिं । तूं मातें ऐसेयां अवलोकिं ।
 जैसा चांदु कां उदाकिं । उदकातीतु ॥ १६ ॥
 पैं कारिमरीचा रवा । कुंकुमा वारि पांडवा ।
 आणिकां गमे लोहिवां । तो तारि नव्हे ॥ १७ ॥
 तैसें अनादिपणें नोमोडे । माजि अक्रियत्व न खाडे ।
 पारि कारिता भोक्ता आवडे । ते जाण गा भ्रांत ॥ १८ ॥
 किंबहुना आत्मा चोखटु । होउनि प्रकृतिसिं एकवटु ।
 बांधे प्रकृतिधर्माचा पाटु । आपणपेयां ॥ १९ ॥
 पैं मनादि साहीं इंद्रियें । श्रोत्रादि प्रकृतिकार्यें ।
 तियें माझीं ह्यणौनि होए । व्यापारिं रूढ ॥ २० ॥
 जैसें स्वप्निं परित्राजें । आपणपेयां कुटुंब होइजे ।
 मग तेयाचेनि धांविजे । मोहें सैरा ॥ २१ ॥
 तैसें आपुलिया विस्मृती । आत्मा आपण चि प्रकृती ।
 सरिसा गमौनि पुडुतीं । तिसिं चि भजे ॥ २२ ॥
 मनाचां रथिं वलघे । श्रवणाचेनि द्वारें निगे ।
 मग शब्दाचेया रिगे । राना माजि ॥ २३ ॥
 तो प्रकृतिचा वागौरा । करी त्वचेचिया मोहरा ।
 आणि स्पर्शाचेया घोरा । वना जाए ॥ २४ ॥

कोण्हि एकिं अवसरिं । निगौनि नेत्रांचां द्वारिं ।
रूपाचां डोंगारिं । हिंडतु असे ॥ २५ ॥
कां रसनेचिया वाटा । निगौनि गा सूभटा ।
रसाचा दारकुटा । भरौनि ठाके ॥ २६ ॥
नातरि एणें चि घ्राणें । हा मदंशु करी निगवणें ।
मग गंधाचिं दारुणें । आडवें लंघी ॥ २७ ॥
ऐसें देहेंद्रियनायकें । धरुनु मन जावलिके ।
भोगिजति शब्दादिकें । त्रिखाभरणें ॥ २८ ॥

शरीरं यद्वामोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ॥
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गंधानिवांशयात् ॥ ८ ॥

परि करिता भोक्ता ऐसें । हें जीवाचें तें चि दीसे ।
जें शरीरिं पैसें । एकाधिए ॥ २९ ॥
जैसा आथिला आणि विलासिया । तें चि उल्लखों ए धनंजया ।
जें राज्यसेव्या ठाया । वस्तिंसि ए ॥ ३३० ॥
तैसा अहंकर्तृत्वाचा वाडु । विषयेंद्रियांचा धुमाडु ।
हा जाणिजे तें निवाडु । जें देहो पावे ॥ ३१ ॥
अथवा शरीरातें संडी । तन्हीं चित्तइंद्रियांची तांडी ।
आपणपेया सवें काढि । घेउनि जाए ॥ ३२ ॥
जैसा अपमानिला अतिथि । ने सुकृताची संपति ।
कां साएखेडेयाची गति । सूत्रतंतु ॥ ३३ ॥
नाना मालवतेनि तपनें । नेइजति लोकाचिं दर्शनें ।
हें असो द्रुति पवनें । नेइजे जैसी ॥ ३४ ॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ॥
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयाननुसेवते ॥ ९ ॥

तेषु मनःपशं एयां । इंद्रियांतें धनंजया ।
देहराजु ने देहा । पासौजु घाला ॥ ३५ ॥

मग एथ अथवा स्वर्गि । जेथ देह अपंगी ।
 तेथ तैसिं चि पुडुतीं पागीं । मनादिक ॥ ३६ ॥
 जैसा माल्हवलेयां दिवा । प्रभेसिं जाए पांडवा ।
 मग उजलिजे तेथ तेव्हां । तैसा चि फांके ॥ ३७ ॥
 परि ऐसिया इया राहाटी । अवित्रेक्रियाचिये दीठी ।
 एतुलें हें किरीटी । गमे चि गा ॥ ३८ ॥
 जें आत्मा देहा आला । आणि विखो एणें चि भोगिला ।
 अथवा देहौनु गेला । हें साच चि नां ॥ ३९ ॥
 यन्हर्विं एणें जाणें । करणें हान भोगणें ।
 हें प्रकृतिचें तें । मानियलें ॥ ३४० ॥
 परि देहाचें मोटकें उभें । चेतना तेथ उपलभे ।
 तिये चलवलेचेनि मोहें । आला ह्यणति ॥ ४१ ॥

उत्क्रामंतं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितं ॥

विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥ १० ॥

तैसीं चि तिया संगति । इंद्रियें आपुलाळं अर्थ ।
 वर्त्तति तेया नात्रं सुभद्रापति । भोगणें जेया ॥ ४२ ॥
 पाठिं भोगक्षईं आपैसैं । देह गेलेयां तें न दीसे ।
 एथ तत्रं गेला ऐसैं । बोभाति गा ॥ ४३ ॥
 पैं रंखु डोलतु देखावा । तरि वारा वाजतु मानावा ।
 रंखु नसे तेथ पांडवा । नाहिं चि काइ ॥ ४४ ॥
 कां आरिसा संभोहर ठेविजे । आणिं आपणपें तेथ देखिजे ।
 तरि तेव्हां चि जाला मानिजे । काइ आदिं नाहिं ॥ ४५ ॥
 कां तो परौता केला आरिसा । लोपु जाला तेया आभासा ।
 तरि आपणपें नाहिं ऐसा । निश्चो करावा ॥ ४६ ॥
 सादु तरि आकाशाचा । परि कपालिं पीटे मेवांचा ।
 कां चांदिं वेगु अभ्राचा । आरोपिजे ॥ ४७ ॥

तैसैं होइजे जाइजे देहें । तें आत्मसत्ते अविक्रिये ।
 निष्टंकिति मोहें । आंधले ते गा ॥ ४८ ॥
 एथ आत्मा आत्मेयाचे ठांड । देखिजे देहाचा धर्म देहिं ।
 ऐसैं देखणे ते पाहिं । आन आहाति ॥ ४९ ॥
 ज्ञानें कां जेयाचे डोले । देखौनि नऱ्हांति देहिचे खोले ।
 सूर्यरश्मि आणियाळें । ग्रीष्मि जैसैं ॥ ३९० ॥
 तैसैं विवेकाचेनि पैसैं । जेयाची स्फूर्ति स्वरूपिं बैसे ।
 ते ज्ञानिये देखति ऐसैं । आत्मेयातें ॥ ५१ ॥
 जैसैं तारांगण भरलें । गगनसमुद्रिं त्रिबलें ।
 परि हें तूटौनि नाहिं पडिलें । ऐसैं निवडे ॥ ५२ ॥
 गगन गगन चिं आहे । हें आभासतसे तें वार्यें ।
 तैसा आत्मा देखति देहें । गंवसिला हिं ॥ ५३ ॥
 खलालांचेयां लगवर्गिं । फेडौनि खलालांचेयां भार्गिं ।
 देखिजे चंद्रिका ते उगी । चंद्रिं जेविं ॥ ५४ ॥
 कां थिलर सोखे जैसैं । सूर्यो जैसा तैसा असे ।
 देह होंता जांता तैसैं । देखति मातें ॥ ५५ ॥
 घटमठ घडले । ते चि पाठिं मोडले ।
 परि आकाश तें संचलें । असत चि असे ॥ ५६ ॥
 तैसीं अखंडे आत्मसत्ते । अज्ञानदृष्टिकल्पितें ।
 इयें देहें चि होंतें जातें । जाणति फुडें ॥ ५७ ॥

यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थिते ॥

यतंतोप्यकृतात्मानो नैनं पश्यंत्यचेतसः ॥ ११ ॥

चैतन्य चढे ना अहटे । चेष्टवी नाचेष्टे ।
 ऐसेनि आत्मज्ञानें चोखटें । जाणति ते ॥ ५८ ॥
 आणि ज्ञान हिं आपैतें होइल । प्रज्ञा परिमाणु हिं उगाणा घेइल ।
 सकळ शास्त्रां एइल । सर्वस्व हातां ॥ ५९ ॥

परि ते व्युत्पत्ति ऐसी । विरक्ति न रिगे मानसीं ।
 तरि सर्वात्मका मजसिं । नोहे भेटि ॥ ३६० ॥
 पै तौंड भरो कां विचारा । आणि अंतष्करण विषयांसि थारा ।
 तरि नातुडे धनुर्द्धरा । त्रिशुद्धि मीं ॥ ६१ ॥
 हांगा उ०सणातियांचां ग्रंथिं । काइ तूटति संसारगुंति ।
 किं परिवसिलियां पोथि । वाचिली होए ॥ ६२ ॥
 नाना बांधौनियां डोले । प्राणिं लाविजति मुक्ताफलें ।
 तरि तेयांचें काइ केलें । मोलमान ॥ ६३ ॥
 तैसा चित्तिं अहंते ठाउ० । आणि जीभे सकलशास्त्रांचा सराउ० ।
 ऐसेनि कोडी एंकी जन्म जाउ० । परि न पविजे मातें ॥ ६४ ॥
 जो एकु मीं कां समस्ति । व्यापकु असे भूतजाति ।
 आइकें तिये व्यक्ती । रूप करं ॥ ६५ ॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेखिलं ॥

यच्चंद्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकं ॥ १२ ॥

तरि सूर्या सकट आघवी । हे विश्वरचना जे दावी ।
 ते दीप्ति माझी जाणावी । आद्यंति हे ॥ ६६ ॥
 जळ सोखुनु गेलेयां सविता । उल्हासु पुरवितसे माघौता ।
 ते चांदिं पांडुसुता । ज्योत्स्ना माझी ॥ ६७ ॥
 आणि दहन पचन सिद्धि । करितसे जे निरवधि ।
 ते हुताशिं तेजोवृद्धि । माझी चि गा ॥ ६८ ॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ॥

पुष्णामि चोषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ १३ ॥

मीं रिगाला असे भूतलिं । हणौनि समुद्रमहाजलिं ।
 ईं पांसूचीं ढेंपुली । वीरे चि नां ॥ ६९ ॥
 आणि भूतें हिं चराचरें । हे धरीतसे अपारें ।
 तें मीं चि धरिं धरें । रिगौनियां ॥ ७० ॥

गगनि मीं पांडुसुता । चंद्राचेन मीसें अमृता ।
 भरला जालां चालता । सरोवरु ॥ ७१ ॥
 तेथौनि पांकति रश्मिकर । ते पाट पेलौनि अपार ।
 सर्वोपधींचे आगर । भरीतुसें मीं ॥ ७२ ॥
 ऐसेनि सस्यादि सकला । करीं धान्यजाति रसाला ।
 दें अन्नद्वारा जिव्हाला । भूतजातां ॥ ७३ ॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ॥

प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधं ॥ १४ ॥

आणि निफजविलेयां अन्न । तरि तैसें कैचें पां दीपन ।
 जेणें जिरौनि समाधान । भोगिति जीव ॥ ७४ ॥
 ह्यणौनि प्राणिजाताचां घटिं । करुनि कंदा वारि आगिठी ।
 दीसि जठरिं किरीटी । मीं चि जालां ॥ ७५ ॥
 प्राणापानाचां जोडभार्ती । फुंकफुंकौनियां अहोराती ।
 आटितसे नेणों केती । उदरा माजि ॥ ७६ ॥
 शुष्कें अथवा स्निग्धें । सुपक्वें कां विदग्धें ।
 परि मीं चि गा चतुर्विधें । अन्नें पर्चीं ॥ ७७ ॥
 एवं मीं चि आघर्वें जन । जना मीं चि जीवन ।
 जीवना मुख्य साधन । वन्हि मीं चि ॥ ७८ ॥
 आतां ऐसेया वारि काइ । सांघों व्यातिची नवाई ।
 एथ दूजें नाहिं चि घेइ । सर्वत्र मीं ॥ ७९ ॥
 तरि कैसेन पां वेखें । सदा सुखियें मानुषें ।
 एक आक्रांत दुःखें । भूतजात ॥ ३८० ॥
 जैसें सगळिए पाटणी । एकें चि दीपें दिवेलावणी ।
 जाळियां का नेदखणीं । उरलीं एकें ॥ ८१ ॥
 ऐसी हान उखिविधि । कारितु आहासि मानसिकी ।
 तरि ते हिं परियस नीकी । शंका फेडूं ॥ ८२ ॥

पै आघवा चि मीं असें । एथ नाहिं किं अनारिसें ।
 परि प्राणियांचां ठांडं उरहसे । बुद्धि ऐसी ॥ ८३ ॥
 जैसें एका चि आकाशध्वनिं । वायेंविशेषिं अनानीं ।
 वाजावें पडे भिन्नि । नादांतारिं ॥ ८४ ॥
 कां लोकचेष्टिं वेगलाला । जो हा एकु चि भानु उदैला ।
 तो अनाना परि गेला । उपेगासि ॥ ८५ ॥
 नाना बीजधर्मा अनुरूप । झाडिं उभविळें आप ।
 तैसें परिणमळें रूप । माझे जीवां ॥ ८६ ॥
 आगा नेणा आणि चउरा । पुढां निलेयाचा दूसरा ।
 नेणा सर्पत्वें जाला एरा । सुखा लागि ॥ ८७ ॥
 हें असो स्वातिचें उदक । शुक्तिं मोतिएं विआलीं विख ।
 तैसें सज्ञानासि मीं सुख । दुःख तें अज्ञानासि ॥ ८८ ॥

**सर्वस्यचाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिं ज्ञानमपोहनं च ॥
 वेदैश्च सर्वै रहमेव वेद्यो वेदांतकृद्वेदविदेव चाहं ॥ १५ ॥**

पार्था सर्वांचां हृदयदेशि । अमुका हे स्फूर्ति ऐसी ।
 जे स्फुरत अहिर्णिशि । ते वस्तु गा मीं ॥ ८९ ॥
 परि संतां सर्वे वसतां । योगज्ञानिं पैसतां ।
 गुरुचरण उपासितां । वैराग्येसिं ॥ ३९० ॥
 एणें चि सत्कर्म । अशेष हिं अज्ञान विरमे ।
 जेयाचें अहं विश्रमे । आत्मरूपिं ॥ ९१ ॥
 तें आपें आपु देखौनि देखिं । मियां आत्मेन सदा सुखी ।
 एथ मीं वांचौनि अवलोकिं । आन हेतु असे ॥ ९२ ॥
 आगा सूर्योदयो जालेयां । सूर्यो सूर्ये चि पाहावा धनंजया ।
 तेविं मातें मीं जाणावेया । मीं चि हेतु ॥ ९३ ॥
 ना शरीरप्रियातें सेवितां । संसारगौरव आइकतां ।
 देहिं जेयाची अहंता । बुडौनि ठेली ॥ ९४ ॥

ते स्वर्गसंसारा लागि । धांवता कर्माचेयां मार्गि ।
 दुःखाचां सेलभार्गि । भागीन होंति ॥ ९५ ॥
 परि हें इं होणें अज्ञ नां । मज चि तव तेया अर्जुना ।
 जैसी जागृती चि हेतु स्वप्ना । निद्रिता होए ॥ ९६ ॥
 पै अत्रें दिवसु हारतला । तो हिं तेणें चि जाणों आला ।
 तेविं मीं नेणौनि विखो देखिला । मज चि तव भूतिं ॥ ९७ ॥
 एवं नोदे कां जागणेया । प्रबोधु हेतु धनंजया ।
 तेविं ज्ञानाज्ञानां जीवाचेया । मीं चि मूल ॥ ९८ ॥
 ह्यणौनु जैसा असें तैसेया । मातें नेणौनि धनंजया ।
 वेदु जाणों गेला तवं तेया । जालिया शाखा ॥ ९९ ॥
 तर्हि तिन्हीं शाखाभेदिं । मीं चि जाणिजे त्रिशुद्धि ।
 जैसा पूर्वापरां नदीं । समुद्रु चि ठी ॥ १०० ॥
 आणि महासिद्धांतापासिं । श्रुती हारपती शब्देसिं ।
 जैसिया सगंधा आकाशीं । वातलहरिया ॥ १ ॥
 तैसें समग्र हिं श्रुतिजात । ठाके लाजिलें ऐसें निवांत ।
 तें मीं चि करीं यथावत । प्रकटौनियां ॥ २ ॥
 पाठिं श्रुतिसहित अशेख । जग हारपे जेथ निशेख ।
 तें निजज्ञान हिं चोख । जाणता मीं ॥ ३ ॥
 जैसें निदलेयां जागिजे । तेव्हळिं स्वप्निचें किर नाहिं दूजे ।
 परि एकत्व हिं देखों पाविजे । आपुलें चि ॥ ४ ॥
 तैसें आपुलें अद्वयपण । मीं जाणतु असें दूजेन विण ।
 तेया हिं बोधा कारण । जाणता मीं चि ॥ ५ ॥
 तरि आगि लागलेया कापुरा । काजली ना वैश्वानरा ।
 उरणें नाहिं वीरा । जिया परी ॥ ६ ॥
 तेविं समूल अविद्या खाए । तें ज्ञान हिं जें बुडौनि जाए ।
 तें जें नाहिं किर नोहे । आणि असे हिं नां ॥ ७ ॥

पै विश्व घेउनि गेला मागेंसिं । तेया चोरातें कब्हण गिवंसी ।
 जे कोणही एकी दशा ऐसी । शुद्धा ते मीं ॥ ८ ॥
 ऐसी जडाजडे व्यासि । रूप करितां कैवल्यपती ।
 ठी केली निरुपहितीं । आपुलां रूपिं ॥ ९ ॥
 तो आघवा चि बोधु सहसा । अर्जुनि उमटला कैसा ।
 व्योमिचा चंद्रोदयो जैसा । क्षीरार्णविं ॥ ४१० ॥
 कां प्रतिर्भाती चोखटे । समोरिला चित्र उमटे ।
 तैसा अर्जुने आणि वैकुण्ठें । नांदतुसे बोधु ॥ ११ ॥
 तर्हि बापु वस्तुस्वभाउ । फांवे तवं तवं गोडिये थाउ ।
 ह्यणौनि अनुभवियांचा राउ । अर्जुनु ह्यणे ॥ १२ ॥
 जी व्यापकपण बोलतां । निरुपाधिक जें अनंता ।
 स्वरूप प्रसंगता । बोलिले देउ ॥ १३ ॥
 तें एकु वेळु अवेंगवाणें । कीजो कां मज सांघणें ।
 एथ द्वारकानाथु ह्यणे । भलें केलें ॥ १४ ॥
 पै आह्वासि हें कोडें । अखंड बोलें आवडे ।
 परि काइ किजे न जोडे । पूसतें तैसें ॥ १५ ॥
 आजि मनोरथासि फल । जोडलासि तूं केवल ।
 जें तोंड भरुनि निखल । आलासि पूसों ॥ १६ ॥
 जें अद्वैता वरि भोगिजे । तिये अनुभविचें तूं विरजें ।
 पूसौनि मज माझें । देतासि सुख ॥ १७ ॥
 जैसा आरिसा आलेयां जवलां । दीसे आपणपेयां आपुला डोला ।
 तैसा संवादियां तूं निर्मला । शिरोमणि ॥ १८ ॥
 तुवां नेणौनि पुसावें । मग आह्मिं परिसौनि बैसावें ।
 तो पाडु एथ न मिरवे । सोइरेया ॥ १९ ॥
 ऐसें ह्यणौनि आलगिलें । कृपादृष्टी अवलोकिलें ।
 मग मावौतें आदीरलें । बोल्लें अर्जुनेसिं ॥ ४२० ॥

दों हांटेि एक बोलणें । दोहि चरणि एक चालणें ।
 तैसें पूसणें सांघणें । तूञ्जे माञ्जे ॥ २१ ॥
 एवं आक्षि तुक्षि बो एथें । देखावे एकार्थाथें ।
 सांघतें पूसतें तेथें । दोन्हीं एक ॥ २२ ॥
 ऐसा भूलला मोहें । देउ आलंगिला न्हाए ठायें ।
 मग बिहाला हणगे नोहे । आवडी अजुनेसि ॥ २३ ॥
 जालें इक्षुरसाचें डाल । तन्दि लवण देणें किडल ।
 जें संवादसुपाचें रसाल । नासैल थितें ॥ २४ ॥
 आदि चि आह्मां यया काहिं । नरनारायणा सीनें नाहिं ।
 परि आतां जिरो माझां ठांइ । वेगु माझा ॥ २५ ॥
 इया बुद्धी सहसा । श्रीकृष्णु हणगे वीरेशा ।
 पैं गा तो तुवां कैसा । प्रष्णु केला ॥ २६ ॥
 जो अर्जुनु कृष्णि विरत होता । तो परतौनियां माघौता ।
 प्रश्नावलिची कथा । आइकों धांवला ॥ २७ ॥
 एथ सगद्गदें बोलें । अर्जुनें जी हणितलें ।
 निरुपाधिक आपुलें । स्वरूप सांघां ॥ २८ ॥
 एया बोला तो शांङ्कि । तें चि सांवावेया लागि ।
 उपाधि दोहिं भागि । निरूपितु असे ॥ २९ ॥
 पूसट्यां निरुपहित । उपाधि कां सांघे प्रस्तुत ।
 हें कोण्हां हिं एथ । गमे जरि ॥ ४३० ॥
 तारि ताकाचे अंश फेडणें । यया चि नावं लोणीं काढणें ।
 चोखाचिये शुद्धि तोडणें । कीड चि जेविं ॥ ३१ ॥
 बाबुलि सारावी हातें । परि पाणीं असे आइतें ।
 अभ्र गेलेयां गगन तें । सिद्ध चि किं ॥ ३२ ॥
 वारिलु कोंडेयाचा गुंडाला । संडुनु केलेयां वेगला ।
 कणु घेंतां विरंगुला । असे काहिं ॥ ३३ ॥

तैसा उपाधि उपहिता । सेवटु जेथ विचारितां ।
 तें कोण्हां हिं न पूसतां । निरुपाधिक ॥ ३४ ॥
 जैसें न संघणें वरि । बाला पतिसि रूप करी ।
 बोलु निमालेपणें विवरी । अचर्च्यातें ॥ ३५ ॥
 पां सांघणेया जोगें नव्हे । तेथिचें सांघणें ऐसें आहे ।
 ह्यणौनि उपाधि लक्ष्मीनाहें । बोलिजे आदिं ॥ ३६ ॥
 पाडिवेयाची चंद्ररेखा । निरुता दावावेया शाखा ।
 दाविजे तेविं औपाधिका । बोली इया ॥ ३७ ॥
 मग ह्यणे गा सव्यसाची । पैं इयें संसारपाटणिची ।
 वस्ति सवियां टांची । दुपुरुखीं ॥ ३८ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ॥
 क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोक्षर उच्यते ॥ १६ ॥
 जैसें आववां चि गगनिं । नांदतें दिवोराती दोनी ।
 तैसे संसारराजधानिं । दोन्ही चि हे ॥ ३९ ॥
 आणीकु हिं तांजा पुरुखु आहे । परि एयां दोहिंचें नावं न साहे ।
 जो उदैला गावोंसि खाए । दोन्हितें ययां ॥ ४० ॥
 परि ते तवं गोठि असो । आदिं दोनी चि हे परियसों ।
 जे संसारग्रामु वसों । आले असति ॥ ४१ ॥
 एकु आंधळा वेडा पंगु । एकु सर्वांगिं पुरता चांगु ।
 परि ग्रामगुणें संगु । घडला दोघां ॥ ४२ ॥
 तेयां माजि एका नावं क्षर । एरातें ह्यणिजे अक्षर ।
 इहिं दोहिं चि परि संसार । कोंदळा असे ॥ ४३ ॥
 आतां क्षर तो कवणु । अक्षर किंलक्षणु ।
 हा अभिप्रा३० संपूर्णु । विवंचूं गा ॥ ४४ ॥
 तारि महदहंकारा । लागौनि धनुर्द्वारा ।
 तृणांतिचा पांगोरा । वेहिं पैं गा ॥ ४५ ॥

जें काहिं साने थोर । चालतें अथवा थिर ।
 किबहुना गोचर । मनबुद्धिसि ॥ ४६ ॥
 जेतुलें पांचभौतिक घडतें । जें जें नावरूपा सांपडतें ।
 गुणत्रयाचां पडतें । कामठां जें ॥ ४७ ॥
 भूताकृतिकें नाणें । घडत भांगारें जेणें ।
 काळारिं जुं खेलणें । जिहिं कवडा ॥ ४८ ॥
 जाणणेनि चि विपरीतें । जें जें काहिं जाणिजतें ।
 तें प्रतिक्षणिं निमतें । होउनियां ॥ ४९ ॥
 आगा काढौनि भ्रातिचे दांग । उभवी स्त्रिष्टिचे आंग ।
 हें असो बहू जग । जेया नावं ॥ ४५० ॥
 पै अष्टधा भिन्न ऐसें । जें दाविलें प्रकृतिमीसें ।
 जें क्षेत्रद्वारें सतिसें । भागिं केलें ॥ ५१ ॥
 हें मागिलें सांघों केती । आगा आतां चि जें प्रस्तुतिं ।
 रखाकाररूपकरीती । निरूपिलें ॥ ५२ ॥
 तें आधवें चि साकारें । कल्पौनि आपणापेयां पूरें ।
 जाळें असे तदनुसारें । चैतन्य चि ॥ ५३ ॥
 जैसा कुहां आपण चि बिंबे । सींहु प्रतिबिंब पांतां खोभे ।
 खोभला समारंभे । घली तेथ ॥ ५४ ॥
 कां सलिलिं असत चि असे । व्योमा वारि व्योम बिंबे जैसें ।
 अद्वैत होउनि तैसें । द्वैतें घेपें ॥ ५५ ॥
 अर्जुना गा यया परी । साकार कल्पौनि पुरी ।
 आत्मा विस्मृतिची करी । नीद तेथ ॥ ५६ ॥
 पै स्वप्निं सेजारु देखिजे । मग पहुडणें जैसें कीजे ।
 तैसें पूरि झयन जाणिजे । आत्मेयासि ॥ ५७ ॥
 पाठिं तिये नीदेचेनि भरें । मिं सुखी दुःखी ह्यणतु घोरें ।
 अहंममाधिचेन थोरें । असणाए सादु ॥ ५८ ॥

हा जनकु हे माता । हा मीं गौर हीनु पुरता ।
 पुत्र वित्त कांता । माझी हे नां ॥ ५९ ॥
 ऐसेयां वेंघौनि स्वमा । थांवतु भवस्वर्गाचिया राना ।
 तेया चैतन्या नावं अर्जुना । क्षरु पुरुखु गा ॥ ४६० ॥
 आतां क्षेत्रज्ञु नावें एणें । जेयातें बोलणें ।
 जगिं जीउ ह्यणणें । जिये दशेतें ॥ ६१ ॥
 जो आपुलेन विसरें । सर्व भूतत्वे अनुकरे ।
 तो आत्मा बोलिजे क्षरें । पुरुखु नावें ॥ ६२ ॥
 जो वस्तुस्थिती पुरता । ह्यणौनि आली पुरुषता ।
 वरि देहपुरीं निदैजता । पुरुषु नावें ॥ ६३ ॥
 आणि क्षरपणाचा नाथिला । आलु यया ऐसेनि आला ।
 तिये उपाधी आतला । ह्यणौनियां ॥ ६४ ॥
 जैसी खलालिचेया उदका । सरिसी उदले चंद्रिका ।
 तैसा विकारां औपाधिकां । ऐसा चि गमे ॥ ६५ ॥
 कां खलाल मोटका सोसे । आणि चंद्रिका तैसी चि भंशे ।
 तैसा उपाधिनाशि न दीसे । औपाधिकु फुरे ॥ ६६ ॥
 ऐसें उपाधिचेनि पाडें । क्षणिकत्व यया जोडे ।
 तेणें खोंकरपणें घडे । क्षरु नावं ॥ ६७ ॥
 एवं जीवचैतन्य आघवें । हें क्षरु पुरुखु जाणावें ।
 आतां रूप करं वरवें । अक्षरासि ॥ ६८ ॥
 तरि अक्षरु जो दूसरा । पुरुषु पै धनंजया ।
 तो मध्यस्थु गा गिरिवरा । मेरु जैसा ॥ ६९ ॥
 जें तो पृथ्विपातालस्वर्ग । इहिं न भेदे तिहिं भागि ।
 तैसा ज्ञानाज्ञानांगि । पडे ना जो ॥ ७० ॥
 नां यथार्थज्ञानें एरु होणें । ना अन्यार्थत्वे दूजें घेणें ।
 ऐसें देहिं निखल जें नेणणें । तें तें चि रूप ॥ ७१ ॥

पांसुता निःशेष जाए । नां घटमांडादिकिं होए ।
 तेथा मृत्पिडा ऐसैं आहे । मध्यस्थु जो ॥ ७२ ॥
 पै आटौनि गेलेयां सागर । मग तरंग ना नीर ।
 तथा ऐसिया अनाकार । जे कां दशा ॥ ७३ ॥
 पार्था जागणें तरि घुडे । परि स्वप्नाचें कांहि न मांडे ।
 तैसीये नीदे सांकडें । निहालिजे ॥ ७४ ॥
 विश्व आघवें मावळें । आणि आत्मबोधु नुजळे ।
 तिये अज्ञानदशे केवळे । अक्षरु नावं ॥ ७५ ॥
 सर्वां कळिं संडिलें जैसें । चांदपण उरळें अवसें ।
 रूप जाणें तैसें असे । अक्षराचें ॥ ७६ ॥
 पै सर्वोपाधिविनासें । हे जीवदशा जेथ पैसे ।
 फलपाकिं तैसें । झाड बाजि ॥ ७७ ॥
 तैसें उपाधिसिं उपहित । थोकौनि ठाक्रे जेथ ।
 तेयातें अव्यक्त । बोलति गा ॥ ७८ ॥
 जेयासि गा बीजभाउ । वेदान्ति केला ऐसा आहे ।
 तो तेया पुरुषा ठाउ । अक्षराचा ॥ ७९ ॥
 जेथौनि अन्यथा ज्ञान । फांकौनि जागृति स्वप्न ।
 नानाबुद्धिचें रान । रिगळें असे ॥ ८० ॥
 जीवत्व जेथौनि किरीटी । विश्व उठवित चि उठी ।
 ते उभयबुद्धिची मीठी । अक्षरु पुरुषु ॥ ८१ ॥
 एरु क्षरु पुरुषु कां जनिं । जिहिं खेले जागृतिस्वप्निं ॥
 तिया अवस्था जिया दोहिं । वियाळा गा ॥ ८२ ॥
 पै अज्ञान घनमुपुति ॥ ऐसैसी जे ख्याति ।
 इया उणिवे प्राति । ब्रह्माची जे ॥ ८३ ॥
 साच चि पुडुतीं वीरा । जरि नैयंता स्वप्नजागरा ।
 वीर ब्रह्मभाउ साचोकारा । हणों यंता ॥ ८४ ॥

परि प्रकृतिपुरुषे दोन्हि । अत्रे जाळि जिये गगनि ।
 क्षेत्रक्षेत्रज्ञ स्वप्नि । देखिलीं जिये ॥ ८५ ॥
 हे असो अधोशाखा । यया संसाररूपा रंखा ।
 मूल तें पुरुखा । अक्षराचें ॥ ८६ ॥
 हा पुरुषु कां हाणिजे । जें पूर्णपणें चि निजें ।
 पै मायापुरिं पडुडिजे । तेणें हिं बोलें ॥ ८७ ॥
 आणि विकारांची जे वारी । ते विपरीतज्ञानाची परी ।
 नेणिजे तिये माझारिं । ते सुषुप्ति हा ॥ ८८ ॥
 हाणौनियां आपैसें । क्षरणें यया नसे ।
 आणि कहीं चि हा न नसे । ज्ञाना उणें ॥ ८९ ॥
 यया लागि हा अक्षर । ऐसा वेदांतिं डौर ।
 केला देशि थोर । सिद्धांतांचां ॥ ९० ॥
 ऐसें जीवकार्यकारणें । जेया मायासंगु चि लक्षणें ।
 अक्षर पुरुषु जाणें । चैतन्य तें ॥ ९१ ॥
 आतां अन्यथाज्ञानिं । दोनी अवस्था जिया जनिं ।
 तिया हारपति घनिं । अज्ञानतत्विं ॥ ९२ ॥
 तें अज्ञान ज्ञानिं बुडालेयां । ज्ञानें कीर्त्तिमुखत्व केलेयां ।
 जैसा वन्हि काष्ठ जालौनियां । स्वयें जलें ॥ ९३ ॥
 तैसें अज्ञान ज्ञानें नेलें । आपण वस्तु होउनु ठेलें ।
 ऐसें जाणणेन विण उरलें । जाणतें जें ॥ ९४ ॥

उत्तमःपुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥

यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्ययमीश्वरः ॥ १७ ॥

आगा तो उत्तमु पुरुषु । जो तृतीयु कां निष्कर्षु ।
 दोहीं इं हुनु आणिकु । आदिलां जो ॥ ९५ ॥
 सुषुप्ती आणि स्वप्ना । पासौनु बहू अर्जुना ।
 जाणणें जैसें आना । बोधाचें चि ॥ ९६ ॥

कां रश्मि हान मृगजला । पासौनि अर्कमंडला ।
 अफाटु तैसा वेगला । उत्तमु गा ॥ ९७ ॥
 नातरि काष्ठिचा काष्टाहूनि । अनारिसा जैसा वन्हि ।
 तैसा क्षराक्षरा पासौनि । आनु चि तो ॥ ९८ ॥
 पैं प्रसौनि आपुलिया मर्यादा । एक करीतु नदीनदां ।
 उठिला कल्पातिचा उदावादा । एकार्णवाचा ॥ ९९ ॥
 तैसें स्वप्न ना सुषुप्ति । जागराची गोठि चि नाथि ।
 जैसी गलिली दिवोराती । प्रलयतेजें ॥ ५०० ॥
 मग आपण ना दुजें । असे नसे हें नेणिजे ।
 अनुभौ निर्बुजें । बुडाला जेथ ॥ १ ॥
 ऐसैसैं आथि काहिं । तें तो उत्तमु पुरुषु पाहिं ।
 जें परमात्मा इहिं । बोलिजे नामीं ॥ २ ॥
 तें हिं एथ न मिसलतां । बोलिलें जीवत्वे पांडुसुता ।
 जैसी बुडणेयाची वार्ता । थडिए किजे ॥ ३ ॥
 तैसें विवेकाचिये कांठिं । उभें केलेयां किरीटी ।
 पारावाराचिया गोठि । करणें वेदां ॥ ४ ॥

यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः ॥

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

ह्यणौनि पुरुष क्षराक्षर । दोन्हि देखौनि अनावर ।
 ययातें ह्यणति पर- । आत्मरूप ॥ ५ ॥
 अर्जुना ऐसिये परी । परमात्माशब्द वेन्हि ।
 सूचिजे गा अवधारिं । पुरुषोत्तमु ॥ ६ ॥
 य-हविं नबोलणेन बोलणें । जेथिचें सर्व नेणिवां जाणणें ।
 काहिं चि नहोउनि होणें । जें वस्तु गा ॥ ७ ॥
 सोहं तें हिं अस्तबलें । जेथ सांगणें चि मूकावलें ।
 दृष्टत्वोसिं विरालें । दृश्य जेथ ॥ ८ ॥

आतां बिंबा आणि प्रतिबिंबा । माजि कैची ही लणों नैए प्रभा ।
 जन्हि कैसेन हिं लाभा । जाए चि ना ॥ ९ ॥
 कां प्राणा आणि फुला दोहिं । वृत्ति असे माझारिणं ठांइ ।
 न दीसे तन्हि नाहिं । बोलों नैए ॥ ५१० ॥
 तैसें द्रष्टा दृश्य हें जाए । मग कोणु लणु काइ आहे ।
 हें अनुभवे चि पाहे । रूप जेया ॥ ११ ॥
 जो प्रकाश्यें विण प्रकाशु । जो ईशितव्यें विण ईशु ।
 आपणेन चि अवकाशु । वसवितु असे ॥ १२ ॥
 जो नादें आइकिजता नादु । स्वादें चाखविजता स्वादु ।
 जो भोगिजतु असे आनंदु । आनंदें चि ॥ १३ ॥
 सुखासि सुख जोडलें । जें तेज तेजासि सांपडलें ।
 भून्य हिं बुडलें । शून्य जियें ॥ १४ ॥
 तो पूर्णतेचा पारिणामु । पुरुषु गा सर्वोत्तमु ।
 विश्रांतिचा विश्रामु । विराला जेथ ॥ १५ ॥
 जो आकाशा हि वारे उरता । ग्रासातें हिं प्रसुनि पुरता ।
 जो बहुतें पाडें बहुता । पासौनि बहू ॥ १६ ॥
 पै नेणतेया प्रती । रूपेपणाची प्रतीती ।
 रूपें नोहौनि शुक्ति । दावी जेविं ॥ १७ ॥
 कां नाना अलंकारदसे । सोनें न लपतां आलें असे ।
 विश्व नोहौनि तैसें । विश्व जो धरी ॥ १८ ॥
 हें असो जल तरंगा । नाहिं सिनानेपण जेविं गा ।
 तेविं सत्ताप्रकाशु जगा । आपण चि जो ॥ १९ ॥
 आपुलेयां संकोचविकासा । आपण चि रूप वीरेशा ।
 हा जळिं चांदु हान जैसा । समूठ गा ॥ ५२० ॥
 तैसा विश्वपणें काहिं होए । नां विश्वलांवि कें हि जाए ।
 जैसा रातींदिहो नोहे । द्विधा रवि ॥ २१ ॥

तैसा काहिं चि कोणही कडे । काइसेन हि वेचिं न पडे ।

जेयाचें सांकडें । जेयासि चि ॥ २२ ॥

जो आपणपें चि आपणेयां । प्रकाशितुसे धनंजया ।

काइ बहु बोलों जेया । नाहिं दूजें ॥ २३ ॥

तो गा मीं निरुपाधिकु । क्षराक्षरोत्तमु एकु ।

हणौनु हणणे वेदलोकु । पुरुषोत्तमु ॥ २४ ॥

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमं ॥

स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥

परि असो ऐसेया । मज पुरुषोत्तमातें धनंजया ।

जाणे जो पाहालेयां । ज्ञानमित्रें ॥ २५ ॥

चेइलेयां आपुलें ज्ञान । जैसें नाहिं चि होए स्वप्न ।

तैसें फुरतें जेया त्रिभुवन । वाॐ जालें ॥ २६ ॥

कां हातिं घेतली माला । फीटे सर्पाभासाचा कांटाळा ।

तैसें माझेन बोधें टवाला । नांगवे जो ॥ २७ ॥

लेणें सोनें चि जो जाणे । तो लेणेपण तें वाॐ हणणे ।

तेविं जाणौनि जेणें । वालिला भेदु ॥ २८ ॥

मग सर्वत्र सच्चिदानंदु । मीं चि एकु स्वतःसिद्धु ।

जो आपणेनासिं भेदु । नेणौनि जाणे ॥ २९ ॥

तैसें चि सर्व जाणितलें । हें इं हणणें थुकुलें ।

जें तेयां सर्व उरलें । द्वैत नाहिं ॥ ५३० ॥

हणौनि माझेया भजना । उचित तो चि अर्जुना ।

गगन जैसें आलंगना । गगनाचेया ॥ ३१ ॥

क्षीरसागरा परगुणें । किजे क्षीरसागरपणें ।

कां अमृत चि होउनि मिलणें । अमृतिं जेविं ॥ ३२ ॥

साडपन्हरां मिसलावें । तारे पन्हरें चि जेविं होआवें ।

तेविं मीं जालेयां संभवे । भक्ति माझी ॥ ३३ ॥

हांगा सिंधुसि आनी होंति । तरि गंगा कैसेन फिरे माधौती ।
 ह्यणौनि मीं नोहतां भक्ति । अन्वयो आहे ॥ ३४ ॥
 ऐसेया लागि सार्थि प्रकारिं । जैसा कळोळुं अनन्यु सागारिं ।
 तैसा मातें अवधारीं । भजिनला तो ॥ ३५ ॥
 सूर्या आणि प्रभे । एकवंकै जेणें लोभें ।
 तो पाडु मानुं लाभे । भजना तेया ॥ ३६ ॥
 एवं कथिलेयादारम्य । जें हें सर्वशास्त्रैकलम्य ।
 उपनिषदां सोरम्य । दशदलांचें ॥ ३७ ॥
 हें जें ब्रह्माचेनि नवनीतें । व्यासुप्रज्ञेचेनि हातें ।
 मथुनि काढिलें आइतें । सार आर्क्षि ॥ ३८ ॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ॥

एतद्ब्रह्म बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ २० ॥

जे ज्ञानामृताची जान्हवी । जे आनंदचंद्रिची सतरावी ।
 विचारक्षीरणविची नवी । लक्ष्मी जे हे ॥ ३९ ॥
 ह्यणौनि आपुलेनि पदें वर्णें । अर्थाचेनि जीवें प्राणें ।
 मीं वांचौनि होउं नेणें । आन काहिं ॥ ५४० ॥
 क्षराक्षरत्वे संमोहर जालें । तें पुरुषत्वे वालिलें ।
 मग मज सर्वस्व दीधलें । पुरुषोत्तमि ॥ ४१ ॥
 ह्यणौनि जागिं गीता । मियां आत्मेन पतिव्रता ।
 जे हे प्रस्तुतिं आतां । तुवां आकर्णिणी ॥ ४२ ॥
 साच चि बोलाचें नोहे शास्त्र । पै संसार जीणतें हें शस्त्र ।
 आत्मा अवतरवितें मंत्र । अक्षरें इयें ॥ ४३ ॥
 पारि तुज पुढां सांगितलें । तें अर्जुना ऐसें जालें ।
 गोप्य धन काढिलें । माझे आजि ॥ ४४ ॥
 मज चैतन्यशंभुचां माथां । जो निक्षेपु होता पार्था ।
 तेया गौतमु जालासी आस्था । निधि तुं गा ॥ ४५ ॥

चोखटिवां आपुलिया । पुढिला उगणा घेयावेया ।
 तेया दर्पणाची परी धनंजया । केली आह्वां ॥ ४६ ॥
 कां भरलें चंद्रतारांगणिं । नभ सिंधु आपणेयां आणी ।
 तैसा गीतेसिं मीं अंतष्कराणिं । सूदलां तुवां ॥ ४७ ॥
 जें त्रिविधमलकटां । संडिलासिं सूभटा ।
 ह्मणौनि गीतेसिं मज वसैठा । जालासिं गा ॥ ४८ ॥
 परि हें काइ बोलें गीता । जे हे माझी उन्नेखलता ।
 जाणे तो समस्तां । मोहां मूके ॥ ४९ ॥
 सेविली अमृतसरिता । रोगु दवडुनि पांडुसुता ।
 अमरपण उचिता । देउनि घली ॥ ५० ॥
 तैसी गीता हे जाणितळियां । काइ विस्मो मोहो जावेया ।
 परि आत्मज्ञानें आपणपेयां । गीलिजे एथ ॥ ५१ ॥
 जेया आत्मज्ञानाचां ठांडं । कर्म आपुलेया जीविता पाईं ।
 होउनियां उतराईं । लया जाए ॥ ५२ ॥
 हारपलें दाउनि जैसा । मागु सरे वीरविलासा ।
 ज्ञानें कळसु वळवे तैसा । कर्मप्रासादा ॥ ५३ ॥
 ह्मणौनि ज्ञानियां पुरुखां । कृय करूं सरलें देखां ।
 ऐसा अनाथाचा सखा । बोलिला तो ॥ ५४ ॥
 तें श्रीकृष्णवदनामृत । पार्थु भरुनि असे उंसंडत ।
 तवें व्यासकृपा एत । संजयासिं ॥ ५५ ॥
 तो घृतराष्ट्र राया । सूत असे पान करावेया ।
 ह्मणौनि जीवितांतु तेया । नव्हे चि भारी ॥ ५६ ॥
 यन्हविं गीताश्रवणभवसरिं । आवडों लागतां अनधिकारी ।
 परि सेखिं ते चि उजिरी । पांति लाभली ॥ ५७ ॥
 जेधवां द्राक्षिं दूध घातलें । तेधवां वायां गेलें गमळें ।
 परि फलपार्किं दूणावलें । देखिलें जेविं ॥ ५८ ॥

तैसि हरिवक्रिचीं आखरें । संजयें सांघिठलिं आदरें ।
 तिहिं अंधु तो अवसरें । सुखिया जाला ॥ ५९ ॥
 तें चि मन्हाटेनि विन्यासें । मियां उन्मेखें ठसेंठोमसें ।
 जाणों नेणों तैसें । निरोपिलें ॥ ५६० ॥
 सेवतिए अरसिकां हिं । आंग पांतां विशेष्टु नाहिं ।
 परि सौरभ्य नेलें तिहिं । अमारिं जाणिजे ॥ ६१ ॥
 तैसें घड तें प्रमेय घेइजे । न्यून तें तें मज देइजे ।
 जें नेणणें हें साहाजें । रूप किं बाला ॥ ६२ ॥
 परि नेणतें जहिं होए । तहिं देखौनि बापु किं माए ।
 हरिखु कें हिं न माए । चोज करिति ॥ ६३ ॥
 तैसें संत माहिएर माझे । तुझि मीनलेयां मीं लाडैजे ।
 तें चि ग्रंथाचेनि व्याजें । जाणिजो जी ॥ ६४ ॥
 आतां विश्वात्मकु माझा । स्वामी श्रीनिवृत्तिराजा ।
 तो अवधारु वाक्यपूजा । ज्ञानदे० हणें ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो

नाम पंचदशोऽध्यायः ।

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



ज्ञानेश्वरी

अध्याय सोळावा

श्रीकृष्णाय नमः ॥

मावळवितु विश्वाभासु । उवल उदैजेला चंडांशु ।
अद्वयाअब्जनीविकाशु । वंदूं आतां ॥ १ ॥
जो अविद्ये राती रुसौनियां । गिळी ज्ञानअज्ञानाचिया चांदणियां ।
जो सुदीनु करी ज्ञानियां । स्वबोधाचा ॥ २ ॥
जेणें विवळतिये सवळे । लाहूनि आत्मज्ञानाचे डोले ।
सांडीति देहअहंतेचें आंविंसारें । जीवपक्षी ॥ ३ ॥
ळिंगदेहकमलाचां । पोटीं वेचतेया चिद्धमराचां ।
बंदिं मोक्षु जेयाचां । उदैला होये ॥ ४ ॥
शब्दाचिया अशंकडी । भेदनदिचां दोहीं थडीं ।
अरडांतें विरहवेडी । बुद्धि बोधीं ॥ ५ ॥
तें याचकाचें मिथुन । समरस्याचें समाधान ।
भोगवि जो चिद्रगन । भवनदिवा ॥ ६ ॥
जेणें पहालेनि पाहाटे । भेदाची चोखेल फीटे ।
रीगति आत्मानुभववाटे । पंथिक योगी ॥ ७ ॥
जेयाचेंनि विवेकाकिरणसंगें । उन्मेखसूर्यकांत—स्फुलिंगें ।
दीपले जाटीति दांगें । संसाराचीं ॥ ८ ॥

तैसिं हरिवक्त्रिचीं आखरें । संजयें सांघिचलिं आदरें ।
 तिहिं अंधु तो अवसरें । सुखिया जाला ॥ ५९ ॥
 तें चि मन्हाटेनि विन्यासें । मियां उन्मेखें ठसेंठोमसें ।
 जाणों नेणों तैसें । निरोपिलें ॥ ५६० ॥
 सेवंतिए अरसिकां हिं । आंग पांतां विशेषु नाहिं ।
 परि सौरभ्य नेळें तिहिं । भ्रमरिं जाणिजे ॥ ६१ ॥
 तैसें धड तें प्रमेय घेइजे । न्यून तें तें मज देइजे ।
 जें नेणणें हें साहाजें । रूप किं बाला ॥ ६२ ॥
 परि नेणतें जहिं होए । तहिं देखौनि बापु किं माए ।
 हरिखु कें हिं न माए । चोज करिति ॥ ६३ ॥
 तैसें संत माहिपर माझे । तुझिं मीनलेयां मीं लाडैजे ।
 तें चि ग्रंथाचेनि व्याजें । जाणिजो जी ॥ ६४ ॥
 आतां विश्वात्मकु माझा । स्वामी श्रीनिवृत्तिराजा ।
 तो अवधारु वाक्यपूजा । ज्ञानदे० हणें ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो

नाम पंचदशोऽध्यायः ।

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥



परि रंके अमृतसागर । देखिलेयां पडे उचिताचा विसर ।

मग करुं धावे पाहुणेर । शाकांचा तेया ॥ २२ ॥

तेथ शाकु किरु बहुतु हागात्रा । तेयाचा हर्षवेगू चि तो ब्रेयाथा ।

उजळं दिव्यतेजा हाथेवा । ते भक्ति पावी ॥ २३ ॥

बाला उचित जाणणे होये । तरि बालपण चि के आहे ।

परि साच चि एरि माए । हणौनि तोषे ॥ २४ ॥

हां गा गावरसेया भरलें । पाणी पाये देंत वरि आळें ।

तें गंगा काडू देखिलें । आनी दीठी ॥ २५ ॥

जी चांगु कैसा अपकार । किं तो मानूनि प्रियउपकार ।

तोषे चि ना सारंगधर । पूतनेसि ॥ २६ ॥

कां आधारेनि खतलें अंबर । जालेयां दिवसनाथा समोर ।

तेणे तें परतें सर । हणितळें कायी ॥ २७ ॥

तेवि भेदबुद्धिचिये तुळें । घालूनि सूर्यश्लेषाचें कांटाळें ।

तूकिलासि तें अल्लें । पुरें करीं जी ॥ २८ ॥

जिहीं ध्यानाचां डोलां पाहिलासि । वेदादिवाचा वानिलासि ।

जें उपसाहिलें तेयांसि । तें आह्वां करीं ॥ २९ ॥

परि आजि मीं तूझा गुणीं । लांचवलां अपराधु न गणीं ।

भलेतें करीं आधधणी । नूठिं कदां ॥ ३० ॥

मियां गीता येणें नावें । तूझे यश हें अमृत सुहावें ।

वानुं लाधलेति तें दूणेनि धावें । दैवलदैवं ॥ ३१ ॥

माक्षिया सत्यवाचा तप । केलें बहुत कल्प ।

तेया फलाचें हें महाद्वीप । पातली प्रभू ॥ ३२ ॥

पुण्यें पोसिलिं असाधारणें । तियें तुझे गुण वानणें ।

देउनि मज उरिणें । जालिं आजि ॥ ३३ ॥

जी जीविताचां आडवीं । आंनुडलेयां मरणगावीं ।

ते अवदशा चि आववीं । फीटली हे ॥ ३४ ॥

जे गीतापणें नावणिगी । जे अविद्या जीणौनि दाटुगी ।
 ते कीर्ति तूझी आद्दां जोगी । वानावेया जाली ॥ ३५ ॥
 पै निर्धनां घरीं वानवसें । महालक्ष्मी एउनि बैसे ।
 तेया ही वरतें निर्द्धन ऐसें । ह्मणों ए कायि ॥ ३६ ॥
 अंधकाराचेया ठाया । दैवें सूर्यो आलेयां ।
 तें आंधारु चि जगा येया । प्रकाशु नोहे ॥ ३७ ॥
 जेया देवाची पाहातां थोरी । विश्व परमाणु हिं दशा न धरी ।
 तो भक्ताचेया सरोभरी । नव्हे चि कायि ॥ ३८ ॥
 तैसें मीं गीता वाखाणीं । ये खपुष्पाची किर तुरंबणी ।
 परि समर्थें तुवां सिरियाणीं । फेडिली ते ॥ ३९ ॥
 ह्मणौनि तूझेनि प्रसादें । मीं गीता पयें अगार्थें ।
 निरोपीन जी विशदें । ज्ञानदेउ ह्मणे ॥ ४० ॥
 तारि अध्यायिं पन्हारावां । श्रीकृष्णें तेया पांडवा ।
 शास्त्रसिद्धांतु आघवा । उगाणिला ॥ ४१ ॥
 जें वृक्षरूप परिभाषा । केलें उपाधिरूप अशेषा ।
 सद्वैयें जैसें दोषां । आंगलीनां ॥ ४२ ॥
 आणि कूटस्थु जो अक्षर । दाविला पुरुषाकार ।
 तेणें उपहिता ही आकार । चैतन्या केल ॥ ४३ ॥
 पाठिं उत्तमु पुरुषु । शब्दाचें करुनि माष ।
 दाविलें चोख । आत्मतत्वां ॥ ४४ ॥
 आत्मविषयीं आंतुवट । साधन गा आंगदट ।
 ज्ञान होये हें इं स्पष्ट । चावललां ॥ ४५ ॥
 ह्मणौनि ये अध्याइं । निरूप्य नुरे चि काहीं ।
 आतां गुरुशिष्यां दोहीं । स्नेहो लाहाणां ॥ ४६ ॥
 एवंच ये विशि किर । तेयातें बुझाविलें अपार ।
 परि मुमुक्षु इतर । साकांक्षु जाले ॥ ४७ ॥

जे मज पुरुषोत्तमा । ज्ञानें भेटे सुवर्मा ।
 तो सर्वज्ञ ते चि सीमा । भक्तिची ही ॥ ४८ ॥
 ऐसें जें त्रैलोक्यनायकें । बोलिलें अध्यायांतश्लोकें ।
 तेश्च ज्ञान चि बहू येकें । तोषें वानिलें ॥ ४९ ॥
 भरनु प्रपंचा घोटु । कीजे देखतां चि देखतेया द्रष्टु ।
 आनंदसाम्राज्यां पाटु । बांधिजे जीवा ॥ ५० ॥
 एवढेया लाभाचा उपावो । आनु नाहिं चि ह्यणे देउ ।
 सम्यग्ज्ञाना हो राउ । उपाया पुढुतीं ॥ ५१ ॥
 ऐसे आत्मजिज्ञास जे होंते । तोखलेनि चित्तें ।
 आदरें तेया ज्ञानातें । बोवाळिलें जीवें ॥ ५२ ॥
 आर्ता आवडि जेथ पडे । तेयाची अवसरी पुढें पुढें ।
 रिगो लागे हें घडे । प्रेम ऐसें ॥ ५३ ॥
 क्षणौनि जिज्ञासुचां पैकीं । ज्ञानीं प्रीति होये नां जवं नीती ।
 तवं योगक्षेमु ज्ञानविधिं । स्फुरला चि ॥ ५४ ॥
 क्षणौनि तें चि सम्यग्ज्ञान । कैसेनि होये स्वाधीन ।
 जालेयां वाडजतन । केवि निफजे ॥ ५५ ॥
 कां उपजों चि जेणें न लाहे । जें उत्पन्न हीं अग्रांटा सुये ।
 तें ज्ञान काइ बोखटें आहे । हें जाणावें ॥ ५६ ॥
 मग जाणों तेयाचें वीरुं । तेया ही वाटवाहाणी विचारुं ।
 ज्ञाना हित तें चि करुं । सर्वभावें ॥ ५७ ॥
 ऐसा जिज्ञासु तुह्नीं समस्तीं । भावो जो धरिला असे चित्तीं ।
 तो पुरवावेया लक्ष्मीपती । बोलिजैल ॥ ५८ ॥
 ज्ञानासि पुनर्जन्म जांडे । आपुली विश्रांति ही वारि वाडे ।
 जिया संपत्ती तें पत्राडे । सांघैल दैवी ॥ ५९ ॥
 साहाजें इष्टानिष्टकरणीं । दोघी चि या कवतिकिणी ।
 हे नवमाध्यायीं उयाणीं । केली होंती ॥ ६० ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः॥

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥

तेथ साउमा घेआवा उवात्रो । तवं मांडला आनु प्रस्ता ७० ।

तरि त्या प्रसंगे देवो । निरोपितसे ॥ ६१ ॥

तेया निरोपणाचेनि नावे । अध्यायपद सोलावे ।

लावणीं पाहातां जाणावे । मागिला वरि ॥ ६२ ॥

तरि हे असो प्रस्तुतीं । ज्ञानाचां हिताहितीं ।

समर्था या संपत्ती । दोन्हीं गा ॥ ६३ ॥

जे जे मुमुक्षां मार्ग बोलावी । मोहोरात्रिची धर्मदिवी ।

ते आदि तवं दैवी । संपत्ति आइक ॥ ६४ ॥

एथ एकु एकाते पोखी । ऐसे बहुत पदार्थ एकिं ।

संपजति ते लोकीं । संपत्ति ह्यणिपे ॥ ६५ ॥

दैव-सुखसंभवी । येथ दैवगुण-येकोपजीवी ।

जाली ह्यणौनि जाण दैवी । संपत्ति हे ॥ ६६ ॥

आतां तेया चि दैवगुणां । माक्षि घूरेचा बैसणां ।

बैसे तो आकर्णा । अभय ऐसे ॥ ६७ ॥

तरि न घळुनि महापुरीं । नेघपे बुडणेयांची सियारी ।

रोगु न गणिजे धरिं । पथ्याचिया ॥ ६८ ॥

तैसा कर्माभकर्माचेया मोहरा । उठूं नैदूनि अहंकारा ।

संसाराचा दरारा । सांडणे कां ॥ ६९ ॥

अथवा अव्ययभावनेचेनि पैसें । दूजे मानुनु आत्मा ऐसें ।

भववार्त्ता देशे दिसें । दवडणे जें ॥ ७० ॥

पाणी बुडवूं ये मीटाते । तवं मीठ चि पाणी आते ।

तेवि आपण जालेनि द्वैते । नासे भय ॥ ७१ ॥

आगा अभय येषं नावें । वोडिजे तें हें जाणावें ।
 सम्यग्ज्ञानाचें आवणें । भावणें हें ॥ ७२ ॥
 आतां सत्वशुद्धि हाणिजे । ते पैं एसी जाणिजे ।
 तरि जडे ना विज्ञे । वन्हि जैसा ॥ ७३ ॥
 कां पाडिवां वाढि न मगे । अवंसा तूटि सांडूनि मगे ।
 माक्षि हारिणु चंद्र आंगें । जैसा राहे ॥ ७४ ॥
 ना तरि वार्षिया सांडिली । ग्रीष्में नाहिं मांडिली ।
 ते नदी जैसी निवडली । निजरूपें ॥ ७५ ॥
 तैसी संकल्पविकल्पाची वोढी । सांडूनि रजतमाची कावडी ।
 भोगीति निजधामाची आवडि । बुद्धि उरे ॥ ७६ ॥
 इंद्रियवर्गे दाखविलेयां । विरुद्धा अथवा भलेया ।
 विरमां काहिं केलेयां । नुठी चित्तीं ॥ ७७ ॥
 गावां गेलेयां वल्लभु । पतिव्रतेचा विरहक्षोभु ।
 भलेतैसा हानिलाभु । न मनी जेवि ॥ ७८ ॥
 तेवि स्वरूप रुचलेपणें । बुद्धि जे ऐसें होणें ।
 ते सत्वशुद्धि हाणे । कंसहंता ॥ ७९ ॥
 आतां आत्मलाभविधिं । ज्ञानयोगा माक्षि येकीं ।
 जे आपुलिया टाकी । हांवे भरे ॥ ८० ॥
 तेथ सगलिये चित्तवृत्ती । त्यागु करणें या रीती ।
 निष्कामीं कां पूर्णाहुति । हुताशीं जैसी ॥ ८१ ॥
 कां सकुळिनें आपुली । आत्मजा कुळिची दीधली ।
 हे असो लक्ष्मी राहिली । मुकुंदि जेवि ॥ ८२ ॥
 तैसे नविकलेपणें । संयमाग्नीचा वृत्तिकां होणें ।
 तो तीजा गुणु हाणे । कृष्णनाथु ॥ ८३ ॥
 आतां देहें वाचा चित्तें । यथासंपन्नं वित्तें ।
 परि जालेया आर्त्तातें । न वंचणें जें कां ॥ ८४ ॥

फूलीं फलीं छाया । मूलीं पत्रीं हीं धनंजया ।
 बाटेचा न वंचे आलेयां । रंखु जैसा ॥ ८५ ॥
 तैसें मानौनि धन वेन्हीं । विद्यमानें आपुलां अवसरीं ।
 श्रंताचेया मनोहारी । उपेगा जाए ॥ ८६ ॥
 तेया नावें जाण दान । जें मोक्षनिधानिचें अंजन ।
 हें असो आइक चिन्ह । दमाचें जें ॥ ८७ ॥
 तरि विषयां इंद्रियांचे मिळगीं । जो उद्वैजत सुये विमुटणी ।
 तोडिजे खडुपाणी । पारकेयां ॥ ८८ ॥
 तैसा विषयजाताचा वारा । वाजों नेंदीं इंद्रियां द्वारां ।
 यमें बांधौनि प्रत्याहारा । वोपिजति ॥ ८९ ॥
 आंतुला चित्ताचें आंग वेन्हीं । प्रवृत्ति पलौनि माघारी ।
 आगि सुइजे दाहें द्वारीं । वैराग्याची ॥ ९० ॥
 श्वासोश्वासा होउनि बडुवसें । कृच्छ्रदि व्रतें खरपुसें ।
 उसंतितां रातिदिवसें । नाराणुक जें ॥ ९१ ॥
 पैं दमु ऐसें हाणिपे । तो हा जाण स्वरूपें ।
 यज्ञार्थे ही संक्षेपें । सांघों आतां ॥ ९२ ॥
 तरि ब्राह्मण करुनि धूरे । छियादिक्र पैली मेरे ।
 माझारि अधिकारें । आपुलालेनि ॥ ९३ ॥
 जेया जें सर्वोत्तम । भजनीय देवताधाम ।
 तें तेंणें यथागम— । विधी यजिजे ॥ ९४ ॥
 जैसे द्विजु षट्कर्म करी । शूद्र तेयातें नमस्कारी ।
 किं दोषां सरोभरी । निरुजे यागु ॥ ९५ ॥
 तैसें अधिकारपर्यालोचें । हें यज्ञकरणें सर्वांचें ।
 विषयफल आशेचें । नेघपे माजि ॥ ९६ ॥
 आणि मी करिता हा भावो । नेंदिजे देहाचेनि द्वारें जाओं ।
 नां वेदाज्ञेसि तरि ठावो । होइजे स्वयं ॥ ९७ ॥

अर्जुना एवंसंज्ञ । सर्वत्र जाण यज्ञ ।
 कैवल्यमार्गिचा अभियज्ञ । सांवति हा ॥ ९८ ॥
 आतां चेंडुवें भुइं हाणिजे । हें नाहे तो हाता आणजे ।
 कां सेतीं बां विखुरिजे । परि पीकीं लक्ष ॥ ९९ ॥
 ना तरि ठेविळें देखावेया । आदर कीजे दीवेया ।
 कां शाखा फळावेया । सिंपिजे मूळ ॥ १०० ॥
 हें असो बहू आरिसा । आपणपेयां दिसावेया जैसा ।
 पुडुतीं पुडुतीं बहुवसा । प्रीती पाहिजे ॥ १ ॥
 तैसा प्रतिपाद्यु जो ईश्वर । तो होआवेया लागि गोचर ।
 श्रुतींचा निरंतर । अभ्यासु करणें ॥ २ ॥
 तेवि द्विजांसि ब्रह्मसूत्र । येरां स्तोत्र कां नाममंत्र ।
 आवर्तवणें पवित्र । पावेया तत्व ॥ ३ ॥
 पार्था गा स्वाध्यायो । बोलिजे तो हा ह्यणे देवो ।
 तपशद्वा अभिप्रावो । आइक सांघो ॥ ४ ॥
 ज्ञानें सर्वस्व जाणे । परि रक्षणें मरणा येणें ।
 कां फलौनि शुष्कां होणें । ओषधींचे ॥ ५ ॥
 नाना धूपाचा अग्निप्रवेशु । कनका तूका तूकाचा नाशु ।
 पितृपशु पोखतां भंशु । चंद्रा जैसा ॥ ६ ॥
 तैसे सर्वधर्माचेया प्रसरा । लागि प्राणें हीं या शरीरा ।
 आटणी करणें जें वीरा । तें चि तप ॥ ७ ॥
 अथवा अनारिसें । तपाचें रूप असे ।
 तरि सूदली दूर्धी हंसें । चांचु जैसी ॥ ८ ॥
 तैसे देहजीवाचिये मिलणीं । जो उदैजत सुवे पाणीं ।
 तो त्रिवेकु अंतष्करणीं । जागविजे ॥ ९ ॥
 पातां आत्मेया कडे । परबुद्धिचा पैसु सांकडे ।
 सनिद्रा स्वप्न बुडे । जागणां जैसे ॥ ११० ॥

तैसां आत्मपर्यालोचु । प्रवर्ते तो साचु ।

तपाचा निर्वचु । धनुर्द्वरा ॥ ११ ॥

।आतां बालाचां हिं चित्ति स्तन्य । जैसे नाना दृष्टिचां चैतन्य ।

तैसे प्राणिमात्रीं सौजन्य । आर्जेव ते ॥ १२ ॥

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपेयुनम् ॥

दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं न्हीरचापलम् ॥ २ ॥

आणि जगाचेया सुखा चि दोसें । शरीरें वाचा मानसें ।

राहाटणें तें अहिंसे । रूप जाण ॥ १३ ॥

आतां चोख होउनि मौवाळ । जैसे जातिचें मुकुळ ।

कां तेज परि शीतळ । शशांकाचें ॥ १४ ॥

शके दाविलें चि रोगु फेडूं । आणि जीभे तरि नव्हे कडू ।

तें बोषध नाहिं पाडु । उपमां केवि ॥ १५ ॥

तन्हीं म्रौपणें बुबुलें । झगटितां हीं परि नाडले ।

यन्हाविं फोडी करालें । पाणी जैसें ॥ १६ ॥

तैसें तोडावेया संदेह । तीख जैसें काळ लोह ।

स्त्राव्यत्वे तरि माधुर्य । पाहिं घाली ॥ १७ ॥

।आयिकों ठांतां कवतिकें । कानातें करी मूकें ।

ना साचारैवें मीखें । ब्रह्मा हीं भेदी ॥ १८ ॥

किंबहुना प्रियपणें । कोण्हातें हिं झांकउं नेणे ।

यथार्थु तन्हीं खुपणें ५ नाहिं कव्हणां ॥ १९ ॥

यन्हाविं गोरी किर गायन गोड । परि साचाचां पाखालीं कीड ।

आगिचें करणें उघड । परि जळो तें साच ॥ २० ॥

कां जीभे लगतां महुर । अर्थे विभांडी जिव्हार ।

ते वाचा नव्हति सुंदर । लावां चि कां तिया ॥ २१ ॥

परि अहिति कोपौनि सोफ । लाळनीं मौ जैसें पुष्प ।

तिये मातचें स्वरूप । जैसें होये ॥ २२ ॥

जैसे श्रवणसुख चतुर । परिणामौनि साचार ।
 बोलणें अविचार । सत्य यें ॥ २३ ॥
 आतां लाविलेयां हि पाणीं । जैसा पाखाणु नेवे आणी ।
 कां मथिलेयां हि लोणीं । कांजी नेंदी ॥ २४ ॥
 त्वचा पाये चीरी । आलेयां हि फडे न करी ।
 सेवते हीयारी । नोहंति फुलें ॥ २५ ॥
 नाना रंभेचेनि हि रूपें । शुकिं नुठिजे चि कंदपें ।
 कां भस्मीं वन्हि नाटोपे । घृतें हि जेवि ॥ २६ ॥
 तेवि कुमार क्रोधु भरे । तैसेयां मंत्रांचि बीजाक्षरें ।
 तियें निमित्तें हीं अपारें । मीनलेयां ॥ २७ ॥
 परि धाता ही पायां पडतां । नूठी गतायु पांडुसुता ।
 तैसा नुपजे उपजवितां । क्रोधोर्मि तो ॥ २८ ॥
 अक्रोधत्व ऐसें । नावं तिये दशे ।
 ऐसें श्रीनिवासें । ह्यणितलें तेथ ॥ २९ ॥
 आतां मृत्तिकायागें घटु । तंतुत्यागें पटु ।
 ल्यजिजे जेवि वटु । बीजत्यागें ॥ १३० ॥
 कां ल्यजूनि भीतिमात्र । ल्यजिजे आघवें चित्र ।
 निजत्यागें विचित्र । स्वप्नजाल तें ॥ ३१ ॥
 नाना जलत्यागें तरंग । वरिपात्यागें मेघ ।
 ल्यजिजति जेवि भोग । दानत्यागें ॥ ३२ ॥
 तेवि बुद्धिमंतीं देहीं । अहंता सांडौनि पाहीं ।
 सांडिजे अशेष ही । संसारजात ॥ ३३ ॥
 तेया नावं त्यागु । ह्यणे तो यज्ञांगु ।
 हें मानुनि सुभगु । पार्थु पूसे ॥ ३४ ॥
 आतां शांतिचें जी लिंग । व्यक्त मज सांग ।
 देवो ह्यणति चांग । अवधान दे ॥ ३५ ॥

तारि गीलूनि ज्ञेयाते । ज्ञान ज्ञाता चि माघौते ।
 हारपे ते निरुते । शांति पै गा ॥ ३६ ॥
 जैसा प्रलयांबुचा उभडु । बुडलनि विश्वाचा पवाडु ।
 हें आपणपां निवाडु । आपणपां चि ॥ ३७ ॥
 मग उगउं वोघ सिंधू । हा नुरे व्यवहारभेदु ।
 परि जलवाच्यबोधु । तो ही कैचा ॥ ३८ ॥
 तैसी ज्ञेया देतां मीठी । ज्ञातृत्व पडे पुटीं ।
 मग उरे ते चि किरीटी । शांति पुडुतीं ॥ ३९ ॥
 आतां कदर्थत व्याधी । बलीकरणेयांचिया आधी ।
 आपु पर न शोधी । सदैयु जैसा ॥ १४० ॥
 कां चिखलीं रुपली गाए । धड भाखड न पाहे ।
 जो तियोचिया ग्लानीं होये । कालाबुळा ॥ ४१ ॥
 नाना बुडतेयातें सकरुणु । न पुसे उत्तमहीनु ।
 काढी राखे प्राणु । हें चि जाणे ॥ ४२ ॥
 पै माहेवणी निदैवें । उघडी केली विपायें ।
 ते सलज्जु न पाहे । न पांघुरवितां ॥ ४३ ॥
 तैसें अज्ञानप्रमदादिकिं । कां प्राक्तनीं हीं सदोषीं ।
 निंदित्वाचा साविखिं । देखिलें जें ॥ ४४ ॥
 तेया अंगिक आपुलें । देउनियां भलें ।
 विसरविजति सलें । सलतीं तियें ॥ ४५ ॥
 आगा पुढिलाचा दोखु । करुनि आपुलिया दीठी चोखु ।
 मग घेपे अवलोकु । तेया वरि ॥ ४६ ॥
 जैसा पुजुनि देउ पाहिजे । पेरुनि सेता जाइजे ।
 तोखौनि आशिर्वादु घइजे । अतिथिचा ॥ ४७ ॥
 तैसें आपुलेनि गुणें । पुढिलाचें उणें ।
 फेडुनियां पाहाणें । तेया कडे ॥ ४८ ॥

वांचूनि न विधिजे वर्मा । नांतुडविजे कर्मा ।
 न बोलाविजे नामी । सदोषि तिहिं ॥ ४९ ॥
 वरि कोण्हें येकें उपायें । पडिलें उभें होये ।
 तें चि कीजे घाये । न घलावें वर्मा ॥ १५० ॥
 पैं उत्तमाचिया साठीं । पावलेयां तें किरीटी ।
 देतां जाइं दीटी । दोषु न घेपे ॥ ५१ ॥
 आगा अपैशून्याचें लक्षण । अर्जुना हें फुडें जाण ।
 मोक्षा यंतें सोखासन । मुख्य हें गा ॥ ५२ ॥
 आतां तेया शशी । अर्जुना जाण आपैसी ।
 निवडितां न कडसी । सानेंथोरें ॥ ५३ ॥
 तैसैं दुःखिताचें सीणणें । हिरतां सकणवपणें ।
 उत्तमाधम नेणें । विवंचूं गा ॥ ५४ ॥
 पैं सर्व जीवना सारिखें । वस्तु आंगें वर उपखे ।
 परि जातें जीवित राखे । तृणाचें हिं ॥ ५५ ॥
 तैसैं पुढिलाचेनि तापें । कलवलैलिये कृपे ।
 दीधळें हिं आपणपें । थोडें चि गमे ॥ ५६ ॥
 निम्न भरलेयां उणें । तें पाणीं ढळें चि नेणे ।
 तेवि अनतोखौनि जाणे । सामोरे यां ॥ ५७ ॥
 पैं पाइं कांटा निहटे । तवें व्यथा जीविं उमटे ।
 तैसा पोळे संकष्टें । पुढिलाचेनि ॥ ५८ ॥
 कां पात्रो सीतल लाहे । किं तें डोलेयां चि लागि होये ।
 तैसा परसुखें जाये । सुखावतु ॥ ५९ ॥
 किंबहुना आर्त्ता चि लागि । पाणीं आराइलें असे जर्गी ।
 तैसैं दुःखिताचां भार्गी । जीणें जेयाचें ॥ १६० ॥
 तो पुरुषु चीरराया । मूर्त्त जाण दया ।
 मीं उदैजत तेया । रिणियां कीजे ॥ ६१ ॥

आतां सूर्यासि जीवें । अनुसरलीं राजिवें ।
 परि तो लें न सिवे । सौरभ्य जैसैं ॥ ६२ ॥
 कां वसंताचिया वाहाणी । आलेयां वना अक्षौणी ।
 न करीतु घेणीं । निगाला तो ॥ ६३ ॥
 हें असो महासिद्धिसिं । लक्ष्मी आलेयां पांसिं ।
 परि महाविष्णु जैसी । गणी चि ना ॥ ६४ ॥
 तैसैं इहिक कां स्वर्गिचे । भोग पाइक आलेयां इछेचे ।
 परि भोगावें हें न रुचे । मना माजि ॥ ६५ ॥
 ब्रहुवे काइ कवतिकिं । जीउ नोहे विषयविधिं ।
 अलौल्य सदा ठाउकी । जाण ते हे ॥ ६६ ॥
 आतां जैसैं कां मौवाल । जलचरांसि जल ।
 कां पक्षांसि अंतराल । मोकलें हें ॥ ६७ ॥
 नातरि बालका दोसैं । मातेचें स्नेह जैसैं ।
 कां वसंतिचा स्पर्शें । मारुतु मौ ॥ ६८ ॥
 डोलेयां प्रियाचिये भेटी । पीलेयां कूर्माची दीठी ।
 तैसी भूतमात्रि राहाटी । मौवाल ते ॥ ६९ ॥
 स्परिसैं अतिमृदु । मुखिं घातलेयां स्वादु ।
 घ्राणासि सुगंधु । उजळ आंगें ॥ १७० ॥
 तो आवडे तवं घेतां । विरुद्ध जरि नग्हंता ।
 तरि उपमे येंता । कापुरु किर ॥ ७१ ॥
 परि महाभूतें पोटीं वाहे । आणि परमाणू माजि माए ।
 तेया विश्वानुसार होये । गगना ऐसा ॥ ७२ ॥
 कायि सांवों ऐसैं जीणें । जें जगाचें चि जीवें प्राणें ।
 तेया नावं ह्यणें । मार्दव मी ॥ ७३ ॥
 आतां पराजयें राजा । जैसा कदर्थिजे लाजा ।
 कां मानिया निस्तेजा । निऋष्टा तव ॥ ७४ ॥

नाना चांडाल स्त्रीमदिरोसिं । आलेयां संन्यास्या पासि ।
 मग लाज जैसी । उत्तमां तेया ॥ ७५ ॥
 क्षत्रिया पलौनि जीणें । तें कोण साहे लाजीरवाणें ।
 कां वैधव्यें वेलु नेणे । महासती जैसी ॥ ७६ ॥
 रूपसा उदैलें कुष्ट । संभाविता कूटिचें बोट ।
 तेया लाजा प्राणसंकट । होये जैसें ॥ ७७ ॥
 तैसें आउठहातेपणें । हें शव होउनि जीणें ।
 उपजों उपजों मरणें । नावां नावां ॥ ७८ ॥
 तिये गर्भमेदमूसे । रक्तमूत्ररसे ।
 वोस्त्रिवां होउनि तैसें । लाजणें जें ॥ ७९ ॥
 बहू असो देहपणें । नावां रूपासि येणें ।
 नाहिं लाजीरवाणें । या ही हुनु ॥ १८० ॥
 ऐसीया इया अवकला । घेपे शरीराचा कांडाला ।
 ते लाज पै गा निर्मला । निसुगै एरि ॥ ८१ ॥
 आतां सूत्रतंतु तूटलेयां । चळ चि ठाके साइखेडेया ।
 कां प्राणु गेलेया कर्मइंद्रियां । खुंटे गति ॥ ८२ ॥
 किं मावललेयां दिनकरु । सरे किरणाचा पसरु ।
 तैसा मनोजयें प्रचारु । बुद्धिइंद्रियां ॥ ८३ ॥
 एवं मनपवननियमें । होंति दाही इंद्रियें अक्षमें ।
 तें अचापत्यधमें । येणें जाणें ॥ ८४ ॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ॥

भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

वोखटें मरणाऐसें । तें हिं आलें अग्निप्रवेशें ।
 परि प्राणेश्वरा दोसें । न गणी सती ॥ ८५ ॥
 तैसी आत्मनाथाचिया आधी । लालनि विषयविषाचां बांधि ।
 धावों आवडे पाणधी । शून्याचिया ॥ ८६ ॥

न टके निषेधु आड । न पडे विधिची भीड ।
 नुपजे जिर्वि कोड । महासिद्धिचें ॥ ८७ ॥
 ऐसैं ईश्वरा कडे निज । धांवे आपैसेया साहाज ।
 तेया नावं गा तेज । आध्यात्मिक तें ॥ ८८ ॥
 आतां सर्वें साहांतिया गरिमा । गर्वा नैये चि ते क्षमा ।
 जैसें देह वाहूनि रोमा । वाहणें नेणे ॥ ८९ ॥
 आणि मातलेयां इंद्रियांचे वेग । कां प्राचीने खवलले रोग ।
 अथवा योगवियोग । प्रियाअप्रियाचे ॥ ९० ॥
 यां आघवेयांचा चि थोर । एकें वेलें आलेयां पूर ।
 अगस्ति होउनि कां धीर । उभा ठाके ॥ ९१ ॥
 आकासीं धूमाची रेखा । उठिली बहुवा आगलिका ।
 ते गीली जेवि झुलुका । वारेयाचिया ॥ ९२ ॥
 तैसें अधिभूतां आधिदैवां । अध्यात्मकीं उपद्रवां ।
 पातलेयां ते पांडवा । पीउनि घाली ॥ ९३ ॥
 आतां निर्वालुनि कनकें । भरिला गंगापीयूखें ।
 तेया कलशाचें सारिखें । शौचासि गा ॥ ९४ ॥
 जें आंगें निष्कामु आचार । जीर्वि विवेकु साचार ।
 सवाह्य जाण आकार । शुचित्वाचा ॥ ९५ ॥
 जैसें चित्तक्षोभाचां अवसरों । उचळनि धैर्या चांगावें करी ।
 धृति ह्यणिपे अवधारीं । तेयातें गा ॥ ९६ ॥
 फेडीति पापें ताप । पोसीति क्षितीचे पादप ।
 समुद्रा जाये आप । गांगेय जैसें ॥ ९७ ॥
 जगाचें आंध्य फेडितु । श्रियोचि राउलें उघडितु ।
 निगे जैसा भास्वतु । प्रदक्षिणे ॥ ९८ ॥
 तैसें बांधील सोडितां । बुडालीं कडितां ।
 सांकडी फेडितां । आर्त्ताचिया ॥ ९९ ॥

किं बहुना दिवसे राती । पुढिलाचें चि सुख उन्नती ।
 आणितआणितां स्वार्थी । प्रवेशिजे ॥ २०० ॥
 वांचौनि आपुलेया काजा लागि । प्राणिजाताचां हितभागीं ।
 संकल्पाची ही आडवंगी । न करणें जें ॥ १ ॥
 पै अद्रोहत्व ऐसिया गोठी । आइकसि जिया किरीटी ।
 तें सांधितलें हें दीठी । पाहों ए तैसें ॥ २ ॥
 आणि गंगा शंभूचां माथां । संकोचली जेवि पार्था ।
 तेवि मान्यपदें सर्वथा । लाजणें जें ॥ ३ ॥
 हें पुढतपुढुतीं । अमानित्व जाण सुमती ।
 मागां सांधितलेंसे केती । तें चि बोलें ॥ ४ ॥
 एवं ये हिं सविसें । ब्रह्मगुणि हे वसतसे ।
 मोक्षचक्रवर्तिचें तैसें । अप्राहार ॥ ५ ॥
 नाना हे संपत्ति देवी । या गुणतीर्थांची नवी ।
 निर्विषसागरिची देवी । गंगा आली ॥ ६ ॥
 किं गुणकुसुमाची माला । हे घेंउनि मुगुतीबाला ।
 वैराग्यभाग्या गला । गिवसीतसे ॥ ७ ॥
 किं सविसें गुणज्योतीं । इहीं उजळनि हे आरती ।
 गीता आत्म्यां निजपती । नीराजना आली ॥ ८ ॥
 उगळिती निर्मलें । गुणमय मुक्ताफलें ।
 देवी सुति कळे । गीतार्णविची ॥ ९ ॥
 काइ बहू वानूं ऐसी । अभिव्यक्त ये पैसेंसीं ।
 केली देवी गणराशी । शांतिरूप ॥ २१० ॥

दंभो दपोऽभिमानश्च क्रोधः पादप्यमेव च ॥

अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ ४ ॥

आतां दुःखाची अतूट वेळी । देखां काळलोहाची भाळी ।
 तन्हीं निजावधानीं घाळी । आसुरी ते ॥ ११ ॥

पैँ ल्याज्य लजवेया लागी । जाणावें जन्हीं अनुपयोगी ।
 ह्यणोनि आइक तें चांगीं । श्रोत्रशक्ती ॥ १२ ॥
 तारि नरकव्यथा थोरी । आणावेया दोखीं अघोरीं ।
 मेल्लु केला ते आसुरी । संपत्ति हे ॥ १३ ॥
 विषवर्गु एकवटु । तेया नावं जैसा बासटु ।
 आसुर संपत्ति हा खोटु । दोखांचा तैसा ॥ १४ ॥
 तारि तेयां चि आसुरां । दोखां माजि जेयां वीरा ।
 वाडपणाचा गारा । तो दंभु ऐसा ॥ १५ ॥
 जैसी आपुली जननी । नग्न दाविलेयां जनीं ।
 तारि तीर्थ परे पतनीं । कारण होए ॥ १६ ॥
 कां विद्या गुरुपदिष्टा । बोबाइलेयां चौहटां ।
 तारि इष्टदा चि अनिष्टा । हेतु होंति ॥ १७ ॥
 पैँ आंगें दाटली पुरी । जे तारी पैल तीरीं ।
 ते नाव चि बांधलयां सिरीं । बुडली जैसी ॥ १८ ॥
 कारण जें जीविता । तें वानिलें जरि सेवितां ।
 तारि अन्न चि पांडुसुता । होये विष ॥ १९ ॥
 तैसा दृष्टाअदृष्टाचा सखा । धर्मु जाला फोकरिजे देखां ।
 तारि तारिता तो चि दोखां । लागि होये ॥ २० ॥
 ह्यणोनि वाचेचां चौबारां । घातलेयां धर्माचा पसारा
 धर्मु अधर्मु होये तो वीरा । दंभु जाण ॥ २१ ॥
 आतां मूर्खांचिये जीभे । आखरांचे आबुखे शुभे ।
 आणि तो ब्रह्मसभे । न रिझे जैसा ॥ २२ ॥
 कां मांदुरी लोकाचां घोडां । गजपति महिमे थोडां ।
 कां कांटिये वरिला सरडा । व्योम नीच ॥ २३ ॥
 तृणांचेनि इंधनें । आगि धांवे गगनें ।
 थिलरबलें मीनें । न गणिजे सिंधु ॥ २४ ॥

तैसा माजे खिया धने । विद्या स्तुति बहूमानें ।
 एकी दीचेनि परानें । अल्पकु जैसा ॥ २५ ॥
 घनछायेचिया जोडी । निदैबुं घर मोडी ।
 मृगांभ देखौनि फोडी । पाणियड मूर्ख ॥ २६ ॥
 किंवहुना ऐसैसैं । माजणें जें संपत्तिमीसैं ।
 तो दर्पुं गा अनारिसैं । न बोलों घेइं ॥ २७ ॥
 आणि जगा वेदीं विश्वासु । जगा पूज्यु ईशु ।
 जगीं एकु तेजसु । सूर्यो हा ॥ २८ ॥
 जगस्पृहे आस्पद । एक सार्वभौमपद ।
 न मरणें निर्विवाद । जगा पढिये ॥ २९ ॥
 हणौनि जरि उत्साहें । यातें वानू जाये ।
 किं आइकौनि मत्सरु वाहे । एयां लागि ॥ ३० ॥
 हणें ईश्वरातें खाए । तेया वेदा कायि विष सुए ।
 गोखा माजि त्राये । भंगितसे ॥ ३१ ॥
 पतंगा नावडे वाति । खद्योता भानुची खंति ।
 टिटिभें अपांपती । वैरी केला ॥ ३२ ॥
 तैसा अहंमानाचेनि मोहें । ईश्वराचें हिं नाव न साहे ।
 वेदातें हिं हणें मज हे । सवति जाली ॥ ३३ ॥
 ऐसा मानितेचा गंडु । तो अभिमानु जाणें कुडु ।
 रौरवाचा रूडु । मारु हा ॥ ३४ ॥
 आणि पुढिलाचें मुख । देखणेयांचें होये मीख ।
 चढे क्रोधाग्रिचें विष । मनोवृत्ती ॥ ३५ ॥
 सितलाचिये भेटी । तातलां तेलिं आगि उठी ।
 चंद्र देखौनि पोटीं । जले कोल्हा जैसा ॥ ३६ ॥
 विश्वाचें आयुष्य सगळें । सूर्यु उदैला देखौनि सवले ।
 पापियां फूटति डोळे । डुडुलांचे ॥ ३७ ॥

जगाची सुखपाहाट । चोरां मरणाहुनु कष्ट ।
दूधाचें कालकूट । होये व्यालां ॥ ३८ ॥
अगार्धे समुद्रजलें । पीतां अधिकु जलें ।
वडवानलु न मिले । शांति कहीं ॥ ३९ ॥
तैसा विद्याविनोदविभवं । देखे पुढिलाची देंवें ।
तवं तवं रोखु दुणावे । क्रोधु तो जाण ॥ २४० ॥
आणि मनसर्पाची सृष्टी । डोले नाराजांची सूटी ।
बोले ते वृष्टि । इंगलांची ॥ ४१ ॥
येर जें क्रियाजात । तें तिखेयाचें करवत ।
ऐसें सबाह्य घसासित । तेयाचें गा ॥ ४२ ॥
तो मनुष्य अधमु जाण । पारुष्य अवतरण ।
आतां आइकें खुण । अज्ञानाची ॥ ४३ ॥
तरि शीतोष्णस्पर्शा । निवाडु नेणे पाखाणु जैसा ।
कां रात्रि आणि दिवसा । जायंधु तो ॥ ४४ ॥
आगि उठिला आरोगणे । जैसा खाद्याखाद्य नेणे ।
कां पारिसु पाडु न ह्मणे । सोनेयां लोहाचा ॥ ४५ ॥
नातरि नानारसीं । रिघौनि दर्वी जैसी ।
अभिज्ञ मीठासि । नव्हे चि तिये ॥ ४६ ॥
कां वारा जैसा पारखी । नव्हे चि गा मार्गामार्गविशेषीं ।
तैसें कृत्याकृत्यविवर्कीं । अधमपण जें ॥ ४७ ॥
हें चोख हें मैल । ऐसें नेणौनि बाल ।
देखिलें तें केवल । मुखीं चि घाली ॥ ४८ ॥
तैसें पापपुण्याचें खिचटें । करुनि खातां बुद्धिचेष्टे ।
कडू मडूर न वटे । ऐसी जे दशा ॥ ४९ ॥
तिये नावं अज्ञान । या बोला नाहिं आन ।
एवं साई दोषांचें चिन्ह । सांगितलें ॥ २५० ॥

इहिं साईं दोषांगिं । हे आसुरी संपत्ति दाटुगी ।
 जैसें थोर विष भूवंगीं । आंग सानें ॥ ५१ ॥
 कां तीघां वन्हि पांती । पांतां धाकुटी चि मीति ।
 परि विश्वाची ही आहुती । करुं न पुरे ॥ ५२ ॥
 धात्रेया ही गेलेयां शरण । त्रिदोषिं न चुके मरण ।
 तेया तिहींची ह्रे दूण । लागली आहे ॥ ५३ ॥
 जै साहिं दोषिं संपूर्णी । जाली इहिं चि उभारणी ।
 ह्यणौनि आसुरी उणी । संपदा नोहे ॥ ५४ ॥
 क्रूरग्रहांची जैसी । मांदी मिले येकी राशी ।
 कां येति निंदका पासिं । अशेषें पापें ॥ ५५ ॥
 मरुणारुवाचें आंग । पडिवांति आघवे रोग ।
 कां कुमुद्भूतिं दुर्योग । एकवटति ॥ ५६ ॥
 कां आयुष्य जांतिये वेले । सेलिए सातवेउली मिले ।
 तैसे साईं दोष सगले । जोडति तेथें ॥ ५७ ॥
 आंतुडलेया चोरा । सीणला सुइजे पुरां ।
 तैसें दोषिं इहिं नरां । कीजे तेयां ॥ ५८ ॥
 जेया मोक्षमार्गा कडे । यावेया आबुरवा पडे ।
 न निगे ह्यणौनि बुडे । सवंसारिं जो ॥ ५९ ॥
 अधमा योनिचा पाउटीं । उतरतु जो किरीटी ।
 स्थावरां हिं तलवटीं । बैसणें घे ॥ ६० ॥
 हें असो तेयाचां ठांड । मिलौनि साईं दोषिं इहीं ।
 आसुरी संपत्ति पाहीं । वाटवीजे ॥ ६१ ॥

दैवी संपद्धिमोक्षाय निबंधायासुरी मता ॥

मा शुचः संपद्धं दैवीमभिजातोऽसि पांडव ॥ ५ ॥

ऐसिया दोन्हीं । संपत्ती प्रसिद्धा जनि ।

सांघितलिया चिन्हीं । वेगलालां ॥ ६२ ॥

यां दौहिं माजि पहिली । दैवी जे ह्यणितली ।
 ते मोक्षसुखा पाहाली । उखा जाण ॥ ६३ ॥
 एरि जे दुसरी । संपत्ति कां आसुरी ।
 लोभमोहाची खरी । सांखल जीवां ॥ ६४ ॥
 परि हें आइकौनि ज्ञनें । कदरसी हो मनें ।
 कायि रात्रि चांदिणें । धाकु धरिजे ॥ ६५ ॥
 हे आसुरी संपत्ति तेया । वंधा लागि धनंजया ।
 जो साहिं दोषां ययां । आश्रो होए ॥ ६६ ॥
 तूं तवं पांडवा । सांघितलेयां दैवां ।
 गुणाचा बोलावा । जन्मलासि ॥ ६७ ॥
 ह्यणौनि पार्था तुवां । दैवसंपत्तिस्वामियां ।
 होउनि यावें उवाया । कैवल्याचा ॥ ६८ ॥

द्वौ भूतसर्गौ लोकेस्मिन् दैवआसुर एव च ॥

दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥

आणि दैवां आसुरां । संपत्तिवंतां नरां ।
 अनादिसिद्ध उजरा । राहाटिचा आहे ॥ ६९ ॥
 जैसें रात्रिचां अवसरीं । व्योम व्यापिजे निशाचरीं ।
 दिसां सुव्यापारीं । मनुष्यादिकिं ॥ २७० ॥
 तैसिया आपुलिया राहाटी । वर्त्तति दोन्हीं सृष्टी ।
 दैवी आणि किरीटी । आसुरी एथ ॥ ७१ ॥
 तेविं चि विस्तारुनि दैवां । ज्ञानकथनादिप्रस्ताविं ।
 मागिलें ग्रंथें बरवी । सांघितली ॥ ७२ ॥
 आतां आसुरी सृष्टी । तेथिची उपलठं गोठी ।
 अवधानाची दीठी । दे पां नीकी ॥ ७३ ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुरा ॥

न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७ ॥

तरि वार्ये विण नादु । दूजेन विण शद्दु ।
 कां अपुष्प मकरंदु । न लभे जैसा ॥ ७४ ॥
 तैसी प्रकृति हे आसुर । येकली नव्हे गोचर ।
 जवं येकार्थे शरीर । लाहे ना ॥ ७५ ॥
 मग आविष्कारला लाकुडें । पावकु जैसा जोडे ।
 तैसी प्राणिदेहीं सांपडे । आटोपली हे ॥ ७६ ॥
 तेधवां वाढि जे उंसा । ते चि आंतुला रसा ।
 देहाकारु होये तैसा । प्राण्यांचा ॥ ७७ ॥
 आतां तेयां चि प्राण्यां । रूप करुं धनंजया ।
 घडिलें जें जें आसुरिया । दोष रिद्धी ॥ ७८ ॥
 तरि पुण्या लागि प्रवृत्ति । पापा लागि निवृत्ति ।
 या जाणणेयांची राति । तेयाचां मनीं ॥ ७९ ॥
 निगणेयां आणि प्रवेशा । चित्त नेंदितु आविंसा ।
 कोशकारु जैसा । जाचिनला ॥ ८० ॥
 कां दीधलें माघौतें येइल । किं न ये हें पुढिल ।
 न पांतां दे भांडवल । मूर्खु चोरा ॥ ८१ ॥
 तैसिया प्रवृत्तिनिवृत्ति दोन्हीं । नेणिजति आसुरीं जनीं ।
 आणि शौच तें स्वप्नीं । नेदखति ते ॥ ८२ ॥
 कालिमा सांडील कोलिसा । वर चोखि होईल वायसा ।
 राक्षसु ही मांसा । विटों सके ॥ ८३ ॥
 परि आसुरा प्राण्यां । शूचि नाहिं धनंजया ।
 पवित्रत्व जेवि भांडेया । मद्याचआ ॥ ८४ ॥
 आणि वाढवितां विधिर्चा आश । कां पाहांतां वडिलांची वास ।
 आचरिजे हे भास । नेणाति ते ॥ ८५ ॥
 जैसें चरणें सेलियेचें । कां धावणें वारेयाचें ।
 जलणें आगिचें । भले तेउतें ॥ ८६ ॥

तैसें पुढां सूनि शरीर । आचरति ते आसुर ।
 सल्लेसि कीर वैर । सदा चि तेयां ॥ ८७ ॥
 नांगिया आपुलिया । विंचू करी गुतकुलिया ।
 तरि साच बोलिया । बोलति ते ॥ ८८ ॥
 अपानाचेनि तोंडें । जरि सुगंधा येणें घडे ।
 तरि सत्य तेयां जोडे । आसुरांतें ॥ ८९ ॥

असत्यमप्रतिष्ठंते जगदाहुरनीश्वरम् ॥

अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

ऐसें ते न करितां काहिं । आंगिं चि वोखटें पाहिं ।
 आतां बोलती ते नवाई । सांधिजैल ॥ २९० ॥
 यन्हविं कन्हैयाचा खांदु चांग । मग येर काइ आंग ।
 परिस जो प्रसंग । प्राप्ती कीं ॥ ९१ ॥
 उधविचें तोंड । उगलीत धूमाचे उभड ।
 हें जाणिजे तन्हीं उघड । सांघों ते बोल ॥ ९२ ॥
 तरि विश्व हा अनादि ठावो । एथ नियंता ईश्वर रा३० ।
 चाउडिये न्यायान्या३० । निवडी वेदु ॥ ९३ ॥
 वेदें अन्यायीं पडे । तें निरयभोगें दंडे ।
 सन्यायी तो सुरवाडे । स्वर्गीं जिये ॥ ९४ ॥
 ऐसी विश्ववेवस्था । अनादि जे पार्था ।
 ते ह्मणति तें वृथा । आघवें हें ॥ ९५ ॥
 यज्ञमूढ मुसिले यागीं । देवर्षिसे प्रतिमे लागि ।
 नागविले भगवे योगी । समाधिभ्रमें ॥ ९६ ॥
 एथ आपुलेनि बलें । भोगिजे जें वेगलें ।
 हें वांचौनि नीकें आगलें । शून्य आहे ॥ ९७ ॥
 ना असक्तपणें अंगिकें । वेगल वेंटाळी न टके ।
 ऐसा गादिजे दुःखें । तें चि पाप ॥ ९८ ॥

प्राण घेति संपन्नाचे । तें पाप जरि साचें ।
 तरि सर्वस्व तेयाचें । हें पुण्यफल किं ॥ ९९ ॥
 बली अबलातें खाये । हें चि बाधितें होये ।
 तरि मासेया कां नोहे । निसंतान ॥ ३०० ॥
 कुलें शोधूनि दोन्हि । कुमारे चि सुलग्रीं ।
 मेलविलीं प्रजासाधनीं । हेतु जरि ॥ १ ॥
 तरि पशुपक्षादि जाती । तेयां मीति नाहिं संतता ।
 तेयां कोणीं प्रतिपत्ती । विवाह केले ॥ २ ॥
 चोरियेचें धन आलें । तें कोणासि विष जालें ।
 वालभाचिये रती जालें । कोढी कोण ॥ ३ ॥
 ह्यणौनि देवो गोसांविं । तो धर्माधर्म भोगवी ।
 आणि परत्राचां गाविं । करि तो भोगी ॥ ४ ॥
 तरि परत्र ना देवो । न दिसति ह्यणौनि वावो ।
 आणि करितां निमे ठावो । मा भोगी कोणु ॥ ५ ॥
 येथ उर्वसिया इंद्र सुखी । जैसा कां स्वर्गलोकीं ।
 तैसा क्रिमि नरकीं । लोलतु श्लाघ्यें ॥ ६ ॥
 ह्यणौनि नरकु स्वर्गु । नोहे पुण्यपापभागु ।
 जें दों ठांइ भोगु । कामा चि तव ॥ ७ ॥
 या कारणें कामें । स्त्रीपुरुषयुग्में ।
 मिलति तेथ जन्मे । आघवें जग ॥ ८ ॥
 आणि निजें अभिलाखें । स्वार्था लागलें हें पोखे ।
 पाठिं परस्परद्वेषें । कामु चि नाशी ॥ ९ ॥
 एवं कामु वांचूनि काहीं । जगा मूल चि आन नाहिं ।
 ऐसें बोलति ते पाहीं । आसुर गा ॥ ३१० ॥
 आतां असो हें कीडाल । बोलिं न करं पवळ ।
 सांघतां चि सपोळ । होतसे वाचा ॥ ११ ॥

आणि ईश्वराचिया खंती । नसुदिया करिति चांथी ।
 हें इ नाहिं चित्तीं । हा चि निश्चयो ॥ १२ ॥
 किंबहुना उघड । आंगिं भरुनि पाखांड ।
 नास्तिपणाचें हाड । रोविलें जीभे ॥ १३ ॥
 तेधवां स्वर्गा लागि आदर । कां नरकाचा अडदर ।
 ये वासनेचा अंकुर । जलौनि गेला ॥ १४ ॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोलपबुद्धयः ॥
 प्रभवंत्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोहिताः ॥ ९ ॥

मग केवल ये खोडां । अमेध्योदकाचा बुडडा ।
 विषइं चि सुहाडा । बुडाले गा ॥ १५ ॥
 जें आटावे जलचर । तें डोहिं मिलति ढिवर ।
 कां पडावें शरीर । तें रोगां उदयो ॥ १६ ॥
 उदलें केतुचें जैसें । विश्वा अनिष्टा चि दोसें ।
 ते जन्मति ते तैसे । लोकां आटु ॥ १७ ॥
 विरूढलेयां अशुभ । फूटति ते चि कोंभ ।
 पापाचे कीर्तिस्तंभ । चालते ते ॥ १८ ॥
 आणि मागां पुढां जालणें । वांचूनि आगि आंन नेणे ।
 तैसें विरुं चि करणें । आधि तेयां ॥ १९ ॥
 परि तें चि गा करणें । आदरीति संभ्रमें जेणें ।
 तो आइक पार्था ह्यणे । श्रीनिवासु ॥ ३२० ॥
 तरि जाल पाणियें न भरे । इंधनीं आगि न पुरे ।
 तेया दुर्भर चि धूरे । मुख जालें ॥ २१ ॥

काममाश्रित्य दुष्पूरं दंभमानमदान्विताः ॥
 मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्त्तते शुचिव्रताः ॥ १० ॥

तें या कामाचा उल्लावा । जीविं धरुनि पांडवा ।
 दंभमानाचा मेलवा । मेलव्रीति ॥ २२ ॥

मातलेया कुंजरा । आंगली जाली मदिरा ।
 तैसा मदाचा तवं जरा । चढत आंगीं ॥ २३ ॥
 आणि आत्रया तो चि ठाउं । वरि मौढ्य ऐसा सावाउं ।
 मग काइ वानूं निर्वाहो । निश्रयाचा ॥ २४ ॥
 जिहिं परोपतापु घडे । परावा जीउ रगडे ।
 तिहिं कर्मिं होउनि गाढे । जन्मत्रती ॥ २५ ॥
 आपुलें केलें फोकरिति । जगातें धिकरिति ।
 दाहें दिशीं पसरिति । स्पृहाजाल ॥ २६ ॥
 ऐसेनि गा आटोपें । थोरिये आणिति पापें ।
 धर्मधेनुं खुरपें । सूटलें जैसें ॥ २७ ॥

चिंतामपरिमेयां च प्रलयांतामुपाश्रिताः ॥

कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

इया एकी आइती । तेयाचिया कर्मप्रवृत्ती ।
 आणि जीणेयां परौती । वाहाति चिंता ॥ २८ ॥
 पाताळ होंनि निम्न । जिये उंचिये सानें गगन ।
 जें पाहांतां त्रिभुवन । अणु हीं नोहे ॥ २९ ॥
 ते योगपटाची मवणी । जीविं अनियम चिंतवणी ॥
 जें सांडूं नेणे मरणीं । बल्लुभा जैसी ॥ ३० ॥
 तैसी चिंता अपार । वाढवीति निरंतर ।
 दीठि सूनि असार । विषयादिक ॥ ३१ ॥
 स्त्रिया गाइलें आइकावें । स्त्रीरूप डोलां देखावें ।
 सर्वइंद्रियें हिं आश्लेषावें । स्त्रियातें चि ॥ ३२ ॥
 कुरवंडी कीजे अमृतें । ऐसें मुख स्त्रिये परौतें ।
 नाहिं चि हणौनि चित्तें । निश्चित जालें ॥ ३३ ॥
 मग तेया चि स्त्रीभोगा । लागि पाताळस्वर्गा ।
 धावति दिग्विभागा । परौतें हीं ॥ ३४ ॥

आंशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ॥

ईहंते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥

एकु कवलु बहुतीं मासां । तोडुनु नेयिजे जैसा ।
 तैसें चि कीजे विषयाशा । तेयासि चि गा ॥ ३५ ॥
 वांछित तवं न पवति । मा रोकडी चि आशसंतति ।
 वाढौ वाढों होंति । कोशकीट ॥ ३६ ॥
 आणि पसरला अभिलाखु । अपूर्ण तो चि होये द्वेषु ।
 एवं कामक्रोधांचा अधिकु । पुरुषार्थु नाही ॥ ३७ ॥
 दिहा खोलणें रात्रीं जागोव । ठाणांतरिया जैसा पांडवा ।
 अहोरात्रिं विसांवां । भेटे चि ना ॥ ३८ ॥
 तैसें उंचौनि लोटिलें कामें । नेहटित क्रोधाचिये दूमे ।
 तेथ रागद्वेष प्रेमें । न माति केहीं ॥ ३९ ॥
 तेवि चि जीविचेया हांवां । विषयवासनांचा मेळावा ।
 केला परि तो भोगावा । अर्थे कि ना ॥ ३४० ॥
 हणौनि भोगावेया जोगा । पूर्त्ता अर्थु पै गा ।
 आणावेया जगा । झोंबति सैरा ॥ ४१ ॥
 एकांतें सावधां मारीति । एकांचीं सर्वस्वें हरीति ।
 एकां लागि उभारिति । अपाययंत्रें ॥ ४२ ॥
 पाशिकें पोतीं वागुरा । सूणे ससाणे काठी सोंचारा ।
 घेउनि निगति डोंगरा । पारथी जैसे ॥ ४३ ॥
 तें पोसावेया हें पोटा । मारुनि प्राणियांचे संवाट ।
 आपणिति ऐसें निकृष्ट । तें हिं करिति ॥ ४४ ॥
 परप्राणघातें । मेलवीति चित्तें ।
 मिललेयां चित्तें । तोखणें कैसें ॥ ४५ ॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ॥

इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्द्धनं ॥ १३ ॥

ह्मणे आजि मियां । संपत्ति बहुतां एकाचिया ।
 आपुलिया होंतिया केलिया । धन्यु ना मीं ॥ ४६ ॥
 ऐसा श्लाघां जवं जाये । तवं मन आणिका हिं वाहे ।
 सर्वे चि ह्मणे पाहे । बहू चि आणूं ॥ ४७ ॥
 हे जेतुलें असे जोडलें । तेयाचेनि भांडवलें ।
 लाभा वेईन उरलें । चराचर ॥ ४८ ॥
 ऐसेनि धनें विश्वाचेयां । मीं चि होईन स्वामियां ।
 मग दीठि पडे तेयां । उरों नेंदी ॥ ४९ ॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।

ईश्वरोहमहं भोगी सिद्धोहम् बलवान्सुखी ॥ १४ ॥

हे मारिले ते थोडे । आणिक ही साधीन गाढे ।
 मग नांदैन पवाडें । एकला चि ॥ ३५० ॥
 माझीं होंति कामारीं । तियें वांचौनि येरें मारीं ।
 किंबहुना चराचरी । ईश्वरु मीं ॥ ५१ ॥
 मीं भोगभूमीचा राउ । आजि सर्व सुखांसि ठाउ ।
 ह्मणौनि इंद्र वावो । मातें पाउनि ॥ ५२ ॥
 मीं मनें वाचा देहें । कारि तें कें नोहे ।

मज वांचूनि आहे । आनु आज्ञासिद्ध ॥ ५३ ॥

तवं चि बलिया कालु । न दिसें जवं मीं अतुलु ।

सुखाचा किर निखलु । राशी चि मीं ॥ ५४ ॥

आढ्योभिजनवानस्मि कोन्योस्ति सदृशो मया ॥

यस्ये दास्यामि मोदिप्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥

कुवेरु आथिला होए । परि तो नेणे चि माझी सोये ।

संपत्ति मासीं नोहे । श्रीनिवासु ॥ ५५ ॥

माझेया कुलाचा उजालु । कां ज्ञातिगोत्राचा मेळु ।

पाहांतां ब्रह्मा हिं अलु । उणा चि दीसे ॥ ५६ ॥

ह्यणौनि मिरवति नावें । नाहिं मजसिं सरि पावे ।
 वायां ईश्वरादिकें सावें । तैसें कोणहीं ॥ ५७ ॥
 आतां लोपला अभिचार । तेया करीन जीर्णोद्धार ।
 प्रतिष्ठीन मरमार । याग वरि ॥ ५८ ॥
 मातें गांती वानिती । नाचें नटें रिश्वविती ।
 तेयां देईन मागती । ते ते वस्तु ॥ ५९ ॥
 माजिरां अन्नपाणीं । प्रमदाचां आर्लिगनीं ।
 होईन मीं त्रिभुवनीं । आनंदकर ॥ ३६० ॥
 कायि बहू सांघों ऐसे । ते आसुर प्रकृतिपीसे ।
 तुरंब्रित असौसें । गगनौलेयां ॥ ६१ ॥

अनेकचित्तविभ्रंता मोहजालसमावृताः ॥

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतंति नरकेशुचौ ॥ १६ ॥

अज्ञानें आंतलें घूळि । ह्यणौनि आशा वाहुंटली ।
 भवंडित अंतरालीं । मनोरथाचां ॥ ६२ ॥
 जराचेनि आटोपें । रोगी भलेतैसें जल्पे ।
 चंचलित संकल्पें । जाण तैसें ॥ ६३ ॥
 अनिम आखाडमेव । कां समुद्रोर्मि अभंग ।
 तैसे कामीति अनेग । अखंड हे ॥ ६४ ॥
 मग पै कामना तिया । जिवीं जाले बेलरिया ।
 वोरपिलीं काटिया । कमलें जैसीं ॥ ६५ ॥
 कां पाखाणाचां माथां । हांडी फूटली पार्था ।
 जीविं तैसे सर्वथा । कूट जाले ॥ ६६ ॥
 तेव्हां चडतिये रयणीं । तमाची होये पुरवणी ।
 तैसा मोहो अंतष्करणीं । वाढों लागे ॥ ६७ ॥
 आणि वाढे जवं मोहो । तवं तवं त्रिषडं रोहो ।
 विषय तेथ ठावो । पातकांसि ॥ ६८ ॥

पापें आपुलेन थावें । करिति जन्ममेलावे ।
 तव जितां चि आघवे । यंति नरका ॥ ६९ ॥
 झणौनि गा सुमती । हे कुमनोरथ पालिति ।
 ते आसुर जांति । तेया ठाया ॥ ३७० ॥
 जेथ असीपत्र तरुवर । खदिरांगाराचे डोंगर ।
 तातलां तेलीं सागर । उतताति ॥ ७१ ॥
 जेथ यातनेची श्रेणी । ये तरि जांत वैतरणी ।
 पडति तिये दारुणीं । नरकलोकीं ॥ ७२ ॥
 ऐसे नरकाचिये सेले । भागीन जे जन्मले ।
 ते ही देखों भूलले । जैत यागीं ॥ ७३ ॥

आत्मसंभाविता स्तब्धा धनमानमदान्विताः ॥

यजंते नाम यज्ञस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

यन्हविं यागादिकीं क्रिया । आहाण ते चि धनंजया ।
 परि विपलांति आचरौनियां । नाटकी जैसे ॥ ७४ ॥
 बालभाचिया उजरिया । आपणेयां प्रति कुस्त्रिया ।
 जोडूनि तोखविति जैसिया । ऐहेवपणे ॥ ७५ ॥
 तैसे आपणेयां आपण । मानितां महंतपण ।
 फुगे असाधारण । गर्वें तेणें ॥ ७६ ॥
 मग लवों नेणति कैसे । आटिवं लोहखांत्र जैसे ।
 कां उधवली आकाशें । शिलाराशि ॥ ७७ ॥
 तैसे आपुलिये बरवे । आपण चि रिझति जीवें ।
 तृणाहूनि आघवें । मानिति नीच ॥ ७८ ॥
 वारि धनाचिया मदिरा । माजौनि धनुर्द्धरा ।
 कृत्याकृत्यविसरा । सवते केले ॥ ७९ ॥
 जें आंगि आइति ऐसी । तेथ यज्ञाची गोठि कायिसी ।
 तन्हीं काइ काइ पीसीं । न करिति गा ॥ ३८० ॥

ह्यगौनि कोणहें येकें वेलें । मौढ्यमदाचेनि वलें ।
 यागाचें हिं टवालें । आदरीति ॥ ८१ ॥
 ना कुंडें मंडप वेली । कां उचितसाधनसमृद्धी ।
 आणि तेयांसी चि तवं विधि । दंद चि किर ॥ ८२ ॥
 देवांब्राह्मणाचेनि नावें । तेउते वारेन हीं नोहावे ।
 ऐसें तेथ देयावें । लागैल कवणां ॥ ८३ ॥
 पै वांसुरुवांचा भोकसा । गाथी पुढां ठेउनि जैसा ।
 उगाणा घेंति क्षीररसा । बुद्धिमंत ॥ ८४ ॥
 तैसें यागाचेनि नावें । जगा वाउनि हांवे ।
 नागवीति आघवें । ऐहेरा वाऱ्हीं ॥ ८५ ॥
 ऐसा काहिं आपुलिया । होमीति जे उजरिया ।
 तेणें कामिति प्राणियां । सर्वनाशु ॥ ८६ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ॥

मामात्म परदेहेषु प्रद्विपंतोभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

मग पुढां भेरी निसाण । लाउनि तैं दीक्षितपण ।
 जगां फोकरीति आग । वार्यो वार्यो ॥ ८७ ॥
 तेधवां महलें तेणें अधमां । तेयां सगरवां हिं चढे महिमा ।
 जैसे लेवे दीधळे तमा । काजलाचे ॥ ८८ ॥
 तैसे मौढ्य घणावे । अहंकार दुणावे ।
 औद्धत्यें उंचावे । अहंभाउ ॥ ८९ ॥
 मग दुजेयाची भाक । नुरावेया निःशेष ।
 बलियेपर्णे आणिक । होये बल ॥ ९० ॥
 ऐसा अहंकारा बला । जालियां एकवला ।
 दर्पसागर वेला । सांडुनि उते ॥ ९१ ॥
 मग बोसंडलेनि दर्पें । कामां हिं पीत्त कुरुपे ।
 तेया धर्मी सैव पलिपे । क्रोधाग्निची ॥ ९२ ॥

तेथ उन्हाला आणि पुरा । तेलतूपाचेया घठारा ।
 लागला आणि वारा । सूटला जैसा ॥ ९३ ॥
 तैसा अहंकार आलाबैला । दुर्पु कामक्रोधी रूढला ।
 एयां दोहींचा मेल । जेयाचां ठांडं ॥ ९४ ॥
 तो आपुलिया स्वैछा । मग कोणी कोणीं ठांडं हिंसा ।
 यां प्राणियांतें वीरेया । न सधीति गा ॥ ९५ ॥
 पहिलें तवं धनुर्द्वरा । आपुलिया मांसा रुधिरा ।
 वेचु करिति अभिचारा । लागौनियां ॥ ९६ ॥
 तेथ जालितु तियें देहें । तेयां माझि मीं आहें ।
 तेया आत्मियां मज घाए । वाजति ते ॥ ९७ ॥
 आणि अभिचारिकिं तिहीं । उपद्रवीति जेतुलें काहीं ।
 चैतन्य मीं चि पाहिं । सीणु पावें ॥ ९८ ॥
 ऐसें अभिचारा वेगलें । विपायें जें अवगळे ।
 ते टाकीति एटालें । पैशून्याचिं ॥ ९९ ॥
 सतिया संतपुरुष । दानशील याज्ञिक ।
 तपस्वी अलौलिक । सन्यासी जे ॥ ४०० ॥
 कां भक्त हान महात्म्ये । तियें माझीं निजधामें ।
 निर्वालीं होमें धर्में । श्रौतादिकीं ॥ १ ॥
 तेया द्वेषाचेनि कालकूटें । बासटूनि तीखटें ।
 कुबोलाचिं सदटें । सिंथिति काडें ॥ २ ॥

तानहं द्विपतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ॥

द्विपाभ्यजस्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु ॥ १९ ॥

ऐसें आववेया चि परीं । प्रवर्त्तले माझां वैरीं ।
 तेयां पापियां मीं करी । तें आइक पां ॥ ३ ॥
 तारि मनुष्यदेहाचा तागा । घेउनि रुसति जगा ।
 ते पदवी हिरौनि पै गा । ऐसे ठेवीं ॥ ४ ॥

क्लेशगार्विंचां उकरडां । भवपुरिचां पाणवाडां ।
 ते तमोयोनि तेयां कुडां । वृत्ति मीं दें ॥ ५ ॥
 मग आहाराचेनि नावें । तृण हीं जेथ नुगवे ।
 ते व्याघ्र वृक अडवे । तैसियां करिं ॥ ६ ॥
 तेथ क्षुधादुःखें बहुतें । तोडुनि खांतां आपणपेयांतें ।
 मरों मरों माघौते । होंते चि असति ॥ ७ ॥
 कां आपुलां गरलज्वालीं । जालीं तेयां आंगाचि पेंदलीं ।
 ते सर्प चि करीं बिलीं । निरुंधलां ॥ ८ ॥
 परि घेउनि श्वासु घापे । येतुलेन हिं मापें ।
 विसांवां तेयां लिपे । अर्जुना गा ॥ ९ ॥
 ऐसेनि कल्पांचिया कोडी । गणितां हीं संख्या थोडी ।
 तेतुला वेलु न कर्दी । क्लेशौनि तेयां ॥ ११० ॥
 तन्हीं तेयां जेथ जाणें । तेथिचें हें पहिलें पेणें ।
 ते पाहुनु ये दारुणें । नव्हंति दुःखें ॥ ११ ॥

आसुरीं योनिमापन्ना मृदा जन्मनि जन्मनि ॥

मामप्राप्यैव कौतेय ततो यांलधमां गर्तिम् ॥ २० ॥

हा ठाऊ वेन्हीं धरीं । संपत्ति ते आसुरी ।
 अधोगति अवधारिं । जोडिली तिहीं ॥ १२ ॥
 पाठिं व्याघ्रादि तामसा । योनि तो अलुमालु ऐसा ।
 देहाधाराचा उसासा । आधि जो हा ॥ १३ ॥
 तो ही मीं बोलावा हिरें । मग तम चि होंति यकसरें ।
 तेथ गेलें आंधारें । कालवंडिजे ॥ १४ ॥
 जेयाचिया चिलसी । नरक घेंति विवसी ।
 सीणु जाये मूसीं । साणे जेणें ॥ १५ ॥
 मळु जेणें मैले । तापु जेणें पोले ।
 जेयाचेनि नावें सळे । महाभय ॥ १६ ॥

ऐसे विश्वाचेया खटेया । अधम जे धनंजया ।
 ते ते होंति भोगावेया । तामसा योनी ॥ १७ ॥
 आहा सांघतां वाचा रडे । आटवितां मन खिरडे ।
 कट रे मूर्ख केवडे । जोडिले होणे ॥ १८ ॥
 काइसेया ते आसुर । संपत्ति जोडावी वाउर ।
 जिया दीधले थोर । पतन ऐसे ॥ १९ ॥
 हणौनि तुवां धनुर्द्धरा । न व्हावे गा तिया मोहरा ।
 जेतता वासु असुरा । संपत्तिवंता ॥ २० ॥
 त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ॥
 कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ २१ ॥
 आणि दंभादि दोष साई । हे संपूर्ण जेयाचां टाई ।
 ते त्यजावे हें चि काई । हणों किर ॥ २१ ॥
 परि काम क्रोध लोभ । येयां तिहींचें विव ।
 थावे तेथ अशुभ । प्रकाशले जाण ॥ २२ ॥
 सर्वदुःखा आपुलेया । दर्शन धनंजया ।
 पाटाउ भलेया । दिधले आथि ॥ २३ ॥
 कां पापिया नरकभोगी । सुवावेया लागि जर्गी ।
 पातकांची दाटुगी । सभा चि हे ॥ २४ ॥
 ते रौरव गा तवं वेरि । आइकिजति गा अपटांतरी ।
 जवं तीन्हीं अंतरी । उठीति नां हे ॥ २५ ॥
 अपार्ये येणे आसलग । यातना इहिं सर्वर्ष ।
 हाणि हाणि नोहे तीव । हे चि हाणी ॥ २६ ॥
 काइ बडू बोलों सुभटा । सांघितलेयां निवृष्टां ।
 नरकाचा दारवटा । त्रिसांकु हा ॥ २७ ॥
 ययां कामक्रोधां लोभां । माजि जीवे जो होये उभा ।
 तो निरयपुरिची सभा । पातला जाण ॥ २८ ॥

हणौनि पुहुतीं किरिटी । हे कामादिदोषत्रिपुटी ।
त्यजावी गा वोखटी । आघवां विखीं ॥ २९ ॥

एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमोद्धारैस्त्रिभिर्नरः ॥

आचरत्यात्मानः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ २२ ॥

धर्मादिक चहुं आंतु । पुरुषार्थांची तें चि मातु ।
करावी जें सांघातु । सांडील हा ॥ ४३० ॥
हे तीन्ही जिर्नी जागती । आणि निकेयाचि प्राप्ति ।
हे माझे कान नाइकती । देवो हणो ॥ ३१ ॥
जें आपणपें पाडिये । आत्मनाशा जो भिये ।
ते तेंणें न धरावी सोये । निश्चयेंसीं ॥ ३२ ॥
पोटीं बांधौनि पाखाण । समुद्रिं बाहिं आंगवण ।
कां जियावेया जेवण । कालकूटाचें ॥ ३३ ॥
इहीं कामक्रोधलोभेंसीं । कार्यें सिद्धति तैसीं ।
हणौनि ठावो चि पूसीं । येयांचा गा ॥ ३४ ॥
जें काहीं अवचटें । हे तिकडी सांखल फीटे ।
तें मुखें आपुलिये वाटे । चालो लामे ॥ ३५ ॥
त्रिदोषीं सांडिलें शरीर । त्रिकुटी फीटलेयां नगर ।
त्रिदाघ निमालेयां अंतर । जैसें होए ॥ ३६ ॥
तैसा कामादिकिं तिर्घीं । सांडिला सुखा पावे जर्गीं ।
संगु लाहे मोक्षमार्गीं । सज्जनाचां ॥ ३७ ॥
मग सत्संगें प्रबलें । सत्शास्त्राचेनि बलें ।
जन्ममृत्युचिं निमालें । निस्तरे रानें ॥ ३८ ॥
तेव्हां आत्मानंदें आघवे । जे सदा वसतें बरवें ।
तें तैसें चि पाटण पावे । गुरुकृपेचें ॥ ३९ ॥
तेथ प्रियाची पैली सीमा । ते भेटे माउली आत्मा ।
तिये क्षेवीं व्यटे डिंडिमा । संसारिक हे ॥ ४४० ॥

जो कामक्रोधलोभां । झाडि करुनि ठाके उभा ।
तो एवडेया येया लाभा । गोसांविं होए ॥ ४१ ॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ॥
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ २३ ॥

ना हें नावडौनि काहीं । कामादिकाचां टांडं ।
दाटिलें जेणें डोई । आत्मचोरें ॥ ४२ ॥
जो जमीं समान सकुपु । हिताहितु दाविता दीपु ।
तो अमान्यु केला बापु । वेदु जेणें ॥ ४३ ॥
न धरी चि विधिची भीड । न करि चि आपुली चाड ।
वाढवीतु गेला कोड । इंद्रियांचें ॥ ४४ ॥
कामक्रोधलोभाची कास । न सोडी चि पाळिली भास ।
स्वैराचाराचें असोस । रान रिगाला ॥ ४५ ॥
संसारबंधु जाये ! हें किर तेयाचें कें आहे ।
परि तो इहिकीं न लाहे । विषय भोगूं ॥ ४६ ॥
ते सूटिकेचिया वाहाणी । मग पियों न लाहे पाणी ।
स्वर्णां हीं ते काहाणीं । दूरी चि तेया ॥ ४७ ॥
तरि मांसा लागि भूलला । ब्राह्मणु पाणवाडां रिगाला ।
किं तेन्हां चि तेथ लागला । आगि जैसा ॥ ४८ ॥
तैसें विपयांचेनि कोडें । जेणें परत्रा केलें उबडें ।
तवं तो चि आनी कडे । मरणें नेला ॥ ४९ ॥
एवं परत्र ना स्वर्गु । इहिक ना विषयभोगु ।
तेथ केउता प्रसंगु । मोक्षाचा तो ॥ ४५० ॥
हणौनि कामाचेनि बलें । विषयो चरों पाहे ढालें ।
तेया विषयो ना स्वर्गु मिले । ना उदरे तो ॥ ५१ ॥

तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥
शास्त्रा शास्त्रं विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हासि ॥ २४ ॥

या कारणें पै बापा । जेया आपुली आधि कृपा ।
 तेणें वेदांचेया निरोपा । आन न कीजे ॥ ५२ ॥
 पतिचेया व्रता । अनुसरे पतिव्रता ।
 अनायासें आत्महिता । भेटे जेवि ॥ ५३ ॥
 नातारि श्रीगुरुवचना । दीटि देंतु जतना ।
 शिष्यु आत्मभवना । माझि पैसे ॥ ५४ ॥
 हें असो आपुला ठेवा । जरि हाता आधि यावा ।
 तारि आदरें जेवि दीवा । पुढां कीजे ॥ ५५ ॥
 तैसा अशेषां पुरुपार्था । जो गोसांविं हों ह्यणे पार्था ।
 तेणें श्रुती स्मृती माथा । वैसों घापे ॥ ५६ ॥
 शास्त्र क्षणैल सांडावें । तें राज्य ही तृण मानावें ।
 जें घेववि तें न मनावें । विष ही वीरुं ॥ ५७ ॥
 ऐसी वेदैक निष्ठा । जालेयां सूभटा ।
 तारि कें आहे अनिष्टां । भेटणें गा ॥ ५८ ॥
 पै अहिता पासौनि काढिती । हित देउनि वाढविती ।
 नाहिं श्रुती परौती । माउली जर्गी ॥ ५९ ॥
 ह्यणौनि ब्रह्मसिं मेलवी । तवं हे कोणहीं न संडावी ।
 अगा तुझां ऐसां भजावीं । विशेषेसीं ॥ ४६० ॥
 जें आजि तूं अर्जुना एथें । करावेया शास्त्रें सार्थें ।
 जन्मलासि बलार्थें । धर्माचेनि ॥ ६१ ॥
 आणि धर्मा अनुज हि ऐसें । हें बोधें चि आलें पैसें ।
 ह्यणौनि अनारिसें । करुं न ये ॥ ६२ ॥
 कार्याकार्यविवेकीं । शास्त्रें चि करावी पारखी ।
 अकृत्यत्व तें कुडें लोकीं । बालावें गा ॥ ६३ ॥
 मग कृत्यपणें खरें निगे । ते तुवां आपुलेनि आंगें ।
 साचरौनि आदरें चांगें । सारावें चि ॥ ६४ ॥

जे विश्वप्रमाणिची मुदी । आजि तूझां हातीं सुबुद्धी ।
 लोकसंग्रहाची त्रिशुद्धी । योग्यु होंसी ॥ ६५ ॥
 एवं आसुरवर्गु आघवा । सांघौनि तेथिचा निगावां ।
 तो ही देवें पांडवा । निरोपिला ॥ ६६ ॥
 या वरि तो पांडुचा । कुमरु भाउ जीवाचा ।
 पूसैल तें चैतन्याचां । कानीं आइकां ॥ ६७ ॥
 संजयें व्यासाचेया निरोपा । तो वेलु फेडिला तेया नृपा ।
 तैसा मी हीं निवृत्तिकृपा । सांघैन तुझां ॥ ६८ ॥
 तुझीं संत माक्षिया कडा । दीठिचा कराल बहु वाडा ।
 तरि तुझां मानें येवढा । होईन मीं ॥ ६९ ॥
 ह्यगौनि निज अवधान । मज उलगे पसायदान ।
 दीजो जी क्षमीं होईन । ज्ञानदेउ ह्यणे ॥ ४७० ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
 योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरविभागयोगो

नाम षोडशाध्यायः ।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ छ ॥



ज्ञानेश्वरी

अध्याय सतरावा

श्रीगणनाथायनमः ॥

विश्वविकासिनी मुद्रा । जेया सांडे तूझां निद्रा ।
तेया नमो जी गणेंद्रा । गुरु तुज ॥ १ ॥
त्रिगुणत्रिपुरीं वेढिला । जीवत्वदुर्गे अडिला ।
तो आत्माशंभु सोडिला । तूझिया स्मृती ॥ २ ॥
ह्यणौनि शिवेंसि कांटाला । गुरुत्वे तूं चि आगला ।
तन्हीं हद्द मायाजाला । माजि तारिता ॥ ३ ॥
जे तूझां विर्षीं मूढ । तेयां लागि तुं वक्रतुंडु ।
ज्ञानियां तरि अखंडु । उजु चि अससि ॥ ४ ॥
दैविकी दीठि पांतां सानीं । तन्हीं निमिलोन्मीलनीं ।
जगा आदि प्रलयो दोन्हीं । लीला चि करिसी ॥ ५ ॥
प्रवृत्तिकरणाचां चाली । उठिलीं मदाचां गंधानीलीं ।
पूजिजसि नीलोत्पलीं । जीवभृंगाचां ॥ ६ ॥
पाठिं निवृत्तिकर्णतालें । अहलि तें पूजा विधुले ।
वेव्हळें भिविसि मोकळें । आंगाचें लेणें ॥ ७ ॥
वामांगिचा लास्यविलासु । जो हा जगद्रूप आभासु ।
तो तांडवभीषें कलासु । दाबीसी तूं ॥ ८ ॥

हें असो विस्मो दातारा । तूं होंसि जेयांचा सोयरा ।
 सोइरिकेचिया वेव्हारा । मूंकें चि तो ॥ ९ ॥
 फेडितां बंधनाचा ठाउ ॥ तूं जगद्वंधु ऐसा आहो ।
 धरूं बोलगे उवाउ ॥ तूझां चि आंगों ॥ १० ॥
 दूजेयाचेनि नावें तेया । देह ही नूरे चि राया ।
 जाणों आपणपेयां । केलसि दूजा ॥ ११ ॥
 तूतें करुनि पुढें । जे उपायें घेंति दवडे ।
 तेयां ठाकसि बहुवें पाडें । मागां चि तूं ॥ १२ ॥
 जो ध्यानं मुये मानसीं । तेया लागि तूं नाहिं देशीं ।
 ध्यानं चि सरें तेंणेंसीं । वालभ तुज ॥ १३ ॥
 तूतें सावध चि जो नेणे । तो नांदे सर्वज्ञपणें ।
 वेदां हिं येवडें बोलणें । नेवसि कानीं ॥ १४ ॥
 मौन गां तूजें राशिनावं । आतां स्तोत्रिं कें भांजे हावं ।
 दीससि तेतुली माव । भजों कायि ॥ १५ ॥
 दैविकें सेवक हों पाहों । तारि भेदितां द्रोहो लाहों ।
 हणौनि आतां काहिं चि नोहों । तुज लागि जी ॥ १६ ॥
 जें सर्वथा सर्व ही नोहिजे । तें अद्वया तूतें लागिजे ।
 हें जाणें मीं वर्म तूजें । आराध्यलिंगा ॥ १७ ॥
 तारि नूरौनि वेगलेपण । रसिं भजिनलें लवण ।
 तैसे नमन माझें जाण । बहू कायि बोलों ॥ १८ ॥
 आतां रीता समुद्री रिगे । तो उचंबलतु कुंभु निगे ।
 कां दसी दीपा संगें । दीपू चि होए ॥ १९ ॥
 तैसा तूझेया परिणती । मीं पूर्णु जालां श्रीनिवृत्ती ।
 आतां आणीन घ्यक्ती । गीतार्थु तो ॥ २० ॥
 तारि षोडशाध्याइ शेखां । तिये समाप्तिकां श्लोकां ।
 जो ऐसा निर्णयो निष्टकीं । केला देवें ॥ २१ ॥

जें कृत्याकृत्यव्यवस्था । अनुष्ठवेया पार्था ।
 शास्त्र चि एक सर्वथा । प्रमाण तुज ॥ २२ ॥
 तेथ अर्जुनु ह्मणे मानसें । हें ऐसें कैसें ।
 जें शास्त्रें विण नसे । सूटिका मां ॥ २३ ॥
 तारि तक्षकाची फडे । टाकूनि कै तें माणिक काढे ।
 कै नाकिचा कैसु जोडे । सिंहाचिये ॥ २४ ॥
 मग तेणें तो बोविजे । तरी चि लेणें पाविजे ।
 यन्हविं काइ असिजे । रिक्तकंठां ॥ २५ ॥
 तैसि या शास्त्रां मोकली । इया कै वेंटाळी ।
 जे येकवाक्यतेचां फलीं । पैसिजे कै ॥ २६ ॥
 जालेयां हिं येकवाक्यता । कां लाभे वेलु अनुष्ठितां ।
 कैचा पैसार जीविता । एतुलालेया ॥ २७ ॥
 आणि शास्त्रें अर्थें देशें कालें । इंहि चौंहि एक जें फले ।
 तें वावो किं कामिलें । आघवें चि ॥ २८ ॥
 ह्मणौनि शास्त्राचें घडतें । नोहे प्रकारें बहुतें ।
 तारि मूर्खां मुमुक्षां एथें । काइ गति ॥ २९ ॥
 हा प्रसावेया अभिप्रा३० । अर्जुनु करील प्रस्ता३० ।
 तो सतरावेया ठा३० । अध्याया येथ ॥ ३० ॥

अर्जुनु उवाच ॥

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजंते श्रद्धयान्विताः ॥
 तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥
 तारि सर्वविषयिं वितृष्णु । जो सकलकलिं सनुष्णु ।
 कृष्णा हिं नवल कृष्णु । अर्जुनत्वे जो ॥ ३१ ॥
 शौथें जोडिला आधार । जो सोमवंसिचा शृंगार ।
 मुखादिउपचार । जैयाची लीला ॥ ३२ ॥

जो प्रज्ञेसि प्रियोत्तम । विद्यांचा विश्रामु ।
 सहचरु मनोधर्मु । देवांचा जो ॥ ३३ ॥
 तो ह्यणे गा तमालश्यामा । इंद्रियां फावलेयां ब्रह्मा ।
 तूज्ञा बोलु येकु आह्वां । साकांक्षु पै जी ॥ ३४ ॥
 जे शास्त्रे वांचौनि आणिकें । प्राणियां स्वमोक्षु न देखे ।
 ऐसें जें कैपक्षें । बोलिलें देवें ॥ ३५ ॥
 तरि न मिले चि तो देशु । नोहे चि काला अवकाशु ।
 जो करवि शास्त्राभ्यासु । तो ही दूरि ॥ ३६ ॥
 अभ्यासीं विरजिया । होंति जिया सामग्रिया ।
 तेया ही नाहिं आपैतिया । तेणें वेलें ॥ ३७ ॥
 उजू नोहे चि प्राचीन । नेंदी चि प्रज्ञा संवाहन ।
 ऐसें ठेलें आपादान । शास्त्रांचें जेया ॥ ३८ ॥
 किंबहुना शास्त्रविखिं । एकि ही न लाहांती चि नाखी ।
 ह्यणौनि उखीविखीं । सांडिली जिहिं ॥ ३९ ॥
 परि निर्द्धरनि शास्त्रें । अर्थानुष्ठानें पवित्रें ।
 नांदताति परत्रें । आचारें जे ॥ ४० ॥
 तेयां ऐसें आह्मिं होआवें । ऐसी चाड वांधौनि जीवें ।
 घेंति तेयाचे मागावे । आचरावेया ॥ ४१ ॥
 धडेयांचेयां आखरा । तलें बाल लिहे दातारा ।
 कां पुढां सूनि काठिकारा । अक्षमु चाले ॥ ४२ ॥
 तैसें सर्वशास्त्रनिपुण । तेयांचें जें आचरण ।
 तें चि करीति प्रमाण । आपुलिये श्रद्धे ॥ ४३ ॥
 मग शिवादिकें पृजनें । भूम्यादिकें महादानें ।
 अग्निहोत्रादि यजनें । करीति जे श्रद्धा ॥ ४४ ॥
 तरि तिया सत्वरजतमां । माजि कोणि पुरुषोत्तमा ।
 गति होये ते आह्वां । सांविजो जी ॥ ४५ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ॥

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ २ ॥

जो निगमपद्माचें पराग । जो वैकुण्ठपीठिचें लिंग ।

जिये जेयाचिया जग । अंगछाया ॥ ४६ ॥

कालु सवियां चि वाडु । लोकोत्तर प्रौढ ।

अद्वितीयु गूढ । आनंदवतु ॥ ४७ ॥

इयें श्लाघ्यजती जेणें बीकें । जेयाचेनि आकाशअंग असिकें ।

तो श्रीकृष्णु स्वमुखें । बोलतुसे ॥ ४८ ॥

हण्णे पार्था तूज्ञा अतिसो । घेइं गा आह्नि जाणतसों ।

शास्त्रअभ्यासाचा आडसो । मानितोसि किं ॥ ४९ ॥

नसुदिया चि श्रद्धा । शौबों पाहांसि परमपदा ।

तारि तैसें हें प्रबुद्धा । सोहपें नोहे ॥ ५० ॥

श्रद्धा ह्यणितलेया चि साठीं । पातिजों न ये किरीटी ।

कायि द्विजु अंयजुवृष्टी । अंयजु नोहे ॥ ५१ ॥

गंगोदक जन्हीं जालें । तन्हीं मद्यभंडां आलें ।

घेउं ये काहिं केलें । विचारि पां ॥ ५२ ॥

चंदनु होये शीतलु । परि अग्निसिं पावे मेलु ।

तो हाति धारिलेयां जाळुं । न शके काई ॥ ५३ ॥

कां कीडाचिये पुटीं । पडिलें सोने किरीटी ।

घेतलेयां सोलें साठिं । नागवी नां ॥ ५४ ॥

तैसें श्रद्धेचें दलवाडे । आंगें किर चोखडें ।

परि प्राणियां चांपडे । विभागें जें ॥ ५५ ॥

आणि प्राणिये तवं स्वभावें । अनादिमायाप्रभवें ।

गुणाचे चि आवेवे । वळिटे आधि ॥ ५६ ॥

तेथ ही दोनि गुण खंचति । मग एकु धरी उन्नती ।
 तें तैसी चि होति वृत्ति । जीवांचिया ॥ ५७ ॥
 वृत्ती ऐसें मनीं धरिति । मना ये ऐसी क्रिया करिति ।
 केलेयां ऐसें वरीति । मरौनि देह ॥ ५८ ॥
 बीज मोडे झाड होये । झाड सुकळें बिजि माये ।
 ऐसेनि कल्पकोडी जाये । जाति न नशे ॥ ५९ ॥
 तिया परि इयें अपारें । होंत जांत जन्मांतरें ।
 त्रिगुणत्व न व्यभिचरे । प्राणियांचें ॥ ६० ॥
 ह्यणौनि प्राणियांचां पैकीं । पडिली श्रद्धा अवलोकिं ।
 होये गुणा सारिखी । तिहिं येयां ॥ ६१ ॥
 विपायें वाढे सत्व शुद्ध । जेधवां ज्ञान चि करी साध ।
 परि येका दोनि बोखद । येर आहाति ॥ ६२ ॥
 सत्वाचेनि आंगलर्गे । ते श्रद्धा मोक्षफला रिगे ।
 तवं रजतम उगे । कां पां राहाति ॥ ६३ ॥
 मोडूनि सत्वाची त्राये । रजोगुणु आकाशें जाये ।
 तेव्हां ते चि श्रद्धा होये । कर्माची सुणी ॥ ६४ ॥
 मग तमाची उठी आगि । तेधवां ते चि श्रद्धाभंगी ।
 हों लागे भोगा लागि । भलेतेया ॥ ६५ ॥
 एवं सत्वरजतमां । वेगळाली श्रद्धा सुवर्मा ।
 नाहिं भूतप्रामां । माजि येयां ॥ ६६ ॥
 ह्यणौनि श्रद्धा स्वाभाविक । असे गुणत्रयात्मक ।
 रज तम सात्विक । मेदिं इहिं ॥ ६७ ॥
 जैसें जीवन चि उदक । परि विशिं होये मारक ।
 कां मिरियां माजि तीख । उंसिं गोड ॥ ६८ ॥
 तैसा बहुवसें तमें । जो सदा होये निमे ।
 तेथ श्रद्धा पारणमे । तें चि होउनि ॥ ६९ ॥

मग काजला आणि मसि । न दिसे विवंचना जैसी ।
 ते चि श्रद्धा तामसी । सिनानी नाहिं ॥ ७० ॥
 तैसी चि राजसी जीविं । रजोमय जाणात्री ।
 सात्विकिं आघवी । सत्वाचि चि ॥ ७१ ॥
 ऐसेनि हा सकलु । जगडंवरु निखलु ।
 श्रद्धेचा चि केवलु । बोतिला असे ॥ ७२ ॥
 परि गुणत्रयवसें । त्रिविधपणांचें लसें ।
 श्रद्धे जें उठिलें असे । तें चि बोलख ॥ ७३ ॥
 तरि जाणिजे झाड फूलें । मानस जाणिजे बोलें ।
 भोगें जाणिजें केलें । पूर्वजन्मिचें ॥ ७४ ॥
 तैसि जिहिं जिहिं चिन्हि । श्रद्धेचीं रूपें तिन्हीं ।
 देखति ते बानी । अवधारि पां ॥ ७५ ॥

सत्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ॥

श्रद्धामयो यं पुरुषे यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

तरि सात्विकी श्रद्धा । जेयांचा होये बांधा ।
 तेया बहू करुनु मेधा । स्वर्गिंची आधि ॥ ७६ ॥

यजंते सात्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ॥

प्रेतान्भूतगणां श्रान्ये यजंते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

ते विद्याजात पठति । यज्ञक्रियां निवडिति ।

किंबहुना पडति । देवपैकिं ते ॥ ७७ ॥

आणि श्रद्धा राजसां । वडिजे वीरेशा ।

ते भजति राक्षसां । खेचरां हान ॥ ७८ ॥

जीववधें साधूनि बलि । भूतप्रेतकुळें मौली ।

श्मशानीं संध्याकालीं । पूजिति जे ॥ ७९ ॥

ते तमोगुणाचें सार । काढूनि निर्मिले नर ।

जाण तामसियेचें घर । श्रद्धेचें तिये ॥ ८० ॥

ऐसा इहिं तिहिं लिंगि । त्रिविध श्रद्धा जगि ।
 पै हें इं यया लागि । सांघतसें ॥ ८१ ॥
 जे हे सात्विक श्रद्धा । जतना धरावी प्रवृद्धा ।
 येरी दोन्हीं विरुद्धा । सांडाविया ॥ ८२ ॥
 हे सात्विकी श्रद्धा जेया । निर्वाहाती होये धनंजया ।
 बागुलु नाहिं तेया । कैवल्य तें ॥ ८३ ॥
 तो न पढो कां ब्रह्मसूत्र । नाओडू सर्वशास्त्र ।
 सिद्धांतु नव्हंतु सतंत । तेयाचां हातीं ॥ ८४ ॥
 पारि श्रुतिस्मृतिचे अर्थ । जे आपण होउनि मूर्त्त ।
 अनुष्ठानें जगा देंत । वडिल जे गा ॥ ८५ ॥
 तेयांचि आंचरतिं पाउलें । पाहुनि सात्विक श्रद्धा चाले ।
 तो तें चि फल ठेविलें । ऐसें पावे ॥ ८६ ॥
 पै येकुं दीपुं लावी सायासें । आणिकु फांकावेया तेथ बैसे ।
 तारि काइ प्रकारें । वंचिजे गा ॥ ८७ ॥
 कां येकें मोल अपार । वेचुनु बांधलें ढवलार ।
 तो मुरवाडु वस्तिकर । न भोगि काइ ॥ ८८ ॥
 हें असो जो तलें करी । तेयाची चि तृषा हरी ।
 तें सर्वा आन करी । हें विचारि पां ॥ ८९ ॥
 हें बहू काइ बोलें पै गा । एका गौतमासी चि गंगा ।
 एरां समस्तां काइ गा । वोहल जाली ॥ ९० ॥
 ह्यणौनि आपुलिया परी । शास्त्र अनुष्ठिति कुसरी ।
 तेयातें श्रद्धालु जो वरी । तो मूर्खुं ही तरे ॥ ९१ ॥
 अशास्त्रविहितं घोरं तप्यंते ये तपो जनाः ।
 दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥
 ना शास्त्राचेन किर नावें । खांकरुं हिं न ये थावें ।
 परि शास्त्रज्ञा हिं सीवे । ठेकें नेंदी ॥ ९२ ॥

वडिलांचिया क्रिया । छांदसत्वं वांकुलिया ।
 दावीति डाकुलिया । वाजवीति ॥ ९३ ॥
 आपुलेनी चि आटोपें । धनत्वाचेनि दर्पें ।
 साचाचि खंडित तर्पें । आदरिलीं ॥ ९४ ॥
 आपुलिया पुढिलाचेया । आंगा घाद्वनि कातिया ।
 रक्ता मांसा प्राणितिया । भरूं भरूं देती ॥ ९५ ॥
 रिचवीति जलतां कुंडीं । लावीति चेडेयाचां तोंडीं ।
 नवसिये दैत उंडी । बालकांची ॥ ९६ ॥
 आप्रहाचिया उजिरिया । क्षुद्रदेवतां वन्हीयां ।
 अन्नत्यागें सातरिया । टाकिति एक ॥ ९७ ॥
 आगा आत्मपरपीडा । बीज तमक्षेत्रीं सुहाडा ।
 पेरीति मग पुढीं । तें चि पीके ॥ ९८ ॥
 बाहिं नाहिं जोडि आपुलेया । आंगें न्हवती चि धनंजया ।
 मग चिति तें तेयां । होये कां ऐसे ॥ ९९ ॥
 वैयातें करीति साला । रसु घाली पांउखला ।
 तो रोगिया विव्हला । सोवता होये ॥ १०० ॥
 नाना पढिकराचेनि सलें । काढी आपुले डोले ।
 ते वोणवां चाले आंधलें । जैसैं ठाके ॥ १ ॥
 तैसैं तेयां तामसां होये । जें निंदूनि शास्त्रांची सोये ।
 सैव धांवति मोहें । आडाइले ॥ २ ॥
 कामु करवी तें कारिति । क्रोधु मारवी तें मारीति ।
 किंवहुना मातें दुखविति । दुःखाचां गुंडां ॥ ३ ॥
 कर्षयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ॥
 मां चैवांतःशरीरस्थं तान्विध्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥
 आपुलां परावां देहीं । जें वीरं कारिति काहिं ।
 तें मज आत्मेयां माहिं । होये सीणु ॥ ४ ॥

पैं वाचेचेनि पाळवे । पापिया तेयां नातलावें ।
 परि पडिलें सांघावें । लज्जावेया ॥ ५ ॥
 प्रेत वाहिरें घालिजे । कां अंत्यु जैसा भखलिजे ।
 हें असो हातें क्षालिजे । कष्मलातें ॥ ६ ॥
 तेथ झुद्धिचेया आशा । तो लेपु न मनावा जैसा ।
 तेयातें सांडावेया तैसा । अनुवादु हा ॥ ७ ॥
 परि अर्जुना तूं तेयातें । देखसी तैं स्मर हो मातें ।
 जें, आन प्रायश्चित्त येथें । मानैल ना ॥ ८ ॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ॥
 यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

क्षणौनि श्रद्धा जे सात्विकी । पुडुतिं तिये चि पैं एकी ।
 जतन करावी नीकी । सर्वां परीं ॥ ९ ॥
 धरावा तैसा संगु । जेणें पोखे सात्विक लागु ।
 सत्ववृद्धिचा भागु । आहार घेपे ॥ ११० ॥
 यन्हविं तन्हीं पाहिं । स्वभावो वृद्धिचां ठांइ ।
 आहाड्ड वांचौनि नाहिं । बलि हेतु ॥ ११ ॥
 प्रत्यक्ष पाहे पां वीरा । जो सावधु घे मदिरा ।
 तो होउनि टाके माजिरा । तिये चि क्षणीं ॥ १२ ॥
 कां जो सर्वान्नरस सेवी । तो व्यापिजे वायुस्वभाविं ।
 दाहक जाली निववी । पथ्यादिक ॥ १३ ॥
 नातारि अमृत जेया परीं । घेतलें अमरां करीं ।
 कां आपुटेया ऐसें करीं । सेविलें विष ॥ १४ ॥
 तेविं घेपे जैसा आहार । धातूं तैसा चि होये आकार ।
 धातू ऐसा अंतरहं । भावो पोखे ॥ १५ ॥
 जैसें भांडेयाचेनि तापें । आंतुल उदक तापे ।
 तैसी धातुवसें आटोपे । चित्तवृत्ती ॥ १६ ॥

ह्यणौनि सात्विकु रसु सेविजे । तै सत्वाची वाढि पाविजे ।
 राजसां तामसां होइजे । येरिं रसिं ॥ १७ ॥
 तरि सात्विकु कोणु आहारु । राजसां तामसां काइ आंकारु ।
 हें सांघों करीं आदरु । आकर्णनीं ॥ १८ ॥
 आणि येकसरेया आहारा । कैसेनि तिनि मोहरा ।
 जालिया तें हिं वीरा । रोकडें दाउं ॥ १९ ॥
 तरि जेव्हणाराचिया रुची । निष्पत्ति कीं बोनेयांची ।
 आणि जेवितां तवं गुणाची । दासि होये ॥ १२० ॥
 जो जीउ कर्ता भोक्ता । तो गुणा तव स्वभावता ।
 पावौनियां त्रिविधता । चैष्टे त्रिधा ॥ २१ ॥
 ह्यणौनि त्रिविध आहार । यज्ञ हिं किर त्रिप्रकार ।
 देणें हान व्यापार । त्रिविध चि तें ॥ २२ ॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ॥

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

परि आहारलक्षण पहिलें । सांघों जें ह्यणितळें ।
 तें आइक भलें । रूप करुं ॥ २३ ॥
 तरि सत्वगुणा कडे । जें दैवें भोक्ता पडे ।
 तें मधुरिं रसिं घडे । मेचु तेया ॥ २४ ॥
 आंगें चि द्रव्यें सुरसें । जें आंगें चि पदार्थ गोडिसे ।
 आंगें चि स्नेह बहुवसें । सुपकें जियें ॥ २५ ॥
 आकारें नव्हति डगळें । स्पर्शि अति मौवाळें ।
 जीभे लागलीं स्नेहाळें । स्वादीं जियें ॥ २६ ॥
 रसें गाढिं वरि ढिलीं । द्रव भावें आथिलीं ।
 ठायें ठाऊं सांडिलीं । अग्नितापें ॥ २७ ॥
 आंगां सानें परिणामें थोर । जैसें गुरुमुखिचें अक्षर ।
 तैसे अल्पें जन्हीं आहार । तृप्ति राहे ॥ २८ ॥

आणि मुखें जैसें गोडें । तैसीं देहा आंतुली कडे ।
 तिहिं अन्नीं प्रीति वाडे । सात्विकाची ॥ २९ ॥
 एवंगुणलक्षण । सात्विक भोग्य जाण ।
 आयुष्याचें त्राण । नीच नवें ॥ १३० ॥
 येणें सात्विकें रसें । जवें देहिं मेहो वरिसे ।
 तवें आयुष्यनदी उससे । देहाची देहा ॥ ३१ ॥
 सत्वाची किर पाळती । करणें हें चि मुमती ।
 दिवसाचिये उन्नती । भानु जैसा ॥ ३२ ॥
 कां शरीरा आणि मानसा । बलाचा पैकु वांसा ।
 हा आहारु तें दशा । कैची रोगां ॥ ३३ ॥
 हा सात्विकु होये भोग्य । तें भोगावें आरोग्य ।
 शरीरा भाग्य । उदेलें जाणों ॥ ३४ ॥
 आणि सुखाचें घेणेंदेणें । नीकें उवायाये येणें ।
 हें असो वाडे साजणें । आनंदेंसीं ॥ ३५ ॥
 ऐसा सात्विकु आहारु । परिणमला थोरु ।
 करी उपकारु । सवाहासि ॥ ३६ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्ण तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥

आहारा राजसस्येश्च दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

आतां राजसासि प्रीति । जिहिं रसिं आथि ।
 करुं तेया ही व्यक्ती । प्रसंगें गा ॥ ३७ ॥
 तारि मारें उणें काळकूट । तेणें मानें कडुवट ।
 कां चूनेयांडुनु दासट । अम्लीं हान ॥ ३८ ॥
 कणिकेतें जैसें पाणी । तैसें मीठ बांधेयातें आणी ।
 तेतुली चि मेलवणी । रसांतराची ॥ ३९ ॥
 ऐसें खार अपाडें । राजसा तेया आवडे ।
 उन्हाचेन मीसें तोंडें । अग्नी चि रिगो पां ॥ १४० ॥

वाफेचिये सीगे । वाति ही लागे ।
 तैसें उन्ह मागे । राजसु तो ॥ ४१ ॥
 वावंदणें पाडुनु पाए । सबलु डाहारला ठाये ।
 तैसें तिखट खाये । जें घायें विण लागे ॥ ४२ ॥
 आणि राखेहूनु कोरडें । आंतु बाहिरि पांकिं जे पोपडे ।
 तो जिव्हाडंसु आवडे । बहू तेया ॥ ४३ ॥
 परस्परें दांतां । आडलु होये खातां ।
 तो गा तोंडिं घेंतां । तोखों लागे ॥ ४४ ॥
 आधिं चि द्रव्यें चुरुमुरीं । वरि परिवंडिलीं मडुरीं ।
 जिये घेंतां होये धुवारी । नाकतोडाची ॥ ४५ ॥
 हें असो उगें आगितें । हणणे तैसें राइतें ।
 पढिये प्राणा परोतें । राजसासि गा ॥ ४६ ॥
 ऐसा न पुरौनि तोंडा । जीभा केला वेडा ।
 अन्नमीखें भडभडां । आगी चि खाए ॥ ४७ ॥
 तैसा चि लवंधा सूटे । मग भुयिं ना सेजे सांटे ।
 पाणियांचें न फिटे । तोंडूनि पात्र ॥ ४८ ॥
 ते आहार नव्हंति घेतळे । व्याधिव्याल सुतले ।
 ते चेववावेया घातले । पोटा माझि ॥ ४९ ॥
 तैसें येकमेकां सलें । रोग उठिति एकें वेलें ।
 ऐसा राजसु फले । केवल दुःखें ॥ १५० ॥
 एवं राजसा आहारा । रूप केलें धनुर्द्धरा ।
 परिणामाचा ही विसुरा । सांघितला ॥ ५१ ॥

यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत् ॥

उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥

आतां तेया तामसा । आवडि आहारिं परियसां ।

तें हिं सांघों चिलसा । ज्ञनें तुझीं ॥ ५२ ॥

तारि कुहिलें उसिटें खातां । न मनी काहिं अनहिता ।
 कां साजुका नासका । ह्यैसि जैसी ॥ ५३ ॥
 निफजलें अन्न तैसैं । दुपाहारी कां दिवसैं ।
 अतिकरें तैं तामसैं । घेइजे तें ॥ ५४ ॥
 नातारि अधोऋढीं ठेलें । कां निन्हां करपौनि गेलें ।
 तैसिं हिं खाये चूकलें । रसा जें येवों ॥ ५५ ॥
 जेया कां आथि निष्पत्ति । जेथ रसु धरी व्यक्ती ।
 तें अन्न ऐसैं प्रतीती । तामसा नाहिं ॥ ५६ ॥
 ऐसेन कहिं विपायें । सदना वरिपडा होये ।
 तारि घाणि सूटे तवं राहे । व्याघ्रु जैसा ॥ ५७ ॥
 किं बौहुविं दिसिं वोलांडिलें । सुरसपणें सांडिलें ।
 शुष्क अथवा सडिलें । गाभिणें हिं हो ॥ ५८ ॥
 तें हिं बालांचे हात वेन्हीं । चित्रडिली जैसी घारी ।
 कां सर्वे वैसौनि नारी । आधैलें करी ॥ ५९ ॥
 ऐसेनि कश्मलें जें खाए । तैं तेया जेविलें ऐसैं होये ।
 परि एणें हिं न धाए । पापिया तो ॥ ६० ॥
 मग चमतिकारु देखां । निषेधाचा आंबुखा ।
 जेया कां सदोपा । कुद्रव्यांसि ॥ ६१ ॥
 तेयां अपेयाचां पानी । अखाद्याचां भोजनीं ।
 वाढविजे उतान्ही । तामसैं तेणें ॥ ६२ ॥
 एवं तामसा जेव्हणारा । ऐसी चि मेचु वीरा ।
 याचें फळ दुसरां । क्षणि नाहिं ॥ ६३ ॥
 जें जेव्हां चि अपवित्र । सेवी तेयाचें वक्त्र ।
 तेव्हां चि पापा पात्र । जाला किं तो ॥ ६४ ॥
 एया परौतें जेवी । ते जेविते वोज न ह्यणावी ।
 पोटी भरती जाणावी । यातना ते ॥ ६५ ॥

शिरछेदें काइ होये । कां आगी रिघतां कैसें आहे ।
 हें जाणावें काइ पाहे । वरि साहातु असे जो ॥ ६६ ॥
 ह्यणौनि तामसा अन्ना । परिणामु गा सिना ।
 न संघों चि गा अर्जुना । देवो ह्यणे ॥ ६७ ॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ॥
 , यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः ॥ ११ ॥

आतां एया वरि । आहाराचिया परी ।
 यज्जु हि अवधारिं । त्रिधा असे ॥ ६८ ॥
 परि तिं माजिं प्रथम । सात्विक यज्ञार्चें वर्म ।
 आइक पां सुवर्म । शिरोमणी ॥ ६९ ॥
 तारि येकु प्रियोत्तमु । वांचुनु वाढों नेंदी कामु ।
 जैसा कां मनोधर्मु । पतिव्रतेचा ॥ १७० ॥
 ना सिंधुतें टाकुनि गंगा । पुढां न करी चि निगा ।
 कां आत्मा देखौनि उगा । वेदु ठेला ॥ ७१ ॥
 तैसें जें आपुला विहिति । वेचौनियां चित्तवृत्ती ।
 नुरती चि अहंकृती । फला लागि ॥ ७२ ॥
 पांतलेयां झांडांचें मूल । माघौतें सरों नेणिजे चि जल ।
 जिरालें चि कां केवल । तेयाचां आंगीं ॥ ७३ ॥
 तैसें देह मनें दोहीं । निश्चयाचां ठांड ।
 हारपौनि जें काहिं । इच्छीति ना ॥ ७४ ॥
 तें हिं फलवांछाल्यागीं । स्वधर्मु वांचौनि विरागीं ।
 क्रीजे जो यज्जु सर्वांगीं । अलंकृतु ॥ ७५ ॥
 परि आरिसा आपणपें । डोळां जें वेपे ।
 कां तलहातिचेनि दीपें । रत्न पाहिजे ॥ ७६ ॥
 नाना उदितें दिवाकरें । गमावा मार्गु दीठी भरें ।
 तैसा वेदनिर्द्धारें । देखौनियां ॥ ७७ ॥

तियें कुंडमंडपवेदी । आणिक ही संभारसमृद्धी ।
 ते मेलवणी जैसी विधी । आपण केली ॥ ७८ ॥
 सकलअवयवउचितें । लेणि पातळिं जैसीं आंगातें ।
 तैसै पदार्थ जेथिचा तेथें । विनियोगुनि ॥ ७९ ॥
 काइ वानूं बहुतिं बोलिं । जैसी सर्वाभरणीं भरलीं ।
 यज्ञविद्या चि रूपा आली । यजनमीसैं ॥ १८० ॥
 ऐसा सांगोपांगु । निफजे जो यागु ।
 नुरौनियां लागु । मंहत्वाचा ॥ ८१ ॥
 प्रतिपालु तरि याचा । चौपाटी कीजे तुलसिचा ।
 परि फलफूलछायेचा । आश्रयो नाहिं ॥ ८२ ॥
 किंबहुना फलाशें विण । एसिया निगुतिया निर्माण ।
 होये तो यज्ञ जाण । सात्विकु गा ॥ ८३ ॥

अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् ॥

इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२ ॥

आतां यज्ञु कीर वीरेशा । करी या चि ऐसा ।
 परि श्रद्धा लागि जैसा । आवंतिला राऊ ॥ ८४ ॥
 जें राजा जरि घरासि ए । तरि बहुतु उपेगु होये ।
 आणि कीर्त्ति ही होए । श्रद्धा न ठके ॥ ८५ ॥
 तैसा धरुनि आवांका । ह्मणे स्वर्गु जोडैल असिका ।
 दीक्षितु होईन नीका । घडैल यागु ॥ ८६ ॥
 ऐसी केवल फला लागि । महत्त्व फोकरावेया जर्गी ।
 पार्था निफज चि जे यागीं । राजस पै ते ॥ ८७ ॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदाक्षिणं ॥

श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

आणि पशुपक्षीं विवाहीं । जोईस कामा परौता नाहिं ।
 तैसा तामसा यज्ञा पाहिं । आप्रहो चि मूळ ॥ ८८ ॥

वारेया ऐसा अवाटु होये । कां मरणा मुहूर्त्त पाहे ।
 कां निषिद्धासि न भिये । आगि जैसी ॥ ८९ ॥
 तारि तामसांचेया आचारा । विधिचा आंथि वोढा वारा ।
 ह्मणौनि तो धनुर्द्धरा । उत्संकु खलु ॥ ९० ॥
 नाहिं वेदाची चाडा । नैये मंत्रादिक तेया कडा ।
 अन्न तें न सुटे तोंडा । मासियेचेया ॥ ९१ ॥
 वैराचा बोधु ब्राह्मणां । तेथ कें रिचैल दक्षिणा ।
 संतु जाला वाउधणा । वरिपडा जैसा ॥ ९२ ॥
 तैसें वायां चि सर्व ही वेचे । मुख नेदखतां श्रद्धेचें ।
 नागविलें निपुत्रिकाचें । जैसें घर ॥ ९३ ॥
 ऐसा जो यज्ञभासु । जेया नावं यागु तामसु ।
 आइकें ह्मणे निवासु । श्रियेचा तो ॥ ९४ ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवं ॥

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

आतां गगेचे एक पाणी । पारि नेलें आनानीं वर्णी ।
 एक मैली एक आणी । शुद्धत्व जैसें ॥ ९५ ॥
 तैसें तिहिं गुणं तप । तेथ जालें असे त्रिरूप ।
 तें एक दे पाप । उद्धरी एक ॥ ९६ ॥
 तारि तें चि तिहिं भेदीं । कैसेनि पां ह्मणो सुबुद्धी ।
 जाणों पाहांसि तारि आदीं । तप चि जाण ॥ ९७ ॥
 एथ तप ह्मणिये तें काइ । तें स्वरूप दाउं पाहीं ।
 मग भेदिलें गुणं तिहिं । तें पाठिं बोलों ॥ ९८ ॥
 तारि तप जें कां समैक । तें हिं त्रिविध आइक ।
 शारीर मानसीक । शार्दीक गा ॥ ९९ ॥
 आतां यां तिहिं माझारि । शारीर तवं अवधारिं ।
 तारि शंभु कां श्रीहरी । पढियतें होए ॥ २०० ॥

तेया प्रिया देवतालया । यात्रादिकें करावेया ।
 आठ पाहारिं एयां पायां । उल्लिग घापे ॥ १ ॥
 प्रांगण मिरवणियां । आंगोपचार पुरवणियां ।
 करावेया ह्यणियां । शोभति हात ॥ २ ॥
 लिंग कां प्रतिमा दीठी । देखत खे३० आंगपुष्टी ।
 लुंठवीत काठी । पडिली जैसी ॥ ३ ॥
 आणि विद्याविनयादिकिं । गुणिं जे वडिल लोकिं ।
 तेयां ब्रह्मणांची नीकी । पाइके कीजे ॥ ४ ॥
 अथवा प्रवासें कां पीडां । सीणलें जें सांकडां ।
 ते जीव सुरवाडा । आणिजति ॥ ५ ॥
 सकलां तीर्थांचिये धूरे । जियें कां मातापितरें ।
 तियें सेवे किर शरीरें । लोण कीजे ॥ ६ ॥
 आणि संसारा ऐसा दारुणु । जो भेटलेयां हरे सीणु ।
 तो ज्ञानदानिं सकरुणु । भजिजे गुरु ॥ ७ ॥
 आणि स्वधर्माचां आगिठां । देह जाड्याचिया कीटा ।
 आहृत्तिपुटीं सुभटा । झाडि कीजे ॥ ८ ॥
 देह भूतमात्रां नमिजे । परोपकारिं व्यामिजे ।
 स्त्रीविधिं नेमिजे । नावां नावां ॥ ९ ॥
 जाततेन प्रसंगें । स्त्रीदेह सिवणें आंगें ।
 तेथौनि देह आवधें । अबोटी कीजे ॥ २१० ॥
 भूतमात्राचेनि नावें । तृण हिं नासुडावें ।
 किंवहुना सांडावे । छेदभेद ॥ ११ ॥
 ऐसीसी जे शरीरीं । राहाटिची पडे उजिरी ।
 तें शारीरतप चुमरी । आलें जाण ॥ १२ ॥
 पार्था समस्त हीं हें करणें । देहाचेनि प्रधानपणें ।
 ह्यणौनि मीं एयातें ह्यणें । शारीर तप ॥ १३ ॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ॥
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ १५ ॥

येवं शारीर जे तप । तेयाचें दाविलें रूप ।
आतां आइक निष्पाप । वाङ्मय तें ॥ १४ ॥
तारि लोहें आंगतुंक । न तोडितां चि कनक ।
केलें जैसें देख । परिसें तेणें ॥ १५ ॥
तैसें न दुखवितें जें । जवळिलां मुख निफजे ।
ऐसें साधुत्व देखिजे । बोलणां जिये ॥ १६ ॥
पाणी मुदला झाडा जाए । तृण तें प्रसंगें जीहे ।
तैसें येकां बोलिलें होये । सर्वां हीं हित ॥ १७ ॥
जोडे अमृताची सुसरी । ते प्राणातें अमरां करी ।
स्नानें पापताप निवारी । गोडी ही दे ॥ १८ ॥
तैसा अविबेकु ही फीटे । आपुलें अनादित्व भेटे ।
परि आइकतां रुचि न विटे । पीयूषिं जैसी ॥ १९ ॥
जारी कोणहीं करी प्रसणें । तारि ऐसें होआवें बोलणें ।
नातारि आवर्तणें । निगमाचळीं ॥ २२० ॥
रुग्वेदादि तीन्हीं । प्रतिष्ठिजति वाग्भुवनीं ।
केली जैसी वदनीं । ब्रह्मशाला ॥ २१ ॥
नातारि येकाधें नावं । तें चि शैव कां वैष्णव ।
वाचे वसतें वाग्भव । तप जाणावें ॥ २२ ॥

मनः प्रसादःसौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥

आतां तप जे मानसीक । तें हीं सांघों आइक ।
हण्णे लोकनायक—। नायकु तो ॥ २३ ॥
तारि सरोवर तरंगीं । सांडिलें आकाश मेधीं ।
कां चंदनाचें उरगीं । उद्यान जैसें ॥ २२४ ॥

नाना कलवैपम्ये चंद्रु । कां सांडिला आधी नरेंद्रु ।
 नातरि क्षीरसमुद्रु । मंदराचलें ॥ २५ ॥
 ऐसें नानाविकल्पजाल । सांडूनु गेलेयां सकल ।
 मन राहे केवल । स्वरूपीं जें ॥ २६ ॥
 तपनें विण प्रकाशु । जाळ्यें विण रसु ।
 पोकली विण आशाश । होये जैसें ॥ २७ ॥
 तैसी आपुली सोये देखे । आणि आपुलेया स्वभावा मूके ।
 हांवली जैसी अंगिकें । हिंवां नेंदी ॥ २८ ॥
 मग नवल तें कळकें विण । शाशिविब्र जैसें पार्वण ।
 तैसें चोखिसि थारपण । मनाचें जें ॥ २९ ॥
 बुडालें वैराग्याचें तप । जिराली मनाचीं धाप ।
 तेथ कां होईल वाप । येरीं वृत्तीं ॥ ३० ॥
 ह्यर्णानि विचारावेया शास्त्र । राहाटवावें जें वक्त्र ।
 तें वाचेचें हीं सूत्र । हातीं न धरी ॥ ३१ ॥
 तें स्वभावे लोभलेपणें । मनपण हिं वरं नेणें ।
 सीतलें जैसें लवणें । आपुलें निज ॥ ३२ ॥
 तेथ कें उठिति ते भाव । जिहि इंद्रियमार्गि धावं ।
 घेउनि टाकावेया गावं । विपयांचें गा ॥ ३३ ॥
 ह्यर्णानि तिये मानसिं । भावशुद्धी चि असे आपैसी ।
 रोमशुद्धि जैसी । तलहातासि ॥ ३४ ॥
 काइ बहू बोलें अर्जुना । जें हे दशा ये मना ।
 तें मनो तपाभिधाना । पात्र होए ॥ ३५ ॥
 परि तें असो हें जाण । मानसतपाचें लक्षण ।
 देवो ह्यणे संपूर्ण । सांवितलें ॥ ३६ ॥
 एवं देहें वाचा चित्तें । जें पातले त्रिविधत्वातें ।
 तें साम्यतप दूतें । परिसविलें गा ॥ ३७ ॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्रिविधैर्नरैः ॥

अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥

आतां गुणत्रयसंगे । हे चि विशेष त्रिविध्य रिगे ।

ते हीं आइक चांगे । प्रज्ञाबले ॥ ३८ ॥

तरि हे चि तप पै त्रिविध । जे दाविले तुज विषद ।

ते चि करीं प्रसिद्ध । सांडूनि फलीं ॥ ३९ ॥

जे पुरतिया सत्वशुद्धी । आचरिजे आस्तिकबुद्धी ।

तेयाते चि गा प्रबुद्धीं । सात्त्विक ह्यणिपे ॥ २४० ॥

नां तपियेपणां लागि । दूजी त्राये जोडुनु जगीं ।

महत्वादिक्किचां शृंगीं । बैसावेया ॥ ४१ ॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ॥

क्रियते तद्दिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

त्रिभुवनिचेया सन्माना । न वचावेया ठाया आनां ।

धूरेचिया आसनां । भोजना लागि ॥ ४२ ॥

विश्विचेया स्तोत्रा । आपण होआवे पात्रां ।

विश्व आपुलिया यात्रा । करावेया ॥ ४३ ॥

लेफ्ताचिया विविधा पूजा । आप्रयो धरावेया दूजा ।

भोग भोगावेया वोजा । महत्वाचिया ॥ ४४ ॥

आंगा बोल माखुनु तपे । विकावेया आपणपे ।

अंगना हीन पडपे । जिया परीं ॥ ४५ ॥

हे असो धनमानीं आरा । बांधौनि तपे कीजे सायास ।

ते ते चि तप राजस । बोळिजे गा ॥ ४६ ॥

परि पडुरणीं जे दुहिले । ते गोरुं न दुभे वियाले ।

कां उभे सेत चारिले । पीकावेया नुरे ॥ ४७ ॥

तेसे फौकरितां तप । कीजे जे साक्षेप ।

ते फलि तत्र सोफ । लिह्यां जाये ॥ ४८ ॥

ऐसें निष्फल देखौनि करितां । माझारि सांडी पांडुसुता ।
 ह्यणौनि नाहिं स्थिरता । तपा तेया ॥ ४९ ॥
 यन्हर्वि तन्हि आकाशमांडिं । जो गाजौनि ब्रह्मांड फोडी ।
 तो अकालमेषु काइ घडी । राहांतु असे ॥ २५० ॥
 तैसें राजस तप जें होए । तें फलीं किर वांझ जाये ।
 पारि आचरणीं हों नोहे । निर्वाहो तेया ॥ ५१ ॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ॥

परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामासमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

आतां तें चि तप पुढुतीं । तामसैयेचिया रीती ।
 तें परत्रा आणि कीर्ती । रुसौनि कीजे ॥ ५२ ॥
 केवल मूर्खपणाचा वारा । जीर्वि घेउनि धनुर्द्वरा ।
 नावं ठेविजे शरीरा । वैरियांचें ॥ ५३ ॥
 पंचाग्निचि हडगीं । खोलविजति शरीरा लागि ।
 किं इंधन कीजे आगि । आंतुल चि ॥ ५४ ॥
 नात्रां जाळिति गुगुलु । आंगीं प्राळजति गळु ।
 अंधिं लाविजति जाळु । आत्मगपां चि ॥ ५५ ॥
 द्यडोनि श्वसोश्वास । कीजति वायां चि उपवास ।
 कां घेइजति धूमाचे घांस । अधोमुखें ॥ ५६ ॥
 हिमोदकें आकठें । खडकिलां सेविजति तटें ।
 जितिया मासाचे चिमुटे । तोडिति जेथ ॥ ५७ ॥
 ऐसे नाना परीं हे काया । वाये संति धनंजया ।
 तप कीजे नाशविया । पुढैलांतें ॥ ५८ ॥
 आंगभारें सूटला ढोंडा । आपा नूकौनियां खांडा ।
 वरिपडिलेयां रगडा । करी जैसा ॥ ५९ ॥
 किं बहुना हे वोखटी । घेउनि ह्मेशाची हातवटी ।
 तप निफजे किरीटी । तामस होए ॥ २६० ॥

तेवि आपुलिया आगणियां । सुखें असतिया प्राणियां ।

जियाविया ही सिराणियां । करिति गा ॥ ६१ ॥

एवं सत्वादिकाचां आंगीं । पडिळें तपभांगीं ।

जालें तें तुज चांगी । दाविले व्यक्ती ॥ ६२ ॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयते नृपकारिणे ॥

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतं ॥ २० ॥

आतां बोलतां प्रसंगा । आलें हणौनि पैं गा ।

करुं रूप दानलिंगा । त्रिविधा तेया ॥ ६३ ॥

तेथ गुणाचेनि बोलें । दान हिं त्रिविध असे जालें ।

तें चि आइक पहिलें । सात्त्विक ऐसें ॥ ६४ ॥

तारि स्वधर्मा आंतौतें । जें मीले आपणपेयांतें ।

तें देइजे बहुतें । समानयोगें ॥

जालेयां सुव्रीजप्रसंगु । पडे क्षेत्रा वापेचा पांगु ।

तैसा चि दानाचा हा लागु । देखतसों ॥ ६६ ॥

अनर्घ्य रत्न हातु चडे । तें भांगाराची वोढि पडे ।

दोन्हीं जालीं तारि न जोडे । छेतें आंग ॥ ६७ ॥

परि सणु सुद्धु संपति । यें तिन्हि येकें मिलति ।

जें भाग्य धरी उन्नती । आपुळां विधिं ॥ ६८ ॥

तैसें निफजवावेया दान । जें सत्व सुये संवाहन ।

तें देशु काल भाजन । द्रव्य ही मिले ॥ ६९ ॥

तिन्हि आधि तवं प्रयत्नेसि । होआवें कुरुक्षेत्र कां कासी ।

नातारि तूके जो इहिंसि । तो ही देशु हो ॥ २७० ॥

तेथ रवि-चंद्रा राहु-मेळु । होंता पाहावा पुण्यकालु ।

कां तेया सारिखा निर्मळु । आणिकु ही हो ॥ ७१ ॥

तैसां कालें तिये दिसि । होआवीं पात्रसंपति ऐसी ।

सूचिं धरिली आहे जैसी । शुचिन्वें चि कां ॥ ७२ ॥

आचाराचें मूलपीठ । वेदाची उत्तरवेंठ ।
 तैसें द्विजरत्न चोखट । पाहुनियां ॥ ७३ ॥
 मा तेयाचां ठांडं चिंता । निवर्तावी स्वसत्ता ।
 परि प्रिया पुढें कांता । रिगे तैसेनि ॥ ७४ ॥
 कां जेयाचें ठेविलें तेया । देउनि होइजे उतरायियां ।
 नाना हडपें विडा राया । दीघला जैसा ॥ ७५ ॥
 तैसेनि निष्कामें जीवें । भृत्यादिभावें ।
 किंबहुना हावे । नैदावें उठूं ॥ ७६ ॥
 आणि दान जेया देयावें । तेयातें ऐसेयां पावें ।
 जें घेतलेयां नुमचवे । काइसेन हीं ॥ ७७ ॥
 सादु घातलेयां आकाशा । देंदी प्रतिशद्दु जैसा ।
 कां पाहिला आरिसा । येरीकडे ॥ ७८ ॥
 उदकाचिये भूमिके । आफलिलेन कुंदुकें ।
 उफलौनि माघौतें । नैयेजे हाता ॥ ७९ ॥
 नाना वसोवा घातला चारु । माथां तुरंबिला बूरु ।
 न करी प्रत्योपकारु । जेया परी ॥ ८० ॥
 तैसें दीघळें दान तेयाचें । जें कोणही आंगें नुमुचे ।
 अर्पिलेयां श्लाघ्य तेयाचें । कीजे पै गा ॥ ८१ ॥
 ऐसिया सामप्रिया । दान निफजे वारराया ।
 तें सात्विक दानवरिया । सर्वां हि जाण ॥ ८२ ॥
 यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ॥
 दीयते च परिक्लिष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २१ ॥
 आणि तो चि देशु काळु । घडे तैसा चि पात्रमेळु ।
 दानभागु ही निर्मळु । न्यायगतु ॥ ८३ ॥
 परि मनीं धरुनि दुभतें । चारीजे जेवि गाइतें ।
 कां पेंवें करुनि आइतें । पेरु जाइजे ॥ ८४ ॥

नाना दीठि घाळनि ऐहेरा । आवंतुं जाइजे सोइरा ।
 वाण धाडिजे घरा । वोउसेयाचेया ॥ ८५ ॥
 पै कलांतरा गांठि बांधिजे । मग पुढिलाचें काज कीजे ।
 पूजा घेउनि रसु दीजे । पीडितासि ॥ ८६ ॥
 तैसें जेया जें दान देणें । तो तेंणें चि गा जीवणें ।
 भुजावा भावें येणें । दीजे जें गा ॥ ८७ ॥
 अथवा कोण्हीं एकु वाटे जाता । घेतलें उमचों न सकतां ।
 मीले जारे पांडुसुता । द्विजोत्तमु ॥ ८८ ॥
 तरि कवडेया एका साठि । अशेष गोत्राचें किरीटी ।
 सर्व प्रायश्चित्त सुवे मुठी । तेयाचिये ॥ ८९ ॥
 तेंचि चि पारलौकिकें । फलें वाळिजति अनेकें ।
 नांदिजे तें भूके । एक ही नोहे ॥ ९० ॥
 तें हिं ब्राह्मण नेवों सरे । शेशी हाणिचेनि सीणे झांमुरे ।
 सर्वेश्व जैसें चोरें । नागवुनि नेलें ॥ ९१ ॥
 कायि बहू सांघों सुमती । जें दीजे वा नतोइती ।
 तें दाव गा त्रिजगती । राजस पै ॥ ९२ ॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ॥

असकृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ९२ ॥

मग म्हेळाचें वसैठे । दांगाणें हान कैकटे ।
 कां सिहवीरें चौहटे । नगरिचें तें ॥ ९३ ॥
 तिहीं तिहिं ठाई मीलनीं । समो सांजवेळ कां रजनी ।
 तेव्हळि उदारं होणें धनीं । चोरियेचां ॥ ९४ ॥
 पात्रें भाट नागारी । सामान्या स्त्रिया जुवारी ।
 जियें मूर्त्तिवृत्तें भुररीं । भूलावेया ॥ ९५ ॥
 रूपनृत्याची पुरवणी । तेयां पुढें डोळेभारणीं ।
 गीत भाटीवं श्रवणीं । कर्णजपु ॥ ९६ ॥

तेया ही वरि अलुमालु । घे फूलागंधाचा परिमलु ।
 तवं भ्रमांचा तो वेतालु । अवतरे चि ॥ ९७ ॥
 येयां ऐसेन जें जें देणें । तें तामस दान मीं हणें ।
 आणि घडे देंवगुणें । आणिक ही एक ॥ ९८ ॥
 विपायें घुणाक्षर उमडे । टालिये काउला सांपडे ।
 तैसें तामसा पर्व पडे । पुण्यदेशीं ॥ ९९ ॥
 तेथ देखौनि तो आथिला । योग्यु मार्गों हीं आला ।
 तो ही द्रव्या चाडैला । भाले जरि ॥ ३०० ॥
 तरि श्रद्धा न करी जीविं । तेया माथा न खलवी ।
 स्वयं न करी ना करवी । अर्ध्यादीक ॥ १ ॥
 आलेयां न घली बैसों । तेथ गंधाक्षतांचा अतिसो ।
 हा प्रसंगु किर असो । तामसिये नरीं ॥ २ ॥
 पै बोलाविजे रिणायितु । तैसा झांकवी तेयाचा हातु ।
 तूंकरण्यांचा ब्रह्मतु । प्रयोगु तेथ ॥ ३ ॥
 आणि जेया जें दे किरीटी । तेयातें उमाणीं तेया साठिं ।
 मग कुबोलें कां लोटी । अवज्ञेचां ॥ ४ ॥
 हें असो इया परीं । मोल वेचणें जें अवधारिं ।
 तेया नावं चराचारिं । तामस दान ॥ ५ ॥
 एथ मिं जाणतसे । विपायें तूं गा ऐसैं ।
 न कल्पीसि मानसैं । विचक्षणां ॥ ६ ॥
 ऐसिं आपुलां चिन्हीं । अलंकृते तीन्हीं ।
 दानें दाविलिं अवधानिं । राजतनया ॥ ७ ॥
 जें भवबंधमोचक । एकलें कर्म सात्विक ।
 तरि कां वेखासैं सदोष । येर बोलों ॥ ८ ॥
 परि नुसंतितां त्रिवसी । भेटि नाहिं निविसिं ।
 कां धूं न सांतां जैसी । वाति न ठगे ॥ ९ ॥

तैसें सुधा सत्वा आड । आहे रजतमात्रे कवाड ।
 त्रिभुवनीं तें कीड । ह्यणावें गा ॥ ११० ॥
 आह्मी श्रद्धादिदानांत । जें समस्त ही क्रियाजात ।
 सांगितलें गा व्यक्त । तिहिं गुणीं ॥ ११ ॥
 तेथ भरवसेन तीन्हीं । न संघों चि ऐसें मानीं ।
 सत्व दावावेया दोन्हीं । बोलिलों येरें ॥ १२ ॥
 जें दोहिं माजि तीजें असे । तें दोन्हिं सांडितां चि दीसे ।
 अहोरात्रत्यागें जैसें । संध्यारूप ॥ १३ ॥
 तैसें रजतमविनाशें । तीजें जें उरत दीसे ।
 तें सत्व हें आपैसें । पावासि ये ॥ १४ ॥
 एवं दावावेया सत्व तुज । निरोपिलें तमरज ।
 तें सांडूनि सत्वे काज । सार्धी आपुलें ॥ १५ ॥
 सत्वे चि येणें चोखालें । कारिं यज्ञादिकें सकलें ।
 पावसी तें करतलें । आपुलें निज ॥ १६ ॥
 सूर्ये दाखविलें सांतें । काइ एक न दिसे एथें ।
 तेवि सत्वे केलें फलातें । काइ नेंदी ॥ १७ ॥

ॐ तत्सदितिनिर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ॥

ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥

हें किर आवडतां विधिं । रीति सत्वीं आधि नीकी ।
 परि मोक्षेसीं एकीं । आधि मिलणें ॥ १८ ॥
 तें येक अगाध चि आहे । तेयाचा सावा३० जें लाहे ।
 तें मोक्षाचां ही होये । गावीं सरतां ॥ १९ ॥
 पै भांगार जन्हीं पन्हरें । तन्हीं राजवलिंचि आखरें ।
 लाहे तें सरे । जिया परीं ॥ २० ॥
 स्वछें शीतलें सुगंधें । जलें होंति सुखपदें ।
 परि पवित्र तें संबधें । तीर्थांचनि ॥ २१ ॥

न यों कां भलेतैसी थोरी । परि गंगा जैसी तैसी तिये सागरीं ।
 विश्वातें उद्धरी । दर्शनमात्रें ॥ २२ ॥
 तैसैं सात्विका कर्मा किरिटी । यंतां मोक्षाचिये भेटी ।
 न पडे आडकाठी । त्रिशुद्धी गा ॥ २३ ॥
 हा बोलु आयिकत खेवीं । अर्जुना आधी न माये जीविं ।
 ह्मणे देवें कृपा करावी । सांघावें तें ॥ २४ ॥
 तेथ कृपालु चक्रवर्त्ती । ह्मणे आयिक तेयाची व्यक्ति ।
 जे सात्विक शुक्ति । रत्नीं पघले ॥ २५ ॥
 तरि अनादि परब्रह्म । जें जगदादिकंदाचें धाम ।
 तेयाचें एक नाम । त्रिधा पै असे ॥ २६ ॥
 तें किर अनाम अजाति । परि अविद्यागर्वाचिये राती ।
 माजि बोलखावेया श्रुती । खुण केली ॥ २७ ॥
 कटले संसारसीणें । जें देवों एंति गान्हाणें ।
 तेयां वो दे नामें जेणें । तो संकेतु हा ॥ २८ ॥
 ब्रह्माचा अबोला फीटावा । अद्वैतु द्वैतत्वे भेटावा ।
 ऐसा मंत्र देखिला कणवा । वेदें बापें ॥ २९ ॥
 मग दाविलेनि जेणें एकें । ब्रह्म आलविलें कवतिकें ।
 मागां असतां ठाकें । पुढां उभें ॥ ३० ॥
 परि निगमाचलशिखरीं । उपनिषदार्थनगरीं ।
 आहाति ब्रह्माचां जे एकहारीं । तेयांसी चि ॥ ३१ ॥
 हें ई असो प्रजापति । शक्ति जे सृष्टि कारिति ।
 तें जेया एका आवृत्ती । नावांचिया ॥ ३२ ॥
 पै सृष्टिचेया उपक्रमा । पूर्वीं गा धीरोत्तमा ।
 वेडा ऐसा ब्रह्मा । एकला होता ॥ ३३ ॥
 मग ईश्वरातें नेदखे । ना सृष्टि करुं न शके ।
 तो एकु थोरु केला एकें । नावें जेणें ॥ ३४ ॥
 ७९

जेयाचा अर्थु जीविं ध्यातां । जें वर्णत्रय जपतां ।
 विश्वसृजना योग्यता । आली तेया ॥ ३५ ॥
 तेधवां रचिले ब्रह्मजन । तेयां वेद दीधले सासान ।
 यज्ञा ऐसें वर्त्तन । जीवें केलें ॥ ३६ ॥
 पाठिं नेणों केती एर । मीनले लोक अपार ।
 जालें ब्रह्मदत्त अग्रार । त्रिभुवन ॥ ३३७ ॥
 ऐसें नाममात्रें जेणें । धात्रेया अढंच करणें ।
 तेयाचें रूप आयिक हणणे । श्रीकांतु तो ॥ ३८ ॥
 तरि सर्व मंत्रांचा राजा । तो प्रणउ आदिवर्णु बुझा ।
 तत्कारु दूजा । तीजा सत्कारु ॥ ३९ ॥
 एवं ॐ तत्सदाकार । ब्रह्मनाम तें त्रिप्रकार ।
 हें फूल तुरंबी सुंदर । उपनिषदातें ॥ ३४० ॥
 येणेंसिं होउनि येक । जें निर्वाळें कर्म सात्विक ।
 तें कैवल्यातें पाइक । घरिचें करी ॥ ४१ ॥
 यन्हविं कापुराचें थलिवं । आणुनि दइजैल दैवं ।
 घेउं जाणणें चि अडवं । तेथ असे बाण ॥ ४२ ॥
 तैसें आदरिजैल सत्कर्म । उच्चरिजैल हिं ब्रह्म नाम ।
 पारि नेणिजे जरि वर्म । विनियोगाचें ॥ ४३ ॥
 तरि महंतांचिया कोडी । घरा आणिलेयां हिं वोढि ।
 मानु नेणती परिवडी । मुद्दल तूटे ॥ ४४ ॥
 कां लेयावेया चोखट । टीक भांगार एकवट ।
 घाळनु बांधली मोट । गलां जेवि ॥ ४५ ॥
 तैसें तोंडिं ब्रह्मनाम । हातिं तें सात्विक कर्म ।
 विनियोगें विण काम । निष्फल होए ॥ ४६ ॥
 आगा अन्न आणि भूख । पासिं असे पारि देख ।
 जेउं नेणतां बालक । लंवे चि तें ॥ ४७ ॥

कीं स्नेहा सूत्रा वैश्वानरा । जालेयां जर्हीं सवंसारा ।
 हातवटी नेणतां बीरा । प्रकाशु नोहे ॥ ४८ ॥
 तैसैं वेले कृत्य पावे । तेथिचा मंत्रु ही आठवे ।
 पारि वेर्थ तें आघवें । विनियोगें विण ॥ ४९ ॥
 ह्यगौनि वर्णत्रयात्मक । जें हें ब्रह्मनाम एक ।
 विनियोगु तूं आयिक । येयाचा आतां ॥ ३५० ॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ॥

प्रवर्त्तते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनां ॥ २४ ॥

तरि नाभिं चि आखरें तीन्हीं । कर्मा आदि मध्यें निदानीं ।
 प्रयुंजाविं पै स्थानीं । इहिं तीन्हीं ॥ ५१ ॥
 हे चि एकी हातवटी । घडिली लोकिं किरिटी ।
 आले ब्रह्मविद भेटी । ब्रह्माचिये ॥ ५२ ॥
 ब्रह्मासिं होआवेया येकिं । ते वेंचति यज्ञादिकिं ।
 जे चावळले वोलखी । शास्त्रांचिया ॥ ५३ ॥
 तें आदि तवं उंकारु । ध्यानें करिति गोचरु ।
 पाठिं आणिति उच्चरु । वाचे ही तो ॥ ५४ ॥
 तेणें ध्यानें प्रकटें । प्रणवोच्चारें स्पष्टें ।
 लागति मग वाटे । क्रियांचिये ॥ ५५ ॥
 आंधारिं अभंगु दिवा । अडविं समर्थु बोलावा ।
 तैसा प्रणवु जाणावा । कर्मारंभीं ॥ ५६ ॥
 उचितदेवउद्देशें । सुद्रव्यें धर्म्यें बहुवसैं ।
 द्विजद्वारा हवन हुताशें । त्याजिति पै ते ॥ ५७ ॥
 आहवनीयआदि वन्ही । निक्षेपरूपहवनिं ।
 वेचिति पै निधानीं । फुडे होउनि ॥ ५८ ॥
 किंवहुना नाना याग । निष्पत्तिचें घेउनि आंग ।
 करिति नावडतेयां त्याग । उपाधिचे ॥ ५९ ॥

कां न्याये जोडला पवित्रिं । भूमादिकिं स्वतंत्रीं ।
 देशकालशुद्धपारिं । देति दाने ॥ ६० ॥
 अथवा एकांतरा कृष्टीं । चांद्रायणे मासोपवासिं ।
 शोखुनु गा धातुराशी । करीति तपे ॥ ६१ ॥
 येवं यज्ञदानतपे । जिये गाजति बंधरूपे ।
 ते ते चि होये सोहपे । मोक्षाचे तेयां ॥ ६२ ॥
 स्थलिं नावा जिया दाटिजे । जलिं तिया चि जेविं तरिजे ।
 तेवि बंधकिं कर्मां सूटिजे । नावे येणे ॥ ६३ ॥
 पारि हें असो ऐसिया । यज्ञदानादिक्रिया ।
 अकारे सावाइलिया । प्रवर्त्तती ॥ ६४ ॥

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ॥

दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥ २५ ॥

तिया मोटकिया जेथ फलिं । रिगों पांति जिये कालिं ।
 प्रयुंजीति तिये कालीं । तच्छु हा ॥ ६५ ॥
 जे सर्व ही जगा परौते । जे एक सर्व ही देखते ।
 जे तच्छु बोलिजे ते । पैल वस्तु ॥ ६६ ॥
 ते सर्वादिकवे चित्तीं । तद्रूप ध्याउनि सुमती ।
 उच्चारे हि व्यक्ती । आणीति पुडुतीं ॥ ६७ ॥
 ह्यणति तद्रूप ब्रह्मा तिया । फलिं येति क्रिया ।
 होंतु आहां भोगावेया । काहिं चि नुरो ॥ ६८ ॥
 ऐसें तदात्मक ब्रह्म । तेथ उगाणूनु कर्म ।
 आंग झाडीति न मम । एणे बोलें ॥ ६९ ॥
 आतां अकारे आदारिलें । तत्कारे समर्पिले ।
 इया रीतिं जेया आलें । ब्रह्मत्व कर्मां ॥ ७० ॥
 ते कर्म किर ब्रह्माकारे । जालें तेणे हिं दुसरे ।
 जे कारितेनासि दुसरे । आदे ह्यणौनि ॥ ७१ ॥

मीठ आंगें जळि विरे । परि क्षारता वेगली उरे ।
 तैसें कर्म ब्रह्माकारें । जाण तें द्वैत ॥ ७२ ॥
 आणि दुजें जवं घडे । तवं संसारभय जोडे ।
 हें देउ आपुलेन तोंडें । बोलति वेदें ॥ ७३ ॥
 ह्यगौनि परतत्वे ब्रह्म असे । तें आत्मत्वे परिवसे ।
 सच्छुद्ध रिणा दोसें । ठेविला देवें ॥ ७४ ॥
 तरि अकारु तत्कारि । जें जालें ब्रह्मकर्म शरीरी ।
 जें प्रशस्तादि बोल वरी । वाखाणिले ॥ ७५ ॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ॥
 प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छुद्धः पार्थ युज्यते ॥ २६ ॥

प्रशस्ते कर्मि तिये । सच्छुद्ध विनियोगु आहे ।
 तो चि आइकां होये । तैसा सांघों ॥ ७६ ॥
 तरि सच्छुद्धें एणें । आटूनि असंताचें नाणें ।
 दाविजे अव्यंगवाणें । सत्तेचें रूप ॥ ७७ ॥
 जें सत्तेचें कालें देसें । हों नेणे चि अनारिसें ।
 आपणपां आपण असे । अखंडीत ॥ ७८ ॥
 हें दीसत जेतुलें आहे । तें असंतपणें जें नोहे ।
 देखतां रूपिं सोये । लाभे जेयाची ॥ ७९ ॥
 तेणेंसिं प्रशस्त तें कर्म । जें जालें सर्वात्मक ब्रह्म ।
 देखिजे करुनि सम । ऐक्यबोधें ॥ ८० ॥
 तेथ अकारु तत्कारें । जें कर्म दाविलें ब्रह्माकारें ।
 तें गीळनु होइजे एकसरें । चिन्मात्र चि ॥ ८१ ॥
 ऐसा हा अंतरंगु । सच्छुद्धाचा विनियोगु ।
 जाण ह्यणे श्रीरंगु । मी न ह्यणें हो ॥ ८२ ॥
 ना मी चि जरि ह्यणें । तरि श्रीरंगिं दूजें हें उणें ।
 ह्यगौनि हें बोलणें । देवाचें चि ॥ ८३ ॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ॥
कर्म चैव तदर्थाय सदित्येवाभिधीयते ॥ २७ ॥

आतां आणिकी ही परी । सछद्दु हा अवधारीं ।
सात्विका कर्मा करी । उपकार जो ॥ ८४ ॥
तरि संतें चि कर्में चांगें । चालिल्लें अधिकारबगें ।
पारि एकाधेनि अंगें । हीणावति जैं ॥ ८५ ॥
तैं उणें एक अवेवें । शरीर ठाके आघवें ।
कां अनेग हान भावे । राभस्याची गती ॥ ८६ ॥
तैसें एके चि गुणें विण । संत चि परि असंतपण ।
कर्म कारि गा जाण । जिये वेले ॥ ८७ ॥
तेधवां अंकारु तत्कारीं । सावायिला चांगी परी ।
सछद्दु कर्मा करी । जीर्णोद्धार ॥ ८८ ॥
तें असंतपण फेडी । आणि सद्वावाचिये रूढी ।
निज सत्वाचिया प्रौढी । सछद्दु हा ॥ ८९ ॥
वोषध जैसें रोगिया । कां सावाअ ये भंगलेया ।
सछद्दु कर्मा वेंगलेयां । तैसा जाण ॥ ९० ॥
अथवा काहिं प्रमादें । कर्म आपुळिये मर्यादे ।
चूकौनि पडे निषिद्धे । वाटे हान ॥ ९१ ॥
चालतेया मार्गु सांडे । पारख्यासि अखरें पडे ।
राहाटी माजि न घडे । काइ काइ ॥ ९२ ॥
ह्यगौनि तैसी कर्मा । राभस्यें सांडे सीमा ।
असाधुत्वाचेया दुर्नामा । यत्रों पाहे जैं ॥ ९३ ॥
तेथ हा गा सछद्दु । येरिं दो प्रबुद्ध ।
प्रयुंजिला करी साधु । कर्मातें तेया ॥ ९४ ॥
लोहापरिसाची घृष्टि । वोहलागगेची भेटि ।
मृया जैसी वृष्टि । पीयुषाची ॥ ९५ ॥

पै असाधु कर्मा तैसा । सछट्टु वीरषा ।
 हें असो गौरवु चि ऐसा । नामाचा येया ॥ ९६ ॥
 घेउनि येथिचें वर्म । जें विचारीसि हें नाम ।
 तें केवळ हें चि ब्रह्म । जाणसी तूं ॥ ९७ ॥
 पाहे पां अंतत्सत् ऐसें । हें बोलणें तेथ नेत असे ।
 जेथौनि कां प्रकारो । दृश्यजात ॥ ९८ ॥
 तें तवं निर्विशिष्ट । परब्रह्म चोखट ।
 तेयाचें हें आंतुवट । व्यंजक नाम ॥ ९९ ॥
 परि तो आश्रयो आकाशा । आकाश चि कां जैसा ।
 येया नामा नामियां तैसा । अभेदु असे ॥ १०० ॥
 उदैला आकाशीं । रवी चि रवीतें प्रकाशी ।
 हे नामव्यक्ति तैसी । ब्रह्मा करी ॥ १ ॥
 ह्यणौनि व्यक्षर हें नाम । नव्हे जाणं केवळ ब्रह्म ।
 या ही लागि कर्म । जें जें कीजे ॥ २ ॥
 ते याग अथवा दानें । तपादिकें हिं गहनें ।
 तिर्यें निफजति कां न्यूनें । होउनि ठांतु ॥ ३ ॥
 परिसाचां वोरकळीं । नाहिं चोखाकीडाची बोली ।
 तैसिं ब्राह्मिं अर्पितां केलीं । ब्रह्म चि होंति ॥ ४ ॥
 उणेयापुरेयाचिया परी । नुरती चि तेथ अवधारिं ।
 निवडूं न यंति सागरीं । जैसिया नदी ॥ ५ ॥
 एवं पार्था तुज प्रति । ब्रह्मनामाची हे शक्ति ।
 सांधितली उपपत्ती । डोलसा गा ॥ ६ ॥
 आणि एका एका ही आखरा । वेगळवेगळा वीरा ।
 विनियोगु नागरा । बोलिल्लें रीती ॥ ७ ॥
 आतां एवं सुमहिम । ह्यणौनि हें ब्रह्मनाम ।
 जाणितलें किं सुवर्म । राया तुवां ॥ ८ ॥

तारि येथोनि याची श्रद्धा । उपलविली हो सर्वदा ।

जेयाचें जालें बंधा । उरों नेंदी ॥ ९ ॥

जिये कांमि हा प्रयोगु । अनुष्ठिजे सविनियोगु ।

तेथ अनुष्ठिला होये सांगु । वेदु चि तो ॥ ४१० ॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥

असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ २८ ॥

सांडूनि हे सोए । मोडूनि श्रद्धेची बाहे ।

दुराप्रहाची चि त्राये । वाढउनियां ॥ ११ ॥

मग अश्वमेधां कोडी कीजे । रत्ना भरूनि पृथिवी दीजे ।

एकांगुष्ठि हों तपिजे । तपसहस्रीं ॥ १२ ॥

जलाशयाचेन नावें । समुद्र ही कीजतु नवे ।

परि किंबहुना आघवे । वृथा चि तें ॥ १३ ॥

पाषाणा वरि वर्षलें । जैसें भस्मीं हवन केळें ।

कां खेवं दीधलें । साउलिये ॥ १४ ॥

नातारि जैसें चडकणां । गगन हाणितलें अर्जुना ।

तैसा सामारंभु सुना । गेला चि तो ॥ १५ ॥

घाणा गालिले खडे । तेल ना पेंडि जोडे ।

तैसें दलिद्र तेवडें । ठेलें चि आंगिं ॥ १६ ॥

गांठि बांधली खापरी । एथ अथवा पैली तीरीं ।

न सरौनि जैसी मारी । उपवासिं गा ॥ १७ ॥

तैसें कर्मजातें तेणें । नाहिं इहिकिचें भोगणें ।

तेथ परत्र कें कवणें । आक्षेपावें ॥ १८ ॥

ह्यणौनि ब्रह्मनामश्रद्धा । सांडूनि कीजे तो धांधा ।

हें असो सीनु नसुदा । दृष्टादृष्टीं ॥ १९ ॥

ऐसें कलुषकरीकेसरी । त्रितापतिमिरतमोरी ।

श्रीवीरवरनरहरी । बोलिलें तेणें ॥ ४२० ॥

तेथ निजानंद—बहुवसा । माजि अर्जुनु तो सहसा ।
 हारतला चंद्रु जैसा । चांदिणेन ॥ २१ ॥
 आहो संग्रामु हा वाणियां । मापें नाराजांचिया अणियां ।
 सूनि मांस घे मवणियां । जीवितेंसि ॥ २२ ॥
 ऐसेयांचां हिं घरिं कर्कसें । भोगिजत स्वानंदराज्य कैसें ।
 आजि भाग्यउदो हान असे । आनी ठांइ ॥ २३ ॥
 संजयो हणो कौरवराया । गुणा रिद्धों ये रिपुचेया ।
 आणि गुरु ही हा आमचेया । सुखाचा स्वामि ॥ २४ ॥
 हा न पुसता हें गोठि । तरि देवो सोडिते कां गांठि ।
 तरि कैसेनि आह्वां भेटि । परमार्थेंसि ॥ २५ ॥
 होंतो अज्ञानाचा आंधारां । वोसंतीत जन्म वारा ।
 तें अत्मप्रकाशमंदिरा । आंतु आणिलों ॥ २६ ॥
 येवडा आह्वां तुह्वां थोर । केला एणें उपकार ।
 हणौनि हा व्याससहोदर । गुरुर्वें होए ॥ २७ ॥
 तेविं चि संजयो हणो चिर्ती । हा अतिसो या नृपती ।
 खुपैल हणौनि केती । बोलों असो ॥ २८ ॥
 ऐसी बोली सांडिली । मग येरीची गोठि आदारिली ।
 जे पार्थें कां पूसिली । श्रीकृष्णातें ॥ २९ ॥
 तें चि जैसें जाणणें । तैसें मीं हीं करीन बोलणें ।
 आइकिजो ज्ञानदेउ हणो । निवृत्तिचा ॥ ४३० ॥
 ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
 योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो
 नाम सप्तदशोऽध्यायः ।



ज्ञानेश्वरी



अध्याय अठरावा

श्रीगणेशायनमः ॥

जय जय देव निर्मला । निजजनाखिलमंगला ।
जन्मजराजलदजाला । प्रभंजना ॥ १ ॥
जय जय देव प्रबला । विदलितामंगलकुला ।
निगमागमद्रुमफला । फलप्रदा ॥ २ ॥
जय जय देव सकला । विगतविषयवत्सला ।
कलितकालकौतूहला । कलातीता ॥ ३ ॥
जय जय देव निश्चला । चलचित्तपानतुंडिला ।
जगदुन्मीलनाविरला । केलिप्रिया ॥ ४ ॥
जय जय देव निष्कला । स्फुरदमंदानंदबहुला ।
निरस्ताखिलामंगला । मूलभूता ॥ ५ ॥
जय जय देव स्वप्रभ । जगदंबुदगर्भनभ ।
भवनोद्भवारंभस्तंभ । भवध्वंस ॥ ६ ॥
जय जय देव शुद्ध । विदुदयोद्यानद्विरद ।
शमदममदनमदभेद । दयार्णव ॥ ७ ॥
जय जय देवैकरूप । अतिकृतकंदर्पसर्पदर्प ।
भक्तभावभुवनदीप । तापापह ॥ ८ ॥

जय जय देव अद्वितीय । परिणतोपरमैकप्रिय ।
निजजयजितभजनीय । मायागम्य ॥ ९ ॥
जय जय देव श्रीगुरो । अकल्पनाप्यकल्पतरो ।
स्वसंविद्रुमबीजप्ररो—। हृणावनी ॥ १० ॥
हैं एकैक ऐसैं । नाना परिं भाषावसैं ।
स्तोत्र करुनि तुज दोसैं । निर्विशेषा ॥ ११ ॥
जिहिं विशेषणीं विशेषिजे । तें दृश्य नव्हे रूप तूझें ।
हैं जाणें ह्यगौनि मीं लाजें । वानणां इहीं ॥ १२ ॥
परि मर्यादेचा सागर । हा तवं तेया डगर ।
जवं नेदखे सुधाकर । उदया आला ॥ १३ ॥
सोमकांतु निज निर्झरीं । चंद्रा अर्घ्यादीक न करी ।
तें तो चि अवधारीं । करवी कीं जी ॥ १४ ॥
नेणों कैसैं वसंतसंगें । अवचितिं झाडांचि आंगें ।
फूटति तें तेया ही जोगें । धरणें नोहे ॥ १५ ॥
पद्मिनी रविकिरण । लाहे मग लाजे कवण ।
कां जलें सीतलें लवण । आंग भूले ॥ १६ ॥
तैसा तूतें मीं जेथ स्मरें । तेथ मालातिलें जें विसरें ।
मग जाकलिला ढेंकरें । तृप्तु जैसा ॥ १७ ॥
मज तुवां जी केलें तैसैं । माझें मीपण दचडूनि देशें ।
स्तुतिमीसैं पांचपीसैं । बांधलें वाचे ॥ १८ ॥
ना यन्हविं तन्हि आठवीं । राहुनि स्तुति जैं करावी ।
तैं गुणां गुणियां धरावी । सरोभरी ॥ १९ ॥
तरि एकरसाचें जी तूं लिंग । केवि करुं गुणागुणि भाग ।
मोति फोडुनु सांधितां चांग । किं तैसैं चि भलें ॥ २० ॥
जी जालेनि पाइकें आलें । तें गोसांविपण केवि बोलें ।
ऐसा उपाधि उसिटिलें । काइ वानूं ॥ २१ ॥

आणि बापु तूं माए । इहिं बोलिं ना स्तुति होये ।
 तरि डिंभोपाधिकु आहे । त्रिडालु तेथ ॥ २२ ॥
 तरि आत्मा तूं यकसरा । हें इं हणों जांतां दातारा ।
 आंतौनि बाहिरां । घापतासि ॥ २३ ॥
 हणौनि साच तुज लागि । स्तुति नेदखें जर्गी ।
 मौन वांचौनि लेणें आंगिं । सूंसि नामा ॥ २४ ॥
 स्तुति काहिं न बोलणें । पूजा काहिं न करणें ।
 संनिधि केहीं न होणें । तूझां ठांडें ॥ २५ ॥
 तन्हीं जांतलें जैसें भूली । पिसे आलव घाली ।
 तैसें वानूं तें माउली । उपसाहे तूं ॥ २६ ॥
 आतां गीतार्थाची मुदी । लावीं माक्षिये वागूरिद्धी ।
 जियां माने सभासदिं । सज्जनांसि ॥ २७ ॥
 तवं ह्यगितलें श्रीनिवृत्ती । नको हें पुडुतीं पुडुतीं ।
 परिंसिं लोहघृष्टी केती । वेला कीजे गा ॥ २८ ॥
 तवं विनर्वातु ज्ञानदेउ ॥ ह्यणे हो कां जी पसावो ।
 तरि अवधान देंतु देउ ॥ ग्रंथा आतां २९ ॥
 जी गीतारत्नप्रासादाचा । कलशु अर्थाचिंतामणिचा ।
 सर्वगीतादर्शनाचा । पाढावो जो ॥ ३० ॥
 लोकिं तन्हीं आथि ऐसें । जें दूरौनि कलशु दीसे ।
 भेटी चि हातवसे । देवतेचिये ॥ ३१ ॥
 तैसें चि एथ आहे । जें एकें चि एणें अध्यायें ।
 आघवा चि दृष्टु होए । गीतागमु हा ॥ ३२ ॥
 मी कलशु या कारणें । अठरावां अध्याउ हणें ।
 वाड्ळा बादरायणें । गीताप्रासादासि ॥ ३३ ॥
 नाहिं कलशा परौतें काहिं । प्रासादिं काम नाहिं ।
 ते सांघतसे गीता ही । संपलेपणें ॥ ३४ ॥

व्यासु साहाजें सूत्रीं बली । तेणें निगमरत्नाचलिं ।
 उपनिषदाची माली । माजि खांडिली ॥ ३५ ॥
 तेथ त्रिवर्गाचा अणुआरु । आड निगाला जो अपारु ।
 तें महाभारतप्राकारु । भवंता केला ॥ ३६ ॥
 माजि आत्मज्ञानाचें एकवट । दलवाडें झाडूनु चोखट ।
 घडिलें पार्थवैकुण्ठ- । संवादकुसरी ॥ ३७ ॥
 निवृत्तिसूत्रसोडवणियां । सर्वशास्त्रपुरवणियां ।
 आवो सांधिला मांडणियां । मोक्षरेखेचा ॥ ३८ ॥
 ऐसेन करितां उभारा । पन्हरा अध्याय ते पन्हरा ।
 भूमि निर्वाळलेया पुरा । प्रासादु जाला ॥ ३९ ॥
 उपरि सोळावां अध्या० । तो ग्रीवघंटेचा आ० ।
 सप्तदशु तो ठा० । पडिघाणिये ॥ ४० ॥
 तेया ही वरि अष्टादशु । तो आपैसेया मांडला कलशु ।
 उपरि गीतादिकिं व्यासु । ध्वजे लागला ॥ ४१ ॥
 ह्यणौनि मागील अध्याये । जे चढतेयां भूमीचे आये ।
 तेयांचें पुरें दावितु आहे । आपुलां आंगीं ॥ ४२ ॥
 जालेया कामा नाहिं चोरी । ते कलशें होये उजिरी ।
 तेवि अष्टादशु विवरीं । साद्यंत गीता ॥ ४३ ॥
 ऐसा व्यासें विंदाणियें । गीताप्रासादु सोडवणिये ।
 आणूनि रक्षिले प्राणिये । नाना परीं ॥ ४४ ॥
 एक प्रदक्षिणा जपाचिया । बाहिरौनि करिति एया ।
 एक श्रवणमासें छाया । सेविति येयाची ॥ ४५ ॥
 एक अवधानाचा पुरा । विडा पाउड भितरां ।
 देउनि रिगति गाभारां । अर्थज्ञानाचां ॥ ४६ ॥
 ते निजबोधें उराउरी । भेटति आत्मेयां श्रीहरी ।
 परि मोक्षप्रासादिं सरी । सर्वा हीं आधि ॥ ४७ ॥

ऐसा गीतावैष्णवप्रासादु । अठरावां कलशु विशदु ।
 मियां ह्यणितला हा भेदु । जाणौनियां ॥ ४८ ॥
 आतां सप्तदशा पाठि । अध्या३० कैसेनि उठी ।
 तो संबंधु सांघों दीठी । दीसे तैसा ॥ ४९ ॥
 न मोडतां दोन्हीं आकार । घडलें एक शरीर ।
 हें अर्धनारीनटेश्वर । पूरें दीसे ॥ ५० ॥
 कां गंगायमुनाउदक । वोघवलें वेगलीक ।
 दावी होउनि एक । पाणीपणें ॥ ५१ ॥
 नाना बांटली दिवसें । कला त्रिवि वैसे ।
 परि वेगलें जैसें । चंद्रि नाहिं ॥ ५२ ॥
 तैसीं सिनानीं च्यान्ही पदें । श्लोकु श्लोकावबोधें ।
 अध्यायो अध्यायभेदें । गमे किर ॥ ५३ ॥
 परि प्रमेयाची उजिरी । आनान रूप न धरी ।
 नाना रत्नें मणी दोरी । एकी चि जैसी ॥ ५४ ॥
 मोतियें मेलउनि वहुवें । एकावलिचा पाडु आहे ।
 परि शोभे रूप होये । एक चि जेथि ॥ ५५ ॥
 फुलां फुलसरा लेख चढे । द्रुति दूजी आंगुली न पडे ।
 श्लोक अध्याय तेणें पाडे । जाणावे हे ॥ ५६ ॥
 सातें शतें श्लोक । अब्यायां अठरांचें लेख ।
 परि दे३० बोडिले एक । जें दुजें नाहिं ॥ ५७ ॥
 मिया हिं न संडूनि ते सोए । ग्रंथा व्यक्ति केली आहे ।
 प्रस्तुत ही तेणें निर्वाहें । निरूपण आइकां ॥ ५८ ॥
 तारि सतरावां अध्या३० । पात्रतां पुरता ठा३० ।
 संपतां श्लोकिं दे३० । ऐसें बोडिले ॥ ५९ ॥
 अर्जुना ब्रह्मनामाचां विधिं । बुद्धि सांडुनि आस्तिकी ।
 कर्में कीजति जेतुकिं । असतें होंति ॥ ६० ॥

हा आइकौनि देवाचा बोलु । अर्जुना आला डोलु ।
 हणणे कर्मनिष्ठा मूलु । ठेला देखों ॥ ६१ ॥
 तो अज्ञानांधु बापुडा ईश्वरु चि नेदखे एवडा ।
 तेथ नावं एक पुढां । कां सुझे तेया ॥ ६२ ॥
 आणि रजतमें दोन्हीं । गेलेयां सात्वीक श्रद्धा सानीं ।
 ते कां लागे अभिघानीं । ब्रह्माचिये ॥ ६३ ॥
 मग कौतां खेवं देणें । वार्ते वारिळ धावणें ।
 संडीं फडे खेळवणें । नागिणिएचीं ॥ ६४ ॥
 तैसिं कर्में दुवाडें । तेयां हिं जन्मांतराचि कडे ।
 दुर्मेलवे यव्हडे । कर्मा माझि ॥ ६५ ॥
 ना विपायें उजू होए । तरि ज्ञानाची योग्यता लाहे ।
 यन्हाविं येणें चि जाये । निरयासि ॥ ६६ ॥
 कर्मिं हा ठावो वेन्हीं । आहाति वहुवा अवसरी ।
 आतां कर्मटा कैची वारी । मोक्षाची एथ ॥ ६७ ॥
 तारे फीटो कर्माचा पांगु । कां जो आववा चि त्यागु ।
 आदरिजो अव्यंगु । संन्यासु तो ॥ ६८ ॥
 कर्मबाधाची काहिं । जेथ भयाची गोठि नाहिं ।
 तें आत्मज्ञान जिहीं । स्वाधीन केलें ॥ ६९ ॥
 ज्ञानाचे आव्हान मंत्र । जें ज्ञान पीकर्ते सुक्षेत्र ।
 ज्ञान आकर्षिते सूत्र । तंतु जे कां ॥ ७० ॥
 दोन्हीं संन्यास त्याग । अनुष्टुनि सूटो जग ।
 तारे आतां हे चि चांग । व्यक्ति प्रसों ॥ ७१ ॥
 ऐसें हणौनि पार्थें । त्यागसंन्यासव्यवस्थे ।
 रूप होआवेया जेथें । प्रभु केला ॥ ७२ ॥
 तथ प्रत्युत्तरे वोळि । श्रीकृष्णें जे सांघितली ।
 तेया व्यक्ति जाली । अष्टादशो ॥ ७३ ॥

एवं जन्यजनकभावें । अध्यावो अध्यायातें प्रसवे ।
 आतां आइकां बरवें । प्रसिलें तें ॥ ७४ ॥
 तरि पांडुकुमरें तेणें । देवाचें सरतें बोलणें ।
 जाणौनि अंतष्करणें । काणि घेतली ॥ ७५ ॥
 यन्हविं तत्वविधिं भला । तो निश्चितु किर आहे जाला ।
 परि देउ राहे उगला । हें साहावे ना ॥ ७६ ॥
 वत्स धालेयां हिं वरि । धेनु न वचावी दूरि ।
 अनन्य प्रीतिची परि । ऐसी चि असे ॥ ७७ ॥
 तेणें काजें विण बोलवें । तें देखिलें तन्हीं पाहावें ।
 भोगितां चाड दूणावे । पढियंतां ठांई ॥ ७८ ॥
 ऐसीं प्रेमाची जाति । पार्थु तवं ते चि मूर्त्ति ।
 हाणौनि करुं लाहे खति । उगेपणाची ॥ ७९ ॥
 आणि संवादाचेनि मीसैं । जें अव्यवहारी वस्तु असे ।
 तें चि भोगिजे जैसैं । आरिसां रूप ॥ ८० ॥
 मग संवादु तो चि पारुखे । तरि भोगणें भोगीं थोके ।
 हें कां साहावैल सुखें । लांचावलेयां ॥ ८१ ॥
 या लागि त्याग संन्यास । पुसावेयाचें घेउनि मीस ।
 उपरतविलें दूस । गीतेचें तें ॥ ८२ ॥
 अठरावां अध्याउ हा नोहे । हे एकाध्याई गीता चि आहे ।
 जें वांसुरुं चि गाये दुहे । तें वेळ काइसी ॥ ८३ ॥
 तैसैं संपतां हिं अवसरि । गीता आदरविली माघारी ।
 स्वामिभृत्याचा न करी । संवादु काई ॥ ८४ ॥

अर्जुन उवाच ॥

संन्यासस्य महाबाहो तत्वमिच्छामि वेदितुं ॥
 त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

परि हें असो ऐसें । अर्जुनें पूसिजत असे ।
 ह्यणे विनती विश्वेशें । अवधारिजो ॥ ८५ ॥
 हां जी संन्यासु आणि त्यागु । यां दोहिं एकिं अर्थ लागु ।
 जैसा सांघातु आणि संगु । संगतें बोलिजे ॥ ८६ ॥
 तैसें त्यागें आणि संन्यासें । त्यागू चि बोलिजत असे ।
 अमचेनि तवं मानसें । ऐसें जाणिजे ॥ ८७ ॥
 ना काहिं आथि अर्थभेदु । तो देवो करीतु विशदु ।
 एथ ह्यणे मुकुंदु । भिन्न चि पै ॥ ८८ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ॥
 सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥
 यन्हविं अर्जुना तूष्णां मनिं । त्याग संन्यास दोन्हीं ।
 एकार्थं गमले हें मानी । मीं ही साच ॥ ८९ ॥
 किर दोहिं इहिं शद्धि । त्यागु चि बोलिजे त्रिशुद्धी ।
 परि कारण एथ भेदीं । एतुलें चि ॥ ९० ॥
 जें निपटौनि कर्म सांडिजे । तें सांडणें संन्यासु ह्यणिजे ।
 आणि फलमात्र कां तेजिजे । त्याग तो गा ॥ ९१ ॥
 परि कोणा कर्माचें फल । सांडिजे कोण वर्म केवल ।
 हें इं सांघों विमल । चित्त दे पां ॥ ९२ ॥
 तारि आपैसेया दांगें डोंगर । झाडलीं वीति असार ।
 तैसे लांबे राजागर । नुठिति ते ॥ ९३ ॥
 न पेरितां सैव तृणें । उठिति तैसें सालिचें होणें ।
 नाहिं गा राबाउणें । जेया परीं ॥ ९४ ॥
 कां आंग जालें साहाजे । परि लेणें उद्यमें कीजे ।
 नई आपैसी आपादिजे । विहिर जेवि ॥ ९५ ॥
 ८१

तैसैं नित्यनैमित्तिक । कर्म होये स्वाभाविक ।
 परि न कामितां कामिक । न निफजे जें ॥ ९६ ॥
 कामनेचें दलवाडें । जें उभावेया घडे ।
 अश्वमेधादिक फुडे । याग जेथ ॥ ९७ ॥
 वापी कूप आराम । अप्रहारें हान ग्राम ।
 आणिक ही संभ्रम । व्रतांचे जे ॥ ९८ ॥
 ऐसैं इष्टापूर्त्त सकळ । जेया कामना एकि मूळ ।
 जें केलें भोगवी फल । बांधोनियां ॥ ९९ ॥
 देहाचेया गावां आलेयां । जन्ममृत्युचेया सोहलेया ।
 ना ह्यणों नैए धनंजया । जेया परीं ॥ १०० ॥
 कां लल्लाटिचें लिहिलें । न मोडे काहिं केलें ।
 काले—गोरेपण धूतलें । फीटों नेणे ॥ १ ॥
 केलें काम्य कर्म तैसैं । फलभोगाचें धरणें वैसै ।
 न फेडिता रिण जैसैं । वोसंडी ना ॥ २ ॥
 कां कामना हिं न करितां । अवसांत घडे पांडुसुता ।
 परि वायकांड न जुद्धतां । लागे जैसैं ॥ ३ ॥
 गुळ नेणतां तोंडीं । घातला दे चि गोडी ।
 अग्नि नेणोनि राखौंडी । चेंपिलें पोळी ॥ ४ ॥
 काम्य कर्माचें हें एक । सामर्थ्य असे स्वभाविक ।
 ह्यणौनि नको कवतिक । मुमुक्षुं एथ ॥ ५ ॥
 किंबहुना पार्था ऐसैं । जें काम्य कर्म गा असे ।
 तें तेजिजें विष जैसैं । वोकुनियां ॥ ६ ॥
 मग तेया त्यागातें जर्गी । संन्यासु ऐसेया भंगी ।
 बोलिजे अंतरंगीं । सर्वद्रष्टां ॥ ७ ॥
 हें काम्य कर्म सांडणें । तें कामनेतें चि उपडणें ।
 धनत्यागें दवडणें । जैसैं भय ॥ ८ ॥

सोमसूर्यग्रहणें । एउनि करिति पार्वणें ।
 कां मातापितरमरणें । अंकितें जें दीस ॥ ९ ॥
 अथवा अतिथी हान पावे । ऐसां पडें जें करावें ।
 तें तें कर्म जाणावें । नैमित्तिक गा ॥ ११० ॥
 वारिधिया क्षोभे गगन । वसंत दुणावे वन ।
 देहशृंगारी यौवन । दशा जैसी ॥ ११ ॥
 कां सोमकांतु सोमें पाव्हाले । सूर्ये फाकति कमळें ।
 एथ असे तें चि पघळें । आन नैए ॥ १२ ॥
 तैसें नित्य जें कां कर्म । तें नैमित्तिकाचें लहे नियम ।
 एथ उंचावें तेणें नाम । नैमित्तिक होए ॥ १३ ॥
 आणि सायंप्रातर्मध्यानीं । जें करणीय प्रतिदिन्हीं ।
 परि दृष्टि जैसी लोचनीं । अविक नोहे ॥ १४ ॥
 कां नापादितां गति । चरणीं जैसी आधि ।
 नातरि दीप्ति । दीपत्रिंवि ॥ १५ ॥
 वासु नैदितां जैसें । चंदनीं मुगंधत्व असे ।
 अधिकाराचे तैसें । रूप चि जें ॥ १६ ॥
 नित्य कर्म ऐसें जनीं । पार्था बोलिजे तें हें मानीं ।
 एवं नित्यनैमित्तिकें दोन्हीं । दाविलिं तुज ॥ १७ ॥
 हें नित्यनैमित्तिक । अनुष्ठितां आवश्यक ।
 ह्यणौनि ह्यणों पांति एक । वांझ ययातें ॥ १८ ॥
 परि भोजनीं जैसें होए । तृप्तिलाभें भूक जाए ।
 तैसें नित्यनैमित्तिक आहे । सर्वांगिं फळ ॥ १९ ॥
 कीड आगिटां पडे । मळ तूटे वानीं चढे ।
 या कर्मा तेया सांगडें । फळ जाणावें ॥ १२० ॥
 जें प्रत्यवावो तवं गले । स्वाधिकारु बहुवें उजले ।
 तेथ हातोफाळिया मिले । सद्रतीसिं ॥ २१ ॥

एवडें वेरि ढिसाळ । नित्यनैमित्तिकिं आहे फळ ।
 परि त्यजिजे मूल । नक्षत्रीं जैसें ॥ २२ ॥
 लता पीके आघवी । तवं चूतु बांधे पालवी ।
 मग हातु न लवी माघवी । सांडुनि घाली ॥ २३ ॥
 तैसी नोळाडितां रेखा । चित्त दीजे नित्यनैमित्तिका ।
 पाठिं फला कीजे अशेषा । वांतिची वानी ॥ २४ ॥
 एया कर्मफलत्यागातें । त्यागु पैं ह्यणति जाणते ।
 एवं संन्यास त्याग तूतें । परिसविले ॥ २५ ॥
 हा संन्यासु जें संभवे । तें काम्यवाधु न पवे ।
 निषिद्ध तवं स्वभावे । निषिद्धें गेलें ॥ २६ ॥
 आणि नित्यादिक असे । तें एणें फलत्यागें नासे ।
 शिर लोटिलेयां जैसें । एर आंग ॥ २७ ॥
 मग सस्य फलपाकांत । तैसें निमालेयां कर्मजात ।
 आत्मज्ञान गिवसीत । आपैसें ए ॥ २८ ॥
 एसिया निगुती दोन्हीं । त्यागसंन्यासअनुष्ठानिं ।
 पडिले गा आत्मज्ञानीं । बांधति पाटु ॥ २९ ॥

त्याज्यं दोषवादित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ॥

यद्दानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥

नातारि हे निगुति चूके । मग त्यागु कीजे हाततूकें ।
 तें काहिं न त्यजे अधिकें । गोवी चि पडे ॥ १३० ॥
 जें अखद व्याधी अनोलख । तें घेतलेयां परते चि विष ।
 कां जें अन्न न मनीं भूक । तें मारी ना काई ॥ ३१ ॥
 ह्यणौनि त्याज्य जें नोहे । तेथ त्यागातें न सुआवें ।
 त्याज्या लागि नोहावें । लोभापरां ॥ ३२ ॥
 चूकलेयां त्यागाचें बेडें । केला सर्वत्यागु हो वोडें ।
 निषिद्धोंसें सर्वत्र जूडें । वीतरागां ॥ ३३ ॥

एकां फलत्यागु न टके । ते कर्माते ह्यणति बंधके ।
 जैसे आपण नग्न भांडुके । जगाते ह्यणे ॥ ३४ ॥
 कां जिह्वालंपटु रोगिया । अने दुखीं धनंजया ।
 नातारि आंगे नर कुष्ठिया । मासियां कोपे ॥ ३५ ॥
 तैसें फलकार्मि दुर्बल । ह्यणति कर्म कीडाल ।
 मग निर्णयो देति केवल । त्यजावे ऐसा ॥ ३६ ॥
 एक ह्यणति यागादिक । करावे आवश्यक ।
 हे वांचौनि शोधक । आन नाहिं ॥ ३७ ॥
 मनशुद्धिचां मार्गि । जें विजैयां होआवे जर्गी ।
 तें कर्मसंबंधा लागि । आलसु न कीजे ॥ ३८ ॥
 भांगार आधि शोधवे । तारि आगी जेवि नुभगावे ।
 कां आरिसेया लागि सांचावे । अधिकें रजे ॥ ३९ ॥
 ना लुगडीं चोखें होआवि । ऐसें जरि आधि जीवि ।
 तारि सवंदणि न मनावी । मर्लान ऐसी ॥ ४० ॥
 तैसिं कर्म केशाकारें । ह्यणौनि ने नाविं अवेहेरें ।
 कां अन्न लाभे अरुवारें । रांधितिए उणे ॥ ४१ ॥
 तारि इहिं गा शर्दी । एक कर्म बांधति बुद्धी ।
 ऐसा त्यागु विसंवादीं । पडौनि ठेला ॥ ४२ ॥
 पारि आतां विसंवादु तो फाटे । हा त्यागाचा निश्चयो भेटे ।
 तैसें बोलें गोमटें । अवधान देइं ॥ ४३ ॥

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ॥

त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥

तारि त्यागु एथ पांडवा । त्रिविधु पै जाणावा ।
 तेया ही त्रिविधा बरवा । निवाडु सांघों ॥ ४४ ॥
 त्यागिचे तीन्ही प्रकार । कीजति जन्ही गोचर ।
 तन्ही इत्यर्थाचें सार । एतुळें एथ ॥ ४५ ॥

मज सर्वज्ञाचिये बोधीं । जें अलोट माने त्रिशुद्धी ।
तें निश्चित तवं आधीं । विचारि पां ॥ ४६ ॥

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ॥
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणां ॥ ५ ॥

तरि आपुलिये सोडवणे । जो मुमुक्षु जागों ह्मणे ।
तेया सर्वस्वें करणें । हें चि एक ॥ ४७ ॥
जियें यज्ञदानतपादिकें । यें कर्म आवश्यकें ।
तियें न संडाविं पांधिकें । पाउलें जैसीं ॥ ४८ ॥
हारतलें न देखिजे । तवं मागु न संडिजे ।
कां न धांतां न लोटिजे । भाणें जेवि ॥ ४९ ॥
नाव थडी न पवतां । न संडिजे केलि न फलतां ।
कां ठेविलें न दिसतां । दीपु जैसा ॥ १५० ॥
तैसी आत्मज्ञानविधिं । जवं निश्चिती नाहिं नीकी ।
तवं न व्हावें यागादिकिं । उदासीनां ॥ ५१ ॥
पै स्वाधिकारानुरूपें । तियें दानयागतपें ।
अनुष्ठाविं आक्षेपें । अधिकें वर ॥ ५२ ॥
जें चालणें वेगावत जाए । तो वेगु वैसावेया चि होये ।
तैसा कर्मा अतिसो आहे । निष्कर्मा लागि ॥ ५३ ॥
अधिकें जवं जवं अखदीं । सेवनेची मांडे वांधी ।
तवं तवं मूकिजे व्याधी । तेयाचिया ॥ ५४ ॥
तैसें कर्म हातोपातीं । पै कीजति यथानिगुतीं ।
तैं रजतमें झडती । दोन्ही एथ ॥ ५५ ॥
मग पाठिचां वाटीं पुटें । भांगारा देणें घटे ।
तैं कीड झडकारि तूटे । निर्व्याज होए ॥ ५६ ॥
तैसें निष्ठा केलें कर्म । सांडूनि रजतम ।
सत्वशुद्धिचें धाम । डोलां दावी ॥ ५७ ॥

क्षणौनि गा धनंजया । सत्वशुद्धि गिवसी तैया ।
 तीर्थे ये सावाया । आलिं कर्म ॥ ५८ ॥
 तृषार्त्ता मरुत देसी । झले अमृतें बोलली जैसी ।
 कां अंधा लागि डोलांसि । सूर्यो आला ॥ ५९ ॥
 बुडतेया नइ चि धांविनली । पडतेया पृथ्वी कलवलली ।
 मरतेया मृत्यू दीधली । आयुष्यरिद्धी ॥ १६० ॥
 तैसें कर्म बांधतां । मुमुक्षू सूटले पांडुसुता ।
 जैसा रसरीती मरता । राखिला विखें ॥ ६१ ॥
 तैसिं येकी हातवटिया । कर्म केलीं धनंजया ।
 बंधकें चि सोडावेया । मुख्य होंति ॥ ६२ ॥

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ॥
 कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमं ॥ ६ ॥

आतां ते चि हातवटी । तुज ही सांघों गोमटी ।
 जेया कर्मासि किरिटी । कर्म चि रूसे ॥ ६३ ॥
 तरि महायागप्रमुखें । कर्म निफजति अचुकें ।
 कर्तेपणाचें न टके । फुंजणें आंगीं ॥ ६४ ॥
 जो मोले तीर्था जाये । तेयासि यात्रा करीतु आहें ॥
 ऐसिया श्लाघ्यता नोहे । तोखु जिवां ॥ ६५ ॥
 कां मुद्रा समर्थाचिया । एकटु झोंवे राया ।
 तो मीं जीणतसें येया । न ये जेवि गर्वा ॥ ६६ ॥
 जो कासे लागौनि तरे । तेया पन्हती उर्मि नुरे ।
 पुरोहितु नाविष्करे । दातेपणें ॥ ६७ ॥
 तैसें कर्तुत्व अहंकारें । नेघौनि यथावसरें ।
 कृत्यजाताचें मोहिरें । सारिजति ॥ ६८ ॥
 आणि केलें कर्म पांडवा । जो आधि फलाचा यावा ।
 तेया मोहरा न व्हावा । मनोरथु ॥ ६९ ॥

आदिं चि फळिं आसतूटिया । कर्म आरंभावीं धनंजया ।
 परावें बाल धाया । पाहिजे जैसें ॥ १७० ॥
 पिंपरुवांचेया आशा । न सिंपिजे पिंपलु जैसा ।
 तैसिया फलनिराशा । कीजति कर्म ॥ ७१ ॥
 सांडूनि दूधाची टकुली । गोवारी गावंधणें वेंटाली ।
 किंबहुना कर्मफळीं । तैसें कीजे ॥ ७२ ॥
 ऐसी हे हातवटी । घेउनि क्रिया जे उठी ।
 आपुलिया आपण गांठी । लाहे चि तो ॥ ७३ ॥
 ह्यणौनि फळिं लागु । सांडौनि देहिं संगु ।
 कर्म कराविं हा चांगु । निरोपु माझा ॥ ७४ ॥
 जो जीवबंधें सीणला । सूटिकिं जचे आपुलां ।
 तेणें पुडुतीं या बोला । आन न कीजे ॥ ७५ ॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ॥

मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

ना आंधाराचेनि रोखें । जैसीं डोलां रोविजति नाखें ।
 तैसें कर्मद्वेखें असिकें । कर्म चि सांडी ॥ ७६ ॥
 तेयाचें कर्म सांडणें । तें तामस पै मीं ह्यणें ।
 सिसाराचां रागीं लागें । सीस चि जैसें ॥ ७७ ॥
 हांगा मार्गु दोवाडु होए । तन्हीं निस्तरतील पाए ।
 किं ते चि खांडणें आहे । मार्गापराधें ॥ ७८ ॥
 भूकैलेया पुढील अन्न । हो कां भळेतैसें उन्ह ।
 तन्हीं बुद्धी नेघतां लंघन । कां निवारें गा ॥ ७९ ॥
 तैसा कर्माचा बाधु कर्म । नितारिजैल कारितेन वर्म ।
 हें तामसु नेणे भ्रम । माजविला ॥ १८० ॥
 किं स्वभावं आलें विभागा । तें कर्म चि वोसंडी पै गा ।
 परि ज्ञनें आतला त्यागा । तामसा तेया ॥ ८१ ॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ॥

स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥

अथवा स्वाधिकार बूझे । आपुलें विहित ही सूझे ।
 पारि करितेया उभजे । निबरपणां ॥ ८२ ॥
 जें कर्म आरंभाची कड । नावं एक होये दुवाड ।
 वाहांतिये वेले जड । सिदोरी जैसी ॥ ८३ ॥
 निंबु जिव्हे कडुवटु । हिरडा पहिलें तूरटु ।
 तैसा कर्मा सेवटु । खणुवाला होए ॥ ८४ ॥
 गाई दोवाड सिंग । सेवतिये अडव आंग ।
 भोजनसुख महाग । रांधितां ठांडं ॥ ८५ ॥
 तैसें पुडुति पुडुति कर्म । आरंभीं चि अतिविषम ।
 ह्यणौनि ते ते ध्रम । करितां मानीं ॥ ८६ ॥
 एन्हविं विहितवें मांडी । परि घालितां असुरवाडी ।
 एथ पोललें ऐसें सांडी । आदारिलें ही ॥ ८७ ॥
 हाणे वस्तु देहा सारिखी । आली बहुविं भाग्यविशेषि ।
 मा जाचुकां कर्मादिकि । पापिया जैसा ॥ ८८ ॥
 केलां कर्मि जें देयावें । तें ज्ञनें मज होआवें ।
 आजि भोगूं ना बरवें । हातिचे भोग ॥ ८९ ॥
 ऐसा शरीराचेया क्लेशा । भेण कर्म वीरेशा ।
 सांडी तो परियसां । राजस त्यागी ॥ १९० ॥
 यन्हविं तेथ ही कर्म सांडे । परि त्यागफल न जोडे ।
 जैसें उतलें आगी पडे । परि होमीं न लगे ॥ ९१ ॥
 कां बुडौनि प्राण गेले । ते अर्धोदकीं निमाले ।
 हें ह्यणों न ए जालें । दुर्मरण चि ॥ ९२ ॥
 तैसें देहाचेनि लोभें । जेणें कर्मा पाणी सुभे ।
 साच तेणें न लभे । त्यागाचें फल ॥ ९३ ॥

किंवहुना आपुलें । जें ज्ञान होये उदया आलें ।
 तें नक्षात्रांतें पाहलें । गिळी जैसें ॥ ९४ ॥
 तैसिया सकारणा क्रिया । हारपती धनंजया ।
 तो कर्मत्याग ये जेया । मोक्षफलासि ॥ ९५ ॥
 तें मोक्षुफळ अज्ञाना । त्यागिया नाहिं अर्जुना ।
 ह्यणौनि तो त्यागु न मना । राजसै ते ॥ ९६ ॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ॥
 संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥९॥

तारि कोणें पां एथ त्यागें । मोक्षुफळ घर रिगे ।
 तें हिं आइक प्रसंगें । बोलिजैल ॥ ९७ ॥
 तारि स्वाधिकाराचेनि नावें । जें वांटे आलें स्वभावें ।
 तें आचरिजे गौरवें । शृंगारुनि ॥ ९८ ॥
 पारि हें मिं कंरीतु असें । ऐसा आठौ ल्यजी मानसें ।
 तैसें चि पाणी दे आसे । फळाचिये ॥ ९९ ॥
 पै अवज्ञा आणि कामना । मातेचां टांड अर्जुना ।
 केलीं दोन्हीं पतना । हेतु होंति ॥ २०० ॥
 तारि दोन्ही इयें त्यजाविं । मग माता चि भजावी ।
 वांचौनि मुखा लागि वालावी । गाय चि सलगी ॥ १ ॥
 आवडतिये ही फलीं । असारें सालि आठोली ।
 तेया साठिं अवगाली । फळांतें कोण्हीं ॥ २ ॥
 तैसा कर्तृत्वाचा महु । आणि कर्मफलिचा आस्वादु ।
 ययां दोहिं चि नावं बंधु । कर्माचा किं ॥ ३ ॥
 तारि यां दोहींचां विखीं । जैसा वापु नातले लेंकी ।
 तैसा होये ना दुःखी । विहितक्रिया ॥ ४ ॥
 हा तो त्याग तरुवरु । जो मोक्षफलीं ए थोरु ।
 सात्त्विक ऐसा डगरु । एयासी चि जर्गी ॥ ५ ॥

बिं जादूनि चि जैसैं । झाड कीजे निर्वसैं ।

फळ लज्जुनि कर्म तैसैं । लजिलें जेणें ॥ ६ ॥

न द्वेष्यकुशलं कर्म कुशलं नानुषज्जते ॥

त्यागी सत्वसमाविष्टो भेधावी छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

तेया लागत खे३० परिसिं । धातुची गंधिकाळिमा जैसी ।

जाये रजतमें तैसीं । तूटलीं दोन्हीं ॥ ७ ॥

मग सत्वे तें चोखालें । उघडति आत्मबोधाचे डोले ।

तेथ मृगांभ सांजवेले । होये जैसैं ॥ ८ ॥

तैसा बुध्यादिकां पुढां । असतु विश्वाभासु एवडा ।

तो नेदखे कव्हणी कडां । आकाश जैसैं ॥ ९ ॥

झणौनि प्राचीनाचेनि वलें । आलें कृत्यें कुशलाकुशलें ।

तियें व्योमाचां आंगिं अभाळें । जिराली जैसीं ॥ २१० ॥

तैसीं तेयाचिया दृष्टी । कर्में द्रिष्टी चि जाली किराटी ।

झणौनि सुखदुःखीं नुठीं । पडे ना जो ॥ ११ ॥

तेणें शुभ कर्म जाणावें । मग तें हर्षें करावें ।

कां अशुभा लागि होआवें । द्वेषिया नां ॥ १२ ॥

तारि ये विषिचा काहिं । तेया एकु ही संदेहो नाहिं ।

जैसा स्वप्नाचा कां ठाईं । जागिनलेयां ॥ १३ ॥

झणौनि कर्म आणि करिता । यां द्वैतभावांची वार्ता ।

नेणे तो पांडुसुता । सात्विक त्यागीं ॥ १४ ॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ॥

यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥

ऐसेनि कर्में पार्था । त्यजिलीं लज्जीति सर्वथा ।

अधिकें बांधिजति अन्यथा । सांडिलीं तारि ॥ १५ ॥

हां गा सव्यसाची । मूर्ति होउनि देहाची ।

खंति करीति कर्माची । गाव्ढीं नां ॥ १६ ॥

मातिएचा वीटु । घेउनि काइ करी घटु ।
 केउते तांथू पटु । सांडितील ते ॥ १७ ॥
 तेविं चि वन्हित्व आंगी । आणि ऊबे उबगणें आगी ।
 तो दीपु प्रभे लागि । द्वेषु करी काई ॥ १८ ॥
 हांगु त्रासला पां घाणी । तरि सुगंधत्व कैचें आणी ।
 द्रवपण सांडुनि पाणी । कें राहे तें ॥ १९ ॥
 तैसा शरीराचेनि आभासें । नांदतु जवं असे ।
 तवं कर्मत्यागाचें पीसें । काइसें तन्हीं ॥ २२० ॥
 आपण लाविजे टीला । हणौनि पुसूं ये अवलीला ।
 मा घालि फेडि निडला । कां करुं ए गा ॥ २१ ॥
 तैसें विहित स्वयें आदरिलें । हणौनि त्यजूं ये त्यजिलें ।
 परि कर्म चि देह आतलें । तें कां गा सांडे ॥ २२ ॥
 जें श्वासोश्वास वेरि । होंत निदेंलेया ही वारि ।
 कांहिं न करणें चि पारि । होंति जेयाची ॥ २३ ॥
 एया शरीराचेनि मीखें । कर्म चि लागले असिके ।
 जीतां मेलेयां न टके । इया रीती ॥ २४ ॥
 एयातें सांडिती एथ परी । एकी चि ते अवधारीं ।
 करितां जाइजे हारि । फलासेचि ॥ २५ ॥
 कर्मफल ईश्वरीं अर्पे । तत्प्रसादें बोधु उद्दीपे ।
 तेथ रज्जुज्ञानें लोपे । व्यालशंका ॥ २६ ॥
 तेणें आत्मबोधें तैसें । अविद्यासिं कर्म नासे ।
 पार्था त्यजिजे जें ऐसें । त्यजिलें होए ॥ २७ ॥
 हणौनि इया परीं जर्गी । कर्म त्यजी तो महात्यागी ।
 एरू मूर्खने नावं रोगीं । विसांवां जैसा ॥ २८ ॥
 तैसा सीणे कर्मीं एकीं ! विसांवां पाहे आणिकिं ।
 खांडियांचे घाये बुकिं । घाडणें जैसें ॥ २९ ॥

पारि हें असो पुढुतीं । तो चि त्यागी त्रिजगती ।
जेणें फलत्यागें निष्कृती । नेलें कर्म ॥ २३० ॥

अनिष्टमिष्ट मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलं ।

भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥ १२ ॥

यन्हविं तन्हीं धनंजया । त्रिविधा फल गा इया ।
समर्थ तें किं भोगावेया ॥ जें सांडी चि नां ३१ ॥
आपण चि वीउनि दुहिता । न मम ह्यणे पिता ।
किं तो सुटे येरु घेंता । जावाई सिरके ॥ ३२ ॥
विखाचे ही आगर वाहांती । ते वीकितां तूट्ठे जीति ।
पारि निमाळे जे घेंति । वणिजूनि मोलें ॥ ३३ ॥
तैसें कारितां कर्म करू । अकर्त्ता फलआशे न धरू ।
तेथ न शके आवरू । दोघां तें हिं कर्म ॥ ३४ ॥
वाटे पीकलेया रंखाचें । फल आपेक्षी तेयाचें ।
तेवि साधारण कर्माचें । फल घे तेया ॥ ३५ ॥
पारि करूनि फल नेघे । तो जगाचां कर्मि न रिघे ।
जें त्रिविध जग आघवें । कर्मफल हें ३६ ॥
देव मनुष्य स्थावर । या नावं किं जगडंबर ।
तारि हें तवं त्रिप्रकार । कर्मफल पै ॥ ३७ ॥
तें चि एक गा अनिष्ट । एक तें केवल इष्ट ।
आणि एक इष्टानिष्ट । त्रिविध ऐसें ॥ ३८ ॥
पारि विषमता बुद्धी । आर्गिं सूनि अविधी ।
प्रवर्त्तिजे निषेधीं । कुव्यापारि ॥ ३९ ॥
तेथ क्रिमि कीटक लोष्ट । हे देहलाभ होंति निष्कृष्ट ।
तेया नावं तें अनिष्ट । क्रियाफल ॥ ४० ॥
कां स्वधर्मा मानु देंतां । स्वाधिकारु पुढें सूतां ।
सुकृत कीजे पूसतां । आम्नायातें ॥ ४१ ॥

तैं इंद्रादिकां देवांचीं । देहें लाहिजति सब्यसाची ।
 तेया कर्मफलइष्टाची । प्रसिद्धि गा ॥ ४२ ॥
 आणि गोड आंबड मिले । तेथ रसांतर फरसालें ।
 उठी दोहिं वेगलें । दोहीं जीणतें ॥ ४३ ॥
 रेचक चि योगवसें । होये स्तंभावेया दोसें ।
 तेवि सत्यासत्यसमरसें । असत्य जिणिजे ॥ ४४ ॥
 ह्यणौनि समभागें शुभाशुभें । मिलौनि अनुष्ठानाचें उभे ।
 तेणें मनुष्यत्व लाभे । तैं मिश्र फल ॥ ४५ ॥
 एवं त्रिविध या भंगीं । फल मांडले असे जगीं ।
 हें न संडे तेया भोगीं । सूदळें आशा ॥ ४६ ॥
 एथ जीभेचा हातु फांटे । तवं जेवितां गमे गोमटें ।
 परिणामिं सेवटें । विपायें मरण ॥ ४७ ॥
 सवंचोरां मैत्री चांग । जवं न पविजे तें दांग ।
 सामान्या भली जवं आंग । न सिवे तवं ॥ ४८ ॥
 तैसीं कर्म करितां शरीरीं । लाहांति महत्वाची फरारी ।
 पाठि निधनीं एकसरिं । पावति फळें ॥ ४९ ॥
 समर्थुं कां रिणियां । मागों आला बाइणियां ।
 न लोटे तैसा प्राणियां । पडे तो भोगु ॥ २५० ॥
 मग कणिसौनि कणु झडे । तो विरूढला कणिसा चडे ।
 पुडुतीं भुइं पडे । पुडुतीं उठी ॥ ५१ ॥
 तैसें भोगिं जें फल होए । तें फलांतरें वीत जाये ।
 चालतां पावो पायें । जीणिजे जैसा ॥ ५२ ॥
 उताराचिये सांगडी । ठाके ते ऐली चि थडी ।
 तेवि न मुकति बोढी । भोग्याचिये ॥ ५३ ॥
 पै साध्यसाधनप्रकारें । फलभोगु तो गा पसरे ।
 एवं गोविले सवंसारें । अत्यागि ते ॥ ५४ ॥

यन्हविं जाईचेया फुला फांकणें । तेया चि नावं सूकणें ।
 तैसें कर्ममीखें न करणें । केलें जिहीं ॥ ५५ ॥
 जै बीं चि वरोसी वेचे । तै वाढती कुलवाडि खांचे ।
 तेवि फलत्यागिं कर्माचें । सारिलें काम ॥ ५६ ॥
 तेया सत्वशुद्धिसहकारें । गुरुकृपाभृततुषारें ।
 सांसिनलेनि बोधें असरे । द्वैतदैन्य ॥ ५७ ॥
 तेधवां जगदाभासमीषें । स्फुरतें त्रिविध फल नासे ।
 तेथ भोक्ताभोग्य आपैसें । निमालें होए ॥ ५८ ॥
 घडे ज्ञानप्रधानु ऐसा । संन्यासु जेयां वीरेशा ।
 ते चि फलभोग ही सोसा । मूकले गा ॥ ५९ ॥
 आणि एणें किर संन्यासें । जै आत्मरूपिं दीठि पैसे ।
 तै कर्म एक ऐसें । देखणें आहे ॥ २६० ॥
 पढौनि ठेलेयां भीति । चित्राची कीजतसे चांथी ।
 पाहालेयां राती । आंधारें उरे ॥ ६१ ॥
 जै रूप चि नाहि उभें । तै साउली काह्याची शोभे ।
 आरिसेन विण बिंबे । वदन कें पां ॥ ६२ ॥
 फीटलेयां निद्रेचा ठाउ । कैचा स्वप्नासि प्रस्थाउ ।
 मग तें साच कां वावो । हें कोण ह्याणे । ६३ ॥
 तैसें गा संन्यासें एणें । तवं अविद्येसी चि नाहीं जीणें ।
 मां तियेचें कार्य कोणे । घेपे दीजे कर्म ॥ ६४ ॥
 ह्यणौनि संन्यासि इए पाइ । कर्माची मातु कीजैल काइ ।
 परि अविद्या आपुलां देहीं । आहे जैसी कां ॥ ६५ ॥
 जै कर्तेपणाचेनि थावें । आत्मा शुभाशुभी धावे ।
 द्विष्टि भेदाचिये राणिवे । बैसली जैसी ॥ ६६ ॥
 तै तन्हीं गा सुवर्मा । वेगली आत्मेया कर्मा ।
 अपाडें जैसी पश्चिमा । पूर्वेंसिं कां ॥ ६७ ॥

नातारि आकाशा आणि अभाला । सूर्या आणि मृगजला ।
 वेगळीक भूतला । वायुसीं जैसी ॥ ६८ ॥
 पांगुरौनि नैचें उदक । असे नै चि माजि खडक ।
 परि जाणसि किं वेगळीक । कोडिची तेया ॥ ६९ ॥
 हो कां पाण्यां जवळी । परि सिनीं चि ते बाबुळी ।
 काइ संग्ता तव काजली । दीपु ह्मणों ए ॥ ७० ॥
 जन्हीं चंद्रों जाला कळंकु । तन्हीं चंद्रोंसि न्हवे किं एकु ।
 आहे द्विष्टी डोळ्यां विशेकु । अगाडु जैसा ॥ ७१ ॥
 नाना वाटे वाटे जांतिया । बोधा बोधों वाहांतेया ।
 आरिसा आरिसेया पाहांतेया । अपाडु जेतुळा ॥ ७२ ॥
 पार्था गा तेतुलेनि मानें । आत्मेनसिं कर्म सीनें ।
 पारि घेवविजे अज्ञानें । तें किर असो ॥ ७३ ॥
 पंचैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ॥
 सांख्ये कृतांते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणां ॥ १३ ॥
 विकासें रवितें उपजवी । द्रुति अलीं करवि भोगवी ।
 ते सरोवरीं कां वरवी । अञ्जनी जैसी ॥ ७४ ॥
 पुडुतीं आत्मक्रिया । अन्यकारणका चि तैसिया ।
 कळं पांचां हिं तेया । कारणा रूप ॥ ७५ ॥
 आणि पांचे कारणें तियें । तूं हीं जाणसील विपार्यें ।
 जें शास्त्रें उभूनि वाहे । बोलतीं तेयातें ॥ ७६ ॥
 वेदरायाचिये राजधानीं । सांख्यवेदांताचां भुवनीं ।
 निरूपणाचां निसाणध्वनीं । गाजति तियें ॥ ७७ ॥
 जें सर्वकर्मसिद्धीं लागि । इयें चि मुदळें हो जगीं ।
 एथ न सुआवा अभंगीं । आत्मराजु ॥ ७८ ॥
 एया बोलाचिया डांगुरुटी । तियें प्रसिद्धि आलीं किरीटी ।
 झणौनि तूझा कर्णपुटीं । वसौं काज ॥ ७९ ॥

आनी मुखांतरिं आइकिजे । ऐसैं काइसैं हें वोझें ।
 मीं चितारतन तूझें । असैतां हातीं ॥ २८० ॥
 आरिसा पुढां मांडिलेयां । लोकाचेया डोलेयां ।
 मानु देयावा पावेया । आपुलें नीकें ॥ ८१ ॥
 भक्तु जेथ जैसेनि पाहे । तेथ तें तें चि होंत जाएं ।
 तो मीं तूझें जालां आहें । खेलणें आजि ॥ ८२ ॥
 ऐसेनि प्रीतिचेनि वेगें । देवो बोलतां से नेवे ।
 तवं आनंदा माझि आंगें । विरत एरु ॥ ८३ ॥
 चांदिणेयांचा पडिभरु । जालेयां सोमकांताचा डोंगरु ।
 विघरोनि सरोवरु । हों पाहे जैसा ॥ ८४ ॥
 ऐसैं सुख आणि अनुभूती । या भावाची मोडौनि भीती ।
 आतैल अर्जुना कृती । सुख चि जेथ ॥ ८५ ॥
 तेथ समर्थु हणौनि देवा । अवकाशु जाला आठवा ।
 मग बुडतेया धावा । जीवें केला ॥ ८६ ॥
 अर्जुना एसणें टेंडें । प्रज्ञा पसरोंसिं बुडे ।
 आलें भारितें एवडें । तें काडुनि पुडुतीं ॥ ८७ ॥
 देवो हणो हां गा पार्था । तूं आपणपें देख सर्वथा ।
 तवं श्वासौनि एरें माथा । तुकविला ॥ ८८ ॥
 हणो तूं हीं जाणासि दातारा । मीं तुसीं व्यक्तिसेजारा ।
 उभगलां आदी चि एकाहारा । एउं पाहें ॥ ८९ ॥
 तेया ही हा ऐसैसा । लोभें देया जरि लालसा ।
 तरि कां हो घालितसा । आडाड जिवा ॥ २९० ॥
 एथ श्रीकृष्णु हणो मीकें । आश्रुइं नव्हे मा ठाउकें ।
 वेडेया चंद्रा चंद्रिके । निमळणें आहे ॥ ९१ ॥
 आणि हा इं बोलौनि भाउं । तुज दाउनि आह्मीं वेहों ।
 जें रुसतां दांघे टांवीं । तें प्रेम गा हें ॥ ९२ ॥

एथ एकमेकाचिये स्कूणे । विसंवादु तवं जीणे ।
 हणौनि असो हें बोलणें । इये^१विषिचें ॥ ९३ ॥
 मग कैसी कैसी ते आतां । बोलत होंतों पांडुसुता ।
 सर्वकर्मभिन्नता । आत्मेनसीं ॥ ९४ ॥
 तवं अर्जुनु हणणे देवें । माझिये मनिचें चि स्वभावे ।
 प्रस्ताविलें बरवें । प्रमेय तें चि ॥ ९५ ॥
 जें सकल कर्माचें बीज । कारणपंचक तुज ।
 सांघेन ऐसी पैज । घेतली कां ॥ ९६ ॥
 आणि आत्मेयां एथ काहिं । सर्वथा लागु नाहिं ।
 हें पुढारलासि तें देइं । लाहाणें माझें ॥ ९७ ॥
 ऐया बोला विश्वेशें । हणितलें तोखें बहुवसें ।
 इये विषीं धरणें बैसे । ऐसें कें जोडे ॥ ९८ ॥
 तारि अर्जुना निरूपिजैल । तें किर भाषे चि आंतुल ।
 परि मेचु इये होइजैल । रिणियां तुज ॥ ९९ ॥
 तवं अर्जुनु हणणे देउ^३ । काइ विसरलेति मागील भाउ^३ ।
 हे गोठी कां राखत आहों । मीतूण चि ॥ ३०० ॥
 एथ श्रीकृष्णु हणति हो कां । आतां अवधाना पसरु नीका ।
 करुनि तुंहीं आइकां । पुढारलों तें ॥ १ ॥
 तारि साच चि धनुर्द्धरा । सर्व कर्माचा उभारा ।
 होये बाहिरिवाहिरा । कारणीं पांचें ॥ २ ॥
 आणि पंचकारणदलवाडें । जेहीं कर्माकार मांडे ।
 ते हेतु हीं सवंगडे । पांच आथि ॥ ३ ॥
 येर आत्मतत्व उदासीन । तें हेतु ना उपादान ।
 ना आंगें करी संवाहन । कर्मसिद्धीचें ॥ ४ ॥
 तेथ शुभाशुभी अंशीं । निफजतां कर्म ऐसीं ।
 रात्रिदिउ^३ कां आकाशीं । जिया परीं ॥ ५ ॥

कां तोय तेज धूम । एयां वायुसिं समागमु ।
जालेयां होये अभ्रागमु । व्योम तें नेणे ॥ ६ ॥
नाना कांष्टि नाव मिले । ते नावोडेनि चले ।
चालिजे अनिलें । उदक साक्षां ॥ ७ ॥
कां कोणहें एकें पिडें । वेचतां अवतरे भाडें ।
तें भवंडिजे दंडें । भ्रमे चक्र ॥ ८ ॥

आणि कर्तुत्व कुलालाचें । तेथ काइ पृथिव्येचें ।
आधारु वांचौनि वेचे । विचारि पां ॥ ९ ॥
इयें असो लोकाचिया । राहाटी होंतु आघविया ।
कोण काम सवितेया । आंगा आलें ॥ १० ॥
तैसी पंचहेतुमिलणीं । पांचें चि इहिं करणिं ।
कीजे कर्मलतांची लावणी । आत्मा सिनां ॥ ११ ॥
आतां इयें चि वेगललीं । पांचै विवंचूं गा भलीं ।
तूकूनि घेतलीं । मोतियें जैसीं ॥ १२ ॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधं ॥
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमं ॥ १४ ॥

तैसि यथालक्षणें । आइका पां कर्मकारणें ।
तरि देह हें मीं हणें । पहिलें एथ ॥ १३ ॥
ययातें अधिष्ठान ऐसें । ह्यणिजे तें यया दोसें ।
जें स्वभोग्येंसीं वसे । भोक्ता एथ ॥ १४ ॥
इंद्रियांचा दाहिं हातिं । जचौनि दिवसें राती ।
मुखदुःखें प्रकृती । जोडिजति जियें ॥ १५ ॥
तियें भोगावेया पुरुषा । आनु ठावो नाहिं चि देखां ।
ह्यणौनि अनुष्ठानभाषा । बोलिजे देह ॥ १६ ॥
हें चोवीसां हिं तत्वांचें । कुटुंबघर वसतिचें ।
तूटे बंधमोक्षाचें । गूंतलें एथ ॥ १७ ॥

किंबहुना अवस्थात्रया । अधिष्ठान धनंजया ।
 ह्यणौनि देहा एया । हें चि नावं ॥ १८ ॥
 आणि कर्ता जें दूजें । कर्माचें कारण जाणजे ।
 प्रतिबिंब ह्यणजे । चैतन्याचें जें ॥ १९ ॥
 आकाश चि वरिखे नीर । तेथ तलहाटीं बांधे नाडर ।
 मग बिंबौनि तदाकार । होये जेवि ॥ ३२० ॥
 कां निद्राभरें बहुवें । राया आपणपें ठाउवें नव्हे ।
 मग स्वप्निचां माये । रंकपर्णीं कां ॥ २१ ॥
 तैसें आपुलेनि विसरें । चैतन्य चि देहाकारें ।
 आभासौनि आविष्करे । देहपणें जें ॥ २२ ॥
 जेया विचाराचां देशीं । प्रसिद्धी गा जीउ ऐसी ।
 जेणें भाक केली देहेंसीं । आघवां विषीं ॥ २३ ॥
 पै प्रकृति करी कर्म । तो मियां केलीं ह्यणे भ्रम ।
 एथ कर्ता एणें नामें । बोलिजे जीउ ॥ २४ ॥
 मग पातेयाचां केंसीं । एकी चि उठी दीठि जैसी ।
 मोकळी चवरी ऐसी । चिरिवं गमे ॥ २५ ॥
 कां घरा आंतु एकु । दीपाचा अवलोकु ।
 गवाक्षी भेदें अनेकु । आवडे जेवि ॥ २६ ॥
 तेवि बुद्धिचें एक जाणणें । श्रोत्रादिभेदें एणें ।
 बाहिरि इंद्रियपणें । फांके जें कां ॥ २७ ॥
 तें पृथग्विध करण । कर्माचें यया कारण ।
 तिसरें गा जाण । नृपनंदना ॥ २८ ॥
 आणि पूर्वपश्चिमवाहाणी । निगालेयां वोवांचिया मिलणीं ।
 होये नदीनदपाणी । एक चि जेवि ॥ २९ ॥
 कां एकाएकू चि पुरुषु जैसा । अनुव्रत नवां रसां ।
 नवविधु ऐसा । आवडों लागे ३३० ॥

तैसी चि क्रियाशक्ति पवनी । असे जे अनुपायनी ।
 ते पडिली नाना स्थानी । नाना होए ॥ ३१ ॥
 जें वाचे करी एणें । तें तें चि होये बोलणें ।
 हाता आली घेणें । देणें होए ॥ ३२ ॥
 आगा चरणाचां ठांड । तरि गति ते चि पाइं ।
 अधोद्वारीं दोहीं । क्षरण ते चि ॥ ३३ ॥
 कंदौनि कां हृदय वेन्हीं । प्राणायामाचीं उजिरी ।
 करितां ते चि शरीरीं । प्राणु हाणिपे ॥ ३४ ॥
 मग ऊर्ध्वचिया रिगिनिगा । पुडुतीं ते चि शक्ति पैं गा ।
 उदानु ऐसिया लिंगा । पात्र जाली ॥ ३५ ॥
 अधोरंध्राचेनि वाहें । अपानु हें नावं लाहे ।
 व्यापकपणें होये । व्यानु ते चि ॥ ३६ ॥
 आरोगिलेन रसें । शरीर भरी सरिसें ।
 नाभि न संडितां असे । सर्वसंधी ॥ ३७ ॥
 ऐसिया इया राहाटी । मग ते चि क्रिया पाठीं ।
 समानु ऐसें किरीटी । बोलिजे गा ॥ ३८ ॥
 आणि जांभै सीक ढेंकरु । ऐसेसा होंत व्यापारु ।
 नाग कूर्मु कृकरु । इत्यादि होए ॥ ३९ ॥
 एवं वायुची हे चेष्टा । एकी चि परीं सूभटा ।
 वर्त्ततां पालटा । एतसे जे ॥ ४० ॥
 ते भेदली वृत्तिपथें । वायुक्रिया गा एथें ।
 कर्मकारण चौथें । ऐसें जाण ॥ ४१ ॥
 आणि रतु बरवा शारदु । शारदिं पुडुतीं चंद्रु ।
 चंद्रिं जैसा संबंधु । पूर्णिमेचा तो ॥ ४२ ॥
 कां वसंति बरवा आरामु । आरामिं प्रियसंगमु ।
 संगमिं आगमु । उपचारांचा ॥ ४३ ॥

नाना कमलीं पांडवा । विकाशु जैसा बरवा ।
 विकाशीं यावा । परागांचा ॥ ४४ ॥
 वाचे बरवें कवित्व । कविर्त्वीं बरवें रसिकत्व ।
 रसिकर्त्वीं हि परतत्व । स्पर्श जैसा ॥ ४५ ॥
 तैसी सर्ववृत्तिवैभविं । बुद्धी चि येकली बरवी ।
 बुद्धि ही बरव नवी । इंद्रियप्रौढी ॥ ४६ ॥
 इंद्रियप्रौढीमंडला । शृंगारु एकु चि लीला ।
 जें अधिष्ठात्रियांचा मेला । देवांचा जो ॥ ४७ ॥
 ह्यणौनि चक्षुरादिकिं दाहें । इंद्रियपीठीं सानुप्रहें ।
 सूर्यादिकां कां आहे । सुरांचे वृंद ॥ ४८ ॥
 तें देववृंद बरवें । कर्मकारण पांचवें ।
 अर्जुना एथ जाणावें । देवो ह्यणति ॥ ४९ ॥
 एवं माने तूझी आयाणि । तैसी कर्मजातांचि हे खाणी ।
 पंचविध आकरणीं । निरोपिणी ॥ ३५० ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ॥

न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः ॥ १५ ॥

आतां हे चि खाणि वाढे । मग कर्माची सृष्टि घडे ।
 जिहिं ते हेतु उघडे । दाउं पांचें ॥ ५१ ॥
 तारि अवसांत आली माधवी । हेतु होये नवी पालवीं ।
 पालवीं पुष्पपुंजु दावी । पुष्प फलातें ॥ ५२ ॥
 कां वारिषिया आणजे मेघु । मेघीं वृष्टिप्रसंगु ।
 वृष्टी तव भोगु । सस्यसुखाचा ॥ ५३ ॥
 नाना प्राची अरुणातें विये । अरुणें सूर्योदयो होये ।
 सूर्यें सकल पाहे । दिवो जैसा ॥ ५४ ॥
 तैसें मन हेतु पांडवा । होये कर्मसंकल्पभावा ।
 तो संकल्प लावी दीवा । वाचेचा गा ॥ ५५ ॥

मग वाचेचा तो दिवटा । दावी कृत्यजाताचिया वाटा ।
 तेन्हां कर्ता रिगे कामठां । कर्तुत्वाचां ॥ ५६ ॥
 तेथ शरीरादिदलवाडें । शरीरादिहेतु घडे ।
 जैसें लोहकर्म लोखंडें । निर्वालिजे ॥ ५७ ॥
 कां तांथुवाचा ताणा । तांथु घालितां वोडरणा ।
 तंतुमय चि विचक्षणा । होये पटु ॥ ५८ ॥
 तैसें मनावाचे देहाचें । कर्म मनादि हेतु रचे ।
 रत्नीं घडे रत्नाचें । दलवाडें जेवि ॥ ५९ ॥
 एथ शरीरादिकें कारणें । तें चि हेतु केवि हें कोणें ।
 आक्षेपिजे तरि तेणें । अवधारिजे ॥ ६० ॥
 आइकें सूर्याचेया प्रकाशा । हेतुकारण सूर्यो चि जैसा ।
 कां ऊंसाचें काडें ऊंसा । वाढी हेतू ॥ ६१ ॥
 नाना वाग्देवता वानावी । तें वाचा चि लागे कामवावी ।
 कां वेदा वेदें चि बोलावी । प्रतिष्ठा जे ॥ ६२ ॥
 तैसि कर्मा शरीरादिकें । कारण हें किर ठाउकें ।
 परि हें चि हेतु न चुके । हें इं एथ ॥ ६३ ॥
 आणि देहादिकि कारणि । देहादिहेतु मिळणीं ।
 होये जेयां उभारणीं । कर्मजातां ॥ ६४ ॥
 तें शास्त्रार्थे मानिलेयां । मार्गानुसारें धनंजया ।
 तरि न्याऊ तो न्याया । हेतु होए ॥ ६५ ॥
 जैसा पर्जन्योदकाचा लोटु । विपायें धरी सालिचा पाटु ।
 जन्हि जिरे परि अचाटु । उपेगु आथि ॥ ६६ ॥
 कां रोसें निगालें अवचटें । पडिलें द्वारकेचिये वाटे ।
 तें सीणे तन्हीं मुनाटें । न वचती पदें ॥ ६७ ॥
 तैसें हेतुकारण मेलें । उठी कर्म आंधलें ।
 तें शास्त्रांचे लाहे डोले । तें न्याय हाणिपे ॥ ६८ ॥

ना दूध वाढिता ठाउं न पवे । तवं उलंडौनि जाये स्वभावें ।
 तोही वेचु परि नोहे । वेचलें तें ॥ ६९ ॥
 तैसें शास्त्रसाहें विण । केलें नोहे अकारण ।
 तरि लंगो पां नागवण । दानलेखि ॥ ३७० ॥
 आगा बावना वर्णां परौता । कोण्हीं मंत्रु आहे पांडुसुता ।
 कां बावना हिं नुच्चारितां । जीउ आधि ॥ ७१ ॥
 परि मंत्राची कडसणी । जवं नेणिजे कोदंडपाणी ।
 तवं उच्चारफल वाणी । न पवे जेवि ॥ ७२ ॥
 तेवि कारणहेतुयोगें । जें बीसाट कर्म निगे ।
 तें शास्त्रांचिये न लगे । कसे जवं ॥ ७३ ॥
 कर्म होंतसे तेव्हां इं । परि होणे नव्हे पाहिं ।
 तो अन्याउं गा अन्याइं । हेतु जाणावा ॥ ७४ ॥
 एवं पंचकारणका कर्मा । पांच ही हेतु हे सुवर्मा ।
 आतां पाहे पां आत्मा । सांपडला असे ॥ ७५ ॥

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ॥

पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

भानु नोहुनि रूपें जैसीं । चक्षुरूपातें कां प्रकाशी ।
 आत्मा नोहूनि कर्म तैसीं । प्रकटित असे ॥ ७६ ॥
 पै प्रतिबिंब आरिसा । दोन्हीं नोहुनि वीरेषा ।
 दोहीतें प्रकाशी जैसा । निहाळिता तो ॥ ७७ ॥
 कां अहोरात्र हें सविता । नोहुनि करी पांडुसुता ।
 तैसा आत्मा कर्मकर्त्ता । नोहोतु दीवी ॥ ७८ ॥
 तरि देहाअहंमानभूली । जेयाची बुद्धि देह आतली ।
 जेया आत्मविषीं जाली । मध्यमरात्रि ॥ ७९ ॥
 जेणें चैतन्या ईश्वरा ब्रह्मा । देह चि केलें परम सीमा ।
 तेया आत्मा कर्त्ता हे प्रेमा । आलोठ उपजे ॥ ३८० ॥

जें आत्मा मी कर्मातीतु । सर्वकर्मा साक्षिभूतु ।
 हे आपुली कहीं मातु । नाइके चि ॥ ८१ ॥
 ह्यणौनि उमपा आत्मेयांतें । देह वरि मवी यथें ।
 विचित्र काइ रात्रि देहातें । डुडुल करी ॥ ८२ ॥
 पै जेणें आकाशाचा कहि । साच सूर्यो देखिला नाहि ।
 तो थिलरिचें बिंब काई । मानूं न व्हाए ॥ ८३ ॥
 थिलराचेनि जालेपणें । सूर्यासि आणी होणें ।
 तेयाचां नासिं नासणें । कपें कपु ॥ ८४ ॥
 आगा निद्रिता चेउ न ये । तवं स्वप्न साच हों व्हाए ।
 दोरी नेणतां सर्पें बिहे । विस्मो कवणु ॥ ८५ ॥
 जवं कवलु आथि डोलां । तवं चंद्रु देखावा पीवला ।
 काइ मृगीं हीं मृगजला । भावावें ना ॥ ८६ ॥
 तैसें शास्त्रागुरुचेनि नावें । जो वारा ही टेंकों नेंदी सीवें ।
 केवल मौढ्याचेनि जीवें । जियाला जो ॥ ८७ ॥
 तेणें देहात्मदृष्टिमूळें । आत्मेयां घापे देहाचें जालें ।
 जैसा अभ्रिचा वेगु कोल्हें । चंद्रीं मानी ॥ ८८ ॥
 मग तेया मानणेयां साठिं । देहवांदिसाले किरीटी ।
 कर्माचां वज्रगांठीं । कालासे तो ॥ ८९ ॥
 पाहे पां बंधभावना दृढा । नल्लिये वरि तो बापुडा ।
 काइ मोकलां हिं चवडां । न ठके चि पूसा ॥ ९० ॥
 ह्यणौनि निर्मले आत्मरूपीं । जो प्रकृतिचें केलें आरोपी ।
 तो कल्पकोडिचां मापीं । मवी कर्म ॥ ९१ ॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ॥

हत्वापि स इमां लोकान्नहंति न निवध्यते ॥ १७ ॥

आतां कर्मा माक्षि असे । परि तेयातें कर्म न स्पर्शें ।

वडवानलातें जैसें । समुद्रोदक ॥ ९२ ॥

तैसैं वेगलेपणें । जेयाचें कर्म असणें ।
 तो किर जाणावा कवणें । तन्हीं काहि सांघों ॥ ९३ ॥
 जें मुक्तातें निद्वारितां । लाभे आपुली चि मुक्ता ।
 जैसे दीसे दीपु पांतां । आपुली वस्तु ॥ ९४ ॥
 नाना आरिसा जवं उटिजे । तवं आपणेयां आपण भेटिजे ।
 कां पाणी पांतां पाणीं होइजे । लवणें जेवि ॥ ९५ ॥
 हें असो परतौनि मावौतें । प्रतिबिंब पाहे बिंबातें ।
 तवं पाहाणें जाउनि आइतें । बिंब चि उरे ॥ ९६ ॥
 तैसैं हारतलें आपण पावें । तैं संतातें पांतां गिवसावें ।
 ह्मणौनि वानावे आइकावे । ते चि सदा ॥ ९७ ॥
 तारि कर्म असौनि कर्में । जो नावरे समविषमें ।
 चर्मचक्षूचेनि चर्में । दीठि जैसी ॥ ९८ ॥
 तैसा सोडिला जो आहे । तेयाचें रूप आतां पाहे ।
 उपपत्तिची बाहे । उभूनि सांघों ॥ ९९ ॥
 तारि अविद्येचिया नीदा । विश्वस्वप्नाचा हा धांधा ।
 भोगित होंता प्रबुद्धा । अनादि जो ॥ १०० ॥
 तो महावाक्याचेनि नावें । गुरुकृपेचेनि थावें ।
 माथां हातु ठेवणें नोहे । थापटिला जैसा ॥ १ ॥
 तैसी विश्वस्वप्नेति माया । नीद सांडौनि धनंजया ।
 सहसा चेइला अद्रया— । नंदपणें जो ॥ २ ॥
 तेधवां मृगजलाचे पूर । दीसति एक निरंतर ।
 हारपति कां चंद्रकर । फांकतां जैसे ॥ ३ ॥
 कां बालकत्व निगौनि जाए । तैं वागुला नाहिं त्राए ।
 पै जलालेयां इंधन नोहे । इंधन जेवि ॥ ४ ॥
 नाना चेअ आलेयां पाठीं । तें स्वप्न न दिसे दीठीं ।
 तैसैं अहंमय ना किरीठीं । नूरे चि तेया ॥ ५ ॥

मग सूर्यु आंधारा लागि । रिगो पां भलेतिये सुरंगीं ।
परि तो तेयाचां भागीं । नाहीं चि जैसा ॥ ६ ॥
तैसा आत्मतत्त्वं वेठला होए । तो जेया जेया दृश्यातें पाहे ।
तें दृश्य द्रष्टेनासिं होत जाये । तेयाचें चि रूप ॥ ७ ॥
जैसा वन्हि जेया लागे । तें वन्ही चि जालें आंगें ।
दाहदाहकविभागें । सांडिजे तें ॥ ८ ॥
तैसा कर्माकारा दूजेया । तो करितेपणांचा आत्मेया ।
अवल्हाॐ ये तो गेलेयां । काहिं उरे ॥ ९ ॥
तिये आत्मस्थितिचा जो राॐ । तो मग जाणे देहिं इये ठावो ।
काइ प्रलयांबुचा उमाहो । बोधु मानी ॥ ११० ॥
तैसी ते पूर्णा अहंता । कां देहपणें पांडुसुता ।
आवरे काइ सविता । बिंवे धरिला ॥ ११ ॥
पैं मथूनि लोणीं घेपे । तें मावौतें ताकीं घापे ।
तरि तेयाचें पण सिंपे । तेंचि काइ ॥ १२ ॥
नाना काष्टीनि वीरेषा । वेगलविलेयां हुताशा ।
राहे काष्टाचेया मांदुसा । कोंडलेपणें ॥ १३ ॥
कां रात्रिचेया पोटा आंतु । रिगाला जो कां भास्वतु ।
तो रात्रि ऐसी मातु । आइके काइ ॥ १४ ॥
तैसैं वेद्यवेदकपणेंसिं । पडिलें जेयाचां प्रांसिं ।
तेया देह मीं हे ऐसी । अहंता कैची ॥ १५ ॥
आणि आकाशें जेथजेथौनि । जावें तेथ असे भरौनि ।
ह्यणौनि ठेलें कां अडौनि । आपें आप ॥ १६ ॥
तैसैं जें तेंचें करावें । तें तो चि आहे स्वभावें ।
मा कोंणहीं कामिं वेठावें । कर्तेपणें ॥ १७ ॥
नूरे चि गगनाचा ठाॐ । नव्हे चि समुद्रीं वाहो ।
नूठी चि धुत्रा जावों । तैसैं जालें ॥ १८ ॥

ऐसेनि अहंकृतीभावो । जेयाचां बोधि जाला वा३० ।
 तन्हीं देहा जवं निर्वाहो । तवं आधि कर्म ॥ १९ ॥
 आगा वारा जन्हीं वाजों सरे । तन्हीं तो डोलु रूखीं उरे ।
 कां सेंदे द्रुति राहे कापुरें । वेचलेनि हीं ॥ ४२० ॥
 सरलेयां गीताचा समारंभु । न वचे राहलेपणाचा सोभु ।
 भुइं लोलौनि गेलें अंभु । बोल थारे ॥ २१ ॥
 आगा मावललें हीं अकें । संध्येचिये भूमिके ।
 ज्योति दीप्ति कवतिकें । दीसे जेवि ॥ २२ ॥
 पैं लक्ष भेदिलयां हिं वरि । सरु धांवे चि तवं वेन्हीं ।
 जवं आहे उजिरी । बलाची ते ॥ २३ ॥
 नाना चांकिं भाडें जालें । तें कुंभारें परीतें नेलें ।
 तन्हीं भवे चि तें मागिलें । भवंडिलेपणें ॥ २४ ॥
 तैसां देहाभिमानु गेलेयां । देह जेणें स्वभावें धनंजया ।
 जालें तो आपैसेया । चेष्टवी चि तें ॥ २५ ॥
 संकल्पें विण स्वप्न । न लवितां दांगिचें वन ।
 न रचितां गंधर्वमुवन । उठी जैसें ॥ २६ ॥
 आत्मेयांचेन उद्यमें विण । तैसें देहादिपंचकारण ।
 होये आपणेयां आपण । क्रियाजात ॥ २७ ॥
 पैं प्राचीनसंस्कारशेषें । पांचै कारणें सहेतुकें ।
 कामविजति गा अनेकें । कर्माकारें ॥ २८ ॥
 तेया कर्मा माक्षि मग । संहारो आधर्वें जग ।
 अथवा नवें चांग । आन करवो ॥ २९ ॥
 परि कुमुद कैसें सूके । कैसें तें कमल फांके ।
 यें दान्हीं रवी न देखे । जिया परीं ॥ ४३० ॥
 कां वीजु वरिखौनि अमाळ । ठिकारिया आंतौनि भुतळ ।
 अथवा करू साडुळ । प्रसन्ना वृष्टी ॥ ३१ ॥

परि तेषां दोहींतें जैसें । नेणजे कां आकाशें ।
 तैसा चि देहीं जो असे । विदेहदृष्टी ॥ ३२ ॥
 तो देहादिकिं चेष्टी । घडतां मोडतां हिं सृष्टी ।
 न देखे स्वप्न किरीटी । चेइला जैसा ॥ ३३ ॥
 यन्हविं चामाचे डोले वेन्हीं । जे देखति देहधारी ।
 तें किर तो व्यापारीं । ऐसें चि मानीति ॥ ३४ ॥
 काइ तणाचा वाउला । जो आगरा मेरे ठेविला ।
 तो साचू चि राखता कोल्हां । मानिजे नां ॥ ३५ ॥
 पिंसेया नेसलें नागिवें । हें लोकिं येउनि जाणावें ।
 टाणौरियाचे मवाचे । आणिकिं घाये ॥ ३६ ॥
 कां महासतीयेचे भोग । देखे किर आघवें जग ।
 परि ते आगि ना आंग । ना लोकु देखे ॥ ३७ ॥
 तैसा स्वस्वरूपें उठिला । जो दृश्येंसिं द्रष्टा आटला ।
 तो नेणे काइ राहाटला । इंद्रियप्राप्तु ॥ ३८ ॥
 आगा थोरों कळोलीं साने । लोपतां तिरिचेनि जनें ।
 एकिं एक गीलिलें हें मनें । मानिजे जन्हीं ॥ ३९ ॥
 तन्हीं पाणियां कडे पाहिं । कोणहीं गीलिजतसे काइ ।
 तैसें पूर्णां दूजे नाहिं । जें तो मारी ॥ ४० ॥
 सोनेयांची कां चंद्रिका । सुवर्णसूळें चि देखां ।
 सोनेयांचिया महिषा । नाशु केला ॥ ४१ ॥
 तो देवळविसेंया कडां । व्यवहार गमला फुडा ।
 वांचौनि सूळ महिषु चामुंडा । सोनें चि असे ॥ ४२ ॥
 पै चित्रिचें पाणी हुताशु । तो दीटी चि भागु आभासु ।
 पटिं आगि ना बोल्हासु । दोन्ही नाहिं ॥ ४३ ॥
 मुक्ताचें देह तैसें । हालत संस्कारवसें ।
 देखौनि लोक पीसे । कर्त्ता हणती ॥ ४४ ॥

आणि तेया करणेयां आंतु । घडे तिहिं लोकां घातु ।
 परि तेणें केला हे मातु । बोलें नैए ॥ ४५ ॥
 तवं आंधारु चि देखावा तेजें । मा तें फेडि हें केवि बोलिजे ।
 तैसें ज्ञानियां नाहिं दूजें । करीळ काई ॥ ४६ ॥
 ह्यणौनि तेयाची बुद्धि । नेणे पापपुण्याची गंधि ।
 गंगा मीनलेयां नदी । विटालु जैसा ॥ ४७ ॥
 आगी आगि लागलेयां । काहिं पोले धनंजया ।
 किं शस्त्र रूपें आपणेयां । आपणचि काइ ॥ ४८ ॥
 तैसें आपणपेयां परौतें । जो नेणे क्रियाजातातें ।
 तेथ काइ लिंपधी बुद्धितें । तेयाचिये ॥ ४९ ॥
 ह्यणौनि कार्यकर्त्ताक्रिया । हें स्वरूप चि जालें जेया ।
 नाहिं शरीरादिकि तेया । कर्मबंधु ॥ ४५० ॥
 जें कर्त्ता जीउ विदाणी । काढौनि पांचै खाणी ।
 घडीत आहे करणी । आउतीं दाहें ॥ ५१ ॥
 तेथ न्याउ आणि अन्याउ । हा द्विविधु साधुनि आवो ।
 उभितां न लवी ठेउ । कर्मभुवनें ॥ ५२ ॥
 या थोराडा किर कामां । विरजा नोहे का आत्मां ।
 परि ह्यणसी हान उपक्रमां । हातु लावी ॥ ५३ ॥
 तो साक्षी चिद्रूप । कर्मप्रवृत्तिचा संकल्पु ।
 उठी तो कां निरोपु । आपण चि दे ॥ ५४ ॥
 तारि कर्मप्रवृत्ती ही लागि । तेया आयासु नाहिं आगीं ।
 जे प्रवृत्तिचे उलगीं । लोक चि आथि ॥ ५५ ॥
 ह्यणौनि आत्मेयाचें केवल । जो रूप चि जाला निर्मल ।
 तेया नाहिं बंदिसाल । कर्माची हे ॥ ५६ ॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ॥

करणं कर्म कर्त्तैति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

परि अज्ञानाचां पटीं । अन्यथाज्ञानाचें चित्र उठी ।
 तेथ चि तारणी हे त्रिपुटी । प्रसिद्ध जे ॥ ५७ ॥
 तें चि ज्ञाताज्ञानज्ञेय । हें जें जगाचें बीजत्रय ।
 तें कर्मा चि निसंदेह । प्रवृत्ति जाण ॥ ५८ ॥
 आतां या चि गा त्रया । व्यक्ती वेगळालिया ।
 आइकें धनंजया । करूं रूप ॥ ५९ ॥
 तरि जीवसूर्याबिंबिचे । जे रश्मि श्रोत्रादिकि पांचें ।
 धावौनि विषयपद्माचे । फोडिति मढ ॥ ४६० ॥
 कां जीवनृपाचे उपलणे । घेउनि इंद्रियाचि केंकाणें ।
 विषयदेशिचिये नागवणे । आणिती जे ॥ ६१ ॥
 हें असो इंद्रिय राहाटे । जें सुखदुःखासीं जीवा भेटे ।
 ते सुष्ठुप्तिकालीं वावाटे । जेथ ज्ञान ॥ ६२ ॥
 तेया जीवा नावं ज्ञाता । आणि हें जें सांघितलें आतां ।
 तें चि एथ पांडुमुता । ज्ञान जाण ॥ ६३ ॥
 जें अविद्येचिये पोटीं । उपजत खेउ किरिटी ।
 आपणेयांतें वांटी । तिहिं ठांड ॥ ६४ ॥
 आपुलिये धावे पुढां । घाल्नि ज्ञेयाचा गुढा ।
 उभारी मागिला कडां । ज्ञातुत्वातें ॥ ६५ ॥
 ज्ञातेया ज्ञेया दोवां । तो नांदुणुकेचा बणा ।
 माजि जालेनि पै गा । वृहे जेणें ॥ ६६ ॥
 टाकूनि ज्ञेयाची सीवं । पुरे जेयाची धावं ।
 सकलपदार्थां नावं । सूतसे जे ॥ ६७ ॥
 तें गा सामान्यज्ञान । एथ नाहिं आन ।
 ज्ञेयाचें हिं चिन्ह । आइक आतां ॥ ६८ ॥
 तरि शब्दस्पर्शु । रूपगंधरसु ।
 हा पंचविध आभामु । ज्ञेयाचा जो ॥ ६९ ॥

जैसें एकें चि चुतफलें । इंद्रियां वेगलवेगलें ।
 रसें वणें परिमलें । भेटिजे स्पशें ॥ ४७० ॥
 तैसें ज्ञेय तारि एकसरें । परि ज्ञान इंद्रियद्वारें ।
 घे ह्यणौनि प्रकारें । पांचें जालें ॥ ७१ ॥
 आणि समुद्रौं बोघांचें जाणें । सरे लाणी पासिं धावणें ।
 कां फलें सरे वाढणें । सस्याचें जेवि ॥ ७२ ॥
 तेवि इंद्रियांचां वाटीं । धावं तेया ज्ञानासि जेथ ठी ।
 होये तें गा किरीटी । विषयज्ञेय ॥ ७३ ॥
 एवं ज्ञातेया ज्ञाना ज्ञेया । तिहिं रूप केलें धनंजया ।
 ते हे त्रिविध सर्वक्रिया— । प्रवृत्ति जाण ॥ ७४ ॥
 जें शब्दादिविषय । हें पंचविध ज्ञेय ।
 तें चि प्रिय कां अप्रिय । एकी परिचें ॥ ७५ ॥
 ज्ञान मोटकें ज्ञातेया । डावी ना जवं धनंजया ।
 तवं स्वीकारा कां त्यजावेया । प्रवर्ते चि तो ॥ ७६ ॥
 परि मीनातें देखौनि बकु । जैसा निधानातें रंकु ।
 कां स्त्री देखौनि कामिकु । प्रवृत्ति धरी ॥ ७७ ॥
 जैसें खोलां धांवे पाणी । भवंरु फुलाचिये वाहाणी ।
 नाना सूटला सांजवणी । वत्सू चि पां ॥ ७८ ॥
 आगा स्वर्गिची उर्वशी । आइकौनि जेवि माणुसिं ।
 वरता लागति आकाशीं । यागाचिया ॥ ७९ ॥
 पै पारिवा जैसा किरीटी । चडला नभाचिये पोटीं ।
 पारिवी देखौनि लोटी । आंग सगलें ॥ ४८० ॥
 हें ना धनगर्जिता सरिसा । मोरु बोवांडे आकाशा ।
 ज्ञाता ज्ञेय देखौनि तैसा । धावं चि घे ॥ ८१ ॥
 ह्यणौनि ज्ञानज्ञेयज्ञाता । हें त्रिविध गा पांडुमुता ।
 होये चि कर्मा समस्तां । प्रवृत्ति एथ ॥ ८२ ॥

तारि तें चि ज्ञेय विपायें । जरि ज्ञातेयाचें प्रिय होये ।
 तरि भोगावेया न साहे । क्षणु हिं भरि ॥ ८३ ॥
 नातरि अवचटे । तें वीरू होउनि भेटे ।
 तरि युगांत वाटे । सोडावेया ॥ ८४ ॥
 व्याला कां हारा । वरिपडा जालेयां नरा ।
 हरिखु आणि दरारा । सरिसा चि उठी ॥ ८५ ॥
 तैसें ज्ञेयें प्रियाप्रियें । देखौनि ज्ञातेया होये ।
 मग त्याग स्वीकारीं वाहे । व्यापारतें ॥ ८६ ॥
 तेथ रागीं प्रतिमळाचां । गोसांविं सर्वदलाचा ।
 रथु सांडूनि पायांचा । होये जैसा ॥ ८७ ॥
 तैसें ज्ञातेपण जें असे । तें ए कर्त्ता ऐसिये दशे ।
 जेवितें बैठलें जैसें । रंधन करु ॥ ८८ ॥
 कां भवरें चि केला मला । वोरकळू चि जाला आंकसाला ।
 नाना दे३ रिगाला देउला— । चेया कामां ॥ ८९ ॥
 तैसा ज्ञेयाचिया हावां । ज्ञाता इंद्रियांचा मेळावा ।
 राहाटवी तेथ पांडवा । कर्त्ता होए ॥ ९० ॥
 आणि आपण चि होउनि कर्त्ता । ज्ञाना आणी करणता ।
 तेथ ज्ञेय चि स्वभावता । कार्य होये ॥ ९१ ॥
 ऐसा ज्ञानाचिया युगुती । पालटु पडे गा सुमती ।
 डोलेयांची शोभा राती । पालटे जैसी ॥ ९२ ॥
 कां अदृष्ट जालेयां उदासु । पालटे श्रीमंतांचा उल्हासु ।
 पुनिवे पाठीं शीतांशु । पालटे जैसा ॥ ९३ ॥
 तैसें चालितां करणें । ज्ञाता वेठिजे कर्त्तेपणें ।
 तेथिचीं हीं लक्षणें । आइक आतां ॥ ९४ ॥
 तरि बुद्धि आणि मन । चित्त अहंकार हान ।
 हे चतुर्विध चिन्ह । अंतःकरणेचें ॥ ९५ ॥

बाहीरि त्वचा श्रवण । चक्षु रसना घ्राण ।
 हें पंचविध जाण । ज्ञानेन्द्रिय गा ॥ ९६ ॥
 तेथ आंतुलें तवं करणें । कर्ता कर्तव्याचे उमाणें ।
 मग तें चि जरि जाणे । मुखा येतां ॥ ९७ ॥
 तरि बाहिरिलें तियें हीं । चक्षुरादिके दाही ।
 उठूनियां लवलाहीं । व्यापारा सुए ॥ ९८ ॥
 मग तो इंद्रियकदंबु । करविजे तवं रात्रु ।
 जवं कर्तव्याचा लामु । हातासि ए ॥ ९९ ॥
 . नातरि कर्तव्य जरि दुःखें । फलैल हान ऐसें देखे ।
 तरि लावी त्यांगमुखें । तियें चि दाही ॥ ५०० ॥
 मग फांटे दुःखाचा ठाऊ । तवं राहाटवी रातिदिऊ ।
 विकणु आतें राऊ । जिया परीं ॥ १ ॥
 तैसेनि त्यागस्वीकारीं । वाहातां इंद्रियाचां धुरीं ।
 ज्ञातेयातें अवधारीं । कर्ता ह्यणिपे ॥ २ ॥
 आणि कर्तेयाचां सर्वकर्मीं । आउतांचिया परी क्षमी ।
 ह्यणौनि इंद्रियातें आर्हा । करणें ह्यणों ॥ ३ ॥
 आणि हें चि करण वेरी । कर्ता क्रिया जे उभारी ।
 तिया व्यापे तें अवधारीं । कर्म एथ ॥ ४ ॥
 सोनाराचिया बुद्धी लेणें । व्यापे चंद्रकरीं चांदिणें ।
 कां वेल्हाळपणें । वेळि जैसा ॥ ५ ॥
 नाना प्रभा व्यापे प्रकाशु । गोडिया इशुरसु ।
 हें असो अवकाशु । आकाशें जैसा ॥ ६ ॥
 तैसें कर्तेयाचिया क्रिया । व्यापलें जें धनंजया ।
 तें कर्म गा बोलावेया । नाहीं आन ॥ ७ ॥
 एवं कर्ताकर्मकरण । इयां तिहिंचें हें लक्षण ।
 दाविलें तुज विचक्षण— । शिरोमणी ॥ ८ ॥

ज्ञानं कर्म च कर्त्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ॥
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छुणु तान्यपि ॥

एथ ज्ञाताज्ञानज्ञेय । हें कर्माचें प्रवृत्तित्रय ।
तैसें चि कर्त्ताकरणकार्य । हा कर्मसंचयो ॥ ९ ॥
विहिं वेठला ऐसा धर्मु । आथि बीजिं जेवि द्रुमु ।
कां मनीं जोडे कामु । सदा जैसा ॥ ५१० ॥
तैसें कर्त्ताक्रियाकरणीं । कर्माचें असे जितवणी ।
सोनें जैसें खाणी । सोनेयांचिये ॥ ११ ॥
हणौनि हें कार्य मीं कर्त्ता । ऐसें आथि जेथ पांडुसुता ।
तेथ आत्मा दूरिं समस्तां । क्रियां पार्सी ॥ १२ ॥
या लागि पुडुतीं । आत्मा वेगला चि सुमती ।
आणि असो हें केती । जाणतासि तूं ॥ १३ ॥
परि सांधितलें जें ज्ञान । कर्म हें कर्त्ता हान ।
तें तिहिं ठांडिं भिन्न । गुणीं आथि ॥ १४ ॥
हणौनि ज्ञानकर्मकर्त्तेया । पांती एउ न ये धनंजया ।
जें दोनि बांधति सोडावेया । एक चि प्रौढ ॥ १५ ॥
तें सात्विक होआवें ठाउवें । गुणभेदु सांघों पाहे ।
जो सांख्यशास्त्रि आहे । उवाइला ॥ १६ ॥
जें विचारा क्षीरसमुद्रु । स्वबोधकुमुदिनीचंद्रु ।
ज्ञानडोळसां नरेद्रु । शास्त्रांचें जें ॥ १७ ॥
किं प्रकृतिपुरुषें दोन्हीं । मिसलीं दिवोरजनी ।
तिर्यें निवडितां त्रिभुवर्नी । मार्तंड जें ॥ १८ ॥
जेथ अपारमोहरासी । तत्वाचां मापीं चौविसीं ।
उमाणें घेउनि परेसीं । सुरवाडिजे ॥ १९ ॥
अर्जुना तें सांख्यशास्त्र । पढे जेयाचें स्तोत्र ।
तें गुणभेदविचित्र । ऐसें आहे ॥ ५२० ॥

जें आपुलेनि अंगिकें । त्रिविधपणाचेनि अंकें
 दृश्यजात तेतुकें । अंकित केलें ॥ २१ ॥
 एयां सत्वरजतमां । तिहिं एवडी असे महिमा ।
 जें त्रिविध आदिब्रह्मा । अतिक्रमां ॥ २२ ॥
 परि विश्विची आघवी मांदी । जेणें भेदलेनि गुणभेदी ।
 पडिली तें तवं आदीं । ज्ञान सांघों ॥ २३ ॥
 जें दीठी जर चोख कीजे । तरि भलेतें चोख चि सुझे ।
 तैसें ज्ञानें शुद्धें लाहिजे । सवें शुद्ध ॥ २४ ॥
 ह्यगौनि तें सात्त्विकज्ञान । आतां सांघों दे अवधान ।
 कैवल्यगुणनिधान । श्रीकृष्ण ह्यणे ॥ २५ ॥
 सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ॥
 अविभक्तं विभक्तेषु तच्छानं विद्धि सात्त्विकं ॥ २० ॥
 तरि अर्जुना गा तें फुडें । सात्त्विकज्ञान चोखडें ।
 जेयाचां उदईं ज्ञेय बुडे । ज्ञातेनसिं ॥ २६ ॥
 जैसा सूर्यो नेदखे आंधारें । सरिता नेणजति सागरें ।
 कां कवलियां न धरे । आत्मछाया ॥ २७ ॥
 तिया परीं जिया ज्ञाना । शिवादि तृणावसाना ।
 इया भूतव्यक्ती भिन्ना । नाडलति ॥ २८ ॥
 जैसें हातें चित्र पांतां । होये पाणियें मीठ धूंतां ।
 कां चेउनि स्वप्ना येतां । जैसें होये ॥ २९ ॥
 तैसें ज्ञानें एणें । करितां ज्ञातव्याचें पाहाणें ।
 न जाणतां न जाणणें । जाणावें उरे ॥ ५३० ॥
 पै सोनें आटौनि लेणीं । न कढीति आपुलेया आणी ।
 कां तरंग न घेपति पाणीं । गाढनि जैसें ॥ ३१ ॥
 तैसी ज्ञेयाज्ञानाचेया हाता । न लगे हे दृश्यपथा ।
 तें ज्ञान जाण सर्वथा । सात्त्विक गा ॥ ३२ ॥

आरिसा पाॐ जातां कोडें । जैसे पातें चि रिषे पुढें ।
 तैसें ज्ञेय लोट्टनि पडे । ज्ञाता चि जें ॥ ३३ ॥
 पुढुती तें चि सात्विकज्ञान । जें मोक्षलक्ष्मीचें भुवन ।
 हें असो आइकें चिन्ह । राजसाचें ॥ ३४ ॥

पृथक्त्वेन तु यद्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ॥
 वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तद्ज्ञानं विद्धि राजसं ॥ २१ ॥

परि पार्था परियस । तें ज्ञान राजस ।
 जें भेदाची कास । धरुनि चाले ॥ ३५ ॥
 विचित्रता भूतांचिया । आपण आंतूनि ठीकरीया ।
 बद्दुचकै ज्ञातेया । आणिली जेणें ॥ ३६ ॥
 जैसें साचा रूपा आड । घालुनि विसराचें कवाड ।
 मग स्वप्निचें काबाड । वोडरी निद्रा ॥ ३७ ॥
 तैसें स्वज्ञानाचिये पौली । बाहिरि मिथ्याचां महाखेलीं ।
 तिहि अवस्थांचिया बाहाली । दावी जें जीवा ॥ ३८ ॥
 अलंकारपणें झांकलें । बोला सोनें कां वायां गेलें ।
 तैसें नामरूपि दुराविलें । अद्वैत जेया ॥ ३९ ॥
 अवतरली गाडुवां घडां । पृथ्वी अनोलख जाली मूढां ।
 वनिह होउनि टेला कानवडा । दीपा साठि ॥ ५४० ॥
 कां वस्त्रपणाचेनि आटोपें । मूर्खां प्रति तंतु हारपे ।
 नाना मुग्धां पट्ट लपे । दाउनि चित्र ॥ ४१ ॥
 तैसी जेया ज्ञाना । जाणौ भूतव्यक्ती भिन्ना ।
 ऐक्यबोधाची वासना । निमौनि गेली ॥ ४२ ॥
 मग इंधनीं भेदला अनलु । फुला वरि परिमलु ।
 कां जलभेदें सकलु । चंद्रु जैसा ॥ ४३ ॥
 तैसे पदार्थभेद बहुवस । जाणों लाहान वेस ।
 आंतलें तें राजस । ज्ञान एथ ॥ ४४ ॥

एदत्कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्रमहैतुकं ॥
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

आतां तामसाचें लिंग । सांवेन अलख चांग ।
डावलावेया मातंग- । सदनु जैसे ॥ ४५ ॥
तारि किरीठी जें ज्ञान । हिंडे विधीचेनि वस्त्रें हीन ।
श्रुति पाठिमोरी नग्न । ह्यगौनि तेया ॥ ४६ ॥
येरिं ही शास्त्रबहिकरीं । जें निदेचे इटाल वेन्हीं ।
बोलविलेंसे डोंगरीं । म्लेंछधर्माचां ॥ ४७ ॥
जें गा ज्ञान ऐसें । गुणाग्रहें तामसें ।
घेतलें भवे पीसें । होउनियां ४८ ॥
जें सोडरिंके बंधु नेणे । पदार्थी निषेध न ह्यणे ।
निरोविलें जैसें सुणें । सुना गावीं ॥ ४९ ॥
तेया तोंडि जें नाडले । कां खातां जेणें पोले ।
तें चि एक वाले । एर घे चि ॥ ५० ॥
पें सोनें चोरितां उंदिरु । न ह्यणे थरविथरु ।
नेणे मांसखाइरु । कालें गोरें ॥ ५१ ॥
नाना बना माझि वोहिरी । कडसणी जेवि न करी ।
कां जीत मेलें न विचारी । वैसतां मासी ॥ ५२ ॥
आगा वांती वाढलेया । साजुकां कां सडिलेयां ।
विवेकु काउलेया । नाहिं जैसा ॥ ५३ ॥
तैसें निषिद्ध सांडूनि जावें । कां विहित आदरें घेयावें ।
हें विषयांचेनि नावें । नेणे चि जें ॥ ५४ ॥
जेतुलें आड पडे दीठी । तेतुलें घे विषयां साठीं ।
मग स्त्री द्रव्य वांटी । सिष्णोदरीं ॥ ५५ ॥
तीर्थ अतीर्थ हे भाषा । उदकिं ना सनोळख ।
ताहान बोले तें सुख । वांचूनियां ॥ ५६ ॥

तेया चि परीं खाद्याखाद्य । ना न ह्यणे निंद्यानिंद्य ।
 तौंडा आवडे तें मेध्य । ऐसा बोधु ॥ ५७ ॥
 आणि स्त्रीजात जेतुके । त्वर्गिन्द्रिय चि अलखे ।
 तिये विखि सोइरिके । एकु चि बंधु ॥ ५८ ॥
 पै स्वार्था जें उपकरे । तेया चि नावं सोयरे ।
 देहसंबंधु न सरे । जिये ज्ञानि ॥ ५९ ॥
 मृत्युचें आववें चिन्ह । आववें चि आगी इंधन ।
 तैसें जग चि आपुलें धन । तामसाज्ञानां ॥ ५६० ॥
 ऐसेनि विश्व सकल । जें विखा आंतुलें केवल ।
 तेया एक जाणे फल । देहभरण ॥ ६१ ॥
 आकाशपतिता नीरा । जैसा सिंधू चि एकु थारा ।
 तैसें कृत्यजाता उदरा । लागि चि बुझे ६२ ॥
 वांचूनि स्वर्ग नरक आधि । तेया हेतू प्रवृत्तिनिवृत्ति ।
 इये अघविये चि राती । जाणीवेचि ते ॥ ६३ ॥
 देहखंडा नावं आत्मा । ईश्वरु पाखाणप्रतिमां ।
 इया परौता प्रेमा । वाढों नेणे ॥ ६४ ॥
 ह्यणौनि पडिलेनि शरीरें । केलेनसि आत्मा चि सरे ।
 मा भोगावेया उरे । कोणें वेखें ॥ ६५ ॥
 ना ईश्वरु पांतां आहे । तो भोगवी हें जरि होए ।
 तरि देव चि खाए । विकूनियां ॥ ६६ ॥
 गाविंचे देउलेश्वर । न्यामक चि होंति जर ।
 तरि देशिचे डोंगर । उगे असति ॥ ६७ ॥
 ऐसा विपायें देअ मानिजे । तरि पाखाणमात्र चि जाणिजे ।
 आणि आत्मा तवं ह्यणिजे । देहासी चि ॥ ६८ ॥
 एरें पापपुण्यादिकें । तें आववें चि करुनि लटिकें ।
 हित मानी अग्निमुखें । आचरण जें कां ॥ ६९ ॥

जें चामल डोले वानिती । जें इंद्रियें गोडी लाविती ।
 तें चि साच हे प्रतीती । फुडी जेथ ॥ ५७० ॥
 किंवहुना ऐसी पार्था । वाढती देखसी आस्था ।
 धूवांचि बोलि वृथा । आकाशीं जैसी ॥ ७१ ॥
 कोरडा ना बोला । उपेगा आधि गेला ।
 तो वाढौनि मोडला । भेंडु जैसा ॥ ७२ ॥
 नाना कां उंसाचीं कणिसें । कां नपुंसकें माणसें ।
 वन लागलें जैसें । सावरीचे ॥ ७३ ॥
 नातारि बालकाचें मन । कां चोरावारिचें धन ।
 अथवा गलां स्तन । सेलियेचे ॥ ७४ ॥
 तैसें जें वायाणें । वोसल दीसे जाणणें ।
 तेयारें मीं हणें । तामसज्ञान ॥ ७५ ॥
 तें हिं ज्ञान इया भासा । बोलिजे तो भाऊ ऐसा ।
 जालंधाचा कां जैसा । डोला वाडु ॥ ७६ ॥
 कां बधिराचे नीट कान । अपेया नावं पान ।
 तैसें अडिनावं ज्ञान । तमासि तेया ॥ ७७ ॥
 हें असो केती बोलवें । तन्हीं हें ऐसें देखावें ।
 ते ज्ञान नव्हे जाणावें । डोलस तम ॥ ७८ ॥
 एवं तीन्हीं गुणी । भेदिलें यथालक्षणी ।
 ज्ञान श्रोतेशिरोमर्णा । दाविलें तुज ॥ ७९ ॥
 नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतं ॥
 अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्विकमुच्यते ॥ २३ ॥
 आतां या चि त्रिप्रकारा । ज्ञानाचेनि धनुर्द्वारा ।
 प्राकारों होंति गोचरा । कर्त्तव्या क्रिया ॥ ९८० ॥
 हणौनि कर्म पै गा । अनुसरे तिभागा ।
 मोहोरे जाळ्यां बोधा । पाणी जैसें ॥ ८१ ॥

तें चि ज्ञानत्रयवशें । त्रिविध कर्म जें असे ।
 तेथ सात्विक तवं ऐसें । परियस आदिं ॥ ८२ ॥
 तरि स्वाधिकाराचेनि मार्गें । आलें जें मानिलें आंगें ।
 पतिव्रतेचेनि परिष्वगें । प्रियातें जैसें ॥ ८३ ॥
 सावलेया आंगा चंदन । प्रमदालोचनीं अंजन ।
 तैसें अधिकांसासि मंडन । नित्यपणें जें ॥ ८४ ॥
 तें नित्यकर्म भलें । होये निमित्तिकें सावाइलें
 सोनेयांसि जोडलें । सौरभ्य जैसें ॥ ८५ ॥
 आणि आंगा जीवाची संपत्ति । वेचूनि बालाची करी पालति ।
 परि जीवनाची खंति । न पाहे माए ॥ ८६ ॥
 तैसें सर्वस्वें कर्म अनुष्ठी । परि फल न सूर दृष्टी ।
 उखिली क्रिया पैठी । ब्रह्मीं करी ॥ ८७ ॥
 आणि प्रिया आलेयां धावें । संबंधा उरों ठाकों जावें ।
 तैसें संतप्रसंगें करावें । पाहूखे जरि ॥ ८८ ॥
 तरि अकरणाचेनि खेदें । द्वेषातें जीविं न बंधें ।
 जालेयाचेनि आनेदें । फुंज नैए ॥ ८९ ॥
 ऐसिया हातवटिया । कर्म निफजे जें धनंजया ।
 जाण सात्विक तेया । गुण नाम गा ॥ ५९० ॥
 या वरि राजसाचें । लक्षण सांविजैल साचें ।
 न करि अवधानाचें । वाणेपण गा ॥ ९१ ॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ॥

क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतं ॥ २४ ॥

तरि घरिं मातापितरां । धडा बोला नाहिं संवसारा ।

एर विश्व भरी आदरां । मूर्खुं जैसा ॥ ९२ ॥

कां तुलसीचेया झाडा । दूरौनि घाली सीतोडा ।

द्राक्षीचेया तरि बुडा । दूय चि टाविजे ॥ ९३ ॥

तैसैं नित्यनैमित्यकें । कमें जियें आवश्यकें ।
 तेयांचां विखिं न शके । बैसला उठूं ॥ ९४ ॥
 येरां काम्याचेनि नावें । देहसर्वस्व आघवें ।
 अर्जवितां हिं न मनवे । बहू ऐसैं ॥ ९५ ॥
 आगा देव्हडी वाढिया लाहिजे । तेथ मोल देंतां न धाडजे ।
 पेरितां पुरे न ह्यणिजे । ब्रियां जेवि ॥ ९६ ॥
 कां परिसु जालेयां हातिं । लोहा लागि सर्व संपत्ति ।
 वेचु करितां उन्नती । साधकु जैसा ॥ ९७ ॥
 तैसीं फलें देखौनि पुढें । काम्य कमें दुआडें ।
 करी परि तें थोडें । केलें मानीं ॥ ९८ ॥
 तेणें फलकामुकें । यथाविधि नेटकें ।
 काम्य कीजे जेतुकें । क्रियाजात ॥ ९९ ॥
 आणि तेया ही केलेयाचें । तोंडीं लावी डौडिचें ।
 कार्मिं या नावें पाटाचें । आंक जैसैं ॥ ६०० ॥
 तैसा भरे कर्मा अहंकार । मग पिता अथवा गुरु ।
 तें न मनी कालज्वर । ँषध जैसैं ॥ १ ॥
 तैसेनि साहंकारें । फल अभिलाखियें नरें ।
 कीजे गा आदरें । जें जें काहिं ॥ २ ॥
 परि तें करणें बहुवसा । बलघौनि करी आयासा ।
 जीवनउपाअं कां जैसा । कोल्हांटियाचा ॥ ३ ॥
 एका कणा लागि उंदिर । असिका उसपे डोंगर ।
 कां सेवाला दोसैं दर्दुर । समुद्रु डडुली ॥ ४ ॥
 पैं भीके परौतें न लाए । तन्हीं गारुडी सर्प वाहे ।
 काइ कीजे सीणु होये । गोडु ये कां ॥ ५ ॥
 हें असो परिमाणुचेनि लाभें । पाताल लंघीति अलिंबे ।
 तैसैं स्वर्गसुखलोभें । विचंवणें जें ॥ ६ ॥

तें काम्य कर्म सहेस । जाणावें एथ राजस ।
आतां चिन्ह परियस । तामसाचें ॥ ७ ॥

अनुबंधं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषं ॥

मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥

तरि तें गा तामस कर्म । जें निंदेचें कालें धाम ।

निषेधाचें जन्म । साचें जेणें ॥ ८ ॥

जें निफजविलेया पाठि । काहिं चि फल न दिसे दीठी ।

रेघ काढिलेयां पोटी । तोयाचां जेवि ॥ ९ ॥

कां कांजी गुसल्लेयां । सारकतु फुंकिलेयां ।

काहिं न दिसे गाळिलेयां । वालवेचा घाणा ॥ ६१० ॥

नाना उपणिलेयां भूस । विंधलेयां आकाश ।

मांडिलेयां पाश । वारेयासि ॥ ११ ॥

हें आघवें चि जैसें । वांझे होउनि नाशे ।

जें केलेयां पाठि तैसें । वायां चि जाए ॥ १२ ॥

यन्हविं नरदेहा एवडे । धन आटणिये पडे ।

जें निफजवितां मोडे । जगाचें सुख ॥ १३ ॥

जैसा कमलवर्नी फांसु । काढिलेयां कांटसु ।

आपण झिजे नाशु । कमळां करी ॥ १४ ॥

कां आपण आंगें जले । आणि नागवी जगाचे डोले ।

पतंगु जैसा सलें । दीपाचेनि ॥ १५ ॥

तैसें सर्वस्व वायां जाउ । वरि देहासि हो घाउ ।

परि पुढिला अपाउ । निफजे जेणें ॥ १६ ॥

मासी आपणेयातें गिलवी । परि पुढिलातें वांती सीणवी ।

तें कडमल आठवी । आचरण जें ॥ १७ ॥

तें हिं करावेया दोसें । मज सामर्थ्य असे ।

किं नाहिं हें ऐसें । न पांत करी ॥ १८ ॥

केवढा माझा उपाउ । करितां कोणु प्रस्ताउ ।
 केलेयां आउ । काइ एथ ॥ १९ ॥
 इये जाणिवेची सोए । अविवेकाचेनि पाएं ।
 पूसूनियां होए । साटोपु कर्मां ॥ ६२० ॥
 आपुला वसैठा जालुनि । बिसाटे जैसा वन्हि ।
 कां स्वमर्यादा गीलुनि । सिंधु उठी ॥ २१ ॥
 मग नेणे बहू थोडें । न पाहे मार्गे पुढें ।
 मार्गामार्ग एकावडे । करीतु चाले ॥ २२ ॥
 तैसें कृत्याकृत्ये सरकटित । आपु पर न विचारित ।
 कर्म होये तें निश्चित । तामस जाण ॥ २३ ॥
 ऐसें गुणत्रये भिन्ना । कर्मासि गा अर्जुना ।
 हे केली विवचना । उपपत्तिसिं ॥ २४ ॥

**मुक्तसंगोऽनहं वादी धृत्युत्साहसमन्वितः ॥
 सिध्यसिध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्त्विक उच्यते ॥ २६ ॥**

आतां या चि कर्मा भजतां । कर्माभिमानियां कर्त्ता ।
 तो जीउ ही त्रिविधता । पातला असे ॥ २५ ॥
 चतुराश्रमवशे । पुरुषु चतुर्द्धा दीसे ।
 कर्त्तया त्रिविध तैसें । कर्मभेदें ॥ २६ ॥
 पारि तेयां तिहि आंतु । सात्त्विक तवं प्रस्तूतु ।
 साधैव दत्तचित्तु । आकर्णि तूं ॥ २७ ॥
 तारि फलउद्देशे सांडिलिया । वाढति जेवि सरलिया ।
 शाखा कां चंदनाचेया । बावनेयां ॥ २८ ॥
 कां न फलतां हि सार्थका । जैसिया नागवाळिका ।
 तौसिया करी निसादिका । क्रिया जो गा ॥ २९ ॥
 पारि फलशून्यता । नाहिं तेया विफलता ।
 पै फलासी चि पांडुसुता । फल काइसें ॥ ६३० ॥

आणि कृत्यादिकें करी बहुवसें । परि कर्ता मी हें नुमसे ।
 वर्षाकालिचे जैसे । मेघवृंद ॥ ३१ ॥
 तेंचि चि परमात्मलिंगा । समर्पावेया जोगा ।
 कर्मकलापु पै गा । निफजावेया ॥ ३२ ॥
 तेया कालातें न लंघणें । देशशुद्धि हान साजणें ।
 कां शास्त्राचां वार्ति पाहाणें । क्रियानिर्णयो ॥ ३३ ॥
 वृत्ती करणें येकवला । चित्त जात्रों नेंदणें फला ।
 नियमाचिया साखला । वाहाणें हान ॥ ३४ ॥
 हा निरोधु साहावेया लागि । धैर्याचिया चांगाचांगी ।
 चित्तवर्णा जितिया आंगी । वाहे जो कां ॥ ३५ ॥
 आणि आत्मेयांचिया आवडी । कर्म करितां सुरवाडीं ।
 देहसुखाचिये परिवडी । येंचो न लहाये ॥ ३६ ॥
 ऐसां निद्रा दुरावें । क्षुधा न बगवे ।
 सुरवाडु न पवे । आंगाचा ठाऊ ॥ ३७ ॥
 तवं अधिकाअधिक । उत्साहो धरी आगलिक ।
 सोनें जैसें पुटीं तूंक । तूटलेयां ॥ ३८ ॥
 जरि आवडिं आधि साच । तरि जीवित्व ही सलंछ ।
 आगि घालितां रोमांच । देखिजति ॥ ३९ ॥
 मा आत्मेयां एवढिया प्रिया । बालभैला जो धनंजया ।
 देहाची सिद्धता तेया । खेदु होइल ॥ ६४० ॥
 ह्यणौनि सुरवाडू तूटे । जवं हें देह आटे ।
 तवं आनंदु दुणावटे । कर्मि जेया ॥ ४१ ॥
 ऐसेन जो कर्म करी । आणि कोण्हीं एकिं अवसरीं ।
 आलें तें कर्म ठाके ऐसी सरी । वाहे जरि ॥ ४२ ॥
 तरि कडाडिं मोडे जो गाडा । तो आपणयेयां न मनी अवघडा ।
 तैसा ठाकलेनि धोडा । न्हवे चि जो कां ॥ ४३ ॥

नातरि आदरिलें । अव्यंग सिद्धी गेलें ।

तरि तें हिं जीतलें । मिरौं नेणे ॥ ४४ ॥

इया खुणा कर्म करितां । देखिजे जो पांडुसुता ।

तेयातें ह्यणिजे तत्वता । सात्विकु कर्ता ॥ ४५ ॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मको शुचिः ॥

हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

आतां राजसा कर्तेया । बोलखण हे धनंजया ।

जें अभिलाखा जगिचेया । वसैठा तो ॥ ४६ ॥

जैसा गाविचेया कश्मला । उकरडां एकवला ।

कां इमसानां अमंगला । आवघेयांसि ॥ ४७ ॥

तिया परीं जो अशेषां । विश्विचेयां अभिलाखां ।

पाये पाखालणियां दोषां । घरटा जाला ॥ ४८ ॥

ह्यणौनि फलाचा लागु । देखे जो आसलगु ।

तिये कर्मिं चांगु । रोहो मांडी ॥ ४९ ॥

आणि आपजलिये जोडी । उपखों नेंदी काडी ।

आणि क्षणीं क्षणीं कुरवंडी । जीवाची करी ॥ ६५० ॥

कृपणु ठेवां आपुला । तैसा दक्षु परावेया मोला ।

बकु जैसा खुतला । मासेयांसि ॥ ५१ ॥

आणि गोवि केलेयां जवलि ! झगटलियां आंग फाली ।

फलें आंतु पोली । बोरांटी जैसी ॥ ५२ ॥

तैसा मनें वाचा कायें । भलेतेया दुःख जाये ।

स्वार्थु साधितां न पाहे । परावें हित ॥ ५३ ॥

तेविं चि आंगें कर्मी । आचरणें न्हवे क्षमी ।

निगे मनोधर्मि । अरोचक ॥ ५४ ॥

कनकाचेया फला । आंतु माजु बाहिरी मैला ।

तैसा सबाद्धें दुबला । शुचित्वें जो ॥ ५५ ॥

आणि कर्मजात केल्यां । फल लाहे जरि धनंजया ।
 तरि हरिखें जगा येया । वांकुलिया वाए ॥ ५६ ॥
 अथवा तें आदरिलें । हीन फल जरि गेलें ।
 तरि शोकें तेणें जियालें । धिक्करं लागे ॥ ५७ ॥
 कार्मिं राहाटि ऐसी । जेयातें गा देखसी ।
 तो जाण त्रिशुद्धिसीं । राजसु कर्त्ता ॥ ५८ ॥

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोलसः ।

विषादी दीर्घसूत्री च कर्त्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥

आतां येया पाठिं येर । कुकर्माचा आगर ।
 तो ही करं गोचर । तामसु कर्त्ता ५९ ॥
 तरि मीं लागलेयां कैसें । पुढील जलत असे ।
 हें नेणजे हुताशें । जिया परीं ॥ ६६० ॥
 पैं शखें मियां तीखटें । नेणे कैसें निवटें ।
 कां नेणजे कालकूटें । आपुलें केलें ॥ ६१ ॥
 तैसा पुढिला आपणपेया । घाये करीतु धनंजया ।
 आदरी उखटिया । क्रिया जिया कां ॥ ६२ ॥
 तिया करितां वेळीं । काइ जालें हें न संभाली ।
 चळला वायु वाहुटली । चेष्टे जैसा ॥ ६३ ॥
 पैं करणेयां आणि जेया । मेलु नाहिं धनंजया ।
 तो पाहुनि पिंसेया । कैची त्राये ॥ ६४ ॥
 आणि इंद्रियांचें वोडरिलें । चरौनि राखे जो जियालें ।
 वैला तळिं वर्त्तलें । पोसणें जैसें ॥ ६५ ॥
 कां हांसेया रुदना वेल । नेणतां आदरी बाल ।
 राहाटे उछंखळ । तिया परीं ॥ ६६ ॥
 जो प्रकृति आतळेपणें । कृत्याकृत्यसवादु नेणे ।
 फुगे केरें धाळेपणें । उकरडें जैसें ॥ ६७ ॥

ह्यणौनि मान्याचेनि नावें । ईश्वरा हि परि न लवे ।
 स्तब्धपर्णे न मनवे । डोंगरासि ॥ ६८ ॥
 आणि मन जेयाचे काललि । राहाटि फुडी चौरली ।
 दीठि ते किर बोली । पण्यांगनांची ॥ ६९ ॥
 किंबहुना कपटिचें । देह चि वलिलें तेयाचें ।
 तें जीणें कीं जुवाराचें । टिटघर ॥ ६७० ॥
 न्हवे तेयाचा प्रादुर्भावो । तो साभिलाख भिल्लांचा गावों ।
 ह्यणौनि न ये येवों जावों । तिया वाटा ॥ ७१ ॥
 आणि आणिकाचें नीकें केलें । तें वीरं होये जेया आलें ।
 जैसें पय मीनलें । लवण करी ॥ ७२ ॥
 कांहिं विरुढे ऐसा पदार्थु । घातला आगी आंतु ।
 तिये चि क्षणीं घडाडितु । आगि होए ॥ ७३ ॥
 नाना सुद्रव्यें गोमटीं । जालेयां शरीरा पैठीं ।
 होउनि ठाकति किरिटी । मलु चि जेवि ॥ ७४ ॥
 तैसें पुढिलाचें ब्रवें । जेयाचा भितरु पावे ।
 आणि विरुद्ध चि आघवें । होये चि गा ॥ ७५ ॥
 जो गुण घे दे दोष । अमृताचें करी विख ।
 दूध पाजिला देख । व्यालु जैसा ॥ ७६ ॥
 आणि इहिकीं जियावें । जेणें परत्रां साचा होआवें ।
 तें उचित कृत्य पावे । अवसरीं जिये ॥ ७७ ॥
 तेधवां जेया आपैसी । नीद ये ठेविली ऐसी ।
 दुहवेवारी जैसी । विटाले लोटे ॥ ७८ ॥
 पै द्राक्षरस कां उसा । वेले तोंड सडे वायसा ।
 कां डोले फूटति दिवसा । डुडुलांचें ॥ ७९ ॥
 तैसा कल्याणु कालु पाहे । तें तेया आलसु खाए ।
 ना प्रमादीं तरि होए । तो ह्यणे तें ॥ ६८० ॥

तेर्वि चि सागराचां पोटीं । जले अखंड आगिठी ।
 तैसा विषादु वाहे पोटीं । जिवाचिये ॥ ८१ ॥
 आगी धूवां एकावधी । कां अपाना आणि दुर्गंधि ।
 तैसा जो जीविता अवधी । विषादें केला ॥ ८२ ॥
 आणि कल्पांताचिया पारा । वेगलेया ही जो बीरा ।
 सूत्र धरी व्यापारा । साभिलाखें ॥ ८३ ॥
 अगा जगा ही परौती । सुचावा हे पै चित्तीं ।
 करितां विषि हातिं । तृण हिं न लगे ॥ ८४ ॥
 ऐसा जो लोका आंतु । पापपुंजु मूर्त्तु ।
 देखिजे तो अव्याहतु । तामसु कर्त्ता ॥ ८५ ॥
 एवं कर्म कर्त्ता ज्ञान । यां तिहिंचें त्रिधा चिन्ह ।
 दाविलें तुज सुजन— । चक्रवर्त्ती ॥ ८६ ॥

बुद्धेभेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं ध्रुणु ॥

प्रोच्यमानमशेषेण । पृथक्त्वेन धनंजय ॥ २९ ॥

आतां अविद्येचां गावीं । मोहाची वेदूनि मदवी ।
 संदेहाचिं आघवीं । लेउनि लेणीं ॥ ८७ ॥
 आत्मनिश्चयाची बरवे । जिये आरिसां पाहे सावेव ।
 तिये बुद्धिची ही धावं । त्रिधा चि असे ॥ ८८ ॥
 अगा सत्वादिगुणिं इहिं । काई एक तिहिं ठांइं ।
 न कीजे चि एथ पाईं । जगा माझि ॥ ८९ ॥
 आगि नसतां पोटीं । कोठें काष्ट असे सृष्टी ।
 तैसैं तें कैचें दृश्य किरीटी । त्रिधा जें नोहे ॥ ९० ॥
 ह्यणौनि तिहिं गुणिं । बुद्धि केली त्रिगुणीं ।
 धृतिसि ही वाटणी । तैसी चि असे ॥ ९१ ॥
 तें चि एकैक वेगलाळें । एथ चिन्ह अलंकारळें ।
 सांधिजैळ उपाइळें । भेदळेपणें ॥ ९२ ॥

परि बुद्धिधृति एयां । दोहिं भागां माझि धनंजया ।
 आदिं रूप बुद्धिचेया । भेदासि करूं ॥ ९३ ॥
 तारि उत्तममध्यमनिकृष्टा । संसारासि गा सूभटा ।
 प्राणियां यंतिया वाटा । तीनि आथि ॥ ९४ ॥
 जे सात्विकराजसतामसनिबद्ध । हे ते मार्ग प्रसिद्ध ।
 संसारभयसंबंध । जीवां येयां ॥ ९५ ॥

प्रवर्त्ति च निवृत्तीं च कार्याकार्ये भयाभये ॥
 बंधमोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विका ॥ ३० ॥

ह्यगौनि अधिकारें मानलें । जें विधिचेनि अर्थे आलें ।
 तें एथ चि एक भलें । नित्यकर्म ॥ ९६ ॥
 तें चि आत्मप्राप्तिफल । दीठि सूनि केवल ।
 कीजे जैसें कां जल । सेविजत ताहाने ॥ ९७ ॥
 येतुलेनि तें कर्म । सांडी भयजन्म विषम ।
 करुनि दे सुगम । मोक्षसिद्धी ॥ ९८ ॥
 तें कर्म करी तो भला । संसारभयें सांडिला ।
 करणीयत्वे आला । मुमुक्षुभागा ॥ ९९ ॥
 तेथ जो बुद्धी ऐसा । बलीं बांधे भरंवसा ।
 मोक्षु ठेविला ऐसा । जोडैल एथ ॥ १०० ॥
 ह्यगौनि निवृत्तिची मांडली । सूनि प्रवृत्ती तलिं ।
 ए कार्मि बुडकली । द्यावी किं नां ॥ १ ॥
 तृषार्त्ता पाणियें जीणें । कां पुरीं पडिलेयां प्रवाहणें ।
 अंध कूपिं गति किरणें । सूर्याचेनि ॥ २ ॥
 नाना पध्येंसिं अखद लाहे । तारि रोगें दाटिला ही जिये ।
 कां मीना जीवाला होए । जलाचा जरि ॥ ३ ॥
 तारि तेया जीविता । नाहिं जैसें अन्यथा ।
 तैसें कर्मा येया प्रवर्त्ततां । जोडे चि मोक्षु ॥ ४ ॥

हें किर जेयाचिये कडे । जें ज्ञान आधि चोखडें ।
 आणि करणीं फुडें । ऐसें जाणे ॥ ५ ॥
 जियें तिहिं काम्यादिकें । संसारभयदायकें ।
 अकृत्यपणाचे आवुखे । पडिले जेयां ॥ ६ ॥
 तिये कर्म अकार्य । जन्ममरणसभयीं ।
 प्रवृत्तिफलें विपार्यीं । मागिलीं चि ॥ ७ ॥
 पै गा आगी माझि न रिगवे । अथाविं न घलवे ।
 धगधगीत नांगवे । शूळ जेवि ॥ ८ ॥
 कां कालियाणा धुधुवांतु । देखौनि न पसरवे हातु ।
 न वचवे खोंपे आंतु । वाघाचिये ॥ ९ ॥
 तैसैं कर्म अकरणिय । देखौनि महाभय ।
 उपजे निःसंदेह । बुद्धि जेया ॥ ७१० ॥
 वाढिलें रांधौनि विखें । तेथ जाणिजे मृत्यु न चुके ।
 तेवि निषेधि कें देखे । बंधातें जो ॥ ११ ॥
 मग बंधुभयभारति । तिये निषेधीं प्रार्ति ।
 विनियोगु जाणे निवृत्ती । कर्माचिये ॥ १२ ॥
 ऐसैं कार्याकार्यविवेकीं । जे प्रवृत्तिनिवृत्तिमापकीं ।
 खराकुडापारखी । जिया परीं ॥ १३ ॥
 तैसी कृत्याकृत्यशुद्धी । बुझे जें निरवधी ।
 सात्विक ह्यणिपे बुद्धी । ते गा जाण ॥ १४ ॥

यया धर्ममधर्म च कार्य चाकार्यमेव च ॥

अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥

आणि बकाचां गावीं । घेपे क्षीरनीर सकलवी ।
 कां अहोरात्राची गोवी । आंधलें नेणे ॥ १५ ॥
 जेया फुलाचें गोमटें पावे । तो किं काष्ठें कोरूं धावे ।
 परि भ्रमरपण नव्हे । अंहा जेवि ॥ १६ ॥

तैसि इयें कार्याकार्यें । धर्माधर्मरूपें इयें ।
 तियें न सुहतां जियें । जाणती जे कां ॥ १७ ॥
 आगा डोळां विण मोतियें । घेंतां पाडु मिले विपायें ।
 न मिलणें तें आहे । ठेविळें तेथ ॥ १८ ॥
 तैसैं अकरणीय अवचटें । नोडवे तरी चि लोटे ।
 यन्हवि जाणे एकवटें । दोन्हीं जे कां ॥ १९ ॥
 ते गा बुद्धिं ऐसी । जाण एथ राजसी ।
 आखत टाकिली जैसी । मांदिएसी ॥ ७२० ॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ॥

सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२ ॥

आणि राजा जिया वाटा जाए । तें चोरांसि अडवंतावो होये ।
 कां राक्षसांसि दिवो पाहे । राति होउनि ॥ २१ ॥
 नाना निधान चि निदवां । होथे कोलिसेयाचा उडवा ।
 पै असतां आपणपें जीवा । नाहिं जालें ॥ २२ ॥
 तैसैं धर्मजात जेतुकें । जिये बुद्धीसि पातकें ।
 साच तें लटकें । ऐसैं बुझे ॥ २३ ॥
 हे आववे चि अर्थ । ते करुनि घाली अनर्थ ।
 गुणातें व्यवस्थित । दोष मानी ॥ २४ ॥
 किंबहुना श्रुतिजातें । प्रतिष्ठौनि केलें सरतें ।
 तेतुळें हिं उपरतें । जाणे जे बुद्धी ॥ २५ ॥
 ते कोण्हातें हिं न पुसतां । तामसी जाणावी पांडुसुता ।
 रात्रि काइ धर्मार्था । साच करावी ॥ २६ ॥
 एवं बुद्धीचे भेद । तीन्ही तुज विशद ।
 सांधितले स्वयंबोध । कुमुदचंद्रा ॥ २७ ॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेंद्रियक्रियाः ॥

योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३३॥

आतां इया चि बुद्धिवृत्ति । निष्ठकिली कर्मजाती ।
 बोधु मांडिजे धृती । त्रिविधा जिया ॥ २८ ॥
 तियेचे ही विभाग । तीनि यथार्थिंग ।
 सांघिजती चांग । अवधान दे ॥ २९ ॥
 तरि उदैला दिनकर । चोरीसि भोंके अंधकार ।
 कां राजाज्ञा अव्यवहार । कुंठवी जेवि ॥ ७३० ॥
 नाना पवनाचा साटु । उचललेयां नीटु ।
 आंगोसि बोभाटु । सांडिती मेघ ॥ ३१ ॥
 कां अगस्तित्चेनि दर्शने । सिंधु घेउनि ठांति मौने ।
 चंद्रोदइ कमलवने । मीठी देती ॥ ३२ ॥
 हे असो पा० उचलिला । मदमुखु न ठेवी चि खालां ।
 गाजौनि पुढां जाला । सिद्धं जरि ॥ ३३ ॥
 तैसा जो धीरु । उठिलेयां अंतरु ।
 मनादिके व्यापारु । सांडिति उर्गी ॥ ३४ ॥
 इंद्रियां विषयांची गांठि । आपैसेया गळति किरिटी ।
 मना मायेचां पोटी । रिगति दाही ॥ ३५ ॥
 अधऊर्ध्व गुढे काढी । प्राणु नवां पेंढी ।
 बांधौनि घाली उंडी । मध्यमे माझि ॥ ३६ ॥
 संकल्पविकल्पाचें लुगडें । सांडूनि मन उघडें ।
 बुद्धि ही मागिली कडे । उर्गे बैसे ॥ ३७ ॥
 ऐसे धैर्यराजें जेणें । मनप्राणकरणें ।
 स्वचेष्टा संभाषणें । सांडिवीजती ॥ ३८ ॥
 मग आघवीं चि संडीं । ध्यानाचां आंतुलीं मढीं ।
 कोंडिजति निरवढी । योगाचिया ॥ ३९ ॥
 पारि परमात्मेयां चक्रवर्ती । उगाणीति जवं हातीं ।
 तवं लांचु नेघतां धृती । धरिजति जिया ॥ ७४० ॥

ते गा धृति एथे । सात्विक हें निरुते ।
 आइक अर्जुनाते । श्रीकांतु ह्यणे ॥ ४१ ॥
 आणि होउनियां शरीरी । स्वर्गसंसाराचां दोहीं घरीं ।
 नांदे जो पोटभरी । त्रिवर्गोपाये ॥ ४२ ॥

यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन ॥
 प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४ ॥

तो मनोरथाचां सागरीं । धर्मार्थकामार्थे तारुं भरी ।
 जेणें धैर्यबलें करी । क्रियावाणिज ॥ ४३ ॥
 जें कर्मभांडवला सुए । तेयाची चौगुणां येती पाहे ।
 एवढें सायासें हें साहे । जेया धृति ॥ ४४ ॥
 ते गा धृति राजस । पार्था एथ परियस ।
 आतां आइकें तामस । तिसरी जे ॥ ४५ ॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ॥
 न विमुंचति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ २५ ॥

तरि सर्व अधर्मे गुणे । जेयाचें कां रूपा एणें ।
 कोळिसा कालेपणें । घडिला जैसा ॥ ४६ ॥
 आहो प्राकृतु आणि हीनु । तेया ही किं गुणसत्वाचा मानु ।
 पारि न ह्यणिजे पुण्यजनु । राक्षसु काइ ॥ ४७ ॥
 कां ग्रहां माक्षि इंगळु । तेयातें ह्यणिजे मंगळु ।
 तैसा तमि धसालु । गुणसंबंधु हा ॥ ४८ ॥
 तैसा सर्वदोषांचा वसैठा । तम चि कामौनि सूभटा ।
 उभारिला आंगवटा । जेया नराचा ॥ ४९ ॥
 तो आळसु सूनि असे काखे । ह्यणौनि निद्रे कहीं न मूके ।
 पापें पोसितां दुःखें । न संडिजे जेवि ॥ ७५० ॥
 आणि देहाधनाचिया आवडी । सदा भयातें न संडी ।
 विसंभों न शके ढोंढी । काठिन्य जैसें ॥ ५१ ॥

आणि पदार्थजाती स्नेहो । बांधे ह्यणौनि तो शोका ठाऊं ।
 केला न पाप जाऊं । कृतघ्नू जैसा ॥ ५२ ॥
 आणि असंतोखु जीविसीं । धरुनि टेला अहर्निशीं ।
 ह्यणौनि मैत्र तेणेंसीं । विशादें केलें ॥ ५३ ॥
 लसणातें न संडी गंधि । कां अपथ्यशीलातें व्याधि ।
 तैसी केली मरणा अवधी । विशादें तेया ॥ ५४ ॥
 आणि वयसा वित्तकामु । येयांचा वाढवी संभ्रमु ।
 ह्यणौनि मदें आश्रमु । बंधला तेथ ॥ ५५ ॥
 आगितें न संडी तापु । सलाते जातिचा सापु ।
 कां जगाचा वैरी वासिपु । अखंड जैसा ॥ ५६ ॥
 मातारि शरीरातें कालु । न विसंभे कवणही वेलु ।
 तैसा आधि अढलु । तामसिं मटु ॥ ५७ ॥
 एवं पांचै हे निद्रादिक । तामसाचां ठांडं दोष ।
 जिया धृती देख । धरिले असति ॥ ५८ ॥
 तिये धृती नावें । तामसी एथ हें जाणावें ।
 ह्यणितले तेणें देवें । जगाचेनि ॥ ५९ ॥
 एवं त्रिविधा जो बुद्धी । कीजे कर्मनिश्चयो आदीं ।
 तो धृती इया सिद्धी । नेइजे एथ ॥ ७६० ॥
 सूर्यें मार्गु गोचरु होए । आणि तो चालति किर पाए ।
 परि चालणें तें आहे । धैर्यें जेवि ॥ ६१ ॥
 तैसी बुद्धि कर्मातें दावी । तें करणसामग्र निफजवी ।
 परि निफजावेया होआवी । धीरता जे ॥ ६२ ॥
 ते हे गा तुज प्रति । सांघितली त्रिविध धृति ।
 येया कर्मत्रया निष्पत्ति । जालेयां मग ॥ ६३ ॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ॥
 अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखांतं च निगच्छति ॥ ३६ ॥

येथ फल येक जें निफजे । सुख जेयातें ह्यणिजे ।
 तें हिं त्रिविध जाणिजे । कर्मवशें ॥ ६४ ॥
 तरि फलरूप तें सुख । त्रिगुणि भेदलें देख ।
 विवंचूं आतां चोख । चोखीं बोलीं ॥ ६५ ॥
 चोखी ते कैसी सांघें । पैं घेऊं जातां बोलबगे ।
 कानिचिये ही लागे । हातिचा मळु ॥ ६६ ॥
 ह्यणौनि जेयाचेनि अग्हेरें । अवधान होये बाहिरें ।
 तें आइक हो अंतरें । जिवाचेनि जीवें ॥ ६७ ॥
 ऐसें ह्यणौनि देऊं । त्रिविधा सुखाचा प्रस्ताऊं ।
 मांडिला तो निर्वाहो । निरोपित असे ॥ ६८ ॥
 ह्यणे सुखत्रया संज्ञा । सांघों ह्यणौनि प्रतिज्ञा ।
 बोलिजे तें प्राज्ञा । आइक आतां ॥ ६९ ॥
 तरि सुख तें गा किरीटी । दाविजैल तुज दीठी ।
 जेणे आत्मनसीं भेटि । जीवासि होए ॥ ७० ॥
 परि मात्रेचेनि मापें । दिव्योषध जैसें घेपे ।
 कां कथिलाचें कीजे रूपें । रसभावनीं ॥ ७१ ॥
 नामा लवणाचे जल । होआवेया दोनि च्यारि वेल ।
 देउनि सांडिजति ढाल । तोयाचे चि जेवि ॥ ७२ ॥
 तेवि जालेनि सुखलेशें । जीउ भाविलेयां अभ्यासें ।
 जीवपणाचें नाशे । दुःख जेथ ॥ ७३ ॥
 तें येथ आत्मसुख । जालें असे त्रिगुणात्मक ।
 तें हिं सांघों येकैक । रूप आतां ॥ ७४ ॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामे मृतोपमम् ॥

तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥

तरि चंदनाचें घुढ । सापिं जैसें दुवाड ।

कां निधानाचें तोंड । विवंचीतें ही ॥ ७५ ॥

आगा स्वर्गिचें गोमटें । अडव यागसंकटे ।
 कां बापपण दासटें । त्रासकालें ॥ ७६ ॥
 ह असो दीपाचिये सिद्धी । अवघड धूं आधिं ।
 नातारि तो वोषधी । जीभेचा ठाऊ ॥ ७७ ॥
 तिया परीं पांडवा । जेया सुखाचा रिगावां ।
 विषमु तेया मेलावा । यमदमाचा ॥ ७८ ॥
 देंत सर्वस्नेहा मीठी । आंगीं ऐसें वैराग्य उठी ।
 स्वर्गसंसाराकांठी । काढित चि ॥ ७९ ॥
 विवेकश्रवणें खरपुसैं । जेथ व्रताचरणें कर्कसैं ।
 करितां जाति भोकसे । बुद्धयादिकांचे ॥ ७८० ॥
 सुषुम्नेचेनि तोंडें । गील्लिजे प्राणापानाचे लोंडे ।
 बोहणीए चि एवडें । भारी जेथ ॥ ८१ ॥
 तें सारसां हिं विघडतां । वोहांहूनि वत्स काढितां ।
 नव्हे भणग दवडितां । भाणेया वरौनि ॥ ८२ ॥
 पै गा माये पुढौनि बालक । कालें नेतां जें एक ।
 होये कां उदक । तूटतां मीनां ॥ ८३ ॥
 तैसें विषयांचें घर । इंद्रियां सांडितां धोर ।
 युगांत होये तें वीर । वीतराग साहांति ॥ ८४ ॥
 ऐसा जेया सुखिचा आरंभु । दावी काटिण्याचा क्षोभु ।
 मग क्षीराब्धिळाभु । अमृताचा जैसा ॥ ८५ ॥
 पहिलेया वैराग्यगरला । धैर्यशंभु वोडविला गला ।
 तरि ज्ञानांमृतें सोहला । पाहे जेथ ॥ ८६ ॥
 पै कोळिता ही हूनु बंडुवसैं । द्राक्षाचें हिरवेपण असे ।
 तें परिपाकीं कां जैसैं । माधुर्य होए ॥ ८७ ॥
 तें वैराग्यादिक तैसें । पीकडें आत्मप्रकाशें ।
 मग वैराग्येसीं हीं नासे । अंबिद्याजात ॥ ८८ ॥

तेधवां सागरों गंगा जैसी । आत्मा मीनलेयां बुद्धि तैसी ।
 अद्वयआनंदाची आपैसी । खाणि उवडे ॥ ८९ ॥
 ऐसैं स्वानुभवविश्रामें । वैराग्यमूल जें परिणमे ।
 तें सात्विक एणें नावें । बोलिजे सुख ॥ ७९० ॥

विषयेंद्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ॥

परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतं ॥ ३८ ॥

आणि विषयइंद्रियां । मेलु होंतां धनजया ।
 तें सुख जाये थडिया । सांडौनि दोन्हीं ॥ ९१ ॥
 अधिकारिया रिगतां गावों । जाला जैसा उत्सावो ।
 कां रिणावरि विवाहो । विस्तारिला ॥ ९२ ॥
 नाना रोगीं जीभे पासिं । केलें गोडें होंति साखरेसीं ।
 कां वत्सनागा जैसी । महुळलै ते ॥ ९३ ॥
 पहिले सवंचोरां मैत्र । भेटिहाटिचें कलत्र ।
 कां लाघविचे विचित्र । विनोद ते ॥ ९४ ॥
 तैसैं विषयेंद्रियदोखीं । जें सुख जीवातें पोखी ।
 मग उपटला खडकीं । राजहंसु जैसा ॥ ९५ ॥
 तैसी जोडि आघवी आटे । जीविताचा ठाऊ फीटे ।
 सुकृताचेया ही मुटे । धनाची गांठि ॥ ९६ ॥
 आणि भोगिलें जें काहिं । स्वप्न जैसैं होये नाहिं ।
 मग हाणिचां चि घाई । लोलावें उरे ॥ ९७ ॥
 ऐसैं पाहांति जें सुख । इहिकिं परिणामे देख ।
 परत्रीं किर विष । होउनि परते ॥ ९८ ॥
 जें इंद्रियजाता लला । दीधलेयां धर्माचा मला ।
 जाळनि भोगिजे सोहळा । विषयांचा जेथ ॥ ९९ ॥
 तेथ पातकें मांधति थाऊ । तियें नरकीं दैति ठाऊ ।
 जेणें सुखें अपाऊ । परत्रीं ऐसा ॥ ८०० ॥

पैं नात्रें विष मद्दुरें । परि मारूनि अतिखरें ।
 तैसैं आदि जें गोडिरें । अंतीं कडू ॥ १ ॥
 पार्था तें सुख साचें । वलिलें आहे रजाचें ।
 ह्यणौनि न सीवें तेयाचें । आंग कहीं ॥ २ ॥

यदग्रे चानुबंधे च सुखं मोहनमात्मनः ॥

निद्रालस्यप्रमदोत्थं तत्तामसमुदाहृतं ॥ ३९ ॥

आणि अपेयाचेनि पानें । अखाद्याचेनि भोजनें ।
 स्वैरस्त्रीसंनिधानें । होये जें सुख ॥ ३ ॥
 कां पुढिल्ल्याचेनि मारें । नातरि पशुप्रहारें ।
 जें सुख अवतरे । भांडाचां बोलीं ॥ ४ ॥
 जें आलस वारि पोखिजे । निद्रे माझि देखिजे ।
 जेयाचां आदीं अंतीं भूल्लिजे । आपुली वाट ॥ ५ ॥
 तें गा सुख पार्था । तामस जाण सर्वथा ।
 हें न संगों चि जें कथा । असंभाव्य हे ॥ ६ ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ॥

सत्त्वं प्रकृतिजैर्भुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

ऐसैं कर्मभेदें मुदलें । फलसुख हीं त्रिधा जालें ।
 तें हें एथ मियां केलें । गोचर तुज ॥ ७ ॥
 तें कर्त्ता कर्म फल । हे त्रिकुटी एकि केवल ।
 वांचूनि कहीं चि असे स्थूल । सूक्ष्मादि ॥ ८ ॥
 आणि हे तव त्रिकुटी । तिहिं गुणिं किरीटी ।
 गुंथिली आहे पटी । तांथुवीं जैसी ॥ ९ ॥
 ह्यणौनि प्रकृतिचां लोकीं । न वंधिजे सत्वादिकां ।
 तैसी स्वर्गीं नां मृत्युलोकीं । आथि वस्तु ॥ ८१० ॥
 कैचा लोंवे विण कांबला । मातिये विण मोदला ।
 कां जलें विण कल्लोळां । होणें आहे ॥ ११ ॥

तैसें नोहोनि गुणागुणाचे । स्त्रिष्टिचां रचलां रचे ।
 ऐसें नाहिं गा सार्चे । प्राणिजातां ॥ १२ ॥
 या लागि हें सकल । तिहिं गुणाचें केवल ।
 घडिलें आहे निखल । ऐसें जाण ॥ १३ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ॥
 कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

गुणीं देवत्रईं मेलविली । लोकिं त्रिकुटी पाडिली ।
 चतुर्वर्णां घातली । सिनानिं उळिगे ॥ १४ ॥
 ते चि च्यान्ही वर्ण । जरि पूससी कोण ।
 तरि ब्राह्मण । मुख्य जे कां ॥ १५ ॥
 एर क्षत्री वैश्य दोन्ही । ते ही ब्राह्मणाचां चि मानीं ।
 जें ते वैदिके विधानीं । योग्य ह्मणौनि ॥ १६ ॥
 चौथा शूद्र जो धनंजया । वेदीं लागु किर नाहीं तेया ।
 तन्हीं वृत्ति वर्णत्रया । आधीन तेयाची ॥ १७ ॥
 तिये वृत्तिचिया जवालिका । वर्णा ब्राह्मणादिकां ।
 आहो शूद्र ही देखां । चौथा जाला ॥ १८ ॥
 जैसा फुलाचेनि सांघातें । तांथू तुरंबिजे श्रीमंतें ।
 तैसें द्विजसंगें शूद्रातें । स्वीकारीति श्रुती ॥ १९ ॥
 ऐसीसी गा पार्था । चतुर्वर्णव्यवस्था ।
 करूं आतां कर्मपंथा । ययाचेया रूप ॥ ८२० ॥
 जे हीं ते वर्ण च्यान्ही । ये जन्ममृत्युची कातरी ।
 तूकौनियां ईश्वरीं । पैठे होंति ॥ २१ ॥
 जिये आत्मप्रवृत्तिचां इहीं । गुणिं सत्त्वादिकीं तिहीं ।
 कर्में चौघां चौं ठांइं । वांटीळीं वर्णां ॥ २२ ॥
 जैसें बापें जोडिलें लेंका । वांटे सूर्य.मार्ग पथिकां ।
 नाना व्यापार सेवकां । स्वामि जैसा ॥ २३ ॥

तैसें प्रकृतिचां गुणीं । जेया कर्माची वेव्हाणी ।
 केली आहे वर्णीं । चौ हीं इहीं ॥ २४ ॥
 ते सत्वे आपुळां आंगीं । समुनिनिमुनि भागीं ।
 दोधे केले नियोगी । ब्राह्मणक्षत्री ॥ २५ ॥
 आणि रज परि सात्विक । तेया ठेविले वैश्य लोक ।
 रज चि तमें भेसक । तेथ शूद्रु जाला ॥ २६ ॥
 ऐसा एका चि प्राणिवृंदा । भेदु वर्णा चतुर्धा ।
 गुणीं चि इहीं प्रबुधा । केला जाण ॥ २७ ॥
 मग आपुलें ठेविलें जैसें । आइतें चि दीपें दीसे ।
 गुणभिन्न कर्म तैसें । शास्त्र दावी ॥ २८ ॥
 ते चि आतां कोण कोण । वर्णविहिताचें लक्षण ।
 हें सांघों आइक श्रवण । सौभाग्यनिधी ॥ २९ ॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिराजवमेव च ॥

ज्ञानं त्रिज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥

तरि सर्व इंद्रियांची वृत्ति । घेउनि आपुळां हातीं ।
 बुद्धि आत्मेयां मिले एकांतिं । प्रिया जैसी ॥ ८३० ॥
 ऐसा बुद्धिचा उपरमु । तेया नावं ह्याणपे शमु ।
 तो गुणु गा उपक्रमु । जेया कर्माचा ॥ ३१ ॥
 आणि बाह्यइंद्रियांचें धाडें । पीटुनि विधिचेनि दंडें ।
 नेंदिजे अधर्मा कडे । कहीं चि जाउं ॥ ३२ ॥
 तो पै गा शमा विरजा । दमगुणु जेथ दूजा ।
 आणी स्वधर्माचिया वोजा । जीणें जें कां ॥ ३३ ॥
 तेवि चि सटिवियेचिये राती । न विसंभिजे जेवि वाती ।
 तैसा ईश्वरनिर्णयो चित्तीं । वाहाणे जें गा ॥ ३४ ॥
 बेया नावं तप । हें तीजेया गुणाचे रूप ।
 आणि शौच ही निष्पाप । द्विविध जेथ ॥ ३५ ॥

मन भावशुद्धी भरलें । आंग क्रिया आलंकरलें ।
 ऐसें सबाह्य जियालें । साजिरें जें कां ॥ ३६ ॥
 तेया नावं शौच पार्था । तो कर्मि गुणु चौथा ।
 आणि पृथ्वीचेया परी सर्वथा । सर्व जें साहाणें ॥ ३७ ॥
 ते गा क्षमा पांडवा । गुणु जेथ पांचवां ।
 स्वरां माक्षि सोहावा । पंचमु जैसा ॥ ३८ ॥
 आणि वांकुडेनि बोधेंसिं । गंगा हे उजू चि जैसी ।
 कां पुटीं बळलां उंसीं । गोडी जेवि ॥ ३९ ॥
 तैसा विषमा हिं जीवां । लागि उजुकारु होआवा ।
 तें आर्जव गा सावां । तेथिचा गुणु ॥ ८४० ॥
 आणि पाणियें प्रयत्नें माली । अखंड जचे झाडां मुलीं ।
 परि तें आघवे चि फलीं । जाणे जेवि ॥ ४१ ॥
 तैसैं शास्त्राधारें तेणें । ईश्वरु चि एकु पावणें ।
 हें फुडें जें कां जाणणें । तें एथ ज्ञान ॥ ४२ ॥
 ते गा कर्मि जिये । सातवां गुणु होये ।
 आणि विज्ञान हें पाहे । एवरूप ॥ ४३ ॥
 तरि सत्वशुद्धिचिये वेले । शास्त्रें कां ध्यानवलें ।
 ईश्वरतत्वीं चि मिले । निष्टंकबुद्धी ॥ ४४ ॥
 हें विज्ञान बरवें । तें गुणें जें आठवें ।
 आणि आस्तिक्य जाणावें । नववा गुणु ॥ ४५ ॥
 पै राजमुद्रा आथिलेया । प्रजा भजे भलेतेया ।
 तेवि शास्त्रें स्वीकारिलेयां । मार्गमात्रातें ॥ ४६ ॥
 आदरें कां वर्त्तणें । तें आस्तिकत्व मी ह्यणें ।
 तो नववा गुणु जेणें । कर्म साच ॥ ४७ ॥
 एवं नवै शमादिक । गुणु जेथ निर्दोख ।
 तें कर्म जाण स्वाभाविक । ब्राह्मणाचें ॥ ४८ ॥

तो नवगुणरत्नाकर । ययां नवां रत्नांचा हार ।
 न फेडित ले दिनकर । प्रकाशु जैसा ॥ ४९ ॥
 नाना चांपाचां पौलीं पूजिला । चंद्रु चंद्रिका धवलिला ।
 कां चंदनु निजें चर्चिला । सौरभ्यें जेवि ॥ ८५० ॥
 तेवि नव गुण टिकलग । लेणें ब्राह्मणाचें हें अव्यंग ।
 कहीं चि न संडी आंग । ब्राह्मणाचें ॥ ५१ ॥

शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनं ॥
 दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजं ॥ ४३ ॥

आतां उचित जें क्षत्रियां । तें हि कर्म धनंजया ।
 सांघों आइक प्रज्ञेचिया । भरोवरी ॥ ५२ ॥
 तरि हा भानु तेजें । नापेक्षी जेवि विरजें ।
 कां सिंहे न पाहिजे । जावल्या ॥ ५३ ॥
 ऐसा स्वयंभु जो जीव लाटु । सावायें विण उद्भटु ।
 तो शौर्य गा श्रेष्ठ । पहिला गुणु ॥ ५४ ॥
 आणि सूर्याचेनि प्रतापें । कोडि ही नक्षत्रें हारपे ।
 ना तो तन्हीं न लोपे । सचंद्रें तिहीं ॥ ५५ ॥
 तैसा आपुलेनि प्रौढ गुणें । जगासि विस्मयो देणें ।
 आपण तरि न क्षोभणें । काइसेनि हीं ॥ ५६ ॥
 तें प्रागल्भ्य रूप तेजा । जिये कार्मिं गुणु दूजा ।
 आणि धीरु तो तीजा । तेथिचा गुणु ॥ ५७ ॥
 वरिपडिलेयां आकाश । बुद्धिचे डोले मानस ।
 झांकी ना तें साहस । धैर्य जेथ ॥ ५८ ॥
 आणि पाणीं होये भलेतेतुकें । पारि तें जीणौनि पन्न फांके ।
 कां आकाश ऊंचिया जींके । आवडतेया ॥ ५९ ॥
 तेवि विविधा अवस्था । पातल्या जीणौनि पार्था ।
 प्रज्ञाफलतेया अर्था । वेद देणें जें ॥ ८६० ॥

तें दक्षत्व गा चोख । जेथ चौथा गुणु देख ।
 आणि जूझ अलौकीक । पांचवां गुणु ॥ ६१ ॥
 आदित्याचिं झाडें । ठाकति रविबिंबा कडे ।
 तेवि समोर शत्रू पुढें । होणें जें कां ॥ ६२ ॥
 माहेवणी प्रयत्नेसि । चुकविजे सेजे जैसी ।
 रिपू पाठि नेंदिजे तैसी । रणांगणीं ॥ ६३ ॥
 हा क्षत्रियांचां आचारीं । पांचवां गुणेंद्रु अवधारीं ।
 चौं हीं पुरुषार्था शिरीं । भगति जैसी ॥ ६४ ॥
 आणि जालेनि फुलें फलें । शाखिये जैसे मोकले ।
 कां उदार परिमलें । पन्नकर ॥ ६५ ॥
 नाना आवडिचेनि मापें । चांदिणें भलेतेणें घेपे ।
 पुढिलाचेनि संकल्पें । तैसें जें देणें ॥ ६६ ॥
 तें उमप गा दान । जेथ सावें गुणरत्न ।
 आणि आझे एकायतन । होये जेणें कां ॥ ६७ ॥
 पोखुनि अवेव आपुले । करविजति मानविलें ।
 तेवि पालणें लोभविलें । जग जें भोगी ॥ ६८ ॥
 तेया नात्रं ईश्वरभावो । जो सर्व सामग्रियेचा ठावो ।
 तो गुणा माझि रा३० । सातवां जेथ ॥ ६९ ॥
 ऐसे जे शौर्यादिकां । इहिं सातवां गुणिं विशेषिं ।
 अलंकृत सप्तरुषीं । आकाश जैसें ॥ ७० ॥
 तैसें सप्तगुणिं विचित्र । कर्म जें जगीं पवित्र ।
 तें साहाजें जाण क्षात्र । क्षत्रियांचें ॥ ७१ ॥
 नाना क्षत्री नव्हे नरु । तो सत्वसोनेयांचा चि मेरु ।
 ह्यणौनि गुणस्वर्गा आधारु । सातां इयां ॥ ७२ ॥
 नाना सतगुणार्णविं । परिवारली बरवी ।
 हे क्रिया नव्हे पृथिवी । भोगीतसे तो ॥ ७३ ॥

कां गुणां सातें वोधीं । हे क्रिया ते गंगा जर्गी ।
तेया महोदधीचां आंगीं । विलसत जैसी ॥ ७४
हे परी बहुवस देख । शौर्यादिगुणात्मक ।
कर्म गा नैसर्गिक । क्षत्रियजातीसि ॥ ७५ ॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजं ॥
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजं ॥ ४४ ॥

आतां वैश्याचिये जाती । उचित जें महामती ।
तें आइक निरुती । क्रिया सांगों ॥ ७६ ॥
तरि भूमि बीज नांगरु । या भांडवलाचा आधार ।
घेउनि लाभु अपारु । मेलवणें जें ॥ ७७ ॥
किंबहुना कृषि जीणें । गोधनें राखौनि वर्त्तणें ।
कां सवंगाची वीकणें । महार्गि वस्तु ॥ ७८ ॥
आणि वैश्यक्षत्रियब्राह्मण । हे द्विजन्मे तीन्ही वर्ण ।
यांचें जें सुश्रूषण । तें शूद्रकर्म ॥ ७९ ॥
पै द्विजसेवे परांतें । धावणें नाहिं शूद्रांतें ।
एवं चतुर्वर्णांचि उचितें । दात्रिलिं कर्म ॥ ८० ॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥
स्वकर्मानिरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छुणु ॥ ४५ ॥

आतां ये चि गा विचक्षणा । वेगलालेया वर्णा ।
उचित जैसैं करणां । शद्दादिक ॥ ८१ ॥
नातरि जलदच्युता । पाणियां उचित सरिता ।
सरितेसि पांडुमुता । सिंधु उचितु ॥ ८२ ॥
तैसैं वर्णाश्रमवशें । जें करणें आलें असे ।
गोरेया आंगा जैसैं । गोरेपण ॥ ८३ ॥
तेया स्वभावाविहिता कर्मा । शास्त्राचेनि मुखें वीरोत्तमां ।
प्रवर्त्तावेया लागि प्रेमा । अढळ कीजे ॥ ८४ ॥

पै आपुलें चि रत्न थीतें । घेपे पारखियाचेनि हातें ।
 तैसें स्वकर्म आपैतें । शास्त्रें करावें ॥ ८५ ॥
 जैसी दीठि असे आपुलां ठांडें । परि दीपें विण भोगु नाहिं ।
 मार्गु न व्हांतां काहिं पाइं । असतां होए ॥ ८६ ॥
 ह्यगौनि जातिवशें साचारु । सहजु असे जो अधिकारु ।
 तो आपुलां शास्त्रिं गोचरु । आपणपेयां कीजे ॥ ८७ ॥
 मग घरिचा चि ठेवा । आणि डोलां दावी दीवा ।
 तारि काइ घेतां पांडवा । आलसु असे ॥ ८८ ॥
 तैसें स्वभावं भागा आलें । वरि शास्त्रें खरें केलें ।
 तें विहित जो आपुलें । आचरे गा ॥ ८९ ॥
 परि आलसु सांडौनि । फलकामु दवडौनि ।
 आंगें जीवें मोडैनि । तेथ चि भरु ॥ ९० ॥
 वोधीं पडिलेयां पाणीं । नेणें आनानीं वाहाणीं ।
 तैसा जिये आचरणीं । व्यवस्थौनि ॥ ९१ ॥
 अर्जुना जें इया परीं । तें विहित कर्म करी ।
 तो मोक्षाचां ऐली द्वारीं । पैठा होए ॥ ९२ ॥
 जें अकरणां आणि निषिद्धा । न वच्चे चि काहीं संबंदा ।
 ह्यगौनि भावा विरुद्धा । मूकला तो ॥ ९३ ॥
 आणि काम्यकर्मा कडे । न परते चि तेकडे ।
 तेथ चंदनाचे खोडे । न ले चि तो ॥ ९४ ॥
 येर नित्य कर्म तवं । फळत्यागें वेचलें सर्व ।
 ह्यगौनि मोक्षाची सीव । टाकूं लाहे ॥ ९५ ॥
 ऐसेनि शुभाशुभीं संसारीं । सांडिला तो अवधारीं ।
 वैराग्यमोक्षद्वारीं । उभा ठाके ॥ ९६ ॥
 जे सकलभाग्याची सीमां । मोक्षलाभाची प्रमां ।
 नाना कर्ममार्गश्रमा । सेवटु जेथ ॥ ९७ ॥

मोक्षफलें दीधली बोल । जें सुकृततरूचें फूल ।
 तिये वैरागीं ठेवी पाउल । भवरु जैसा ॥ ९८ ॥
 पै आत्मज्ञानसुदिनांचा । वाधावा सांघेतेया अरुणाचा ।
 उदो तेया वैराग्याचा । ठावो पावे ॥ ९९ ॥
 किंबहुना आत्मज्ञान । जेणें हाता ए निधान ।
 तें वैराग्य दिव्यांजन । जीवें ले तो ॥ १०० ॥
 ऐसी मोक्षाची योग्यता । सिद्धी जाये पांडुसुता ।
 अनुसरौनि विहिता । कर्मा येया ॥ १ ॥
 विहित कर्म पांडवा । आपुला अनन्यु बोलवावा ।
 आणि हे चि प्रेमसेवा । सर्वात्मकाची ॥ २ ॥
 पै आघवां चि भोगेंसि । पतिव्रता क्रीडे प्रियेंसि ।
 किं तेया चि नावं जैसीं । तपें तिया केलीं ॥ ३ ॥
 कां बालका एकि माए । वांचौनि जीणें काइ आहे ।
 ह्यणौनि सेवा कीं तो होए । पाटाचा धर्मु ॥ ४ ॥
 नाना पाणी ह्यणौनि मासा । गंगा न संडीतु जैसा ।
 सर्वतीर्थसंवासा । वरिपडा जाला ॥ ५ ॥
 तैसा आपुलिया विहिता । उपा३० असे न विसंबता ।
 ऐसा कीजे किं जगन्नाथा । आभारु पडे ॥ ६ ॥
 आगा जेया जें विहित । तें ईश्वराचें मनोगत ।
 ह्यणौनि केयेया निभ्रांत । परितोखु पावे ॥ ७ ॥
 पै जीवाचां कसीं उतरलीं । ते दासि किं गोसाविणि जालीं ।
 तैसी सेवेची तेयां माउली । विहित जेवि ॥ ८ ॥
 तैसें ते स्वामिचेया मनोभावा । न चूकिजे हे चि सेवा ।
 ऐरिं ते पांडवा । वणिज करणें ॥ ९ ॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततं ॥

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥ ४६ ॥

ह्यणौनि विहितक्रिया केली । नव्हे तेयाची खूण पाळिली ।
 जेया पासौनि कां आलीं । आकार भूतें ॥ ९१० ॥
 जो अविद्येचिया चिंधिया । गुंडाळनि जीव बाउलिया ।
 खेलवीतसे गुणियां । अहंकाररज्जु ॥ ११ ॥
 जेणें जग हें समस्त । आंतु बाहिरि भरित ।
 जालें आहे दीपचात । तेजें जैसें ॥ १२ ॥
 तेया सर्वात्मका ईश्वरा । स्वकर्मकुसुमाची वीरा ।
 पूजा केली होये अपारा । तोखा लागि ॥ १३ ॥
 ह्यणौनि तिये पूजे । रिझलेनि आत्मराजें ।
 वैराग्यसिद्धि दीजे । पसाया तेया ॥ १४ ॥
 जें वैराग्यदशे । ईश्वराचेनि वेधवसें ।
 हें सर्व ही नावडे जैसें । वांत होणें ॥ १५ ॥
 प्राणनाथाचिये आधी । विरहिणीतें जीणें बाधी ।
 तैसें सुखजात त्रिशुद्धी । दुःखा चि लागि ॥ १६ ॥
 सम्यग्ज्ञाना उदैजतां । वेधें चि तन्मयता ।
 उपजे ऐसी योग्यता । बोधाची लाहे ॥ १७ ॥
 ह्यणौनि मोक्षलाभा लागि । जो व्रतें बाहांतसे आंगीं ।
 तें स्वधर्मु चांगीं । अधिष्ठावा ॥ १८ ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनिष्ठितात् ॥

स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषं ॥ ४७ ॥

आगा आपुला हा स्वधर्मु । आचरणें जन्हीं विषमु ।
 तन्हीं पाहावा तो परिणामु । फलैल जेणें ॥ १९ ॥
 जें सुखा लागि आपणपेयां । निंव चि आधि धनंजया ।
 तें कडुवटपण तेया । भोगिजे ना ॥ २० ॥
 फलणेयां ऐली कडे । केलि तें पाहांतां आशा मोडे ।
 ऐसें त्यजिलें तरि जोडे । तैसें कें गोमटें ॥ २१ ॥

तेवि स्वधर्मु सांकडु । देखौनि केला जरि कीडु ।
 तरि मोक्षमुरवाडु । अंतरला ॥ २२ ॥
 आणि आपुली माए । कुब्ज जन्हीं आहे ।
 तन्हीं जीणें जीजे तें नोहे । स्नेह कुन्हे कौं ॥ २३ ॥
 एरी जिया पराविया । रंभेदुनि बरविया ।
 तिया काइ कराविया । बालकें तें ॥ २४ ॥
 आगा पाणियांहुनि वौहें । तूपी गुणु कीरु आहे ।
 परि मीनां काइ होए । असणें तेथ ॥-२५ ॥
 पै आघवियां जगीं जें विष । तें कीडेयाचें पीयूष ।
 आणि जगा गूल देख । तेथ मरण तेया ॥ २६ ॥
 हणौनि विहित जें जेया जीणें । फीटे संसाराचें धरणें ।
 क्रिया कठोर तन्हीं तें ॥ तें चि करावें ॥ २७ ॥
 एरा पराचारा बरविया । ऐसें होईल टेंकलेयां ।
 पायांचें चालणें डोया । केलें जैसें ॥ २८ ॥
 यया लागि कर्म आपुलें । जें जातिस्वभावेसि आलें ।
 तें करी तें जीतलें । कर्मबंधातें ॥ २९ ॥

सहजं कर्म कौंतेय सदोषमपि न त्यजेत् ॥

सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

आणि स्वधर्मू चि पालवा । परधर्मु तो गालवा ।
 हा नियमु हीं पांडवा । न कीजे चि पां ॥ ३० ॥
 तन्हीं आत्मा दृष्ट नोहे । तवं कर्म करणें कां ठाए ।
 आणि करणें तेथ आहे । आयासु आधीं ॥ ३१ ॥
 हणौनि भलेतिये कर्मी । आयासु जरि उपकर्मी ।
 तारे काइ स्वधर्मी । दोषु सावें ॥ ३२ ॥
 अगा उजू वाटा चालावें । तन्हीं पाये चि सीणवावे ।
 ना आडरानें धावावें । तन्हीं तें चि ॥ ३३ ॥

पै शिला कां सिधौरिया । दाटणें एक धनंजया ।
 परि जें वाहांतां विसावेया । मिल्लें तें घेये ॥ ३४ ॥
 यन्हर्वि कणा भूसा । कांडितां हिं सोसु सरिसा ।
 जें चि रांधणें माणुसा । तें चि हवि ॥ ३५ ॥
 परि धर्मपत्नी कां धांगडि । पोसितां जरि एकि वोढि ।
 तारि कां अपखडि । आणात्री आंगां ॥ ३६ ॥
 दधिजलाचेया गुसलणां । व्यापार सारिखा विचक्षणां ।
 बालुवे तिलां घाणा । गालणें एक ॥ ३७ ॥
 आगा पाठीं लागतां घाई । मरण न चुके चि पाहीं ।
 तारि समोरिलां काई । आगलें कीजे ॥ ३८ ॥
 कुलस्त्री दांडेयांचे घाए । निगाली हीं जरि साहे ।
 तारि स्वपतितें वार्ये । साडिलें कीं ॥ ३९ ॥
 तैसें आवडतें हिं करणें । न निफजे सीणलेयां हिं उणें ।
 तारि विहित वा कोणें । बोलें भारी ॥ ९४० ॥
 वारि थोडें चि अमृत घेंतां । सर्वस्व वेचो कां पांडुसुता ।
 जेणें जोडे जीविता । अक्षयत्वं ॥ ४१ ॥
 एर काह्या मोलें पुरुनु । विष पियावें घेउनु ।
 आत्महत्यासीं निमौनु । जाइजे जेणें ॥ ४२ ॥
 तौसिं जाचूनियां इंद्रियें । वेचौनियां आयुष्याचेनि दियें ।
 सांचिलीं पापियें आन आहे । दुःख वांचौनि ॥ ४३ ॥
 ह्यणौनि करावा चि स्वधर्मु । जो कारितां हीरौनि श्रमु ।
 उचित देखिल परमु । पुरुषार्थराजु ॥ ४४ ॥
 या कारणें किरीटी । स्वधर्माची राहाटी ।
 न विसंविजे संकटीं । सिद्धमंत्रु जैसा ॥ ४५ ॥
 कां नावेसि जैसें उदधी । महारोगीं दिव्योषधी ।
 न विसंभिजे तेया बुद्धी । स्वकर्म एथ ॥ ४६ ॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।

नैकर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९ ॥

मग इया चि गा कपिध्वजा । स्वकर्माचिया महापूजा ।

तोखला ईशु तमरजां । झाडि करुनि ॥ ४७ ॥

मुधासत्वाचिया वाटा । आणि आपुली उत्कंठा ।

भवस्वर्गा कालकूटा । ऐसें दावी ॥ ४८ ॥

जियें वैराग्य एणें बोलें । मागां संसिद्धी रूप केलें ।

किंबहुना तें आपुलें । मेलवी खामें ॥ ४९ ॥

मग जीतलेयां हें भोए । पुरुषु सर्वत्र जैसा आहे ।

कां जाला ही जें लाहे । तें आतां सांघों ॥ ५० ॥

तारि दाहीक हें संसारें । सवें मांडिलेंसे जे गुंपिरें ।

तेथ नांतुडे वागुरे । वारा जैसा ॥ ५१ ॥

पैं परिपाकाचिये वेळे । फल देंटें ना देटु फलें ।

तैसें खेह खुलें । सर्वत्र होए ॥ ५२ ॥

पुत्रवित्तकलत्र । हें जालेयां हि स्वतंत्र ।

माझें न हणणे पात्र । विष चि जैसें ॥ ५३ ॥

ऐसा हे विषयजातीं । बुद्धि पोलिली जैसी माघुती ।

पाउलें घेंति एकातीं । हृदई चि रिगे ॥ ५४ ॥

ऐसेया अंतष्करण । वाहियें येतां तेयाची आण ।

न मोडी समर्था भेण । दासि जैसी ॥ ५५ ॥

तैसी ऐक्याचिये मुठी । माझिवडें चित्त किरीटी ।

करुनि वेधी निहटी । आत्म्याचां ॥ ५६ ॥

तेधवां दृष्टादृष्टस्पृहे । निमातें जालें चि आहे ।

आगि दडपिलेयां धूवें । न्हाइजे काइ ॥ ५७ ॥

ह्यणौनि निर्मले मानसिं । स्पृहा नाशौनि जाथे आपैसी ।

किंबहुना तो ऐसी । भूमिका पावे ॥ ५८ ॥

पै अन्यथाबोधु आववा । मावलौनि तेया पांडवा ।
 बोधमात्रौं चि जीवा । ठावो होए ॥ ५९ ॥
 धारवणी वेचें सरे । तैसें भोगें प्राचीन पुरे ।
 नवे तवं नुपकरे । काहिं चि करुं ॥ ६६० ॥
 तैसी कर्मसाम्यदशा । होये तेथ वीरेशा ।
 श्रीगुरु आपैसा । भेटे चि गा ॥ ६१ ॥
 रातिची चौपाहारी । वेचलेयां अवधारीं ।
 डोळेयां तमोरी । मिळे जैसा ॥ ६२ ॥
 कां एउनु फलाचा घडु । पारुखवी केलिचा वाडु
 गुरु भेटौनि करी पाडु । मुमुक्षा तैसा ॥ ६३ ॥
 मग आळंगिला पूर्णिमां । उणीव सांडी चंद्रमा ।
 तैसें होये वीरोत्तमा । गुरुकृपा तेया ॥ ६४ ॥
 तेधवां अबोध मात्र असे । तें तवं तेया कृपा नासे ।
 तेथ रात्रीसर्वें जाये आपैसैं । आंधारें जैसैं ॥ ६५ ॥
 तैसें अबोधनासा सर्वें । नासे क्रियाजात आघवें ।
 ऐसा समूल संभवे । संन्यासु हा ॥ ६६ ॥
 एणें समूलज्ञानसंन्यासैं । दृश्याचा ठाउ जेथ पूसे ।
 तेथ बुद्धावें तें आपैसैं । तो चि आहे ॥ ६७ ॥
 चेडलेयां वरि पाहिं । स्वमित्रां तिये डोहीं ।
 आपणेयांतें काई । काढूं जाइजे ॥ ६८ ॥
 तें मीं नेगें आतां जाणैन । हें सरळें तेया स्वप्न ।
 जाला ज्ञातृज्ञेया विहीन । चिदाकाश जो ॥ ६९ ॥
 मुखाभासैं आरिसा । परौता नेलेयां वीरेया ।
 पांतेपणें विण जैसा । पांत ठाके ॥ ९७० ॥
 तैसें नेणणें जें गेलें । तेणें जाणणें हीं नेलें ।
 मग निष्क्रिय उरलें । चिन्मात्र चि ॥ ७१ ॥

तेथ स्वभावे धनजया । नाहिं कोणहीं चि क्रिया ।
 ह्यणौनि प्रवादु तेया । निष्कर्म्य ऐसा ॥ ७२ ॥
 तें आपुलें आपणपें । असतू चि होउनि आरोपे ।
 तरंगु कां वायुलोपें । समुद्रु जैसा ॥ ७३ ॥
 तैसें न होणें निफजे । नैष्कर्म्यसिद्धि ह्यणिजे ।
 सर्वा हीं सिद्धी साहाजें । प्रेम हें चि ॥ ७४ ॥
 देउलिचिया कामा कलशु । परमु गंगे सिंधुप्रवेशु ।
 कां सुवर्णशुद्धी कसु । सोळांवां जैसा ॥ ७५ ॥
 तैसें आपुलें नगणें । फेडिजे कां जाणणें ।
 तें हिं गीळनि जें असणें । ऐसी जे दशा ॥ ७६ ॥
 तिये परौतें काहिं । निफजणें एथ नाहिं ।
 ह्यणौनि ह्यणिपे पाहीं । परमसिद्धि ते ॥ ७७ ॥

सिद्धि प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ॥
 समासेनैव कौंतेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५० ॥

परि हे चि आत्मसिद्धि । जो कोणु भाग्यनिधि ।
 श्रीगुरुकृपालब्धीं । कालि पावे ॥ ७८ ॥
 उदैजतां दिनकरु । प्रकाशु आते आंधारु ।
 कां दीपा संगें दीपाकारु । होये तंतु ॥ ७९ ॥
 ते लवणांची कणिका । मिलत खे० उदका ।
 उदक चि होउनि देखां । ठाके जेवि ॥ ८० ॥
 कां निद्रितु चेवविलेयां । स्वप्नेसी नीदे वायां ।
 जाउनि आपणपेयां । मिले जैसा ॥ ८१ ॥
 तैसिं जियां कोणशाचीं दैवें । गुरुवाक्यश्रवणां चि सर्वें ।
 द्वैत गीळनि विसंवे । आपणपेयां वृत्ति ॥ ८२ ॥
 तेयासि मग करणें । हें वोळिजैल चि कवणें ॥
 आकाशा एणें जाणें । हांयें काई ॥ ८३ ॥

ह्यपौनि तेयासि काहिं । त्रिशुद्धी करणें नाहि ।
 परि ऐसें हें जरि काहिं । नोहे जेया ॥ ८४ ॥
 कानावचनाचिये भेटी । सरिसा चि पै किरिटी ।
 वस्तु होउनि उठी । कव्हणी एकु जो ॥ ८५ ॥
 यन्हविं स्वकर्माचिया वन्ही । काम्यनिषेधाचां इंधनीं ।
 रजतमें किर दोन्हीं । जालिलीं आधीं ॥ ८६ ॥
 पुत्र वित्त परलोकु । ययां तिहींचा अभिलाखु ।
 घरिं होये पाइकु । हें इं जालें ॥ ८७ ॥
 इंद्रियें सदा पदार्थी । रिगतां विटाललीं हांतीं ।
 तियें प्रत्याहारतीर्थी । नाहाणिलिं कीर ॥ ८८ ॥
 आणि स्वधर्माचें फल । ईश्वरीं अपौनि केवल ।
 घेउनि केलें अढल । वैराग्यपद ॥ ८९ ॥
 ऐसी आत्मसाक्षात्कारी । लाभे ज्ञानाची उजिरी ।
 ते सामग्री किर पुरी । मेलविली ॥ ९० ॥
 आणि तिये चि समइं । सदुरु भेटले पाहीं ।
 तेविं चि तिहीं । राहिजे ना ॥ ९१ ॥
 परि औषध घेत खेअ । काइ लाभे आपुला थाअ ।
 किं उदैजतां चि दीअ । मध्यान होए ॥ ९२ ॥
 सुक्षेत्रिं आणि बोलटें । विं पेरिलें गोमटें ।
 परि अलोट फल भेटे । परि वेले पै गा ॥ ९३ ॥
 जोडला मार्गु प्रांजलु । मीनला सुसंगाचा मेलु ।
 तारि पाविजे वांचौनि वेलु । लागे चि किं ॥ ९४ ॥
 तैसा वैराग्यलाभु जाला । वरि सदुरु भेटला ।
 जीवा अंकुरु फूटला । विवेकाचा ॥ ९५ ॥
 तेणें ब्रह्म एक आधि । एर आघत्री चि आंति ।
 हे हीं किर प्रलीति । गाढी केली ॥ ९६ ॥

परि तें चि जें परब्रह्म । सर्वात्म सर्वोत्तम ॥
 मोक्षाचें हीं काम । सरे जेथ ॥ ९७ ॥
 इया तीन्हीं अवस्था पोटी । जिरविजें कां किरीटी ।
 तेया ज्ञानासि ही मीठी । दे जे वस्तु ॥ ९८ ॥
 ऐक्याचें ऐक्यपण सरे । जेथ अद्वयकणु हीं विरे ।
 काहिं चि नुरौनि उरे । जें कां हिं गा ॥ ९९ ॥
 तिये ब्रह्मां एकपणें । ब्रह्म चि होउनि असणें ।
 तें काम चि वारुनि तेणें । पाविजे पै ॥ १००० ॥
 भूकैलेया पासीं । उगारिलें षडूसीं ।
 तो तृप्ति ग्रासीं । लाहे जेवि ॥ १ ॥
 तैसा वैराग्याचा उल्लावा । विचाराचा तो दिवा ।
 आंबुधितां आत्मठेवा । काढी चि तो ॥ २ ॥
 तारि भोगिजे आत्मरिद्धि । यवडी योग्यतेची सिद्धि ।
 जेया आंगिं निरवधी । लेणें जाली ॥ ३ ॥
 तो जेणें क्रमें ब्रह्म । होणें करी कां सुगम ।
 तेया क्रमाचें आतां वर्म । आडक सांघों ॥ ४ ॥

बुध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।

शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ ५१ ॥

तारि गुरु दाविलेया वाटा । एउनि विवेकतीर्थतटा ।
 धूनियां मलकटा । बुद्धिचा तेणें ॥ ५ ॥
 मग राहूनि उगळिली । प्रभा चंद्रें आलंगिली ।
 तैसी शुद्धी ते जडली । आपणपां बुद्धि ॥ ६ ॥
 सांडौनि कुळें दोन्हीं । क्रिया अनुसरे कामिनी ।
 द्वंदत्यागें स्वचितनी । पडिली तैसी ॥ ७ ॥
 आणि ज्ञान ऐसें जिन्हार । नेवों नेति निरंतर ।
 इंद्रियि पीकिलें धोर । शब्दादिक जें ॥ ८ ॥

तें रश्मिजाल काढिलेयां । मृगजल जाये लया ।
 तैसें धृतिरोखें तेया । पांचां हिं केळें ॥ ९ ॥
 नेणतां अन्नमाचें अन्न । खादलेयां कीजे वमन ।
 तैसीं वोकविलीं सवासन । इंद्रियें विषयीं ॥ १० ॥
 मग प्रत्यक्षप्रवृत्ति चोखटे । गंगेचेनि टाविलीं तटें ।
 ऐसीं प्रायश्चित्तें धोवटें । केळीं एणें ॥ ११ ॥
 पाठिं सात्विकें धीरें तेणें । शोधारिलीं तियें करणें ।
 मनोसिं योगधारणें । मेळविलीं ॥ १२ ॥
 तेविं चि प्राचीन इष्टानिष्टें । भोगोसिं येउनि भेटे ।
 तेथ देखिलेयां हिं चोखटें । द्वेषु न करी ॥ १३ ॥
 ना गोमटें चि विपार्यें । तें आणूनि पुढां सुवे ।
 तरि तेया लागि नोहे । साभिलाखु ॥ १४ ॥

विविक्तलेखी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ॥

ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥

इया परीं इष्टानिष्टीं । रागद्वेष किरीटी ।
 त्यजूनि गिरिकपाटीं । निकुंजी वसे ॥ १५ ॥
 गजबज सांडिलिया । वसत्री वनस्थलिया ।
 आंगाचिया मांदिया । एकलिया ॥ १६ ॥
 शमदमादिकिं खेले । न बोलणानि चावळे ।
 गुरुवाक्याचेनि मेलें । नेणे वेलु ॥ १७ ॥
 आणि आंगा बल यावें । नातरि क्षुधा जावें ।
 कां जीभेचे पुरवावे । मनोरथ ॥ १८ ॥
 भोजन करितां विषीं । यां तिहींतें हीं न लेखी ।
 आहारिं मीति संतोषीं । माप सुये ॥ १९ ॥
 आसनाचेनि पावकें । दुरपतां प्राणु पोखे ।
 येया चि लागि मोटकें । अशन करी ॥ १०२० ॥

आणि परपुरुषें कामिली । कुलवधू आंग न घली ।
 निद्रालस्य न मेकली । आसन तैसें ॥ २१ ॥
 दंडवताचेनि प्रसंगें । भुइं हान आंग लागे ।
 वांचौनि एर नेघे । रामस्य जेथें ॥ २२ ॥
 देहनिर्वाहा पुरतें । राहाटवी हातपायांतें ।
 किंबहुना आपैतें । सवाह्य केलें ॥ २३ ॥
 आणि मनाचा उंबरा । वृत्तांसि देखों नेदी वीरा ।
 तेथ कें वाग्यानारा । अवकाशु असे ॥ २४ ॥
 ऐसेन देहवाचामानस । हें जीणौनि बाह्य प्रदेश ।
 आकोटिलें आकाश । ध्यानाचें तेणें ॥ २५ ॥
 गुरुवाक्यें उटिला । बोधाचा निश्चयो आपुला ।
 नेहालीं हातीं घेतला । आरिसा जैसा ॥ २६ ॥
 पै ध्याता आपणपें चि परी । ध्यानरूपें वृत्तां माझारि ।
 ध्येयत्वं हे अवधारीं । ध्यानरूढि गा ॥ २७ ॥
 तेथ ध्यानध्येयध्याता । यां तिहिं एकरूपता ।
 होये तवं पांडुसुता । कीजे तें गा ॥ २८ ॥
 ह्यगौनि तो मुमुक्षु । आत्मज्ञानीं जाला दक्षु ॥
 परि पुढां सूनि पक्षु । योगाभ्यासाचा ॥ २९ ॥
 अपानरंध्रद्वया । माझारि धनंजया ।
 पारणी पीडूनियां । कांवरूमूला ॥ १०३० ॥
 आकुंचूनु अध । देरनि तीन्हीं बंध ।
 करूनि एकवद शुद्ध । वायुभेद ॥ ३१ ॥
 कुंडलिणी जागौनि । मध्यमा विक्रासौनि ।
 आधारादि भेटुनि । आज्ञा वेन्हीं ॥ ३२ ॥
 सहस्रदलाचा मेघु । पीयूषु वरिखौनि चांगु ।
 तो मूळ वेन्हीं उधु । आणूनियां ॥ ३३ ॥

नाचतेया पुण्यगिरि । चिद्भैरवाचां खापरीं ।
 मनपवनाचां खीचु करी । वाढूनियां ॥ ३४ ॥
 जालेयां योगाचा गाढा । मेलाना सूनि हा पुढां ।
 ध्याना मागिली कडां । स्वयंभ केले ॥ ३५ ॥
 आणि ध्यानयोग दोन्ही । इयें आत्मतत्त्वज्ञानीं ।
 पैठि होआवेया निर्दिष्टीं । आदीं चि तेणें ॥ ३६ ॥
 वीतराग तेया सारिखा । जोडूनि ठेविला सखा ।
 तो आषविया चि भूमिका । सर्वे चाले ॥ ३७ ॥
 पावें तें दीसे तवं वेन्हीं । दीठितें न संडी दीपु जारि ।
 तारि कें असे अवसरी । देखावेया ॥ ३८ ॥
 तैसें मोक्षीं प्रवर्तलेयां । वृत्ति ब्रह्मीं जाये लया ।
 तवं वैराग्य आधि तेया । भंगु कैचा ॥ ३९ ॥
 ह्यगौनि सर्वैराग्यु । ज्ञानाभ्यासु तो सभाग्यु ।
 करूनि जाला योग्यु । आत्मलाभा ॥ १०४० ॥
 ऐसी वैराग्याची आंगीं । बाणूनियां वज्रांगी ।
 राजयोगुतुरंगीं । आरूढला ॥ ४१ ॥
 वारिपडिलें दीठी । सानें थोर ही निवटी ।
 ते बली विवेकमूठी । ध्यानांचे खांडे ॥ ४२ ॥
 ऐसेनि संसाररणा आंतु । आंधरीं सूर्यु तैसा असे जांतु ।
 मोक्षविजयश्रिये वरैतु । होआवेया ॥ ४३ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहं ॥

विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥

तेथ आडवैरें चि आले । दोषवैरी जे घोपटिले ।
 तेयां माझि पहिलें । देहीं अहंकार ॥ ४४ ॥
 जो न मोकली मारुनि । जिवों नेंदी उपजौनि ।
 विचंबी खोडां घालुनि । हाडाचां इये ॥ ४५ ॥

तेयाचा देह हा थारा । मोडूनि घेतला वीरा ।
 आणि बल हा दुसरा । मारिला वैरी ॥ ४६ ॥
 जें विषयांचेनि नावें । चौगुणें हीं परि ठावें ।
 जीणें मृतावस्था धांवें । सर्वत्र जगा ॥ ४७ ॥
 तो विषयविषिचा धावो । आववेयां दोषांचा रावो ।
 ध्यानखड्याचा घा३० । साहील कैचा ॥ ४८ ॥
 आणि प्रियप्रप्ती । करी जेया सुखाची व्यक्ती ।
 तेयाची घादूनि बूधि । आंगी जो वाजे ॥ ४९ ॥
 जो सन्मार्ग भुलवी । मग अधर्माचां अडवीं ।
 सूनि वाघां सांपडवीं । नरकादिकां ॥ १०५० ॥
 तो विश्वासें मारितां रिपु । निवटूनि घातला दर्पु ।
 आणि जेयाचा आहा कंपु । तापसांसिं ॥ ५१ ॥
 क्रोधा ऐसा हा महादोखु । देख पां जेयाचा परिपाकु ।
 भरिजे तवं अधिकु । रिता होये जो ॥ ५२ ॥
 तो कामु कोण्हीं चि ठांइ । नसे ऐसें केलें पाहीं ।
 किं तें चि क्रोधा ही । साहाजें जालें ॥ ५३ ॥
 मूलाचें तोडणें जैसें । होये कां शाखा दोसें ।
 कामें नासिलेनि नासे । तैसा क्रोधु ॥ ५४ ॥
 हणौनि कामु वैरी । जाला जेथ ठाणौरी ।
 तेथ सरली वारी । क्रोधाची ही ॥ ५५ ॥
 समर्थु आपुला खोडा । सीसें वाहावी जैसा होडा ।
 तसा भुंजौनि गाढा । परिग्रहो ॥ ५६ ॥
 जो माथा चि पालाणत्री । आंगा आवगु घालवी ।
 ममत्वाची घेववी । जिये दांडी ॥ ५७ ॥
 शिष्यशास्त्रादिविलामें । मठामुद्राचेनि मीसें ।
 घातले आहाति पासैं । निसंगां जेणें ५८ ॥

धरि कुटंबपणें सरे । तरि वनीं वनत्वं अवतरे ।
 नागिवेया ही शरीरे । लागला आहे ॥ ५९ ॥
 ऐसा दुर्जयीं परिग्रहो । तेयाचा फडूनि ठाऊ ।
 भवविजयाचा उत्साहो । भोगीतु असे तो ॥ १०६० ॥
 तेथ अमानित्वादि आवचे । ज्ञानगुणाचे जे मेलवे ।
 ते कैवल्यदेशिचे आवचे । राय जैसे आले ॥ ६१ ॥
 नव्हे सम्यग्ज्ञानाचिया । राणिवा उगाणूनि तेया ।
 परिवारु होउनियां । राहांति आपण ॥ ६२ ॥
 प्रवृत्तीचिये राजबीदी । अवस्थाभेदप्रमदी ।
 कीजताये प्रतिपदीं । सुखाचें लोण ॥ ६३ ॥
 पुढां बोधाचिये कांनि वेन्हीं । विभेकु दृश्याची मांदी सारी ।
 योगभूमि आरतीकरी । यति, जैसिया ॥ ६४ ॥
 तेथ रिद्धीसिद्धीचीं अनेके । वृद्धें मिलतें प्रसंगें ।
 तिये पुष्पवर्षीं जांगें । नाहोतसे तो ॥ ६५ ॥
 ऐसें ब्रह्मैक्यात् सारिखें । स्वराज्य यंतां जवलिके ।
 झलंबित आहे हरिखें । तीन्ही लोक ॥ ६६ ॥
 तेधवां वैरी कां मैत्रिया । तेयासि माझे ह्मणावेया ।
 सन्माना धनंजया । उरे चि ना ॥ ६७ ॥
 हें ना भलेतेणें व्याजें । जो जेयातें ह्मणे माझे ।
 तें नोडवे चि मां दूजे । अद्वितीयु जाला ॥ ६८ ॥
 पै आपुलिया ऐकी सत्ता । सर्वें कवलूनि पांडुसुता ।
 काहिं न लगती ममता । धाडिली तेणें ॥ ६९ ॥
 ऐसा जीतलेयां रिपुवर्गु । आपु मानलेयां हा जगु ।
 आपैसेया योगतुरंगु । थीरु जाला ॥ १०७० ॥
 वैराग्याचें गाढलें । आंगीं त्राण होतें उभलें ।
 तें हिं नावेक दिलें । केलें तेधवां ॥ ७१ ॥

आणि लोटी ध्यानाचें खाडें । तें दूजें नाहिं फुडें ।
 ह्यणौनि हातु आखुडे । वृत्तिचा ही ॥ ७२ ॥
 जैसैं रसाशय खरें । आपुलें काज करुनि पुरें ।
 आपण हिं उतरे । तैसैं होंतें ॥ ७३ ॥
 देखौनि टाकिता ठावो । धांत्रंतां थिरावे पाउ ।
 तैसा ब्रह्मसामीप्यें थावों । अभ्यासु सांडी ॥ ७४ ॥
 घडतां महोदधीसीं । गंगा वेगें सांडिजे जैसी ।
 कां कामिनी कंया पारिं । मंथर होए ॥ ७५ ॥
 नाना फलतिए वेले । केलिची वाढि मांडुले ।
 कां गावां पुढें वाले । मार्गु जैसा ॥ ७६ ॥
 तैसा आत्मसाक्षात्कार । होइल देखों गांकरु ।
 ऐसा साधनहातियेरु । खलु चि ठेवी ॥ ७७ ॥
 ह्यणौनि ब्रह्मेसिं तेया । ऐक्याचा समयो धनंजया ।
 होंतसे तें उपाया । अहट्टु पडिला ॥ ७८ ॥
 मग वैराग्याची गोधुलुक । जें ज्ञानअभ्यासाचें वार्द्धक ।
 योगफलाची ही परीपाक - । दशा जे कां ॥ ७९ ॥
 ते शांति पै गा सुभगा । संपूर्ण ये तेयाचिया आंगा ।
 तें ब्रह्म होआवेया जोगा । होये तो पुरुषु ॥ १०८० ॥
 पुनिवेहूनि चाउदसीं । जेतुलें उणेपण शशी ।
 कां सोलें पाहूनि जैसी । पन्हरावी वानी ॥ ८१ ॥
 सागरां हीं पाणि वेगें । संचरे तें रूप गंगे ।
 येर निश्चल जें उगें । तें समुद्रु जैसा ॥ ८२ ॥
 ब्रह्म आणि ब्रह्महोंतिये । योग्यते तैसा पाडु आहे ।
 तें चि शांतिचेनि लाहें । होतें तो गा ॥ ८३ ॥
 पै तें चि होणेन विण । प्रतीती आलें ब्रह्मपण ।
 ते ब्रह्म होती जाण । योग्यता एथ ॥ ८४ ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ॥

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां ॥ ५४ ॥

ते ब्रह्मभावयोग्यता । पुरुषु मग तो पांडुमुता ।

आत्मबोधप्रसन्नता— । पर्दां बैसे ॥ ८५ ॥

जेणें निफजे रससोर । तो तापु ही जें जाए ।

तैं ते कां होए । प्रसन्न जैसी ॥ ८६ ॥

नाना भरतिया लगबगा । शरत्कालिं सांडिजे गंगा ।

कां गीत राहातां उपांगा । अहट्टु पडे ॥ ८७ ॥

तैसा आत्मबोधीं उद्यमु । करितां होये जो श्रमु ।

तो ही जेथ समु । होइनि जाए ॥ ८८ ॥

आत्मबोधप्रशस्ती । हे तिये दशेची क्षिति ।

ते भोगितसे महामती । योग्यु तो गा ॥ ८९ ॥

तेधवां अप्राप्तें शोचावें । काहिं कामावेया कामावें ।

हें सरलें समभावें । भरतेया तेया ॥ १०९० ॥

उदया यंतां गभस्ती । नानानक्षत्रव्यक्ती ।

हारविजति दीप्ती । आंगिका जेवि ॥ ९१ ॥

तेवि उठितिया आत्मप्रथा । हे भूतभेदव्यवस्था ।

मोडितमोडितां पार्था । वास पाए तो ॥ ९२ ॥

पाटेया वरिलें आखरें । जैसिं पूसतें यंति करें ।

तैसीं हरपति भेदांतरें । तेयाचिया दीठी ॥ ९३ ॥

ऐसेनि अन्यथाज्ञानें । जियें घेपति जागरस्वप्नें ।

तियें दोन्हीं केलीं लीनें । अव्यक्ता माझि ॥ ९४ ॥

मग तें हिं अव्यक्त । बोधु वाढतां शिजत ।

पूर्णबोधीं समस्त । बुडौनि जाए ॥ ९५ ॥

नाना चालिचिया वाढी । वाट होंत थोडी ।

पातळां ठांइ बुडी । देउनि रिगे ॥ ९६ ॥

जैसी भोजनव्यापारीं । क्षुधा जिरत अवधारीं ।
 तृप्तिचां अवसरीं । नाहि होए ॥ ९७ ॥
 कां जागृति जवं उद्दीपे । तवं तवं नीद हारपे ।
 मग जागिनलेयां स्वरूपे । नसे चि गा ॥ ९८ ॥
 हें ना आपुलें पूर्णत्व भेटे । जेथ चंद्रासि वाढि कुंठे ।
 तेथ शुक्लपक्षु आटे । निशेषु जैसा ॥ ९९ ॥
 तैसें बोध्यजात गीलितु । बोध बोधे ये मज आंतु ।
 मिसळला तेथ सांघातु । अबोधु गेला ॥ १०० ॥
 तेधवां कल्पांतिचिये वेले । नदी सिंधुचे पेंडवले ।
 मोडौनि भरे जलें । आब्रह्म जैसें ॥ १ ॥
 नाना गेलेयां घटमठ । आकाश ठाके एकवट ।
 कां जलौनि काष्ठें काष्ठ । वन्ही चि होए ॥ २ ॥
 नातारि लेणेयांचे ठसे । आटौनि गेलेयां मूसे ।
 नामरूपभेदें तैसें । सांडिलें सोनें ॥ ३ ॥
 हें हीं असो चेइयेयां । तें स्वप्न नाहिं जालेयां ।
 आपण चि कां आपणेयां । उरिजे जैसें ॥ ४ ॥
 तेसा मी एकु वांचौनि काहिं । तेया तेया ही सकट नाहिं ।
 हे चौथी भक्ति पाहीं । माझी तो लाहे ॥ ५ ॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ॥
 ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनंतरं ॥ ५५ ॥

येर आर्त्त जिज्ञासु अर्थी । हे भक्ति जिहीं पंथीं ।
 ते तीन्ही पावौनि चौथी । ह्मणत आहों ॥ ६ ॥
 यन्हांवि तीजी नां चौथी । हे पहिली नां सरती ।
 पै माझी सहजस्थिति । भक्ति नावं ॥ ७ ॥
 जें नेणतें माझें प्रकाशुनि । अन्यथाखें मातें दाउनि ।
 सर्व हीं सर्वीं भजौनि । बुझावितसे ॥ ८ ॥

जो जेथ जैसे पाउं बैसे । तिया तेथ तैसे चि असे ।
 हें उजिवडें कां दीसे । अखंडें जेणें ॥ ९ ॥
 स्वप्निचें दीसणें न दिसणें । जैसे आपुलेनि असिलेपणें ।
 विश्वाचें आहे नाही जेणें । प्रकाशे जैसे ॥ १११० ॥
 ऐसा सहजु माझा । प्रकाशु जो कपिध्वजा ।
 तो भक्ति या उजा । बोलिजे गा ॥ ११ ॥
 हाणौनि आर्त्ताचां ठांड । हे आर्त्ति होउनि पाहीं ।
 अपेक्षणीय जें कांहिं । तें मीं केलं ॥ १२ ॥
 जिज्ञासु पुढां वीरेषा । हे चि होउनि जिज्ञासा ।
 मीं जिज्ञासु ऐसा । दाखविला ॥ १३ ॥
 हे चि होउनि अर्थना । मीं चि माझां अर्थीं अर्जुना ।
 करुनि अर्थाभिधाना । आणीं मातें ॥ १४ ॥
 अथवा घेउनि अज्ञानातें । माझिया भक्ती जें हें वर्त्ते ।
 तें दावी मज द्रष्टेयातें । दृश्य करुनि ॥ १५ ॥
 एथ मुख चि दीसे मुखें । या बोला कांहिं न चुके ।
 परि दूजेपण हें लटकें । आरिसा करी ॥ १६ ॥
 दीठी चंद्रू चि घे साचें । परि येतुलें हें तिमिराचें ।
 जें एक चि असे तेयाचें । दोनि दावी ॥ १७ ॥
 तैसें सर्वत्र मीं चि मियां । देखतसें भक्ती इया ।
 परि दृश्यत्व हें वायां । अज्ञानवसें ॥ १८ ॥
 तें अज्ञान आतां फीटलें । माझे दृष्टत्व मज भेटलें ।
 निजविंविं एकवटलें । प्रतिविंविं जैसें ॥ १९ ॥
 पै जेधवां इं असे कीडाल । तेधवां इं सोनें चि अढल ।
 परि तें गेल्यां केवल । उरे जैसें ॥ ११२० ॥
 हो कां पुनिवे आदिं कांहिं । चंद्रिं संधा चि नाहिं ।
 परि तिये दीं भेटे पाहीं । पूर्णता तेया ॥ २१ ॥

तैसा मी चि अज्ञानद्वारें । दीसैं परि हस्तांतरें ।
 मग दृश्य तें सरे । मियां चि मीं लाभें ॥ २२ ॥
 ह्यणौनि दृश्य पंथा । अतीतु माझा पार्था ।
 भक्तियोगु चौथा । ह्यणितला गा ॥ २३ ॥
 येया ज्ञानभक्ती सहज । भक्तु एकवटला मज ।
 तो मी चि केवल तुज । श्रुत ही आहे ॥ २४ ॥
 जें उभूनियां भुजा । ज्ञानियां आत्मा माझा ।
 हें बोलिलों कपिध्वजा । सप्तमाध्याइं ॥ २५ ॥
 ते हे कल्पादिभक्ति मियां । भागवतमीषें ब्रह्मेयां ।
 उत्तम ह्यणौनियां । उपदेशिली ॥ २६ ॥
 ज्ञानिये इयेतें स्वसंवित्ति । ह्यणति शैव शक्ति ।
 आह्मीं परमभक्ति । आपुली ह्यणों गा ॥ २७ ॥
 हे मज मिलतिये वेले । तेयां क्रमयोगियां फळे ।
 मग समस्त ही निखलें । मियां चि भरे ॥ २८ ॥
 तेथ वैराग्य विवेकेंसी । आटे बंधु मोक्षेंसी ।
 वृत्ति तिया आवृत्तिसी । बुडौनि जाए ॥ २९ ॥
 घेउनि ऐलपणातें । परत्व हारपे जेथें ।
 गीद्वनि च्यान्ही भूतें । आकाश जैसैं ॥ ११३० ॥
 तेया परीं साध्य— । साधनातीत शुद्ध ।
 तें मीं होउनि एकवद् । भोगी तो माझें ॥ ३१ ॥
 घडौनि सिंधुचेया आंगा । सिंधु वरि तळपे गंगा ।
 तैसा पाडु तेया भोगा । अवधारिजे ॥ ३२ ॥
 कां आरिसेयासि आरिसा । उट्टूनि दाविला जैसा ।
 देखणां अतिसो तैसा । भोगणां तिये ॥ ३३ ॥
 चेइलेयां स्वप्न नासे । आपुलें एक्य चि दीसे ।
 तें दूजेन विण जैसैं । भोगिजे कां ॥ ३४ ॥

हैं असो दर्पणु नेलेयां । तो मुखबोधु ही गेलेयां ।
 देखिलेपण एकलेयां । आस्वादिजे जेवि ॥ ३५ ॥
 तो चि जालेयां भोगु तेयाचा । न घडे हा भावो जेयांचा ।
 तें हि बोलें किर बोलाचा । उच्चार कीजे ॥ ३६ ॥
 तेयाचां नेणों गावीं । रवि प्रकाशे हान दिवी ।
 किं व्योमा लागि पडवी । उभिली तिहिं ॥ ३७ ॥
 हांगा राजत्व नव्हतां आंगिं । रावो आपण काइ भोगी ।
 किं आंधार हान आलंगी । दिनकराते ॥ ३८ ॥
 आणि आकाश जें नव्हे । तें आकाश काइ जाणावें ।
 रत्नाचां रूपिं मिरवे । गुंजांचें लेणें ॥ ३९ ॥
 ह्यणौनि मी होणें नाहिं । तेया मीं आहे कें हीं ।
 मग भजैळ हें काइ । बोलें किर ॥ ११४० ॥
 यया लागि तो क्रमयोगी । मी जाला चि मातें भोगी ।
 तारुण्य कां तरुणांगी । जिया परीं ॥ ४१ ॥
 तरंगु सर्वांगिं तोय चुंबी । प्रभा सर्वत्र विलसे बिंबिं ।
 नाना अवकाशु नमीं । लुंठतु जैसा ॥ ४२ ॥
 तैसा रूप होउनि माझें । मातें क्रिया विण तो भजे ।
 घनाकार कां साहाजें । सोनेयातें जेवि ॥ ४३ ॥
 चंदनाची द्रुति जैसी । चंदनीं असे आपैसी ।
 कां एकत्र गर्भशशी । चंद्रिका ते ॥ ४४ ॥
 तैसी क्रिया किर न साहे । तन्हीं अद्वैतीं भक्ति आहे ।
 हें अनुभवा जोगें नोहे । बोला ऐसें ॥ ४५ ॥
 तेथवां पूर्वसंस्कारसंदें । जें काहिं तो अनुवादे ।
 तेणें आलविलेनि वो दे । बोलता मीं चि ॥ ४६ ॥
 बोलतेया बोलता चि भेटे । तेथ बोलिलें हें न घटे ।
 तें मौन तवं गोमटें । स्तवन माझें ॥ ४७ ॥

हाणौनि तेया बोलतां । बोलीं बोलता मीं भेटतां ।
 मौन होये तेणें तत्वता । स्तत्री तो मातें ॥ ४८ ॥
 तैसें चि बुद्धीं कां दीठी । जें देखों जाये तो किरिटी ।
 तें देखणेयां दृश्य लोटी । देखतें चि दावी ॥ ४९ ॥
 आरिसेया आदी जैसें । देखतें चि मुख दीसे ।
 तेया तें देखणें तैसें । मेलवीं द्रष्टें ॥ ११५० ॥
 दृश्य जाउनियां दृष्टें । द्रष्टेयासी चि जें भेटे ।
 तें एकलेपण न घटे । द्रष्टेपण हि ॥ ५१ ॥
 तेथ स्वप्निचिया प्रिया । चेउनि झोंवों गेलेयां ।
 ठाडजे दोन्हीं होउनियां । आपण चि जैसें ॥ ५२ ॥
 कां दोन्ही काष्टांचिया वृष्टी । माझि वन्दि जो एकु उठी ।
 तो दोनि हे भाप आठी । आपण चि होए ॥ ५३ ॥
 नाना प्रतिबिंब हाति । घेउं गेलेयां गभस्ती ।
 विंबता ही थिती । जाये जैसी ॥ ५४ ॥
 तैसा मी होउनि देखतें । तो घेउं जाये दृश्यातें ।
 तेथ दृश्य नेथिलें तें । दृष्टत्व ही ॥ ५५ ॥
 रवी आंधारु प्रकाशितां । नुरे चि जेवि प्रकाश्यता ।
 तेवि दृश्या नाहि दृष्टता । मी जालेयां ॥ ५६ ॥
 मग देखिजे कां नेदखिजे । ऐसी जे दशा निफजे ।
 तें तें दर्शन माझें । साचोकारें ॥ ५७ ॥
 तें भलेतेया किरिटी । पदार्थांचिया भेटी ।
 दृश्यादृश्यातीता दृष्टी । भोगी तो सदा ॥ ५८ ॥
 आणि आकाश हें आकाशें । दाटलें न ढले जैसें ।
 मियां आपणपेनि तैसें । जालें तेया ॥ ५९ ॥
 कल्पार्ति उदक उदकें । रंभलेयां वाहो ठाके ।
 तैसें आत्मेनि मियां एकें । कोंदला तो ॥ ११६० ॥

पा३० आपणपेयां वलघे । केवि वन्हि आपणपेयां लागे ।
 आपणपेयां पाणी रिगे । गंगे स्नाना केवि ॥ ६१ ॥
 ह्यगौनि सर्व मी जालेपणें । ठेळें तेया एणें जाणें ।
 हें चि गा यात्रा करणें । अद्वया मज ॥ ६२ ॥
 पै जला वरिल्लु तरंगु । जन्हीं धांविंनला सवेगु ।
 तन्हीं नाहिं भूमीभागु । क्रमिला जैसा ॥ ६३ ॥
 जें सांडावें कां ठेवावें । चाळणें जें चालावें ।
 तें तो चि एक आघवें । ह्यगौनियां ॥ ६४ ॥
 गेल्यां भलेतेउता । उदकपणें पांडुमुता ।
 तरंगाची कां निश्चलता । न मोडे चि जेवि ॥ ६५ ॥
 तैसा मीपणें हालें ठेला । तो आघवेया चि मज आला ।
 इया यात्रा होये भला । कापडी माझा ॥ ६६ ॥
 आणि शरीरस्वभाववसें । काहिं एक करूं तैसे ।
 तारि मीं चि तेवि तेणें मीसें । नटें तेया ॥ ६७ ॥
 तेथ कर्म आणि कर्ता । हें जाउनियां पांडुसुता ।
 मी आत्मेनि मातें पांतां । मीं चि होयें ॥ ६८ ॥
 पै दर्पणातें दर्पणें । पाहिलेयां होये न पाणें ।
 सोनें झांकिलेयां सुवणें । न झंके जेवि ॥ ६९ ॥
 दीपातें दीपें प्रकाशिजे । तें न प्रकाशणें चि निफजे ।
 तैसें कर्म मियां कीजे । तें करणें कैचें ॥ ११७० ॥
 तें होंत चि आहे । जें करावें भाष जाए ।
 एसें न करणें चि होए । तेयाचें केलें ॥ ७१ ॥
 क्रियाजात मियां जालेपणें । घडे काहिं चि न करणें ।
 तेया चि नावें पूजणें । खुणेचें माझें ॥ ७२ ॥
 ह्यगौनि कारेतिया वोजा । न करणें कपिध्वजा ।
 निफजे तेया महापूजा । पूजि तो मातें ॥ ७३ ॥

येवं तो बोले तें स्तवन । तो देखे तें दर्शन ।
 अद्वया मज गमन । तो चाले तें चि ॥ ७४ ॥
 तो करी तेतुली पूजा । तो कल्पी तो जपु माझा ।
 तो असे ते चि कपिध्वजा । समाधि माझी ॥ ७५ ॥
 जैसें कनकेंसि कांकणें । असिजे अनन्यपणें ।
 तो भक्तियोगें एणें । मासि तैसा ॥ ७६ ॥
 किंबहुना तंतुसि पटु । कां मृत्तिकेसीं घटु ।
 तैसा तो एकवटु । मजसि माझा ॥ ७७ ॥
 उदकिं कळोळु । कापुरिं परिमळु ।
 रतिं उजालु । अनन्यु जैसा ॥ ७८ ॥
 इया अनन्यभक्ती । इयें आघवीं चि दृश्य जातीं ।
 मज आपणपेयां सुमती । द्रष्टेयातें जाणें ॥ ७९ ॥
 तिहिं अवस्थांचेनि द्वारें । उपाधि उपहिताकारें ।
 भावाभावरूप स्फुरे । दृश्य जें हें ॥ ११८० ॥
 तें हें आघवें चि द्रष्टा । ऐसां बोधाचां माजिवठां ।
 अनुभवाचा सुभटा । ढेंढा तो नाचे ॥ ८१ ॥
 रज्जु जालेयां गोचरु । आभासता तो व्यालाकारु ।
 रज्जू चि ऐसा निर्धारु । होये जेवि ॥ ८२ ॥
 भांगारा परौतें काहीं । लेणें गुंज भरि ही नाहिं ।
 हें आटूनि पाइं । कीजे जैसें ॥ ८३ ॥
 उदका एका परौतें । तरंग नाहिं चि हें निरुतें ।
 जाणौनि तेया आकारातें । नेवपे जेवि ॥ ८४ ॥
 कां स्वप्नविस्तारा समस्तां । चेउनियां उमाणें घेंतां ।
 आपणपेयां परौता । न दिसे जैसा ॥ ८५ ॥
 तैसा जे काहिं आथिनाथि— । पणें जे होये स्फूर्ति ।
 ते ज्ञाता चि मीं हे प्रतीति । होउनि तो भोगी ॥ ८६ ॥

जाणें अजु मीं अजर । अक्षय मीं अक्षर ।
 अपूरु मीं अपारु । आनंदु मीं ॥ ८७ ॥
 अचलु मीं अच्युतु । अनंतु मीं अद्वैतु ।
 आयु मीं अव्यक्तु । व्यक्तु ही मीं ॥ ८८ ॥
 ईशु मीं ईश्वरु । अनादि मीं अमरु ।
 अभय मीं आधारु । आधेय मीं ॥ ८९ ॥
 स्वामि मीं सदोदितु । सहजु मीं सतंतु ।
 सर्व मीं सर्वगतु । सर्वातीतु मीं ॥ ११९० ॥
 नवा मीं पुराणु । शून्य मीं संपूर्णु ।
 अशूलु मीं अणणू । जें काहिं तें मीं ॥ ९१ ॥
 अक्रियु मीं एकु । असंगु मीं अशोकु ।
 व्याप्य मीं व्यापकु । पुरुषोत्तमु मीं ॥ ९२ ॥
 अशद्दु मीं अश्रोतु । अरूपु मीं अगोत्रु ।
 समु मीं स्वतंत्रु । ब्रह्म मीं पर ॥ ९३ ॥
 ऐसें आत्मत्वे एका माते । इया भक्ती जाणे विरुते ।
 आणि इया बोधा जाणणे ते । ते ही मीं चि जाणे ॥ ९४ ॥
 पै चेइलेया नंतरें । आपलें एकपण उरें ।
 तें हीं तें वारि स्फुरे । तेयासि जैसें ॥ ९५ ॥
 कां प्रकाशतां अर्कु । तो चि होये प्रकाशकु ।
 तेया हीं अभेदा द्योतकु । तो चि जैसा ॥ ९६ ॥
 तैसा वेद्याचां विलइं । केवल वेदकु उरें पाहीं ।
 तेंणें जाणिवे तेया तो ही । हें इ जें जाणे ॥ ९७ ॥
 तेंणें अद्वय आपणां आपलेया । जाणति इति जे धनंजया ।
 ते ईश्वरु चि मीं तेया । बोधासि एं ॥ ९८ ॥
 मग अद्वैतातीत । मीं चि आत्मा एकु निभ्रांत ।
 हें जाणौनि जाणणें जेथ । अनुभविं रिगे ॥ ९९ ॥

तेथ चेड्लेयां एकपण । दीसे जें आपणेयां आपण ।
 तें हिं जातां नेणों कोण । होइज जेवि ॥ १२०० ॥
 कां डोला दैतिये क्षणीं । सरूपपण सुवर्णी ।
 आटौनि होये आटणी । घनाकाराची हीं ॥ १ ॥
 नाना लवण तोय होए । मग क्षारता तोयत्वे राहे ।
 तें किं जिरतां जें जाए । जालेपण तें ॥ २ ॥
 तैसा मीं तो हें जें असें । ते स्वानंदानुभवरसें ।
 काळवौनि प्रवेशे । मज चि माझि ॥ ३ ॥
 आणि तो हे भाष तेथ जाए । तेथ मीं कोणासिं आहे ।
 ऐसा मीं नां तो तिये सामाए । माझां चि रूपीं ॥ ४ ॥
 जेधवां कापुरु जळों सरे । तेया चि नावं आगि पुरे ।
 मग उभयातीत उरे । आकाश जेवि ॥ ५ ॥
 कां गेलेयां एकाएकु । वाढे तो शून्यविशेषु ।
 तैसा ओहेनाहींचा शोखु । मीं चि मग आधि ॥ ६ ॥
 तेथ ब्रह्म आत्मा ईशु । या बोला मोडे सौरसु ।
 न बोलणेयां हिं पैसु । नाहिं जेथ ॥ ७ ॥
 न बोलणें हिं न बोलौनि । तें बोलिजे तोंड भरुनि ।
 जाणिवे नेणिव नेणौनि । जाणिजे तो ॥ ८ ॥
 तेथ बोधिजे बोधु बोधें । आनंदु घेपे आनंदें ।
 सुख वरि नमुदें । सुख भोगिजे ॥ ९ ॥
 तेथ लाभु जोडला लाभ । प्रभा आलिंगिली प्रभा ।
 विस्मयो बुडाला उभा । विस्मया माझि ॥ १२१० ॥
 समु तो सामाविळा । विश्रामु विश्रांती आला ।
 अनुभवु ही वेडावला । अनुभूतीपणें ॥ ११ ॥
 किंवाहुना ऐसें निखल । मीपणें जोडे तेया एक फल ।
 सेउनि वेल्हाळ । क्रमयोगाची ते ॥ १२ ॥

पैं क्रमयोगा किरीटी । चक्रवर्त्तिचां मुगुटीं ।
 मी चिद्रत्न ते साटोवाटी । होये तो माझा ॥ १३ ॥
 किं क्रमयोगप्रसादाचा । कलशु जो हा मोक्षाचा ।
 तेया वरिला आकाशाचा । उवा३० जाला तो ॥ १४ ॥
 नाना संसारअडवीं । क्रमयोगु वाट बरवी ।
 जोडलियां मदैक्यगाविं । पैठा जाला ॥ १५ ॥
 ऐसा क्रमयोगु ३०घें । तेणें भक्तिचित्तगमें ।
 मी स्वानंदोदधि वेगें । टाकिलां गा ॥ १६ ॥
 हा ठा३० वेरीं सुवर्मा । क्रमयोगी आहे महिमा ।
 ह्यणौनि वेळोवेळां तुहां । सांघों तें आह्मीं ॥ १७ ॥
 पैं देशे काले पदार्थे । साधुनि घेइं मातें ।
 तैसा नव्हे मी आइतें । सर्वांचें सर्व ॥ १८ ॥
 एकु शिष्यु एकु गुरु । हा रूढला साचु वेव्हारु ।
 तो मत्प्राप्तिप्रकारु । जाणावेया ॥ १९ ॥
 ह्यणौनि माझां ठांइं । जचावें न लगे काहिं ।
 मी लाभें ये उपाइं । जचिजे चि गा ॥ १२२० ॥
 अगा वसुधेचां पोटीं । निधान सिद्ध किरीटी ।
 वन्हि सिद्धु काष्टीं । वोहां दूध ॥ २१ ॥
 परि लाभे तें असतें । तेया कीजे उपायातें ।
 एर सिद्ध तैसा येथें । उपायें मीं ॥ २२ ॥
 हा फल ही वरि उपा३० । कां प्रस्तावितसे देवो ।
 हें पूसा तरि अभिप्रा३० । एथिचा ऐसा ॥ २३ ॥
 जें गीतार्थांचें चांगावें । मोक्षउपाय परि आघवें ।
 आणि शास्त्रउपाय किं न्हेवे । प्रमाणसिद्धी ॥ २४ ॥
 वारा अभाळ चि फेडी । वांचौनि सूर्यातें न घडी ।
 कां हातु बाबुली घाडी । तोय न करी ॥ २५ ॥

तैसा आत्मदर्शनीं आडलु । असे जो अविद्येचा मळु ।
 तो शास्त्र नासी एरु निर्मळु । प्रकाशें स्वयें ॥ २६ ॥
 ह्यणौनि आघवीं चि शास्त्रें । अविद्याविनाशिचीं पात्रें ।
 वांचौनि नव्हंति स्वतंत्रें । आत्मबोधीं ॥ २७ ॥
 तेया आत्मबोधा शास्त्रांसि । जें साचपणांचीये पूसि ।
 तें एइजे जेया ठायासि । ते हे गीता ॥ २८ ॥
 भानुभूषिता प्राचिया । येरी सतेजा दिशा आघविया ।
 तैसी असे सर्वा गीता येया । सनार्थें शास्त्रें ॥ २९ ॥
 हें असो एणें शास्त्रेश्वरें । मागां उपावो बहुत्रें विस्तारें ।
 सांधितळा असे जो निकरें । घेऊं ये आत्मा ॥ १२३० ॥
 पारि प्रथमा श्रवणा सर्वें । अर्जुना विपायें फावे ।
 हा माऊं सकणवे । धरुनि श्रीहरी ॥ ३१ ॥
 तें चि प्रमेय येकोल । शिष्यें होआवें अढळ ।
 सांधिजतसे मुकुळ—। मुद्रा आतां ॥ ३२ ॥
 आणि प्रसंगें गीता । हा ठावो ही संपता ।
 ह्यणौनि दावी आद्यंता । एकार्थत्वे ॥ ३३ ॥
 जें प्रंथाचां मध्यभागीं । नाना अधिकारप्रसंगीं ।
 निरूपण अनेगीं । सिद्धांतीं केलें ॥ ३४ ॥
 तारि तेतुले ही सिद्धांत । इये शास्त्रीं प्रस्तुत ।
 हें पूर्वापर नेणत । कोण्ही जें मानीनां ॥ ३५ ॥
 तें महासिद्धांचा एवाका । सिद्धांतकक्षा अनेका ।
 भिड्ढुनि आरंभें देखां । संपवितसें ॥ ३६ ॥
 एथ अविद्यानाशु हें स्थळ । तेणें मोक्षोपादान फळ ।
 येयां दोहीं केवळ । साधन ज्ञान ॥ ३७ ॥
 हें एतुळें चि नाना परीं । निरोपिलें प्रंथविस्तारीं ।
 तें आतां दों आखरीं । अनुवादावें ॥ ३८ ॥

ह्यपौनि उपेय ही हार्ती । जालेयां उपायस्थिति ।
दे३० प्रवर्तले पुडुतीं । एणें चि भावें ॥ ३९ ॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्भाषाश्रयः
मत्प्रसादाद्वाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययं ॥ ५६ ॥

मग ह्यणे गा सूभटा । तो क्रमयोगि इया निष्ठा ।
मी होउनि होये पैठा । माझां रूपीं ॥ १२४० ॥
स्वकर्माचां लाखौलीं । मज पूजा करुनि भली ।
तेणें प्रसादें आकली । ज्ञाननिष्ठें ॥ ४१ ॥
ते निष्ठा जेथ हातवसे । तेथ भक्ति माझी उरहासे ।
तेया मजसां समरसें । सुखिया होए ॥ ४२ ॥
आणि विश्वप्रकाशितेया । आत्मेयां मज आपुलेया ।
अनुसरे जो मज करुनिया । सर्वत्रताहं ॥ ४३ ॥
सांझनि आपुला आडलु । लवण आश्राये जलु ।
कां हींडौं राहे निश्चलु । वायु व्योमीं ॥ ४४ ॥
तैसा बुद्धी वाचा कायें । जो मातें आश्राउनि ठाए ।
तो निषिद्धें हीं विपायें । कर्म करू ॥ ४५ ॥
पारि गंगेचां संवंधीं । बीदी आगि महानदी ।
एक्य तेवि माझां बोधीं । शुभाशुभांसि ॥ ४६ ॥
कां बावनेयां आणि घूरें । हा नित्राडु तवं चि सरे ।
जवं नेघपति वैश्वानरें । कवलूनि दोन्हीं ॥ ४७ ॥
नाना पांचिकें आणि सोळें । हें सोनेयां तवं चि आळें ।
जवं पारिसु आंगमेलें । एकवटी नां ॥ ४८ ॥
तेवि शुभाशुभें ऐसें । हें तवं चि वेन्हीं आभासे ।
जवं एकु न प्रकाशे । सर्वत्र मी ॥ ४९ ॥
आगा रात्रि आणि दीवो । हा तवं चि द्वैतभा३० ।
जवं न रिगिजे गा३० । गभस्तीचा ॥ ५० ॥

ह्यणौनि माक्षिया भेटी । तेयाचीं सर्व कर्में किरिटी ।
जाउनि बैसे तो पाटीं । सायुज्याचां ॥ ५१ ॥
देशें कालें स्वभावें । वेचु जेया न संभवे ।
तें पद माझें पावे । अविनाश तें ॥ ५२ ॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ॥
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥

किं बहुना पांडुसुता । मज आत्म्याची प्रसन्नता ।
लाहे तें न पविजता । लाभु कवणु असे ॥ ५३ ॥
या कारणें गा तुयां । सर्वकर्मा आपुलेयां ।
माझां रूपिं धनंजया । संन्यासु कीजे ॥ ५४ ॥
परि तो चि संन्यासु वीरा । करणायेचा झनें करा ।
आत्मविवेकीं धरा । चित्तवृत्ति हे ॥ ५५ ॥
मग तें विवेकवळें । आपणपें कर्मा वेगळें ।
माझां स्वरूपीं निर्मले । देखिजेल ॥ ५६ ॥
आणि कर्माची जन्म भोए । ये प्रकृती जे काहीं आहे ।
ते आपणेयांहूनि बहुत्रे । देखसी दुरि ॥ ५७ ॥
तेथ प्रकृति आपणयां । वेगली नुरे धनंजया ।
रूपें विण छाया । जिया परीं ॥ ५८ ॥
ऐसेनि प्रकृतीनाशु । जालेयां कर्मसंन्यासु ।
निफजेल अनायासु । सकारणु ॥ ५९ ॥
मग कर्मजात गेलेयां । आत्मा मी उरें आपणपेयां ।
बुद्धि घापे करूनियां । पतिव्रता ॥ १२६० ॥
बुद्धी अनन्य एणें योगें । मज माझि जें रिगे ।
तैं चित्त चैत्यत्यागें । मातें चि भजे ॥ ६१ ॥
ऐसें चइत्य जातें सांडिलें । चित्त माझां ठांडें जडलें ।
टाके तैसें वहिलें । सर्वदा करी ॥ ६२ ॥

मच्चित्तः सर्वकर्माणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

मग अभिन्ना इया सेवा । चित्त मियां चि भरे जेधवां ।

माझा प्रसादु जाण तेधवां । संपूर्ण जाला ॥ ६३ ॥

तेथ सकलदुःखधामे । भुंजिजति जियें मृत्युजन्में ।

तियें दुर्गमें चि सुममें । होंती तुज ॥ ६४ ॥

सूर्याचेनि सावायें । डोला सावाइला होए ।

तैं आंधाराचा आहे । पाडु तेया ६५ ॥

तैसा माझेनि प्रसादें । जीवकणु जेयाचा मर्दे ।

तो संसाराचेनि बंधें । बांधला केवि ॥ ६६ ॥

हणौनि धनंजया । संसारदुर्गती इया ।

तरसील माझिया । प्रसादा तव ॥ ६७ ॥

अथवा हान अहंभावें । माझे बोलणें हें आववें ।

कानामर्नाचिये सीवे । नेंदीसि टेंको ॥ ६८ ॥

जेया देहसंबंधा आंतु । प्रतिपदीं आत्मघातु ।

भुंजतां उसंतु । कहीं चि नाहिं ॥ ६९ ॥

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ॥

मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥

येवडेनि दारुणें । निमणें न निमणें ।

पडैल जारि बोलणें । न घेसी माझे ॥ १२७० ॥

पथ्यद्वेषिया पोसी ज्वरु । कां दीपद्वेषिया आंधार ।

त्रिवेकद्वेषें अहंकार । पोसुनि तैसा ॥ ७१ ॥

स्वदेहा नावं अर्जुनु । परदेहा नावं स्वजनु ।

संप्रामा नावं मळिनु । पापाचार ॥ ७२ ॥

ये मती आपुलेया । तीघां तीनि नावें इयां ।

ठेउनि धनंजया । न जुझे हणसी ॥ ७३ ॥

जीवा माक्षि निष्टं कु । करीसि जो अत्यंतिकु ।
 तो वायां धाडी वेलु नैसर्गिकु । स्वभा० तूज्ञा ॥ ७४ ॥
 आणि मीं अर्जुनु हें आत्मक । इयां वधु करणें हें पातक ।
 हें माया वांचौनि तात्त्विक । कांदिं आहे ॥ ७५ ॥
 आदिं तूतें जूझ होआवें । मग जूझा शस्त्र घेयावें ।
 कां न जुझावेया करावें । देवांगण ॥ ७६ ॥
 ह्यणौनि न जूझणें । ह्यणसां तें वायागें ।
 ना मानूं लोकपणें । लोक दृष्टिसि इहिं ॥ ७७ ॥
 तहिं न जुझें ऐसें । निष्टंकीसि जें मानसें ।
 ते प्रकृति अनारिसें । करिळ चि ॥ ७८ ॥
 पैं पूर्वे वाहांत पाणी । पविहजे पश्चिमिळी वाहाणी ।
 तरि आप्रहो चि उरे तें आणी । आपुलिया लेखा ॥ ७९ ॥
 कां सालिचा कणु ह्यणे । मीं नुगवें सालिणें ।
 तन्हीं आन न करणें । स्वभावासि ॥ १२८० ॥
 तैसा क्षत्रिया संस्कारसिद्धा । प्रकृती घडिलासि प्रबुद्धा ।
 आतां नुठिं ह्यणसि हा धांधा । उटिविज्जसी चि ॥ ८१ ॥
 शौर्य तेज दक्ष्यता । एवमादिक पांडुसुता ।
 गुण दीघले नियता । प्रकृति तुज ॥ ८२ ॥

स्वभाजेन कांतेय निवद्धः स्वेन कर्मणा ॥

कर्तुं नेछसि यन्मोहात्कारिष्यस्यवशोपि तत् ॥ ६० ॥

तरि तेधाचेया समवाया । आन रूप धनंजया ।
 न कारितां उगलेयां । न येईल ऐसें ॥ ८३ ॥
 ह्यणौनि तिहिं गुणि । वांधलासि तूं कोदंडपाणी ।
 त्रिशुद्धी निगसी वाहाणी । क्षात्राचिया ॥ ८४ ॥
 नां हें आपुलें जन्ममूळ । न विचारीसि तूं केवल ।
 न जुझें ऐसें अढळ । व्रत जारि घेंसी ॥ ८५ ॥

तारि बांधौनि हातपाए । जो रथीं घातला आये ।
 तो न चले तन्हीं जाये । दिगंता जेवि ॥ ८६ ॥
 तेसा तू आपुलेया कडौनि । मीं काहिं चि न करिं हणौनि ।
 ठांसी परि भरवसेनि । ते चि करीसी ॥ ८७ ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशोऽर्जुन तिष्ठति ॥

भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥

हांगा रोगु काइ रोगिया । आवडे दरिद्र दरिद्रिया ।
 परि भोगविजे बलिया । अदृष्टें जेणें ॥ ८८ ॥
 तें अदृष्ट अनारिसें । न करील ईश्वरवसें ।
 तो ईश्वरु ही असे । जवलिके चि ॥ ८९ ॥
 सर्वभूतांचां अंतरीं । हृदयमहाअंबरीं ।
 चिद्वृत्तिचां सहस्रकरीं । उदैला असे जो ॥ १२९० ॥
 अवस्थात्रया तीन्हीं लोक । नव्हे प्रकाशूनि अशेष ।
 अन्यथादृष्टी पथीक । चेवविले ॥ ९१ ॥
 वेद्योदकाचां सरोवरीं । फांकति विषयकल्हारीं ।
 इंद्रियषट्पदाचारी । जीवभवंरांतें ॥ ९२ ॥
 असो रूपक हें तो ईश्वर । सकल भूतांचा अहंकार ।
 पांगुरौनि निरंतर । उल्हासतसे ॥ ९३ ॥
 स्वमायेचें आडवस्त्र । लेउनि एकला खेलवी सूत्र ।
 बाहिरि नटि छायाचित्र । चौरासी लक्ष ॥ ९४ ॥
 तेया ब्रह्मादिकीटांतां । अशेषां हिं भूतजातां ।
 देहाकारें योग्यता । पाउनि दावी ॥ ९५ ॥
 तेथ हें देह तेयां पुढें । अनुरूपपणें मांडे ।
 तें भूत तिये आरूढे । हें मीं हणौनि ॥ ९६ ॥
 सूत सूतें गुंतलें । तृण तृणें बांधलें ।
 कां आत्मबिंब घातलें । बालकें जेलीं ॥ ९७ ॥

तेया परीं देहाकारें । आपणें चि दुसरें ।
 देखौनि जीउ आविष्कारे । आत्मबुद्धी ॥ ९८ ॥
 ऐसैं शरीराकारिं । यंत्रीं भूतें अवधारीं ।
 वाउनि हालवी दोरी । प्राचीनांची ॥ ९९ ॥
 तेथ जेया जें कर्मसूत्र । मांडूनि ठेविलें स्वतंत्र ।
 तें तिये गती पात्र । हों चि लागे ॥ १३०० ॥
 किंबहुना धनुर्द्धरा । भूतांतें स्वर्गसंसारा ।
 माजि भवंडी तृणें वारा । आकाशीं जैसा ॥ १ ॥
 भ्रामकाचेनि संगें । जैसैं लोह चि वेढां रिगे ।
 तैसीं ईश्वरसत्तायोगें । चेष्टती भूतें ॥ २ ॥
 जैसैं चष्टा आपुलाळिया । समुद्रादि रु धनंजया ।
 चेष्टति चंद्राचिया । संनिधी एकी ॥ ३ ॥
 तेयां सिंधू भरितें दाटे । सोमकांता पाझरू फूटे ।
 कुमुदचकोरां फीटे । संकोचु तो ॥ ४ ॥
 तैसीं बीजप्रकृतिवसें । अनेकें भूतें एकें ईसैं ।
 चेष्टविजे तो असे । तूझां हृदइं ॥ ५ ॥
 अर्जुनपण नेघतां । मी ऐसैं पांडुमुता ।
 उठितसे तें तत्वता । तेयाचें रूप ॥ ६ ॥
 यया लागि तो प्रकृतितें । प्रवर्तवील हें निहत्तें ।
 आणि तें जूझवील तूतें । न जुझसि तन्हीं ॥ ७ ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतं ॥ ६३ ॥

ह्यगौनि ईश्वरु गोसांविं । तेणें प्रकृति हे नियमावी ।
 तिया मुखें राहाटवाविं । इंद्रियें आपुलीं ॥ ८ ॥
 तू करणें न करणें दोन्हीं । लाउनि प्रकृतिचां मानीं ।
 प्रकृति ही कां आधीनि । हृदयस्था जेया ॥ ९ ॥

तेया अहं वाचा आंग । देउनि शरण रीग ।
 महोदधी कां गांग । रिगालें जैसे ॥ १३१० ॥
 मग तेयाचेनि प्रसादें । सर्वोपशांतिप्रमदे ।
 कांतु होउनि स्वानंदें । स्वरूपिं रमसी ॥ ११ ॥
 संभूति जेणें संभवे । विश्रांति जंथ विसवे ।
 अनुभूतीं अनुभवे । अनुभउ जेया ॥ १२ ॥
 तिये निजात्मदिचा राउ ॥ होउनि ठांसी अव्ययो ।
 हणजे लक्ष्मीयेचा नाहो । पार्था तूं गा ॥ १३ ॥

इति ते ज्ञानप्राख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
 विमृश्यैतदंशेषेण यथेच्छासे तथा कुरु ॥ ६३ ॥

हे गीता नावं विख्यात । सर्ववाङ्मयाचें मथित ।
 आत्मा जेणें हस्तगत । रत्न होए ॥ १४ ॥
 ज्ञानी ऐसिया रूढी । वेदांतिं जेयाची प्रौढि ।
 वानितां कीर्त्ति चोखडी । पातली जर्गी ॥ १५ ॥
 बुध्यादिकें डोलसें । हे जेयाचे कां कडवसे ।
 मी सर्वद्रिष्टी ही दीसें । पाहों जिया ॥ १६ ॥
 तें हें गा आत्मज्ञान । मज गोप्याचें हि गुपित धन ।
 परि तूं हणौनि आन । केवि करूं ॥ १७ ॥
 येया कारणें गा पांडवा । आर्त्ति आपुला हा ठेवा ।
 तुज दीधला कणवा । जाकलिलेपणें ॥ १८ ॥
 परि भूडली वोरसें । माये बोले वालका दोसें ।
 प्रीति ही परि तैसें । न करूं चि हो ॥ १९ ॥
 एथ आकाश आणि गालिजे । अमृता ही झारि फेडिजे ।
 कां दिव्या करविजे । दिव्य जैसें ॥ १३२० ॥
 जेयाचेनि अंगप्रकाशें । पातालिचा परिमाणु दीसे ।
 तेया सूर्या ही कां जैसें । अंजन सूदळें ॥ २१ ॥

तैसैं सर्वज्ञें ही भियां । सर्व ही निर्द्धारुनियां ।
 नीकें होये तें धनंजया । सांघितलें तुज ॥ २२ ॥
 आतां तूं यया वरी । नीकें हें निर्द्धारिं ।
 मग निर्द्धारुनि करीं । आवडे जैसें ॥ २३ ॥
 येया देवाचेया बोला । अर्जुनु उगा चि ठेला ।
 तेथ देउ हणणे भला । अवंचकु होंसी ॥ २४ ॥
 वाढितेया पुढां भूकैला । उपरोधें हणणे घालां ।
 तैं तो चि पीडे आपुला । दोखु ही तेया ॥ २५ ॥
 तैसा सर्वज्ञ श्रीगुरु । भेटलेयां आत्मनिर्द्धारु ।
 न पुसे जैसा भारु । धरुनियां ॥ २६ ॥
 तैं आपण चि वंचे । आणि पाप ही तेया वंचनावें ।
 आपणेयां चि तें साचें । चुकविलें तुवां ॥ २७ ॥
 पै उगेपणां तूझेया । अभिप्राउ हा चि धनंजया ।
 जें एकोल एक वंकौनियां । सांघावें ज्ञान ॥ २८ ॥
 एथ पार्थु हणणे दातारा । भलें जाणसि माझेया अंतरा ।
 हें हणों तारि दुसरा । जाणता असे काइ ॥ २९ ॥
 परि ज्ञेय जी हें आघवें । तूं ज्ञाता एकू चि स्वभावें ।
 मा सूर्यो हणौनि वानावें । सूर्यातें काइ ॥ १३३० ॥
 यया बोला श्रीकृष्णें । हणितलें काइ एणें ।
 हें चि धोडें गा वानणें । जें बुझतासि तूं ॥ ३१ ॥

सर्वगुह्यतमं भूयः श्रुणु मे परमं वचः ।

इष्टोऽसि मे वदमिति ततो वक्ष्यामि ते हितं ॥ ६४ ॥

तारि अवधान प्रबल । करुनि एकोल ।
 वाक्य माझें निर्मल । अवधारि पां ॥ ३२ ॥
 हें वाच्य हणौनि बोलिजे । कां अवागमें आइकिजे ।
 तैसैं नव्हे परि तूजें । भाग्य वरवें ॥ ३३ ॥

कूर्मिचेया पीलिया । दृष्टि पान्हा ये धनंजया ।
 आकाश वाहे बापैया । घरिचें पाणी ॥ ३४ ॥
 जो व्यवहार ही जेथे न घडे । तेयातें फल चि तेथ जोडे ।
 काइ दैव न संपडे । सानुकूलें ॥ ३५ ॥
 यन्हविं द्वैताची वारि । साखुनि ऐक्याचां परिवरीं ।
 भोगिजे तें अवधारीं । रहस्य हें ॥ ३६ ॥
 आणिं निरूपचारा प्रेमा । विषो होये जें वीरोत्तमा ।
 तें दूजें नोहे किं आत्मा । ऐसें चि जाणावें ॥ ३७ ॥
 आरिसेयाचें देखिलेयां । गोमटें कीजे धनंजया ।
 तें तेया नव्हे आपणेयां । लागि जैसें ॥ ३८ ॥
 तैसें पार्था तूझेनि मिसें । मी बोलें आपणपेया चि दोसैं ।
 माझां तूझां ठाईं असे । मीतूपण गा ॥ ३९ ॥
 ह्यणौनि जिव्हारिचें गुज । सांघतसें जीवितासी चि तुज ।
 अनन्यगतिचें मज । आधि व्यसन ॥ १३४० ॥
 पै जळा आपणपेया देतां । लवण भूललें पांडुमुता ।
 किं आघवें तेयाचें होतां । न लजे चि तें ॥ ४१ ॥
 तैसा तूं माझां ठाईं । राखों नेणसी चि काहिं ।
 तारि आतां तुज मी काई । गोप्य करीं ॥ ४२ ॥
 ह्यणौनि आघवां चि गुढें । जें पाउनि अति उवडें ।
 तें गोप्य माझे चोखडें । वाक्य आइक ॥ ४३ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ॥

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोसि मे ॥ ६५ ॥

तारि बाह्यांतरा । आपुळेया सर्वव्यापारां ।
 मज व्यापकातें वीरा । विषो करीं ॥ ४४ ॥
 आघवां आंगिं जैसा । वायु भिलौनि आकाशा ।
 तूं सर्वकाभि तैसा । मासीं चि अस ॥ ४५ ॥

किंबहुना आपुलें मन । करीं माझें एकायतन ।
 माझेनि श्रवणें कान । भरुनि घालीं ॥ ४६ ॥
 आत्मज्ञानें चोखडीं । संत जे माझिं रूपडीं ।
 तेथ दृष्टि पडो आवडी । कामिनी जैसी ॥ ४७ ॥
 मज सर्ववसतिचें वसैठें । माझिं नामें जियें चोखटें ।
 तें जिन्हा येयावेया वाटे । वाचेचिये लावीं ॥ ४८ ॥
 हातांचें करणें । पायांचें चालणें ।
 तें होये मज कारणें । ऐसें करीं ॥ ४९ ॥
 आपुलां अथवां परावां । ठांडं उपकरिसि पांडवा ।
 तेणें यज्ञें होये बरवा । याज्ञिकु माझा ॥ १३५० ॥
 हें येकैक सिकउं काई । पै सेवकै आपुलां ठांडं ।
 उरौनि एर सर्व ही । मी सेव्यु चि करीं ॥ ५१ ॥
 तेथ जाउनि भूतद्वेषु । सर्वत्र नमवीन मीं चि एकु ।
 ऐसेनि आश्रयो अत्यंतिकु । लहांसील तूं माझा ॥ ५२ ॥
 मग भरलेया जगा आंतु । जाउनि तिजेयाची मातु ।
 होउनि टाईल एकांतु । आहां तुहां ॥ ५३ ॥
 तेधवां भलेतिये अवस्थे । मी तूतें तूं मातें ।
 भोगीसि ऐसें ऐक्य तें । वाढैल मुख ॥ ५४ ॥
 आणि तीजें आडलु करितें । निमालें अर्जुना जेथें ।
 तें मीं तूं चि हणौनि मातें । पावसि सेखीं ॥ ५५ ॥
 जलिची प्रतिभा । जलनाशीं विवा ।
 यंतां गाभागोभा । कांहीं असो ॥ ५६ ॥
 पै पवनु अंबरा । कां कळोळु सागरा ।
 भीलतां आडवारा । कोणाचा गा ॥ ५७ ॥
 हणौनि तूं आणि आहीं । हें दीसतसे देहधर्मा ।
 मग याचां विरामीं । मी चि होंसी ॥ ५८ ॥

एया बोला माझारि । होये नव्हे हें ज्ञनें करीं ।
 एथ आन आथि तारि । तूझी आण ॥ ५९ ॥
 पै तूझी आण वाणें । हें आत्मलिगातें सिवणें ।
 प्रातिची जाति लाजणें । आठवों नेदी ॥ १३६० ॥
 यन्हविं वेढुनि प्रपंचु । जेणें विश्वाभासु हा साचु ।
 आज्ञेचा नडनाचु । कालातें जिणें ॥ ६१ ॥
 तो दे३० मी सत्यसंकल्पु । आणि जगाचा ही बापु ।
 मा आणेचा आक्षेपु । कां करावा ॥ ६२ ॥
 पै अर्जुना तूझेनि वेधें । मियां देवपणांचिं विरदें ।
 सांडिलीं गा मी हें आधें । सगळें तुवां ॥ ६३ ॥
 पै काजा आपुलिया । रात्रो आपुली आपणेयां ।
 आण वाये धनंजया । तैसें हें चिं ॥ ६४ ॥
 येथ अर्जुनु ह्मणे देवें । अचाट हें न बोलावें ।
 जी आमचें काज नावें । तूझेनि होये ॥ ६५ ॥
 यया वारि सांधों बैससी । कां सांघतां भाष हीं देंसी ।
 यया तूझेया विनोदासि । पार असे जी ॥ ६६ ॥
 कमलवर्निं विकाशु । करी रवीचा एकु अंशु ।
 किं तेथ आघत्रा चि प्रकाशु । नीच देंतो ॥ ६७ ॥
 पृथिवीं निवौनि सागर । भारीजति एवडे थोर ।
 वरिपे तेथ मिपांतर । चातकु कीजे ॥ ६८ ॥
 ह्मणौनि औदार्या तूझेया । मज निमित्त ना ह्मणावेया ।
 प्राप्ति असे दानिराया । कृपानिधी ॥ ६९ ॥
 तत्र दे३० ह्मणति राहें । यया बोलाचा प्रस्ता३० नोहे ।
 पै मातें पावसी उपायें । साच चि एणें ॥ १३७० ॥
 संधव सिंधू पडिलेयां । जो क्षणु एकु धनंजया ।
 तेंपें विरे चि किं उरावेया । कारण कवण ॥ ७१ ॥

तैसैं सर्वत्र मातें भजतां । सर्व मी होतां जातां ।
 शेष जाउनि तत्वता । मी चि होंसि ॥ ७२ ॥
 एवं माझी प्राप्ति वेन्हीं । कर्मा लागौनि अवधारिं ।
 दाविली तुज उजिरी । उपायाची ॥ ७३ ॥
 जें आधि तवं पांडुसुता । सर्व कर्म मज अर्पितां ।
 सर्वत्र प्रसन्नता । लाहिजे माझी ॥ ७४ ॥
 पाठिं माझां तिये प्रसादीं । माझें ज्ञान जाये सिद्धी ।
 तेणें मिसलिजे त्रिशुद्धी । स्वरूपिं माझां ॥ ७५ ॥
 मग पार्था तिये ठांइ । साध्यसाधना होये नाहिं ।
 किंबहुना तुज काहिं । उरे चि ना ॥ ७६ ॥
 तरि सर्व कर्म आपुलीं । तुवां मज अर्पिलीं ।
 तेणें प्रसन्नता लाधली । आजि हे माझी ॥ ७७ ॥
 ह्यणौनि एणें प्रसादवळें । नोहे जूझाचेनि आडलें ।
 न ठकें चि एकें वेलें । भालळां तुज ॥ ७८ ॥
 जें सप्रपंच अज्ञान जाये । जेणें एकु मी गोचर होयें ।
 तें उपपत्तिचेनि उवायें । गीतारूप हें ॥ ७९ ॥
 मियां ज्ञान तुज आपुलें । नाना परि उपदेशिलें ।
 एणें अज्ञान सांडी विआलें । धर्माधर्म जें ॥ १३८० ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥ ६६ ॥

आशा जैसी दुःखातें । व्याली निंदा दुरितें ।
 हें असो जैसैं दैन्यातें । दुर्मरत्व ॥ ८१ ॥
 तैसैं स्वर्गनरकसूचक । अज्ञान वियाळें धर्मादिक ।
 तें सांडूनि घालीं अशंख । ज्ञानें एणें ॥ ८२ ॥
 हातिं घेउनि तो दोर । सांडिजे जैसा सर्पाकार ।
 कां निद्राल्यागें घराचार । स्वप्निचा जैसा ॥ ८३ ॥

नाना सांडिलेनि कवलें । चंद्राचें लोपे पीवलें ।
 व्याधित्यागें कडुवाले— । पण मुखाचें ॥ ८४ ॥
 आगा दिवसा पाठ देउनि । मृगजल घापे ल्यजूनि ।
 कां काष्टत्यागें बन्दि । त्याजिजे जैसा ॥ ८५ ॥
 तैसें धर्माअधर्माचें टवाल । दावी अज्ञाना कां जें मूल ।
 तें ल्यजूनि ल्यजीं सकल । धर्मजात ॥ ८६ ॥
 मग अज्ञान निमालेयां । मी चि एकु असें आपैसेया ।
 सनिद्र स्वप्न गेलेयां । आपणपें जैसें ॥ ८७ ॥
 तैसा एकु मी वांचौनि काहिं । मग भिन्नाभिन्न आन नाहिं ।
 स्वयंबोधें तेयाचां ठाई । अनन्यु होयें ॥ ८८ ॥
 पै आपुलेनि भेदें विण । माझे जाणिजे एकपण ।
 त्या चि नावें शरण । मज एणें गा ॥ ८९ ॥
 ह्यणौनि घटाचेनि नासें । गगन चि गगनीं असे ।
 मज शरण एणें तैसें । ऐक्यें करीं ॥ ९० ॥
 सुवर्णमणि सोनेयां । ए कळोळु जैसा पाणियां ।
 तैसा मज धनंजया । ए शरण तूं ॥ ९१ ॥
 वांचौनि सागराचां पोटीं । वडवानल शरण किरीटी ।
 जालों न ठाके तिया गोठी । जाली देख पां ॥ ९२ ॥
 मज शरण रिगिजे । आणि जीवत्वे असिजे ।
 धिर्गा बोलिया या न लजे । प्रज्ञा केवि ॥ ९३ ॥
 आगा प्राकृतां ही राया । आंगि पडे जें धनंजया ।
 तें दाशिरुं हिं किं तेया । मान्य होये ॥ ९४ ॥
 मा मीं विश्वेश्वर भेटें । आणि जीवप्रथि न सुटे ।
 हे बोल नको उखटे । कानीं लाउं ॥ ९५ ॥
 ह्यणौनि मी होउनि मातें । सेवणें असे आइतें ।
 तारि करिं ह्यताइतें । झानें एणें ॥ ९६ ॥

मग ताकौनियां काढिलें । लोणिं ताकिं माघौतें घातलें ।
 परि नेघपे चि काहिं केलें । ताकें जेवि ॥ ९७ ॥
 लोह उभें खाये माती । तें परिसाचेया संगती ।
 सोनें जालेयां पुडुतीं । न लिपिजे मलीं ॥ ९८ ॥
 हें असो काष्टा पासौनि । मथूनि घेतलेयां वन्हि ।
 मग काष्टें हिं कोंडौनि । न ठके जैसा ॥ ९९ ॥
 तैसें अद्वैतत्वं मज । शरण रिगालेयां तुज ।
 धर्माधर्म हे साहाज । लागतील नां ॥ १४०० ॥
 अर्जुना काइ दिनकर । देखतसे अंधकार ।
 किं प्रबोधां होये गोचर । स्वप्नसंभ्रमु ॥ १ ॥
 तैसें मजसिं एकवटलेयां । मी सर्व रूप वांचौनियां ।
 आन काहिं उरावेया । कारण असे गा ॥ २ ॥
 ह्यणौनि तेयाचें काहिं । न चितीं आपुलां ठांइं ।
 तूझे पापपुण्य पाहिं । मी चि होइन ॥ ३ ॥
 जलिं पडिलेयां लवण । सर्वें जल चि होये विचक्षण ।
 तुज मी अनन्यशरण । होईन तैसा ॥ ४ ॥
 तेथ सर्वबंधलक्षणें । पापें उरावें दूजेपणें ।
 तें माझे बोधि वायाणें । होउनि जाइल ॥ ५ ॥
 एतुलेनि आपैसेया । सूटला चि अससि धनंजया ।
 घेईं मी प्रकाशूनियां । सोडवीन तूतें ॥ ६ ॥
 यया कारणें पुडुतीं । हें आधीं न व्हाये चितीं ।
 मज एकासि ए सुमती । जाणौनि शरण ॥ ७ ॥
 ऐसें सर्वरूपें रूपसें । सर्वदृष्टी डोलसें ।
 सर्वदेवनिवासें । बोलिलें कृष्णें ॥ ८ ॥
 मग सावला सकंकणु । बाहु पसरुनि दक्षणु ।
 आलंगिला स्वशरणु । भगवराजु तो ॥ ९ ॥

तन्मयता जेयातें । काखे सूनि बुद्धितें ।
 बोलणें माघौतें । उ०सरलें ॥ १४१० ॥
 ऐसें जें काहि एक । बोला बुद्धी ही अटक ।
 तें देयावेया भीख । क्षेमाचें केलें ॥ ११ ॥
 दीपें दीपु लाविला । तैसा परिससंगु तो जाला ।
 द्वैत न मोडितां केला । आपणपें पार्थु ॥ १२ ॥
 तेधवां सुखाचा मग तेया । पुरु आला जो धनंजया ।
 तेथ वाडु तन्हीं बुडौनियां । ठेला देउ ॥ १३ ॥
 सिंधु सिंधुतें पाउं जाए । तें पाहणें ठाकणें दूण होए ।
 वरि रिगे पुरवणिये । आकाश ही ॥ १४ ॥
 तैसें दोहिचें तेयां मीळणें । दोघां नावरे जाणावें कवणें ।
 किंबहुना नारायणें । विश्व कोंदलें ॥ १५ ॥
 एवं वेदाचें मूलसूत्र । सर्वाधिकारकपवित्र ।
 श्रीकृष्णें गीताशास्त्र । प्रकट केलें ॥ १६ ॥
 एथ गीता मूल वेदां । ऐसें केवि आलें पां बोधा ।
 हें ह्यणा तारि प्रसिद्धा । उपपत्ती सांघों ॥ १७ ॥
 तारि जेयाचेनि श्वासों । जन्म जालें शद्धराशी ।
 तो सत्यप्रबु पैजेसीं । बोलिला हे ॥ १८ ॥
 ह्यणौनि वेदा मूलभूत । गीता ह्यणों हें होये उचित ।
 आणिकि ही एकि एथ । उपपत्ति असे ॥ १९ ॥
 जें न नसत स्वरूपें । जेयाचा विस्तार जेथ लपे ।
 तें तेयाचें ह्यणिपे । बीज जर्गी ॥ १४२० ॥
 तारि कांडत्रयात्मकु । शद्धराशि अशेखु ।
 गीते माझि असे खंखु । बीजी जैसा ॥ २१ ॥
 ह्यणौनि वेदांचें बीज । श्रीगीता होये हें मज ।
 गमे आणि साहाज । दीसत न्ही असे ॥ २२ ॥

जें वेदांचे तीन्ही भाग । गीते उमटले असति चांग ।
 भूषणरत्नि सर्वांग । आपुलें जैसे ॥ २३ ॥
 तियें चि कर्मादिकें तीन्हीं । काडें कोणी कोणी स्थानीं ।
 गीते असति तियें नयनीं । दाखउं आइकां ॥ २४ ॥
 तारि पहिला जो अध्या३० । तो शास्त्रप्रवृत्तिप्रस्ता३० ।
 द्वितीये सांख्यसद्भा३० । प्रकाशिला ॥ २५ ॥
 मोक्षदानिं स्वतंत्र । ज्ञानप्रधान हें शास्त्र ।
 येतुलालें दूजां सूत्र । उभारिलें ॥ २६ ॥
 मग अज्ञानें बांधलेयां । मोक्षपदिं बैसवेया ।
 साधनां आरंभु तो तृतीया । अध्याइं बोलिला ॥ २७ ॥
 जें देहाभिमानबंधें । सांडूनि काम्यें निषिद्धें ।
 विहित परि अप्रमादें । अनुष्ठायें ॥ २८ ॥
 ऐसेनि कर्म करावें । हा तीजां अध्याइं जो देवें ।
 निर्णयो केला तो जाणावें । कर्मकांड एथ । २९ ॥
 आणि तें चि नित्यादिक । अज्ञानाचें आवश्यक ।
 आचरतां मोचक । केवि हांये पां ॥ १४३० ॥
 ऐसी अपेक्षा जालेयां । ब्रह्म मुमुक्षते आलेयां ।
 देवें ब्रह्मार्पणक्रिया । सांघीतली ॥ ३१ ॥
 जें देहवाचामानसें । विहित निफजे जैसे ।
 तें एका चि ईश्वरोद्देशें । कीजे ह्याणतलें ॥ ३२ ॥
 हें चि ईश्वरीं कर्मयोगें । भजनकथनाचेनि खार्गे ।
 आदारिलें शेषभागें । चतुर्थाचेनि ॥ ३३ ॥
 तें विश्वरूप अकरावा । अध्या३० संपे जेथ आघवा ।
 तवें कर्मां ईशु भजावा । हें जें बोलिलें ॥ ३४ ॥
 तें अष्टाध्याइं उघड । जाणा एथ देवताकांड ।
 शास्त्र सांघतसे आड । मोडूनि बोलें ॥ ३५ ॥

आणि तेणें चि ईशप्रसादे । श्रीगुरुसंप्रदायलब्धे ।
 साच ज्ञान उद्धोधे । कोवळें जें ॥ १६ ॥
 तें अद्वेषादिप्रभृतिकी । अथवा अमानित्वादिकिं ।
 वाढविजे ह्यगौनि लेखीं । बारावां गुणु ॥ ३७ ॥
 तो बारावां अध्या३० आधीं । आणि पन्हरावा अवधि ।
 ज्ञानफलसिद्धी । निरूपणांसी ॥ ३८ ॥
 ह्यगौनि चहूं इहीं । ऊर्ध्वमूलांतीं अध्यायिं ।
 ज्ञानकांड इये ठाईं । निरूपिजे ॥ ३९ ॥
 एवं कांडत्रयनिरूपणी । श्रुति हे कोडीसवाणी ।
 गीतापदरत्नाचिं लेणिं । लेइली असे ॥ १४४० ॥
 हें असो कांडत्रयत्मक । श्रुति मोक्षरूप फल एक ।
 बोवाये जें आवश्यक । टाकात्रेया ह्यगौनि ॥ ४१ ॥
 तेयाचेनि साधनें ज्ञानेसिं । वैर करि जो प्रतिदिवसीं ।
 तो अज्ञान वर्गु षोडशीं । प्रतिपादिजे ॥ ४२ ॥
 तो चि शास्त्र३०लावा । घेउनि वैरी जीणावा ।
 हा निर्णयो तो सतरावां । अध्या३० एथ ॥ ४३ ॥
 ऐसा प्रथमा लागौनि । सतरावां लागि करुनि ।
 आत्मनिश्वास विवरुनि । दाविला देवें ॥ ४४ ॥
 तेयां अर्थजातां अशेषां । केला तात्पर्याचा एवांका ।
 तो अठरावां देखां । कलशाध्या३० ॥ ४५ ॥
 एवं सकलसांख्यसिंधु । श्रीभगवद्गीता प्रबंधु ।
 हा औदार्ये आगला वेदु । मूर्तु जाणा ॥ ४६ ॥
 वेदु संपन्न होये ठाईं । परि कृपणु आन नाहीं ।
 जें कानि लागला तिहिं । वर्णाचां चि ॥ ४७ ॥
 एरां भवव्यथा ठेल्यां । स्त्रीशूद्रादिकां प्राणियां ।
 अनवसरु मांडूनियां । असे नव्हे ॥ ४८ ॥

तरि गज पांतां तें उणें । फेडावेया गीतापणें ।
 वेदु वेठला भलेतेणें । सेव्यु होआवेया ॥ ४९ ॥
 नव्हे अर्थे रिगौनि मनिं । श्रवणें लागौनि कानीं ।
 जपमीखें वदनीं । वसौनियां ॥ १४९० ॥
 गीतेचा पाठु जाणे । तेयाचेनि सांघातीपणें ।
 गीता लीहुनु वाहाणें । पुस्तकमीखें ॥ ५१ ॥
 ऐसैसां मीसकटां । संसाराचां चौहटां ।
 गवांदि घातली चोखटा । मोक्षसुखाची ॥ ५२ ॥
 पारि आकाशिं वसावेया । पृथ्वी वरि वैयावेया ।
 रविदीप्ति राहाटावेया । आवाहं जैसें ॥ ५३ ॥
 तेवि उत्तम अधम ऐसें । सेवितां कव्हणातें हिं न पुसे ।
 कैवल्यदानें जैसें । निववी जग ॥ ५४ ॥
 इया लागि मागिली कूटी । बिहाला वेदु गीतेचां पोटीं ।
 रिगाला आतां गोमटी । कीर्ति पातला ॥ ५५ ॥
 ह्यणौनि वेदांची सुसेव्यता । ते हे मूर्तिं जाणा गीतां ।
 श्रीकृष्णें पांडुसुता । उपदेशिली ॥ ५६ ॥
 परि वछाचेनि वोरसें । दुभतें होये घरा दोसें ।
 जालें पांडवाचेनि मीमें । तैसें विश्वा ॥ ५७ ॥
 चातकाचिये कणवे । मेघु पाणियेंसिं धांवे ।
 तेथ चराचर आघवें । निवालें जेवि ॥ ५८ ॥
 कां अनन्यगती कमळां । लागि सूर्यु ए वेळोवेळां ।
 किं सुखिया होइजे डोळां । त्रिभुवनाचेया ॥ ५९ ॥
 तैसें अर्जुनाचेनि व्याजें । गीता प्रकाशूनि श्रीराजें ।
 संसारा एसणें थोर वोडें । फेडिलें जगाचें ॥ १४६० ॥
 सर्वशास्त्रा रत्नदीती । उजळिता हा त्रीजगती ।
 सूर्यु नव्हे लक्ष्मीपती । वक्त्राकाशिचा ॥ ६१ ॥

बापु कुल तें पवित्र । जेथिचा पार्थु येया पात्र ।
जेणें गीता केलें शास्त्र । आवारं जगा ॥ ६२ ॥

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ॥

न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

हैं असो मग तेणें । सदुरुश्रीकृष्णें ।
पार्थाचें मिसळणें । आणिलें द्वैता ॥ ६३ ॥
पाठिं हणतसे पांडवा । शास्त्र हें मानलें कीं जीवा ।
तेथ येरु हणने देवा । आपुलीया कृपा ॥ ६४ ॥
तारि निधान जोडावेया । भाग्य घडे गा धनंजया ।
परि जोडलें भोगावेया । विपायें होये ॥ ६५ ॥
पैं क्षीरसागरा एवडें । अविरजीं दूधाचें भाडें ।
सुरां असुरां केवडें । मथितां जालें ॥ ६६ ॥
ते सायास ही फला आले । जें अमृत डोलां देखिलें ।
परि वरिचिली चूकले । जतनें तिणें ॥ ६७ ॥
जेथ अमरत्वा उगारिलें । तें मरणा चि लागि जालें ।
भोगु नेणतां जोडलें । ऐसें असे ॥ ६८ ॥
नहुषु स्वर्गप्राप्ति जाला । परि राहाटी भांभावला ।
तो भुजंगत्व पातला । नेणसिं काई ॥ ६९ ॥
हणौनि बहू पुण्य तुआं । केलें धनंजया ।
आजि शास्त्रराजा येया । जालासि विषो ॥ १४७० ॥
तारि येया चि शास्त्रचेनि । संप्रदायें पांगुरौनि ।
शास्त्रार्थु हा नीकेनि । अनुष्ठीं हो ॥ ७१ ॥
यन्हविं अमृतमथनां । सारिखें होईल अर्जुना ।
जारि रिगसी अनुष्ठाना । संप्रदायें विण ॥ ७२ ॥
गाये धड जोडे गोमटी । ते तैं चि पियों ये किरिटी ।
जैं जाणिजे हातवटी । सांजवणिचीं ॥ ७३ ॥

तैसा गुरु प्रसन्न होए । शिश्यु विद्या हीं किर लहे ।
 परि ते फले संप्रदायें । उपासिली ॥ ७४ ॥
 ह्यणौनि शास्त्रिं जो इये । उचित संप्रदाउ^{३०} आहे ।
 तो तो आइक बहुवें । आदरेंसीं ॥ ७५ ॥
 तरि जें हें तुवां पार्था । गीताशास्त्र लाधलें आस्था ।
 तें तपोहीना सर्वथा । सांघावें ना ॥ ७६ ॥
 अथवा तापसु हीं जाला । परि गुरुभक्ती जो भीला ।
 तो वेदुं अंत्यु वालिला । तैसा वालिं हो ॥ ७७ ॥
 नातारि पुरोडासु जैसा । नेघेपे वृद्ध तन्हीं वायंसा ।
 गीता नैदीं तैसी तापसा । गुरुभक्ती हींनां ॥ ७८ ॥
 कां तप ही जोडे देहीं । भजे गुरुदेवाचां ठांइ ।
 परि आकर्णनिं नाहिं । चाड जरि ॥ ७९ ॥
 तरि तो मागिलीं दोहिं आंगिं । उक्तमु होये किर जगिं ।
 परि येया श्रवणा लागि । योग्यु नोहे ॥ १४८० ॥
 मुक्ताफल भलेतैसैं । होये परि मुख नसे ।
 तवं गुणु प्रवेशे । तेथ काइ ॥ ८१ ॥
 सागरु गंभीरु होए । हें कोण ना ह्यणत आहे ।
 परि वृष्टि वायां जाए । जाली तेथ ॥ ८२ ॥
 धालेया दिव्यान्न सोआवें । मग जें वायां धाडावें ।
 तें आर्ती कां न करावें । उदारपण ॥ ८३ ॥
 ह्यणौनि योग्या भलेतैसैं । होंतु परि चाड नसे ।
 तरि झनें वानवसैं । देसी हें तेया ॥ ८४ ॥
 रूपाचा मुजाणु डोला । वौडों ये काइ परिमला ।
 जेथ जें मानें तें फळा । तेथ चि ये गा ॥ ८५ ॥
 ह्यणौनि तपीं भक्ती । पाहा ते सुभद्रापती ।
 शास्त्रश्रवणिं अनाकृती । वालावे चि ते ॥ ८६ ॥

नातारि तप भक्ति । होउनि श्रवणीं आर्ति ।
 आधि ऐसी आइती । देखसी जन्हीं ॥ ८७ ॥
 तन्हीं गीताशास्त्रनिर्मिता । जो मीं सकललोकु शास्ता ।
 तेया मातें सामान्यता । बोलैल जो ॥ ८८ ॥
 माझा सज्जनीं मातें । पैशून्याचेनि अग्हार्ते ।
 एकाहाथी तेयातें । योग्यु न ह्यण ॥ ८९ ॥
 तेयाची परि आघवी । सामग्री ऐसी जाणावी ।
 दीपें विण ठाणत्री । रात्रिची जैसी ॥ १४९० ॥
 आगा गोरें आणि तरुणें । वरि लेइलें असे भूषणें ।
 परि एकलेनि प्राणें । सांडिलें जेवि ॥ ९१ ॥
 सोनेयाचें सुंदर । निर्वाळलें होये घर ।
 परि सर्पांगना द्वार । रुंधलें असे ॥ ९२ ॥
 निफजे दिव्यान्न चोखट । परि माझि असे कालकूट ।
 हें असो मैत्रो कपट— । गुर्विणी जैसी ॥ ९३ ॥
 तैसिं तपभक्तिमेधा । तेयाचिं जाण प्रबुद्धा ।
 जो माझ्याची कां निंदा । माझी चि करी ॥ ९४ ॥
 येया कारणे धनंजया । तो भक्तु मधावी तपिया ।
 तन्हीं नको बापा शास्त्रा इया । आतळें देवों ॥ ९५ ॥
 काइ बोलों निंशका । योग्या स्त्रेया ही एका ।
 गीता हे कवतिका । लागि ही नेंदां ॥ ९६ ॥
 ह्यणौनि तपाचा धनुर्द्धरा । तलीं दाटौनि गाडौरा ।
 वरि गुरुभक्तिचा पुरा । प्रासादु जो जाला ॥ ९७ ॥
 आणि श्रवणाचा पुढां । दारवठा सदा उघडा ।
 वरि कलसु चोखडा । अनिंदरत्नाचा ॥ ९८ ॥
 ऐसां भक्तालइं चोखटीं । गीतारत्नेश्वर हा प्रतिष्ठीं ।
 मग माशिया सवसाठीं । तूकसी जगीं ॥ ९९ ॥

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥

भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशय ॥ ६८ ॥

कां जें एकाक्षरपणोंसिं । त्रिमातृकेचिये कूसी ।

प्रणवु होता गर्भवासीं । सांकडला जो ॥ १९०० ॥

तो गीतेचिया बाहाली । वेदबीज गेलें पाहालीं ।

किं गायत्री फुलीं फलीं । श्लोकाचां आली ॥ १ ॥

तें हें मंत्ररहस्य गीता । मेलवी माझेयां जो भक्तां ।

अनन्यजीविता माता । बालका नैसी ॥ २ ॥

तैसी भक्तां गीतेसिं । भेटि करी जो आदरोंसीं ।

तो देहा पाठिं मजसीं । एक चि होए ॥ ३ ॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ॥

भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ ६९ ॥

आणि देहाचें हिं लेणें । लेउनि वेगलेपणें ।

असे तवें जीवें प्राणें । तो चि पढियें ॥ ४ ॥

ज्ञानियां कर्मठां तापसां । इयां खूणेचियां माणुसां ।

माझि तो एकु ऐसा । पढियें मज ॥ ५ ॥

तैसा भूतलिं अघवा । आनु नेदखें पांडवा ।

जो गीता सांघे मेलवा । भक्तजनाचां ॥ ६ ॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ॥

ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७० ॥

भूज ईश्वराचेनि लोभें । हें गीता पढतां अस्तोभें ।

जो मंडण होये सभे । संतांचिये ॥ ७ ॥

नवां पळुविं रोमांचितु । मंदानीलें कंपवितु ।

आनंदजलें उलववितु । फलाच डोले ॥ ८ ॥

कोकिलां कलरवाचेनि मीसें । सद्गद बोलवित जैसें ।

वसंतु कां प्रवेशे । आरामा माझि ॥ ९ ॥

कां जन्माचें फल चकोरां । होंतु चंद्रु ये अंबरा ।
 नाना नवा मेघु मयूरां । वो देंतु पात्रे ॥ १५१० ॥
 तैसा सज्जनाचां मेलार्पिं । गीतापद्यरत्नीं उमर्पीं ।
 वर्षे जो माझां रूपीं । हेतु ठेउनि ॥ ११ ॥
 मग तेयाचेनि पाडें । पढियतें मज फुडें ।
 नाहिं चि मागें पुढें । निहालित्तां ॥ १२ ॥
 अर्जुना हा ठावो वेन्हीं । मीं तेयांतें सुर्वे जिन्हारीं ।
 जो गीतार्थाचें करी । परगुणें संतां ॥ १३ ॥
 पै माझिया तूझिया मिलणी । वाढिनली जे हें काहाणी ।
 मोक्षधर्मु कां जीणी । आला असे जेथ ॥ १४ ॥
 तो हा सकलार्थप्रसादु । आह्वां दोवांचा संवादु ।
 न करिन्नां पदभेदु । पाठें जो पढे ॥ १५ ॥
 तेंणें ज्ञानानालिं प्रदीप्तीं । मूल अधिद्येचिया आहुती ।
 तोखविला होये सुमती । परमात्मा मीं ॥ १६ ॥
 यउनि गीतार्था उगाणा । ज्ञानिये जेवि विचक्षणां ।
 टाकिति तें गाणांवाणां । गीतेचां तो लाहे ॥ १७ ॥
 गीतापाठकासि एसें । फल अर्थज्ञाना चि सरिसें ।
 गीतामाउलीसि नसे । जानेंतानें ॥ १८ ॥

श्रद्धावाननुसूयंश्च शृणुयादपि यो नरः ॥

सोपि मुक्तः शुभाल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणां ॥ ७१ ॥

आणि सर्वमार्गीं निंदा । सांझूनि आस्था शुद्धा ।
 गीताश्रवणीं श्रद्धा । उभारी जो ॥ १९ ॥
 तेयाचां श्रवणसंपुटीं । गीतेचि अक्षरें पैठीं ।
 होंति ना तव उठाउठी । पले चि पाप ॥ १५१० ॥
 अटविये माझि जैसा । वन्हि रिगतां सहसा ।
 लंघीति कां दिशा । वनौकें तियें ॥ २१ ॥

कां उदयाचला कुली । झलकतां अंशुमाली ।
 तिमिरे अंतरालीं । हारपती ॥ २२ ॥
 तैसा कानाचां महाद्वारीं । गीता जपु जेथ करी ।
 तेथ श्रिष्टि आदि वेरी । जले चि कलुष ॥ २३ ॥
 ऐसी जन्मवेलि धोवट । होये पुण्यरूप चोखट ।
 यया ही वरि अचाट । फल लाहे ॥ २४ ॥
 जो इये गीतोचि अक्षरें । जेतुलीं कर्णद्वारें ।
 घे तेतुलीं होंती पुरे । अश्वमेध किं ॥ २५ ॥
 ह्यणौनि श्रवणें पापें जांती । आणि धर्मु धरी उन्नतीं ।
 तेणें स्वर्गराज्यसंपती । लाहे चि शेपीं ॥ २६ ॥
 तो पै मज येयावेया लागि । पहिलें पेणें कारि स्वर्गीं ।
 मग आवडे तवं भोगी । पाठीं ए चि तो ॥ २७ ॥
 ऐसी गीता धनंजया । आइकतेया पढतेया ।
 फले महानंदें मियां । बहुत काइ बोलों ॥ २८ ॥

कच्चिदेतच्छृतंपार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।

कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥ ७२ ॥

एया कारणें असो । जेया लागि शास्त्रअतिसो ।
 केला तें तवं तूतें पूसों । काज तूझें ॥ २९ ॥
 तरि सांघ पां पांडवा । हा शास्त्रसिद्धांतु आववा ।
 तुज एकचित्तें फावा । गेला आदे ॥ १५३० ॥
 आहिं जैसे हें जिया रीती । उगाणिलें कानाचां हातीं ।
 इहिं तैसें तूझां चित्तीं । पैठें केलें किं ॥ ३१ ॥
 हांगा स्वज्ञानजनितें । मागिलें मोहें तूतें ।
 भुलविलें तो एथें । असे कीं ना ॥ ३२ ॥
 हें बहू पूसों काइ । सावें तू आपुलां ठाईं ।
 कर्मकर्म काहीं । देखतु आहासि ॥ ३३ ॥

पार्थु स्वानंदैकरसें । विरैल ऐसा भेददशे ।
 आणिला एणें मीसें । प्रश्याचेनि ॥ ३४ ॥
 यन्हविं आपुलें करणें । सर्वज्ञ काइ तो नेणें ।
 पारि केळें पूसणें । या चि लागि ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच ॥

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रासादान्मयाच्युत ।
 स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥

मग क्षीराब्धितें सांडितु । गगनीं पूंजा मंडितु ।
 निवडे जैसा न निवडितू । पूर्णचंद्रु ॥ ३६ ॥
 तैसा ब्रह्म हें मी विसरें । तेथ जग चि ब्रह्म भरे ।
 हें इं सांडे तारि विरे । ब्रह्मपण हीं ॥ ३७ ॥
 दुःखें देहाचिये सीमे । मी अर्जुनु एणें नामें ।
 मोडतु मांडतु ब्रह्म । उभा ठेला ॥ ३८ ॥
 मग कांपतां करतलीं । दडपौनि रोमावली ।
 पुलकस्वदजलीं । विरोनियां ॥ ३९ ॥
 प्राणुक्षोभें डोलतेया । आंगा आंग टेंकतेया ।
 सुनि स्तंभुचालेया । भुलौनियां ॥ १९४० ॥
 नेत्रयुगुलिचेनि उभें । आनंदामृताचें भरितें ।
 उभंसंडत तें माघौतें । काढौनियां ॥ ४१ ॥
 विविधा औसुक्याची दाटि । चीप आतलि होंती कंठि ।
 ते करुनियां पैठी । हृदया माझि ॥ ४२ ॥
 वाचेचें वितुळणें । सांवरौनि प्राणें ।
 अक्रमाचें स्वसणें । ठेउनि ठांइं ॥ ४३ ॥
 मग ह्मणे काइ देऊ । पूसताते आवडे मोहो ।
 तो सकु गेला जीं ठाऊ । घेउनि आपुला ॥ ४४ ॥

पासिं एउनि दिनकरें । डोलेयातें आंधरें ।
 घूसिजे हें काइ सरे । कोणी ठांडें ॥ ४५ ॥
 तैसा तूं श्रीकृष्णा राया । आमचेयां इयां डोलेयां ।
 गोचरु हें चि काइसेया । न पुरे तवं ॥ ४६ ॥
 वारि लोभें माए पासौनि । तें सांवासि तोंड भरुनि ।
 जें काइसेनि हिं करुनि । जाणों नैए ॥ ४७ ॥
 आतां मोहो असे किं नाहिं । हें ऐसें घूससी काई ।
 कृतकृत्य जालां पाहीं । तूझेपणें ॥ ४८ ॥
 मी तूझेनि प्रसादें । लाधलेनि आत्मबोधें ।
 मोहाचे तेया कांदे । नेंदिसी चि उरों ॥ ४९ ॥
 आतां करणें न करणें । हें उठी जेणें दूजेपणें ।
 तें तूं वांचौनि नेणें । सर्वत्र गा ॥ १५५० ॥
 इये विखिं माझां ठांडें । संदेहाचें नूरे चि काहिं ।
 त्रिशुद्धी कर्म जेथ नाहिं । तें मिं जालां ॥ ५१ ॥
 ह्यणौनि मी एक पाहुनि । कृत्य गेलें निपटौनि ।
 पारि आज्ञा हे वांचौनि । तूझी प्रभू ॥ ५२ ॥
 कां जें दृश्यातें नासी । जें दूजें दूजेयातें ग्रासी ।
 जें एक पारि सर्वदर्शां । वसवी सदा ॥ ५३ ॥
 जेयाचेनि संबधें बंधु फांटे । जेयाचिया आशा आश तूटे ।
 जें भेटलेयां सर्व भेटे । आपणपां चि ॥ ५४ ॥
 तें तूं गुरुलिंग जी माझे । एकलेपणिचें विरजें ।
 जेया लागि उळांडिजे । अद्वैतबोधु ॥ ५५ ॥
 आपण चि होउनि ब्रह्म । सारिजे कृत्याकृत्याचें काम ।
 मग कीजे कां निःसीम । सेवा जेयाची ॥ ५६ ॥
 तें मां तूं निरुपचारु । सेव्य सकलां दातारु ।
 मीं ब्रह्मतेचा उपकारु । हा चि मानीं ॥ ५७ ॥

जें मज तुहां आड । होंतें भेदाचें कवाड ।
 तें फेड्ढनि केलें सुआड । तुवां जी देवा ॥ ५८ ॥
 तारि आतां तूझी आज्ञा । सकलदेवराज्ञा ।
 करीन देई अनुज्ञा । भलेतिये विधीं ॥ ५९ ॥
 येया अर्जुनाचेया बोला । देऊ डोळों लागला ।
 हणो विश्वफला जाला । लाभु हा मज ॥ १५६० ॥
 उणेनि. उमचला सुधाकर । देखौनि आपुला कुमर ।
 मर्यादा क्षीरसागर । विसरे चि ना ॥ ६१ ॥
 ऐसें संवादाचा बाउलां । लग्न दोघांचेयां आंतुलां ।
 लागलें देखौनि जाला । निर्भर संजयो ॥ ६२ ॥

संजय उवाच ॥

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥
 संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणं ॥ ७४ ॥

तेणें उचंबललेपणें । मग धृतराष्ट्रें हणें ।
 जी कैसें आदरायणें । रक्षिलें दोघे ॥ ६३ ॥
 आजि तुमतें अवधारां । चर्भचक्षु ही संवसारा ।
 किं ज्ञानदृष्टी व्यवहारा । आणिलेति ॥ ६४ ॥
 आणि रथिचिये राहाटी । घेइजे घोडेयां साठीं ।
 तेया आह्मां इया गोठी । गोचरा होंति ॥ ६५ ॥
 वारि जूझाचें निर्वाण । मांडलें असे दारुण ।
 दोवीसि हारि आपण । हारविजे ऐसें ॥ ६६ ॥
 एवडां इये सांकडां । कैसा अनुग्रहो पै गाढा ।
 जें ब्रह्मानंदु उघडा । भोगवीतसे ॥ ६७ ॥
 ऐसें संजयो बोलिला । पारि न द्रवे एरु उगला ।
 चंद्रकिरणीं सीतला । पाखाणु जैसां ॥ ६८ ॥

हे देखौनि तेयाची दशा । मग करि चि ना वरिषा ।
 परि सुखें जाला पीसा । बोलतु असे ॥ ६९ ॥
 मुलविला हर्षवेगें । हणौनि धृतराष्ट्र सांघे ।
 यन्हविं नोहे तेया जोगें । हें किर जाणे ॥ १५७० ॥
 मग हणे पै कुरुराजा । ऐसें भ्रातृपुत्र तो तूझा ।
 बोलिला तें अधोक्षजा । गोड जालें ॥ ७१ ॥
 आगा पूर्वापरसागर । इया नावांचा सिनार ।
 येर आघवें चि नीर । एक जैसें ॥ ७२ ॥
 तैसा श्रीकृष्णु पार्थु ऐसें । हें आंगा चि पासीं दीसे ।
 मग संवादी जी नसे । काहीं चि भेदू ॥ ७३ ॥
 दर्पणा हिं हूनि चोखें । दोन्ही होंति संमुखें ।
 तेथ एरीं एर देखे । आपणपें जैसें ॥ ७४ ॥
 तैसा देवेंसिं पांडुसुतु । आपणपें देविं देखतु ।
 पांडवेंसिं देखे अनंतु । आपणपें पार्थीं ॥ ७५ ॥
 दे३७ देवा भक्ता लागि । जिये विवरु नेदखे आंगिं ।
 येरु ही तिण चि भागीं । दोन्ही देखे ॥ ७६ ॥
 आणिक काहिं चि नाहिं । हणौनि करिती काई ।
 दोघै एकपणें पाहीं । नांदत आहाति ॥ ७७ ॥
 आतां भेदु जरि मोडे । तरि प्रदणोत्तर कां घडे ।
 ना भेदु चि तरि जोडे । संवादमुख कां ॥ ७८ ॥
 ऐसें बोलतां दूजेपणें । संवादें द्वैत जें गीळणें ।
 तें आइकिलें बोलणें । दोघांचें मियां ॥ ७९ ॥
 उरूनि दोन्ही आरिसे । वोडविलेयां सरिसे ।
 कोण कोणां पाहांतसे । जाणवे ना ॥ १५८० ॥
 कां दीपा सदमुखु । ठेविलेयां दीपकु ।
 कोणु कोणा अर्थिकु । कोणु जाणे ॥ ८१ ॥

हैं निद्धरि जातां फुडें । निद्धारासि ठक पडे ।
 ते दोषै जाले एवडे । संवादें सरिसे ॥ ८२ ॥
 तैसे श्रीकृष्ण ते दोन्हीं । संवादले तें मनीं ।
 धरितां मज ही वानीं । ते चि हों पांतसे ॥ ८३ ॥
 ऐसैं ह्मणे ना मोटकें । तवं हीरौनि सात्विकें ।
 आठौ नेला नेणों कें । संजयपणांचा ॥ ८४ ॥
 रोमांच जवं फरके । तवं तवं आंग सुरके ।
 स्तंभस्वेदातें जीके । एकटा कंपु ॥ ८५ ॥
 अद्रयानंदपरिसैं । दृष्टि रसमय जाली अमे ।
 ते अश्रु नव्हति जैसे । द्रवत्व चि ॥ ८६ ॥
 नेणों काइ न माये पोटीं । काइ नेणों गुंफे कंठिं ।
 व्यग्रता पडे मिठी । उससाचिया ॥ ८७ ॥
 किंवहुना सात्विकां आठां । चाचरु मांडतां उमेठा ।
 संजय जाला असे चौहटा । भावभवनिचा ॥ ८८ ॥
 तेया सुखाची ऐसी जाति । जें आपणपां चि धरी शांति ।
 मग पुडुतीं देहस्मृति । लाघली तेणें ॥ ८९ ॥

व्यासप्रसादाकृतवानेतद्गुह्यमहं परं ॥

योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयं ॥ ७५ ॥

तेधवां बैसतेन आनंदें । ह्मणे जी जें उपनिषदें ।
 नेणति तें व्यासप्रसादें । आइकिलें मियां ॥ १५९० ॥
 हे आषवे चि योग । जेया ठाया यंति मार्ग ।
 तेयाचें वाक्य समर्थ । केलें व्यासें ॥ ९१ ॥
 आहो अर्जुनाचेनि मीसैं । आपणपें चि दूजें ऐसैं ।
 नटूनि आपणेशां दोसैं । बोलिले जें देवो ॥ ९२ ॥
 तेथ किं माझे श्रोत्र । पाठाचें जालें पात्र ।
 काइ वानूं स्वतंत्र । सामर्थ्य गुरुचें ॥ ९३ ॥

राजसंस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतं ॥

केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

हैं बोलतां कां रा३० होए । तेणें चि मोडवला ठाए ।

रत्न कां रत्नकीला ए । झांकोलें जैसें ॥ ९४ ॥

हिमवतिचि सरोवरें । चंद्रोदइं होंति काश्मिरें ।

मग सूर्यागमीं माघारें । द्रवत्व ए ॥ ९५ ॥

तैसा शरीराचेया स्मृती । तो संवादु संजयो चित्तीं ।

घरुनि आणि पुढुतीं । तें चि होए ॥ ९६ ॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ॥

विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ ७७ ॥

मग उठूनि ह्मणे नृपा । श्रीहरिचेया विश्वरूपा ।

भेटलेयां उगा पां । काइ असिजे ॥ ९७ ॥

नेदखणेन जें दीसे । नाहिपण चि जें असे ।

विसरें आठवे तें कैसें । चुकौं आतां ॥ ९८ ॥

देखौनि चमत्कार । कीजे तो नाहिं पैसार ।

मजै सकट हा पूरु । नेत असे ॥ ९९ ॥

ऐसा श्रीकृष्णार्जुन— । संवादसंगर्भि स्नान ।

करुनि देतसें दान । अहंतेचें ॥ १६०० ॥

तेथ असंवरें आनंदें । अलौकिक ही स्पदें ।

श्रीकृष्णु ह्मणे सद्गदें । वेलवेलां ॥ १ ॥

इया अवस्थांची काहीं । कौरवांतें पारि नाहिं ।

ह्मणौनि राया तें काहिं । कल्पावें जवं ॥ २ ॥

तवं जाला सुखलाभु । आपणपां करुनि स्वयंभु ।

बुझविला अवष्टंभु । संजयें तेणें ॥ ३ ॥

एथ कोणहीं एकि अवसरि । होवाची ते करुनि दूरि ।

रावो ह्मणे संजया पारि । कैसी तूझी गा ॥ ४ ॥

तेणें तूतें एथ व्यासें । वैसविलें काइसेया दोसें ।
 अप्रसंगा माजि ऐसें । बोटसी काइ ॥ ५ ॥
 रानिचें राउला नेलेयां । दाही दिशा मानी सुनियां ।
 कां रात्रि होये पाहालेयां । निशाचरां ॥ ६ ॥
 जो जेथिचें गौरव नेणे । तेयातें भिंगुलवाणें ।
 ह्यगौनि अप्रसंगु तेणें । ह्यगावा किं तो ॥ ७ ॥
 मग ह्यणे सांघें प्रस्तुत । उदेंलें असे जें हें उत्कलित ।
 तें कोणासि रे बा जैत । देईल शेषीं ॥ ८ ॥
 यन्हविं विश्वे बहुत एक । आमचें ऐसें मानसिक ।
 जें दुर्योधनाचे अधिक । प्रताप सदा ॥ ९ ॥
 आणि एरांचेनि पाडें । दल ही तें देवडें ।
 ह्यगौनि जैत फुडें । आणील तो तें ॥ १६१० ॥
 आह्या तवं गमे ऐसें । मां तूझें जोईस कैसें ।
 तें नेणों संजया असे । तैसें सांव पां ॥ ११ ॥

यत्र योगीश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ॥

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्धुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

यया बोला संजयो ह्यणे । जी येरायेरांचें मीं नेणें ।
 परि आयुष्य तेथ जीणें । हें फुडें गा ॥ १२ ॥
 चंद्रु तेथ चंद्रिका । शंभु तेथ अंबिका ।
 संत तेथ विवेका । असणें कीं जी ॥ १३ ॥
 रावो तेथ कटक । सौजन्य तेथ सोइरिक ।
 वन्हि तेथ दाहक । सामर्थ्यता ॥ १४ ॥
 दया तेथ धर्मु । धर्मु तेथ सुखागमु ।
 सुखां पुरुषोत्तमु । असे जैसा ॥ १५ ॥
 वसंतु तेथ वनें । वनें तेथ सुमनें ।
 सुमनिं पाळेगनें । सारंगांचिं ॥ १६ ॥

गुरु तेथ ज्ञान । ज्ञानिं आत्मदर्शन ।
 दर्शनीं समाधान । आथि जैसें ॥ १७ ॥
 भाग्य तेथ विलासु । सुख तेथ उल्हासु ।
 हें असो तेथ प्रकाशु । सूर्यो जेथें ॥ १८ ॥
 तैसे सकल पुरुषार्थ । जेणें स्वामी कां सनाथ ।
 तो श्रीकृष्णराज^३ जेथ । तेथ लक्ष्मी ॥ १९ ॥
 आणि आपुलेनि कांतोंसिं । ते जगदंबा जया पासिं ।
 अणिमादिकी दासी । नो होंतु तेयातें ॥ १६२० ॥
 तेयांचिये देशिचां झाडिं । कल्पतरुतें होडीं ।
 न जीणावें काइ थोडीं । मायबापें ॥ २१ ॥
 ते पाषाण हिं आघवे । चितारत्नीं कां नोहावें ।
 तिये भूमी कां नैयावें । सुवर्णत्व ॥ २२ ॥
 तेयांचिये गाविंचिया । नदी अमृतें वाहाविया ।
 नवल काइ राया । विचारि पां ॥ २३ ॥
 तेयांचे त्रिसाट शब्द । सुखां ह्मणों यंति वेद ।
 सदेह सच्चिदानंद । कां न व्हावे ते ॥ २४ ॥
 पै स्वर्गापवर्ग दोन्हीं । इयें पदें तियां आधिनि ।
 श्रीकृष्णु बापु जननी । कमळा जेयां ॥ २५ ॥
 ह्मणौनि जिये वाहे उभा । तो लक्ष्मीयेचा वालभा ।
 तेथ सर्वसिद्धी स्वयंभा । एर नेणों ॥ २६ ॥
 आणि समुद्रा मेघु । उपेगें तेया हीं हुनि चांगु ।
 तैसा पार्थी आजि लागु । असे तिये ॥ २७ ॥
 कनकत्वदीक्षागुरु । लोहा पारिसु होये कीरु ।
 पारि जगा पोसिता व्यवहारु । तें चि जाणे ॥ २८ ॥
 एथ गुरू यंतसे उणें । ऐसें ज्ञनें हें कोणहीं ह्मणे ।
 बहि प्रकाशु दीपपणें । प्रकाशी आपुलां ॥ २९ ॥

तैसा देवाचिया शक्ती । पार्थु देवासी चि बहुती ।
 परी माने इये स्तुती । गौरव असे ॥ १६३० ॥
 आणि पुत्रें मी सर्वगुणि । जीणांवा हे बापु श्रियाणी ।
 करी तैसा सारंगपाणी । फला आला ॥ ३१ ॥
 किंबहुना ऐसा नृपा । पार्थु जाला असे कृष्णकृपा ।
 तो जिया कडे साक्षेपा । रिती पाहे ॥ ३२ ॥
 तो चि गा विजयासि ठावो । एथ कोणु तुज संदेहो ।
 तेथ न ए तरि वावो । विजयो चि होये ॥ ३३ ॥
 ह्यणौनि जेथ श्रीमंतु । आणि जेथ पांडुचा सुतु ।
 तेथ विजयो समस्तु । अभ्युदयो तेथ ॥ ३४ ॥
 जरि व्यासाचेनि साचें । मानी मन तुमचें ।
 तरि या बोलाचें । ध्रुव चि माना ॥ ३५ ॥
 जेथ तो श्रीवल्लभु । जेथ तो भक्तकंदंबु ।
 जेथ सुखें तेथ लाभु । मंगलांचा ॥ ३६ ॥
 या बोला आन होये । तरि व्यासाचा अंकु न व्हाए ।
 ऐसें गाजौनि बाहे । उमिली तेणें ॥ ३७ ॥
 एवं भारताचा एवांका । आणूनि अक्षरा एका ।
 संजयें कुरुनायका । दीधला हाति ॥ ३८ ॥
 जैसा नेणों केवडा वन्हि । कां पारि गुणाग्रिं ठेउनि ।
 आणिजे सूर्याची हाणी । निस्तरावेया ॥ ३९ ॥
 तैसैं शद्ब्रह्म अनंत । जालें सवा लक्षु भारत ।
 भारताचें सतें सात । सर्वस्व गीता ॥ १६४० ॥
 तेयां हिं सातां शतांचा । इत्यर्थु हा श्लोकु शेषिचा ।
 व्यासशिष्यसंजयाचा । पूर्णोद्धारु हा ॥ ४१ ॥
 एणें एकें चि श्लोकें । राहे तेणें असिकें ।
 अविद्याजाताचें नीकें । जीतलें होए ॥ ४२ ॥

ऐसेयां श्लोकां से सात । गीतेचिं पदे आंगें वाहात ।
 पदे हणों किं अमृत । गीताकाशिचें ॥ ४३ ॥
 किं आत्मराजाचिये सभे । गीते उडविले खांबे ।
 मज श्लोक प्रतिभे । ऐसे एंती ॥ ४४ ॥
 किं गीता हे सप्तशती — । मंत्रप्रतिपाद्य भगवती ।
 मोहमहिषमुक्ती । आनंदली असे ॥ ४५ ॥
 हणौनि मनं कानें वाचा । जो सेवकु होईल इयेचा ।
 तो स्वानंदसाम्राज्यांचा । चक्रवर्ति करी ॥ ४६ ॥
 किं अविद्यातिमिररोखें । श्लोक सूर्याचें सावाडकें ।
 खेलविलें गीतामीखें । रायें श्रीकृष्णें ॥ ४७ ॥
 किं श्लोकाक्षरद्राक्षलता । मांडौ जाळी आहे गीता ।
 संसारपथश्रंता । विसावांबेया ॥ ४८ ॥
 किं सभाग्यसंतीं भ्रमरीं । केले ते श्लोक कव्हारिं ।
 श्रीकृष्णास्यसरोवरीं । सांसिनली हे ॥ ४९ ॥
 किं श्लोक नव्हंति आन । गमे गीतेचें महिमान ।
 वाखाणिते बंदिजन । उदंड जैसे ॥ १६५० ॥
 किं श्लोकांचेया आवरां । सात से करुनि सौंदरा ।
 सर्वागम गीतापुरा । वसों आले ॥ ५१ ॥
 कां निजकांता आत्मेयां । आवडि गीता मिलावेया ।
 श्लोक नव्हंति बाह्या । पसरुं कां जो ॥ ५२ ॥
 किं गीता कमलिचे भृंग । किं गीतासागरतरंग ।
 किं हारचे हे तुरंग । गीतारथिचे ॥ ५३ ॥
 किं श्लोक—सर्वतीर्थानु । आली गीता गंगा अद्भुत ।
 जें अर्जुनु जाळा सिंहरथु । हणौनियां ॥ ५४ ॥
 किं नव्हे हे श्लोकश्रेणी । सतंत जाळी चिंतामणी ।
 किं निर्दिदत्पलादणी । कल्पतरुची हे ॥ ५५ ॥

ऐसेयां सें सात श्लोकां । परि आगला एकु एका ।
 आतां कोणु वेगलिका । वानावा पां ॥ ५६ ॥
 दीपा आदीलु मागीलु । सूर्यासि धाकुटा वडीलु ।
 अमृतसिंधु खोलु । उतलु काइसा ॥ ५७ ॥
 तानी आणि पारिठी । इया कामधेनूतें दीठी ।
 सूनि जैसिया गोठी । कीजति नां ॥ ५८ ॥
 तैसे पहिले आणि सरते । श्लोक न ह्यणावे गीते ।
 जूनि नवि पारिजातें । असति काइ ॥ ५९ ॥
 आणि श्लोकां पाडु नाहिं । हें किर समर्थु काइ ।
 एथ वाच्यवाचक हिं । भागु न धरी ॥ १६६० ॥
 जे इये शास्त्रि एकु । श्रीकृष्णु चि वाच्यवाचकु ।
 हें प्रसिद्धी जाणे लोकु । भलेतो ही ॥ ६१ ॥
 एथ अर्थें तें चि पाठें । जोडे एवडेनि धटें ।
 वाच्यवाचकें एकवटें । सार्धीति शास्त्रें ॥ ६२ ॥
 ह्यणौनि मज काहिं । समर्थनीं आतां विषो नाहिं ।
 गीता जाणा हे वाङ्मई । श्रीमूर्ति प्रभूची ॥ ६३ ॥
 शास्त्र वाच्यें अर्थें फले । मग आपण मावले ।
 तैसें हें नव्हे समूलें । परमतत्व चि ॥ ६४ ॥
 कैसा विश्वाचिया कृपा । करुनि महाआनंदु सोहपा ।
 अर्जुना व्याजें रूपा । आणिला देवें ॥ ६५ ॥
 चकोरांचेनि निमित्तें । तीन्हीं भुवनें संतप्तें ।
 निवविलिं कलावतें । जिया परीं ॥ ६६ ॥
 तैसें हें गीतेचें दुभतें । वत्स करुनि पार्थातें ।
 हुमिनली पुरतें । श्रीकृष्णु गाए ॥ ६७ ॥
 कां गौतमाचेनि मीसें । कलिकालुज्वरितादोसें ।
 पाणिढालु गिरीसें । गंगेचा केला ॥ ६८ ॥

एथ जर्वे जरि नाहाळ । तरि हें चि कीरु होआळ ।
 ना पाठमीखें तीमाळ । जीभ पै जरि ॥ ६९ ॥
 तन्हीं लोह हें एकें अंशें । झगटिले होये परिसें ।
 तरि एकी कडे आपैसैं । सुवर्ण होए ॥ १६७० ॥
 तैसी पाठाची ते वाटी । लाविजे ना जवं वोंटीं ।
 तवं ब्रह्मतेची पुष्टी । एईल आंगा ॥ ७१ ॥
 नां येणेंसि तोंड वांकुडें । करुनु ठाकाल कोनवडें ।
 तरि कानें हिं घेंति पडे । तें चि लेख ॥ ७२ ॥
 कां जें श्रवणें पाठें अर्थे । गीता नेंदी मोक्षा आरौतें ।
 स्थूल दाता किं कोण्हातें । नास्ति न ह्मणैळ ॥ ७३ ॥
 ह्मणौनि जिया तिया सवा । गीता चि येकि सेवा ।
 काइ कराल आववां । शास्त्रि एरिं ॥ ७४ ॥
 आणि कृष्णार्जुनिं मोकलीं । गोठि केली निरालीं ।
 ते व्यासें दाविली करतलीं । वे३० ये ऐसी ॥ ७५ ॥
 बालकांतें वोरसैं । माये जेवऊं वैसे ।
 तेव्हळिं तेया ठाकति तैसैं । घांस करी ॥ ७६ ॥
 कां अफांटा समारणा । आपैतेपणोंसि आणा ।
 केलें जैसैं बीजणा । निर्मूनियां ॥ ७७ ॥
 तैसैं शब्दें जें न लभे । तें घडुनु अनुष्टुभें ।
 स्त्रीशूद्रादिप्रतिभे । सामविलें ॥ ७८ ॥
 स्वार्तीचेनि पाणिये । न्हवति जरि मोतियें ।
 तरि आंगीं सौंदरांचिये । कां शोभती तियें ॥ ७९ ॥
 नादु वाद्या नैयता । तरि कां गोचरु होंता ।
 फुलें नव्हतां घेयता । आमोदु केवि ॥ १६८० ॥
 गोडें नव्हति पक्कानें । तरि कां फावती रसने ।
 दर्पणें विण नयनें । नयनु कां दीसे ॥ ८१ ॥

द्रष्टा श्रीगुरुमूर्ति । न रिगतां दृश्यपंथीं ।
 तरि काह्या उपास्ती । आकलता तो ॥ ८२ ॥
 तैसे वस्तु जें असंख्यात । तेया संख्या इयें शतें सात ।
 नव्हंति तरि कोण एथ । लागों ये तें ॥ ८३ ॥
 मेघु सिंधुचें पाणी वाहे । तन्हीं जग तेयातें चि पाहे ।
 कां जें उमप तें नोहे । टाकतें कोणहां ॥ ८४ ॥
 आणि वाचा जें न पवे । तें श्लोक न्हवलि बरवें ।
 तरि कानें मुखें पावे । ऐसें कां होंतें ॥ ८५ ॥
 ह्यणौनि व्यासाचा हा थोर । विश्वा जाला उपकार ।
 श्रीकृष्णउक्ति आकार । ग्रंथाचा केला ॥ ८६ ॥
 आणि तो मियां हा आतां । व्यासाचिं पदें पाहातपाहातां ।
 आणिला श्रवणपथा । मन्हाटिया ॥ ८७ ॥
 व्यासादिकांचे उन्मेष । राहाटति जेथ साशंक ।
 तेथ मी रंक एक । वाचालै करीं ॥ ८८ ॥
 परि गीता ईश्वर भोला । ले व्यासोक्तिकुसुममाला ।
 परि माझेया दूर्वादला । ना न ह्यणे ॥ ८९ ॥
 आणि जेया सिंधुतटा । पाणियां येति गजघंटा ।
 तरि काइ मुरकुटां । वारिजतसे ॥ १६९० ॥
 पांखिकुटें पांखिरं । गगनीं नुडे तरि काइ करं ।
 नभ क्रमूनि थोर । गरुडु देखें ॥ ९१ ॥
 राजहंसाचें चालणें । भूतलिं चालवें कवणें ।
 तरि आणिकिं ही कुटेपणें । चालवें लागे ॥ ९२ ॥
 जी आपुलेनि अवकाशें । अगाव घेपे कलशें ।
 चूलु चूलु पाणी ऐसें । वेउनि निगे ॥ ९३ ॥
 दिविचेचां आंगि थोरी । तरि ते बहुतां तेजातें करी ।
 वाति आपुळिया परी । आणीकीं ना ॥ ९४ ॥

जी समुद्राचेनि पैसें । समुद्रीं आकाशें आभासे ।
 थिलरीं थिलरा ऐसें । बिंवे चि पै ॥ ९५ ॥
 तेवि व्यासादिमहामती । वावरो ये इये प्रथीं ।
 मां आह्नी टाकों हें युगुति । निमले चि कीर ॥ ९६ ॥
 जिये सागरीं जलचरें । संचरति मंदराकारें ।
 तेथ काइ सफरें । पव्हों न व्हांति ॥ ९७ ॥
 अरुणु आंगा ज्वलिके । ह्यणौनि सूर्यातें तो देखे ।
 मा भूतलिं चि नेदखे । मुंगी काई ॥ ९८ ॥
 इया लागि आह्नां प्राकृतां । देशिकारें बांधों गीता ।
 ह्यणणें हें अनुचिता । कारण नव्हे ॥ ९९ ॥
 आणि वापु पुढां जाये । देखां उचलता पायें ।
 आणि बालक हळू हळू ये । तरि तें न पवों काइ ॥ १०० ॥
 तैसा व्यासाचा मागोवा घेंतू । भाष्यकारातें पूसतु ।
 अयोग्यु ही भी न पवतु । कें जाइन ॥ १ ॥
 आणि पृथ्वी जेया क्षेमा । नुभगे स्थावरजंगमा ।
 जेयाचेनि अमृतें चंद्रमा । निववी जग ॥ २ ॥
 जेयाचें आंगें असिकें । तेज लाहूनि अकें ।
 आंधाराचें सावाइकें । लोटिजतसे ॥ ३ ॥
 समुद्रा जेयाचें तोए । तोया जेयाचें माधुर्य ।
 माधूर्या सौंदर्य । जेयाचे होंतें ॥ ४ ॥
 पवना जेयाचें बल । आकाश जेणें पघळ ।
 ज्ञान जेणें उजळ । चक्रवर्ती ॥ ५ ॥
 वेद जेणें मुभास । मुख जेणें सोह्यास ।
 हें असो रूपस । विश्व जेणें ॥ ६ ॥
 तो सर्वोपकारी समर्थु । सहूह श्रीनिवृत्तिनाथु ।
 राहाटतसे मज आंतु । रिगौनियां ॥ ७ ॥

आतां आइती गीता जर्गी । मीं सांघें मन्हाटिया भंगीं ।
 एथ कैचा विस्मया लागि । ठाउं असे ॥ ८ ॥
 श्रीगुरुचेनि नावें माती । डोंगरीं जेया पासिं होंती ।
 तेंणें कोलियें त्रिजगती । एकावट केली ॥ ९ ॥
 चंदनं वेधिलीं झाडें । जालिं चंदनाचेनि पाडें ।
 वसिष्ठें मानिलीं कीं भांडे । भानुसीं पाठी ॥ १० ॥
 मा मी तवं चित्ताथिला । आणि श्रीगुरु ऐसा दादुला ।
 जो दीठिवेनि आपुलां । वैसवी पदीं ॥ ११ ॥
 आधीं चि देखणी दीठि । वरिं सूर्यु पुरवी पाठि ।
 तैं न दिसे ऐसी गोठि । कोठें असे ॥ १२ ॥
 हणौनि माझे नीच नवे । श्वास ही प्रबंध होआवे ।
 गुरुकृपा काइ न्हेवे । ज्ञानदेउ हणें ॥ १३ ॥
 या कारणें मियां । गीतार्थु मन्हाटिया ।
 केला लोका लागिआ । दीठिचा विखो ॥ १४ ॥
 परि मन्हाटे बोल रंगें । कवलितां जैं गीतांगें ।
 तैं गा तेयाचेनि पांगें । एकावट जाले ॥ १५ ॥
 हणौनि गातां गाउं हणें । तैं गाणिवे होये नेणें ।
 ना मोलें तरि उणें । गीता ही न आणित्ती ॥ १६ ॥
 सुंदर आंगिं लेणें न सूप । तैं तो मोकला श्रिगारु होये ।
 ना लेइलें तरि आहे । तैसैं कें उचित ॥ १७ ॥
 कां मोतियांची जैसी जाति । सोनेयां हिं मानु देंति ।
 ना यन्हविं तन्हीं मानवति । आंगें चि गुणु ॥ १८ ॥
 नाना गुंफिलीं कां मोकलीं । उणीं न्हंति परिमलीं ।
 वसंतागमिचिं वाटौलीं । मोगरिं जैसिं ॥ १९ ॥
 तैसी गाणीव तें मिरवी । गीतें विण रंगु दावी ।
 ते लोभाचां बंधु उबी । केली मियां ॥ २० ॥

तेणें आबालमुबोधें । अवियेचेनि वंधें ।
 ब्रह्मरमुस्वादें । आखरें गुंफिलीं ॥ २१ ॥
 आतां चंदनाचां सेजारीं । परिमळा लागि निमिष भरी ।
 पारुखणें जिया परीं । न लगे तेथ ॥ २२ ॥
 तैसा प्रबंधु हा श्रवणीं । लागत खेळ समार्थी आणी ।
 आइकिलेयां वाखाणी । व्यसन न लवी ॥ २३ ॥
 पाकु कारिति व्याजें । पांडिलें एथ वेखजें ।
 तें अमृतातें नेणजे । पातलेयां ॥ २४ ॥
 तैसेनि आइतेपणें । कवित्व जालें उभणें ।
 मनननिदिध्यासश्रवणें । जीतलें आतां ॥ २५ ॥
 हें स्वआनंदभोगाची सेल । भलेतेयासी चि देइल ।
 सर्वेद्रियें पोसवील । श्रवणा करवीं ॥ २६ ॥
 चंद्रातें आंगवणें । भोगुनि चक्रोर सिहाणे ।
 तन्हीं फावे जैसे चांदिणें । भलेतेया ॥ २७ ॥
 तैसें आध्यात्मशास्त्रीं इथे । एक अंतरंग चि अधिकारिये ।
 येरि लोक वाक्चातुर्यें । होईल मुखिया ॥ २८ ॥
 ऐसें श्रीनिवृत्तिनाथाचें । गौरव असें जी साचें ।
 ग्रंथु नव्हे मुक्कपेचें । वैभव तिये ॥ २९ ॥
 क्षीरसिंधुपरिसरीं । शक्तिचां कर्णकुहरीं ।
 तेणें कै श्रीत्रिपुरारी । सांघितलें जें ॥ १७३० ॥
 तें क्षीरकल्लोळा आंतु । मकरोदरि गुपितु ।
 होता तेयाचा हातु । पेटें जालें ॥ ३१ ॥
 तो मच्छप्रसवसुंगी । भग्नावयव चौरंगी ।
 भेटला तो सर्वांगि । संपूर्युं जाला ॥ ३२ ॥
 मग समाधि अव्यया इया । भोगाचा वास नां इया ।
 ते मुद्रा श्रीगोरखराया । दिधळी मीनीं ॥ ३३ ॥

तेणें योगाब्जिनीसरोवरू । विषयविध्वंसैकवीर ।
 तिये पदीं कां सर्वेश्वर । अभिषेकिला ॥ ३४ ॥
 मग तेहीं तें शांभव । अद्रयानंदवैभव ।
 संपादिलें सप्रभाव । श्रीगायणिनाथीं ॥ ३५ ॥
 तेणें कलिकलितभूतां । आला देखौनि निरुता ।
 आज्ञा श्रीनिवृत्तिनाथा । दीधली ऐसी ॥ ३६ ॥
 अनादिगुरुशंकरा । पासौनि शिष्यपरंपरा ।
 बोधाचा हा सर्वंसारा । जाला आमतें ॥ ३७ ॥
 तो हा घेउनि आघवा । कलिगीलितेयां जीवां ।
 सर्वप्रकारिं धावा । करि पां वेगां ॥ ३८ ॥
 आधि तो तवं कृपालु । वरि गुरुआज्ञेचा बोलु ।
 जाला जैसा वरिषाकालु । खवणलें मेघां ॥ ३९ ॥
 मग आर्त्ताचेन उरसें । गीतार्थप्रथनमिसें ।
 वरिखला शांतरसें । तो हा ग्रंथू ॥ १७४० ॥
 तेथ पुढां भी वापिया । मांडलां आर्त्ती आपुलेया ।
 कीं यया साठिं यवडेया । आणिलां यशा ॥ ४१ ॥
 एवं गुरुक्रमें लाधलें । समाधिधन जें आपुलें ।
 तें ग्रंथिं बांधौनि दीधलें । गोसांविं मज ॥ ४२ ॥
 वांचौनि पढें ना वार्त्ती । ना सेवा ही जाणें स्वामिचीं ।
 ऐसेया मज ग्रंथाची । योग्यता कें असे ॥ ४३ ॥
 पारि साच चि गुरुनाथें । निमित्त्य करुनि मातें ।
 प्रबंधव्याजें जगातें । रक्षिलें जाणा ॥ ४४ ॥
 तन्हि पुरोहितगुणें । मी बोलिलां पुरें उणें ।
 तें तुहीं माउलीपणें । उपसाहिजो जी ॥ ४५ ॥
 शत्रु कैसा वडिजे । प्रमेय कैसेयां चढिजे ।
 अलंकार हाणिजे । काइ तें नेणें ॥ ४६ ॥

साएखडाचें बाउलें । चालवीतेया सूत्राचेनि चाले ।
 तैसा मातें दावीति बोलें । स्वामि तो माझा ॥ ४७ ॥
 या लागि मी गुणदोष । विषा क्षमात्रि ना विशेष ।
 जें संजात मी ग्रंथिलें देख । आचार्ये कीं जी ॥ ४८ ॥
 आणि तुझां संतांचिये सभे । जें उणीवांसिं ठाके उभें ।
 तें पूर्ण नोहे तैं लाभे । तुझा कोपो ॥ ४९ ॥
 सितलेयां हिं परिसें । लोहत्वाचिए अवदशे ।
 न मूकिये चि आयसें । तो कोणां बोलु ॥ १७५० ॥
 वोहलें हें चि करावें । जें गंगेचें आंग टाकावें ।
 मग ही गंगा नोहे । तैं तो काइ करी ॥ ५१ ॥
 ह्यणौनि भाग्ययोगें बहुवें । तुझां संतांचे मी पाए ।
 पातळां आतां कें आहे । उणें जर्गी ॥ ५२ ॥
 आहो जी माझेनि स्वामी । मज संत जोडुनु तुझीं ।
 दीधलेति सर्वकामी । संपूर्णु जालां ॥ ५३ ॥
 पाहे पां मातें तुझां सांगडें । माहेर तेणें सुरवाडें ।
 प्रथाचें हें आलियाडें । सिद्धी गेलें ॥ ५४ ॥
 जी फनकाचें निखल । उभूं येईल भूतल ।
 चितारत्नीं कुलाचल । निर्मू एंती ॥ ५५ ॥
 सातां हिं सागरातें । सोहपें भरितां अमृतें ।
 दुवाड नोहे तारातें । चंद्रु कारितां ॥ ५६ ॥
 कल्पतरूंचे आराम । लावितां नाहिं विषम ।
 पारि गीतार्थाचें वर्म । निवडीं नैए ॥ ५७ ॥
 तें मीं एकु सर्व मूंका । बोलौनि मन्हाटिया चोखा ।
 कारिं डोले वरि लोकां । घेऊं ए ऐसें ॥ ५८ ॥
 हा ग्रंथसागर एवडा । उतरौनि पैलीकडां ।
 कीर्त्तिविजयाचा ढेंढा । नाचे जे कां ॥ ५९ ॥

गीतार्थिचा अरुवार । कलशैसि महामेरु ।
 रचूनि माझी श्रीगुरु- । लिंग जें पूजा ॥ १७६० ॥
 गीता निष्कपट माए । चूकौनि हींढिजे वाएं ।
 ते माये वृतां भेटि होए । हा धर्मु तुमचा ॥ ६१ ॥
 तुह्या सज्जनाचें केलें । आकळनि जी मीं बोलें ।
 ज्ञानदेउ ह्मणे ठेंकुलें । तैसें हें नोहे ॥ ६२ ॥
 काइ बहू बोलें सकलां । मेलविलां जन्मफला ।
 ग्रंथसिद्धिचा सोहला । दाविला जो हा ॥ ६३ ॥
 मियां जैसीजैसिया आशा । केला तुमचा भरवसा ।
 तो पुरौनि जी बहुवसा । आणिलां सुखा ॥ ६४ ॥
 जी मज लागि ग्रंथाची स्वामी । दूजी सृष्टि केली तुझीं ।
 तें पाहूनि हांसों आहिं । विश्वामित्रातें ॥ ६५ ॥
 जें असौनि त्रिशंकुदोसें । धात्रेया ही आणावें वोसें ।
 तें नासतें कीजे किं ऐसें । निर्मावें ना हीं ॥ ६६ ॥
 शंभु उपमन्युचेनि मोहें । क्षीरसागर केला आहे ।
 एथ तो ही उपमो नोहे । जें विपगर्भ किं ॥ ६७ ॥
 अंधकारा निशाचरां । गीलितां सूर्ये चराचरा ।
 धावा केला तन्हीं खरा । ताउनि तो ॥ ६८ ॥
 तातलेया जगा कारणें । चंद्रें हिं वेचिलें चांदिणें ।
 तेया सदोषा केवि ह्मणें । सारिखें हें ॥ ६९ ॥
 ह्मणौनि तुझीं मज संतीं । ग्रंथरूपु जो हा त्रीजगतीं ।
 उपेगु केला तो हा पुढुतीं । निरूपमु जी ॥ १७७० ॥
 किंबहुना तुमचें केलें । धर्मकीर्तन सिद्धी गेलें ।
 एथ माझे जी उरलें । पाइकपण ॥ ७१ ॥
 आतां विश्वात्मकें देवें । एणें वाग्यज्ञें तोपावें ।
 तोखौनि मज देयावें । पसायदान हें ॥ ७२ ॥

जें खलांची वांकुडे मोडे । तेयां सत्संगां रति वाढे ।
 भूतां परस्परें पडे । मैत्र जीवाचें ॥ ७३ ॥
 दुरिताचें तिमिर जाऊ । विश्वा स्वधर्मसूर्यो पाहो ।
 वांछिल तें तें लाहो । प्राणिजात ॥ ७४ ॥
 वर्षतें सर्वमंगलीं । इश्वरनिष्ठांची मांदियली ।
 अनव्रत भूतलीं । भेटोतु भूतां ॥ ७५ ॥
 चलां कल्पतरूचे आरव । चेतवाचितामणिचे गावं ।
 बोलते पां अर्णव । पीयूखांचे ॥ ७६ ॥
 चंद्रमे जे आलंछन । मार्त्तंड जे तपहीन ।
 ते सर्वां हीं सदा सज्जन । सोयरे होंतु ॥ ७७ ॥
 किंबहुना सर्वसुखीं । पूर्णा होउनि तिहिं लोकिं ।
 भजिजो आदिपुरुषीं । अखंडित ॥ ७८ ॥
 आणि ग्रंथोपजीविये । विशेषें लोकीं इये ।
 दृष्टादृष्टविजयें । होआवें जी ॥ ७९ ॥
 एथ हाणे विश्वेसरु राऊ । हा होईल दाओ पसाऊ ।
 ऐणें वचनें ज्ञानदेऊ । सुखिया जाला ॥ १७८० ॥
 ऐसें युगीं वरि कली । आणि महाराष्ट्रमंडलीं ।
 श्री गोदावरिचां कुलीं । दक्षिणिलीं ॥ ८१ ॥
 तेथ भुवनैकपवित्र । अनादिपंचक्रोशक्षेत्र ।
 जगाचें जीवनसूत्र । जेथ श्रीमहालसा ॥ ८२ ॥
 तेथ इंदुवंशविलासु । जो सकलकलां निवासु ।
 न्यायातें पोखीत क्षितीशु । श्रीरामचंद्रु ॥ ८३ ॥
 तें माहेपान्वयसंभूतें । श्रीनिवृत्तिनाथसुतें ।
 केलें ज्ञानदेवें गीते । देशीकार लेणें ॥ ८४ ॥
 एवं भारताचां गावीं । भीष्मनामीं प्रसिद्धपवीं ।
 श्रीकृष्णार्जुनीं वरवी । जे गोष्टि केली ॥ ८५ ॥

जें उपनिषदाचें सार । सर्वशास्त्राचें माहिएर ।

परमहंसी सरोवर । सेविजे जें ॥ ८६ ॥

तिये गीतेचा कलशु । संपूर्ण हा अष्टादशु ।

हणो निवृत्तिदासु । ज्ञानदेवो ॥ ८७ ॥

पुडुतीं पुडुतीं पुडुतीं । इया ग्रंथा पुण्यसंपत्ती ।

सर्वसुखीं सर्वभूतीं । संपूर्ण होइजो ॥ ८८ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥

हिरण्य । श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ १८ ॥

लेखनं श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

श्री + + + + साम्राज्यलक्ष्मीस्वरूपीश्वरा

गुरुकृपालुनारायण पातु मां ॥

शकें बारा शतें बारोत्तरे । तैं टीका केली ज्ञानेश्वरें ।

सच्चिदानंदबाबा आदरें । लेखक जाला ॥ ९२ ॥

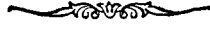
हें पुस्तक विश्वनाथु कोनेर धोलरदेवनुरकर

श्रीसद्गुरुमुकुंदेन दत्ता ज्ञानेश्वरी शुभा ॥

विद्याधराय शिष्याय स्वीय स्वत्वं न शोभते ॥ १ ॥



प्राचीन शब्दकोश



प्रस्तुत लहान कोशांत कांहीं ठळक ठळक प्राचीन शब्दांचे अर्थ दिले आहेत. दुसऱ्या खंडांत ज्ञानेश्वरींतील एकोनएक शब्दांची बृहत्सूचि द्यावयाची आहे, त्यांत अठराहि अध्यायांतील शब्दांचे अर्थ स्पष्ट होतील.

अ

अगत्या—निरुपायानें.
अगाधपण—अमेयत्व, गूढत्व.
अव—पाप, दुःख.
अचल—स्थिर, पर्वत.
अचुंबित—अस्पृष्ट, अतर्कित.
अद्भुतंवरि—अद्यापपर्यंत.
अडदर—भय.
अडव—रान.
अडिनांव—अयथार्थनाम.
अडे—सांठवे.
अढंघें—वरघें.
अणुमुट—अनुच्छिद्य.
अतिसो—अतिशय.
अथव, अथाव,—टव, टाव नाहीं
असा जलसंचय.
अध्वर—यज्ञ, याग.
अनकलित—समग्र.
अनव्रत—निरंतर, नियत, व्रतबद्ध.
अनस्यूतु—अखंड ओंवल्लें.

अनारिसें—भिन्न, भलतें.
अनावर—आवरण्यास अशक्य.
अनुकार—अनुकरण.
अनुघाड—उघाड नाहीं तें, गुप्तपणा,
कोंडणी.
अनुपरोध—रूपोपरोधरहित, यथार्थ.
अनुभौ—अनुभव.
अनुसंग—संगति, संबंध, विश्वास.
अनेग—एकाहून अधिक.
अपभ्रंशु—नाश, अपशब्द.
अपाड—साभ्यरहित, अशक्य, तत्वर.
अपार—अपारिमित.
अपावृत—उघडले, प्रकटले.
अपांपरि—दुर्दशा, भिन्न रीति.
अभोल—भोळा नव्हे तो, प्रबुद्ध.
अर्चिरामार्ग—सूर्यकिरणमार्ग.
अरौतें—अलिकडचें.
अलिउलें—भुंग्यांचे थवे.
अलुकी—व्यसन, क्षुधा, आसक्ति.
अलौकिकां—अलौकिकवान्, लोकांना
सोडून वागणारा.

अवगाळ-गाळ.

अवग्रंभ-अहंकार, आश्रय, धैर्य.

अवसरी-मोहें, समयीं.

अवसात-अकस्मात्.

अव्हाटां-आडवाट.

अविद्या-माया.

अविट, अवीट-अलित, शुद्ध, सरळ,

अविनाभाव-व्यातिमत्त्व, अविलगपणा

असकरणें-धिकारणें.

असका-अवघा, समग्र.

अस्तोव्यस्त-अस्ताव्यस्त

असमसाहस-ज्याचे साहसास साम्य
नाहीं असा, अमर्याद.

असमाई-न समावणारी, न राहणारी

असंघडे-विघडे.

अक्षौहिणी-रथ व हत्ती २१८७०,

घोडे ६५६१०, पदाति

१०९३५०

अंगस्तिगौवण-अंग आन्डादणारी

पिशवी

आ

आउठाविथे-साडेतिसऱ्या.

आंकण-वंदी, प्रातिरोध.

आंकला-अंकित.

आंकूनि-मुद्रा ठोकून.

आखलिचे-दुष्टपणाचे.

आखर-अक्षर.

आगरीं-खाण, शेत, मळा.

आंगलगें-समागमें.

आगलिक-आधिक्य.

आगलें-अन्य, भिन्न.

आंगवटा-अंतरंग, जातिस्वभाव.

आंगवणें-मानवणें.

आंगवखां-अंगप्रदेशांत.

आगसे-डाहाळ्याचे शेंडे.

आगा-अरे, रे, अहो.

आगियल-आगीचा डोंब.

आचरणें-करणें, अनुष्ठिणें.

आचरतेनि-आचरणान्यांनीं.

आझुंई-अद्यापि.

आझूं-अद्यापि.

आटलिजों-आळावयास.

आंटी-गांठ, मिठी.

आटोपे-डौल, महत्व, व्यापकता.

आठमुठी-अज्ञपणानें व सुश्रवणानें

आंठूंइ-श्रमून.

आठौ-स्मृति.

आडकंठ-अलीकडला कांठ.

आडदरु-प्रतिभय.

आडलिजे-अडखळावें.

आडवंकी-खीळ.

आंड़ें-आणि, अथवा, कां.

आणी-आणतो.

आणि, णी-अग्र, महत्व.

आंतर-अंतःकरण.

आत्राटणें-धापटणें.

आंतुवटपणा-बलिष्ठता.

आते-पावे.

आंतौतें-फार आंत.
 आधि-आहे.
 आधिला-संपन्न.
 आधुधुरे-सदसत्पणें.
 आदिल-प्रारंभीचें.
 आधपलिपिं-ततज्ञालेली.
 आधव-आसक्ति.
 आधाडा-मध्यभाग, आर्धाकडा, उद
 काचा उगम अथवा मध्य.
 आधिकां-बलवत्तर.
 आधिली-अर्धी.
 आनौति-अन्य.
 आपणपें-आत्मत्व.
 आपादिलें-प्रतिपादिलें.
 आपु-प्राप्त.
 आपेसिं-अपयसों.
 आबुधिलीं-अभ्युत्थान ज्ञालीं, उठलीं.
 आम्राय-वेद.
 आय-वद्य, लाभ, आकार, ठिकाण.
 आयणी-सामर्थ्य, इच्छा, प्रसर, रीति,
 तत्वनिर्णय.
 आयतन-विश्रांतिस्थान.
 आजें-मिळें.
 आडिं-दरड, खोल विवरें.
 आर्त-इच्छा.
 आरणीं-रक्षणकर्म, सेना.
 आरंभरंभा-कदली, अप्सरोविशेष.
 आराइले-वोपिले, अनुसरले.
 आराणुक-विश्रांति.

आराय-सुख, समाधान, हर्ष.
 आरौत-अलिकडील, अपकृष्ट.
 आलवणें-बोलणें.
 आलविलें-बोललें.
 आलुकैलें-भुकेले.
 आळोडावें-बुसळणें.
 अवगाणिचें-अलिकडचें.
 आवंगे-स्वीकारि, पावे.
 आवडतें-हवें तें, इष्ट.
 आवडे-वाटे. [अवच्छिन्न होणें.
 आवरणें-पसरणें, विस्तरणें, आकारावें
 आवसिक-अल्प वसती आहे जेथें.
 आव्हासु-आभासु.
 आवालुवें-ओष्ठ प्रांत.
 आविस-अमिप.
 आवेंगवाणें-व्यंगरहित.
 आशतूटि-निराश होऊन.
 आसलगपणा-सोपेपणा, गोडी.
 आसंसीति-वर्णन करतात.
 आहाच-उथळ, सामान्य.
 आहाचवाहाच-वरवर.
 आहाणा-दृष्टान्त.
 आहाति, ती-आहेत.
 आहो-प्रतिष्ठा, आकार.
 आक्षादिजे-आच्छादिजे.

इ, ई

इतुले वेन्हीं-इतक्यापर्यंत इतकें.
 इयेतव-इच्याकारणें.

इं-देखील.

ईभ-इत्ती.

उ, ऊ

उक्ता-सांगितल्या.

उकलियां-समविषमता.

उखितें-एकसरें, आंगंतुक.

उगाणां, उगाणे-झाडा, उपदेश,
सांगण, समर्पण.

उगेयां-स्वस्थ.

उगंडू-सुटका, बहिर्गमन.

उजगरा-जायति.

उजरी, उजिरी-ऋजुता, रीति, स्वच्छता
सरिसेपण, विस्तार.

उजलाचें-चकाकणारे.

उजीवडें-प्रकाश.

उजू-नीट.

उजुकारें-नीट प्रकारें.

उतत-बाहेर पडत.

उत्पवन-उडणें.

उते-बाहेर सांडणें,

उदका-उदकानीं.

उदंडीं-अत्युत्सुक होत्सात्यांनीं.

उदाणें-बाग, वर येणें, प्रादुर्भाव.

उदिपे-उद्दीपन होई.

उदो-उदय, प्रादुर्भाव.

उधवला-उसळला. [नेत्र ज्याचा.

उन्मेखु सूक्ष्मेषण-अवधान हाच सूक्ष्म

उनादा-जायत.

उपसा, खे-उपसा, व्यर्थत्व, वेच.

उपणितां-सुपांनै झडपलें असतां.

उपरोधी-भीड, अडचण.

उपलवला-दृढ धरिला.

उपहतु-हानि पावलेला, येळिल.

उपादेय-ग्राह.

उपायिलें-प्राप्त झालें, विस्तारलें, प्रसिद्ध

उपास्ति-भक्ति.

उपासन-भक्ति.

उपेग-उपयोग.

उभगला-कंठाळा धरिला.

उभडा, डें-ळोंढा, भडका.

उमपें-मोजण्यास अशक्य, अमूप,

उमाणितें-मोजितें.

उमेठें-मेळावा.

उराउरी-झडकर.

उरुयें-श्रेष्ठ.

उरोधु-प्रतिबंध, भीड.

उल्व-गर्भाची पिशवी

उल्हाटे-दहून पळे.

उल्लिगे-चोक-या नोक-या, विगार,
वेठ.

उवाउं-उत्साह.

उवायिला-बोधिला.

उवेढा-वेढा दूर करणें.

उसिटा-उच्छिष्ट.

उहरविलीं-उद्धरिलीं.

उद्दीपुद्दी-भवति नभवति.

ऊठि-बाकी.

ए, ऐ.

ए-येतें, येई.

एकतुकें-एकमापाचें.

एकनिष्ठ-दृढश्रद्ध.

एकवकैयेचा-सारखेपणाचा.

एकाधें-एखादें.

एकोल-एकवेळ.

एपा-इर्षा, बरोबरी.

एसणें-असलें.

एंति-येतात.

ऐसां-असा.

ओ.

ॐइचिलें-अत्यंत अल्प.

ॐगरा-वादणें.

ॐडवला-पातला.

ओतपली-दीप्ति.

ॐधिजलें-पातळ केलें.

ओमाणें-पूर, वेग.

ओलांतरलः-उशीर झाल्यामुळें फ-
सला,

ओलावणी-शांति.

ॐलिवटा-येण्याजाण्याचा मार्ग.

ॐवंडति-घडघडतात.

ॐवरां-खोर्लीत, वोवरीत.

ॐसंझनि-सोडून, टाकून.

ओसणतां-बरळतां.

ओसाणें-केर, कसपट.

ओहिरी-खोली.

क.

ककारांत-सुषुम्ना.

कटारे-शस्त्रविशेष.

कडवसा-काहीं आधार, प्रडसावली.

कडसणी-कढ, मंथन, कसणें, सावध
करणें, विचार करणें, यथा-
क्रम उच्चारणें.

कडसावें-परीक्षावें.

कडेलग-शेवटाजवळ

कडौनि-कडून.

कणव-दया.

कपोलें-गालानें.

क-हें-उंट.

करांडी-कुरतुडी.

कल्पित-मायारूप, मानीव.

कलिया-वळ.

कव्हणी-कोणी.

कव्हाल-कवच.

कविलासु-कैलास.

कस-परीक्षा.

कसु-सामर्थ्य, बळ, परीक्षा.

कलभा-झगडा.

काचें-कचें.

काचेयां-कच्चा लोकांस.

काज-काय !

कांटालें-तराजू, रोमांच.

काढ-वेगानें वहाणारे.
 काढत-धावत, लावित.
 कांतले-जुंपिले.
 कांवि-तिरकामट्याची कांव.
 काभिजे-इच्छावें.
 कालवखें-कालोख, अप्रकाश, आ-
 लस्य.
 कालासला, कळासति=बांधिला, न्या-
 हाळिला.
 कालौनियां-विचारणा करून.
 कासी-वाराणसी.
 काह्या-कसा.
 क्रान्तदर्शी-ज्ञानी.
 कीजतासि-केला जात आहेस.
 कीड-हीण, वाईट.
 कीडरु-सर्प.
 कीडाल-खोटें, फटकळ.
 कीरु-खरें पाहिलें तर.
 कुडें-खोटें, लटकें, फटकाळ.
 कुरुठा-शहाणा, गाढ्याळ, खजाना.
 कुरौंडी-ओंवाळणी.
 कुलकेणी-कुशलता.
 कुलवाडी-संतति, रयतावा.
 कुलैवा-कुलदीपक
 कुवाड-दुर्घट.
 कुवांसा-आश्रय, साहाय्य.
 कुहां-कूप, विहीर
 कूटि-निंदा, अपवाद.
 कूदांतु-यमधर्म, मृत्यु.

कें-कोठें.
 केणी-प्रकार वस्तु.
 केणें-वस्त्राच्या घडीमोंवती बांधलेली
 दोरी
 केती-किती.
 केरु-नाश
 केव्हालि-कोणत्या वेळीं ही.
 कोठली-कुजकी घाण.
 कोंडा-भूस.
 कोंडणी-कोंडून टाकणें.
 कोंडें-सहज, कौतुक, प्रीति, संकट.
 कोंढ-गावकुसूं.
 कोंघाटें-व्यापे, भरे.
 कोखु-इटी.
 कोल्लैरी-शाला, मंडप.
 कोवलिक-कोंवळेंपणा.

ख

खडुलें-गडूळ पाणी, गाळ.
 खरपें-रुक्षपणा, कठिणपणा, नीरस-
 पणा.
 खराटे-फांका, अप्राप्ति.
 खलन-स्खलन.
 खवलें-खपली.
 खपणेंयाचां-नम्र, नागा, वौद्र.
 खांखांते-कर्कश.
 खांचे-दमें, श्रम पावे.
 खाजें-खाद्य.
 खाल-कातडी, साल.

खालतिले-खालच्या, अधोभागीच्या.
 खिरडला-माणें सरला, हटला.
 खीचु-खिचडी,
 खेओ-बरोबर, समवेत.
 खेलतां-लीलेनें.
 खेवणिलें-कोंदिलें.
 खेवणें-कोंदण.
 खेवां-बरोबर, समवेत.
 खोंकरें-फुटकें
 खोटि-गोळा, आंटीव सोनें.
 खोले-वस्त्राची खोळ.

ग

गगनखालिचें-आकाशाच्या क्षेत्रांत वा-
 वरणारें.
 गजघंटा-गजसमुदाय.
 गडदे-अंधकार, निविड.
 गंधिकालिक-काळा मळ.
 गमिजे-मिळविलें जातें.
 ग्रंथुगरुवतिचा-ग्रंथगौरवाचा.
 गवसणि-पिशाची.
 गवे-सांपडे
 गहीरु-गंभीर.
 गाच्याप्रज्य-गजवृज.
 गाढिका-दृढता.
 गावाई--विनोद.
 गिवसावा--शोधावा, आच्छादावा.
 गुतकुलिया--गुदगुल्याः
 गुंपौनि-गुंतून.

गैसासै-नेणतेपणें.
 गोखां-मध्यवर्ती लोकांस.
 गोरि-व्याध, पारधी.
 गोसांविं-धन्यानीं.
 गोसांवीं-घनी.
 गौल्य-माधुर्य.
 गहिंसासा-निवांत असा.

घ

घणवट-परिपूर्ण, भारी.
 घरडहुली-घरझाडा.
 घराणीं-घिरटीं.
 घली-काढी.
 घसणी-घसट.
 घाउस-ग्रहण करण्यास उत्सुक.
 घांधवसितां-शोधितां (frequen-
 tative of गवसणें.)
 घातेचिये-संकटाचे.
 घापत-सांपडत.
 घारले-प्याले, खारट, व्यापिले.
 घेतें-अंतःकरण.
 घेपे-घेतलें जातें, घेइजे.
 घोकरि-चटकन.
 घोघे-घोघो करीत जाणारे पाण्याचे
 लोट, जलद जाणारें.

च

चटवंच-चटका व फसगत.
 चडत-चढत.

चदावा—उत्कर्ष.
 चलिया—क्षोभ, चांचल्य.
 चवक—वचक, भय.
 चवरें—शेवट, चामर, अंगण.
 चांग—चांगले.
 चांचोड—चोंच.
 चाडे—बीं पेंरावयाचें यंत्र.
 चीरा पडे—नाश होई.
 चुभलून—बुचकळून.
 चुलकि—मस्तकी.
 चेइरें—जायति.
 चेउनिया—जायत होऊन.
 चेंति—जागे होत.
 चेंपणें—पुट घालणें.
 चोजें—कौतुक, आवड, नवल.
 चोंडा—गर्ता, विवर.
 चोपि—घडी.
 चोबारा—चवाठा.
 चोहट, चौहटां—चवाठा.
 चौपाहारी—चार प्रहर.
 चौहोरि—चोहों बाजूतें.

ज

जन्मौनि—जन्मापासून.
 जमाकरि—यमावर.
 जरंगा—जाळें.
 जलसेन—जलशयन, महाविष्णु.
 जवनीक—पडदा.
 जवला—संनिध.

जवालिक—सान्निध्य.
 जाकलून—व्यापून, ग्रासून.
 जागेश्वरा—यागेश्वर, यज्ञेश्वर.
 जाड—पचंग, वळ, थोर.
 जाणतेन—ज्ञानी जो त्याणें.
 जांपाणि जांपाणीं—लपतलपत.
 जालीलीया—जाळल्या.
 जियाळें—जिणें.
 जिव्हार—जीवनकला, मर्म.
 जीणिजे—जिकाचें.
 जांताणें—वाचणें, कुरवंडी.
 जींति, जींथि—जीवन.
 जीपे—जिकवे.
 जुतीस्वरूप—उक्तिरूप.
 जुंतलेयां—जुंपलेल्यांना.
 जें—यत्, यस्मात्, ज्या अर्थीं.
 जेउति—जितकी.
 जेहाचें—ज्याचें.
 जें—जेव्हां.
 जैत—जय.
 जोगे—पोषक, समर्थक.
 जोजारु—दुःख, कष्ट, संकट.
 जौहर—अग्नि, विवर.

झ

झकवलपणें—फसवणुकीनें.
 झनें—नकारार्थी, निश्चयार्थी, कादा-
 चित्कत्वार्थी.
 झांक—उडी.

झाकरी—झटकर.
 झांकवति—फसवितात, ठकवितात.
 झांकोले—आछादितहोई.
 झांटी—गर्दी, फळी, समुदाय, झाडी,
 झावलें—अस्पष्ट, ना उजेड ना अं-
 धार.
 झांपकणे—फसलें जाणें, फसणें.
 झुलुआ—शोके.
 झोलु—पदर, मिथ्या, असार.

ट

टकति—सुटतात.
 टाकी—पावें, येई, प्रात होई.
 टांक—टसे.
 टांचें—लहान.
 टिटियांतु—पायांच्या तिकटांत.
 टीविला—चर्मवाद्यविशेष.

ठ

ठक—तटस्थ, ति-हाईत.
 ठाउनि—आसनावरून, स्थानावरून.
 ठाणा दिवी—दिवली ठेवण्याची
 वैठक.
 ठावावे—हीं—हा काळपर्यंत.
 ठी—स्थिति.

ड

डंसु—दंश.
 डहुलतें—धुसळतें.

डाखले—दंश करण्याचे दांत.
 डालें—फुलेंफळें घालावयाची पाटी.
 डावली—दूर करी, परिहरी.
 डावा—दूर.
 डांड—मोठे चिरे.
 डाँडी—दवंडी, डांगोरा.
 डौरां—गोंधळ्याचें वाद्य, उपहास
 डाँले—डोहाळे.

ढ

ढवल्लें—शुभ्र झालें.
 ढाली—हालवी, घाली.
 ढिसाल—थोर.
 ढेंढें—सूप.
 ढाँडी—वाटोळा आकार, फुगारा
 ढंकु—कोटाची भित.

त

तंडां—भांडां.
 तण्हारे—गवताची शोपडी.
 त्राय—सत्ता, रक्षण, ठाव.
 त्राये—रक्षण, आश्रय, बळ, सत्ता,
 ठाव.
 त्रिमालिकें—तीन मजली.
 त्रैधातुक—वातापित्तकफत्व.
 तळगे—पिलीं.
 तळहातिचेनि—तळहातच्यां.
 तव—मुळें, कारणें.

तवंकें—धैर्यं.

ताउवा—उघड, प्रकाशित.

तागा—नाव दकलावयाचा वेळू,
आधार.

तातलें—तापलें.

तास—नांगर्याची रेघ.

तीमे—भिजे.

तुगुटी—त्रिकुटी, ज्ञातृज्ञानज्ञेयादि-
प्रपंचरचना.

तुलिगासवें—प्रतिध्वनीबरोबर.

तुषान्न—कोंड्याचें अन्न.

तुहतें—तुला.

तूक, तूंक—महत्त्व, वजन, हीण.

तूकलें—वजन केलें, सारखें झालें,
डोललें, हालविलें.

तेउती—तितकी.

तेया—त्या.

तेसणा—त्याप्रकारचा.

तैसा—तसा.

तोंडागलें—मुखर.

थ

थाउं—ठिकाण, तळ.

थाटी—झाडी.

थाया—मोह.

थोर—स्थिर होई.

थावली—स्थिर झाली, बळावली.

थावें—बळ, उथळ, आश्रय, प्रांत.

थिनलें—छिन्न होणें.

थीतें—स्थित, सुस्थित, स्थिर.

थीलरातें—डवक्यास, पत्वलास.

थेंकुलें—थोडें.

थोकडें—थोडकें.

द

दाटिजे—श्रमावें, दमावें, संकोच-
पावावें.

दरकुटें—पर्वत तट.

दलवाडें—समुदाय, घनवट, मोठा
दगड, आकार.

दलवैपणाचा—सेनापतित्वाचा.

दांग—वन.

दाघु—दाह.

दांडेवारि—काठीनें.

दादुला—पति, धनी, थोर पुरुष.

दायाद—दाईज.

दारवठेकारु—उंबरठा सिंहाविणारा.

दासट—दाहक, नाशक, पीडकं.

दियां—दिवसां.

दिहबलें—उजेडाच्या साहाय्यानें.

दिहा, हें—दिवसां.

दिहेंदीमें—दिवसेंदिवस.

दी—दिवस.

दीठे—दृष्ट, अनुभूत.

दुपाउली—दोन पावलांत.

दुबला—दुर्बल.

दुर्भर-भरण्यास कठिण.

दुरासे-दुराशेनें.

दुरिकें-लांब.

दुवाडपण-दुस्तरत्व.

दूण-दुपटी.

देखी-रीति, दीक्षा, दंडक.

देवढे-तिढे, वक्र.

ध

धटे-निश्चयाने.

धडसा-धड असा, अव्यंग असा.

धडेयावारि-हातोळ्यावर (हातोळा=ह-
स्तावलि)

धडौता-सांग.

धणि-पूर्ति, इच्छा.

धवड-मोटा दगड (धावड=कठिण
लोखंडाच्या दगडावर काम
करणारा.)

ध्वनित-व्यंगोक्ति, सूचना.

ध्वनिते-व्यंगोक्तीनें, सूचनेनें.

धसाल-स्थूलदृष्टीचा, अविचाराचा.

धाकडांसि-वळकट, धोट.

धायेपण-दायीचें काम, संगोपन.

धारणीं-इच्छा, खांब.

धारसे-मध्यप्रवाह.

धावेया-हांकेसरसें.

धीटीवं-धीटपणा.

धूरे-अग्रभागीं.

धोंधा, दा-वर्षाव.

धोरणु-धोपटमार्ग.

न

नडनाचें-नटाच्या नाचण्यानें.

नवानिसिति-नव्यानें पाजळलेल्या

तीक्ष्ण.

नव्हाली-तकतकी, नवाई.

न्यसावी-ठेवावी, घालावी.

नां-नकारार्थी अथवा, नाथवा.

नाइकें-कान न देई.

नाखि-टांकी.

नागर-राजस, चतुर, नगरवासी,
लिपिविशेष.

नागरपणें-संभावितपणें, चातुर्यानें.

नांगवे-न सांपडे.

नाडले-आढळेना.

नाथिलि-नसली.

नादिचे-श्रवण सुखाचे.

नाना-अथवा.

नापूवे-न बुडे.

नांभरि-क्षणभर.

नाराणुक-असामाधान.

नाव, वं-क्षण (?)

नावांनावां-क्षणक्षणां.

नावेक-क्षणैक.

नाशिली-नष्ट.

निगदु-शपथ.

निचाड-निष्काम, चाड नाही असा.

निजाचा-मनाचा, आत्मस्वरूपाचा.
 निडलीं-कपाळीं.
 निडार-पक्कदशा, समता.
 निफनलि-निष्पन्न झालीं.
 निमथा-माथा.
 नियता-नियमनशील पुरुषांनीं.
 निर्गुडु-जेथें उच्चनीच दगडधोंडे
 नाहीत असा.
 निरतां-निरतिवान्, मग्न.
 निर्लाग-निराश्रय, लाग नाही जेथें.
 निरविडी-निश्चयानें अनुरूप.
 निरालीं-अंतरालीं.
 निराश-आशारहित पुरुष.
 निरोललें-व्यवस्थित रचना केले गेले,
 निर्मळ केले गेले.
 निरोलिलिये-निर्मळ केले गेलेल्या.
 निरुता-निश्चयानें, खरा.
 निलयाचा-इंद्रनीळरत्नाचा.
 निवाडु-निर्णय, भेद.
 निशाण-नगारा.
 निष्ठा-स्थिती, श्रद्धा.
 निषण्ण-शांत बसलेले, निवांत, निश्चल
 स्थिर.
 निस्तरैल-तरून जाईल.
 निसिं-तीक्ष्म.
 निसुगै-निर्लज्जपणा.
 निहितिला-दडपिला, जडला.
 नीक, का, केनी-चांगलें, खरें, वरें,
 हिताचें.

नीकें-खरें, चांगलें.
 नीणिलें-नेले, मेळविले.
 नीरु ताउनि-पाणी स्पष्ट तपासून.
 नुभगिजे-दमूंभागूं नैथें, वासूं नये.
 नेदखति-पाहत नाहीत.
 नेवाणें-तिरस्काराचें पात्र.
 नैए-येत नाहीं.
 नैयंतां-न येतां.
 नैयेइल-न येईल.
 नौकिलीं-निंदिलीं, चुकविलीं, लप-
 विलीं
 नोडवेचि-पुढें न करणें, पुढें न येणें,
 प्रात न होणें, न ओढवे.

प

पडप-प्रतिष्ठा, महत्त्व, श्रृंगार.
 पडिभरें-आधिक्य, भर, अतिशय.
 पडिसादा-प्रतिध्वनि.
 पडिहासे-भासे, प्रतिभासे.
 पडियंता-आवडता.
 पडियें-प्रीतिपात्र.
 पतिकरु-रचिलें ? संजोगिलें, अंगीकार
 पंन्नासिलें-रचिलें, संजोगिलें.
 पन्हरें-पुतळीचें सोनें.
 परउतें-पलीकडे, वेगळें.
 परगुणें-पक्कान्न.
 परमार्थ-महत्त्व.
 परवाली-प्रश्नाळलेले, धुतलेले, स्वच्छ
 पन्हौतीं, पन्हौतें-पलीकडें.

परावा-परकी.
 परि-प्रकार, रीति.
 परिसावेया-ऐकण्यास.
 परिहसैं, परिहसैं, परियसैं-लीलेनें,
 विनोदानें.
 परिहसैं-विनोदानें किंवा लिलेनें बोल
 शील तर,
 परौता-दुसरा, वेगळा, पलीकडे.
 पलति-दूर जातात, पळतात.
 पल्हातां-विस्तारानें विवेचन करतां.
 पलिपे-पेटे.
 पलिपलीं-पेटलीं.
 पवडला-प्रवेशला.
 पवले-प्रकर्षाने वळतो, जातो.
 पव्हणा-पोहण्याजोग्या पाण्याचा डोह.
 प्रतिपदी-विवेचन करी.
 प्रतिस्फळें-उलट फलद्रूप होते, परत
 उत्पन्न होते.
 प्रभवे-सामर्थ्य असतें.
 प्लव-ताप, नौका.
 पाइं-पाही, अवलोकी.
 पाइकु, पाइक-सेवक, पदाति.
 पाउखौनिया-फिरवून.
 पाउटीं-पाथरीनें.
 पाउडु-दक्षणा, पैसासुपारी.
 पाउसीं-प्रावट्कालीं.
 पाएं-पायानें.
 पाएरवें-वरदळीनें.
 पाखर-आश्रय,

पांगु-गरज, अपेक्षा, ओशाळगत,
 हीनत्व, पराधीनत्व, एकदेशित्व,
 दुर्लभत्व, रावणें.
 पांगुतलीसे-आळादिली असे.
 पांगूळ-पंगु, व्यंग्मावयव.
 पांचवनेया-पंचवन्हींच्या समुदायाच्या.
 पांचाखरी-पंचाक्षरी, मांत्रिक.
 पांजरा-प्रतिबंध.
 पांजला-व्यापला.
 पाझडीं-दाट झुडुपें.
 पाटा-आडपडदा.
 पाटाऊ-वस्त्र.
 पाटु-पट्टा.
 पाड, पाडु-साम्य, योग्यता, वेगळे-
 पण, मान, किंमत.
 पाडि-डोंगर, टेंकाड.
 पाणिवलें-पाण्यातील केरकचरा.
 पांत-पावत.
 पातलें-प्राप्त झालें.
 पांतां-पाहातां.
 पानियेडें-तळें, जळपात्र.
 पांपरा-लाथ.
 पात्रली-तुच्छ, नश्वर.
 पायळू-पायाकडून उपजलेला, पायाळु
 पारुखति-न राहती, न घडती, बंद
 होती, रुसती.
 पालवे-पदर.
 पाल्हाळु-विस्तार, गावाळ, पाझर.
 पालिगणें-पंक्ति.

पालूविला-परजिला.
 पावी-पाहावी, अवलोकावी.
 पासवर्णे-फांस, बंधन.
 पासिक-फांस.
 पाहळा-पातला, आला.
 पाहांती-प्रकाश पावणारी,
 पाहार-प्रहर.
 पाहाले-उजाडलें, प्रातःकाळ.
 पाहिचा-उदयिकचा.
 पाहूती-पायरी.
 प्राकृती-अनधिकान्यांनीं.
 प्रांजल-सुगम, सोपें.
 पांथि-पितात.
 पुडुति-पुनः.
 पुढिल, पुढैल-जवळचा, दुसरा.
 पुणु-पुनः, पण, परंतु.
 पुरुता-पुर्ता, पूर्ण.
 पूसा-पक्षी, पोपट.
 पेंठा-आडरस्ता.
 पेणा-मुक्काम, टप्पा, मजल.
 पेलावा-ढकलावा, प्रेरावा.
 पेलिला, पेलुनि-ढकलिला, ढकलून.
 पैकु-समुदाय.
 पैज-प्रतिज्ञा (पइजा.)
 पैयारें-पाहिरी.
 पैसारु-मार्ग, (पादसार.)
 पैसु, सें-मार्ग.
 पोखलें-पोषलें.
 पोतलूनियां-पोटाशीं धरून.

पोतासाची-भीमसेनी कापूर.
 पौलि-प्रकार, सभोंवतालील भित्त.

फ

फटिकु-स्फटिक.
 फली-समुदाय, रांग, पक्ष.
 फाडेवारी-वेगळे करीपर्यंत
 फावले-प्राप्त झालें.
 फावा-प्राप्ती, लाभ.
 फुडें-खरें, बरें, स्पष्ट.
 फूटति-स्पष्ट, धड.
 फूटावें-दूर व्हावें.
 फूटी-विकास, प्रकटता.
 फेडणें-घालवणें, नाहींसा करणें, पुसणें,
 सोडणें.

व

वग-मार्ग, योग, देखावा, संबंध.
 बनकरु-माळी.
 बरटेनि-चिखलानें.
 बरडी-माळजमीन.
 बरल-भ्रांत, अस्वस्थ, एकांचें एक
 बोलणार, दुर्मार्गप्रवृत्त.
 बरवते-चांगलें.
 बरवा-चांगला.
 बलियावीलें-बळकट केले.
 बहुते (येकु)-फार, पुष्कळ.
 बांधे-आकार.

बापु-वडिल, मान्य, संमान्य.
 बापिकें-वडिलार्जित.
 बाबुली-शेवाळ, गोंडाळ.
 बाहाकातें-फाकणारीं.
 बाहुडे, बहुडे-जाई, पाठवी, निरोप देई.
 बाहिरसवडिआ-बहिरोष्टानें, स्पष्टपणानें.
 बिरिदांचे-बाणेदार, प्रतिज्ञावंत, थोर
 बिवडु-बीजपोषक जमीन.
 बीक-आधिक्य, आवड, शोभा, ब-
 डिवार.
 बुडडा-बुडबुडा.
 बूंथि, बूंथी-बुरखा, आछादन.
 बेगें-खिडकी.
 बेठा-बसलेला
 बेंथु-दांडगा.
 बैसणें-आसत.
 बोधला-ज्ञानसंपन्न, कळला.
 बोंबलें-लिंपले, सारवले.
 बोबांतां-हाक मारतां, पुकारतां.
 बोलावें-वक्तव्य.
 बोलती-बोलणारी, अभिप्राय स्पष्ट
 करणारी
 बोलिजत-बोलिलें जात.
 बोहिलीं-भस् केलीं.
 बौहसपणें, बौहस-फार, अत्यंत.
 बौहे-फार, पुष्कळ.

भ

भडसे-पूर, महत्व, लोट, आधिक्य.
 भंगी-रीति, प्रकार.

भरवसेनि-भरवश्यानें.
 भरितु-पूर्ण, भरलेला.
 भरें-पूर्ण, अशयित.
 भले-ह्वेतसे, चांगले.
 भ्रमातुकातें-गरगर फिरणारे.
 भांगार-सोनें.
 भांजे-भग्न होई, तुटे.
 भाडिचा-बीभत्स व्यवहार व भाषण
 करणाऱ्या स्त्रीशीं व्यवहार
 ठेवणारा.
 भाणें-ताट, पात्र.
 भातें-मजूरी, पोटगी.
 भांभ, भा-भ्रांति, शोभा, सौंदर्य.
 भारणी-वशीकरण.
 भांसल्लें-भ्रंशलेलें.
 भितिल-भितील.
 भुरुहिं-वनस्पति.
 भूतला-झालेला, अनुभवलेला.
 भूतषिचां-भूतरूप खिचडी.
 भूवंग-सर्प.
 भोंकसा-सगळें चर्म, मृत जनावराचें
 गवत वगैरे भरून ठेवलेलें
 सबंद कातडे.

भौज-संतोष, महत्त्व, सांग, स्वेच्छा,
 कौतुक,

म

मगावासि-शोध केला जावास.
 मन्हाटा-उघडा, प्राकृत, सुगम, मरा-
 टी भाषेंतील, भाषेनें.

मवलां-मोजक्या.
 मवावा-मोजावा.
 महाकाव्यारा ३०-महाकाव्यांचा राजा.
 महारिरवीचें-महर्षीचें.
 महुर-मधुर.
 ह्यणिपती-ह्यटले जातात, ह्यणवितात.
 ह्यणियागत-आज्ञाधारक.
 मांगल-मंगळ, पवित्र.
 मागीलकी-पूर्वीची.
 मांजवण-कैफाचे पदार्थ.
 मांजिठे-तांबडें वस्त्र.
 माजिवटा-मध्ये.
 माझारि-मध्ये.
 माक्षिवडे-मध्ये, मध्यवाटेंत.
 मांट-किर, निबिड.
 माथुला-लहान रवि.
 मांदल-वाद्यविशेष.
 मांदोडा-फळांचा घड, बाहुल्य.
 माधवी-वसंत.
 मानेयाचे-अहंतावान पुरुषाचे.
 मालें-राव, काकवी.
 माल्हेवे-विज्ञे.
 मासिं-मजशीं.
 माहिर-मायघर.
 मिरवणियां-मिरविलेलीं रूपें.
 मिलणीसमें-संयोगाबरोबर, प्राप्तिबरो-
 बर.
 मीति-गणनां.
 मीनले-मिळाला, भेटले, एकत्र झाले.

मुगतु-मुक्त.
 मुगुतें-सायुज्य.
 मुलीं-तळवटीं.
 मेकली-घट्ट बांधलेलीं.
 मेघौडें-लहान मेघ.
 मेरे-मर्यादेस.
 मेल्हावणें-संयोग.
 मेहुडें-लहान मेघ.
 मैले-योगानें, प्राप्तीनें.
 मोगर-निवडक लोक.
 मोटका-थोडकें, इवलेसें.
 मोडौनियेणें-भरानें येणें, मोडून येणें.
 मोहरे-सन्मार्गीं.
 मोहलले-भ्रांत झाले.
 मोहोर-सन्मार्ग, दिशा, अभिमुखता.
 मोआलें-मवाळ, नरम.

य

यकवंकी-एकाकार.
 यज्ञभावित्तीं-यज्ञानें पूजिलेल्या.
 यंत्रवरचि मार-गोलंदाज.
 येकोळ-येकवेळ.
 येतुलां इतका, एवढा.
 योगानिक--योगाभि ज्यानें ठेवला तो.

र

रंगाथिलें-रंगविलेलें.
 रमानाहें-रमानाथानें.

रलीं-विनोदानै.
 रसवृत्ति-शृंगारादिरसांची प्रकटता.
 रसोयें-पाक.
 रहवरु-रथश्रेष्ठ.
 राउवें-पोपट.
 राउनि-निश्चल करून, स्थिर करून,
 स्तब्ध करून, एकान्त करून.
 राउलीं-राजवाड्यांत, महालांत.
 राजवंटा-राजमार्ग.
 राणिव-राजपण.
 रामस्य-स्वरा, सामर्थ्य, बलाकार.
 राल-आसक्ति.
 रावित-रंगवीत, रांपवीत.
 रासौभा-पखलण.
 राहांत-स्तब्धता, लोप.
 राहांतें-स्तब्धता.
 न्हाय-राही.
 रितु-ऋतूंच्या.
 रितुपति-वसंत.
 रूढ-प्रसिद्ध, लोकमान्य.
 रेखा-काव्य रचना, अक्षरपंक्ति.
 रेवले-बुजालें, सांचलें, रुतलें.
 रेवा-रुतण्याजोगी मऊ वाळू.
 रोसैं-राग, क्रोध.

ल

लंहिदवडी-लगवग, गडबड.
 लाग-संबंध.
 लागणेंयां-लागट करणारा जो तो
 लागणा, त्याला.

लागु-संबंध.
 लाठीं-वीचि.
 लाठेपण—बलिष्ठता.
 लाणि—प्रतति, गोळा करणें, मर्यादा.
 लादु—लभ्य.
 लांबा—पर्जन्य पडून भातगोट्याचें
 दुसऱ्यांदा उगवणारें रोप.
 लाहा—अतिशयित इच्छा.
 लिंगभेदु—शिष्यत्वादिचिन्हनाश.
 लिंगु—चिन्ह, दैवत, लक्षण, मर्या-
 दाचिन्हः
 लूसिली—खुडली, मोडली.
 लेख—गणना, आकार.
 लेप—दोष, मळ, चित्र, वर्णलेप.
 लेसां—बरे रीतीनें.
 लो—लय.

व

वंगु—कलंक, डाग.
 वचिजे—जावें.
 वज्रयोगें—हठयोग.
 वडपें—वृष्टि.
 वणवला—वणव्यानें व्यापिला.
 वणिजे—उदिमास.
 वणेंसाठीं—व्यापाराकरतां, उदिमा-
 करितां.
 वरगण—वांटणी.
 वरचिलि, वरिर्चाल—वुरकड, वरील.
 वरपडा, वरिपडा—स्वाधीन, मडता.

वरिवं—शोभा, उत्कृष्टपणां.
 वरिवावें—वर जावें, उलट जावें,
 चढून जावें.
 वर्षु—पाऊस, वृष्टि.
 वलप्रलेयां—उल्लंघन्यास.
 वसें—वशें.
 वसैठ—वासस्थिति, वासस्थान.
 वसैठा—वासस्थानक.
 वहिला—सत्वर.
 वहिवटीं—शेतें वाहणाऱ्यां लोकांच्या
 नावाचा पट्ट हणजे याद.
 वाइलें—वाहिलें, पेरिलें.
 वाउनि—वाहून.
 वाउर—वाईट.
 वाउलीं—व्यर्थपणें, रिकामा.
 वाखारी—वखार.
 वाखोरां—हृदयरूप कपाटांत, छाती-
 च्या कपाटांत.
 वागारे—घोड्याचे दोर.
 वागुर, वागूर—जाळें.
 वांझौलें—वांझ फुलें.
 वाटवंधें—वाटमार.
 वाटवधेया—वाट मारणारातें.
 वांठिवांविण—पुरुषार्थाविण.
 वाणि—कमताई, वाचा.
 वाणिये—प्रकारें, त्हेनें.
 वांत—वाहत.
 वानिया—प्रकार, इयत्ता.

धानिवस—स्वेच्छा, कौतुक, दैवगती,
 मध्यगृह.
 वानी—पर्ण, कस, सारखें.
 वापसा—बीं पेरानवयाचा समय.
 वायकांडें—व्यर्थ बाण.
 वायाणें, णी—व्यर्थ, निष्फळ.
 वारिक—घोडे.
 वारुक—घोडे.
 वारुनि—सांगून, वजावून, निवडून,
 घालवून.
 वालभाचें—प्रेम, आवड.
 वालीप—गंवसणी.
 वाचटे—विश्रांति पावे,
 वाचठेलें—विश्रांति.
 वावडी—दुर्घट, कठिण, घातक.
 वाविं—चार हातांनीं.
 वास—वाट.
 वासिपे, पु—भय पावे, नाश पावे.
 वाहर—पीडा, बोहे, कास.
 वाहातवणां—मार्गस्थ.
 वाहो—कृपिकर्म.
 व्याजें—निमित्त, रूप.
 विकडी—चातुर्य.
 विकारविला—विकार पावविला.
 विकरे—क्षोभे.
 विखें—विषयीं.
 विखोंचे—भोंसकळें जाई.
 विचवे—श्रमे, कष्टे, उपहसे.
 विणवणि—विणकर.

विंदाणें—निग्रह, कौतुक, दगांवाजी,
येणें.

विनट—रंग, चिन्ह, खेळगडी.

विपाइलेया—एखादा, विरळा.

विपार्यें—कदाचित्, प्रसंगें.

विरगतां—विरक्तां.

विरजा—सहाय, व्यापक, दुसरा.

विरजेयाचेनि—सहायकर्त्याच्यानें.

विरुं—विरोध.

विरुद्धि—अंकुर, पालवी.

विलग—उपद्रव.

विवललें—प्रभात जालें, प्रकाशित
झालें.

विवसी—पिशाची, डांकीण, त्रास.

विशेषिति—विशेष वर्णन करतात.

विश्वे—सर्वतोपरी.

विपैँ—विपयीं.

विस—असंभाव्य गोष्ट, विपम गोष्ट.

विसकुसे—विपमत्वे, वैपम्यानें, दुः-
खानें, गोंधळून.

विसणैले—वोसणैले, विपाद पावलेले.

विसंभति—सोडिती, मोकळिती.

विसंवादु—विरोध, भिन्नपणा.

विसुरा, रें—विरुमय, भ्रम, स्वरूप,
चित्र.

विहिला—नियमिला, सांगितला.

वाकैति—विकसित.

वांजे—उत्पन्न होतो, निष्पन्न होतो.

वापे—जाय.

वेखासें—भ्रम, वाईट, व्यर्थ.

वेधवतिर्यें—पृथ्वीला.

वेव्हीं, रि, व्ही—पर्यंत.

वेल—काळ, विलंब, समय.

वेव्हाल—विलासी, विस्तृत.

वेव्हावणें—भोग् घेणें, विस्तरणें.

वेसजें—केम

वेसन—जनावराच्या नाकांत घालतात
दोरी ती, श्रोतृव्याख्यातृ-
संबंध, आसक्ति.

वैव्हे—सत्वर

वोज, वौजें—चांगलें, प्रकार.

वोडण—ढाल

वोतपली—कोंवळे ऊन, दीप्ति.

वोलिंबा—उधय, वाळवी

वोंवरा—खोलींत

वोहटावाहिला—मौन्य धरिलें

श

शयानु—निजलेला.

श्रद्धासूं—श्रद्धावंतानां.

शास्ति—नियमन, शास्त्र.

श्रावली—संतुप्त.

शिखराभिलेयां—सानुमंत, पर्वत.

श्रिटि—सृष्टि.

श्येया—शंभरास.

प

पडा—खडा,

षडाडितां—खडाडिता.
षूणे—खुणें.

स

सकतीसर्वें—शक्तीबरोबर.
संकुल—व्याप्त, गर्द.
सकें—डाकलग.
संधे—जोडी, लावी.
संचकाची—चिक्कु, कृपण.
संजात—सार्थक.
सडिया आइती—केवळ देहमात्र सा-
मग्रीनें.
सडेआ—एकठ्याला, केवळ.
सणाणे—तीक्ष्ण.
सदमुखपण—सन्मुखता.
सदु—छंद.
सधर—बळकट, समर्थ.
सपिलें—समग्र दूध पिणारीं वत्तें.
सपुर—संपूर्ण, भरपूर.
सम—अविषम.
समस्या—शंका.
समात—समावत.
संयती—इंद्रिय नियमन.
सर—शर, वाण.
सरतें—ग्राह्य, मान्य, संपता.
सरली—मोकळीक.
सरलें—संपलें.
सरिपाडु—सोंगच्या.
सरिसे—सारखे, व्यापक.

सरौनि—संपून.
सली—छळी, क्षोभी.
संवचोर, संवियां—संगतीचा चोर,
सोवतीचा चोर.
सवडी—ओठ.
सवंतारेनि—स्थिर आश्रयानें, ध्रुव
जाग्याच्या आश्रयानें.
संवरे—सांवरतां येई, आटोपे.
संवसारा—पसारा, विस्तार, अनुसरणें;
लाभ, दर्शनयोग्य.
सबा—बरोबर, समवेत, सह.
संवादियें—प्रश्नोत्तर करणारा.
सवियां—स्वतः
संहारवाहारे—संहाररूप उत्पात.
स्वसुखिचेनि—आत्मसुखाच्या टायीं
असणान्या.
साइ—साहीं.
साइखेडेनि—सुत्रवाहुलीनें.
साउनि—सहन करून.
सांकडा—कठिण, संकटमय.
साकडु—कठिण.
साकें—डाकलग.
सांघडे—आचरण्यास सारखे.
सांचळु—चाहूल, जाग.
साचोकारें—यथार्थत्वे.
साजणें—सख्य, सज होणें.
सांटापा—साठवण, ब्रह्मा.
सांटोवा—संग्रह.
सांटोवाटी—अदलाबदल.
सांडले—सुटले.

सांता--अस् धातुचें वर्तमानकालवा-
 कच पुह्लिगी एकवचन.
 सांते--अस् धातुचें वर्तमानकालवा-
 चक धातुसाधित अनेकवचन
 संतः, त्याचें मराठी सांते
 (पु. अ.)
 साद--शब्द.
 सांदुकला-पेटला.
 साधित-मारिति, सिद्धीस नेणें, अ-
 नुकूल करणें.
 सांधुक्षणें-पेटणें.
 साना-लहान.
 सान्हा३-कवच, चिलखत.
 सानीव-लहानपण.
 सांपडे-संपात होतो, गोंधळ होतो.
 सांपें, पु-सांप्रत.
 सांपेचा-सांप्रतचा.
 सावरें-अंगण.
 सावेरी-सावरीचें झाड.
 सामधेनिआ-समधातपणें.
 सामान्यत्वे-नीचपणानें.
 सारिखे-योग्य.
 सावाइ-मदतीच्याकामी, स्वेच्छेनें.
 सावाज, ओ-सहाय, वृद्धि.
 साव्हा३-सहाय, उत्तेजक.
 साव्हिआं, सावियां-बरोबर, समवेत,
 तत्काळ.
 सावेसा--स्वेच्छा, अभिलाष.
 सांसिनले-विस्तारले, भरले, साजे, जा-
 हाले.

साहाजें-लिलीनें.
 स्वाराज्य-स्वराज्याचा भाव.
 सिकिलेयां--भिजविण्यांत, सिंचण्यांत
 सिघ, सीघ--शेंडा, अप्रभाग.
 सिठी-सृष्टि.
 सिपे-लित होई.
 सिरे, रें-क्षरे, खरें, कमी होई.
 सिंधिजे-स्पर्शजे.
 सिहाणें-शिक्षाज्ञ, शहाणें, सुज्ञ.
 स्त्रियाणी-प्राप्ति, लब्धि.
 सीग-शेंडा.
 सीतले-शिवला.
 सील-उद्युक्त.
 सुअणी-मजली, टप्पे.
 सुकतेया-सुकणाऱ्या.
 सुखाडले-सुख जाले.
 सुखाडें-आनंदलेल्या.
 सुडसु-मर्मज्ञ.
 सुडावणी-एकाकारता.
 सुंदु-सुवासिक.
 सुभति--पडत्ये, घातली जाते.
 सुमथितु--चांगला घुसळलेला.
 सुयाण-सुकाळ, घालणें.
 सुये-घाली.
 सुरसाह्यें--देवांच्या साहाय्याच्या
 कामी.
 सुवट--मुरूप, छानदार, बेश.
 सुवण--जन्म.
 सुवर्णवाइ--सोनपण.
 सुवर्म--मार्मिक.

मुसडा--चांगलें सडीक.
 मुहडा--चांगला योद्धा, राजा.
 मुहाडा--आनंदयुक्त, मनोरम.
 सूची--चिती.
 सूटिका--पडणें, सर.
 सूतला--निजला.
 सूती--वास करणें.
 सूनु--घालून.
 सूनि--घालून.
 सूपाचें--सुखाचें.
 से--स्मृति
 सेखामृत--शेषामृत
 सेयारा--डाकीण, भय, पिशाची.
 सेल--उत्तम वांटा
 सेलत--हातानें पाणी तोडीत
 सेलवांटा--उत्तम शेलक्या वाटा
 सेवडी--चर्म
 सेविती--भजणान्यांत
 सेस--नवरानवरीस सोयन्यांनीं अक्षतां
 ठेवणें, उरलें.
 सैध--समूह, केवळ
 स्थैर्यताअनुजिनी--स्थैर्याची धाकटी
 बहीण.
 सोआंगें--सांगें
 सोंके--दुःख, असंतुष्ट होई.
 सोय--स्वरूप, ओळख, मार्ग.
 सोरसें--प्रसाद, गोडी, अभिप्राय.
 सोसु--शोष, तृष्णा.
 ह
 हकरे-टकरा.
 हरैला-हरविला, घालविला.

हलुवट-हलकें.
 हलुवारणें-हलकें केले, झाले.
 हलुवारपण-मार्दव.
 हल्लरु-एकप्रकारचें गाणें, पाळणा
 हालवितांना गावयाचें गाणें.
 हवाव-शोभा, सुखी होणें.
 हांगा-अंग, अरे.
 हाततुकें-तर्क, अदमास.
 हातबोने-हातांतले भक्ष्य.
 हातासनें-मिणें.
 हाथिवेनि-काडवातीनें.
 हान-मग, कीं, जें, काहीं, हा, ही,
 कदाचित्, का, पा, मा.
 हारतला-हरविला.
 हालासि-हाणिला गेलास, मारिला
 गेलास.
 हातेआतें-राहाणान्यास.
 हियें-हृदय.
 हीतलें-दूर नेणें, दिरून नेणें.
 हींव-हिम.
 हुडा-समय, उत्सव, सुकाळ.
 हुडे-बुरुज.
 हेंकाडु-अडाणी.
 हेंट-येथें, खाली.
 हेय-निषिद्ध.
 हेला-वेळा.
 होडा-पैज.
 होनि-होऊन.
 क्ष
 क्षपिलें-काढून टाकले.
 क्षीरारें-खिलार.
 क्षेत्रीं-शेतांत.

प्राचीन शब्दकोश

ह्या खंडांत ज्ञानेश्वरींतील एकोनएक शब्दांची बृहत्सूचि द्यावयाचा विचार होता. पण ती फारच व्यापक होत असल्यामुळे तो विचार तूर्त तहकूब केला आहे. या ठिकाणीं अध्याय १३ ते १८ यांतील ठळक शब्दांचे अर्थ दिले आहेत. पहिल्या बारा अध्यायांतील शब्द पहिल्या खंडांत दिलेच आहेत.

अ.

अगारीं-अग्नीं, अंकुरीं.
अगारे-अग्राच्या अन्या, शेंडे, अंकुर.
अडवंतावो-अडथळा.
अडी-रोधी.
अणगट्टीं-मुळांचे ठायीं, शरीरीं.
अणुआरु-बारीक चुरा.
अतिकरे-उशीरानें.
अतूट-संबंद, बळकट.
अदलपण-झेंपण्याचें असामर्थ्य.
अधिचार-मंत्रप्रयोग.
अनावरातें-जें आवरण्यास कठिण त्यास अनुषङ्ग-उघाड नसलेला.
अनुपायनी-सहज.
अनुभौ-अनुभव.
अपखडी-निंदा.
अपटांतरी-पडद्याच्या आंत, परोक्ष.
अपवाडु-उमट नसलेला.
अपाडु-अप्रतिबंध.
अबोट-असंडित लेप.
अभियज्ञ-जवळ नेणारा प्रयत्न.
अरडांते-आरडणाऱ्याला,

अरुवारें-सुकुमार, मृदु.
अल्हे-लघकर, एकदम.
अदू-लघू, लहान.
अवगलला-ढासळलेला, गाळानें भरलेला.
अवर-अपर, खालचे, कनिष्ठ.
अवल्हाउं-अपलाभ, अनिष्ट लाभ.
अवष्टंभ-जर्मि.
अवागमें-अशास्त्रानें.
अवाटु-वाटेची गरज नसलेला, आडमार्गानें जाणारा.
अव्हातें-दुष्ट पक्षानें.
अव्हांत्रिक-भलत्याच्या मालकीचें.
अविनाभावं-व्याप्तीनें.
अवेंगवाणें-अव्यंग.
अशंकडी-विसंगतपणा.
असंघडि-असंघटित.
असंभड-असंबद्ध.
असंवरे-सांवरण्यास कठिण.
असिकें-अशेष, समग्र, सर्व.
अहलि-जमली.
अक्षौणी-सैन्य.

आ.

आइती-विस्तार, ऐट.

आउख-आयुष्य.

आउति-बैलांच्या मेळयांत, नांग-
राच्या जुवांत.

आकर्णा-ऐका.

आकसाला-पारख.

आखरु-अक्षर.

आखें-अंकानें.

आंगशील-वरची चक्राकी, आंगची
साल.

आंगदट-आंगानें दट, वळकट.

आगरा-क्षेत्रास.

आगलिक-आधिक्य.

आगलें-अन्य, भिन्न.

आंगवसें-स्वरूपतः.

आगारी-डिरी.

आगिठां-शेगडीवर.

आंगोपचार-अवयवांचे उपचार.

आग्रया-आग्रहास.

आघाट-भाग.

आटणियां-क्लेश.

आंटी-टु-मिठी, भ्रम.

आटुलैजे-घट्ट होइजे, बांधिजे, निवर
होइजे.

आडमोडी-प्रतिबंधाचा नाश.

आडवंगी-खीळ.

आडवारा-अटकाव.

आडसो-अडथळा.

आडें-दाढरा, अडसर, प्रतिबंध.

आढंच-वर.

आणी-अग्र, टोंक आयणी.

आणोजें-अंकुर.

आते-पावे, होई, प्राप्त होई.

आंतौते-आंतील.

आधधणी-अर्धवट तुप्त, अर्धपोटी.

आंध्य-आंधळेपणा.

आधाइलें-भ्यालें.

आधैलें-अर्ध्या ताटांत जेवणें.

आनाभूती-नाना भूतांच्या रूपानें.

आनु-दुसरा.

आपजलिये-उत्पन्न झालेल्या.

आपैतिया-स्वाधीन.

आंबुखे-शितोडे.

आंबुथे-विपरीत होय.

आंबुली-प्रिय पत्नी, स्त्री.

आमुला-प्रिय पती, नवरा.

आयें-आकार, प्रमाण, लाभ.

आर-अंकुर.

आरवसें-अंकुराच्या योगानें.

आरा-अंकुर.

आरौतें-अलीकडील.

आलव-आलाप.

आलावला-बळास आला.

आलिखलें-गोंठलें, घट्ट झालें.

आलोचु-विचार.

आवगु-घोड्याच्या काहाडण्या.

आवगे-स्वीकारला जाई.
 आवांके-धैर्य धरी.
 आवासु-स्थान.
 आविष्कारें-प्राकट्यें, बळें.
 आंविषा-आमिषास.
 आंविषाले-आमिषाचें स्थान.
 आंबु-जर्मिं, वाचेची निष्ठुरता, प्रतिष्ठा.
 आंबुट-साडे तीन.
 आवैल-येईल, उगवेल.
 आद्यासेया-आद्यारूपी डांकीण.
 आसतूटिया-निरपेक्षेनें.
 आसलग-सोपा, गोड.
 आसललें-मंद गतीनें वाहणारें.
 आहाच वाहाच-वरवर.
 आहाड वाहाड-विस्तारविस्तार.
 आहाण-सर्व.
 आहावसुवारे-अद्भुत राजवाडे.

इ.

इदंतेसि-हें झणून बुद्धि तीस.
 इटाल-धोंडमार.
 इसालु-इंप्यालु, कामुक.

उ.

उखरा-वालुकामय अरण्य.
 उखरेवे-जमलेल्या रेतीच्या ढिगांत.
 उखि-ऊहा, अनित्यत्व.
 उखिता-एकसरा, आंगतुक.
 उखिविखी-उहापोह, होयनव्हे.

उगाणा-झाडा, उपदेश.
 उजगरा-जायती.
 उजरि-ऋजुता, विस्तार इ. इ.
 उजिरिया-उदय, महत्व, उत्कर्ष.
 उजिवडे-प्रकाश.
 उटकलें-वेगळें झालें.
 उठविजसी-उठिवितोस.
 उडवा-रचिलेली राशि.
 उंडी-ग्रास, बली.
 उणखुण-कमी अधीक, कामना.
 उणेनि-उण्यानें.
 उतान्ही-थान सोडलेलीं बालें, नृष्णा.
 उदले-उधळे, वर येई.
 उद्याणी-मांडणी, सांगण, उद्घाटण.
 उदावादा-परिपूर्णत्व.
 उधि-निर्गम.
 उपखे-कमी होई, खर्च होई, नाश पावे
 उपखो-कमी होऊं देणें, खर्च करणें.
 उपरतविलें-उफराटें फिरविलें.
 उपलवणी-दृढीकरण.
 उपलार्णें-जिनावेगळें घोडें.
 उपेगु-उपयोग.
 उफकेन-उपेक्षेनें.
 उवडे-भालथें, कललेलें.
 उभगु-कंटाळा.
 उभजे-त्रासे, कंटाळा करी.
 उभडु-लेट, झरा.
 उभणें-उभारणें, रचना.
 उभलिचा-खोकल्याची दास.

उभाट-उद्भट, विशाल, मोठे.

उमचला-सुटला.

उमचावेया-उगविण्यास.

उमडे-उमटे.

उमप-अमूप, पुष्कळ.

उमसिजैल-सांगितलें जाईल.

उमरुद्धनि-मुरडून.

उमार्णी-मोजी.

उमार्णे-माप.

उमाहो-पूर.

उमेठा-मेळावा.

उरिणें-ऋणमुक्तता.

उरोधु-अवरोध, प्रतिबंध, आग्रह, भीड.

उलिंग-चाकऱ्या नोकऱ्या, विगार, वेठ

उलिंगें-वेठ, काम, विगार.

उवलें-प्रसन्न, शुद्ध.

उवांय-सुख, आनंद.

उवावो-उत्साह, अवकाश.

उवीळ-अतिक्रान्त वेळ, सायंकाळ.

उसटिलें-उच्छिष्टं झालेलें.

उससे-प्रकट होय.

ए.

एकलौते-एक्या लेंकराच्या मायेस.

एकवंके-सारखेपणा.

एकवंकौनिया-समग्र व सरळ करून.

एकावट-एक झालेले.

एकावदी-ऐक्य.

एकाहाथी-एक आहेत.

एकोविथे-एखादे.

एटालें-विटाळीं.

ऐ.

ऐहेरा-अहेर.

ऐहेव-सुवासिनी.

उं.

उंशीलपणें-भार, वजन.

उंपासिरा-संबंध.

उंलगणें-आश्रय, सेवा, रक्षण.

उंवांडैल-लवेल.

क.

कटा रे-हाय रे.

कटले-श्री झाले.

कडा-बाजूतें.

कणवा-दयेनें.

कथा-झोळी.

कदर्थत-कष्टी करीत.

कदरसि-भय घेसि.

क-हेयाचा-उंटाचा.

कलासी-कौशल्य.

कल्हातां-कलत असतां.

कव-कवटाळणें.

कदमळ-मळ, दोष.

कांटसु-कांटेरी.

कांटियडे-कांट्याची जाळी.

कांडें-भाग, टिपरें.
 काणि-सूचना.
 कादे-कंद.
 कामटां-कारखाना, टांकसाळ.
 कालडी-पायरवानें काळी झालेली.
 कालाबुला-कासवीस.
 कालासे-बांधिला जाई.
 कालियाणा-कृष्णसर्प.
 कालुग-काळा.
 कावडी-कावड.
 कावरुखें-क्षणभंगुर, अदृष्टपूर्व.
 कांवरूमूल-वायुनिरोधनस्थानविशेष.
 कावरें-भ्रांत.
 काशि-माजबंधी, कमरेस.
 कुटि-स्थान, कपट, निंदा.
 कुडल-कळी.
 कुबुजे-कुबडे.
 कुबोल-अपशब्द.
 कुरौडी-बोवाळणें.
 कुसलें-गवताच्या अणकुच्या.
 कुंसि-कुक्षित.
 कुहा-विहीर.
 कुहिलें-कुजलेलें.
 कुटिचें-निदेचें.
 केंकाणें-खोगीर.
 केलवळि-प्रौढ झाली.
 कैकटे-कैकाड्यांचा देग.
 कोडी-कौतुक, आवड.

कोडी-कुष्ठरोगी.
 कोंता-शस्त्रविशेष.
 कोंपट-झोंपडी.
 कोंपटि-लहान झोंपडी, कोंप.
 कोंभारा-कोंब.
 कोलें-तिलादिकांचीं काष्टें.
 क्रांतमति-व्यापकबुद्धि.

ख.

खटेया-वाईटाला.
 खडकिलां-खडकाचे कपरे असलेले.
 खडाणें-अदृष्ट गाईस.
 खड्डुपाणी-खड्डुपाणि.
 खणुवाला-गोड, सरळ.
 खतैलें-लित्त
 खनुवाले-सरळ
 खवणलें-कंडू, उत्कंठा.
 खांकरुं-फलोन्मुख होऊं, उत्तन्न होऊं,
 गळा साफ करतां.
 खांखरैजति-गळा साफ करतात, उत्तन्न
 होतात, फलोन्मुख होतात.
 खागें-अंत्यस्थल, विषय.
 खांची-दमे, कमी होई.
 खाडेहूनि-खड्डाहून.
 खाताडें-खरकटें.
 खिरडें-मागें सरें.
 खुडुके-अडके.
 खुरखोडी-लाथाळ गुरुं.

खुरथोडी-दुष्ट गाई.
 खुरपें-शस्त्रविशेष.
 खुरीं-खुराच्या ठाई.
 खेटली-गर्दीनें जमली.
 खेवणें-कौदणें.
 खैवंगी-अंश.
 खोंकरपणें-विनाशिता.
 खोंचणी-भोसकणें.
 खोटी-गोळा.
 खोडां-लाकडाचें अडकण.
 खोदें-नाशबुद्धीनें.
 खोमणें-लवणें, वक्र होणें, हानि.
 खोमे-लवे, वक्र होई.
 खोलणें-पुढें चालणें, फिरणें.
 खोलविजति-सापडविती.

ग.

गंडू-दर्प, गर्व.
 गंडी-दगडविशेष.
 गदलपणे-केरपणानें.
 गरुवा-मोठा.
 गव्हरीं-गुहेंत.
 गवांदि-अन्नसत्र.
 गाडारा-पाया.
 गाणांवाणां-गाण्यावाण्यानं.
 गादे-पीडा पावे.
 गाभागोभा-प्रतिबंध.
 गाली-टाकी, सांडी.
 गावंधणें-गांवचीं. गुरें.

गांवरसेया-गांवांतल्या मोरीचें पाणी.
 गावारु-गव्हार, अडाणी.
 गुडगा-अवयव विदेश.
 गुंडे-दगड.
 गुढा-गुंडा, दगड.
 गोख-मध्यवर्ति लोक.
 गोंदली-पिशाची, कैकाडी.
 गोधुलक-गाईच्या पायाची धूळ. सूर्य-
 अस्तमानसमय.

गोरी-पारधी.
 गोरुवें-गुरें.
 गोवारी-गुराखी, गुरुसाख.
 गोवी-गुंतागुंत.
 गोसी-परस्पर आकर्षण, भांडवल.
 ग्रामकोल-गावांतील कोल लोक.

घ.

घनावलि-घट्ट झालेली, भेषपंक्ति.
 घाई-घावाचे ठाई.
 घामेजे-श्रमी होई.
 घुमरी-भरास.
 घुमे-घुम् शब्द करणें, हाले.
 घुरें-खोटें सोनं.
 घेणी-स्वीकार, मान.

च.

चउर-चतुर.
 चवलित-बडबडत.

चंक्रमण-सातत्यानें गमन.
 चांगावेया-चांगुलपणास.
 चाडा-इच्छा, आवड.
 चाडैला-आसक्त.
 चांथी-बडबड.
 चांपडे-फासे.
 चिरीव-चिरलेली.
 चूकी-चूक, प्रमाद.
 चोखटिवां-चांगुलपणास.
 चोखेल-उत्तम, स्पष्ट, सस्ता.
 चोज-कौतुक.
 चौंढि-गर्ता.
 चौखुरी-बाज.
 चौबारा-चवाठ्यावर.

छ.

छांदसल्लें-लडिवाळपणें.

ज.

जचे-पीडे.
 जाकलिजत-ध्यात होत असे.
 जाततेन-जन्मल्या.
 जानेतानें-तान्हें वासरूं.
 जाल-जालें.
 जाली-दहन करी.
 जालेन-शालेल्या.
 जावलि-सान्निध्य, सादर्य.
 जीणि-वांघणें, जिंकणें.

९९

जीवितांतु-जीवितांतून.

जुझं-युद्ध.
 जुवाडे-समुदाय.
 जुवारं-घूत.
 जेविति-जेवण्याची.
 जोईस-ज्योतिषी.
 जोगावणें-निर्वाह करणें, पोसणें, प्रग-
 टणें, समजावणें.

झ.

झारि-क्षार.
 झांसुरे-भाळस येई, बोरणे, धोका
 घरी.
 झोति-विशेष.

ट.

टकुली-आशा, उत्कट इच्छा, हपाप.
 टकें-सुटलेलें, सत्यापासून सुटलेलें.
 टंवच-दुःख, दुख.
 टांची-अल्प, लहान.
 टालिये-टाळाला, हाताच्या टाळीला.
 टिकलग-शोभिवंत, जडित.
 टिटंघर-तिठ्यावरचें घर.
 टेकें-टेकतो.
 टेहणी-निबंध.
 टोपु-फुगवटा, फुगारा, सूज.

ठ.

ठके-कमी पडे, बंद होई.

ठसेंठोमसें-मोठें घाटें.
 ठाणें-स्वरूप, आकार.
 ठाणौरियाचें-ठार पडलेल्याचे.
 ठांसी-स्वस्थ बससी.
 ठिकारिया-टुकडे.
 ठी-स्थिति.
 ठीक-जड, मोत्यांचा शुबका.
 ठीकरणें-निश्चय करणें, स्थैर्य करणें.

ड.

डगरु-प्रसिद्धि.
 डगलें-स्थूल.
 डा३०-प्रसंग.
 डाकुलिया-चुटक्या.
 डांगुरुटी-डांगोरा.
 डाल-शाखा, डाहाळी.
 डाली-फुलेंफळें घालावयाची पाटी.
 डालुका-लहान डाहाळी.
 डावी-दूर करी, परिहार करी.
 डाहारिजे-भागिजे, प्रकाशिजे, प्रसिद्ध
 करिजे.
 डिंडिमा-वाद्य विशेष, गजर.
 डुडुल-बोखिटें पाखरुं, शुबड.
 डैीड-डांगोरा.
 डौरु-यज्ञ करी, उपहास करी.

ढ

ढाल-स्वभाव, घर्षण.

ढिवांचे-मुलाम्याचे.
 ढूमे-डगर, डांगर, टेकडी.
 ढेंढें-सूप, धेंड, प्रस्थ.
 ढेंपुली-ढेंकूळ.
 ढोंडी-धोंड, डगर, दगड, आकार.

त.

तडवा-छत, तलवा.
 तणाचें-गवताचें, पेंढ्याचें.
 तलबुडे-खालचा बुंधा, बुड.
 तलहाटी-अधोभागीं.
 तलौटेपण-सपाटपण, नीचपण, नम्रता.
 तांडी-कळप.
 तांतला-तापलेल्या.
 ताला-तळ, खाल, जमिनीची सपाटी.
 तिलें-तीक्ष्ण, तिखट, अणकुचीदार.
 तीघ-तीन.
 तीमाल-भिजवाल.
 तुंडिल-दोंद आलेला.
 तुलई-गादी.
 तूलिये-गादीवर, कापसाच्या गादीवर.
 तोंडौता-वाचाळ.
 तोयबगें-पाण्याच्या उपाधीनें,
 देखाव्यानें.
 त्राय-रक्षण.
 त्राये-सत्ता, रक्षण, ठाव.

थ.

[लपि] थपिं-लपंडाव.
 थरुविथरु-चोखटविखट.

यलिवं-स्वर्णकारनिर्मित वस्तुविशेष.
थाउं, अ. थाउं-बळ, उथळ,
आश्रय, प्रांत.

थार्थबूनि-थांबवून, निरसून.
थावें-तळ, ठिकाण.
थेंकुले-ठेंगणें.
थोरंडें-मोठें.

द.

दंदिया-वैरी, द्वंद करणारां.
दलवाडें-समुदाय, स्वरूप.
दवडा-पळ, धांव.
दाखटां-उंबरठा.
दाटणी-गर्दी, भरताड.
दाटुगा-दांडगा.
दांग-वन, अरण्य.
दाशिरूं-बटिक.
दासट-दाहक, पीडक.
दिये-दिवस.
दीपले-मशाली.
दुकळ-मोडकळलेली स्थिति.
दुमैलावे-दुःखसमुदाय.
दुवालि-केश.
दुहवेवारी-वाईट कर्माची.
दुहिलें-दूध काढलें.
दूण-दुप्पट.
दूस-वस्त्र, तंबू, प्रमेय.
देवपैकीं-देवसमुदायांत.
देवलविसें-पुजाऱ्याचे आंगांत येणें.

देवांगण-निश्चय.

दैवलदैवं-पुजाऱ्याचें ऊर्फ गुरवाचें दैव
ध.

धडीं-दवडीन, घालवीन.
धाडी-हळा, अभिक्रम.
धांडे-हळे, अभिक्रम.
धानी-धान्याची रास किंवा ढीग,
धान्य ठेवण्याचा ठोकळा, गृह.

धांधा-व्यापार.

धाप-धग, ताप.

धुमाडु-धामधूम, गडबड, आधिक्य,
योग.

धारें-धाकटें.

धिटे-स्वरिणी स्त्रीस.

धुवारी-धूमाची आकुलता.

न

नई-नदी.

नडनाचु-नटाचा नाच.

नाखी-टाकी, प्राप्ति, समुपगम.

नागारी-नाग धरणारे गारुडी.

नागोवा-नागवण.

नाडर-थिल्लर, डबकें.

नावणिंगी-यथार्थकथनीं.

निगलें-धुरानें, झांपडेनं.

निगावों-सुटका.

निगुतिया-युक्त्या.

निजगडे-स्वतःचे ठायीं बळकट,
आत्मनिष्ठ.

निधनिं-अंतकाळ, मृत्यु.

निधिये-सम तोलांत, भ्रमणांत.
 निमांते-लय पावणारे.
 निरुते-खरे, निश्चित.
 निरुपहिति-निरुपाधिक.
 निर्वुजें-गोंधळानें.
 निर्वचु-निराकरण.
 निर्वाललेनि-शुद्ध, धूत, निष्कलंक.
 निन्हां-अगदीं, केवळ.
 निळागु-निराश्रित.
 निलेयाचा-इंद्रनीळाचा.
 निष्टकी-निश्चित.
 निष्टंकिति-निश्चयानें चिकटवितात.
 निसले-पाजलें जाई.
 निसुगु-निलंज, आंगळ.
 निस्तरे-तरून जाई.
 नुधवी-वर काढीत नाहीं.
 नुमचवे-प्रत्युपकार न करवे.
 नुरोधी-प्रातिबंध करूं नकोस.
 नुसंतितां-उत्सादन केल्यावांचून.
 नूकौनियां-पराभव करून, दुःख देऊन.
 नेना-नेत नाहीं, जाणत नाहीं.
 न्यामक-नियामक.

प.

पडप-प्रतिष्ठा, महत्व.
 पडिघांति-मारती, आदळती.
 पदिगाइलें-मोजून पाहिलें, धरलें.
 पडिये-अति प्रिय.
 पडिकर-रोग बरा करणारा वैद्य,
 साहाय्यक.

परगुणे-पक्वान्न.
 परमार-शत्रूंचा उच्छेद करणारे.
 परवडि-रीती, प्रकार.
 परिव्राण-भाषा, शब्द, बोलणें.
 परिवरिचें-घरचें, गुप्तस्थानचें.
 पन्हेवे-मोरीस.
 पलिये-पेटे.
 पवली-महामार्ग, राजमार्ग.
 पसाव-प्रसाद, उपकार.
 पदुरणीं-ओढाळ, भटकणारी.
 पक्षु-आरोप.
 पांउखला-लाथेनें.
 पाउटी-पाहिरी.
 पाउड-पैसांसुपारी, दक्षणा.
 पाउवा-पादुका.
 पांकी-पातळ पदार्थ, पक्क अन्न.
 पाखाणी-प्रक्षाळी, धुवून टाकी.
 पाखालणियां-धुण्यानें.
 पाखाली-प्रक्षाळी, धुई.
 पांगुतले-अडकलेले, आच्छादिलेले.
 पांगे-अधीनत्वानें.
 पांगोरा-सूक्ष्म भाग, अंत.
 पांचवेउली-पांच नांग्यांची इंगळी.
 पांचिका-हीण सोन्यास.
 पांजरा-पंजर, पिंजरा.
 पाट-पदवी, आसन, अधिकार.
 पाटाचें-अधिकार, आसन, पदवी.
 पाढाउ-पढविणारा, मार्गदर्शक, साधक
 पाणधी-दोन कुंपणामधील वाट.
 पाणवाडा-मोरी.

पाणियड-तळें, जळपात्र.
 पाणियांचा-पाण्याचा.
 पांति-पावतात.
 पातिजों-विश्वास ठेवों.
 पापता-पापत्व.
 पारकेयां-शत्रूस.
 पालति-रक्षण.
 पालव-इंद्रियवृत्ति.
 पाव्हालें-विस्तारें, गावाळानें.
 पालें-कटकें.
 पालों-विस्तारून.
 पावे-पोहोंचे.
 पासाव-पासून.
 पासिं-जवळ.
 पासिवणें-पायमाघार.
 पाहिचे-उद्यांचे.
 पाहेचा-उद्यांचा.
 पिचडीं-थुकीनें.
 पिडि-पाया.
 पिंडु-अहंपदविशिष्ट जीव.
 पिशित-मांस.
 पीसा-वेडा, पिच्छ.
 पीसेया-वेड्यास, वेडास.
 पुटीं-मूस, पुडा, सुवर्णशोधन.
 पुढारलों-पुढें झालों, कबूल झालों,
 बोलिलों.
 पुरवणिया-सिद्धि.
 पूंस-राधूं, पारव्याचा भेद.
 पेटी-जोडी.
 पेंडवला-बांध.

पेंदी-जुडी.
 पेणा-मजल, टप्पा, मुक्काम.
 पेंदलीं-वेंटाळें.
 पेंधा-गोळा.
 पेले-लोटणें, संभाळून धरणें.
 पेलेवेलीं-प्रतिदिन वृद्धि.
 पैठी-प्रविष्ट.
 पैसार-मार्ग, पसारा, विस्तार.
 पैसिजे-प्रवेश करी.
 पैसें-योगानें, मार्गांनें.
 पोटलवे-पोटाशीं धरवे, आळिगवे.
 पोटाळूं-पोटाशीं धरूं.
 पोफल-प्रतिज्ञा, पैज.
 पोतीं-तागाचीं पोतीं.
 पोली-आवार, भोंवतालची भिंत.
 पौली-महामार्ग, राजमार्ग.
 प्रतिमळ-शत्रू, सामनेवाला.
 प्रतिलपसि-अनुलक्षण बोलतोस.
 प्रत्यवावो-दोष.
 प्रांगण-ताशे, नगारे.
 प्राची-उदय.
 प्रायेचा-पूर्वीचा, पूर्ववयाचा.
 फ.
 फरसालें-भिन्न स्वादें.
 फरारी-ध्वज, निशाण.
 फाउरी-आभास.
 फाडोवाडा-वेगळें करून.
 फारां-पुष्कळ.
 फार-पुष्कळ.

फाली-फाडी, चिरी.
 फुंजे-गर्वानिं.
 फुडी-स्पष्ट, खरी.
 फुलिं-फुलांनीं.
 फूटौनि-दमून.
 फोकरिजे-वाचेनें उच्चारिजे.
 फोकिलियां-वान्यानें ओढून नेलेल्या,
 वान्यानें फुंकून नेलेल्या.
 फोडसें-फुरसें.

व

वों-देखावा, आकार, मार्ग, संबंध.
 वणवे-प्रतीतीस येई.
 वडंबा-गडबड, कोलाहल.
 बल्वचेन-सैराट उगवणारे गवताच्या.
 बहिकरि-बहिष्कार घालून.
 बहुचकै-अनेकता.
 बहुवसा-फार, पुष्कळ.
 बागडी-मर्कटादि नाचविणार.
 बागीबल-कंप.
 बाधकां-दोषांस.
 बांधी-बंधन, नियम, समुदित आकार,
 दोहीकडील कूप.

बायणी-वायदा.
 बायिणयां-वायदे.
 बासट्टु-बहुविष.
 बाहाली-विस्तार, वेडा.
 बाहिरिवाहिरा-परभारें.
 बीक-बळ, तेज.

बीजे कीजे-गमन केलें पाहिजे, आलें
 पाहिजे.

बुकी-मुष्टि, मूठ.
 बुडकली-बुडी.
 बुडळं-बुडवूं.
 बुडसले-शुष्क काष्ठ.
 बुबुलें-अवयव विशेष.
 बुरी-कूज, रोग विशेष.
 बूरु-वेडा.
 बेचें-कोंभ.
 बेझें-युक्ति.
 बैवल-विव्हल.
 बेलें-कुंपणाचा आडा, डेळकें.
 बैसणां-बैठक, आसन.
 बोकोटी-शोळी.
 बोबाणें-हाक मारी.
 बोबांत-हाक मारीत.
 बोंबे-आरोळीच्या.
 बोल-भाषण, शब्द.
 बोहणीए-मोलापैकीं प्रथम, आरंभ,
 सुरवात.
 बोहिरि-वणवा.

भ.

भंगी-रीति, प्रकार.
 भराडा-पूजक.
 भरोवरी-साधनातिशय.
 भवैचि-भिवयांची, भुकुटीची.
 भ्रमक-लोहचुंबक.

भाउरें-भ्रमणारें.
 भाखे-भाषेस.
 भांगारें-सोनें.
 भांजे-भग्न होई.
 भाटिं-निकृष्ट जमीनींत, स्तुतिपाठक.
 भाटिव-स्तुति, पराक्रम.
 भांडुके-भांडखोर.
 भाणें-ताट, पात्र.
 भादि-भली गाय.
 भाली-शस्त्र विशेष.
 भिंगारा-भिंगाचें घर, कंदील.
 भिंगोरि-भोंवरा.
 भीला-पराङ्मुख.
 भुरे-वेड, पिसें.
 भुरी-वेड, पिसें.
 भूवर्गी-सर्पांचे ठाई.
 भोकसा-सगळें चर्म.
 भोजे-संतोष, आवड, सोंग, महत्त्व.

पं.

मगे-शोधी.
 मटंगणे-स्तोत्र, उपहास.
 मढ-मठ.
 मणिजु-अंडज.
 मदवी-वस्त्र विशेष.
 मरमारु-प्राणान्त करणारे.
 मरुणारुवाचें-मरुणाच्याचें.
 मवणें-मोजणें.
 माघुतसाउमे-मागलेंपुढलें,

मांच-आश्रय, अंतराळीं केलेला मार्ग.
 माजिरां-मत्त.
 माजिवडा-झिवडा-मध्यें.
 मांदिएसी-समुदायास, मंडळीस.
 मांदुरी-चाबुकस्वार.
 मांदोडा-फळांचा घड, बाहुल्य.
 मांधति-रजतात, काढतात.
 मालातिलें-अंगीकारिलें, आश्रयिलें.
 माह्हांत-अंगीकारीत.
 माहेवणी-कुलीन, गर्भार.
 मिणधी-कपटी.
 मिरवणियां-मिरवणुकी, शोभा.
 मीकें-संशयानें.
 मीतलें-मिळालें.
 मुगुतकीं-मोतीं.
 मुगुतिवाला-मुक्ति हींच कोणी मुलगी.
 मुदी-मुद्रा.
 मुहारी-मूळ ऊर्फ आमंत्रण घेऊन
 जाणारे.
 मुसिं-ओढ्यांत, पदरांत.
 मुसिले-फसले.
 मूंके-नुगवायाचें.
 मूग-मौन.
 मेचवे-आटोपे, मृदु करवे.
 मेचु-प्रीति, आवड.
 मेलपाकिं-विषयग्राहक, समुदाय.
 मेले-लें-योग, संयोग, संयोगानें.
 मेलीसी-योगास, संयोगास, एकवटतेस.
 मेर-रे-मर्यादा, अवधि (संस्कृत
 मीर=मर्यादा).

मेहो-मेघ.
मोहर-मार्ग, दिशा.

य.

यंते-येणारं.
यावा-आगमन, प्राप्ति.
युगावृत्ति-कृतयुगादींची आवृत्ति.
येकोल-एक वेळ.

र.

रंधन-पाक.
रयणी-रात्री.
राजवलि-राजाचें हस्ताक्षर; राजमुद्रा.
राजागर-राजांच्या बागा.
रांधवण-स्वयंपाकांतलें पाणी,
अन्नाचारीण.
राबाउणें-राबाच्या विना.
राविले-रंगविले.
रिगिनिगि-प्रवेशनिर्गम.
रोहो-अंकुर, आरंभ, वाढ.

ल.

लंघे-ओलांडणें, उपवास करणें.
लचकणें-तरळणें, चळणें.
लवंघा-लवंग.
लवलवां-अति त्वरेनें.
लाइलें-हकालिलें.
लांकण-बंधन.
लागां-संबंधीं.

लागु-संबंध.
लाटु-बळकट.
लाठी-दांडगी, मोठी.
लाणें-अवधि, शेवट, प्राप्ति,
गोळा करणें.
लांब-भातगोट्याचें रोप.
लांबिजे-लांब उभे टांगणें.
लावणी-गणना, नेमावणी.
लांवा-व्याप्रस्त्री.
लांसे-चिन्ह.
लाहाणा-प्रात होणारा.
लाहालाहात-अत्युत्कंठित.
लुंचिति-वपन करिती, काढिती.
लूति-त्वग्रोग.
लेखे-गणनेस.
लेंडिये-अमंगळ ओहळास.
लेप-चित्र, दोष.
लेवे-लेप.
लेसां-बऱ्या बोलानें.
लेहें-चाटी.
लोटी-ढकलणें, दूर करणें, मारणें.
लोथ-मोट.
लोलौनि-लोळून.
लोवे-लोकरी.

व.

वंगु-फलक.
वचवे-जावे.
वंटा३-न्यूनत्व.

वडप—वृष्टि.
 वत्सनाग—वचनाग.
 वह्निया—इष्ट.
 वरिषा—पाऊसाळा.
 वरैतु—भर्ता, नवरा, पति.
 वरोसी—नित्यकृत्याची सामग्री.
 वलसा—वळण, फेरा, भोवरु. —
 वलित—छेदनायोग्यता.
 वसो—बैल, वसू.
 वसोवा—बैलास.
 वाउघाण—वादळ.
 वाउर—वाईट.
 वाउली—पाउली.
 वाकडिया—पावसाची झड. कडाक्या-
 वाखाण—व्याख्यान. [ची थंडी.
 वाखाणा—व्याख्यानां.
 वागवृता—वक्रवृत्त.
 वागौरा—वाखदोर.
 वाजटा—व्यर्थ.
 वाटबंधा—वाटमाऱ्या.
 वाटवीजे—मार्ग काढते.
 वाडजतन—फार तत्परता.
 वाडु—फार.
 वाडुवलु—महा भयंकर.
 वाणसिये—वेद्येचे.
 वाणि—तोटा, कमीपणा, वाचा.
 वाति—दिवा.
 वाधावा—येतें चिन्ह, पूर्वसूचना, वार्ता.
 वानी—कस, मासला.
 वायप्रसंगें—अनुद्दिष्ट प्रसंगानें.
 वायें—वाहणें, दाखवणें.
 वातेंवारिल—दोरावरील.
 वालभ—वात्सल्य.
 वाला—वजन विशेष.

वाली—त्यागी, टाकी.
 वालें—कृष होई.
 वाल्हें दुल्हें—अति प्रीतीचें, अपूर्व.
 वावंदणे—दगड, खडक.
 वावाटें—ओहोटे.
 वासिपैल—वचकेल.
 वासिपो—वचकूं, भिऊं.
 वास्ति—रहाण्याचें ठिकाण.
 वाहाणधर—जोडे उचलणार.
 वाहाती—मळलेली.
 विकणु—फोल.
 विकिरा—विक्री.
 विखाभरणें—विषयांचे अलंकार.
 विटंकु—मोठे, घनदाट, निविड.
 विटालें—दोष.
 विडा—तांबुल.
 विडालु—दोष.
 विदल—द्विजातीय, डांक.
 विंदाण—कौशल्य, कळसूत्र.
 विंदाणिये—कुशल.
 विधुले—विसकटे, नाश पावे.
 विन्यासाते—प्रतिपादनास, निरूपणास.
 विपाउ—कादाचित्कत्व.
 विभांडी—पराभवी, फोडी,
 विभुटणी—वियोग.
 विरगाति—विरक्ति.
 विरंगुला—अडथळा.
 विवलतिये—प्रकाशणाऱ्या.
 विवसी—डाकीण, भूत.
 विशेकु—ज्ञान.
 विसंवणें—विश्रांति पावणें.
 विहिं—विधीत.
 वीति—उत्पन्न करतात, प्रसवतात.
 वृत्तिकां—वतनदार.

चेख-वेप.
 वेखजें-व्यवहार.
 वेखासैं-विरुद्ध.
 वेगल-भिन्न, निरनिराळे.
 वेगु-स्वरा.
 वेचि-खर्चात, क्षयांत.
 वेझ-सुईचा डोळा, भोंक.
 वेझिला-वेढिला.
 वेंटालु-गोळा.
 वेटालों-गळा करतां.
 वेंठ-पेठ.
 वेठला-वेष्टला.
 वेंठावें-वेशावें, आछादावें.
 वेलरिया-वेली.
 वेलाउल-लतामंडप, धूर.
 वेलांडी-विस्तार.
 वेलाभेड-समुद्राच्या लाटांना भिणारा.
 वेव्हार-व्यवहार.
 वेव्हारे-व्यापारी.
 वोइरणा-आडवेपण.
 वोइरिलें-आडवें झालें.
 वोइरी-आडवी.
 वोउसेयाचेया-व्रत करणाऱ्याच्या.
 वोखती-चिंता.
 वोज-रीति, चांगुलपण, प्रभा.
 वोजावी-रीति दाखवी, शिकवी.
 वोडण-ढाल.
 वोडौ-आदर.
 वोढालाचा-उनाडाचा.
 वोढालिवा-चोरी करणाऱ्या.
 वोथंबा-गवंड्यांचा लंबक, आश्रयस्तंभ.
 वोरकली-सोने कसायाचा पाषाण.
 वोरकळ-सोने कसायाचा पाषाण.
 वोरसैं-पान्हा, प्रीति.

वोलाटे-ओल्या जमिनी.
 वोली-गाहाण.
 वोवाडे-उलटे, ओलाडे, पडे.
 वोवी-बंध.
 वोसैं-मिथ्यात्व, न्यूनता.
 वोह-कांस, आंचळ.
 वोसैं-व्रत.
 व्यंजे-व्यक्त होतें.
 व्यामिजे-उद्योगी लावणें.

श.

शाराव-परळ.
 शाड्डु-हिरवेंगार.
 शालिका-स्थान, भूमि.
 शिवमुष्टिगंडु-आभिमानाचा पण, पैज.
 शोथ्यते-दैन्यास.
 शोधारिलीं-शुद्ध केलीं.
 श्रीमातु-संपत्तीचा मद.

स.

सकलव-मिश्रित.
 सकु-सत्ता.
 सकूडि-सशरीर.
 सचकु-संग्रही.
 सणाणें-तीक्ष्ण.
 सत्राण-बळकट.
 सदटे-सदढ, बळकट.
 संदु-छंद.
 सदे-छंदानें.
 संपजति-संपद्यमान होतात.
 सपाई-संपूर्ण.
 सपोल-व्यर्थ, निष्फळ.
 सबडबुडी-गुडुप.
 समूठ-संपूर्ण.

समैक-समयिक.
 समोरिला-पुढील.
 समोहरे-प्रत्यक्ष.
 सर्वज्ञ-सर्व जाणणारा.
 सरांडेल-लिडबिडेल.
 सरोभरी-तुलना, ग्राम्य.
 सव-शिरकाव.
 सवंदणी-परटाचें तादण.
 सवले-उद्यां, प्रातःकालीं.
 सवांव-मुशोभित.
 सविया-स्वतः.
 सविवळें-सविस्तर.
 साइलेयां-शेजारच्या.
 साउमा-प्रत्यक्ष, पुढलें, समोरचें,
 तेव्हांच.
 साचल-चाहूल, जागें.
 साजणे-सख्य.
 सांजवणी-धार.
 साजा-तयार.
 साजीव-ताजें, तीक्ष्ण, जिवंत.
 साटु-चाबूक, प्रतोद.
 साडुल-हिरवें गवत.
 साणें-सहन करणें.
 सात-सोशीत.
 सातरिया-सप्ताह, सप्तक.
 सातवेउली-सात नांग्यांची इंगळी.
 साते-बाजारी.
 सादु-शब्द.
 साध-इच्छा.
 सांपु-सर्प.
 साबलाहुनु-शस्त्राहून, पहारेहून.
 सामाये-समावे.
 सारकतु-विज्ञालेला कोळसा.
 सारिसि-सारखी.

सारोक-चांगलें.
 साल-कातडें.
 सालडें-कातडें.
 सालिये-संपन्न.
 सावगणी-कापणी.
 सांवरे-भरे.
 सावा ३०-साहाय्य, साम्य.
 सावाय-साहाय्यानें.
 सावें-अवधें.
 सासन-शासन.
 सासान-अंदण.
 सासिनलिया-विस्तारल्यास, धरल्यास.
 साहांतिया-सोसणाऱ्या.
 सिचडी-कड्ड.
 सिंतरी-फसवी.
 सिंथिति-फेकती, निपजविती, वाहेर
 काढती.
 सिनानीं-निराळीं, भिन्न.
 सिनार-निराळें, भिन्न.
 सिनीं-वेगळीं, निराळीं.
 सियारी-डाकीण.
 सिरके-प्रवेश करी.
 सिरालें-सुसें.
 सिरीयाणी-आवड, इच्छा.
 सिसार-शिरोरोगी.
 सिहवीरें-छावणी.
 सीग-अग्रभाग.
 सीनसाल-छिन्न साल आहे ज्याची,
 क्षणभंगुर.
 सीनें-वेगळें, निराळें.
 सुआरु-पाककर्ता.
 सुइजे-घालिजे.
 सुजे-सूजे-सुचे.
 सुझे-सुचे.

सुणी-झाडणारी, घालवणारी.
 सुयाणें-मुकाळ.
 सुरंगी-वाट, भुयार.
 सुरफुरे-पातळ.
 सुरवाडें-सुख, अनुकूल, मूर्जी, मुकाळ
 सुवर्मा-अत्यंत भार्मिकास.
 सुवाण-चंगळ.
 सुवायें-चांगल्या वाऱ्यानें.
 सुवालली-चांगली, सुखाची.
 सुवे-घाली.
 सुहाडा-मनोरमा.
 सुहावें-सेवावें.
 सुहावेया-प्रापक.
 सुटिका-मुक्ति, सोडवण.
 सुंति-निघतात.
 सुंतील-घालतील, काढतील.
 सुंसि-घालिरी.
 सेजेयां-शेजारच्या.
 सेंदे-करंड्याचे ठाई.
 सेलिला-तरंगला.
 सेलिए-उत्तम वाटा.
 सेस-नवरानवरीस अक्षता, शेप.
 सैष-अनेक, सर्व.
 सोआवें-घालावें, वाढावें.
 सोण-निजे.
 सोंकरी-पांखरे हाकीं.
 सोंचरा-साम्राज्यविशेष.
 सोणवी-पृथ्वी.
 सोफ-लटकें, फोल.
 सोभु-जार्मि तरंग.

सोये-आधार, आश्रय.
 सोलें-उत्तम सोनें.
 सोवता-वरपडा.
 सोवतें-सार्थक.
 सोहलेया-सुख, चैन, सोहळा.
 सोदणी-परटाचें तादण.
 स्फीति-प्रतिष्ठा, मोटेपणा.
 स्फीतीचेया-कीर्तीच्या, प्रतिष्ठेच्या.
 स्वसणें-श्वास टाकणें.

ह.

हडगीं-हटसाधनें.
 हडपु-डवा.
 हवावे-शोभा.
 हाडाकाइर-हाडें खाणार.
 हाणि-तोटा.
 हातधरणियां-हात धरण्यानें.
 हातवसावें-हातीं धरावें.
 हातोफलिया-हां हां हणतां.
 हाथि-गज, हस्ती.
 हाथैवा-काडवात.
 हालाफुर्ली-तत्काळ, हां हां हणतां.
 हियें-हृदय
 हिरतां-हिरोन घेतां.
 हिरें-हिरोन घेई.
 हीयारी-थंडीच्या दिवसांत.
 हुसपतां-धग लागतां, होरपळतां.
 हेलासति-तुच्छ मानितां.
 होणां-होण्यानें.

सुणी-झाडणारी, घालवणारी.
 सुयाणें-मुकाळ.
 सुरंगी-वाट, भुयार.
 सुरफुरे-पातळ.
 सुरवाडें-सुख, अनुकूल, मूर्जी, मुकाळ
 सुवर्मा-अत्यंत भार्मिकास.
 सुवाण-चंगळ.
 सुवायें-चांगल्या वाऱ्यानें.
 सुवालली-चांगली, सुखाची.
 सुवे-घाली.
 सुहाडा-मनोरमा.
 सुहावें-सेवावें.
 सुहावेया-प्रापक.
 सुटिका-मुक्ति, सोडवण.
 संति-निघतात.
 सूंतील-घालतील, काढतील.
 सूसि-घालिरी.
 सेजेयां-शेजारच्या.
 सेंदे-करंड्याचे ठाई.
 सेलिला-तरंगला.
 सेलिए-उत्तम वाटा.
 सेस-नवरानवरीस अक्षता, शेप.
 सैष-अनेक, सर्व.
 सोआवें-घालावें, वाढावें.
 सोण-निजे.
 सोंकरी-पांखरे हाकीं.
 सोंचरा-साम्राज्यविशेष.
 सोणवी-पृथ्वी.
 सोफ-लटकें, फोल.
 सोभु-जार्मि तरंग.

सोये-आधार, आश्रय.
 सोलें-उत्तम सोनें.
 सोवता-वरपडा.
 सोवतें-सार्थक.
 सोहलेया-सुख, चैन, सोहळा.
 सौंदणी-परटाचें तादण.
 स्फीति-प्रतिष्ठा, मोटेपणा.
 स्फीतीचेया-कीर्तीच्या, प्रतिष्ठेच्या.
 स्वसणें-श्वास टाकणें.

ह.

हडगीं-हटसाधनें.
 हडपु-डवा.
 हवावे-शोभा.
 हाडाकाइर-हाडें खाणार.
 हाणि-तोटा.
 हातधरणियां-हात धरण्यानें.
 हातवसावें-हातीं धरावें.
 हातोफलिया-हां हां हणतां.
 हाथि-गज, हस्ती.
 हाथैवा-काडवात.
 हालाफुर्ली-तत्काळ, हां हां हणतां.
 हियें-हृदय
 हिरतां-हिरोन घेतां.
 हिरें-हिरोन घेई.
 हीयारी-थंडीच्या दिवसांत.
 हुसपतां-धग लागतां, होरपळतां.
 हेलासति-तुच्छ मानितां.
 होणां-होण्यानें.

सुणी-झाडणारी, घालवणारी.
 सुयाणें-मुकाळ.
 सुरंगी-वाट, भुयार.
 सुरफुरे-पातळ.
 सुरवाडें-सुख, अनुकूल, मूर्जी, मुकाळ
 सुवर्मा-अत्यंत भार्मिकास.
 सुवाण-चंगळ.
 सुवायें-चांगल्या वाऱ्यानें.
 सुवालली-चांगली, सुखाची.
 सुवे-घाली.
 सुहाडा-मनोरमा.
 सुहावें-सेवावें.
 सुहावेया-प्रापक.
 सुटिका-मुक्ति, सोडवण.
 सुंति-निघतात.
 सुंतील-घालतील, काढतील.
 सुंसि-घालिरी.
 सेजेयां-शेजारच्या.
 सेंदे-करंड्याचे ठाई.
 सेलिला-तरंगला.
 सेलिए-उत्तम वाटा.
 सेस-नवरानवरीस अक्षता, शेप.
 सैष-अनेक, सर्व.
 सोआवें-घालावें, वाढावें.
 सोण-निजे.
 सोंकारी-पांखरे हाकीं.
 सोंचरा-साम्राविशेष.
 सोणवी-पृथ्वी.
 सोफ-लटकें, फोल.
 सोभु-जार्मि तरंग.

सोये-आधार, आश्रय.
 सोलें-उत्तम सोनें.
 सोवता-वरपडा.
 सोवतें-सार्थक.
 सोहलेया-सुख, चैन, सोहळा.
 सोदणी-परटाचें तादण.
 स्फीति-प्रतिष्ठा, मोटेपणा.
 स्फीतीचेया-कीर्तीच्या, प्रतिष्ठेच्या.
 स्वसणें-श्वास टाकणें.

ह.

हडगीं-हटसाधनें.
 हडपु-डवा.
 हवावे-शोभा.
 हाडाकाइर-हाडें खाणार.
 हाणि-तोटा.
 हातधरणियां-हात धरण्यानें.
 हातवसावें-हातीं धरावें.
 हातोफलिया-हां हां हणतां.
 हाथि-गज, हस्ती.
 हाथैवा-काडवात.
 हालाफुर्ली-तत्काळ, हां हां हणतां.
 हियें-हृदय
 हिरतां-हिरोन घेतां.
 हिरें-हिरोन घेई.
 हीयारी-थंडीच्या दिवसांत.
 हुसपतां-धग लागतां, होरपळतां.
 हेलासति-तुच्छ मानितां.
 होणां-होण्यानें.

सुणी-झाडणारी, घालवणारी.
 सुयाणें-मुकाळ.
 सुरंगी-वाट, भुयार.
 सुरफुरे-पातळ.
 सुरवाडें-सुख, अनुकूल, मूर्जी, मुकाळ
 सुवर्मा-अत्यंत भार्मिकास.
 सुवाण-चंगळ.
 सुवायें-चांगल्या वाऱ्यानें.
 सुवालली-चांगली, सुखाची.
 सुवे-घाली.
 सुहाडा-मनोरमा.
 सुहावें-सेवावें.
 सुहावेया-प्रापक.
 सुटिका-मुक्ति, सोडवण.
 सुंति-निघतात.
 सुंतील-घालतील, काढतील.
 सुंसि-घालिरी.
 सेजेयां-शेजारच्या.
 सेंदे-करंड्याचे ठाई.
 सेलिला-तरंगला.
 सेलिए-उत्तम वाटा.
 सेस-नवरानवरीस अक्षता, शेप.
 सैष-अनेक, सर्व.
 सोआवें-घालावें, वाढावें.
 सोण-निजे.
 सोंकरी-पांखरे हाकीं.
 सोंचरा-साम्राविशेष.
 सोणवी-पृथ्वी.
 सोफ-लटकें, फोल.
 सोभु-जार्मि तरंग.

सोये-आधार, आश्रय.
 सोलें-उत्तम सोनें.
 सोवता-वरपडा.
 सोवतें-सार्थक.
 सोहलेया-सुख, चैन, सोहळा.
 सोदणी-परटाचें तादण.
 स्फीति-प्रतिष्ठा, मोटेपणा.
 स्फीतीचेया-कीर्तीच्या, प्रतिष्ठेच्या.
 स्वसणें-श्वास टाकणें.

ह.

हडगीं-हटसाधनें.
 हडपु-डवा.
 हवावे-शोभा.
 हाडाकाइर-हाडें खाणार.
 हाणि-तोटा.
 हातधरणियां-हात धरण्यानें.
 हातवसावें-हातीं धरावें.
 हातोफलिया-हां हां हणतां.
 हाथि-गज, हस्ती.
 हाथैवा-काडवात.
 हालाफुर्ली-तत्काळ, हां हां हणतां.
 हियें-हृदय
 हिरतां-हिरोन घेतां.
 हिरें-हिरोन घेई.
 हीयारी-थंडीच्या दिवसांत.
 हुसपतां-धग लागतां, होरपळतां.
 हेलासति-तुच्छ मानितां.
 होणां-होण्यानें.

सुणी-झाडणारी, घालवणारी.
 सुयाणें-मुकाळ.
 सुरंगी-वाट, भुयार.
 सुरफुरे-पातळ.
 सुरवाडें-सुख, अनुकूल, मूर्जी, मुकाळ
 सुवर्मा-अत्यंत भार्मिकास.
 सुवाण-चंगळ.
 सुवायें-चांगल्या वाऱ्यानें.
 सुवालली-चांगली, सुखाची.
 सुवे-घाली.
 सुहाडा-मनोरमा.
 सुहावें-सेवावें.
 सुहावेया-प्रापक.
 सुटिका-मुक्ति, सोडवण.
 सुंति-निघतात.
 सुंतील-घालतील, काढतील.
 सुंसि-घालिरी.
 सेजेयां-शेजारच्या.
 सेंदे-करंड्याचे ठाई.
 सेलिला-तरंगला.
 सेलिए-उत्तम वाटा.
 सेस-नवरानवरीस अक्षता, शेप.
 सैष-अनेक, सर्व.
 सोआवें-घालावें, वाढावें.
 सोण-निजे.
 सोंकरी-पांखरे हाकीं.
 सोंचरा-साम्राविशेष.
 सोणवी-पृथ्वी.
 सोफ-लटकें, फोल.
 सोभु-जार्मि तरंग.

सोये-आधार, आश्रय.
 सोलें-उत्तम सोनें.
 सोवता-वरपडा.
 सोवतें-सार्थक.
 सोहलेया-सुख, चैन, सोहळा.
 सोदणी-परटाचें तादण.
 स्फीति-प्रतिष्ठा, मोटेपणा.
 स्फीतीचेया-कीर्तीच्या, प्रतिष्ठेच्या.
 स्वसणें-श्वास टाकणें.

ह.

हडगीं-हटसाधनें.
 हडपु-डवा.
 हवावे-शोभा.
 हाडाकाइर-हाडें खाणार.
 हाणि-तोटा.
 हातधरणियां-हात धरण्यानें.
 हातवसावें-हातीं धरावें.
 हातोफलिया-हां हां हणतां.
 हाथि-गज, हस्ती.
 हाथैवा-काडवात.
 हालाफुर्ली-तत्काळ, हां हां हणतां.
 हियें-हृदय
 हिरतां-हिरोन घेतां.
 हिरें-हिरोन घेई.
 हीयारी-थंडीच्या दिवसांत.
 हुसपतां-धग लागतां, होरपळतां.
 हेलासति-तुच्छ मानितां.
 होणां-होण्यानें.

सुणी-झाडणारी, घालवणारी.
 सुयाणें-मुकाळ.
 सुरंगी-वाट, भुयार.
 सुरफुरे-पातळ.
 सुरवाडें-सुख, अनुकूल, मूर्जी, मुकाळ
 सुवर्मा-अत्यंत भार्मिकास.
 सुवाण-चंगळ.
 सुवायें-चांगल्या वाऱ्यानें.
 सुवालली-चांगली, सुखाची.
 सुवे-घाली.
 सुहाडा-मनोरमा.
 सुहावें-सेवावें.
 सुहावेया-प्रापक.
 सुटिका-मुक्ति, सोडवण.
 सुंति-निघतात.
 सुंतील-घालतील, काढतील.
 सुंसि-घालिरी.
 सेजेयां-शेजारच्या.
 सेंदे-करंड्याचे ठाई.
 सेलिला-तरंगला.
 सेलिए-उत्तम वाटा.
 सेस-नवरानवरीस अक्षता, शेप.
 सैष-अनेक, सर्व.
 सोआवें-घालावें, वाढावें.
 सोण-निजे.
 सोंकरी-पांखरे हाकीं.
 सोंचरा-साम्राविशेष.
 सोणवी-पृथ्वी.
 सोफ-लटकें, फोल.
 सोभु-जार्मि तरंग.

सोये-आधार, आश्रय.
 सोलें-उत्तम सोनें.
 सोवता-वरपडा.
 सोवतें-सार्थक.
 सोहलेया-सुख, चैन, सोहळा.
 सोदणी-परटाचें तादण.
 स्फीति-प्रतिष्ठा, मोटेपणा.
 स्फीतीचेया-कीर्तीच्या, प्रतिष्ठेच्या.
 स्वसणें-श्वास टाकणें.

ह.

हडगीं-हटसाधनें.
 हडपु-डवा.
 हवावे-शोभा.
 हाडाकाइर-हाडें खाणार.
 हाणि-तोटा.
 हातधरणियां-हात धरण्यानें.
 हातवसावें-हातीं धरावें.
 हातोफलिया-हां हां हणतां.
 हाथि-गज, हस्ती.
 हाथैवा-काडवात.
 हालाफुर्ली-तत्काळ, हां हां हणतां.
 हियें-हृदय
 हिरतां-हिरोन घेतां.
 हिरें-हिरोन घेई.
 हीयारी-थंडीच्या दिवसांत.
 हुसपतां-धग लागतां, होरपळतां.
 हेलासति-तुच्छ मानितां.
 होणां-होण्यानें.